दीन की ऐसी तत्परता और लगन थी कि उन्होने किसी बात की चिन्ता नही की और वे अपने धम प्रचार में दृढ़तापूवक सलग्न रहे। कालान्तर में उनके अनेक अनुयायी हो गये। मदीना में उनकी शक्ति और उनका प्रभाव बहुत बढ़ गया। सन् ६३० ई० में उन्होने कुरैश की शक्ति नष्ट करने के लिए मक्का को प्रस्थान किया और नगर को जीत लिया। जब सब मक्का निवासियो को उन्होने साधारण रूप से क्षमा कर दिया और कुछ ही विरोधियो का दड दिया तो मक्कावासियो को स्वय आश्चय हुआ। उन्होने लोगो से मूर्तिपूजा छोड देने के लिए कहा और उन्हें समझाया कि केवल एक ही ईश्वर 'अल्ला' पूजा के योग्य है। उन्होने उनका अपनी कुरीतियो को त्याग देने और उनका धम स्वीकार करने के लिए भी प्रोत्साहित किया। अनेको ने उनकी बात मान ली और अब उनकी विजय पूण तथा निश्चित हुई। वे घोर परिश्रम तथा सयम से जीवन यापन करने लगे। अबाध रूप से धम-प्रचार करना, विरोधियो से सघर्ष करना और सच्चे दीन को फलाना यही उनकी दिनचर्या थी। वे इतने कत्तव्यनिष्ठ थे कि अपने जीवन के अतिम दिनो तक मसजिदो में उपदेश देते रहे। अत में वे बीमार पडे और ८ जून सन् ६३२ ई० में उनकी मृत्यु हो गई। उनके जीवन का अन्तिम दृश्य बडा करुणापूण है। पैगम्बर साहब के अशक्त और निर्जीव से शरीर को अपने कोमल अक में भरे उनकी युवती प्रियतमा आयशा इस प्रकार प्रार्थना करने लगी—

"हे ईश्वर, तू मनुष्य की बात सुनता है, मेरे स्वामी के रोग को दूर कर! क्योकि तू बडा चिकित्सक है, तेरे अतिरिक्त अन्य उपचार करनेवाली कोई शक्ति नही, और तेरे उपचारो के सामने कोई रोग ठहर नही सकता।"

परन्तु रोगी की दशा में किसी भी प्रकार से कोई सुधार नहीं हुआ। उनके हाथ अकड़ते गये और अन्त में उन्होने उस ससार को सवदा के लिए त्याग दिया, जिसमें उन्होने अपने विश्वास और सच्चाई से इतनी हलचल उत्पन्न कर दी थी। उनकी मृत्यु से उनके अनुयायी बडे चितित और किंकर्त्तव्य-विमूढ़ से हो गये।

मुहम्मद साहब के सिद्धान्त बडे सरल थे। वे 'अल्लाह' (ईश्वर) में विश्वास करते थे। वही सबका सहारा है, उसके कोई सतान नही और न वह किसी की संतान है। उसके समान दूसरा कोई नही है। उन्होने कहा कि मैं उस अल्लाह का

पगम्बर हूँ। उसका हुक्म मनुष्य को सुनाने के लिए ही म ससार में आया हूँ'। इस प्रकार इस्लाम का मूल सिद्धान्त यह है कि 'एक अल्लाह को छोडकर दूसरा ईश्वर नही है और मुहम्मद साहब उसके पगम्बर है।' वे जिस जोश तथा जिस भक्ति के साथ उपदेश देते थे, उसका श्रोताओ के ऊपर बडा प्रभाव पडता था और वे बडी श्रद्धा से उनकी बातें सुनते थे। उनके सिद्धान्तो का व्यावहारिक रूप यह था —

"पूव अथवा पश्चिम की ओर मुँह कर लेना धमपरायणता नहीं ह। सच्चा धमपरायण व्यक्ति वह है जो अल्लाह म, कयामत में (अतिम दिवस) फरिश्तो में, धम-ग्रन्थो में और पगम्बरो में विश्वास रखता ह और उस अल्लाह के नाम पर अपनी सम्पत्ति अपने कुटुम्बियो को, अनाथो और दीन-हीनो को, यात्रियो को और याचको में बाट देता है और जो दासो को स्वतत्र कर देता ह, नियम से पूजा करता है और दरिद्रो को यथावश्यक दान देता है। वह अपने वचन का पालन करता ह और सकट तथा विपत्ति में धैय धारण करता है।'

पैगम्बर साहब ने अपने धर्मावलम्बियो के पाँच कत्तव्य बतलाये ह, जिनका पालन करना अनिवाय है। वे इस प्रकार ह—(१) कल्मा—धमस्वीकृति, (२) नमाज—प्रायना (३) जकात या सदका (एक प्रकार का भिक्षा-कर) (४) रमजान—उपवास और (५) हज—मक्का की मसजिद के लिए तीथ यात्रा। कलमा में ऐकेश्वरवाद की घोषणा या और मुहम्मद साहब के धम प्रचार मे निष्ठा की स्वीकृति थी। इसके पढने से मनुष्य इस्लाम के विशाल भ्रातृ परिवार म प्रवेश पाने का अधिकारी हो जाता ह और प्रत्येक मुस्लिम के लिए इसका कम से कम एक पाठ अनिवाय ह। नमाज अरबी भाषा म ही पढी जानी चाहिए। नमाज दिन मे पाँच बार नियत समय पर पढी जानी ह–प्रात, मध्याह्न अपराह्न, सध्या और रात म सूयास्त के लगभग एक घटे पश्चात्। शुक्रवार को मध्याह्न की सावजनिक नमाज प्रत्येक युवक (पुरुष) के लिए अनिवाय ह। यह नमाज मसजिद म पढी जानी चाहिए। उसम कम से कम चालीस धमावलम्बियो का भाग लेना आवश्यक ह। इसका सचालन भी इमाम द्वारा होना चाहिए। सदकाब एक प्रकार का दान ह, यह सम्पत्ति के अनुसार निश्चित किया जाता है।

इसका उपयोग इस प्रकार के पुण्य कर्मों में होना चाहिए, जैसे रोगी की सेवा-शुश्रूषा, निधनो की सहायता, दासो की मुक्ति, यात्रियो की सुविधा तथा जिहाद में लगे हुए लोगो के हितो की रक्षा। उपवास रमजान का बडा पवित्र कर्त्तव्य माना जाता है। यह प्रात काल से प्रारम्भ होता है और सध्याकाल तक रक्खा जाता है। बीच में कुछ भी खाया पिया नही जा सकता। मक्का के लिए तीर्थ-यात्रा भी पवित्र कर्त्तव्य है जिसका पालन मुसलमानो के लिए आवश्यक है। कुछ दिशाओ में उपवास तथा हज (मक्का के लिए तीर्थ-यात्रा) से मुक्ति पाने की स्वीकृति कुरान शरीफ से प्राप्त है।

अन्य धर्मों की भाँति इस्लाम में भी अनेक सम्प्रदाय है, सुन्नी और शिया दो प्रधान वर्ग है। ७५ प्रतिशत मुसलमान सुन्नी है, इनमें निम्नाकित भिन्न भिन्न तत्त्वज्ञानियो की परम्परा में है —

१—अबू हनीफा—इनके अनुयायी तुर्की, मध्य एशिया, अफगानिस्तान तुर्किस्तान तथा भारत में अधिकता से पाये जाते है।

२—इमाम मुहम्मद—ये शाफी साहब कहलाते है, इनके अनुयायी मिस्र, अरब, दक्षिण भारत और उत्तर-पश्चिम फारस में पाये जाते है।

३—इमाम मलिक—इनके अनुयायी उत्तर भारत में पाये जाते है।

४—इमाम अहमद—इनके अनुयायी थोडे से ही है और अरब में ही पाये जाते है।

शिया और सुन्नियो में जो प्रधान अतर है वह पैगम्बर साहब के उत्तराधिकार के विषय में है। सुन्नी प्रथम तीन खलीफाओ को पैगम्बर साहब के न्यायपूर्ण उत्तराधिकारी समझते है और शिया उनको अनधिकारी समझते है। उनके मत में केवल हजरत अली ही वैध खलीफा थे और पैगम्बर साहब के उपदेशो को विवृत्त करने के वह ही एकमात्र अधिकारी थे। वे बारह इमामो में विश्वास रखते है—अतिम इमाम का प्रादुर्भाव भविष्य में होगा।

पैगम्बर साहब की मृत्यु से उनके अनुयायियो को भीषण आघात पहुँचा। कितने तो विश्वास ही न करते थे कि ऐसे असाधारण व्यक्ति की भी मृत्यु हो

सकती हैं। उमर तक को विश्वास न होता था कि मृत्यु के निर्दय हाथ उनके बीच में से उनको सहसा छीन ले जा सकते हैं। उत्तराधिकार के प्रश्न पर विवाद होने लगा। पैगम्बर साहब ने कोई उत्तराधिकारी घोषित नहीं किया था। अतः कठिनाई वास्तविक थी। मुहाजरीन अर्थात मक्का के प्रवासी उनके स्थान पर तुरन्त कोई नियुक्ति करना चाहते थे। वे, अबूबक्र के पक्ष में थे। अबूबक्र पैगम्बर साहब के श्वसुर थे और उनके परिवार के वयोवृद्ध सदस्य थे। औस और खिजराज के कबीलों ने विरोध का नेतृत्व किया। ये अंसार कहलाते थे। वे दो इमामों को निर्वाचित करना चाहते थे—एक अपने लिए और दूसरा कुरैश और मुहाजरीन के लिए। इमामशाही के इस प्रकार के विभाजन का उमर ने घोर विरोध किया। उन्होंने अबूबक्र के हाथ में हाथ मारकर इस समस्या का अंत किया। यह उनके निर्वाचन तथा उनके प्रति श्रद्धा का परिचायक था। उनके अनुयायियों ने जय घोष के साथ इस निर्णय को स्वीकार किया और अबूबक्र 'खलीफा' अर्थात् पैगम्बर साहब के प्रतिनिधि निर्वाचित हो गये। पैगम्बर साहब के जामाता हजरत अली के अधिकारों की भी माँग उठी। फतीमा ने इस धारणा से उन्हें उत्साहित किया कि वे ही पैगम्बर साहब के वैध उत्तराधिकारी हैं। परन्तु लोगों ने उनकी बात नहीं सुनी। आयशा तथा अन्य व्यक्तियों ने उनको चेतावनी दे दी थी कि वे हजरत अली की बात न सुनें। हजरत अली के विरुद्ध अबूबक्र साहब की खलीफा नियुक्ति ने स्वतन्त्र निर्वाचन का सिद्धान्त स्थापित कर दिया। समस्त मुस्लिम जाति की इसमें स्वीकृति थी।

अबूबक्र ने पितृसत्ताक मार्ग अपनाया। वे सरल तथा धार्मिक जीवन व्यतीत करते थे। उनकी खिलाफत में मेसोपोटामिया तथा सीरिया में मुसलमानों की विजय-पताका फहराने लगी। उनके बाद उमर खलीफा हुए। उनका निर्वाचन बिना किसी मतभेद के हो गया। वयोवृद्धता का सिद्धान्त मान्य हो गया। अपने पूर्ववर्ती खलीफा की भाँति उमर भी अब अपने श्वसुर पैगम्बर के परिवार में सबमें बड़े थे। उन्होंने भी देश की पितृ-सत्ताक रीतियों का पालन किया और अपनी सफलताओं से खिलाफत को बड़ी शक्तिशाली संस्था बना दिया। खिलाफत की महानता की सच्ची नींव डालनेवाले वे ही हैं। उन्होंने सुदूर देशों को जीत कर साम्राज्य की सीमा पूर्व में अफगानिस्तान और पश्चिम में ट्रिपाली तक पहुँचा दी।

उनमें राज्य प्रबन्ध की भी अद्भुत प्रतिभा थी। उन्होंने ऐसी संस्थाओं को जन्म दिया, जिनका अनुसरण सभी मुस्लिम प्रदेशों ने किया। नमाज पढते समय एक दिन एक हत्यारे ने उनके प्राणघातिकी छुरी भोक दी, परन्तु मृत्यु तत्काल ही नहीं हुई। उन्होने राज्याभिभावको की एक समिति मनोनीत कर दी। उसमें पैगम्बर साहब के बडे प्रभावशाली सहकारी ही सम्मिलित किये और अपने पुत्र अब्दुरहमान को जान-बूझकर खिलाफत में नही रक्खा। इससे यह प्रकट है कि वंशागतराजतंत्र बनाने की बात न तो खलीफा के मन में थी और न उनके सहकारी राज्याधिकारियो के मन में ही। उमर साहब के बाद हजरत उसमान खलीफा हुए। आयु कम होने के कारण हजरत अली फिर रह गये। उसमान ही पहले खलीफा थे, जिन्होने अपने लिए सम्पत्ति सचित करना प्रारम्भ किया और अराजनैतिक काय किये। असरो को यह बात बहुत बुरी लगी। उन्होने उनके विरुद्ध षड्यंत्र किया, जिसमें खलीफा मार डाले गये। अब पगम्बर साहब के जामाता और चचेरे भाई को खिलाफत का सम्मानित पद मिला। परन्तु कुछ असतुष्ट लोगो ने उनके विरुद्ध लोगो को भडकाना प्रारम्भ कर दिया और सीरिया के शासक अधिकार-लोलुप मुआविया ने उनकी कुचालो में सहायता दी। उन्होने अली का राज-सत्कार नहीं किया और उनके निर्वाचन को अमान्य बतलाया। इसके पश्चात् जो गृह-युद्ध हुआ, उसमें मुआविया की विजय हुई और हजरत अली मार डाले गये। उनके स्थान पर उनके पुत्र हसन की नियुक्ति हुई। परन्तु वे अशक्त और अनिश्चित तथा अव्यवस्थित प्रकृति के मनुष्य थे। उन्होंने मुआविया के लिए अपने अधिकारो को छोड दिया। क्रेमर महोदय लिखते हैं कि हजरत अली की मृत्यु के साथ-साथ पितसत्ताक खिलाफत का अत हो गया और एक ऐसे युग का प्रारम्भ हुआ जिसमें राजनीतिक शक्ति मक्का के अभिजात पूंजीपति वग के हाथ में चली गई। खिलाफत की राजधानी अब मदीना से दमिश्क हो गई।

उमैयावंश—उमयाओं के खलीफा का सम्मानित पद प्राप्त करने से मुस्लिम राज्य-व्यवस्था में भी परिवत्तन हो गया। यद्यपि मुआविया अपने लिए खलीफा तथा 'दीन'-भक्तो के नायक की उपाधि शासकीय रूप से प्रयोग करते रहे, परन्तु उन्होंने सवप्रथम प्रत्यक्ष रूप से यह कहा कि मैं इस्लाम का राजा हूँ। अत उनके पश्चात् खिलाफत वंशानुगत हो गई और निर्वाचन बन्द हो गया। मुआवियाओं ने

जो उदाहरण उपस्थित कर दिया उसका अनुसरण अब्बासिया काल तक चलता रहा। अब्बासिया वंश की नीति शीया हो गई। यथानुसार उत्तराधिकार सर्वमान्य न हो सका और पिता के पश्चात् पुत्र बिना किसी विरोध के खलीफा होते गये यद्यपि सैद्धान्तिक रूप से निर्वाचन का पद अब भी निर्वाचित था। उमय्यावंश का दृष्टिकोण प्रधान रूप से अरबी ही था। वे अरबों को दूसरों से ऊँचा रखते थे। उनके सेनानायक तथा शासक अरब ही थे और अरबी ही उनकी राजभाषा थी। अरब की मुद्राओं का ही प्रचार होने लगा।

अब मुसलमान लोग लौट गए। अब खिलाफत की राजनीति में धर्म की प्रधानता रह गई। उनका ध्येय साम्राज्यवादी हो गया। उन्होंने साम्राज्य का निर्माण कर लिया और शासन के मदस्वाभिमान तथा शान-शौकत में मग्न रहने लगे। सुदूर देशों पर विजय पाने के लिए वे प्रयत्न करने लगे। अधीनों के बर्बरों का विरोध दमन कर दिया गया और मुहम्मद बिन कासिम ने हिन्दुस्तान के सिंध प्रदेश पर आक्रमण किया। पश्चिम और पूरब में इस्लाम अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया। स्पेन की विजय का आयोजन हुआ और उसकी विजय भी पूर्ण हुई। सर और आमू नदियों के बीच का प्रदेश खिलाफत के अधिकार में आ गया। उमय्याओं ने बड़ा श्रीसम्पन्न तथा महान् राज-दरबार बनाया और राजसी ठाट बाट ग्रहण कर लिये। परन्तु उनकी अंध स्वदेशाभिमानिता के कारण उनका पतन होने लगा। वे अरबों से इतर लोगों को घृणा की दृष्टि से देखते थे और उनको उच्च राज-पद नहीं देते थे। इस प्रकार उनमें तथा उनकी प्रजा के बीच बड़ी गहरी खाई खुद गई। परवर्ती उमय्यावंशावतार चरित्रहीन तथा साहसहीन थे और उन्होंने अपने उच्च पद की प्रतिष्ठा बहुत कुछ खो दी। विद्रोह होने लगे, रक्त बहने लगा, युद्ध छिड़ गये। इससे उमय्याओं की शक्ति नष्ट हो गई और अब्बासियावंश के अधिकार जमाने का मार्ग प्रशस्त हो चला। उमय्यावंश के अंतिम खलीफा को एक खुरासानी नेता अबू मुस्लिम ने हरा दिया और बगदाद में बनी अब्बास का प्रभुत्व स्थापित कर दिया। अब बगदाद ही साम्राज्य की राजधानी हो गई। राजवंश के परिवर्तन होने से राजनीतिक सिद्धान्तों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ और सामाजिक, शिक्षा तथा सत्व से ही उनकी राजनीति प्रेरणा पाती रही।

अब्बासियावंश—अब्बासियों ने ७४९ ई० से १२५६ ई० तक राज्य किया। उनके हाथ में शक्ति आने से अरबों का महत्त्व कम हो गया और ईरानियों की प्रभुता बढ़ चली। अरबों तथा अन्य देशवासियों में जो भेदभाव था, वह मिट गया। अब ईरानी लोग बहुत बड़ी संख्या में राज्याधिकारी नियुक्त होने लगे और राजदरबार में ईरानी रीति रिवाजों का प्रचलन हो गया। खलीफा फारस के प्राचीन राजाओं के ठाट-बाट तथा सुयश के अभिलाषी हो गये। मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों के लोग भी कभी-कभी मन्त्रित्व (विजारत) का उच्च पद पाने लगे। धार्मिक मामलों में पूरी स्वतन्त्रता तथा सहनशीलता का व्यवहार होने लगा। प्रजा के साथ न्याय तथा दयालुता का व्यवहार होता था। अब्बासिया वंश में अनेक योग्य व्यक्ति उत्पन्न हुए, इनमें खलीफा हारून उल रशीद सबसे प्रसिद्ध है। उनके राज्य में तुर्क लोग सर्वप्रथम सेना विभाग में उच्च पदों पर नियुक्त किये गये। हारून के राजदरबार में विद्वान कलाविद, विज्ञान वेत्ता आदि एशिया के सभी देशों से आते थे और आदर पाते थे। उनकी प्रतिभा से उसका दरबार अद्भुत आभायुक्त रहता था। कालान्तर में तुर्की प्रभाव भय का कारण हो गया। एक खलीफा ने तीन सहस्र तुर्कों को अपना अंग रक्षक नियुक्त किया। क्रमशः तुर्क शक्तिशाली हो गये और उनकी स्थिति वही हो गई जो रोमन सम्राटों के सम्बन्ध में 'प्रेटोरियन गार्डस' की थी। खलीफा उनके हाथ में केवल कठपुतली रह गये।

धीरे धीरे साम्राज्य में केवल बगदाद का सूबा रह गया। खलीफाओं को जब राजनीतिक शक्ति कम रह गई तो उन्होंने धार्मिक तथा आध्यात्मिक अधिकारों की बात छेड़ी। परन्तु सन् १२५६ ई० में चंगेज खाँ के पौत्र हलाकू ने बगदाद पर आक्रमण किया और तत्कालीन खलीफा अल मुस्तासिम को मार डाला। बगदाद की खिलाफत का इस प्रकार अंत हो गया। अल मुस्तासिम के वंश के बचे हुए लोगों ने मिस्र के सुल्तान मामलूक के दरबार में शरण ली। अपनी परतन्त्रता की दुरवस्था में भी खलीफा समस्त मुस्लिम संसार से अपने आध्यात्मिक अधिकारों की माँग करते रहे और पाते भी रहे। मुहम्मद बिन तुगलक ऐसे शक्तिशाली शासक

द्वारा उनके इस आध्यात्मिक अधिकार की स्वीकृति इस बात का प्रमाण है।

खिलाफत की शासन-व्यवस्था—पहले चार खलीफाओं की कोई सुसंस्कृत शासन-पद्धति न थी। उनकी समस्याएँ साधारण थीं और वे अपने कर्तव्यों का पालन धर्मपरायणता तथा प्रजोपकार की दृष्टि से करते थे। वे साधारण घरों में रहते थे और राजसी ठाट-बाट तथा आडम्बर से उनको बिलकुल प्रेम न था। वे न मंत्री रखते थे और न अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ ही। राज्य-प्रबंध की छोटी-छोटी बातों को भी स्वयं ही देखते थे। शासन-व्यवस्था धार्मिक दृष्टि से ही होती थी, परन्तु जब इस्लाम के साम्राज्य का विस्तार दूर-दूर तक हो गया, तो यह सरल शासन-व्यवस्था अनुपयुक्त सिद्ध होने लगी। खलीफा उमर ने शासन-पद्धति को अधिक व्यवस्थित किया और साम्राज्य के विभिन्न भागों में अनेक नई संस्थाएँ स्थापित कीं। उमैयाओं के राजत्वकाल में अरबों की प्रधानता हो गई, परन्तु जब अब्बासियों का समय आया तो खिलाफत में ईरानियों का प्रभाव सर्वोपरि हो गया।

खलीफा मुसलमानों के केवल राजनीतिक दृष्टि से ही उनके स्वामी न थे, वरन् ईश्वरीय विधान द्वारा नियुक्त उनके धर्म गुरु भी थे। राज्याधीश उन्हें भेंट देते थे, जिसका नाम बेअत था। उनकी स्वामिभक्ति की शपथ लेना बड़ा पुण्यकर्म समझा जाता था। मुस्लिम धर्मावलम्बियों की दृष्टि में खलीफा का पद बड़ा पवित्र था। उनमें सभी अधिकार केंद्रीभूत थे। राज्य के सभी विभागों के खलीफा ही प्रधान थे, 'बेतुल माल' पर उनका ही नियंत्रण था। वे ही प्रधान न्यायाध्यक्ष थे। राज्य की सब शक्तियाँ उन्हीं में केन्द्रीभूत थीं। वे ही सब पदाधिकारियों को नियुक्त करते थे। उनके नीचे वजीरों के दो पद थे—विजारत-अल-तफवीज (असीम मंत्री) और विजारत-अल-तनफीज (ससीम मंत्री)। ये मंत्री विभिन्न विभागों के अध्यक्ष थे। मुख्य विभाग ये थे—दीवान-अल-खिराज (कर), दीवाने जंग (युद्ध), दीवान-अल-जमान (लेखा), दीवान अल-बरीदा (डाक) दीवान-अल रसील (सचिव-सम्बन्धी) दीवान-अल-अता (दान) आदि। विषय-शासन खलीफाओं के अधीन विषयपतियों के द्वारा होता था। काजी न्याय करते थे। प्रधान काजी

'काजी-उल-कुज्जात' कहलाता था। 'आदिल' उनकी सहायता करते थे। अपराधियों का न्याय 'साहिब-अल-मजालिम' के हाथों में था। इन पदाधिकारियों के अतिरिक्त मुफ्ती अर्थात्, न्यायविशेषज्ञ भी थे जो कानून समझाते थे। शान्ति स्थापन (पुलिस) का काम कोतवाल और मुहतसिब करते थे। मुहतसिब समाज के नैतिक आचरणों की भी देख रेख करते थे। राज-कोष की पूर्ति निम्न साधनों से होती थी—

१ उश्र (दसम)—यह मुसलमानों की भूमि पर लगता था।

२ खिराज—यह कर उस भूमि पर लगता था जो मुसलमानों पर अन्य विधर्मियों से आई थी। भूमि की उत्तमता के साथ-साथ यह कर अलग-अलग था।

अलाउद्दीन ने इसे ५० प्रतिशत कर दिया था। मुहम्मद तुगलक ने दोआब में इसे और बढ़ा दिया था। अकबर केवल उपज का ⅓ भाग किसानों से लेता था।

३ सदका अथवा जकात—केवल मुसलमानों पर लगता था। सदका कुरान शरीफ में भी स्वीकृत है। एक सुरा में कहा है, 'नमाज पढ़ो और सदका दो' अन्यत्र कहा है, 'सदका के लिए ईश्वरीय आदेश है, जिसको धनिकों से लेकर दरिद्रों में बाँटना चाहिए।'

४ खुम्स—(युद्ध की लूट) यह युद्ध में लूटी हुई सामग्री का ⅕ भाग होना चाहिए। ⅘ भाग मुसलमान सिपाहियों में बाँट देना चाहिए।

५ जजिया विधर्मियों पर लगाया जाता है। (जिम्मी) वे सनिक नौकरी से मुक्त रहते थे। मुस्लिम शासकों पर उनकी रक्षा का भार था।

ये धार्मिक कर कहलाते हैं। इनके बड़े-बड़े करों के अतिरिक्त खलीफा अन्य कई प्रकार के उप-कर तथा शुल्क लेते थे। उच्च तथा साधारण सभी प्रकार के पदाधिकारियों से भेंट ली जाती थी।

अब्बासियों के राजत्व-काल में सरकार की राजनीति पर ईरानी आदर्शों का बहुत प्रभाव पड़ा। वजीर का प्रभाव बहुत बढ़ गया। अपने महत्त्व में एक प्रकार

से खलीफा की आत्मा का दूसरा रूप ही हो गया और पूर्ण सत्ताधिपति के अधिकार भोगने लगा।

खलीफाओ का एक डाक विभाग भी था। इसका प्रधान 'साहिब उल-बरीद' कहलाता था। उसका काम था कि वह खलीफा का सभी महत्त्वपूर्ण और आवश्यक बातो की सूचना देता रहे। जन-साधारण के लिए डाक भेजने की कोई व्यवस्था नही थी। यह विभाग केवल राज-सेवा करता था।

सेना विभाग बडा सुव्यवस्थित था। खलीफा उमर बडे कट्टर अरब थे। वे सेना के प्रबन्ध में राष्ट्रीय नीति का अनुसरण करते थे। सेना विभाग 'दीवान-ए-अज कहलाता था। उसमें दस प्रकार के सेना-नायक थे। कुछ के अधिकार असीम थे और कुछ के ससीम। इसी प्रकार योद्धाओ की भी दो श्रेणियाँ बनी हुई थी—नियमित और स्थायी सेना तथा स्वयसेवक सेना। सभी देशो के महत्त्वपूर्ण स्थलो पर अरबो की छावनियाँ थी। बसरा और कूफा की बडी बडी छावनियाँ उनकी युद्ध विद्या तथा सामरिक महत्त्व के स्थानो को पहचानने की अदभुत कला का ज्वलन्त प्रमाण है। पैदल योद्धाओ के पास बडी बडी ढालें, लम्बी लम्बी बरछियाँ और भाले रहते थे। वे व्यूह रचना में सबसे आगे रक्खे जाते थे। उनके पीछे घुडसवार रहते थे और घुडसवारो के पीछे गोला फेंकने के मजनीक आदि विविध यत्र रहते थे तथा ऐसी ही अन्य वस्तुएँ रहती थी। युद्धक्षेत्र में सेना पाँच भागो में विभक्त रहती थी—मध्य, दक्षिण अग, वाम अग, अग्रानीक तथा पृष्ठानीक। पाच भागो में यह विभाजन 'खामिस कहलाता था।

कला-कौशल, साहित्य तथा विज्ञान के क्षेत्रो में अरबो ने बहुत काम किया। उनमें अनेक विद्वान् उत्पन्न हुए, जिन्होने मनुष्य ज्ञान की प्रत्येक शाखा का अध्ययन किया। उनके ग्रन्थ अब भी आदर के साथ पढे जाते है। यूरोप की सभ्यता भी बहुत कुछ अशो में अरबो की सस्कृति की ऋणी है।

भारत में इस्लाम का प्रसार—इस्लाम बडी शीघ्रता से ससार के विभिन्न भागो में फैलने लगा। इस्लामी साम्राज्य में विभिन्न जातियो और कबीलो के लोग सम्मिलित थे। पश्चिमी एशिया, मध्य एशिया अफ्रीका स्पेन, भारत और ससार

के अन्य भागो मे यह फल गया। लागा की ऐसी धारणा सी ह कि भारत में इस्लाम धर्म का प्रचार विजेताओ की शक्ति तथा अत्याचार के कारण ही हुआ। यह विचार ठीक नही है, क्योकि मुसल्माना द्वारा विर्धामियो के पूण रूप से सपीडन का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नही मिलता। सर टामस आनल्ड का कथन है कि इस्लाम का धम-प्रचार न तो अत्याचारी के निदय कृत्यो का परिणाम ह और न मुस्लिम योद्धा के उस काल्पनिक रूप के कारण हुआ ह जिसमें वह एक हाथ में तलवार और दूसरे में कुरान लिये हुए चित्रित किया गया है। उनके धम-प्रचार का मुख्य कारण उनके उपदेशको का अथक परिश्रम तथा उनके व्यापारियो की कायक्षमता है, जिन्हाने इस भूमडल के कोने काने में अपने धम की वाणी सुनाई।

भारत म सबसे पहले मुसलमान आये, वे सौदागर थे। वे व्यापार के लाभ से आकर्षित होकर मलाबार तट पर पहुँचे। पूर्वी और पश्चिमी घाटा के हिन्दू राजाओ की सहनशील नीति से उनके काम में बडी सुविधा हुई। कालीकट के जमोरिन ने निम्न श्रेणी के लोगा को इस्लाम धम स्वीकार करने के लिए स्वय प्रात्साहित किया जिससे उन्हे अपने जहाजो के लिए पर्याप्त नाविक मिल जायें। मुस्लिम धम प्रचारका ने व्यापारिया की सहायता की और अन्य साधनो से भी अपना धम फलाया। महमूद गजनवी के बाद मुस्लिम धमप्रचारका का भारत में ताँता लग गया। नूरुद्दीन जो नूर सतगर के नाम से विख्यात ह, सिद्धराज के राजत्वकाल में (१०९४-११९३) गुजरात में आये थ। उन्होने कोरी, कुनबी और खरवार जातिया को मुसलमान बनाया। तेरहवी शताब्दी में बुखारा का सयद जलालुद्दीन (११९०-१२९१) उच्छ और सिन्ध में बस गया। उसने भी अनेको को मुसलमान बनाया। इनमें सबमें विख्यात अजमेर के शेख मुईनुद्दीन चिश्ती थे। उनका प्रभाव राजपूताना के विस्तत भूखड में तथा भारत के अन्य भागो में भी फल गया। मुसल्माना के सूफी सत लोगा में बस गये। उनके पवित्र जीवन तथा आध्यात्मिक विचारा से अनेक हिन्दू उनकी ओर आकर्षित हुए और उनके शिष्य हो गये। सूफी रहस्यवादी सता का सर्वेश्वरवाद भारतवासिया के बडा अनुकूल था। अत उनके अनुयायिया की सख्या दिन दिन बढन लगी। इनम चिश्तिया का सम्प्रदाय सबसे अधिक प्रसिद्ध था, जिसमें मुईनुद्दीन चिश्ती पाकपाटन के फरीदु-

द्दीन शकरगज दिल्ली के निजामुद्दीन औलिया और नासिरुद्दीन चिराग और सीकरी के शेखसलीम चिश्ती सबसे अधिक विख्यात ह। इन सतो का तत्कालीन राजाओ और समाज पर बडा भारी प्रभाव था। उनके उपदेशो का हिन्दू और मुसलमान दोना में समान आदर था। अन्य प्रसिद्ध सम्प्रदाय सुहरावर्दी, शत्तारी, कादरी और नक्शबन्दी थे। जिन लोगो के बीच में वे रहते थे उनमें वे मुस्लिम धम का प्रकाश फैलाते थे। बगाल में सूफियो को बडी सफलता मिली। परन्तु उत्तरी भारत में ब्राह्मणो के प्रभाव से इस्लाम के प्रचार की गति मद और कठिनाइया से पूण ही रही। बगाल के उपेक्षित हिन्दू-समाज के लिए इस्लाम उच्च वग के हिन्दुआ के अत्याचार से मुक्ति की आशा लेकर आया।

मुस्लिम धम की सरलता भी उसकी सफलता का एक कारण हुआ। इस्लाम धम के अनुयायी को बहुत विद्वान् हाने की आवश्यकता नही है। उसमें काई विशेष कमकाड भी नही होता, जिसके लिए विशेषज्ञ पडितो और पुरोहितो की आवश्यकता पडती हा। जो पाँच वक्तव्य पगम्बर साहब ने मुसलमानों के लिए बनाये ह, वे एकता के बधन-सूत्र ह। उनके कारण सब मुसलमान बिना किसी भेद भाव के आपस में भाई-चारे का अनुभव करते है। मुसलमानो के साथ नित्य प्रति के सम्पक के कारण लोगो के दृष्टि-कोण में भी परिवत्तन हो गया होगा और कदाचित् अधिकाश ने धम-परिवतन में कोई कठिनाई भी अनुभव न की होगी। इसमें सन्देह नही कि इन्ही कारणा से भारत में इस्लाम का प्रचार हुआ परन्तु इनमें राजनीति-शक्ति के प्रभाव को सम्मिलित न करना भी भूल होगी। वभव तथा उन्नति का लोभ भी बडी साधारण सी बात ह। इसका प्रभाव अवश्य पडा होगा। जब मुसलमानो की शक्ति देश में स्थापित हो गई तो उससे लाभ उठाने की इच्छा लोगा में होना स्वाभाविक ही था, और जो लोग इसके लिए प्रयत्नशील हुए वे मुस्लिम विचारो और विश्वासो से बडे प्रभावित हुए। मान, धन, पदाधिकार के लोभ से बहुत से गुणवान् व्यक्तिया ने अपना धम छोडकर इस्लाम धम स्वीकार कर लिया होगा। हिन्दू-समाज में अनेको सदस्या के लिए सम्मानित पद प्राप्त करना असम्भव था। इन लोगो का इस्लाम ने भुजाएँ खोलकर स्वागत किया क्योकि उसमें महतर और राजा पद अथवा धन के बिना किसी भद भाव के एक साथ पूजा कर सकते हैं। भारत में इस्लाम का इतना अधिक आकर्षण

उसके भ्रातृभाव के कारण हुआ है, जो अपने अनुयायियो की समानता को स्वीकार करता है। आनल्ड का यह कथन बिलकुल सत्य है कि भारत में इस्लाम की शक्ति का प्रधान कारण उसमें भेद-भाव का अभाव है। इसी के कारण अनेक हिन्दू मुसलमान बन गये।

हिंदू और मुसलमानो के सम्पक का परिणाम बडा महत्त्वपूण हुआ*। इससे दो धर्मों और सस्कृतियो का अपूव योग हुआ। उत्तर भारत के नगर-निवासियो के आचरण, रहन-सहन तथा भाषा पर इसका बड़ा प्रभाव पडा।

सहायक ग्रन्थ

क्रमर—आरिएट अडर दी कलिपेस (खुदाबख्श का अँगरेजी अनुवाद)
अमीर अली—हिस्ट्रीऑफ दो सरसन्स।
अमीर अली—स्प्रिट ऑफ इस्लाम।
आनल्ड—दी कलीफेट।
खुदाबख्श—एमेज इन इस्लामिक सिविलीजेशन।
लाम—इस्लाम।
आनल्ड—प्रीचिग आफ इस्लाम।
टाइटस—इस्लाम इन इडिया।
डेनीसन रौस—इस्लाम।

---

*भारत को इस्लाम से जो लाभ हुए, उनका साराश सुप्रसिद्ध इतिहासकार सर जदुनाथ सरकार ने इस प्रकार दिया है—

१—ससार के अन्य देशो से सम्पर्क फिर मे स्थापित हुआ—भारतीय नौ-सेना का निर्माण हुआ और सामुद्रिक व्यापार बढ़ चला जिन दोनो का चोल के पतन के बाद अत हो चुका था।

२—देश के भीतर एक विस्तृत भूभाग पर शान्ति की स्थापना।

३—राज्य प्रबंध की एकरूपता।

४—सामाजिक व्यवहार और शिष्टाचार तथा पोशाक में एकरूपता।

५—भारत-सरैसनिक कला की उत्पत्ति, जिसमें हिन्दू और इस्लामी दोनो आदर्शो का योग है।

६—एक सार्वजनिक भाषा अथवा रेखता की शैली—एक सरवागी गद्य।

७—दिल्ली और आगरे के दरबार के समीप देश भाषाओं में साहित्यसृजन।

८—एकेश्वरवाद की स्थापना और सूफी धर्म।

९—ऐतिहासिक महत्त्व के ग्रन्थ जिनसे मध्यकाल के इतिहास का पता लगाने में बड़ी सहायता मिली है।

१०—सामरिक कला में उन्नति।

११—आदतों और प्रकृति में संस्कार।

मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व उत्तर भारत
गजनी
पेशावर
काश्मीर
लाहौर
कांगड़ा
मुल्तान
उच्च
भटिंडा
दिल्ली
जैसलमेर
मथुरा
कन्नौज
ग्वालियर
जालौर
बनारस
धार
द्वारका
सोमनाथ
प र मा र
पा ल
से न
चालुक्य राज्य
मलखेद
चोल राज्य
काञ्ची
मदुरा
अ र ब
सा ग र
ब गा ल
की
खा डी

अध्याय २

मुसलमानो से पहले भारत की दशा

सन् ६४७ ई० में हर्ष की मृत्यु के पश्चात् भारत अनेक स्वतत्र राज्यो में विभक्त हो गया, जिनमें आपस मे युद्ध हुआ करते थे। इनमें से अधिकाश राज्यो की स्थापना ऐसे राजपूत वीरो ने की थी जो अपने शौय के लिए प्रसिद्ध थे और युद्ध कला में दक्ष थे और लडना ही जिनका बाना था। इन राज्यो मे कन्नौज प्रधान था। परन्तु उसकी प्रधानता अय सभी राज्यो को माय न थी।

काश्मीर—काश्मीर हप के साम्राज्य में सम्मिलित न था, यद्यपि उसके राजा को उसने भगवान् बुद्ध का एक बहुमूल्य स्मृति चिन्ह देने के लिए विवश कर दिया था। कार्कोट वश के ललितादित्य मुक्ता पीड (७२५—५२ ई०) के राजत्व काल में काश्मीर एक सुदढ राज्य हो गया। वह बडा सुयोग्य शासक था। उसने राज्य की सीमाएँ काश्मीर और उसके निकटवर्ती प्रदेशो के बाहर तक बढाई और कन्नौज पर भी चढाई की। नवी शताब्दी के प्रारम्भ में कार्कोट वश का महत्व कम हो गया और अत में शासन उत्पल वश के हाथो में चला गया।

इस वश ने दो विख्यात राजा हुए—अवन्ति वमन और शकर वमन। शकर वमन की मृत्यु (९०२ ई०) के पश्चात् कई अयोग्य शासक हुए। उनके राजत्व काल में देश में बडी अराजकता तथा शासन की अव्यवस्था रही। अत में देश सन् १३३९ ई० में एक मुसलमान राजवश के हाथो में चला गया। सन् १५४० ई० में बाबर के चचेरे भाई प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मिरजा हैदर दगलत ने काश्मीर की घाटी को जीत लिया और अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। सन् १५५१ ई० में उसकी मृत्यु के पश्चात अराजकत फैल गई और प्रतिद्वद्वी दल कठपुतली राजे खडे करने लगे। सन् १५८६ में काश्मीर को अपने राज्य में सम्मिलित कर अकबर ने इस दशा का अत कर दिया।

कन्नौज—हप की मृत्यु के पश्चात् कन्नौज शीघ्र ही प्रसिद्ध हो चला। यशोवमन बडा शक्तिशाली शासक था। उसकी विजय वाहिनी समस्त भारत में घूम

आई और एक बार फिर कन्नौज नगरी एक बडे साम्राज्य की राजधानी बनी। काश्मीर नरेश मुक्तापीड के सहयोग से उसने तिब्बत पर चढाई की और बहुमूल्य सफलता प्राप्त की। वह विद्वानो का आश्रयदाता था। सस्कृत साहित्य का प्रसिद्ध नाटककार 'उत्तर रामचरित' का रचयिता भवभूति उसी के दरबार में रहता था। यशो वमन के उत्तराधिकारी बडे अशक्त शासक थे। प्रतिहार वश के नाग भट्ट ने उनको जीतकर अपना आधिपत्य स्थापित किया।

अरबों का आक्रमण—सातवी शताब्दी में चाच ने सिंध में एक नये राज घराने की नीव डाली। मुहम्मद बिन कासिम के नेतृत्व में अरबो ने सिंध पर आक्रमण किया। वहां का राजा दाहिर हार गया और मार डाला गया, और सन् ७१२ ई० में सिंध अरब राज्य का ही एक सूबा हो गया। इस आक्रमण का विस्तृत वर्णन अन्यत्र दिया हुआ है।

गुर्जर प्रतिहार—कन्नौज में गुर्जर प्रतिहारो का राज्य बहुत दिना तक रहा। भोज प्रथम (८३५—९०) और महेन्द्रपाल प्रथम इस वश के सबसे बडे राजा हुए। इस महेन्द्रपाल प्रथम के उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल द्वितीय ने अपने पिता के राज्य की रक्षा की परन्तु उसके पश्चात् महीपाल को राष्ट्रकूट इन्द्र ने ९१६ ई० में पराजित कर दिया। यद्यपि इन्द्र की उदासीनता के कारण उसका राज्य बना रहा, परन्तु जैजाकभुक्ति के चन्देले राजा ने उसे फिर पराजित कर दिया। कन्नौज का पतन होता ही चला गया और जब सन् १०१८ ई० में महमूद गजनवी कन्नौज पहुँचा तो प्रतिहार राजा राज्यपाल ने बिना किसी प्रतिरोध के दीनतापूर्वक आत्मसमर्पण कर दिया। उसकी इस कायरता को देखकर अन्य राजा क्रोधित हुए और उन्होने उसके विरुद्ध एक सघ बनाया। राज्यपाल की हार हुई और वह मारा गया। राज्यपाल के उत्तराधिकारी फिर शक्ति सचय न कर सके और अत में १०९० के लगभग गहरवार वश के एक राजा ने उनका अत कर दिया।

अजमेर और दिल्ली—राजपूताने में शाकम्भरी के चौहानो का एक और महत्त्वपूर्ण राजवश था। इस राज्य में अजमेर सम्मिलित था। इस वश का सबसे पहला शासक जिसका प्रामाणिक इतिहास मिलता है, विग्रहराज चतुर्थ था जो बीसलदेव चौहान के नाम से अधिक विख्यात है और जो अपनी वीरता और विद्वत्ता दोनो के लिए प्रसिद्ध है। उसने मुसलमानो से युद्ध किया, प्रतिहारो से दिल्ली

छीन ली और हिमालय से लेकर विंध्याचल तक फैले हुए एक विशाल राज्य की स्थापना की। उसके दरबार में दो प्रसिद्ध नाटक प्रस्तुत हुए 'ललित विग्रह राज' नाटक तथा 'हर केलि' नाटक। वे अजमेर के अजायबघर में अब भी सुरक्षित है। उसने अजमेर में एक कालेज भी खोला था, जिसे मुहम्मद गोरी के सिपाहियो ने नष्ट कर दिया था। इस वश में पृथ्वीराज सबसे प्रसिद्ध राजा हुआ था जिसकी वीरता की कहानियाँ भाटो द्वारा अब भी समस्त उत्तरी भारत में गाई जाती है। सन् ११८२ ई० में उसने चन्देल राज्य पर चढाई की और महोबा के परमाल राजा को भी पराजित कर दिया। उसने राजपूतो का एक सघ भी बनाया जिसने ११९१ ई० में मुहम्मद गोरी को पराजित किया था। परन्तु मुहम्मद गोरी दूसरे वर्ष फिर चढ आया और उसने राजपूतो को बुरी तरह से हराया। पृथ्वीराज पकडा गया और मार डाला गया और दिल्ली में मुसलमानो का राज्य स्थापित हो गया।

गहरवार—प्रतिहारो के पतन के बाद कन्नौज में चन्द्रदेव ने गहरवार वश की नीव डाली। जो देश आजकल उत्तर प्रदेश में है, वह बनारस तक समस्त उसके राज्य में सम्मिलित था। इस वश का सबसे शक्तिशाली राजा गोविन्द चन्द्र (१११४—६०) था। उसने सफलतापूर्वक मुसलमानो और बगाल के शत्रुओ का सामना किया। उसका पौत्र प्रसिद्ध जयचन्द्र (११७०–९३) था जिसको मुहम्मद गोरी की सेना ने हराया था। मुहम्मद गोरी के वीर सेनानी कुतुबुद्दीन ने विजय का काम पूरा किया। सन् १२०६ ई० में वह उत्तरी भारत के राजाओ का राजाधिराज बनाया गया।

चन्देले—उत्तरी भारत के दो और प्रसिद्ध राजपूत वश थे—जजाकभुक्ति (वर्तमान बुन्देलखड) के चन्देले और चेदि (वर्तमान मध्यप्रदेश) के कलचुरि। जेजा चन्देले वश का एक प्रारम्भिक राजा था। उसी के नाम पर देश का नाम जजाकभुक्ति पडा। भुक्ति का अर्थ है प्रदेश।

नवी शताब्दी तक इतिहास में चन्देले का कोई नाम नही है। इस समय नानुक चन्देल ने एक छोटा सा राज्य स्थापित कर लिया। कुछ दिन तक चन्देले कन्नौज के गुजर-प्रतिहार राजाओ के अधीन रहे और फिर दसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में स्वतन्त्र हो गये। दक्षिण के राष्ट्रकूट राजा इन्द्र के विरुद्ध कन्नौज में राजा की सहायता कर और चौहान राजकुमारी से विवाह कर हर्ष चन्देले ने अपने वश

का मान बढाया। हर्ष का पुत्र यशोवर्मन बडा प्रसिद्ध विजेता हुआ। उसने कालिंजर का दुर्ग जीत लिया और कन्नौज के राजा को विष्णु की एक बहुमूल्य मूर्ति देने के लिए विवश कर दिया। उसके पश्चात् उसका पुत्र धग राजा हुआ।

धग ने अपने पिता के राज्य को और बढाया। वह उस राजपूत सघ में भी सम्मिलित हुआ, जो गजनी के बादशाह सुबुक्तगीन के आक्रमण को रोकने के लिए जयपाल ने आयोजित किया था। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र गण्ड ने अपने पिता की युद्ध की नीति को सक्रम रक्खा। सन् १०१८ में जब सुलतान महमूद गजनी ने कन्नौज पर आक्रमण किया और जब कन्नौज के अधिराज राज्यपाल ने लज्जापूर्ण आत्मसमर्पण कर दिया तो, अपने अधिराज के इस कुत्सित कृत्य से क्रोधित होकर गड के पुत्र विद्याधर के ही नायकत्व में उत्तरी भारत के गणपतियो ने मिलकर राज्यपाल पर चढाई की थी। राज्यपाल कुछ भी प्रतिरोध न कर सका और ग्वालियर के कच्छपघट के गणपति अर्जुन के हाथो मार डाला गया। जब सुलतान महमूद ने इस अमानुषिक हत्या का हाल सुना तो वह सन् १०१९ ई० में अपराधियो को दड देने के लिए गजनी से चल पडा। परन्तु युद्धक्षेत्र में उसका सामना करने के स्थान पर गण्ड रात में ही भाग गया। कुछ वर्षों के बाद महमूद ने उस पर फिर आक्रमण किया और उसे सधि करने के लिए विवश किया, जिससे गड को कालिंजर का दुर्ग उसे दे देना पडा और उसका अधिनायकत्व स्वीकार कर लेना पडा।

गण्ड के मृत्यु की पश्चात् चन्देलो का इतिहास पडोसी राज्यो से युद्धो का ही विवरण है। चेदि के कलचुरि राजाओ ने चन्देल राजा कीर्तिवर्म देव को पराजित कर उसका राज्य छीन लिया परन्तु अपने ब्राह्मण मन्त्री गोपाल की सहायता से उसने अपनी स्थिति फिर पूर्ववत सुधार ली। चन्देलो की शक्ति मदन वर्मा के राजत्वकाल में एक बार फिर चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई। वह गुजरात के कुमारपाल और कन्नौज के गोविन्दचन्द्र का समसामयिक था। मदन के ज्येष्ठ पुत्र की उसके ही जीवन काल में मृत्यु हो गई थी, अत उसके पश्चात् उसका पौत्र परमर्दिन गद्दी पर बैठा।

परमर्दिन के सिंहासन पर आते ही चन्देलो और दिल्ली के चौहानो मे बडे घोर और लम्बे युद्ध छिड गये। सन् ११८२ ई० में पृथ्वीराज ने उसे बिलकुल

हरा दिया और उसके राज्यातगत सुदूरस्थ मदनपुर तक उसे खदेडता गया। उसने पृथ्वीराज और जयचन्द्र की उस समय कुछ भी सहायता न की जब मुहम्मद गोरी ने उन पर आक्रमण किया। सन् १२०२ ई० में उनकी भी बारी आई, जब मुहम्मद के सेनापति कुतुबुद्दीन ने कालिजरपर आक्रमण किया और उनकी शक्ति को बिल्कुल कुचल दिया। परमर्दिन ने वीरता से उसका सामना किया, परन्तु वह युद्धक्षेत्र में ही काम आया। इसके पश्चात् चन्देलो का कोई राजनीतिक महत्त्व नही रहा। चेदि के कलचुरि राजाओ की शक्ति भी इसी प्रकार क्षीण होती चली गई।

मालवा के परमार—मालवा के परमार राज्य की नीव कृष्णराज उपनाम उपेन्द्र ने नवी शताब्दी में डाली थी। प्रारम्भ में मालवा के राजा कन्नौज के गुजर प्रतिहारो के अधीन थे, परन्तु दशवी शताब्दी के अतिम भाग मे सीयक द्वितीय ने अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। मालवा राज्य में प्राचीन अवन्ति राज्य का दक्षिण में नमदा तक का बहुत बडा भाग सम्मिलित था। मालवा के परमारो, महोबा के चन्देलो, चेदि के कलचरो, गुजरात के सोलकियो और दक्षिण के चालुक्यो मे निरतर युद्ध चलता रहा। ९७४ ई० में मुज सिहासन पर आया। उसने दक्षिण के चालुक्यो को कई बार पराजित किया, परन्तु ९९३-९७ में वह इन्ही युद्धो में घायल हुआ और मर गया। उसके दरबार में पद्मगुप्त, धनजय और हलायुध ऐसे विद्वान् रचयिता आश्रय पाते थे।

इस वश का सबसे कीर्तिवान शासक मुज का भतीजा भोज (१०१०-६०ई०) था, जो बडे वीर योद्धाओ और विद्वानो के आश्रयदाता के रूप में इतिहास में विख्यात है। वह स्वय विद्वान् और कवि था। उसने धारा में एक सस्कृत महाविद्यालय खोला जिसका नाम 'सरस्वती कठाभरण' था और जिसके ध्वसावशेष अब तक पाये जाते है। इस कालेज में उसने काव्य, व्याकरण, खगोल तथा अन्य विद्याओ के अनेक ग्रन्थ पत्थरो में खुदवा दिये थे। बाद में मुसल्मानो ने इस महाविद्यालय को मसजिद बना दिया। भोपाल के दक्षिण में राजा भोज ने एक झील खुदवाई थी, जो २५० मील तक चली गई थी। बाद में मुसलमानो ने इसका पानी भी निकलवा दिया।

भोज के उत्तरकालीन जीवन में उसके शत्रु बडे शक्तिशाली हो चले। दहल के कर्ण और गुजरात के भीम ने उसे युद्धक्षेत्र में पराजित कर दिया और मार डाला। भोज की मृत्यु के पश्चात् परमार शक्ति क्षीण होती चली गई और अलाउद्दीन खिल्जी के सेनानायकों ने अंतिम राजा को मुसलमान होने के लिए बाध्य किया। सन् १३१० ई० में उन्होंने मालवा को पूर्णरूप से जीत लिया।

गुजरात के सोलंकी—वल्लभि के राजाओं के पतन के पश्चात् चपोत्कट अथवा चवडा ने बहुत दिनों तक गुजरात में राज्य किया, परन्तु नवीं शताब्दी के अंतिम भाग में वह कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहारों के साम्राज्य का अंग हो गया। पहले चालुक्य राजा साम्राज्य के अधीन रहे, परन्तु ९४३ ई० में चालुक्य राजा मूलराज (९६०-९५) ने स्वतंत्र वंश की नींव डाली जो अनहिल पटन के चालुक्य वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। तत्कालीन जैन साहित्य में इस वंश का पूरा वर्णन मिलता है। मूलराज ने आबू के परमारों को जीत लिया। वह विग्रहराज (वीसल्देव द्वितीय) के विरुद्ध भी लड़ा जिसने उसे पराजित कर दिया और उसके राज्य को तहस-नहस कर डाला। काठियावाड के सिंध, कच्छ और कथली राजाओं की सम्मिलित सेनाओं के विरुद्ध उसे और भी अधिक सफलता मिली। इस युद्ध में आबू के राजा ने बडी वीरता दिखाई थी, वह मूलराज के पक्ष में था। मूलराज ने रुद्रमहालय का विशाल मंदिर बनवाया। शिवजी का यह मंदिर सिद्धपुर में था, परन्तु वह इसे अपने जीवन काल में पूरा न कर सका। इस मंदिर में मूर्ति की स्थापना बडे राजसी ठाट-बाट से हुई थी। इसके लिए थानेश्वर, कन्नौज तथा उत्तर भारत के अन्य भागों से ब्राह्मण बुलाये गये थे। सन् ९९५ ई० में मूल्राज मर गया। उसके पश्चात् उसका पुत्र चामुंडराज गद्दी पर बैठा, जिसने मालवा के परमार राजा सिंधुराज को युद्ध में मार डाला, जिससे दोनों राज्यों में घोर शत्रुता हो गई।

चामुण्डराज के बाद उसका पुत्र वल्लभराज गद्दी पर बैठा। परन्तु वह छ साल बाद मर गया। उसके पुत्र दुर्लभराज ने, जिसका विवाह नादोल की चौहान राजकुमारी के साथ हुआ था, बारह वर्ष (१००९-२१ ई०) तक राज्य किया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका भतीजा भीम प्रथम राजा हुआ जो गुजरात के इतिहास में प्रसिद्ध है।

भीम मालवा के साथ घोर युद्ध करता रहा और उसने उस देश पर आक्रमण भी कर दिया। उसने आबू के परमार राजा को हरा दिया और नादोल के चौहान राजा को भी अपनी शक्ति से प्रभावित किया। परन्तु जब काठियावाड के दक्षिण में समुद्र तट पर स्थिति सोमनाथ के मदिर की अपार सम्पत्ति लूटने के लिए महमूद गजनवी ने गुजरात पर चढाई की, तो भीम पर बडी विपत्ति आई। भीम अपना राज्य छोडकर भाग गया और कच्छ के एक दुर्ग म उसने शरण ली। तुर्क आक्रमणकारी के चले जाने के पश्चात् उसने अपने देश पर फिर अधिकार कर लिया और सोमनाथ के अपवित्र किये गये मदिर का फिर से बनवाया।

१०६३ ई० में भीम की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका तीसरा पुत्र कर्ण प्रथम राजा हुआ। उसने कोल और भीलो को जीतकर देश में सुव्यवस्था स्थापित की। उसका उत्तराधिकारी जर्यासह उपनाम सिद्धराज जो सन् १०९३ ई० मे गद्दी पर बठा, गुजरात के विख्यात सोलकी राजाओ मे से था। उसने मालवा-राज को पूर्णरूप मे पराजित कर दिया, उसे अपने राज मे मिला लिया और अवन्ती नाथ की पदवी पाई। उसने गिरनार के यादव राजा से युद्ध किया, वहाँ की जगली जातिया को दबा दिया और अजमेर के चौहान राज को हराकर उसे सधि कर लेने के लिए बाध्य किया। सिद्धराज न्यायप्रिय, दयालु और चतुर शासक था। वह विद्वानो का आदर करता था। उसने जैन विद्वानो के साथ विशेष अनुग्रह दिखलाया। हेमचन्द्र अथवा हेमाचार्य इनमें से प्रधान था। सिद्धराज के कोई पुत्र न था। अत जब वह सन् ११४२ ई० में मर गया, तो भीम प्रथम के (जिसका वर्णन पहले हो चुका है) तृतीय पुत्र कर्ण का वशज कुमारपाल राजा हुआ।

गुजरात के सोलकी राजाओ में कुमारपाल असदिग्ध रूप से सबसे बडा राजा हुआ। उसने पडित जन हेमचन्द्र सूरि का विशेष सम्मान किया और उसे प्रधान मत्री बना दिया। कुमारपाल ने अजमेर पर दो बार आक्रमण किया। पहला आक्रमण असफल रहा। परन्तु दूसरे आक्रमण मे गुजरात की सेना ने चौहान राजा पर विजय पाई। मालवा और आबू के राजाओ को उसने पराजित किया और कोनकन के राजा मल्लिकार्जुन को अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। इस प्रकार गुजरात के प्रारम्भिक राज्य की सीमायें बहुत बढ़ गई। मालवा और राजपूताने के भी कुछ अश उसमें सम्मिलित हो गये।

कुमारपाल विद्वानों का आदर करता था। बहुत से विद्वानों की जीविका उसकी उदारता पर निर्भर थी। उनमें दो गुजराती विद्वान् रामचन्द्र और उदयचन्द्र विशेष उल्लेखनीय हैं। उसका मन्त्री हेमचन्द्र प्राकृत और संस्कृत का बड़ा भारी पंडित था। उसने इतिहास तथा धर्म पर अनेक ग्रन्थ रचे, जिनको उसने राजा को समर्पित किया। हेमचन्द्र के प्रभाव से कुमारपाल स्वयं जैनी हो गया और अपने विस्तृत राज्य से उसने प्रत्येक प्रकार की हिंसा को बंद कर दिया।

सन् ११७३ ई० में ३१ वर्ष के शासन के पश्चात् कुमारपाल की मृत्यु हो गई और अजयपाल गद्दी पर आया। अजयपाल के गद्दी पर आने से राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया और उसके अशक्त उत्तराधिकारी मूलराज द्वितीय और भीम द्वितीय के राज्यकाल में वह और भी क्षीण हो गया। अंतिम चालुक्य राजा त्रिभुवनपाल था। *वह केवल नाम का राजा था। सन् १२४३ ई० के आस-पास सोलंकियों* की एक शाखा बघेला ने उससे शक्ति छीन ली। इस वंश में भी कई राजा हुए, जिनको नये आक्रमणकारी मुसलमानों ने बहुत तंग किया। अंतिम राजा कर्ण था, जिनको अलाउद्दीन खिल्जी के दो प्रसिद्ध सेना नायकों उलुग खाँ और नसरत खाँ ने सन् १२९६ ई० में जीता था। १३१० ई० में काफूर ने उसकी शक्ति बिलकुल नष्ट कर दी। कर्ण की हार और मृत्यु के पश्चात् गुजरात के सोलंकियों का स्वतंत्र अस्तित्व नष्ट हो गया।

राजपूताना—उपर्युक्त राजपूत राज्यों के अतिरिक्त मुसलमानों के आक्रमण के समय राजपूताने में और भी अनेक छोटे छोटे राजा थे। उनमें मेवाड़, जसलमेर, बूँदी, जालोर और नादोल प्रमुख थे। जोधपुर का राज्य मुहम्मद गोरी की भारत विजय के पश्चात बना था। अम्बर (आधुनिक जयपुर) और बीकानेर सोलहवीं शताब्दी में मुगल काल के आने तक विख्यात नहीं हुए। मेवाड़, जसलमेर, रणथम्भौर और जालोर का तुर्कों से संघर्ष रहा और उनमें बड़े युद्ध हुए। आगे के पृष्ठों में इन संघर्षों का वर्णन किया जायगा।

बिहार और बंगाल के पाल तथा सेन राजा—हर्ष के साम्राज्य में बंगाल और आसाम भी सम्मिलित थे। परन्तु अन्य प्रान्तों की भांति उसमें भी अराजकता और कुप्रबंध फैल गया। आठवीं शताब्दी में लोगों ने इस अव्यवस्था से तंग आकर गोपाल को अपना राजा बनाया। गोपाल बौद्ध था और उसने मगध और

दक्षिण विहार मे लगभग ४५ वष तक राज्य किया। उसके उत्तराधिकारी धमपाल ने कन्नौज के राजा को हरा दिया। अफगानिस्तान, पजाब, राजपूताने तथा कागडा घाटी के राजा उसका आधिपत्य स्वीकार करते थे। उसने विक्रम शिला का भव्य मठ भी बनवाया था, जिसमें १०७ मदिर थे और बौद्ध धम की शिक्षा के ६ महाविद्यालय थे। दूसरा शासक देवपाल इस वश का सबसे शक्तिशाली राजा हुआ। उसने आसाम और कलिंग को जीत लिया। अपन धम प्रचार के लिए वह निरतर युद्ध करता था। जावा के राजा न नालन्द में भगवान् बुद्ध का मन्दिर बनवाने की आज्ञा लेने के लिए उसके पास राजदूत भेजे थे। देवपाल ने राजदूतो का स्वागत किया और पटना तथा गया के जिलो में जावा के राजा के बनाये हुए मन्दिर के व्यय के लिए पाच गाव दे दिये। ।

चालीस वष के शासन के पश्चात् पालो पर कुछ दिनो के लिए कम्बोज नाम की पहाडी जातियो का अधिकार हो गया। परन्तु कम्बोजो का शासन अल्पकालीन ही था। महीपाल ने अपने वश की खोई हुई प्रतिष्ठा फिर प्राप्त की और बौद्ध धम के उत्थान के लिए तिब्बत म एक प्रचारक दल भजा। वह पक्का बौद्ध था। उसन नालन्द, बोध गया, और विक्रमशिला मे कई भवन बनवाये और अनेको बौद्ध मन्दिरो का पुनरुद्धार कराया। १०८४ में रामपाल राजसिहासन पर आया। उसने मिथिला को जीता और आसाम तथा उडीसा के राजाओ को अपना करद बनाया। उसका पुत्र कुमारपाल दुबल शासक निकला। वह अपने वश की शक्ति को स्थिर न रख सका। सामन्तसेन ने जो कदाचित् दक्षिण से आया था, पालो के राज्य का अधिकाश भाग छीन लिया और ग्यारहवी शताब्दी के अतिम भाग में बगाल में सेन राजवश की नीव डाली। सामन्तसेन के पौत्र विजयसेन ने पश्चिमी बगाल भी जीत लिया और अपने वश की शक्ति दढ करली। उसका उत्तराधिकारी वल्लभसेन ११५५ ई० में गद्दी पर बठा। अपने पिता के राज्य को सुरक्षित रखते हुए उसने विद्या की उन्नति की और बगाल के ब्राह्मणो, वैश्यो और कायस्थो मे 'कुलीन' की प्रथा चलाई। उसके शासन में ब्राह्मण धम का प्रभुत्व फिर से स्थापित हुआ और प्रचार काय के लिए सुदूर देशो में प्रचारक भेजे गये। ११७० ई० में वल्लालसेन के पश्चात् लक्ष्मणसेन राजा हुआ। ११९९ ई० मे मुहम्मद बिन

बख्तियार खिल्जी के आक्रमण से उसके राज्य का अन्त हो गया और बगाल का बहुत बडा भाग मुसलमानो के अधिकार में चला गया।

राजपूतों की उत्पत्ति—राजपूतो की उत्पत्ति के सम्बन्ध में बडा मतभेद है। राजपूतो का उदभव ठीक ठीक जानने के लिए बडे ऐतिहासिक कौशल से काम लिया गया है, परन्तु ब्राह्मण साहित्य तथा भाटो के यशोगान मे उनकी जो उच्च वशावली का वर्णन हुआ है उससे कठिनाई और बढ गई है। राजपूत अपने को वदिककाल के क्षत्रियो की सतान बतलाते है। वे अपने को सूर्यवशी तथा चन्द्रवशी कहते है और कुछ लोग 'अग्निकुल' के सिद्धान्त को मानते है। राजपूताने की कुछ रियासतो में राजपूत शब्द का अर्थ साधारण बोलचाल में क्षत्रिय राजा अथवा जागीरदार की अवध सतान से है। परन्तु वास्तव में यह सस्कृत शब्द 'राजपुत्र' का तदभव रूप है और जिसका अर्थ 'राजा की कुलीन सतान' से है। पुराणो में भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है और बाण के हर्षचरित में यह उच्च कुलजात क्षत्रियो के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। इससे स्पष्ट है कि यह शब्द बहुत पहले और सातवी तथा आठवी शताब्दियो में प्रयोग किया जाता था।

राजपूतो की उत्पत्ति के विषय में बहुत कुछ कहा जा चुका है। कुछ लोग उनको भारत के विदेशी निवासियो की सतान बतलाते है और कुछ वदिक समय के क्षत्रियो की। राजस्थान का प्रसिद्ध इतिहास वेत्ता टाड उनको सिथिअना अथवा शका की सन्तान बतलाता है जो भारत में छठी शताब्दी के लगभग आये थे।

यूरोपियन विद्वान् टॉड के विचारो को ही सत्य मानते है। अपने भारत के प्रारम्भिक इतिहास (Early History of India) मे (पृष्ठ ४२५ सशोधित सस्करण) डा० विन्सट स्मिथ शको तथा यूची अथवा कुशनो के द्वितीय और प्रथम शताब्दी ई० पू० में देशान्तरवास के सम्बन्ध में लिखते है—"इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नही है कि शको और हूणो के राजपरिवार जब हिन्दू रूप में आगये तो क्षत्रियो में सम्मिलित हो गये। परन्तु इसका कोई प्रमाण नही दिया जा सकता। जो कुछ इसके बाद हुआ उसके सादृश्य के आधार पर ही यह अनुमान किया जा सकता है।'

डा० स्मिथ ने हूण आक्रमण के विषय में विस्तार से लिखा है। वे लिखते है—"उन्होने हिन्दू सस्थाओ और राजपद्धति का नाश कर दिया। पुराणो तथा

अन्य साहित्यिक रचनाओ से उनकी भीषणता का पता नही लग सकता।"वे लिखते ह कि पाँचवी तथा छठी शताब्दियो में विदेशी आक्रमणकारियो ने उत्तरी भारत के समाज की जडें हिला दी थी। यहा जातिया और राजपरिवारा का फिर से निर्माण हुआ। इस मत के समथक डाक्टर देवदत्त रामकृष्ण भडारकर तथा टॉड राज स्थान के सम्पादक विलियम क्रुक भी है जो उसकी भूमिका में लिखते ह कि बहुत से राजपूत वशा का जन्म शक अथवा कुशन आक्रमण से हुआ जो ई० पू० दूसरी शताब्दी के मध्य से प्रारम्भ हुआ था, जिन्होने ४८० ई० में गुप्त साम्राज्य को नष्ट कर दिया था।

परन्तु आधुनिक काल के कुछ भारतीय विद्वानो ने अपने अन्वेषणा में टॉड तथा अन्य यूरोपीय इतिहासकारो की भूलें बतलाई ह। अपने 'राजपूताने के इतिहास' में पडित गौरीशकर ओझा ने इस प्रश्न पर विस्तृत रूप से विचार किया है। वे इस निणय पर पहुँचे ह कि राजपूत प्राचीन क्षत्रियो की ही सतान हैं और टॉड को राजपूतो तथा अन्य विदेशी आगन्तुको के रीति रिवाजो में सादृश्य देखकर ही धोखा हो गया था।

चाहे हम पडित ओझा के विचारो से सहमत हा चाहे न हो, परन्तु यह स्पष्ट है कि विदेशी जातिया के भारत मे बस जान के कारण सामाजिक व्यवस्था का फिर से सगठन होना अनिवाय हो गया। राजशक्ति के स्वामी होने के कारण उनके ब्राह्मण मन्त्रियो ने उनका सम्बध प्राचीन क्षत्रियो से कर दिया।

अग्नि कुल का सिद्धान्त कि राजपूतो के चार वश—पँवार (प्रमार), परिहार (प्रतिहार),चौहान (चहुमान) और सोलकी अथवा चालुक्य दक्षिण राजपूताने में आबू पहाड के ऊपर की वशिष्ठ के यज्ञ की अग्नि से उत्पन्न हुए थे, अब भी बहुत से राजपूत मानते हैं। इस दतकथा से भी डा० भण्डारकर और उनके साथी राजपूतो के विदेशी होने के अपने मत की पुष्टि करते ह।

उनका कहना है कि अग्निकुल के सिद्धान्त का अथ यह है कि दक्षिणी राजपूतान में अग्नि द्वारा विदेशी पवित्र किये गये थे, जिसमे वे वर्ण व्यवस्था में प्रविष्ट होने के योग्य हो जायें। पृथ्वीराज रासो में अग्नि कुल की कथा वर्णित है। रासो का

समय चाहे जो कुछ हो, इनमें अनेक कथाएँ समय समय पर जोड दी गई ह। इन कथाआ में इतिहास और कल्पित कथाओ का इस प्रकार सम्मिश्रण ह कि हम उसकी-समस्त सामग्री को इतिहास में ग्रहण नही कर सकते। इस कथा की कपोल कल्पना स्वत सिद्ध ह। इसके लिए किसी अय प्रमाण की आवश्यकता नही। समाजमें उच्च स्थान प्राप्त लोगो को उच्च उदगम देने के लिए ब्राह्मणा का यह प्रयत्न था। व ब्राह्मणो के लिए बडे उदार थे और उनको श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। ब्राह्मणा ने भी इसी उदारता का सोत्साह प्रतिदान किया था। परन्तु राजपूता को वदिक काल के क्षत्रियो की अमिश्रित सतान मानना भी अनगल है। पाचवी तथा छठी शताब्दी में जानेवाले अगणित आगन्तुको से उनका अपमिश्रण हो गया था। डा० स्मिथ का कहना ह कि कुछ राजपूत भारत के मूल निवासी गोडो और भारो की सतान ह। उनके विभेदो से जो अब तक चले आते ह, यही बात सिद्ध होती है। यह स्वीकार कर लेना कुछ असगत है और जो ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त है, उसके आधार पर इस मत को मानना युक्तियुक्त नही प्रतीत होता। ब्राह्मणो मे भी इसी प्रकार के विभेद ह, परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि कुछ ब्राह्मण हिंदू समाज के निम्न वग से उत्पन ह। इस प्रकार के निष्कप निकालना ऐतिहासिक अन्वेषण के सिद्धान्तो के विरुद्ध है।

विदेशी निवासियो की विभिन्न जातियाँ आपस में इतनी घुल मिल गइ कि उनके आपस के विभेद सब मिट गये। एक ही प्रकार की सामाजिक रीतिया के पालन करने और धार्मिक क्रियाआ के करने से उनमें एक सामजस्य उत्पन्न हो गया था। उनकी अपनी विशेपताएँ मिट गईं। जातीय सम्मिश्रण की ऐसी प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई, जिससे उनके अतर को समझना असम्भव हो गया। वीरता, आत्मसम्मान, स्वतत्रता तथा देशभक्ति की उच्च भावनाओ से सभी राजपूत अनुप्राणित थे। इसी एकरूपता के कारण ऐसे विभिन्न वर्गों का सम्मिश्रण वहुत कुछ सम्भव हो गया, जो जाति-परम्परा में एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न थे।

कला और साहित्य—इस युग में हिंदुआ की वास्तुक्रिया मन्दिरा के निमाण तक ही सीमित थी। इस युग के उत्तरी भारत के विख्यात मन्दिर ये थे —भुवनेश्वरका मन्दिर जो ईसा की सातवी शताब्दी में बना था, बुन्देलखड का खजुराहो का मन्दिर और उडीसा का पुरी का मन्दिर। आबू का जन मन्दिर

ग्यारहवी शताब्दी के पूर्वांश में बनाया गया था। यह पूर्व मुस्लिम युग की भारतीय वास्तुकला का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है। दक्षिण भारत में भी अनेकों मदिर बने। इनमें होयसाल वश के बनाये हुए मदिर सबसे प्रसिद्ध ह। ग्यारहवीं शताब्दी में सोमनाथपुर का मदिर वीणादित्य वल्लाल ने बनवाया। दूसरा मदिर बेलूर में विष्णु वद्धन होयसल ने बारहवी शताब्दी में बनाया था और तीसरा हलेबिड पर इसी वश के दूसरे राजा ने बारहवी शताब्दी के अन्त म बनाया था। पल्लव, चालुक्य और चोल राजाओ ने भी बडे-बडे भवन बनवाये। पल्लवो ने अपनी राजधानी काची को सुदर मदिरो से सजाया था। इनमें से कुछ ईसा की सातवी शताब्दी में बनाये गये थे। तजोर का मन्दिर जो राज राज चोल ने १०९० ई० में बनवाया था, दक्षिण के विख्यात वस्तुकारो की कला का प्रमाण दे रहा ह। चालुक्य वशवाले भी कला का वडा आदर करते थे। उन्होने अपनी राजधानी वादामि को भव्य मदिरो से सजाया था। इनमे से एक विक्रमादित्य द्वितीय (७३३-४७ ई०) ने विरूपाक्ष का मदिर पट्टडक्कल में बनवाया था, जो दक्षिण में विद्या का विख्यात केन्द्र था। हिन्दू वास्तु कला हिन्दू धम की अभिव्यक्ति है। हिदुओ का समस्त जीवन धार्मिक ही है। उनका धम ही उनके प्रत्येक आचरण का निर्देश करता है। धमकारी प्रभाव जीवन के विभिन्न स्तरो में व्याप्त है। हिन्दुओ की धार्मिकता उनकी वास्तु कला तथा तक्षणकला में सवाधिक प्रकट है। एक भारतीय विद्वान् ने कहा है कि इन्ही के द्वारा हिन्दू अपने धम की व्यापकता का अनुभव करते थे।

हिदू राजाओ के मन्दिर, तालाव और बाँध कला के आश्चयजनक उदाहरण हैं। इनके विषय में अरब विद्वान् अलबरूनी ने लिखा है—

"इस प्रकार उन्होने उच्चकोटि की कलापूण कृतियो का सृजन किया ह। जब हम लोग (मुसलमान) उन्हें देखते हैं, तो हमारे आश्चय का ठिकाना नही रहता। उनका वणन करना हमारी शक्ति के बाहर ह। उनके समकक्ष कोई वस्तु निर्माण करना तो हमारे लिए असम्भव ही है।"

महमूद गजनवी ऐसा मूर्त्तिभजक भी अपने आक्रमण के समय मथुरा के मदिरो को देखकर चकित हो गया। इस वात को उसके शासकीय इतिहासकार 'उतवी' ने स्वय लिखा है।

ब्राह्मणधम की विजय के पश्चात् धार्मिक, धम निरपेक्ष और ऐहिक सभी प्रकार के प्रचुर साहित्य का निर्माण हुआ। तत्कालीन धार्मिक शास्त्रार्थों के कारण दशन सम्बन्धी प्रचुर साहित्य उत्पन हुआ जिसमें श्रीमद्भगवद् गीता, उपनिषद और ब्रह्म सूत्र पर शकर के भाष्य बहुत महत्वपूण है। धारा के राजदरबार में नव सहसाक चरित के रचयिता पद्मगुप्त, दशरूपक के रचयिता धनजय, दशरूपक के टीकाकार धनिक, पिंगल छन्द सूत्र तथा अन्य ग्रथो के टीकाकार हलायुध तथा सुभाषितरत्न सदोह के रचयिता अमितगति ऐसे विद्वान् उपस्थित थे। नाटककारो में मालतीमाधव, महावीरचरित और उत्तर रामचरित के रचयिता भवभूति आठवी शताब्दी में उत्पन्न हुए थे। मुद्राराक्षस के रचयिता विशाखदत्त, वेणी सहार (८०० ई०) के रचयिता भट्टनारायण और कपूरमजरी तथा अन्य काव्यो के रचयिता राजशेखर दशवी शताब्दी में प्रादुर्भूत हुए थे।

प्रबध काव्यो का कुछ वणन करना आवश्यक है। माघ का शिशुपालवध बड़ा प्रसिद्ध काव्य है। इसमें महाभारत से सामग्री ग्रहण की गई है और कृष्ण के द्वारा शिशुपाल वध का वणन है। श्री हष का (११५० ई०) नैषध चरित दूसरा उल्लेखनीय काव्य है। यह काव्य कदाचित् कन्नौज के राजा जयचन्द्र के आश्रय में लिखा गया था। इन शुद्ध साहित्यिक काव्यो के अतिरिक्त इस युग में ऐतिहासिक काव्यो की भी रचना हुई थी। इनमें से धारा के राजकवि पद्मगुप्त का नव सिंहासन चरित, जिसका वणन ऊपर हो चुका है, और कल्याण के चालुक्य राजा छठे विक्रमादित्य की विजय की स्मृति में बिल्हण द्वारा लिखा गया विक्रमाक चरित विशेष उल्लेखनीय है। कल्हण की राजतरगिणी जो एक प्रकार का पद्यबद्ध इतिहास है, बारहवी शताब्दी के मध्य की सबसे विख्यात रचना है। कल्हण काश्मीर का सुशिक्षित निवासी था। वह अपने देश की राजनीति में भाग लेता था और उसकी दशा से भली भाँति परिचित भी था। राजतरगिणी में काश्मीर के सम्पूण इतिहास को पाठको के सम्मुख उपस्थिति करने का प्रयत्न है। यद्यपि अन्य मध्ययुग के इतिहासकारो की भाँति इसमें ऐतिहासिक घटनाओ के साथ काल्पनिक कथाओ का सम्मिश्रण है, तो भी इसके रचयिता ने इतिहास के विविध मूल स्थानो से सामग्री ग्रहण की है। गीति काव्य के प्रणेताओ में 'गीत गोविंद' के रचयिता

जयदेव सबसे अधिक प्रसिद्ध है। वे बारहवी शताब्दी में बगाल में उत्पन्न हुए थे। इनका वर्णन किसी दूसरे अध्याय में किया जायगा।

सामाजिक जीवन—समाज में जातियो की व्यवस्था थी। ब्राह्मणो की श्रेष्ठता सर्वस्वीकृत थी। राजा और प्रजा उन्हे सर्वोच्च सम्मान प्रदान करते थे। साथ ही राजपूतो का सम्मान भी समाज मे कम न था। वीर और युद्धप्रिय राजपूतो मे उच्चादर्शों का प्राप्त करने के लिए बडा उत्साह रहता था। टॉड ने बडे सशक्त शब्दो में राजपूत चरित्र का इस प्रकार वर्णन किया है "अपार साहस,देशभक्ति, स्वामिभक्ति, आत्मसम्मान, अतिथिसत्कार तथा सरलता आदि गुण उनमें सहज ही विद्यमान रहते है। चाहे हम उनको उन कतिपय दोषो से मुक्त न बतला सकें जिनसे सारा सभ्य ससार घृणा करता है और चाहे अनाचारी विजेताओ के निरतर आक्रमणो तथा सघर्षों से उनका नैतिक स्तर कुछ नीचा भले ही हो गया हो, परन्तु हम उनके उन सद्‌गुणो की मुक्तकठ से प्रसशा किये बिना नही रह सकते, जिनको विजेताओ का दमन और उनका निम्न कोटि का दृष्टान्त भी नष्ट नही कर सका था। धोखे और झूठ के जिन दुर्गुणो का सम्बन्ध एशिया के समस्त देश के चरित्र के साथ बतलाया जाता है, उन्हे मै राजपूतो के साथ सामान्य रूप से सबधित होना स्वीकार नही कर सकता। उनके किसी विशेष वर्ग ने विशेष परिस्थिति में निरतर दमन से रक्षा पाने के लिए इन दुर्बल व्यक्ति की ढालो का प्रयोग भले ही कर लिया हो।"* राजपूतो में आत्मसम्मान की उच्च भावना थी और सत्य का वे बडा आदर करते थे। वे विजेता होकर भी शत्रुओ के प्रति उदारता दिखाते थे। मुसलमान विजेताओ की सी बर्बरता पर तो वे कभी उतरते ही न थे। युद्ध में वे कभी छल-कपट से काम न लेते थे और इसका बडा ध्यान रखते थे कि और निर्दोष व्यक्तियो को कुछ हानि न पहुँचे। एक विद्वान् का का कहना है कि किसी समाज में स्त्रियो का जितना अधिक आदर होता है, उतना ही सभ्य वह समाज समझा जाता है। राजपूत अपनी स्त्रियो का बडा सम्मान करते थे। यद्यपि उन्हे अपने जीवन में बडी कठिनाइयो का सामना करना पडता था, परन्तु विषम परिस्थिति आ जाने पर वे आश्चर्यजनक साहस

* टॉड का एनल्स एण्ड एण्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान क्रुक द्वारा सम्पादित पृ० ७४४

और दृढता का परिचय देती थी और वीरता के ऐसे ऐसे कार्य करती थी, जिनकी तुलना ससार के इतिहास में दुर्लभ है। उनकी पतिभक्ति का, विपत्ति में उनके साहस का (राजपूत नारियों के जीवन में ऐसे अवसरो की कमी न थी) और उनकी निर्भयता का राजपूत समाज के ऊपर बडा प्रभाव पडता था, यद्यपि वे समाज में सक्रिय भाग न लेकर उससे अलग अत पुर में ही रहती थी। साथ ही उनके अभिजात कुल, दृढ पातिव्रत, आत्मसम्मान की भावना, उपाय कुशलता तथा साहस के कारण उनका जीवन बडा अनिश्चित सा रहता था। जौहर की प्रथा का जन्म, चाहे कितनी ही नृशस क्यो न प्रतीत होती हो, आत्मसम्मान और पवित्रता की उस भावना के कारण हुआ था जिससे प्रेरणा पाकर वे सकट के समय अपने प्राण भी होम देती थी, जब निर्दय शत्रु उनके पति-पुत्रो को चारो ओर से घेर लेते थे और मुक्ति पाने की सब आशाएँ नष्ट हो जाती थी।

परन्तु इन गुणो के साथ साथ उनमें अवगुण भी स्पष्ट थे। अस्थिर स्वभाव, आवेश में आजाना, अपने वश के लिए पक्षपात, पारस्परिक झगडे, अफीम का प्रयोग, शत्रु के विरुद्ध सगठन का अभाव—आदि बातें ऐसी थी, जिनके कारण प्रबल शत्रु का सामना होने पर उनका पक्ष बडा दुर्बल पड जाता था। बालिका-वध की प्रथा उनमें प्रचलित थी। सम्भ्रान्त परिवारो में भी लडकिया का साधारण-तया जीवित न छोडा जाता था। ऐसी ही विनाशकारी सती की प्रथा थी। एक ही व्यक्ति की मृत्यु से अनेक स्त्रियो की मृत्यु हो जाती थी, क्योकि राजपूत राजघरानो में बहु-पत्नी की प्रथा सवसामान्य थी। यह प्रथा इतनी अधिक सामान्य हो चली थी कि कुल मर्यादा की रक्षा के ध्यान से अनेक स्त्रियाँ स्वय जल जाती थी और कुछ माता पिता और परिवारवालो के दबाव के कारण सती हो जाती थी। युद्ध में राजपूत कभी धोखा-धडी से काम नही करते थे वे अपने शत्रुओ का भी सम्मान करते थे और नीति से काम लेते थे। परन्तु उनके युद्धो से साधारण गृहस्थो के शात जीवन में कोई अव्यवस्था नहीं होने पाती थी। साधारण प्रजा के ऊपर नगर के घेरो, युद्धो, जन-हत्याओ आदि का कम प्रभाव न पडता था। परिणामस्वरूप राजनीतिक हलचलो के प्रति वह बिल्कुल उदासीन रहती थी। एक के बाद दूसरे राजा के प्रति अपनी स्वामि भक्ति रखना उसके लिए कठिन न होता था।

हिन्दू समाज पर रामानुजाचाय ऐसे सतो का बडा प्रभाव पडा। उन्होने शकर के अद्वतवाद के विरुद्ध भक्ति का उपदेश दिया। शकर के वेदात के विरुद्ध उन्होने सगुण ब्रह्म की उपासना का प्रचार किया और अवतारवाद की प्रतिष्ठा की। उन्होने बतलाया कि भगवान् भक्ति से प्रसन्न किये जा सकते ह। रामानुजाचार्य ने उत्तरी और दक्षिणी भारत में सम्बन्ध स्थापित किया। उनका प्रभाव उत्तरी और दक्षिणी भारत के हिन्दुओ में बहुत अधिक था। तीथ यात्राओ का चलन बढ गया। तीथ-स्थानो की यात्राओ के कारण इस समय बडा धार्मिक उत्साह था। स्वयवर सवसामान्य नही थे। अतिम बडा स्वयवर जिसका उल्लेख है, जयचन्द की पुत्री का था। परन्तु सती की प्रथा सामान्य थी। जब शत्रु के हाथ में दुग पड जाते थे, तो स्त्रियो के प्रति कोई दया नही दिखाई जाती थी।

राजपूत राज-व्यवस्था—राजपूतो की राज-व्यवस्था सामन्त-प्रणाली की थी। सारा राज्य जागीरो में बँटा हुआ था। जागीरदार बहुधा राजघराने के ही लोग हुआ करते थे। राज्य की शक्ति और उसकी रक्षा इन जागीरदारो की स्वामिभक्ति पर निभर थी। खालसा प्रदेश पर स्वय राजा का अधिकार था। इस पर स्वय उसी का शासन था। इन सामन्तो के राजदरबारी अनेक वर्गों में बँटे हुए थे। प्रत्येक वग का शिष्टाचार चिरपरम्परा से चला आ रहा था। उसका पालन कठोरता से किया जाता था। आय का प्रधान साधन खालसा का लगान था। व्यापारिक करो से इस आय में और वृद्धि हो जाती थी। आवश्यकता के समय जागीरदारो को सामयिक सहायता भी देनी पडती थी। वे अपने राजा को प्रेम करते थे और उसका सम्मान करते थे और प्रसन्नता के साथ उसके नेतृत्व में रणभूमि में जाते थे। राजा के साथ उनका व्यक्तिगत प्रेम था, वे उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे और सकट के समय उपयुक्त सेवा कर अपनी स्वामिभक्ति सिद्ध करने की प्रतीक्षा में रहते थे। बडे से बडे प्रलोभन उनकी स्वामिभक्ति को विचलित नही कर सकते थे। अधिक से अधिक धन अथवा ऊँचे से ऊँचे पद-लोभ में पडकर वे अपने स्वामी का साथ न छोडते थे। मध्यकालीन यूरोप के बरनो (सामन्तो) की भाँति इन जागीरदारो को भी अपने राजाओ को कुछ कर देना पडता था। सामन्त-शुल्क तथा अन्य करो (Scutage) का भी चलन था। साधारण रूप से इन सामन्तिक उत्तरदायित्वो का पालन होता था।

धन प्राप्त करने के लिए लाभी राजा इस तुल्य का आश्रय लेते थे। परन्तु ऐसा शासन दुर्बल और अयोग्य होता था। इसमें सगठन का अभाव रहता था। अपनी अपनी ढपली और अपना अपना राग था। किसी काय के लिए राज-शक्तियो का सगठित होना कठिन था। राजा ही शक्ति का केन्द्र था। जब तक वह शक्तिशाली रहता था, तब तक शासन का सचालन ठीक ठीक होता था। यदि शासक दुर्बल हुआ तो उसका कोई राजनीतिक महत्त्व न रहता था। राज्य की आन्तरिक शान्ति वाहरी भय के प्रभाव पर निर्भर रहती थी। जब किसी वाहरी शत्रु का भय न होता था, तो ये सामन्त अस्थिर हो जाते थे, विभिन्न उपजातियो मे प्रबल झगडे आरम्भ हो जाते थे। सत्रहवी शताब्दी में जहाँगीर के समय में चौंडावतो और सक्तावतो की पारस्परिक कलह से यही बात सिद्ध होती है।

दक्षिण चालुक्य-वश—चालुक्य-वश के राजपूत छठी शताब्दी में दक्षिण पहुँचे थे। इस वश का सबसे अधिक प्रभावशाली राजा पुलकेशिन द्वितीय था। वह ६११ ई० में गद्दी पर बैठा। गुजरात, राजपूताना, मालवा और कोनकन के राजाओ से उसका निरतर युद्ध चलता रहा। वेंगी और काचीपुर के पल्लवो के देश को उसने अपने राज्य में मिला लिया। उसका भाई इन विजित देशो का क्षत्रप नियुक्त किया गया था। परन्तु उसने स्वतत्र राज्य की स्थापना की। वह पूर्वी चालुक्य राज्य के नाम से विख्यात हुआ। ६२० ई० में पुलकेशिन ने हर्ष की आक्रमणकारी सेना को हरा दिया। उस समय यह काय बडी वीरता का समझा गया। चोल और पाड्य राज्यो ने भी पुलकेशिन से मित्रता कर ली। सन् ६३९ ई० में चीनी यात्री ह्वेनसाग दक्षिण गया था। वह उसकी महत्ता और शक्ति से बडा प्रभावित हुआ था।

परन्तु निरन्तर युद्ध करने के कारण पुलकेशिन के साम्राज्य के कोष और उसकी सेना को बडी क्षति पहुँची। नरसिंह वमन के नेतृत्व में पल्लवो ने पुलकेशिन को बुरी तरह मे हरा दिया और उसकी शक्ति को नष्ट कर दिया। पुलकेशिन के पुत्र विक्रमादित्य ने पल्लवो से युद्ध छेड दिया और उसकी राजधानी काची पर अधिकार कर लिया। यह सघष कुछ काल तक चलता रहा। अत में राष्ट्रकूट वश के एक राजा ने चालुक्य वश की शक्ति का अत कर दिया।

राष्ट्रकूट—राष्ट्रकूट लोग महाराष्ट्र के मूलनिवासी थे। अशोक के शिला-लेखा में 'रत्त' अथवा 'रथिक' नामसे उनका वणन हुआ है। पहले वे वादामि के चालुक्यो के अधीन थे, परन्तु चालुक्य राजा कीर्तिवमन द्वितीय को हराकर दन्ति दुग ने स्वतत्र राज्य की स्थापना की। दन्तिदुग निस्सतान था। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके चाचा कृष्ण प्रथम राजा हुए। उन्होने अपने भतीजे से प्राप्त राज्य की सीमाएँ बहुत विस्तृत कर दी। कृष्ण ने ऐलोरा में पहाड काटकर शिव मन्दिर का निर्माण कराया। उसके उत्तराधिकारियो ने राज्य और बढाया। अमोघवष ८१५-१६ ई० में गद्दी पर आया। उसने उन सभी देशो पर साम्राज्य स्थापित किया जो पुलकेशिन द्वितीय के अधिकार में थे। उसने वेगी के चालुक्यो को हरा दिया और मान्यखेत अथवा मालखेत को अपनी राजधानी बनाया, जो आजकल निजाम राज्य मे ह। अमोघवष जैनी था। वह जन विद्वाना का आदर करता था। उसके राज्यकाल में जैन धम की दिगम्बर शाखा के दाशनिक सिद्धान्ता पर एक महत्त्वपूण ग्रन्थ बनाया गया था। अपनी वृद्धावस्था में अमोघवष ने राज्य छोड दिया। उसके पश्चात् उसका पुत्र कृष्ण द्वितीय गद्दी पर आया। दहल के चेदिवश की राजकुमारी से उसने अपना विवाह किया। कृष्ण के उत्तराधिकारी इन्द्र तृतीय ने भी चेदिवश से वैवाहिक सम्बध स्थापित किया और उसकी सहायता से उसने गुजर प्रतिहारो के देश पर आक्रमण किया। उसन मालवा पर आक्रमण कर उज्जैन को जीत लिया और उसकी सेना ने गगा के मदान को रौंद डाला। गुजरात के राष्ट्रकूटो को पराजित कर उसने अपने अधीन कर लिया। उसके निरतर आक्रमणो के कारण गुर्जर प्रतिहारो की शक्ति का अत हो गया।

इन्द्र तृतीय के उत्तराधिकारियो के राज्य-काल में राष्ट्रकूटो की शक्ति क्षीण हो गई। उन्होने अपना कोष युद्धा में रिक्त कर दिया अत उनकी जड दुबल हो गई। चालुक्य फिर प्रबल हो गये और तैलप द्वितीय ने ८९२ ई० में अतिम राष्ट्रकूट राजा को युद्ध में हरा दिया और मार डाला।

कल्याणी के चालुक्य नाम के एक नये वश की नीव पडी और उस राष्ट्रकूट वश का अन्त हो गया, जिसके राज्यकाल में ऐलोरा का मन्दिर और अजन्ता की गुफाओ का निर्माण हुआ था और अरब लोगा से व्यापारिक सम्बध स्थापित हुए थे।

कल्याणी का पश्चिमी चालुक्य वंश—तैलप द्वितीय शक्तिशाली और ओजस्वी शासक सिद्ध हुआ। उसने उस समस्त प्रदेश पर अधिकार कर लिया, जिस पर किसी समय चालुक्य वंश का राज्य था, और धारा के परमार राजा मुंज को हरा दिया। राजराज चोल तैलप का बड़ा प्रबल शत्रु था, जिसने उसकी मृत्यु के पश्चात् वेंगी प्रदेश को तहस-नहस कर डाला। परन्तु तैलप के उत्तराधिकारी सोमेश्वर ने जो युद्ध-क्षेत्र का पहलवान था, तत्कालीन चोल राजा को हरा दिया और धारा और कांची पर भी आक्रमण किये और सफलता प्राप्त की। सन् १०७६ ई० में छठा विक्रमादित्य गद्दी पर बैठा। उसने ५० वर्ष तक शांतिपूर्वक राज्य किया जो उस समय बड़ी असाधारण बात थी। उसके राज्य में कला और साहित्य की भी उन्नति हुई। बिल्हण कवि और मिताक्षरा के रचयिता प्रसिद्ध न्यायज्ञ विज्ञानेश्वर दोनों ने उसी के राजत्व काल में अपनी विख्यात कृतियाँ लिखीं। विक्रम की मृत्यु के पश्चात् चालुक्यों की शक्ति शीघ्रता से क्षीण होने लगा। तैलप के भूतपूर्व मन्त्री बिज्जल ने राजशक्ति छीन ली और एक नए वंश की नींव डाली।

बिज्जल के प्रभुत्व पाने के साथ ही शैव भक्ति का प्रचार हुआ। इस नवीन आन्दोलन का नेतृत्व बासव ने किया। लिंगायत सम्प्रदाय की उन्नति हुई। उसकी शक्ति बढ़ चली और बौद्ध तथा जैन धर्म की शक्ति क्षीण हो गई। चालुक्यों ने एक बार फिर राजदण्ड ग्रहण करने का प्रयास किया, परन्तु वे असफल रहे। दक्षिण तीन राज्यों में विभक्त हो गया—यादव वंश जिसकी राजधानी देवगिरि में थी, वारंगल के काकतीय और द्वारसमुद्र के होयसल बल्लाल। अपने अपने प्रभुत्व के लिए दक्षिण के इन तीनों राज्यों में युद्ध होते रहे। परिणाम यह हुआ कि वे दुर्बल हो गये और मुसलमानों की विजय का मार्ग सरल हो गया। अलाउद्दीन के प्रसिद्ध सेनानायक मलिक काफूर ने शक्तिशाली देवगिरि के यादव राजा को हरा दिया और काकतीयों और बल्लालों को दिल्ली की अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया।

सुदूर दक्षिण—बहुत प्राचीन काल में दूर दक्षिण में तीन राज्य थे—पाड्य, चोल और चेर अथवा केरल। पाड्य प्रदेश में वर्तमान मदुरा और तिनवैली जिले और त्रिचनापल्ली तथा त्रावणकोर राज्यों के कुछ भाग सम्मिलित थे। चोल

राज्य में मद्रास तथा पूव के कुछ अन्य जिले और मसूर के भाग सम्मिलित थे। चेर अथवा केरल की सीमाओ का ठीक पता नही, परन्तु विद्वानो का सामान्य मत यह ह कि इसमें मलाबार के जिले और कोचीन तथा त्रावणकोर का अधिकाश भाग सम्मिलित था। ईसा के शताब्दियो पहले इन तीनो राज्यो की शक्ति और प्रभाव बहुत था। प्राचीन रोम और मिस्र से उनके व्यापारिक सम्बध थे। परतु ईसा की दूसरी शताब्दी में पल्लवो की एक नई शक्ति का उदय हुआ, जो तलगू और वेगीपुर तथा पालघाट से लेकर पश्चिमी समुद्रतट के प्रान्तो पर राज्य करते थे। धीरे धीरे इन्होने अपनी शक्ति बढा ली और दूर दक्षिण के इन प्राचीन राज्यो को जीत लिया और चालुक्य राजाओ के सघर्ष में आये। चालुक्य राजा पुलकेशिन द्वितीय ने पल्लव राजा महेन्द्रवमन प्रथम को पूणरूप से पराजित कर दिया और वेंगी प्रदेश को अपने राज्य में मिला लिया। अपने राज्य के एक महत्त्वपूण प्रदेश के हाथ से निकल जाने पर, पल्लवो ने अपनी शक्ति सुसगठित की और अगले साल ही चालुक्य राज को अपने किये का फल चखा दिया। जब आठवी शताब्दी के मध्य में राष्ट्रकूटो ने चालुक्यो को पराजित किया, तो उन्होने उत्तराधिकार मे इन राजवशो की पारस्परिक कलह भी प्राप्त की। नवीन और सशक्त राजवश के आक्रमणो के सामने, जो ऐतिहासिक रगभूमि में प्रथम बार ही पदापण कर रहा था, पल्लवो का अपनी रक्षा करना कठिन हो गया। आतरिक विद्रोह तथा दक्षिण के गगो के गिरोहो के कारण पल्लवो का पतन शीघ्रता से होने लगा। दक्षिण में अब चोल वश का प्रभुत्व हो गया। राजराज चोल ने ९८५ ई० में स्वतत्र राज्य की स्थापना की और सुदूर देशो तक उसकी विजयवाहिनी घूम आई। १००५ ई० तक उसने अपने सभी प्रति-द्वंद्वियो को हरा दिया और विशाल साम्राज्य की स्थापना की। परन्तु निरन्तर युद्धो का भार दक्षिण का यह शक्तिशाली शासक भी न सँभाल सका। सन् १०११ ई० में उसने प्रसन्नता से अपनी तलवार म्यान में रख दी और शासन प्रबध सुधारने में लग गया। उसका पुत्र राजेन्द्र चोल (१०१८–१०४२ ई०) भी, चोल प्रथा के अनुसार, अपने पिता के साथ शासन में भाग लेता था। वह बडा सुयोग्य शासक हुआ और उसने सफलतापूवक अपने पिता की युद्ध-नीति पालन किया। वतमान ब्रह्मा में प्रोमऔर पेगू तथा बगाल तक उसके शस्त्रो ने

किया। उड़ीसा को उसने रौंद डाला और अंडमान तथा नीकोबार द्वीप जीत लिये। मैसूर के उन गर्गों को भी उसने हरा दिया जिन्होंने पल्लवों को तंग किया था। इस धूर्त शासक ने अपने राज्य प्रसार की नीति का पालन करने के लिए कल्याणी के उस चालुक्य राजा से वैवाहिक सम्बंध स्थापित किया जो अब तक उसका प्रबल प्रतिद्वंद्वी था। इस विवाह के फलस्वरूप कुलोत्तुंग प्रथम (१०७०-१११८ ई०) का जन्म हुआ, जिसमें चोल और चालुक्य दोनों वंशों की शक्ति सम्मिलित थी।

राजेंद्र की मृत्यु के पश्चात् चोल राज्य की शक्ति क्षीण होने लगी। जिन पड़ोसी राजाओं को चोल राज्यों ने पराजित किया था, उन्होंने अब उसके विरुद्ध अपनी सेनाएँ संगठित कीं। चालुक्य सेना ने चोल राजा को हरा दिया और इस पराजय ने चालुक्य और चोल राज्य की सीमाएँ निश्चित कर दीं। पांड्य, चेर और गंग स्वतंत्र हो गये। राज्य की अव्यवस्था का पता इस बात से लगता है कि एक के पश्चात दूसरे राजा को या तो सेना ने मार डाला अथवा बलात गद्दी से उतार दिया। इस प्रकार जल्दी जल्दी राज परिवर्तन होता गया। सन् १०७० ई० में सोमेश्वर द्वितीय और उसके छोटे भाई विक्रमादित्य में चालुक्य गद्दी के लिए संघर्ष हुआ। वीरराजेंद्र चोल का पूर्वी चालुक्य वंश का राजेन्द्र चोल प्रबल प्रतिद्वंद्वी था। इस गृह-युद्ध में विक्रमादित्य की विजय हुई। उसने चालुक्य गद्दी पर अधिकार कर लिया और अपने बहनोई अधिराजेंद्र चोल को फिर से पतक राज्य का स्वामी बना दिया। परंतु अधिराजेंद्र चोल जो पूर्णरूप से चालुक्य सहायता पर निर्भर रहता था, प्रजा का विश्वासपात्र न हो सका। कुछ दिन बाद उसका वध हो गया। उसके कोई पुत्र अथवा अन्य पुरुष उत्तराधिकारी न था। अतः राज्य राजेंद्र चालुक्य के हाथ में चला गया जो इतिहास में कुलोत्तुंग प्रथम (१०७०-१११८ ई०) के नाम से विख्यात है।

कुलोत्तुंग प्रथम बड़ा योग्य शासक था। उसने अपने विस्तृत साम्राज्य में शान्ति स्थापित कर दी थी। उसने अनेक देशों को जीता था, परंतु अन्य शासकों की अपेक्षा वह अपने राज्य के सुप्रबंध और उस पर ध्यान देने के लिए प्रसिद्ध है। अपने राज्यकाल के अंतिम भाग में होयसल राजा बिट्टिदेव अथवा विश्व-वर्धन (११००—११४१ ई०) ने गंग प्रदेश से चोल शासकों को निकाल दिया

और मृत्यु के पहले उस समस्त प्रदेश पर अधिकार कर लिया जो आजकल मैसूर राज्य में सम्मिलित है।

इस बीच पाड्यो की भी शक्ति बढ गई और चोल साम्राज्य को होयसल, काकतीय और पाड्य सबकी चोटें सहन करनी पडी। पाड्य वश का अतिम शक्तिशाली सम्राट् सुन्दरम् पाड्य* था। १२९३ ई० में उसकी मृत्यु हो गई थी। उसने समस्त तामिल देश और लका को विजय कर लिया था। वेनिस का प्रसिद्ध यात्री मार्को पोलो तेरहवी शताब्दी में दक्षिण भारत में आया था। उसने पाड्य राजा के अपार धन और महान् शक्ति की बात लिखी है। परन्तु सन् १३१० ई० में काफूर के आक्रमणो और मुसलमानो की कट्टरता के कारण दक्षिण की राजनीतिक व्यवस्था नष्ट हो गई और सारे देश मे बडी अव्यवस्था फैल गई। चोल और पाड्य राज्यो की शक्ति शीघ्रता से क्षीण होने लगी और अत में मुसलमानो के आक्रमणो ने उनका अन्त कर दिया। सन् १३३६ ई० में विजयनगर के उदय होने के पहले दक्षिण मे एकसूत्रता स्थापित न हो सकी।

सहायक ग्रन्थ

१ स्मिथ—अरली हिस्ट्री ऑफ इडिया
२ वद्य—मिडियवल हिन्दू इडिया
३ ईश्वरीप्रसाद—हिस्ट्री ऑफ मिडियवल इडिया
४ फाबज—रासमाला
५ टॉड—ऐनल्स ऑफ राजस्थान, भाग ३, क्रुक द्वारा सम्पादित
६ आर डी बनर्जी—हिस्ट्री ऑफ बगाल
७ ओझा—हिस्ट्री ऑफ राजपूताना, भाग ३
८ इम्पीरियल गजेटियर—भाग २
९ भडारकर—पीप्स इटू दी अरली हिस्ट्री आफ दी डकन
१० के आयगर—एशेंट इडिया।

---

*मारकोपोलो ने उसे मदुरा में राज्य करते पाया था।

अध्याय ३

सिंध पर अरब लोगों का आक्रमण

अरब निवासी—सबसे पहले मुसलमान जो भारत में आये थे, वे तुर्क नहीं थे, वरन् अरबवासी थे। पैगम्बर साहब की मृत्यु के पश्चात् अपने मरुदेश को छोडकर वे विजय के लिए निकल पडे। बीस वर्ष के भीतर वे सीरिया, पलिस्टाइन (फिलस्तीन), मिस्र और ईरान के स्वामी बन गये, इसके पश्चात् वे पूर्व की ओर मुडे। ईरान की विजय के पश्चात् उन्होंने पूर्व की ओर प्रसार की बात सोची और जब उन्होंने शीराज तथा हुरमुज से भारत के समुद्र-तट पर उतरनेवाले सौदागरों से भारत के अपार धन और मूर्त्ति पूजा का हाल सुना, तो उन्होंने प्राकृतिक बाधाओं की कुछ भी चिन्ता न कर, भारत पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया। पहला आक्रमणकारी दल जिसका उल्लेख है, सन् ६३६-३७ ई० में उमर की खिलाफत के समय भारत के समुद्र तट को लूटने के लिए भेजा गया था। इन प्रारम्भिक आक्रमणों का उद्देश्य विजय करना नहीं, वरन लूटमार करना था। परन्तु यह कार्य इतना कठिन तथा भयावह समझा गया कि खलीफा ने इन सुदूर धावों का परामर्श नहीं दिया और इस प्रकार के भावी प्रयासों को रोक दिया। परन्तु उमर के उत्तराधिकारियों ने इस प्रतिबन्ध को शिथिल कर दिया। परिणाम यह हुआ कि प्रतिवर्ष नये देशों की खोज में मुसलमान घर से निकलकर नवीन आक्रमणों की योजना करने लगे। ६४३-४४ ई० में अब्दुल्ला बिन अमर बिन रबी ने किरमान पर आक्रमण किया और सीस्तान अथवा सिविस्तान की ओर चल

पडा। वहाँ के शासक को उसने राजधानी में घेर लिया और संधि के लिए बाध्य किया। इसके पश्चात् विजेता आक्रमणकारी मेकरान की ओर चल पडा। सिंध और मेकरान के राजाओं की संयुक्त सेनाओं ने उसका सामना किया, परन्तु एक रात के युद्ध में ही उनकी हार हो गई। अब्दुल्ला अपनी विजयवाहिनी को सिंध नदी के पार ले जाना चाहता था, परन्तु खलीफा की सतर्क नीति उनके मार्ग में बाधक हुई। उसने उसे आगे बढने से रोक दिया।

इस्लाम के शस्त्रों ने प्रत्येक स्थान पर आश्चर्यजनक विजय प्राप्त की। मिस्र, सीरिया, कार्थेज तक वे लोग कुछ ही वर्षों में पहुँच गये। ७१० ई० में ग्वाडालेट के युद्ध में मूरों ने स्पेन के गोथिक राज्य को नष्ट कर दिया। उन्होंने देश में अपनी सत्ता स्थापित की और यूरोप की अर्द्ध सभ्य जातियों में अरब संस्कृति के तत्त्व सम्मिलित किये। उन्होंने आमू नदी तक ईरान रौंद डाला और वहाँ तक के सारे प्रदेश को खिलाफत में मिलाने की चेष्टा की। इन पूर्वी विजयों से खिलाफत की शक्ति और प्रतिष्ठा बहुत बढ गई। उमय्या वंश के अधिकार में खिलाफत राज्य बहुत शक्तिशाली हो गया। इराक के शासक पक्के साम्राज्यवादी थे। हज्जाज की अधीनता में, जो उस सारे प्रदेश पर राज करता था, विजय का बडा भारी उत्साह रहा। बुखारा, खोजन्द, समरकन्द और फरगाना मुसलमानों ने जीत लिये। कुतैबा को काशगर भेजा गया। उसने चीनियों के साथ संधि की। काबुल के बादशाह के विरुद्ध एक सेना भेजी गई। दूसरी सेना सिंध में देवल* के लुटेरों को दंड देने के लिए भेजी गई, जिन्होंने लंका के राजा द्वारा खलीफा और हज्जाज को भेजे गये बहुमूल्य उपहारों से भरे हुए आठ जहाजों को लूटा था। परन्तु यह दंड विधायक आक्रमण, जिसको खलीफा ने हज्जाज की विशेष प्रार्थना पर स्वीकृत किया था, असफल रहा, और सिंधियों ने इसके नायक को मार डाला। इस विनाशकारी असफलता से लज्जित और अपमानित होकर हज्जाज ने सिंधियों से बदला लेने का निश्चय किया और दूसरे आक्रमण की योजना की, जो पहले से अधिक व्यवस्थित थी और जिसकी तयारी भी अधिक थी। मुहम्मद बिन कासिम

* ठट्ट और देवल समानार्थी हैं। इसके ऊपर ऐबट ने अपनी पुस्तक में (पृ० ४३-५५) विस्तृत रूप से विचार किया है। मेजर रेवर्टी द्वारा अनूदित तबकात नासिरी १ जिल्द, पृ० २९५ (नोट २) भी देखिए।

को इसका सेनापति बनाया गया। ज्योतिषियो ने उसी के भाग्य सबसे अच्छे बतलाये थे।

मुहम्मद बिन कासिम का सिंध का आक्रमण—मुहम्मद बिन कासिम का सिंध का आक्रमण इतिहास की बडी रोमाचकारी घटना है। विकसित यौवन, अदम्य साहस और वीरता, आक्रमण में उच्च आचरण और अंत में करुण पतन सबने मिलकर उसके जीवन में शहीद का सा चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। नव-यौवन के उत्साह और युद्धप्रियता के कारण लोगो को उससे बडी आशाएँ हुई। उन सब आशाओ को लेकर हज्जाज द्वारा भेजे हुए ६ सहस्र छटे हुए सीरिया और इराक के वीरो के साथ और इतने ही सशस्त्र ऊँट सवारो को तथा तीन सहस्र वैक्ट्रिया के ऊँटो को लेकर, मुहम्मद बिन कासिम भारत के आक्रमण के लिए चल दिया। खलीफा ने उसे आवश्यकता और विलास की सभी सामग्री दी, उसकी नियुक्ति सगोत्र होने के कारण हुई, उसकी योग्यता के कारण नही। जब मुहम्मद मेकरान पहुँचा, तो वहाँ का शासक मुहम्मद हारून उससे आ मिला। उसने उसे सेना भी दी और पाँच कैंटापल्ट दिये। अन्य आवश्यक सहायता देकर उसे देवल भेज दिया। इन अरब सिपाहियो के अतिरिक्त मुहम्मद बिन कासिम ने जाटो और मेडो को भी सेना में भरती किया जो हिन्दू राज्य से असतुष्ट थे, क्योकि वहाँ उनका बडा अपमान किया गया था। उनको जीन पर सवारी करने अच्छे वस्त्र पहनने और सिर खोलने की अनुमति ही न थी। वे लकडी काटने और पानी भरने के ही योग्य समझे जाते थे। वे इस व्यवहार से इतने असतुष्ट और बदला लेने के लिए आतुर थे कि तुरन्त ही विदेशियो से मिल गये और शत्रु सेना में भर्ती हो गये। भारत की भूमि पर कुछ अधिकार कर लेने के बाद मुहम्मद बिन कासिम ने इन सिपाहियो का कोई सम्मान नही किया, परन्तु इस राष्ट्रीय सहानुभूति को विभाजित कर देने से, उसको इस देश का ज्ञान प्राप्त करने में बडी सहायता मिली, जिससे उसके आदमी बहुत कम परिचित थे।

७१२ ई० की वसन्त ऋतु में मुहम्मद देवल पहुँच गया। वहाँ उसको अनेको सिपाहियो और युद्ध सामग्री की सहायता मिली। इसके पश्चात मुहम्मद के सिपाहियों ने खाई खुदवाना प्रारम्भ कर दिया। भालेवाले सशस्त्र सैनिक इनकी रक्षा के

लिए नियुक्त हुए। प्रत्येक व्यूह का अपना अलग झंडा था। मजनीक का सचालन करने के लिए पाँच सौ मनुष्य नियुक्त थे। देवल में एक मन्दिर था। इसके शिखर पर लाल झडा फहरा रहा था। इसको मुसलमानो ने गिरा दिया। मूर्तिपूजक हिंदू जनता यह देखकर स्तम्भित हो गई। घोर युद्ध हुआ। इसमें मुसलमानो ने हिंदुओ को हरा दिया। देश में लूटमार की छुट्टी दे दी गई। तीन दिन तक हत्याकाड और लूटमार की धूम रही। नगर-शासक बिना युद्ध किये ही भाग गया। विजयी सेनाध्यक्ष ने मुसलमानो के लिए एक नया मुहल्ला बसाया, एक मसजिद बनवाई और चार सहस्र सिपाहियो को नगर की रक्षा के लिए नियुक्त कर दिया।

देवल पर अनायास ही अधिकार कर लेने के पश्चात् मुहम्मद बिन कासिम नीरून की ओर बढा। वहाँ के निवासियो ने बिना युद्ध के ही आत्म-समपण कर दिया और युद्ध-सामग्री देकर स्वतन्त्रता प्राप्त की। तब उसने सिंध नदी पार करने के लिए नावो का एक पुल बनवाने की आज्ञा दी। यह देखकर दाहिर को बडा आश्चय हुआ, इसकी उसे बिलकुल आशा न थी। वह अपनी सेना लेकर लौट पडा और रावर पर शत्रु का सामना करने के लिए पडाव डाला। यहाँ पर अरब लोगो को युद्ध के भयकर हाथियो और दाहिर के नेतृत्व में युद्ध के लिए उत्सुक ठाकुरो की सेना का सामना करना पडा। एक अग्निवाण दाहिर के हौदे में लगा, जिससे वह जलने लगा। दाहिर पृथ्वी पर गिर पडा, परन्तु तुरन्त खडा होकर एक अरब सिपाही से युद्ध करने लगा, जिसने दाहिर के सिर के बीचोबीच में तलवार का ऐसा हाथ दिया कि गदन तक कट गई। अपने वीर राजा और सेनानायक की मृत्यु से निराश होकर हिन्दुओ ने मुसलमानो पर बडे क्रोध से आक्रमण किया। परन्तु अत में उनकी हार हुई। मुसलमानो ने घोर हत्याकाड द्वारा अपना विजयोत्सव किया। दाहिर की पत्नी रानीबाई और उसका पुत्र रावर के दुग में चले गये। घोर विपत्ति, मृत्यु और अपमान को सामने देखकर दुग में घिरे हुए निराश स्त्री पुरुषो ने वीरता का ज्वलत उदाहरण उपस्थित किया। अपनी वश-परम्परा के अनुसार इस वीर रमणी ने अपने स्वामी के शत्रुओ से युद्ध करने का निश्चय किया। उसने बचे हुए पद्रह सहस्र सिपाहियो को युद्ध के लिए फिर प्रेरित किया। शीघ्र ही पत्थर, भाले और बाण दुग-

गुम्वदा से शत्रु सेना पर वरसन लगे, जो दुग की दीवारा के सहारे डेरा डाले पडे थे। परतु अरव लोगों के सामने उनकी एक न चली। उन्होने बडी योग्यता और शक्ति से घेरा डाला। जब रानी ने अपनी पराजय निश्चय समझी, तो दुग की सब स्त्रियो को इकट्ठा करके उनसे कहा —"ईश्वर न करे गो भक्षक विधर्मी हमारी स्वतत्रता के स्वामी बनें। इससे हमारा सम्मान नष्ट हो जायगा। अब ठहरने का समय नही, बचने की अब कोई आशा नही। अब हमको लकडी, रुई और तेल इकट्ठा करना चाहिए और स्वग में अपने अपने स्वामियो से मिलन के लिए अग्नि में जल जाना चाहिए। यदि कोई स्त्री जीवित रहना चाहे, तो रह सकती ह।" इसके पश्चात् उन्होने एक घर में प्रवश किया और भीषण अग्निकाड द्वारा अपनी जाति और अपने वश के मान की रक्षा की।

मुहम्मद ने दुग पर अधिकार कर लिया। ६,००० मनुष्यो का उसने वध करा दिया और दाहिर के समस्त कोष को छीन लिया। अपनी सफलता से उत्साहित होकर वह ब्राह्मणावाद की ओर बढा। वहा के निवासियो ने तुरत आत्मसमपण कर दिया। देश की व्यवस्था प्रारम्भ हो गई। जिन्हाने इस्लाम स्वीकार कर लिया, वे दासता, कर और जजिया से मुक्त कर दिये गये। जिन्हाने अपने पूवजो के धम के अवलम्बन का निश्चय किया, उन्ह व्यक्ति कर (Poll tax) देना पडता था। जजिया तीन प्रकार से लगता था। पहली कोटि के लोगो को अडतालीस दिरहम के बराबर चाँदी देनी पडती थी, दूसरी कोटि को चौबीस दिरहम और सबसे निम्न तृतीय कोटिवालो को बारह दिरहम बराबर चाँदी देनी पडती थी। जब ब्राह्मणावाद के लोगा ने मुहम्मद बिन कासिम से धम की स्वतत्रता की प्राथना की तो उसने इस सम्बध में हज्जाज से पूछा। हज्जाज ने यह उत्तर भेजा —"क्योकि उन्हाने आत्मसमपण कर दिया है और खलीफा को कर देना भी स्वीकार कर लिया है अत उनसे और कुछ माँगना उचित नही। उनकी रक्षा का भार हमारे ही ऊपर है। अत उनका जीवन और सम्पत्ति अपहरण करने के लिए हम स्वय अपना हाथ नही बढा सकते। अपने देवी-देवता पूजने की उनको आज्ञा प्रदान की जाती है। अपना धम पालन करने से किसी को न रोका जाय और न मना किया जाय। अपने घरो में वे चाहे जिस प्रकार रहें।" इसके पश्चात मुहम्मद बिन कासिम

देश की पुनर्व्यवस्था करने में लग गया। सारी प्रजा चार वर्गों में विभाजित कर दी गई। प्रत्येक व्यक्ति को बारह दिरहम के बराबर चाँदी दे दी गई, क्योंकि उनकी सम्पत्ति छीन ली गई थी। ब्राह्मणों के साथ अच्छा व्यवहार हुआ और उनके सम्मान की रक्षा की गई। राज्य-प्रबन्ध में उनको अधिकार मिला और देश का कार्य-भार उनको सौंप दिया गया। माल के पदाधिकारियों से उसने कहा— "सुलतान और प्रजा दोनों के हितों की रक्षा करना तुम्हारा काम है। यदि कहीं विभाजन की आवश्यकता पड़े, तो निष्पक्ष होकर करो। करदाता की शक्ति के अनुसार राजस्व निश्चित किया जाय। आपस में सामंजस्य रक्खो और पारस्परिक विरोध न करो, जिससे प्रजा को कष्ट न हो।" धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गई और ब्राह्मणों की इच्छाओं का मान होने लगा।

ब्राह्मणाबाद की विजय के पश्चात् सिंध की ऊपरी घाटी के प्रधान नगर मुल्तान की विजय हुई। दुर्ग के सिपाही तलवार के घाट उतार दिये गये। मुल्तान के योद्धा और गणाधीश दास बना लिये गये। मुल्तान के लोग, व्यापारी, सौदागर, कारीगर तथा पारिपार्श्विक प्रदेश के जाट और भार, जिनको देशी राजाओं ने पीड़ित किया था, विजेता के सामने उपस्थित हुए और श्रद्धांजलि अर्पित की। वहाँ भी देश का बन्दोबस्त हुआ। जजिया देने पर मुहम्मद बिन कासिम ने गैर विधर्मियों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान कर दी और उनको प्राणदान दे दिया। मुल्तान को जीतने के पश्चात् उसने अपने एक सेनानायक अबू हाकिम को [illegible] सहस्र घुड़सवारों के साथ कन्नौज की ओर भेजा, परन्तु नवीन आक्रमण को व्यवस्थित करने के पूर्व ही उसको खलीफा का आज्ञा-पत्र मिला।

मुहम्मद बिन कासिम की मृत्यु—इन महत्त्वपूर्ण विजयों के पश्चात् मुहम्मद का विनाशकारी अंत आया। वह भावी दुर्भाग्य से किसी भी प्रकार अपनी रक्षा न कर सका। जिस द्रुत गति से उसका उत्थान हुआ था, उसी द्रुत वेग से उसका पतन भी हुआ। इतिहासकारों का कहना है कि जब राजा दाहिर की बंदी कन्याएँ परमाल देवी और सूरज देवी [illegible] के लिए सामने उपस्थित की गईं तो [illegible] राजकुमारियों ने यह कथा [illegible] मुहम्मद बिन कासिम ने [illegible]

के अत पुर के योग्य नही रही। यह सुनकर खलीफा आपे से बाहर हो गया और बिना कुछ सोचे समझे तुरन्त आज्ञा दी कि मुहम्मद बिन कासिम को बल की कच्ची खाल में सीकर तुरन्त राजधानी भेज दिया जाय। खलीफा की शक्ति और उसका महत्त्व इतना अधिक था कि इस आज्ञा के पाते ही मुहम्मद ने स्वेच्छा से ही बैल की खाल में अपन आपको सिलवा लिया। मीर मासूम ने लिखा है—"तीन दिन पश्चात् उसके प्राण-पखेरू उड गये।" एक सदूक में बन्द उसका शव खलीफा के पास भेजा गया। उसने आज्ञा दी कि दाहिर की पुत्रियो के सामने सन्दूक खोला जाय। अपने पिता के घातक की मृत्यु पर पुत्रियो ने बडी प्रसन्नता प्रकट की, परन्तु खलीफा से उन्होंने कह दिया कि मुहम्मद निर्दोष था। खलीफा को बडा पश्चात्ताप हुआ, परन्तु अब क्या हो सकता था? उसने आज्ञा दी कि राजकुमारियो को घोडो की पूछ से बाँध दिया जाय और जब तक प्राण न निकल जायँ, तब तक घसीटा जाय। इस प्रकार उस वीर युवक का अत हुआ, जिसने तीन वर्ष के अल्प समय में सिंध प्रदेश को जीतकर भारत भूमि पर खलीफा का प्रभुत्व स्थापित कर दिया था। यह कहानी कुछ कपोल-कल्पित सी प्रतीत होती है। मुहम्मद बिन कासिम की मृत्यु के सम्बध में इतिहासकारो में बडा मतभेद ह। परन्तु फतूहे बुल्दान का वणन कि मुहम्मद पकड-कर शृखलाओ में बाँध दिया गया और खलीफा की आज्ञा से पीडा दे देकर मार डाला गया, अय मतो की अपेक्षा सत्य प्रतीत होता है।

सिंध देश पर अरबों का अधिकार—अधिकाश आवश्यकता के कारण ही शासन प्रबध का कुछ भाग सिंधवासियो के ही हाथो में सौंपा गया। इस विजय से बहुत सा प्रदेश अरबवासियो के हाथ लगा। दानग्रहीताओ द्वारा युद्ध के समय सहायता देने के वचनपर इलाके बख्श दिये गये। सदकाब (दान) के अतिरिक्त उनसे और कोई कर नही लिया जाता था। मुसलमान सिपाहियो को खेती करने की आज्ञा नही थी। अत कृषि के श्रम का भार देशी प्रजा पर ही पडा, जिनकी दशा दासो और गुलामो की सी हो गई। कुछ सिपाहियो को भूमि दे दी गई और कुछ को वेतन दिया जाता था। कुरान शरीफ के अनुसार लूट का ⅘ भाग सिपाहियो में बाँट दिया गया और ⅕ भाग खलीफा के लिए रक्खा गया। ऐसा प्रतीत होता है कि इस नियम का खलीफा अक्षरश पालन करते थे, क्योंकि उनको सिपाहियो के

विरोध का सदैव भय रहता था। धार्मिक वृत्ति-दान दिये गये और धार्मिक व्यक्तियो तथा मठाधीशो को भूमिदान (वक्फ) कर दी गई। अरब सिपाही भारत में बस गये। भारतीय स्त्रियो से उन्होने विवाह कर लिया। इस प्रकार धीरे-धीरे अनेक सामरिक उपनिवेश बस गये। गृहस्थी के सुख मे वे लोग विदेशवास का दुःख भूल गये।

बाद में आनेवाले तुर्कों की भाँति अरब निवासियो में कट्टरता न थी। वे हिन्दुओ के प्रति सहिष्णु थे। इसका कारण यह नही था कि दूसरे धर्मों का आदर करते थे, वरन् वे यह समझते थे कि विजित जातियो के धर्म को धर्म में परिवर्तित करना सम्भव नही। प्रारम्भ में अवश्य भयानक धार्मिक असहिष्णुता तथा कट्टरता के दर्शन हुए। मंदिर अपवित्र कर दिये गये। मुल्तान में सूर्य के मंदिर पर आक्रमण हुआ और मुहम्मद बिन कासिम ने इसके अपार धन को लूट लिया। परन्तु बाद में विजित प्रजा के साथ सहनशीलता का व्यवहार हुआ और धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गई।

भूमि-कर और जजिया आय के प्रधान साधन थे। यदि सिंचाई राजकीय नहरो से होती थी तो जौ और गेहूँ की उपज का $\frac{2}{5}$ भाग भूमि कर लिया जाता था। बिना सिंचाई के खेतो से $\frac{1}{4}$ भाग भूमि कर लिया जाता था। खजूर, अंगूर आदि बागो की उपज का $\frac{1}{3}$ भाग लिया जाता था। इस कर को किसान जिस तरह चाहे, दे सकते थे। मदिरा, मछली मारना, मोती इकट्ठा करना आदि की उपज का जो कृषि से नही होती थी, $\frac{1}{5}$ भाग लिया जाता था। इनके अतिरिक्त और भी अनेक कर थे, जो साधारण रूप से सबसे अधिक बोली बोलनेवाले को दिये जाते थे। कुछ जातियो को बडी अपमानपूर्ण आज्ञाओं का पालन करना पडता था। किसी समय अरल नदी के उस पार के रहनेवाले जाटो को शासक से मिलने के लिए आने पर अपने साथ एक कुत्ता लाना पडता था। उनके हाथ दाग दिये जाते थे। व्यय-सम्बन्धी नियमो का कठोरता से पालन होता था। कुछ जातियो को सुन्दर वस्त्र पहनने, घोडे पर सवारी करने और जूता तथा सिर पर टोपी अथवा पगडी पहनने की आज्ञा नही थी। पराधीन जातियो द्वारा चोरी का अपराध बडा भारी समझा जाता था। इस दंड में चोर के स्त्री-बच्चे जलाकर मार डाले जाते थे। प्रत्येक मुसलमान यात्री को स्थानीय जनता को तीन दिन रात तक खिलाना-पिलाना पडता था। इसके अतिरिक्त अन्य अपमानपूर्ण कार्य करने पडते थे,

जिनका वणन मुसलमान इतिहासकारो ने किया है। जजिया ठीक समय पर और बडी कठोरता तथा कभी-कभी अपमान के साथ वसूल किया जाता था। जो मुसलमान नही थे और जिन्हे 'जिम्मी' कहते थे, उनको अपनी आय के अनुसार कर देना पडता था। जो इस्लाम स्वीकार कर लेते थे, वे इससे मुक्त कर दिये जाते थे। हिन्दू और मुसलमानो के बीच होनेवाले झगडो का निणय करने के लिए प्रबन्ध नही था। अमीर और नायक अब भी स्वतत्र थे। अपनी सीमा के अतगत वे भी अपराधियो को प्राणदड दे सकते थे। कुरान शरीफ के अनुसार ही काजी न्याय करते थे। हिन्दू और मुसल्मानो के बीच भी उन्ही सिद्धान्तो का अनुकरण होता था। इससे हिन्दुओ के हित की हानि ही होती थी। सावजनिक तथा राजनीतिक मामलो में हिन्दू और मुसलमानो में कोई भेद नही था, परन्तु ऋण, इकरार, उत्तराधिकारी सम्पत्ति आदि से सम्बन्धित मामलो का हिन्दू पचायतो में निणय कर लेते थे। वे उस समय बडी उत्तमता से काय करती थी। राजकीय न्यायाधिकरणो का काम हिन्दुओ से रुपया एठना और उनका बलात् धम-परिवतन करना था। अरब-निवासियो द्वारा सिंध के शासन प्रबन्ध में सबसे प्रमुख खटकनेवाली बात यह थी कि विजेता और विजित मे सहानुभूति के उन सूत्रो का अभाव था, जो पारस्परिक विश्वास मे उत्पन्न होते है।

अरब-विजय का अस्थायित्व—जिन विभिन्न जातियो द्वारा विजय प्राप्त की गई थी, वे अपने स्वभाव और भावनाओ म एक-दूसरे से इतनी भिन्न थी कि मिलकर काम करना उनके लिए असम्भव था। जब धार्मिक कट्टरता का अत हो गया तो उनकी अयोग्यता प्रकट हुई जिसका रूप उनके मरुप्रदेश की बालू के समान अनिश्चित था और जिसके कारण वे पारस्परिक मेल और सगठन से तथा किसी व्यवस्था के अधीन होकर काय करने में असमथ थे। विभिन्न वशो के वशगत झगडो के कारण उनकी स्थिति और भी दुबल थी। शिया तथा अन्य नास्तिक सम्प्रदायो के सपीडन के कारण दशा और भी अधिक बिगड रही थी। स्टेनली लेन पूल ने सत्य ही कहा है कि "अरबवासियो की भारतीय विजय, इस्लाम और भारत के इतिहास का एक अपूण अध्याय है जिसका देश पर कोई स्थायी प्रभाव नही रहा।" सिंध प्रान्त की

भूमि ऊजड और कृषि के अयोग्य थी। अरबवासियो ने शीघ्र ही अनुभव कर लिया कि खिलाफत ने इस प्रान्त का रखना आर्थिक दृष्टि से हितकर नही। यहाँ के हिन्दू निवासी दार्शनिक और परम्पराप्रेमी थे। अपने विजेताओ के वैभव, शक्ति और सम्पत्ति को वे घृणा की दृष्टि से देखते थे। उनकी आत्मा को वे नही जीत सके। अत बर्बर आक्रमणो से हिन्दू समाज में कोई परिवर्तन नही हुआ। भारत में स्थायी साम्राज्य स्थापित करना अरबो के लिए असम्भव हो गया। राजपूतो के पास इस समय भी उत्तर और पूर्व भारत में महत्त्वपूर्ण राज्य थे, अपने देश पर आक्रमण करनेवाले विदेशियो से वे प्रत्येक इन्च भूखण्ड के लिए युद्ध करने को तैयार थे। मुहम्मद बिन कासिम की विजय अपूर्ण रह गई, और उसकी मृत्यु के बाद भारत में अरबनिवासियो की स्थिति बडी दुर्बल हो गई। इसका एक कारण यह भी था, कि खलीफा अपने प्रतिनिधियो को पर्याप्त सहायता नही भेजते थे। उधर खलीफाओ की शक्ति भी क्षीण हो चली थी। सुदूर देशो में उनका प्रभुत्व घट गया, और वे दूरवर्ती प्रान्त खलीफाओ की शक्ति और अधिकार की अवहेलना करने लगे। सिंध प्रदेश अनेक छोटे छोटे तथा स्वतन्त्र राज्यो में विभक्त हो गया। सिंध में जो अरबनिवासी बस गये थे, उन्होने अपनी अलग ही वंशपरम्परा बना ली और सिंधु नदी के ऊपरी तथा नीचे के भागो में सयद वंश के नायको ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। कुछ थोडे से उपनिवेश और कतिपय परिवार ही अरबवासियो की भारत विजय के अवशिष्ट स्मृति चिह्न रहे। अपने जाने के बाद भवनो, पडावो अथवा सडको के रूप में उन्होने कोई वस्तु नही छोडी। भाषा, वास्तुकला, ललित कला, परम्परा रीति रिवाज और आचरणो पर उनका कुछ प्रभाव न पडा। प्राचीन भवनो के खण्डहर ही शेष रह गये, जो अपने विनाशकर्त्ताओ की राक्षसी प्रवृत्ति की घोषणा ससार के सामने कर रहे है। अपने नष्ट किये हुए भवनो से उन्होने कुछ दुर्ग, नगर और महल अवश्य बनाये थे, जो कालचक्र की स्वाभाविक गति से नष्ट हो चुके है।

अरब विजय का सांस्कृतिक प्रभाव—इसमें कोई सन्देह नही कि राजनीतिक दृष्टि से अरबो द्वारा भारत की विजय मुसलमान इतिहास की बहुत ही

तुच्छ घटना है, परन्तु मुस्लिम संस्कृति पर इस विजय का बहुत ही गम्भीर एवं सुदूरव्यापी प्रभाव पड़ा। इस देश की उच्चतर सभ्यता से अरबवासी आश्चर्य-चकित हो गये। हिन्दू-दर्शन की उच्चता तथा हिन्दू बुद्धि की परिपक्वता तथा व्यापकता देखकर उनकी आँखें खुल गई। मुस्लिम अध्यात्म के एकेश्वरवाद से हिन्दू सन्त और दार्शनिक पहले से ही परिचित थे। अरबों ने अनुभव किया, कि मनुष्यत्व को बढ़ानेवाली अन्य उच्च कोटि की कलाओं में भारतवासी उनसे कहीं अधिक बढ़-चढ़े हैं। अरबवासियों ने जितना आदर यहाँ के तत्त्व-ज्ञानियों तथा अन्य विद्वानों का किया, उतना ही यहाँ के संगीतज्ञों, वास्तुकारों तथा चित्रकारों का किया। शासन प्रबन्ध के व्यावहारिक कार्य में अरब वासियों ने हिन्दुओं से बहुत कुछ सीखा। बहुत अधिक परिमाण में ब्राह्मण पदाधिकारियों के नियुक्त होने का कारण उनका नानाविषय, व्यापक अनुभव और राज्य प्रबन्ध के कर्त्तव्यों का योग्यता के साथ पालन करना ही था। भारत की आर्य सभ्यता का अरब सभ्यता पर जो ऋण है उसे मुसलमान इतिहासकार प्रायः भूल ही जाते हैं अथवा बहुत कुछ कम कर देते हैं। अरब सभ्यता की वे बहुत-सी बातें, जिन्होंने बाद में यूरोपीय सभ्यता पर इतना अधिक प्रभाव डाला था, भारत से ही पहुँची थीं। मंसूर की खिलाफत में (७५३–७७४ ई०) बगदाद के दरबार में भारतीय विद्वानों का आदर होता था। जो अरब विद्वान् भारत से बगदाद लौटते थे, वे अपने साथ प्रायः दो पुस्तकें ले जाते थे—ब्रह्मगुप्त द्वारा रचित 'ब्रह्मसिद्धान्त' तथा 'खण्ड खाड्य'। भारतीय विद्वानों की सहायता से इनका अरबी में अनुवाद भी हो चुका था। यहीं से अरबों ने ज्योतिष खगोल* के प्रारम्भिक सिद्धान्त सीखे। हारून की खिलाफत में (७८६–८०८) बरमक वंश के मन्त्रियों ने हिन्दू शास्त्रों के अध्ययन को बड़ा प्रोत्साहित किया।

उन्होंने हिन्दू विद्वानों को बगदाद में बुलाया, उन्हें अपने औषधालयों का अध्यक्ष नियुक्त किया और आयुर्वेद दर्शन, ज्योतिष् तथा अन्य अनेक विषयों के ग्रन्थ संस्कृत से अरबी में अनूदित कराये। जब हलागू द्वारा अब्बासिया वंश के

---

* अल्बरूनी, इंडिया, सचाऊ द्वारा अनूदित, भूमिका पृष्ठ ३१।

अन्त हो जाने पर बगदाद के खलीफाओ का महत्त्व घट गया, तो सिन्ध के अरब शासक एक प्रकार से स्वतन्त्र ही हो गये। सास्कृतिक सम्बन्ध टूट गया और अब भारतीय विद्वानो से सम्पर्क छूट जाने के कारण अरब विद्वान् यूनानी कला, साहित्य, दर्शन और विज्ञान का अध्ययन करने लगे। हम स्टेनली लेनपूल के इस कथन से सहमत है कि सिन्ध विजय का कोई स्थायी राजनैतिक परिणाम नही पडा। परन्तु इतना अवश्य कहना पडेगा कि हिन्दुओ की सस्कृति और विद्वत्ता से अरबवासियो ने बहुत लाभ उठाया।

सहायक ग्रन्थ

लेनपूल—मेडीवल इण्डिया
इलियट और डौसन—हिस्ट्री औफ इण्डिया, प्रथम खण्ड
मारूट—हिस्ट्री औफ सिन्ध
सुलेमान नदवी—अरब एण्ड इण्डिया (हिन्दी तथा उर्दू)
अल्बरूनी—इण्डिया
अमीर अली—हिस्ट्री ऑफ सैरासैन्स
एबट—सिन्ध
ग्रेमर—ओरियण्ट अण्डर दी कलिफस

—

अध्याय ४

गजनवी वंश का उत्थान और पतन

तुर्कों का आगमन—अरब-आक्रमण की असफलता का कारण यह था कि उन्होंने भारत के उजड और मरु प्रान्त पर आक्रमण किया था। कुछ समय के लिए मुसलमानों की विजय का मार्ग अवरुद्ध हो गया था। परन्तु दसवीं शताब्दी में तुर्कों ने बड़े उत्साह और वेग से फिर आक्रमण का कार्य प्रारम्भ किया। अफगानिस्तान की पहाड़ियों के पीछे से अधिकाधिक संख्या में उनका अखंड स्रोत भारत में उतरने लगा। ७५० ई० में उमैयावंश के पतन के पश्चात् अब्बासियों ने खिलाफत की राजधानी दमिश्क से हटाकर अल-कूफा में कर ली और अरबवासियों तथा अन्य देशवासियों के अंतर को दूर कर दिया। अब मुस्लिम विश्व में खलीफाओं का एकाधिकार नष्ट हो चला था। हाल ही में अनेक वंशों ने जो स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिये थे, उनसे खिलाफत का अधिकार सीमित हो गया था। अरबनिवासियों में अब अनेक खंड हो गये और वे स्वार्थी हो गये। इस्लाम के हित को वे गौण समझने लगे, अपना अथवा अपने वंश या कबीले का हित-साधन उनका प्रधान उद्देश्य हो गया। अब्बासियों ने अरबों को व्यवस्थित रूप से पदाधिकार से बहिष्कृत कर उनके पतन की गति को और तीव्र कर दिया। जैसे-जैसे केन्द्रीय सत्ता दुर्बल होती गई, वैसे ही वसे प्रान्तीय क्षत्रप स्वतंत्र होते गये। खलीफाओं के अंगरक्षक बर्बर तुर्क शक्तिशाली और अनुशासन के बाहर हो गये। मिस्र से समरकन्द तक तुर्कों का महत्त्व बढ़ गया और जब उन्होंने समानी वंश को नष्ट कर दिया तो अपने लिए छोटे-छोटे गणराज्यों की स्थापना की। इनमें से कुछ अधिक महत्त्वाकांक्षी गणाधीशों ने विजय प्रेम और समर कला की प्रवृत्ति के कारण भारत का मार्ग लिया। ९३३ ई० में अल्प्तगीन ने गजनी पर अधिकार कर लिया, जहाँ पर समानी वंश के राज्याधिकार में उसका पिता शासक था। वहाँ उसने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। ९६३ ई० में उसकी मृत्यु के पश्चात्]

उसका पुत्र गजनी का स्वामी बना। परन्तु वह अयोग्य था, अत उसके पिता के गुलामो ने प्रभुत्व छीन लिया। इनमें से एक का नाम सुबुक्तगीन था।

अमीर सुबुक्तगीन—भारत का प्रथम आक्रमण—९७६ ई० में वह गजनी राज्य का स्वामी बना। उसको होनहार देखकर अल्प्तगीन ने उसको एक के पश्चात दूसरे विश्वसनीय स्थानो पर नियुक्त किया और काल क्रम मे उसे अमीर-उल-उमरा की उपाधि से विभूषित किया। सुबुक्तगीन बडा योग्य और महत्वाकाक्षी शासक था। अपने स्वामी के छोटे-से राज्य से वह सतुष्ट न था। अत उसने अफगानो को सगठित कर सुव्यवस्थित समुदाय में परिणत किया और उनकी सहायता से लमगान और सीस्तान को जीत लिया और प्रभाव-क्षेत्र को बढाया। समानी वश पर तुर्कों के आक्रमण के कारण उसको अपने पुत्र महमूद के लिए सन् ९९४ ई० में खुरासान प्रान्त पर अधिकार प्राप्त करने का अवसर मिल गया, जिसकी उसको चिर काल से अभिलाषा थी।

धार्मिक ख्याति प्राप्त करने के लिए सुबुक्तगीन भारत विजय की ओर उन्मुख हुआ जो मूर्तिपूजको और (उनकी दृष्टि में) काफिरो का देश था। जयपाल को ही सर्वप्रथम इस आक्रमण को रोकना था। उसका राज्य सरहिन्द से लमगान और काश्मीर से मुल्तान तक फला हुआ था। जब अफगानो ने लमगान देश की सीमा के निकट पडाव डाला, तो जयपाल अत्यन्त भयभीत हो गया और अपने सामने इतनी बडी सेना को देखकर उसने सन्धि का प्रस्ताव किया तथा विजेता का प्रभुत्व स्वीकार करने और कर देने के लिए प्रस्तुत हो गया। सन्धि के इन नियमो को स्वीकार करने के लिए महमूद ने अपने पिता को रोका और इस्लाम तथा मुसलमानो की प्रतिष्ठा के लिए युद्ध करने का अनुरोध किया। जयपाल ने अपना प्रयत्न सक्रम रक्खा और सुबुक्तगीन के लिए निम्न सदेश भेजा—"सकट के समय, जसा कि अब है, आपने हिदुओ का आत्मसम्मान और उनकी मृत्यु से निर्भयता देखी है। इसलिए यदि आप लूट, धन, वैभव, हाथी, बन्दी आदि की आशा में सन्धि करना अस्वीकार करते है तो दृढ निश्चय पर आरूढ होने के अतिरिक्त हमारे पास दूसरा चारा नही है। हम अपनी सम्पत्ति नष्ट कर देंगे, हाथियो की आँखें निकाल लेंगे, बच्चो

को आग में झोंक देंगे और तलवार भाले लेकर एक दूसरे पर टूट पड़ेंगे, अत में आपको पत्थर, धूल, मृत शरीर और बिखरी हुई हड्डियों के अतिरिक्त कुछ नही मिलेगा।" इस समाचार को पाकर सुबुक्तगीन ने संधि कर ली और जयपाल ने दस लाख दिरहम, पचास हाथी और अपने राज्य के कुछ नगर तथा दुर्ग भेंट देना स्वीकार किया, परन्तु शीघ्र ही उसने अपने इस निश्चय को बदल दिया और जयपाल द्वारा भेजे हुए दो पदाधिकारियों को बन्दी बना लिया जो उपर्युक्त कार्य पूरा कराने के लिए भेजे गये थे। जब अमीर सुबुक्तगीन ने इस विश्वासघात की बात सुनी, तो दुष्टता और विश्वासघात के कारण जयपाल को दण्ड देने के लिए वह शीघ्र ही अपनी फौज लेकर हिन्दुस्तान पर चढ आया। जयपाल ने अजमेर, दिल्ली, कालिंजर और कन्नौज के राजाओं से सहायता प्राप्त की और एक लाख सिपाहियों को लेकर आक्रमणकारी के साथ युद्ध करने के लिए युद्धक्षेत्र की ओर बढा।

दूसरा आक्रमण—युद्ध का परिणाम निश्चित सा ही था। सुबुक्तगीन ने दीन के नाम पर अपने धर्मांध अनुयायियों को युद्ध करने के लिए प्रेरित किया। बडी तीव्रता से युद्ध हुआ और हिन्दू हार गये। सुबुक्तगीन ने बहुत भारी कर लगाया और प्रचुर लूट का सामान पाया। उसका अधिनायकत्व स्वीकार कर लिया गया और पेशावर राज्य में उसने अपना एक पदाधिकारी नियुक्त कर दिया। भारत को अभी नही जीता गया परन्तु मुसल्मानों ने उसके उपजाऊ मैदानों का मार्ग देख लिया। बीस साल तक बुद्धिमानी और सहिष्णुता से राज्य कर लेने के पश्चात् अगस्त ९९७ ई० में सुबुक्तगीन मर गया और अपने पुत्र महमूद के लिए एक विस्तृत और सुस्थापित राज्य छोड गया।

महमूद गजनवी, उसकी प्रारम्भिक महत्त्वाकांक्षाएँ—सुबुक्तगीन की मृत्यु के पश्चात् गजनी का राज-दण्ड उसके ज्येष्ठ पुत्र महमूद के हाथों में चला गया। अत्यल्प काल में ही उसकी गणना एशिया के सशक्त शासकों में होने लगी और अपने धन, साहस और न्याय के लिए वह दूर-दूर देशों में प्रसिद्ध हो गया। जन्मजात सिपाही होने के अतिरिक्त उसमें असीम धार्मिक उत्साह और कट्टरता थी जिसके कारण वह इस्लाम का बडा भारी नेता प्रसिद्ध हो गया। महमूद में वास्तव में बडी भीषण धार्मिक कट्टरता और धन तथा शक्ति के लिए अदम्य

तृष्णा थी। अपने बाल्य-काल ही मे उसने सुदूर देशो में पैगम्बर साहब के धम को फैलाने का निश्चय कर लिया था, और खलीफा ने भी जब उसे दीक्षा दे दी, तब उसका उत्साह और भी बढ गया। ऐसे मूर्तिभजक, लोभी के लिए भारतवष बडा अनुकूल क्षत्र था, जिसमें अनेक धम और सम्प्रदाय थे और अपार धन था। उसने समझा कि यहाँ उसकी धार्मिक तथा राजनैतिक महत्त्वाकाक्षाएँ पूण हो सकेंगी। हिन्दुओ के विरुद्ध उसने बार बार जिहाद (धार्मिक युद्ध) किय, और तुर्की बनरो द्वारा लूटे हुए अपार धन को हिदुस्तान से ले गया।

सीमान्त नगरों पर पहला आक्रमण—अपने राज्य की समस्याओ को सुलझाकर महमूद ने भारत पर ध्यान दिया और १०००–१०२६ तक के बीच में १७ आक्रमण किये। पहला आक्रमण १००० ई० में हुआ, जिसने अनेक सीमान्त दुर्गों और प्रान्तो पर अधिकार प्राप्त कर लिया और उनके शासक स्वय नियुक्त कर दिये।

भटिंडा के राजा जयपाल के विरुद्ध—दूसरे वष १०००० चुने हुए घुडसवारो को लेकर वह फिर गजनी से चल दिया। भटिंडा का राजा जयपाल अपनी सारी सेनाएँ इकट्ठी कर ३९२ हिजरी की ८वीं मुहरम को (नवम्बर २८, १००१ ई०) पेशावर में घोर युद्ध हुआ, जिसमें मुसलमानो ने हिन्दुओ को हरा दिया। जयपाल सपरिवार बन्दी बना लिया गया और अपार धनराशि विजेता के हाथ लगी। सन्धि का पालन करने के प्रमाणस्वरूप जयपाल न ५० हाथी दिये तथा अपने पुत्र और पौत्र को धरोहर रख दिया, परन्तु उसने इस अपमान से मत्यु ही श्रेयस्कर समझी और अपमानजनित यन्त्रणा * से बचने के लिए वह आग में जल कर मर गया।

भीरा तथा अन्य नगरों के विरुद्ध—तीसरा आक्रमण (१००४ १००५) भीरा नगर के विरुद्ध हुआ जो नमक की पवतश्रेणी के नीचे झेलम नदी के

* फरिश्ता लिखता ह कि हिन्दुओ में यह प्रथा थी कि जब किसी राजा को विरोधी लोग दो बार हरा देते थे तो वह राज्य करने के अयोग्य समझा जाता था। (ब्रिग्ज प्रथम पृष्ठ ३८)। उतबी ने भी कुछ अन्तर से इसी प्रथा का वणन किया है। (इलियट २ जिल्द पृ० २७)।

बायें तट पर स्थित था। यह नगर शीघ्र ही गजनी राज्य में मिला लिया गया।

मुलतान के नास्तिक राजा अबुल फतह दाऊद ने २० सहस्र स्वर्ण दिरहम वार्षिक कर देने का वचन देकर क्षमा-दान ले लिया। पेशावर के निकट जयपाल के पुत्र आनन्दपाल की हार सुनकर ही उसने तत्काल यह निश्चय कर लिया था। सेवकपाल नाम के हिन्दूधर्मत्यागी मुसलमान को अपने भारतीय प्रदेशों का अधिकार देकर महमूद गजनी लौट गया। परन्तु जैसे ही विजेता की पीठ फिरी वैसे ही सेवकपाल ने इस्लाम धर्म छोड़ दिया और गजनी के अधिनायकत्व को अस्वीकार कर दिया। यह समाचार पाकर महमूद ने लौटकर उसे हटा दिया। विश्वासघात तथा राजद्रोह के लिए चार लाख दिरहम उसको दण्ड देना पड़ा।

आनन्दपाल के विरुद्ध—छठा आक्रमण (१००८९ ई० म) मुलतान के शासक दाऊद को राजद्रोह में सहायता देने के कारण ही आनन्दपाल पर हुआ। मेवाड़ के वीर राणा सांगा की भांति आनन्दपाल ने भी उज्जैन, ग्वालियर, कालिंजर, कन्नौज, दिल्ली और अजमेर के राजाओं का संघ बनाया और आक्रमणकारी से युद्ध करने के लिए पंजाब की ओर बढ़ा। जिस उत्साह के साथ इन राजाओं ने आनन्दपाल का सहयोग दिया उससे प्रकट है कि वे इस बात से पूरी तरह अभिज्ञ थे कि हिन्दू संस्कृति और सभ्यता इस समय संकट में है। उच्च तथा नीच, धनी तथा निर्धन सबमें वीरता का एक अपूर्व उत्साह आ गया। एक मुसल्मान इतिहासकार लिखता है कि हिन्दू स्त्रियों ने अपने आभूषण और जवाहरात बेचकर सुदूर देशों से मुसलमानों के विरुद्ध सहायता भेजी थी। निर्धन स्त्रियों ने दिन रात चरखा चलाया अथवा अन्य कोई परिश्रम किया जिससे वे सेना को कुछ न कुछ सहायता अवश्य दे सकें। खोखरों ने भी हिन्दुओं को सहयोग दिया।

महमूद के धनुर्धारियों को नंगे पैर और नंगे सिरवाले खोखरों ने लौटा दिया और वे निर्भय होकर युद्धक्षेत्र में घुस पड़े और उन्होंने ३ ४ सहस्र मुसलमानों को काट डाला। इस भीषण आक्रमण से घबराकर सुलतान युद्ध बन्द करने ही वाला था कि आनन्दपाल का हाथी डरकर युद्धभूमि से भाग खड़ा हुआ।

यह देखकर हिन्दू सैनिक भयभीत हो गये और गजनवी की सेना ने दो दिन-रात तक उसका पीछा किया। अनेकों मारे गये और विजता के पास अपार धन-राशि लूट में पहुँची।

नगरकोट की विजय (१००८ ई०)—इस विजय से उत्साहित होकर महमूद ने काँगडा के दुग पर आक्रमण कर दिया, जिसे नगरकोट अथवा भीमनगर* भी कहते थे। यह दुर्ग अकथ कोष के लिए प्रसिद्ध था जो सब देवताओ के लिए अर्पित था। जब मुसलमानो न इस दुग पर घेरा डाला, तब हिन्दुओ ने डरकर ही दुग का फाटक खोल दिया। महमूद ने बिना किसी कठिनाई के इसे जीत लिया और अपार धन उसे लूट में मिला। विजयी महमूद बडा आनन्द-मग्न होकर लौटा। उसके कोष में हीरे जवाहरात का इतना ढेर था जो ससार के सबसे शक्तिशाली राजा के कोष से भी अधिक था।

शीघ्र सफलता के कारण—इस अतुल सम्पत्ति को पाकर महमूद के अनुयायियो की तृष्णा और भी बढ गई और वे बार बार भारत पर आक्रमण करने लगे। हिंदुओं के पारस्परिक विरोध के कारण उनका काय और सरल हो गया, यद्यपि उनकी सख्या मुसलमानो से कही अधिक थी। भारत में देशप्रेम की भावना का नितान्त अभाव था। राजनीतिक क्रान्ति से जनता उदासीन थी। जब कभी काई सघ बनाया गया, तो उसके सदस्य आपस में ही लड बैठते थे और अपने वश और गोत्र के गव के कारण अनुशासन में नही रह सकते थे। इससे सगठन दुबल हो जाता था और नेताओ की योजना निष्फल हो जाती थी। भारत का हित गौण और स्वाथ प्रधान रहता था। इसके विरुद्ध असीम धार्मिक कट्टरता के कारण मुसलमानो को योद्धाओ की कमी कभी अनुभव नही होती थी।

गोर की विजय के पश्चात् १०१० ई० में महमूद मुलतान की ओर बढा और विद्रोही दाऊद को हराकर दण्ड दिया। ३ वष पश्चात् वह भीमपाल के

* कागडा हिमालय प्रदेश में एक अत्यन्त उपजाऊ पठार है। इसके पीछे हिम-मडित उत्तुंग शिखर ह, जिनमें से निकलकर ३-४ जलस्रोत इस मैदान में बहते ह। काँगडे के दुग को जहाँगीर ने सन् १६२१ में स्थायी रूप से जीत लिया।

विरुद्ध बढ़ा। उसके दुर्ग को जीत लिया और उसकी अपार धन-राशि लूट ली। मुसलमानों ने राजा का पीछा किया जो कि काश्मीर को भाग गया था। महमूद ने अपना शासक नियुक्त किया और काश्मीर को लूटकर तथा अनेक व्यक्तियों को बलात् मुसलमान बनाकर वह गजनी लौट गया।

थानेश्वर के विरुद्ध—*परन्तु इन छोटे-छोटे आक्रमणों से अधिक महत्त्वपूर्ण* थानेश्वर का आक्रमण था जो १०१४ ई० में हुआ था। आक्रमणकारियों के विरुद्ध हिन्दू जी तोड़कर लड़े परन्तु उनकी हार हुई और बड़े भारी लूट के माल के साथ थानेश्वर का दुर्ग विजेताओं के हाथ लगा।

कन्नौज की विजय—उत्साही नवयुवक स्वेच्छा से ही इन धार्मिक युद्धों में सम्मिलित हुए और अधार्मिकता से युद्ध करनेवाले अनेक वीर महमूद की सेना में सम्मिलित हो गये। महमूद ने अब कन्नौज पर आक्रमण करने का निश्चय किया जो पूर्व में क्षत्रियों की विख्यात राजधानी थी। १०१८ ई० में वह गजनी से चल दिया और २ दिसम्बर सन १०१८को उसने जमुना नदी पार की। मार्ग में आनेवाले सब दुर्गों को उसने जीत लिया। बरन (बुलन्दशहर) के राजा हरदत्त ने आत्मसमर्पण कर दिया और, इस्लाम इतिहासकारों के अनुसार, *१० सहस्र मनुष्यों के साथ उसने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया।* तब सुल्तान महावन के राजा के विरुद्ध चला जो जमुनातट पर स्थित था। हिन्दुओं ने वीरता से युद्ध किया परन्तु वे हार गये। राजा ने अपमान से बचने के लिए आत्म-हत्या कर ली। अपार धन राशि लूटकर सुल्तान मथुरा की ओर बढ़ा जो *हिन्दुओं का तीर्थस्थान था और जो मुसलमान इतिहासकारों* के अनुसार, अपने निवासियों तथा विशाल भवनों में अपनी समता नहीं रखता था। उसकी अद्भुत वस्तुओं का वर्णन करने में मनुष्य की वाणी असमर्थ थी। मुसलमानों की मूर्तिभंजकता के सामने हिन्दू लोग नगर की रक्षा नहीं कर सके। और, *बड़े विचित्र तथा सुन्दर मंदिर—विजेता की आज्ञा से—ध्वस्त* कर दिये गये।

तब महमूद कन्नौज की ओर बढ़ा और जनवरी १०१९ ई० में उसके फाटक पर जा पहुँचा। कन्नौज के प्रतिहार राजा राज्यपाल ने बिना किसी विरोध

के आत्म-समर्पण कर दिया। सुलतान ने सारा नगर तहस-नहस कर डाला और मन्दिरों को तोड़-फोड़ दिया। उनके अपार धन को उसने लूट लिया। बुंदेलखंड होता हुआ महमूद गजनी लौट गया।

चन्देल राजा की हार—राज्यपाल के इस कायरतापूर्ण व्यवहार से अन्य राजपूत राजा बड़े क्रोधित हुए। कालिंजर के चन्देल राजा के कुछ [illegible] ने उस पर आक्रमण कर दिया। राज्यपाल युद्ध में मारा गया। अपने समर्थक राजा का मारा जाना सुनकर, चंदेल राजा को दण्ड देने के लिए महमूद १०१९ ई० में गजनी से चल दिया। बहुत बड़ी सेना लेकर चन्देल राजा युद्ध के लिए प्रस्तुत हुआ। परन्तु न जाने क्यों, वह भयभीत होकर युद्ध से भाग खड़ा हुआ। महमूद के ग्रह अनुकूल थे, युद्ध का सारा सामान उसके हाथ लगा। सन् १०२१-२२ ई० में महमूद फिर भारत आया। ग्वालियर के राजा को हराकर वह कालिंजर आया। चन्देल राजा ने सुलतान से सन्धि कर ली। अपार धनराशि और हीरे-जवाहर लेकर विजयी महमूद गजनी लौट गया।

सोमनाथ का आक्रमण—परन्तु सबसे प्रसिद्ध आक्रमण १०२५-२६ ई० में सोमनाथ का हुआ। इस मन्दिर की अतुल धनराशि की कहानियाँ सुनकर महमूद ने अजमेर होकर इस दुर्गम देश द्वारा सोमनाथ* जाने का निश्चय किया। कुछ ही दिनों में वह वहाँ आ पहुँचा। उसने समुद्र-तट पर स्थित दुर्ग पर अधिकार कर लिया, जिसके परकोटा को समुद्र की लहरें धोती रहती थीं। चारों ओर के राजपूत राजा सोमनाथ की मूर्ति की रक्षा के लिए इकट्ठे हो गये। जब मुसलमानों ने आक्रमण प्रारम्भ किया, तो हिन्दुओं ने बड़े दृढ़ निश्चय के साथ उनका मुँह मोड़ दिया। दूसरे दिन विरोधियों ने दीवारों पर चढ़ना आरम्भ किया। मन्दिर के रक्षकों ने उनके इस प्रयत्न को

---

*सोमनाथ का मन्दिर गुजरात में, काठियावाड़ में था। इसका [illegible] अब टूटा पड़ा है। इसी के निकट अहल्याबाई ने दूसरा मन्दिर [illegible]। ध्वंसावशेषों से ही मन्दिर का महत्त्व प्रकट होता है। [illegible] फिर से जीर्णोद्धार किया गया है।

भी असफल कर दिया, और उन्हे नीचे धकेल दिया। महमूद को बडा आश्चर्य हुआ और उसने ईश्वर से सहायता की प्रार्थना की। उसके अनुयायियो के हृदय द्रवित हो गये। उन्होने एक ही ध्वनि के साथ महमूद के लिए युद्ध करने तथा प्राण देने का निश्चय कर लिया।

बडा घमासान युद्ध हुआ। मृत्यु की विभीषिका युद्धक्षेत्र में विकराल रूप से नृत्य करने लगी। देखते देखते ही पाच सहस्र हिन्दू वीरगति को प्राप्त हो गये। तब महमूद ने मन्दिर में प्रवेश किया और मूर्ति के टुकड़े टुकड़े कर डाले। उसने आज्ञा दी कि इस मूर्ति के कुछ टुकड़े गजनी भेज दिये जायँ और वहाँ की विशाल मस्जिद की देहली में चुन दिये जायँ, जिससे ईश्वरनिष्ठ मुसलमानो को सन्तोष प्राप्त हो। कहा जाता है कि जब महमूद इस प्रकार मूर्ति तोड रहा था, तो वहाँ के पुजारियो ने उससे कहा कि यदि आप अवशिष्ट मूर्ति को न तोड़ें तो हम इसके बदले में आपको अपार धन दे सकते है। महमूद ने उत्तर दिया कि मै ससार में मूर्तिभञ्जक* के नाम से विख्यात होना चाहता हूँ, मूर्ति विक्रेता† के नाम से नही। दया के लिए सभी प्रार्थनाओ ने तथा पुजारियो द्वारा धन देने के प्रस्ताव ने उस धर्मान्ध पर कुछ भी प्रभाव न डाला, जिसने एक और आघात से शिवलिंग के टुकड़े टुकड़े कर डाले। महमूद के मुसलमान सिपाहियो ने मन्दिर को बडी निर्दयता से लूटा और उसके

---

* श्री हबीब के इस कथन का कि "ब्राह्मणो का धन देने का वचन और महमूद की अस्वीकृति की कहानी बाद में गढी गई है" मुसलमान विद्वानो ने समर्थन नही किया है। ब्राह्मणो के इस प्रकार के प्रस्ताव में कोई असम्भव बात नही है—हबीब, सुल्तान महमूद ऑफ गजनी, पृष्ठ ५३। श्री नाजिम ने 'सुल्तान महमूद' नाम की पुस्तक में पृष्ठ ११८ में लिखा है—

† "जब उसने मूर्ति देखी तो आज्ञा दी कि इसका ऊपरी भाग गदा से विकृत कर दिया जाय और फिर इसके चारो ओर आग जलाई जाय, जिससे उसके टुकड़े टुकड़े हो जायँ। उसके बाद मन्दिर की सारी सम्पत्ति लूट ली गई, जिसका मूल्य २ करोड़ दीनार के बराबर था। इसके पश्चात् मन्दिर को जला कर खाक कर दिया गया।"

हीरे, जवाहर, मणि और मोनियो के अपरिमित कोष* पर सहज ही अधिकार कर लिया। महमूद इस प्रकार अपने अनुयायिया की दष्टि म धम-धुरीण समझा जाता था। वह जहाँ जहा गया, वे बिना किसी आपत्ति के उसके साथ रहे। सोमनाथ की रक्षा मे सहयोग देने के अपराध में नेहरवाल के राजा पर आक्रमण हुआ। वह भाग गया और उसका देश सरलता से जीत लिया गया। इसके पश्चात् भट्टी राजपूतो का दमन हुआ। लौटती हुई यात्रा में गुजरात के राजा भीमदेव ने उसे बहुत तग किया। रन ऑफ कच्छ में उसके सिपाहियो को पर्याप्त क्षति पहुँची। कुछ और पश्चिम की ओर सिध प्रदेश म होता हुआ वह गजनी लौट गया।

जाटो के विरुद्ध—महमूद का अन्तिम आक्रमण नमक की पवत श्रणी पर रहनेवाले जाटो को दण्ड देने के लिए हुआ। क्योकि उन्होने, सोमनाथ की लौटती यात्रा में मुसलमानो को तग किया था। जाट हरा दिये गये और उनमें से अनेक तलवार के घाट उतार दिये गये।

महमूद द्वारा सम्पादित कार्य—महमूद बहुत बडा राजा था। केवल शस्त्रा की सहायता से एक पवतीय सामन्त राज्य को बहुत विस्तत तथा समृद्ध साम्राज्य में परिवर्तित कर देना साधारण बात नही थी। इसमें कोई सन्देह नही किसमानी वश के पतन, हिन्दुओ के पारस्परिक विरोध, फारस की क्षीणोन्मुखी शक्ति तथा तुर्कों की असीम धर्मान्धता (नये धम परिवर्तित मुसल्मान) ने उसकी उनति तथा सफलता के लिए बडा अनुकूल वातावरण उपस्थित कर दिया था। भारत की स्थायी विजय असम्भव थी और सुलतान का यह लक्ष्य भी नही था। इसके अतिरिक्त तुर्क अपने पवतीय प्रदेश के सौन्दय के आकषण को छोड नही सकते थे। भारत का उष्ण और नम जलवायु उनके लिए असह्य था। महमूद यही चाहता था, कि वह केवल भारत की अपार धन-राशि को लूटे और जब उसका लक्ष्य सिद्ध हो गया तो वह गजनी लौट गया। स्थायी विजय करने तथा साम्राज्य बढाने की उसको चिन्ता न थी, फिर भी

---

* फरिश्ता का कथन कि 'सोमनाथ की मूर्ति खोखली थी', ठीक नहीं प्रतीत होता। अल्बरुनी ने लिखा है कि लिंगम् ठोस सोने का बना था।

उसका काय महान् था। उसके भीतर शहीद की आत्मा थी। उसके आक्रमणो स उसके विचारा की वीरता, चिन्तन की प्रौढता और विषम परिस्थितियो में भी साहस की अदम्यता प्रकट होती थी। वह जन्मजात सनिक नेता था। युद्ध से वह कभी न हिचकिचाता था। उसके सभी प्रयास इस भावना से अनुप्राणित रहते थे कि वह इस्लाम धम की महत्ता के लिए युद्ध कर रहा ह। ६० वष की अवस्था में, अप्रल सन् १०३० ई० में गजनी में उसकी मृत्यु हो गई। वह अपने पीछे अक्षय कोष और विस्तृत साम्राज्य छोड गया।

महमूद का चरित्र—यद्यपि महमूद बहुत बडा विजेता था, परन्तु वह बबर नही था। वह स्वय अशिक्षित था, तो भी वह कला का आदर करता था। उसकी उदारता के कारण उसके दरबार म प्रसिद्ध कवि और विद्वान् आश्रय पाते थे। प्राच्य देशो के कुछ अग्रणी विद्वान् भी उसके दरबार से आकर्षित हुए थे। इनमें अलबरूनी भी था जो गणितज्ञ और दाशनिक तथा संस्कृत और खगोल का पडित था। इतिहासकार उतबी, दार्शनिक फराबी और बहाकी भी उसके दरबार में रहते थे। वह कविता का युग था और महमूद के दरबार के कुछ कवि एशिया भर म प्रसिद्ध थे। उनमें से अन्सुरी गजनी का राजकवि था, फरुखी दूसरा प्रसिद्ध कवि था।

परन्तु इनमें सबसे विख्यात फिरदौसी था, जिसने विश्व विख्यात 'शाहनामा' लिखा और जिसके महाकाव्य ने महमूद का नाम इतिहास में अमर कर दिया ह। इसके पूण होने पर महमूद ने ६० सहस्र स्वण मिश्काल दने का वचन दिया था, परन्तु ६० सहस्र चादी के दिरहम ही उसे दिये। इससे कवि को बडा क्रोध आया और उसने उसकी निन्दा रूप कुछ अन्य पक्तियाँ* लिखी और गजनी

---

* इस व्यग्यात्मक रचना का ब्राउन ने "लिटरेरी हिस्ट्री आफ पशिया" में अनुवाद किया है जिसका साराश यह है—

मने शाहनामा पूण करने के लिए कई वष तक घोर परिश्रम किया,
आशा थी कि सुल्तान से मुझे उचित पुरस्कार मिलेगा,
परन्तु नही, निराशा और शोक से पूण दुखित हृदय ही
मने सुल्तान के उन वचनो में पाया, जो वायु की भाँति खोखले थे।

छोडकर चला गया। अत में महमूद ने अपनी भूल को सुधारना चाहा, परतु जब ६० सहस्र स्वणमुद्राएँ उसके पास पहुँची तो लाग उसके शव को कब्रिस्तान ले जा रहे थे।

महमूद न्याय करने मे कठोर और निभय था। वह अपनी प्रजा के जान माल की रक्षा करने के लिए सदव प्रस्तुत रहता था। वह लोभी अवश्य था, इस बात को अस्वीकार नही किया जा सकता। महमूद को धन से बडा प्रेम था, परन्तु वह उदारता से व्यय भी करता था। उसने गजनी मे एक विश्वविद्यालय स्थापित कर विद्या की उन्नति की। उसने एक पुस्तकाल्य और सग्रहालय भी खोले थे जो विजित देशा से लाई हुई वस्तुओ से सुसज्जित थे। उसी की उदारता से राजधानी मे सुदर भवन निर्मित हो गये जिनके कारण गजनी की गणना एशिया के सवश्रेष्ठ नगरा में होने लगी थी।

इतिहास म महमूद का स्थान निश्चित कर लेना कठिन नही है। अपने समय के मुसलमाना के लिए वह गाजी था, जो काफिर प्रदेशो से अधार्मिकता मिटाने मे सलग्न रहता था। हिदुआ के लिए वह आज तक एक भीषण हूण है, जिसने उनके पवित्र मदिरो को नष्ट कर दिया था, उनकी आत्मा को अत्यधिक कष्ट दिया था और धार्मिक भावनाओ को कुचल डाला था। परन्तु

यदि हमारा सम्राट् काई प्रसिद्ध बादशाह होता
तो मेरे मस्तक पर उसने निश्चय ही मुकुट रख दिया होता,
यदि उसकी माता कोई उच्च वशीय रमणी हाती
तो आज मै सोने और चादी मे घुटना तक खडा होता
परन्तु वह जम से बादशाह नही वरन् जगली ह।
अत इस प्रशसा को वह सहन नही कर सका।

फिरदौसी का जम खुरासान में ९५० ई० मे तुस स्थान पर हुआ था। १०२० ई० म उसकी मृत्यु हो गई। महमूद ने उसको बहुत अच्छा पुरस्कार देने का वचन दिया था। परन्तु महमूद के एक प्रिय पात्र अयाज के षडयत्र से, जो कवि से द्वेष रखता था, उसे यह पुरस्कार न मिल सका।

एक उदासीन व्यक्ति बिलकुल दूसरा ही मत प्रकट करेगा। उसके लिए सुल्तान जन्मजात नेता, नीति-पालक तथा सत्यप्रिय शासक, वीर, दैवी गुण-सम्पन्न सिपाही, सच्चा न्यायी, और विद्वानों का आश्रयदाता प्रतीत होगा। वह उसकी गणना संसार के महान् पुरुषों में करेगा।

परन्तु उसका कार्य स्थायी नहीं था। उसके उत्तराधिकारियों के हाथों में वह सशक्त साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया। विजय के साथ साथ संगठन और व्यवस्था नहीं हो सकी। केवल अपनी वीरता से ही महमूद अपने जीते हुए देशों में शान्ति तथा व्यवस्था नहीं स्थापित कर सका। एक मुसलमान रहस्यवादी ने उसके विषय में कहा है कि "वह बड़ा मूर्ख है। अपने अधिकृत राज्य को वह व्यवस्थित करने में असमर्थ है, फिर भी नये देशों को जीतने के लिए चला जाता है।" उसके साम्राज्य में अराजकता फैली हुई थी। डाकुओं के सरदार निर्भयता से देश में आतंक फैलाये हुए थे और भांति भांति से प्रजा को सता रहे थे। अव्यवस्था को रोकने तथा अपराधियों को दंड देने के लिए पुलिस की कोई सुयोजित व्यवस्था नहीं थी। अपनी प्रजा के हित के लिए महमूद ने न तो कोई नियम बनाये और न संस्थाएँ खोलीं। स्थानीय स्वतन्त्रता का दमन किया गया और विभिन्न जातियों के लोगों को बलात् एक साम्राज्य में सम्मिलित कर दिया गया। उनमें आपस में यदि कोई क्षीण सम्बन्ध था तो यही कि वे एक ही राजा के अधीन थे। महमूद के पदाधिकारी साम्राज्यवादी थे और अपने स्वामी की ही नीति का अनुसरण करते थे। साम्राज्य को विस्तृत करने में ही वे दत्तचित्त रहते थे। व्यवस्थित तथा नियमित राज्य प्रबंध स्थापित करने में उनको कोई रुचि नहीं थी। इस प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था स्थायी नहीं हो सकती थी। अतः ज्योंही मृत्यु ने उसके योग्य करों को निष्क्रिय कर दिया, त्योंही अव्यवस्था के चिह्न प्रकट होने लगे और धीरे धीरे उन्होंने ऐसा विकट रूप धारण कर लिया कि उनको सँभालना साम्राज्य की शक्ति के बाहर हो गया। श्री हबीब ने ठीक ही कहा है कि जब सल्जूकों ने इस निरुद्देश्य साम्राज्य को ढा दिया, तो उसके दुर्भाग्य पर कोई रोनेवाला भी पैदा नहीं हुआ।

महमूद तथा इस्लाम--महमूद भारतवर्ष में धार्मिक आवेग और उद्देश्यों से पूर्ण हृदय को लेकर आया था। उसके अनुयायी धर्म प्रचार के पवित्र कार्य के लिए अपना सब कुछ होम देने के लिए प्रस्तुत थे। उसने अपने अनुयायियों की इन धार्मिक भावनाओं से पूर्ण लाभ उठाया। स्थानीय जनता में भी उसने शीघ्र ही धर्म परिवर्तन करना प्रारम्भ कर दिया। अतः इस सम्बन्ध में एक आधुनिक मुसलमान इतिहासकार का यह कथन प्रसगानुकूल रोचक होगा --

"कोई भी सत्यप्रिय इतिहासकार न तो इस बात को छिपाना चाहेगा और न अपने धर्म से परिचित कोई मुसलमान गजनवी सेना द्वारा मन्दिरों के नृशंस तोड़े जाने को न्याययुक्त ही बतलायेगा। उस काल के तथा कुछ पीछे के इतिहासकार उसके नृशंस कृत्यों को छिपाने की चेष्टा नहीं करते, परन्तु गर्व से उनका वर्णन करते हैं। अपनी आत्मा को धोखा देना बड़ा सरल है। सांसारिक दृष्टि से हम जिस कार्य को करना चाहते हैं, उसके लिए कोई न कोई धार्मिक कारण ढूंढ लेते हैं। इस्लाम में उस लूट और संस्कृति विनाश की कोई स्वीकृति नहीं है, जो आक्रमणकारियों ने की थी। शरियत के किसी सिद्धान्त के अनुसार पुनः हिन्दू राजाओं पर आक्रमण उचित नहीं समझा जाता, जिन्होंने महमूद अथवा उसकी प्रजा को कोई हानि नहीं पहुँचाई थी। प्रत्येक धर्म में मन्दिरों और पवित्र स्थानों के निर्लज्ज विनाश की निन्दा की गई है। तो भी इस्लाम धर्म का उपयोग इसके लिए किया गया था, यद्यपि यह कोई स्फूर्तिपूर्ण उच्च उद्देश्य नहीं था। मुस्लिमेतर जनता की लूट पाट को इस्लाम की सेवा समझने की भूल करना कठिन नहीं था। जिन लोगों के सामने इस प्रकार की युक्तियाँ उपस्थित की गई वे भी अपनी धर्मान्धता के कारण इन युक्तियों का ठीक ठीक विवेचन करने में असमर्थ थे। इस प्रकार कुरान के उपदेशों का अनर्थ किया गया और दूसरे खलीफा की सहिष्णु नीति की अवहेलना की गई जिससे महमूद और उसके अनेक धर्मान्ध अनुयायी स्वस्थचित्त से हिन्दू मन्दिरों को लूट सकें।"

अलबरूनी--अबूरिहान का जन्म जो अल्बरूनी के नाम से विख्यात है, ९७३ ई० में वर्तमान खीवा प्रान्त में हुआ था। जब १०१७ ई० में महमूद ने इस प्रदेश को जीता था, तो उसी के साथ अलबरूनी को भी उसने जीत लिया।

वह महमूद के साथ भारत आया था। यहाँ वह कुछ समय तक ठहरा और उसने बड़ी सहानुभूति के साथ हिन्दू आचरण, रीति रिवाजो तथा संस्थाओ का अध्ययन किया। इन सबका उसने बडा सजीव वर्णन किया है, जिससे उस समय की दशा का बहुत कुछ पता लगता है। उसने लिखा है कि देश छोटे छोटे सामन्त राज्यो में विभक्त है, जो एक दूसरे से बिल्कुल स्वतन्त्र है और प्राय आपस में लडते-झगडते रहते है। उसने लिखा है कि काश्मीर, सिंध, मालवा, गुजरात, बगाल और कन्नौज के राज्य बडे है और विशेष महत्त्व रखते हैं। हिन्दुओ की सामाजिक दशा के विषय में उसने लिखा है कि उनमें बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित है, विधवाओ का पुर्नविवाह की आज्ञा नही है और सती की प्रथा का चलन है। मूर्तिपूजा सारे देश में होती है और मन्दिरो में अपार धन राशि सचित है, जिसे देखकर मुस्लिम विजेता अपना लोभ सवरण नही कर सकते। अलबरूनी ने उपनिषद् के सिद्धान्तो का भी अध्ययन किया और उन्हे समझने की चेष्टा की। उसने लिखा है कि अशिक्षित लोग अनेक देवी देवताओ की पूजा करते थे, परन्तु शिक्षित तथा सुसस्कृत समाज का विश्वास था कि ईश्वर एक है, शाश्वत है, अनादि और अनत है, स्वच्छद तथा स्वतन्त्र है, सर्व शक्तिमान् है, सर्वज्ञ है, सर्वव्यापक है, प्राणदाता है और सबका शासक तथा रक्षक है।

उसकी न्याय-व्यवस्था यद्यपि अनेक रूपो में अपरिपक्व तथा आदिम थी, परन्तु साथ ही उदार तथा सहृदय थी। लिखित नालिशें होती थी और साक्ष्य के आधार पर मुकदमा का निर्णय होता था। दण्ड विधान (Criminal law) कठोर नहीं था। अलबरूनी हिन्दुओ की कोमलता का ईसाइयो के कोमल स्वभाव से तुलना करता है। ब्राह्मणो का प्राणदड नही दिया जाता था। चोरी का दड चुराई हुई वस्तु के अनुपात से दिया जाता था। कुछ अपराधो के लिए हाथ-पैर काट लिये जाते थे। कर बहुत नही थे। भूमि की उपज का केवल $\frac{1}{6}$ भाग राज्य लेता था। ब्राह्मणो से कर नही लिया जाता था।

अलबरूनी के पृष्ठो में भारत की पतनोन्मुखी दशा का पर्याप्त साक्ष्य मिलता है। राजनीतिक दृष्टि से उसमें एकता और सगठन का अभाव था। देश के हिताहित का बिना ध्यान रक्खे प्रतिद्वंद्वी राज्य परस्पर में लडते रहते

थे। वास्तव में राष्ट्रियता का उनके लिए कोई अर्थ नही था। धर्म में अनेक अधविश्वासो ने घर कर लिया था। समाज अनेक जातियो में विभक्त था। जिससे मेल तथा सगठन असम्भव हो जाता था। वास्तव में भारत की दशा मध्यकालीन यूरोप की सी ही थी और एक विख्यात लेखक के अनुसार प्रत्येक वस्तु में विनाश तथा विशृ खलता के लक्षण दिखाई दे रहे थे, राष्ट्रीय जीवन का प्राय अत हो चुका था।

महमूद के उत्तराधिकारी—सन १०३१ ई० में पिता की मृत्यु के पश्चात् अपने छोटे भाई को हटाकर मसूद राजा हुआ। वह अपने पिता की भाँति महत्त्वाकाक्षी, साहसी तथा युद्धप्रिय था। उस समय गजनी के दरबार का ठाट-बाट और महत्ता सर्वश्रेष्ठ थी। बैहाकी ने अपने स्मृति ग्रथ में लिखा है कि किस प्रकार सुलतान वैभव तथा ठाट-बाट से रहता था। यद्यपि महान् महमूद भी मदिरा सेवन करता था और मदगोष्ठी का आनन्द लेता था, परन्तु मसूद इस दिशा में चरम सीमा तक पहुँच गया। वह स्वय मदसेवी और विलासप्रिय व्यक्तियो के दल का नेता था।

हसनक का वध—ख्वाजा अहमद मैमेंदी मसूद का बडा योग्य मत्री था, जिसको उसने बदीगृह से मुक्त कर बडे सम्मान के साथ पदाधिकार दिया था। ख्वाजा ने अपने कार्य को व्यवस्थित करना प्रारम्भ कर दिया। उसका कार्यालय पहले मत्री के समय में देर से काम करने के लिए बदनाम हो गया था। उसके तत्त्वावधान मे राज्य-प्रबध में नया जीवन और स्फूर्ति आने लगी। ख्वाजा का तो इधर सम्मान बढ रहा था, उधर भूतपूर्व मत्री हसनक पर करमत के अनुयायी तथा नास्तिक होने का अभियोग लगाया गया था। उसके हथकडी पड गई, न्याय हुआ और प्राणदड मिला। उसका सिर काट लिया गया और बूसुहल द्वारा दिये गये भोज में वह सिर एक तश्तरी में रखकर अतिथियो के सामने आया। लोग इस वीभत्स दृश्य को देखकर आश्चर्यचकित और भयभीत हो गये। गजनवी राज्य में पदाधिकार तथा जीवन इतना अनिश्चित था।

भारत की दशा—परन्तु मसूद भी साधारण राजा नही था। उसके समसामयिक राजा उसकी शक्ति तथा राजकीय महत्ता दोनो से डरते थे। अब उसने भारत की ओर ध्यान दिया जिसकी देख रेख अरियारक के हाथो में थी।

इतने विस्तृत राज्य के अधिकार में अपने को सुरक्षित देखकर वह महत्त्वाकांक्षी बलाधिकृत अपनी मनमानी करने लगा और अपने अधिनायक की आज्ञाओं की भी अवहेलना करने लगा। यद्यपि मसूद मद्यप और विलासी था, परन्तु जब वह अपनी आज्ञाओं की अवहेलना अथवा अधिकार की अवज्ञा देखता तो वह अपने महत्त्व को फिर से स्थापित कराना भली भाँति जानता था। उसने अरियारुख को किसी प्रकार गजनी बुलाया, वहाँ उसे बंदी कर लिया और फिर कदाचित् विष दे दिया। अब अहमद नियल्तगीन को भारतीय प्रांत का शासक नियुक्त किया गया। उसको अपने पुत्र का किसी छोटे से बहाने पर धरोहर रूप में गजनी छोड़ना पड़ा। यह नया बलाधिकृत भी कम महत्त्वाकांक्षी न था और बैहाकी के शब्दों में "वह भी सरल मार्ग को छोड़कर कुटिल उपायों से काम लेने लगा।"

अहमद नियल्तगीन का राज्य द्रोह—भारत में आकर अहमद नियल्तगीन का अपने सहकारी काजी शीराज के साथ निबाह करना कठिन हो गया। अपने कर्त्तव्य पालन में उसने काजी शीराज से परामर्श लेना बंद कर दिया। अतः दोनों में झगड़ा प्रारम्भ हो गया। जब मामला गजनी पहुँचा तो काजी को बड़ी डाँट खानी पड़ी। उससे स्पष्ट कह दिया गया कि सैनिक कार्य में उसे हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं। इसके पश्चात् हिंदुओं के प्राचीन तीर्थ-स्थान काशी के मन्दिरों को लूटने के लिए उसने एक आक्रमण का आयोजन किया। काजी अपने प्रतिद्वंद्वी की सफलता को सहन न कर सका। उसने सुलतान के पास अपने गुप्तचर भेजे और कहलवाया कि नियल्तगीन अपने को सुलतान महमूद का पुत्र बतलाता है और स्वतंत्र होना चाहता है। नियल्तगीन के शत्रुओं ने सुलतान के कान भरना प्रारम्भ कर दिया और उसे विश्वास करा दिया कि अब उसके हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

अनेक पदाधिकारियों ने भारतीय व्यवस्था के लिए अपनी सेवायें उपस्थित की, परन्तु अंत में तिलक नाम के एक निम्न वंश के परन्तु योग्य और साहसी हिन्दू की नियुक्ति हुई। राजसम्मान को प्रदर्शित करने के लिए उसको सुनहरी राजवस्त्र मिले, सोने की तथा हीरे जवाहरों से जड़ी हुई माला उसे पहनाई गई, एक मंडप और छत्र मिला, नौबत बजी और हिन्दू प्रथा के अनुसार उसके भवन

पर स्वर्ण जटित पताकायें फहराई गई, जिससे सब सामान्य को विदित हो जाय कि उसे कोई सम्मानित उच्च राजपद मिला है। दार्शनिक बैंहाकी इस सम्बन्ध में लिखता है—"बुद्धिमान् लोग ऐसी बातों पर आश्चर्य नहीं करते, क्योंकि जन्म लेते ही कोई बडा नहीं होता—मनुष्य बडा बन जाता है।"

जब तिलक लाहौर पहुँचा, तो अहमद नियल्तगीन के साथी भय से किंकर्तव्य-विमूढ हो गये और विद्रोही शासक अपने प्राणों को लेकर भागा। युद्ध में वह पराजित हुआ और उसका पीछा किया गया। जब वह पकडा न गया तो तिलक ने उसके सिर के लिए ५००००० दिरहम पुरस्कार घोषित कर दिया। जाट लोग मरुदेश तथा वन कन्दराओं से भली भांति परिचित थे। उन्होंने अहमद को पकड लिया और उसका सिर काट लिया।

मसूद इस विजय से बडा प्रसन्न हुआ। इस सफलता से प्रोत्साहन पाकर उसने हाँसी[1] दुर्ग को जीतने की अपनी प्राचीन प्रतिज्ञा को पूरा करने का निश्चय किया। ख्वाजा ने बहुत कुछ कहा कि राजनीतिक दृष्टि से यह ठीक नहीं है, परन्तु हठी सुल्तान ने उत्तर दिया, "कि यह प्रतिज्ञा मेरी गर्दन पर सवार है और मैं स्वयं इसे पूरा करूँगा।" मन्त्रिपरिषद् नतमस्तक हो गया और ख्वाजा को अब गजनी का पूर्णाधिकार सौंप दिया गया।

हाँसी की विजय—अक्टूबर १०३७ई० में सुल्तान ने गजनी से प्रस्थान कर दिया और बडी लम्बी यात्रा के पश्चात् हाँसी नगर पहुँचा। आक्रमणकारियों ने हाँसी के दुर्ग का घेरा डाल दिया। हिन्दू इसको अजेय समझते थे। यद्यपि इसके रक्षकों ने बडा वीरता से युद्ध किया, परन्तु मुसलमानों ने हल्ला बोलकर इसे जीत लिया और अपार धन लूटा। एक विश्वसनीय राज्याधिकारी को दुर्ग सौंपकर सुल्तान सानपत की ओर चला। यह स्थान दिल्ली से बहुत दूर न था, मुसलमानों ने बडी सरलता से इसे जीत लिया। यहाँ के गढाधीश ने कोई युद्ध ही नहीं किया। विजयी सुल्तान गजनी लौट गया।

भारत का यह आक्रमण बडी भारी भूल हुई। सुल्तान की अनुपस्थिति

१ हिसार से ग्यारह मील पूर्व हाँसी नगर है, इसमें एक दुर्ग के खंडहर हैं।

से लाभ उठाकर, साल्जूक तुर्कों ने गजनी राज्य को तग करना प्रारम्भ कर दिया और राजधानी के एक भाग को रौंद डाला। आक्रमणकारियो के विरुद्ध मसूद चल पडा परन्तु मर्व के निकट दन्दानकन में २४ मार्च सन् १०४० ई० को उसकी हार हुई। साल्जूको द्वारा इस बुरी तरह हार जाने के कारण गजनवी सुल्तान को भारत की ओर आना पडा।

मसूद का भारत भागकर आना—अपने वयोवृद्ध मन्त्री के यह अनुरोध करने और परामर्श देने पर भी कि उसे गजनी न छोडना चाहिए पराजित सुल्तान भारतवर्ष की ओर भागा। जब वह और उसके साथी मरगला[1] पहुँचे तो तुर्कों और हिन्दू सिपाहियो ने विद्रोह कर दिया और सुलतान के छोटे भाई मुहम्मद को गद्दी पर बैठाया। मसूद बदीगृह मे डाल दिया गया और सन् १०४१ ई० म मार डाला गया।

इस प्रकार एक वधिक के हाथा उस राजा की हत्या हुई,जो अपने पिता की भाँति विद्वाना का आदर करता था, मसजिदें बनवाता था और अपने विस्तृत राज्य के विद्यालयो तथा महाविद्यालया को विविध रूप से सहायता देता था। इस पर बैहाकी भाग्यवादी की भाँति कहता है, "भाग्य से लडने की मनुष्य में शक्ति नही ह।"

मसूद के दुर्बल उत्तराधिकारी—मसूद की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र मौदूद गद्दी पर बैठा। उसने अपने चाचा मुहम्मद को युद्ध में पराजित कर दिया और इस प्रकार अपने पिता की मृत्यु का बदला ले लिया। मौदूद के उत्तराधिकारी बडे दुर्बल थे। उनके विशेष वर्णन की आवश्यकता नही है। साल्जूका का जोर बना रहा और गजनी राज्य का बहुत बडा अश निकल गया। अत म साल्जुको ने गजनवी राजाओ की शक्ति बिलकुल नष्ट कर दी। गजनी का अतिम स्वतत्र राजा असलान भारतवर्ष भाग आया, जहाँ वह १११७ ई० में बडी दुर्दशा में मर गया। इस प्रकार साल्जूको ने गजनी में अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। वे बहराम नाम के गजनवी राजा को, जो केवल नाम का ही राजा था, जैसा चाहते नचाते थे। वह भी समझता था कि उसका

१ यह पहाडो दर्रा रावलपिंडी और अटक के बीच में है और हसन अब्दाल के कुछ मील पूर्व में ह।

राज्य उन्ही के कारण है। यदि उसमे और गोर के मलिका में झगडा न हुआ होता तो बहराम का राज्य बडी शान के साथ समाप्त हुआ होता।

गजनी और हेरात के बीच गोर एक छोटा सा राज्य था। ये युद्धप्रिय अफगान महमूद के झडे के नीचे बडी वीरता से लडे थे, परन्तु जब गजनी का राजदड दुबल होता म चला गया, तो उन्होने उसका सम्मान करना छोड दिया। जब बहराम की आज्ञा से एव सूरी सामन्त को फासी का दड दिया गया, तो परिस्थिति नियत्रण के बाहर निकल गई। उसके भाई ने गजनी पर आक्रमण किया। बहराम की हार हुई और वह मारा गया। दूसरे भाई अलाउद्दीन हुसन ने भी गजनवी वश से बदला लेने का निश्चय किया। एक महान् सेना लेकर वह गजनी पर चढ आया। सन् ११५० ई० म उसकी महान् जीत हुई। बहराम भारत भाग आया, परन्तु वह फिर गजनी लौटा और अपनी खोई हुई शक्ति फिर से प्राप्त कर ली।

सन् ११५२ ई० मे बहराम मर गया। उसके पश्चात् खुसरूशाह राजा हुआ। वह नवीन परिस्थिति के बिलकुल अयोग्य था। गज तुर्कोमान गजनी पर चढ आये। खुसरू शाह भारत भाग आया। निभय अलाउद्दीन ने नगर के सुदर भवनो को नष्ट कर दिया और सारी जनता में हत्याकाड मचा दिया। खुसरूशाह ११६० ई० में स्वदेश के बाहर लाहौर म मर गया। साम्राज्य की दशा बिगडती गई। गजनी का नया राजा खुसरू मलिक विलासी था। उसके राज्यकाल में राज्य प्रबध में बडी अव्यवस्था आ गई। गजनी की शक्ति शीघ्रता स क्षीण होने लगी और गोरवश का प्रभुत्व बढ चला। सन् ११७३ ई० के आस पास अलाउद्दीन के भतीजे गयासुद्दीन ने गजनी पर अधिकार कर लिया और काबुल तथा अपने अधीन अन्य देशो के साथ इसे अपने भाई मुईजुद्दीन बिन साम की अध्यक्षता में रख दिया जो इतिहास म मुहम्मद गोरी के नाम से विख्यात है। मुईजुद्दीन को युद्ध और आक्रमणो से जन्मजात प्रेम था। उसने भारत पर बार बार आक्रमण किये और खुसरू मलिक को सधि करने तथा सधि के नियमो का पालन करने तक अपने पुत्र को धरोहर रखने के लिए बाध्य किया। बाद म कूटनीति तथा मिथ्या वचनो द्वारा खुसरू भी बदी कर लिया गया और १२०१ ई० में मार डाला गया। उसके पुत्र बहरामशाह की भी यही दुदशा हुई। सुबुक्तगीन के

वंश का इस दुर्गति से अंत हुआ। अब गजनी पर गोर वंश का एकाधिकार स्थापित हो गया।

साम्राज्य का पतन—इस प्रकार दो शताब्दियों में गजनी का साम्राज्य इतिहास में विलीन हो गया। जो साम्राज्य केवल सैनिक शक्ति पर निर्भर था, वह योग्य तथा युद्धकुशल राजाओं की अनुपस्थिति में अधिक जीवित भी नहीं रह सकता था। महमूद ने ऐसी कोई संस्थाएँ नहीं बनाई थीं, जिनसे उसके विस्तृत साम्राज्य का कार्य चलता रहता और वह एक सूत्र में बँधा रहता। उस विशाल साम्राज्य में एकता और एकरूपता के कोई सिद्धान्त न थे। अतः उसकी मृत्यु के पश्चात् वह शीघ्रता से छिन्न-भिन्न होने लगा। भारतवर्ष की अपार सम्पत्ति ने उसके उत्तराधिकारियों को विलासी बना दिया और युद्ध जैसे कठिन कार्य के लिए उनको अयोग्य बना दिया। जब उनके राज्यप्रबन्ध की अयोग्यता तथा दुर्बलता का पता लोगों को लग गया तो चारों ओर उपद्रव होने लगे। गजनवी वंश के विलासी राजा अपने शत्रुओं का सामना करने में असमर्थ रहे। अफगान प्रदेश में उपद्रव प्रारम्भ होते ही, भारत में भी असंतोष की उथल-पुथल दिखाई देने लगी। गजनी में ही इतनी समस्याएँ थीं, जिनके कारण भारतीय परिस्थितियों की ओर वहाँ के शासक समुचित ध्यान नहीं दे सके। परन्तु गोरवंश के राजा दूसरे ही प्रकार के थे। वे स्वच्छंद तुर्कों का नेतृत्व करने तथा उन्हें अनुशासन में लाने के अधिक योग्य थे। उनके साहस और उत्साह को अपने महत्त्व को बढ़ाने के लिए उपयोग करना वे भली भाँति जानते थे।

सहायक ग्रन्थ

इलियट एण्ड डासन—हिस्ट्री आफ इंडिया भाग २
मुहम्मद नाजिम—महमूद आफ गजना
अलबरूनी—इंडिया
हबीब—महमूद आफ गजना
ब्रिग्ज—राइज ऑफ मुहमडन पावर इन दी ईस्ट, प्रथम भाग
रिनॉल्ड्स—तारीख यामिनी
रवर्टी—तबकाते नासिरी

अध्याय ५

भारतवर्ष की विजय

मुहम्मद का भारत आक्रमण—भारत के मुसलमान प्रान्तो की विजय मुहम्मद गोरी ने बडी शीघ्रता से सम्पन्न कर ली। उच्छ के राजपूतो के विरुद्ध उसका आक्रमण छल के कारण सफल हो गया। उसने ११७४ ई० में कमती नास्तिको को जीत लिया। नेहरवाल के राजा भीमदेव ने आक्रमणकारियो को बुरी तरह से हरा दिया। तब उन्होने पेशावर और समुद्रतट तक सिंध देश को जीत लिया। लाहौर न जीत सकने के कारण, उसने खुसरू मलिक से संधि कर ली और गजनी लौट गया। उसके चले जाने के पश्चात् खुसरू मलिक ने खोखरो की सहायता से स्यालकोट के दुर्ग का घेरा डाल दिया परन्तु उसे जीत न सका। जब सुल्तान को यह समाचार मिला तो उसने फिर लाहौर पर आक्रमण किया और कूटनीति द्वारा ११८६ ई० में खुसरू मलिक को जीत लिया और सुबुक्तगीन के वश का अंत कर दिया। लाहौर विजयी राजा के हाथ लगा।

मुहम्मद को हिंदुस्तान का स्वामी बनने में अभी देर थी। यहाँ अभी बडे-बडे राजपूत राज्य थे जो धनी और शक्तिशाली थे और अपने देश पर आक्रमण करनेवाले शत्रु से युद्ध करने के लिए उद्यत थे। परंतु उनका सामन्तवाद राजपूत समाज की सबसे बडी दुर्बलता थी। विभिन्न वंशो की पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता और झगडो के कारण वे मिलकर कोई काम नही कर सकते थे। जातियो की अहितकर विभिन्नता के कारण निम्न वर्गो के राजपूत उच्च जातिवालो से नही मिल सकते थे। केवल उच्च वंशवाले ही जागीर पा सकते थे। इस विभेद के कारण जागीर प्रथा वंशगत तथा स्वार्थपरायण हो गई। इन सामन्तिक राजपूत राज्यो के लिए बहुत दिनो तक जीवित रहना

असम्भव था। अत इसमें कोई आश्चय नही कि मुसलमानो के पहले ही आक्रमण ने भारतीय राज व्यवस्था की जडें हिला दी।

अपनी सेना को व्यवस्थित करके मुहम्मद सरहिन्द नाम के सीमान्त नगर की ओर चला और इसे जीत लिया। मध्ययुग में इस नगर का बडा सनिक महत्त्व था। उत्तरी भारत में निम्न राजपूत वशो के सबसे शक्तिशाली राज्य य थे (१) कन्नौज के गहरवार जो बाद में राठौर कहलाने लगे थे, (२) दिल्ली और अजमेर के चौहान, (३) बिहार तथा बगाल के पाल और सेन, (४) गुजरात के बघेले और (५) बुन्देलखड के चदेले। इनम दिल्ली और कन्नौज के राजा अधिक शक्तिशाली थे, जिनकी पारस्परिक प्रतिस्पर्धा तथा द्वेष के कारण विदेशी आक्रमण का रुकना असम्भव हो गया।

पृथ्वीराज—पृथ्वीराज दिल्ली और अजमेर का राजा था। वह अपनी वीरता तथा युद्ध-कौशल के लिए विख्यात था। उसने गोरी सुलतान का तराइन[१] के युद्धक्षेत्र में सन् ११९१ ई० में स्वागत किया। तराइन का गाँव थानस्वर से १४ मील दूर है। केवल कन्नौज के राठौर राजा जयचन्द ही ने इस युद्ध में भाग नही लिया। कारण यह था कि पृथ्वीराज ने उसकी कन्या का अपहरण किया था। सुलतान ने वही परम्परागत बाम, दक्षिण तथा केन्द्र की युद्धकला का प्रयोग किया। स्वय वह सेना के मध्य मे रहा। राजपूतो ने उसकी सेना के दोनो पक्षो पर बडी भीषणता से आक्रमण किया और उसे तितर-बितर कर दिया। राजा के भाई गोविंद राय न सुल्तान को भी घायल किया। एक खिल्जी योद्धा उसको रणक्षेत्र मे बाहर ले गया। इस दुघटना से मुसल्मानो में भगदड पड गई। वे अस्त-व्यस्त हो गये। इसके पहले कभी हिन्दुओ ने उनको इतनी बुरी तरह से नही हराया था। जब सुल्तान गोर पहुँचा तो उसने भरे समाज में उन पदाधिकारियों का अपमान किया, जो रणक्षेत्र से भाग आये थे।

पृथ्वीराज की हार—११९२ ई० में बहुत बडी सुव्यवस्थित और सुगठित सेना लेकर हिन्दू राजाओ से बदला लेने के लिए सुल्तान फिर गजनी से भारत

---

१ कुछ इतिहास पुस्तको में इसका नाम नराइन लिखा है। यह अशुद्ध है। लेनपूल ने भी भ्रमवश नराइन लिखा है (मिडीवल इंडिया पृ० ५१)।

की ओर चल पडा। उसने तराइन के निकट फिर पडाव डाला। अपने राज्य की रक्षा के लिए, पृथ्वीराज ने अन्य राजपूत राजाओ से सहायता की प्रार्थना की। १५० राजपूत राजा उस चौहान वीर के झडे के नीचे तुर्कों से लडने के लिए एकत्रित हो गये। इससे पता लगता है कि किस उत्साह के साथ पृथ्वीराज की प्रार्थना का राजपूतो ने स्वागत किया।

प्रातःकाल से सायकाल तक घनघोर युद्ध हुआ। शत्रु को थका हुआ देखकर सुल्तान १२००० अश्वारोहियो को लेकर राजपूतो पर टूट पडा। हिंदुओ की ओर भीषण मृत्यु की विभीषिका नृत्य करने लगी। चारो ओर नाश ही नाश दिखाई देने लगा। इन अश्वारोही धनुर्धारियो के सामने राजपूत वीरता बिलकुल न ठहर सकी और चारो ओर हत्याकाड मचने लगा। सख्या में अधिक होने पर भी हिंदुओ की हार हुई। मुसलमान इतिहासकार लिखते हैं कि पृथ्वीराज युद्धभूमि छोडकर भागा, परन्तु सिरसुती (सरस्वती)[1] के पास पकडा गया और अंत में "नरक को भेज दिया गया।"

पृथ्वीराज की हार के बाद राजपूत न सम्भल सके। इस हार के कारण हिन्दुओ का आतरिक बल टूट गया, और मुसलमानो ने सिरसुती, मामाना, कुहराम और हाँसी बडी सरलता से जीत लिये। इसके बाद सुलतान अजमेर पहुँचा, सिपाहियो को नगर लूटने की आज्ञा दे दी गई और सहस्रो मनुष्य तलवार के घाट उतार दिये गये। इसके पश्चात् पृथ्वीराज के औरस पुत्र को नगर का अधिकार दे दिया गया। उसने नियमित रूप से कर देने का वचन दिया। अपने स्वामिभक्त सेनानायक कुतुबुद्दीन ऐबक को भारतीय राज्य के रक्षार्थ छोडकर सुलतान गजनी लौट गया। थोडे ही समय में कुतुबुद्दीन ने मेरठ कोल[2] और दिल्ली जीत लिये। दिल्ली को उसने अपनी राजधानी बनाया।

कन्नौज की विजय—दिल्ली के उस पार दोआब में राठौर वश का राज्य

---

१ यह नगर प्राचीन सरस्वती नदी के तट पर स्थित था। अकबर के समय में सिरसुती सम्भल सरकार का महाल था।

२ कोल, अलीगढ के निकट एक स्थान है। यहाँ पहले एक दुर्ग था जो अब तक विद्यमान है।

था, उनकी राजधानी कन्नौज में थी, जो योद्धाओ और राजनीतिज्ञों को जन्म देने के लिए प्रसिद्ध थी। उनका राजा जयचन्द अपने समय का बडा शक्तिशाली राजा था, जिसकी ख्याति इतिहास और काव्य दोनो में ही है। जयचन्द ने कदाचित् यह आशा की थी कि, पृथ्वीराज की हार के बाद वह ही भारत का एकछत्र राजा हो जायेगा, परन्तु उसे निराश होना पडा। ११९४ ई० में सुलतान गजनी से कन्नौज की ओर चल पडा। जयचन्द ने मुसलमानो के इस आक्रमण को रोकने के लिए कदाचित् कोई सघ नही बनाया। ऐसा प्रतीत होता है कि पृथ्वीराज की हार के कारण उनका सारा उत्साह ठडा हो गया। उनकी आशाओ पर तुषारपात हो चुका था। वैसे वे अवश्य उसके झडे के नीचे इकट्ठे हो जाते। चदवार और इटावा के बीच के मैदान में मुसलमानो ने राजपूतो की सेना को बुरी तरह से हरा दिया। जयचन्द को युद्धो से प्राणघातक आघात पहुँचा और वह धराशायी हो गया। इस हार के पश्चात् राठौर राजपूताना चले गये। वहा उन्होने जोधपुर राज्य की नीव डाली। इसके बाद विजयी सुलतान बनारस पहुँचा। वहा उसने मन्दिरो को तुडवा दिया और उनके स्थान पर मसजिदें बनवाने की आज्ञा दी। इसके पश्चात् वह कोल के दुर्ग में लौट आया और लूट का सामान लेकर गजनी लौट गया।

अन्य विजयें—भारतवर्ष में कुतुबुद्दीन का जीवन-काल अखड विजयो का समय है। वह अजमेर पहुँचा और वहाँ के न्यायपूर्ण उत्तराधिकारी को वहा का राजा बनाकर उसे गजनी के अधीन कर दिया। उसकी देख-रेख के लिए एक मुसलमान शासक भी नियुक्त कर दिया। अजमेर से ऐबक नेहरवाल के राजा भीमदेव के विरुद्ध चढ गया और उसे हरा दिया। ग्वालियर, बियाना तथा अन्य अनेक स्थानो को गजनी का अधिराजत्व स्वीकार करने के लिए उसने बाध्य किया।

बिहार की विजय—मुहम्मद बिन बख्तियार खिल्जी नाम के "एक कुशल वीर और चतुर" सेनानायक ने बडी आश्चर्यपूर्ण सरलता से बिहार प्रान्त की विजय सम्पन्न की। कदाचित् ११९७ ई० में केवल २०० अश्वारोहियो के एक छोटे से परन्तु सुव्यवस्थित व्यूह को लेकर उसने बिहार प्रान्त पर आक्रमण किया और बडी शीघ्रता से इसके प्रधान दुर्गों को जीत लिया। बौद्ध विहार

नष्ट कर दिये गये और अनेको पुस्तके छिन्न भिन्न कर दी गइ। बुद्ध धर्म की उत्तरकालीन मूर्तिपूजा के कारण ही मुसलमानो ने उनकी वस्तुओ को नष्ट करने में इतना उत्साह दिखलाया था। बौद्ध विहार तथा स्तूपो के खडहर आज भी उनके मूर्तिभजक उत्साह का परिचय दे रहे ह। बिहार पर मुसलमानो के आक्रमण होने से बौद्धो की शक्ति का बडा धक्का पहुँचा जिससे वह फिर न उठ सका। स० १२७६ वि० (१२१९ ई०) के विद्याधर के शिलालेख से पता लगता ह कि, बौद्ध धर्म उत्तरी भारत में पूर्णरूप से अन्तर्हित नही हुआ।

बगाल की विजय—बिहार के बाद बगाल की विजय हुई। मुहम्मद बिन बख्तियार की सेना के फरगाना निवासी एक सिपाही के वर्णन को आधार बनाकर मुसलमान इतिहासकार ने लिखा है कि चतुर सेनानायक केवल १८ घुडसवारो को लेकर नदिया पहुँचा। उसका आना सुनकर वृद्ध राय अपने महल के गुप्तद्वार से निकल गया और सुनार गाव के निकट विक्रमपुर मे उसने शरण ली। गाड प्रदेश[1] के सभी असन्तुष्ट व्यक्ति वही शरण लेते थे। यह वर्णन अतिरञ्जित है। मुहम्मद ने नदिया नगर का नष्ट कर दिया और लखनौती अथवा गौड को अपनी राजधानी बनाया। सुलतान मुईजुद्दीन के नाम से खुतबा पढा गया और सिक्के बनाये गये। अपार लूट का बहुत बडा भाग कुतुबुद्दीन को भेज दिया गया।

कालिंजर की विजय—१२०२ ई० में बुन्देलखड के चन्देल राजा परिमर्दी (परमाल) के विरुद्ध कुतुबुद्दीन चल दिया। वह मुसल्मानो के आक्रमण को न राक सका और कालिञ्जर का दुर्ग विजेताओ के हाथ लगा। इसके पश्चात् कालपी और बदायू के दुर्ग भी जीत लिय गये। इस प्रकार उत्तर भारत के सभी महत्वपूर्ण स्थाना पर कुतुबुद्दीन ने गजनी का अधिकार जमा दिया।

परिस्थिति में परिवर्तन—गजनी के सुलतान अपने भारतीय राज्य से सन्तुष्ट न थे। वे आमू नदी के प्रदेशो के लिए लालायित थे, जिसको राज्य में मिलाने

---

१ डा० विंसेण्ट स्मिथ द्वारा पूर्णरूप से स्वीकृत 'तबकाते नासिरी' निस्सन्देह अत्युक्तिपूर्ण है। अपनी 'अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया' के नवीन सस्करण में उन्होंने अपने विचारो को परिवर्तित कर दिया है।

की असफल चेष्टा महमूद के समय से हो रही थी। मुहम्मद ने भी उसी प्रकार बडी भारी सेना लेकर १२०४ ई० में ख्वारिज्म पर आक्रमण किया। परन्तु वहा शाह ने उसको तथा उसके सहायका का इतना तग किया कि वे बुरी तरह से भाग निकले और स्वय सुल्तान की जान भी बडी कठिनाई से रक्षा हो सकी। जैसे ही इस दुघटना का समाचार विदेशा में पहुँचा वस ही अव्यवस्था की शक्तियाँ काम करने लगी। एक गजनी का पदाधिकारी शीघ्रता से भारत आया और एक जाली आनापत्र को दिखलाकर उसने अपने को मुल्तान का शासक घोषित कर दिया। सेना ने भी उसे स्वीकार कर लिया। अभागे सुलतान के लिए गजनी ने भी अपने फाटक बन्द कर लिये और उधर उपद्रवी खाखरों ने झगडा खडा कर दिया और पजाब प्रान्त को तग करना प्रारम्भ किया। परन्तु इस निराशापूर्ण भविष्य को भी देखकर सुल्तान घबडाया नही। उसने शीघ्र ही मुलतान और गजनी जीत लिये और फिर खोखरा का दण्ड देने के लिए भारत की ओर चल पडा। झेलम नदी के एक घाट के किनारे खाखर बुरी तरह से हार गये। इस विजय के बाद सुल्तान लाहौर लौट आया।

खोखररूपी सप कुचल गया था किन्तु मरा नही था। जब खुले युद्ध में उनकी कुछ न चली तो उन्होने कपट का सहारा लिया उनके कुछ गणाधीशा ने अपने कुटुम्बियो की मृत्यु का बदला लेने के लिए सुलतान का मारने का एक षड्यत्र किया। लाहौर से गजनी के माग में सुल्तान झेलम जिले के 'धाम्यक' स्थान पर ठहरा। माच १२०६ ई० में एक आवाघ खोखर ने उसे मार डाला।

मुहम्मद का कार्य—मुहम्मद गोरी महमूद के समान धर्मान्ध नही था। उसकी अपेक्षा वह कही अधिक राजनीतिज्ञ था। उसने भारतवष की दुबल दशा का स्पष्ट चित्र देख लिया था और एक स्थायी राज्य स्थापित करने का निश्चय कर लिया था। धन लोभ के कारण महमूद भविष्य के लाभ को नहीं देख सका। भारत की विजय से यह लाभ होना अवश्यम्भावी ही था। मुहम्मद गोरी आरम्भ से ही दूसरा माग ग्रहण किया। उसने विजित देशा का सगठन प्रारम्भ कर दिया, इस काम में उसको अपने योग्य सेनानायक कुतुबुद्दीन की

बहुमूल्य सहायता और सहयोग प्राप्त हुआ और जिसने बाद में चलकर दिल्ली में गुलामवंश की नींव डाली।

महमूद का उद्देश्य स्थायी विजय करना था ही नहीं, वह आँधी की भाँति आया था और अपार लूट का धन लेकर लौट गया। उसके आक्रमणों का एकमात्र उद्देश्य धन प्राप्ति और मूर्तिभंजन ही था, परन्तु मुहम्मद वास्तविक विजेता था। उसने स्थायी राज्य स्थापित करने के लिए देशों को जीता। जब तक राजपूत जाति की शिराओं और धमनियों में रणरक्त बहता था, तब तक भारत की पूर्ण विजय असम्भव थी। परन्तु मुसलमानों ने सर्वप्रथम भारत के एक बड़े भाग को स्वयं अपने अधिकार में इस समय कर लिया। कुतुबुद्दीन भारतवर्ष का शासक नियुक्त हुआ जिसको मुसलमानों के राज्य बढ़ाने की आज्ञा मिली हुई थी। इस बात से स्पष्ट पता लगता है कि मुहम्मद गोरी का लक्ष्य क्या था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि राज्य विस्तार के लिए उसने पश्चिम की ओर भी दृष्टि डाली। परन्तु इस कारण हम उसको परम्परागत नीति का पालन करने के लिए दोषी नहीं ठहरा सकते। भारत में उसका कार्य अधिक ठोस था। कालक्रम में उसकी जमाई हुई भारत की इस्लामी शक्ति बढ़ने लगी और दिल्ली का प्रारम्भिक छोटा सा राज्य पूर्व का सबसे विस्तृत साम्राज्य बन गया। इस्लाम के महत्त्व के लिए मुहम्मद का यह प्रतिदान तुच्छ नहीं कहा जा सकता।

सहायक ग्रन्थ

'ओझा'—हिस्ट्री आफ राजपूताना
स्मिथ—अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया
इलियट एण्ड डासन—हिस्ट्री आफ इंडिया भाग २
रवर्टी—तबकाते नासिरी
वैद्य—मडीवल इंडिया भाग २ और ३
ब्रिग्ज—राइज आफ मुहमडन पावर भाग १

अध्याय ६

गुलाम-वंश*

(१२०६-९० ई०)

कुतुबुद्दीन का राजा बनना—मुहम्मद के कोई बेटा न था। मिनहाजुस्सिराज ने लिखा है कि एक बार जब एक प्रिय दरबारी ने पुत्रहीनता के विषय मे सुलतान से कहा, तो उसने बडी उदासीनता से उत्तर दिया "अन्य राजाओ के तो एक दो पुत्र ही होगे, मेरे तो सहस्रो पुत्र है अर्थात् मेरे तुर्की दास, जो मेरे राज्य के स्वामी बनेगे और जो मेरे राज्य में मेरे पश्चात् खुतबा मे मेरा नाम बनाये रक्खेगे।" अपने स्वामी की मृत्यु के पश्चात् कुतुबुद्दीन ऐबक पर सबकी दृष्टि गई। वह हिन्दुस्तान का राजा बन गया। उसने एक राजवंश की नीव डाली, जो उसी के नाम से विख्यात हुआ। ऐबक पहले गुलाम था। निशापुर के काजी ने उसे मोल ले लिया था। उसकी कृपा से वह साहस और पौरुष के लिए विख्यात हो गया। काजी की मृत्यु के पश्चात् वह सुलतान मुईजुद्दीन के हाथो मे पड गया। यद्यपि ऐबक देखने में सुन्दर नही था, परन्तु उसमें प्रशंसनीय गुण थे, जिनका अत्यधिक प्रभाव पडता था। केवल अपनी योग्यता ही के कारण वह अमीर आखुर (अश्वपति) के पद तक पहुँच गया। सुलतान के भारत-आक्रमण के समय ऐबक ने भक्ति से उसकी सेवा की। इन सेवाओ के पुरस्कारस्वरूप उसको भारत राज्य का शासक नियुक्त किया गया। भारत के राज प्रतिनिधि रूप में उसने अपने स्वामी के राज्य को दृढ किया और उसकी सीमाएँ बढाई। वैवाहिक सम्बन्धो से भी उसने अपनी स्थिति सुदृढ की। उसने ताजउद्दीन एल्दोज की पुत्री से विवाह

---

* इस वंश को भ्रमवश गुलाम-वंश कहते है। जो राजा गद्दी पर बैठे, वे पहले गुलाम अवश्य थे, परन्तु उनके स्वामियो ने उनको स्वतन्त्र कर दिया था।

कुतबी मसजिद
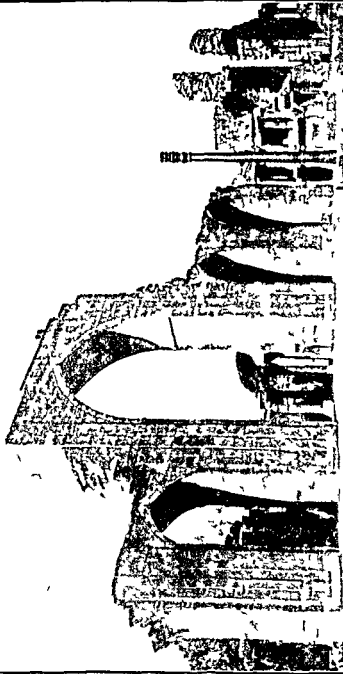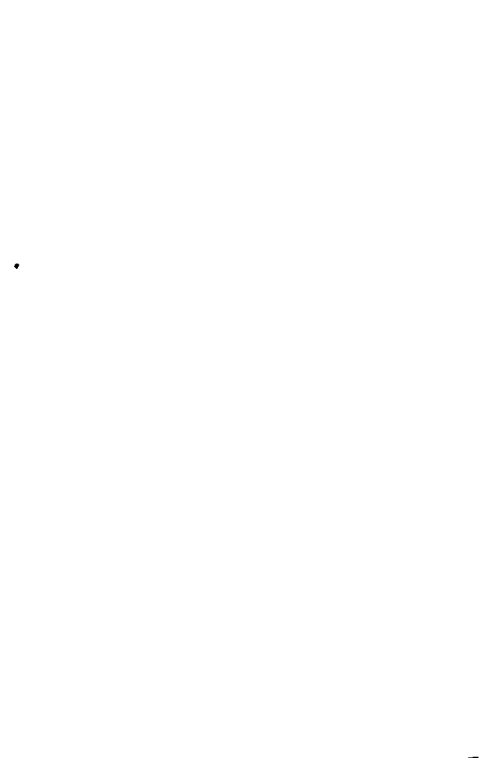
किया, कुबैचा से अपनी बहिन का विवाह कर दिया और अपनी पुत्री का विवाह इल्तुतमिश नाम के अपने एक गुलाम से कर दिया।

उसकी विजय चर्चा—ऐबक ने हांसी, मेरठ, दिल्ली, रणथम्भार और कोल को जीत लिया तथा बनारस तक सारे प्रदेश पर अधिकार कर लिया। ११९७ ई० म उसने नेहरवाल पर चढाई की। घोर युद्ध हुआ। मुसलमानो ने सारा देश रौद डाला। सन् ११९६ ई० से १२०२ ई० तक छ साल तक देश मे शान्ति रही। १२०२ ई० में ऐबक ने कालिंजर पर चढाई की। इस पर उसने अधिकार कर लिया और अपार धन लूटा। इसके बाद उसने महोबा जीता। बख्तियार के पुत्र मुहम्मद खिलजी ने बगाल और बिहार को पहले ही जीत लिया था। कुतुबुद्दीन को उसने अपना अधि-राज स्वीकार कर लिया था। दिल्ली से कालिंजर और गुजरात तक और लखनौती से लाहौर तक सारे उत्तरी भारत पर मसलमाना का अधिकार हो गया। यद्यपि साम्राज्य के सुदूरवर्त्ती देश पूर्णाधिकृत नही हो सके।

शासक की दृष्टि से कुतुबुद्दीन—कुतुबुद्दीन बडा उत्साही और उदार राजा था। उसका शासन प्रबन्ध उत्तम था। उसका न्याय सब के लिए समान था। वह राज्य के सुख और समद्धि की वृद्धि की चेष्टा करता था सडको पर डाकुओ का भय न था। हिन्दुओ के साथ दया का बर्ताव होता था यद्यपि ईश्वर के नाम पर युद्ध करनेवाले सुल्तान ने इन युद्धो में सहस्रो को दास बना लिया था। सब इतिहासकारो ने उसकी उदारता की प्रशसा की ह। व उसे 'लाखबख्श अथवा लक्षदाता कहते ह।

ऐबक बडा शक्तिशाली और योग्य शासक था। उसका चरित्र उत्तम था वह वीर और शक्ति-सम्पन्न तथा इस्लाम की दृष्टि से चतुर और न्यायी था। ऐबक बडा दीन परस्त था और विदेश में बहुत बडे राज्य की नीव डालनेवाला होने के कारण वह भारत म मुसलमान विजेताओ में अग्रणी गिना जाता है। उसकी वीरता प्रसिद्ध थी। एक दिल्ली और एक अजमेर में दो मस्जिदे बनवाकर उसने अपने धार्मिक उत्साह का प्रमाण दिया। चौगान[१] खेलते समय

१ चौगान का खेल वतमान पोलो की भांति था, मध्ययुग के पूववर्त्ती समय में फारस तथा भारत में यह बडा प्रिय खेल था।

घोड़े से गिरकर १२१० ई० में उसकी मृत्यु हो गई। अपने उत्तराधिकारी के लिए वह एक बहुत बड़ा राज्य छोड़ गया।

ऐबक की मृत्यु के पश्चात् अव्यवस्था—अपने पिता की मृत्यु के पश्चात आरामशाह बादशाह हुआ परन्तु एक साल के अल्पकालीन राज्य के बाद बदायूं के शासक इल्तुतमिश ने उसे हरा दिया और गद्दी से उतार दिया। आराम की मृत्यु के समय हिन्दुस्तान चार भागों में विभक्त था—सिंध पर कुबैचा का अधिकार था, दिल्ली तथा उससे मिले हुए प्रान्त इल्तुतमिश के अधिकार में थे, लखनौती पर खिल्जी मलिकों का अधिकार था और लाहौर पर क्रमशः कुबैचा और एल्दोज का अधिकार रहता था या दोनों में से गजनी में सर्वोच्च, लाहौर का अधिकारी होता था।

इल्तुतमिश का राज्य सिंहासन—इल्तुतमिश १२१० ई० में गद्दी पर बैठा। गुलाम बादशाहों में वह सबसे बड़ा है। वह एक गुलाम[1] का भी गुलाम था। केवल अपनी योग्यता के कारण ही वह इतनी उन्नति कर गया। वंशजात उत्तराधिकारी को हटाकर राज्य कर लेना उसकी सुयोग्यता का परिचायक है। परन्तु दिल्ली का राज्य सिंहासन पुष्प शय्या न थी, उसको कठिन परिस्थिति का सामना करना पड़ा। एल्दोज और कुबैचा जैसे व्यक्ति उसके राज्याधिकार के प्रतिद्वन्द्वी थे तथा मूजी और कुतबी अमीर उसके राज्यापहरण से असन्तुष्ट थे। क्योंकि वे समझते थे कि दिल्ली की गद्दी पर ऐबक की सन्तान का ही अधिकार होना चाहिए। इसके अतिरिक्त छोटे-बड़े अनेक हिन्दू राज्य थे, जो मुसलमानों को केवल नाम के लिए ही अपना अधिराज स्वीकार किया करते थे, परन्तु इन कठिनाइयों के सामने इल्तुतमिश घबड़ानेवाला व्यक्ति न था और वह बड़ी लगन तथा दृढ़ निश्चय के साथ इन समस्याओं को सुलझाने में लग गया।

प्रतिद्वन्द्वियों का दमन—विरोधी अमीरों को दबाकर उसने समस्त दिल्ली प्रान्त पर अधिकार कर लिया। परन्तु उसकी इच्छा अपने प्रतिद्वन्द्वियों को नष्ट

१ इल्तुतमिश को जमालुद्दीन नाम के एक सौदागर ने मोल लिया था। वह उसे गजनी लाया। वहां से वह उसे दिल्ली ले गये। एक दूसरे गुलाम एक के साथ कुतुबुद्दीन ने उसे माल ले लिया।

ईल्तुतमिश के समय में
दिल्ली साम्राज्य
गजनी
पेशावर
लाहौर
मुलतान
उच्छ
भक्कर
दिल्ली
बरन
बदायूँ
कन्नौज
अयोध्या
ग्वालियर
प्रयाग
बनारस
लखनौती
गौर
अन्हिलवाड
उज्जैन
भिलसा
गुजरात
यादव
देवगिरि
एलिचपुर
काकती
वारंगल
रायचूर
ब्रह्मपुत्र
अरब
सागर
बंगाल
की
खाडी

से संघर्ष करना पड़ा। तब कहीं १२०३ ई० में जाकर उसे खान का पद मिला। उसने विद्युत्-गति से चीन को रौंद डाला, और पश्चिमीय एशिया के मुस्लिम प्रदेशों को लूट लिया और उजाड़ दिया। बलखबुखारा, समरकन्द तथा अन्य अनेक सुन्दर नगर उसके आक्रमणों से नष्ट हो गये। जब चंगेज खां ने ख्वारिज्म के अंतिम शाह जलालुद्दीन पर आक्रमण किया, तो वह भारत की ओर भागा। आक्रमणकारियों ने उसका पीछा किया। उसने सिन्ध नदी पर पड़ाव डाला और मंगोलों से युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हुआ। उसने इल्तुतमिश के पास एक दूत भेजकर प्रार्थना की, कि कुछ समय तक के लिए उसे दिल्ली में एक निवासस्थान दिया जाय। परन्तु उसने यह बहाना करा कि दिल्ली का जलवायु आपके अनुकूल न होगा और राजदूत को मरवा डाला। जलालुद्दीन को अन्त में मंगोलों ने हरा दिया। वह थोड़े से सिपाहियों को लेकर ही भागकर बच गया। खोखरों से मिलकर उसने नासिरुद्दीन कुबैचा पर आक्रमण किया और उसे मुल्तान के दुर्ग में भगा दिया। कुछ समय पश्चात् वह फ़ारस पहुँचा। वहाँ उसे समाचार मिला कि, ईराक की सेना उसकी सहायता के लिए प्रस्तुत है। परन्तु एक क्रोधान्ध व्यक्ति ने उसको मार डाला, जिसके भाई का पहले उसने वध करा दिया था। मंगोलों को भारत की गर्मी सहन न हुई और वे सिन्धु के पश्चिम की ओर से ही लौट गये। वह देश उन्हें बहुत आकर्षक प्रतीत हुआ। इस प्रकार भारत एक बड़ी विपत्ति से बच गया, और अब इल्तुतमिश देश के अन्य शत्रुओं से युद्ध करने की ओर दत्तचित्त हुआ।

विजयें—कुतुबुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् खिल्जी मलिकों ने दिल्ली की अधीनता छोड़ दी। उनमें से कुछ ने अपने सिक्के बना डाले और स्वतन्त्र शासक की तरह अपने नाम से खुतबा पढ़वाया। अलीमर्दान और गयासुद्दीन खिल्जी ऐसे ही मलिक थे। १२२५ ई० में इल्तुतमिश ने गयास से लड़ने के लिए एक सेना भेजी, उसने सन्धि कर ली और कर-रूप में अपार धन दिया। उसके नाम से खुतबा पढ़ा गया और सिक्के बनाये गये। परन्तु ज्यों ही सुल्तान की सेना हटी, वैसे ही गयास ने बिहार के शासक को निकाल दिया और प्रान्त पर अपना अधिकार कर लिया। नासिरुद्दीन मुहम्मद अवध का जागीरदार

था। उसने गयास का सामना किया। गयास की हार हुई, और वह मार डाला गया। खिलजी अमीर बन्दी बना लिये गये। सारी लखनौती पर सुलतान का अधिकार हो गया। १२२६ ई० में रणथम्भौर की हार हुई और उसके एक वर्ष पश्चात् शिवालिक पहाडियो में स्थित मन्दौर भी जीत लिया गया।

कुबैचा की पराजय—सुलतान मुईजुद्दीन का एक और गुलाम कुबैचा था। वह बडा चतुर और नीतिकुशल था, अपने स्वामी का प्रियपात्र होने के कारण उसका प्रभाव बहुत बढ गया। वह उच्छ का शासक नियुक्त हुआ। वहाँ उसने इतनी कुशलता से प्रबन्ध किया, कि थोडे ही काल में सिंघ का स्वामी बन गया। जिसकी सीमा सरहिन्द, कुहराम और सिरसुती तक पहुँच चुकी थी। उसकी सफलता देखकर उसके प्रतिद्वन्द्वी गजनी के शासक को भी ईर्ष्या हुई, और शीघ्र ही लाहौर को लेने के लिए उसमें और एल्दौज में प्रतिद्वन्द्विता होने लगी। जब कुबैचा ने खल्ज और ख्वारिज्म की सेना को हरा दिया, तो इल्तुतमिश ने उनको आश्रय दिया और उनको सहायता देने का वचन दिया। एक बहुत बडी सेना लेकर वह दिल्ली से प्रस्थान कर सरहिन्द होता हुआ उच्छ की ओर चला गया। सुलतान का आगमन सुनकर कुबैचा बक्कर के दुर्ग में चला गया। शाही सेना ने उच्छ के दुर्ग पर आक्रमण किया और १२२७ ई० में दो मास और सत्ताईस दिन के घेरे के पश्चात् उसे जीत लिया उच्छ की विजय से कुबैचा इतना डर गया कि वह एक नाव पर बैठकर प्राण लेकर भागा, परन्तु सिन्धु नदी में डूब कर मर गया।

खलीफा द्वारा दीक्षा—१२२८ ई० में इल्तुतमिश को मुसलमानो के सर्वोच्च धर्म-गुरु, बगदाद के खलीफा से दीक्षा-पत्र मिला। इससे भारत में मुसलमानो की शक्ति बहुत कुछ बढ गई। इससे सुलतान का अधिकार न्याय-युक्त हो गया। जो लोग राजगद्दी पर उसका वशगत कोई अधिकार नही मानते थे, इस दीक्षा मे उनके मुँह बद हो गये। उसके अधिकार को उस व्यक्ति की स्वीकृति मिल गई, जिसका नाम सारा मुसलमान ससार आदर और श्रद्धा से लेता था। राजकीय टकसाल से निकलनेवाले सिक्को पर खलीफा का नाम लिखा जाता था। सुलतान के सम्बन्ध में लिखा था "धर्मनिष्ठो के सेनापति नासिर अमीर उल मुअमनीन का सहायक।" सिक्को का रूप बिलकुल परिवर्तित कर-

दिया गया। सवप्रथम इल्तुतमिश ने ही अरब सिक्का चलाया। चाँदी का टक ही प्रामाणिक सिक्का हो गया। इसका भार १७५ ग्रेन के बराबर था।

बगाल और ग्वालियर की विजय—जब बगाल में नासिरुद्दीन महमूद शाह की मृत्यु हो गई, तो लखनौती के खिलजी मलिको ने विद्रोह खडा कर दिया। एक बहुत बडी सेना लेकर सुलतान इन विद्रोहियो को दड देने के लिए चल दिया और उन्ह हरा दिया। मलिक अलाउद्दीन जानी लखनौती का शासक बना दिया गया। सारे सूबे म शान्ति स्थापित हो गई। १२३१ ई० में ग्वालियर पर आक्रमण हुआ जो आराम शाह के अल्पकालीन राज्यकाल मे दिल्ली से स्वतत्र हो गया था। वहाँ के राजा मगलदेव ने जी तोडकर आक्रमण को रोका। ग्यारह मास तक यह युद्ध चलता रहा। अत में १२३२ ई० मे मगलदेव छिपकर भाग गया। परन्तु उसके अनेक साथी पकड लिये गये और मार डाले गये।

सफल जीवन का अत—एक वर्ष पश्चात् सुलतान ने मालवा पर आक्र-मण किया और भिलसा के दुर्ग को जीत लिया। यहा से वह उज्जैन पहुँचा और उसे सरलता से जीत लिया। महाकाली का मन्दिर, जो उस नगर में बडा पूज्य स्थान समझा जाता था, नष्ट कर दिया गया और उसकी मूर्तियाँ दिल्ली भेज दी गईं। स्वास्थ्य अच्छा न रहने के कारण उसे बनियान पर आक्रमण करने का विचार छोड देना पडा। उसकी दशा बिगडती गई और अत में १२३५ ई० मे राजमहल में ही उसकी मृत्यु हो गई।

इल्तुतमिश का कार्य—इल्तुतमिश ने ही वास्तव म गुलाम-वश की नीव डाली। अपने स्वामी कुतुबुद्दीन के विजित देशो का उसी ने सगठन किया। कुछ सुदूरवर्ती प्रान्तो को छोडकर उसने सारे हिन्दुस्तान पर अधिकार कर लिया। अपने शत्रुओ के साथ उसने बडे उत्साह, कौशल और वीरता से काम लिया। यद्यपि वह युद्धो और आक्रमणो में ही व्यस्त रहा, तो भी वह धार्मिक पुरुषो और विद्वानो का आदर करता था। वह स्वय बडा धार्मिक था। उसके इस धर्म-पालन के कारण मुलाहिदों ने उसको मारने का षडयत्र किया, परन्तु वह सौभाग्य से असफल हो गया। सुलतान को इमारतो का भी बडा शौक था। आज भी विशाल कुतुबमीनार, जो अपने सौंदर्य और कला-कौशल में

अद्वितीय है, उसकी महानता की घोषणा कर रही है। वह आजीवन एक महान् शासक की भाति व्यवहार करता रहा। उसका सम सामयिक इतिहास कार मिनहाज-उस-सिराज इन शब्दा मे उसकी प्रशसा करता है "इस प्रकार का धमनिष्ठ और साधू, फकीरो, ईश्वर-भक्तो तथा धम-गुरुओ और धर्मा चार्यों के प्रति इतना दयालु तथा श्रद्धालु राजा इस सृष्टि म कभी उत्पन नही हुआ।

इल्तुतमिश के दुर्बल उत्तराधिकारी--सुल्तान समझता था कि उसके पुत्र अयोग्य है। अत उसने अपनी पुत्री रजिया को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया था। परन्तु राजदरबारी एक स्त्री के गद्दी पर बैठने के विरुद्ध थे। अत उन्होने इल्तुतमिश के एक पुत्र रुकुनुद्दीन को गद्दी पर बैठा दिया। वह बडा विलासी तथा निम्नकोटि का इद्रिय-लोलुप था। इस प्रकार जब युवक राज कुमार विलास मे मग्न था, तो राज्य प्रबध उसकी माता शाह तुरकान करती थी। वह बडी महत्त्वाभिलाषिणी महिला थी। अधिकार भोगने से उसे बडा प्रेम था। परतु जब माता और पुत्र ने मिलकर एक और राजकुमार कुतुबुद्दीन का वध करा दिया, तो मलिक और अमीर भी उनसे बिगड गये। अवध, बदायू, हाँसी, मुल्तान और लाहौर के शासकाने खुल्लमखुल्ला विद्रोह आरम्भ कर दिया। इधर राजमाता ने इल्तुतमिश की ज्येष्ठ पुत्री और मनोनीत रानी रजिया के प्राण लेने का एक और षड्यत्र किया। यह षडयत्र प्रारम्भिक अवस्था मे ही पकड लिया गया। क्रोधित प्रजा ने शाह तुरकान को बदी बना लिया। रुकुनुद्दीन को भी पकड कर बदी कर दिया गया। १२३६ ई० मे बदी-गृह में ही उसकी मृत्यु हो गई। अब अमीर रजिया के साथी हो गये। उन्होने उसे अपनी अधिरानी स्वीकार कर लिया।

सुलतान रजिया का राज्यारोहण—जब इल्तुतमिश ने रजिया को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था, तो एक महिला का राजपद पाने के कारण उसके मत्रियो ने अपना बडा अपमान समझा था। उन्होने सुल्तान से यह भी कहा कि राजनीतिक दृष्टि से भी यह ठीक नही। उस समय सुल्तान ने उत्तर दिया था, "मेरे पुत्र यौवन के विलासमय आनन्द में मग्न रहते हैं। देश का राजप्रबध सँभालने की योग्यता किसी में नही है। मेरी मृत्यु के

पश्चात मेरी पुत्री के अतिरिक्त कोई भी राज्यभार नही सँभाल सकेगा।" इस प्रकार किसी पुरुष के ही उत्तराधिकार की बात बद हो गई और रजिया का नामीकरण सव-स्वीकृत हो गया।

वह अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेती है—राज्य के वजीर महम्मद जुनैदी ने उसके अधिकार को स्वीकार नही किया। प्रान्तीय शासको ने भी विरोध किया। रजिया के सामने बडी विषम परिस्थिति थी। परन्तु अवध के सामन्त नसरतउद्दीन तयाग्सी ने उसकी सहायता की। रजिया के ही कारण उसको यह पद मिला था। अपने साहस और कूटनीति से रानी ने शीघ्र ही विद्रोही मलिको को दबा दिया और राज्य भर में सुव्यवस्था स्थापित कर दी इतिहासकार के शब्दो में "लखनौती से देवल और दमरीला तक सब मलिक और अमीर उसकी अधीनता स्वीकार करते थे और उसकी आज्ञा का पालन करते थे।"

उसकी नीति असतोष उत्पन्न कर देती है—रजिया बडी गुणवती स्त्री थी। उसका सम-सामयिक इतिहासकार लिखता है कि "वह महान् सम्राज्ञी थी। वह चतुर, विदुषी, न्यायप्रिय, उदार, विद्वानो की आश्रयदात्री, न्याय-कुशल, प्रजा का हितकरनेवाली तथा युद्ध-कुशल थी। राजाओ मे जिन उत्तम गुणो की आवश्यकता होती है, वे सब उसमें विद्यमान थे। परन्तु विधाता ने उसे पुरुष नही बनाया था, अत ये सब गुण भी उसके लिए व्यर्थ थे।' उसने राजा का रूप धारण करने तथा उसकी भाँति कार्य करने का भरसक प्रयत्न किया। उसने स्त्रियो के वस्त्रो का परित्याग कर दिया, जनानखाने का एकान्तवास छोड दिया, सिर पर पुरुष की पोशाक धारण की और खुले दरबार मे कार्य करना आरम्भ कर दिया। हिन्दुओ तथा विद्रोही मुसलमान शासको के विरुद्ध उसने स्वय युद्ध किये। लाहौर के शासक पर उसने स्वय आक्रमण किया और उसे अपना अधिकार स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। परन्तु स्त्री होना ही उसके लिए अभिशाप हुआ। एल्फिन्स्टन ने लिखा है कि उसके ये गुण तथा उसकी इतनी योग्यता भी उसकी इस एक दुर्बलता से रक्षा करने मे अपर्याप्त रही। अपने अश्वपति के लिए विशेष पक्षपात रूप मे इस दुर्बलता के दर्शन हुए। इससे भी अधिक अपमान की बात यह थी कि वह हबशी गुलाम था। उसका नाम जमालुद्दीन याकूत था। स्वतत्र

नासिरुद्दीन महमूद—१२४६ ई० में दिल्ली की गद्दी पर इल्तुतमिश का छोटा पुत्र नासिरुद्दीन गद्दी पर बैठा वह बडा पवित्रात्मा, दयालु तथा ईश्वर से डरनेवाला व्यक्ति था वह विद्वानो का आदर करता था और दीन दुखियो से सहानुभूति रखता था। वह दरवेश (सन्यामी) की भाति विरक्त जीवन व्यतीत करता था। राजकीय विलास से उसका कोई सम्बन्ध न था। कुरान की आयतें लिख-लिखकर वह अपनी जीविका चलाता था। अपने स्वभाव तथा चरित्र के कारण वह दिल्ली पर ऐसे समय में शासन करने में बिलकुल अयोग्य था जब आन्तरिक विद्रोह तथा हिन्दू विप्लवो के कारण राज्य बडा दुबल हो रहा था और उधर मगोल भारत के फाटको पर हथौडे चला रहे थे, परन्तु सौभाग्य की बात यह थी कि, सुल्तान का मन्त्री बल्बन बडा योग्य था। वह अपने स्वामी के पूरे राजत्वकाल तक गृहनीति तथा विदेशी नीति का सचालन करता रहा।

बलबन का प्रारम्भिक जीवन—बलबन इलबरी वश का तुर्क था उसका पिता १० सहस्र परिवारो का खान था, उसकी युवावस्था में मगोलो ने उसे पकड लिया, वे उसे बगदाद ले गये, वहाँ बसरा के ख्वाजा जमालुद्दीन ने इसे मोल ले लिया, ख्वाजा उसे दिल्ली ले गया, वहा इल्तुतमिश ने उसे मोल ले लिया। बलबन सुल्तान का खास बरदार (निजी सेवक) नियुक्त हो गया और चालीस गुलामो के समुदाय में उसकी गणना होने लगी। रजिया के राजत्व काल मे उसकी पदोन्नति हो गई और वह अमीरेशिकार (मृगयाधिकारी) बना दिया गया। बहराम ने उसे रवाडी की जागीर दे दी जिसमे हासी का जिला बाद में जोड दिया गया।

जब अपने नेता मगू के नेतृत्व में मगोलो ने सिन्ध पर आक्रमण किया और १२४५ ई० में उच्छ के दुर्ग का घेरा डाला तो आक्रमणकारियो को भगाने के लिए बल्बन ने एक सेना तैयार की, उसके सैनिक उत्साह तथा कौशल के कारण मगोलो की बुरी हार हुई और इस्लाम की बडी ज्वलन्त विजय हुई। जब १२४६ ई० में नासिरुद्दीन गद्दी पर बैठा तो बल्बन राज्य का प्रधान मन्त्री बना दिया गया।

बल्बन ने १२४६ ई० में रावी नदी को पार किया और जूद तथा झेलम

पहाड़ियाँ रौंद डाली और खोखरा तथा अन्य उपद्रवी जातियों का दबा दिया। विद्रोही हिंदू राजाओं को दण्ड देने के लिए उसने दोआब पर कई बार आक्रमण किये। कालिंजर और कड़ा के बीच के मलाकी प्रदेश के राणा को उसने दबा दिया। मेवात और रणथम्भौर दबा दिये गये। विद्रोही मुसल्मानी शासकों को दण्ड दिया गया तथा ग्वालियर, चन्देरी, मालवा और नरवर जीत लिये गये।

छ महीने पश्चात् जब सुलतान उच्छ और मुल्तान की ओर बढ़ा तो इमादुद्दीन रिहान ने जो बलबन से ईर्ष्या रखता था मलिकों को भड़काया और सुल्तान के कान भरना शुरू कर दिया, परिणामस्वरूप १२५३ ई० में यह महान मंत्री दरबार से निकाल दिया गया और इमादुद्दीन राजधानी का वकीले दर* (द्वाराधिपति) नियुक्त हुआ।

इमादुद्दीन धर्मत्यागी हिंदू था। उसके संरक्षण से दरबार के मलिक और नवाब बड़े क्रोधित हुए। उन्होंने इससे अपना अपमान समझा। "वे शुद्ध तुर्क और उच्च वंश के ताजजीक थे।" उसकी अध्यक्षता में राजसेवा करना वे अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझते थे। राज्य-प्रबन्ध शिथिल हो चला और चारों ओर से सुल्तान के पास प्रार्थनाएँ आने लगीं कि उसको पदच्युत कर दिया जाय। अंत में शक्तिशाली मलिकों के आग्रह से रिहान पदच्युत कर दिया गया। उसे आज्ञा हुई कि शीघ्र ही बदायूँ की जागीर में चला जाय। फरवरी १२५४ ई० में विजयी बल्बन राजधानी लौट आया।

विद्रोहों का दमन—जब अवध के शासक कुतलुग खाँ ने १२५५ ई० में विद्रोह किया, तो बलबन ने उस पर आक्रमण किया और उसे पीछे हटा दिया। कुतलुग की सहायता सभी असंतुष्ट मलिकों और हिंदुओं ने की थी। कुतलुग खाँ को देखकर सिंध के शासक इजउद्दीन बलबन कशलू खाँ ने भी विद्रोह कर दिया था और वह भी कुतलुग से जा मिला था। दोनों मलिकों की सेनाएँ समाना पर मिल गईं और दिल्ली की ओर बढ़ीं। परन्तु उनकी कुत्सित योजना कार्य रूप में परिणत न हो सकी। १२५७ ई० के अंत में मंगोलों ने सिंध पर फिर

*वकीले दर का प्रधान कर्तव्य राजमहल के द्वार की ताली रखना था। मुग़लों के समय में भी यह पद था और वे इसे महत्त्वपूर्ण समझते थे।

आक्रमण किया। परन्तु जब शाही सेना ने उनका सामना किया, तो वे पीछे हट गये।

अंतिम आक्रमण—अंतिम आक्रमण १२५९ ई० में मेवात के पहाड़ी प्रदेश पर हुआ। वहाँ एक हिन्दू मन्का के नेतृत्व में कुछ विद्रोहियों ने गावों को लूटा और सताया था और हरियाना सिवालिक और बियाना जिलों के किसानों को बड़ा तंग किया था। उलुग खाँ ने विद्रोहियों को कुचल दिया और उन्हें निकालकर समस्त देश में शान्ति स्थापित कर दी।

बलबन की सफलता—पूरे दो वर्ष तक बल्बन ने अनेक विपत्तियों से राज्य की रक्षा की और अव्यवस्था तथा उपद्रव फैलानेवालों को कठोरता से दबा दिया। सीमान्त प्रान्त की छावनियों को उसने सुदृढ़ बना दिया और एक विशाल तथा शक्तिशाली सेना बनाई। मंगोलों के आक्रमणों को उसने बड़ी सफलतापूर्वक लौटा दिया। विद्रोही हिन्दू दबा दिये गये और असंतुष्ट अमीर तथा मलिकों के मुँह भी उसने मोड़ दिये। बिना बल्बन की शक्ति और साहस के दिल्ली का राज्य आन्तरिक विद्रोहों और बाह्य आक्रमणों की चोटों को कदापि सहन नहीं कर सकता था।

बलबन का सिंहासनारूढ़ होना—१२६६ ई० में नासिरुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् बल्बन राजा हुआ। उसने सबसे पहले राज्य प्रबन्ध की व्यवस्था और मंगोलों के आक्रमणों को रोकने का प्रबन्ध किया। बर्नी ने लिखा है, "शासन शक्ति का भय, जो उत्तम शासन का लक्षण है और जो राज्य के यश और उसकी महत्ता का कारण है, लोगों के हृदयों से एकदम निकल चुका था और देश की बड़ी दुर्दशा हो गई थी।" नया सुलतान शासन-प्रबन्ध में बड़ा कुशल था। उसने कठोर दंड तथा निर्मम अनुशासन द्वारा अव्यवस्था एकदम दूर कर दी और लोगों को आज्ञापालन तथा अधीनता की शिक्षा दी।

वह व्यवस्था स्थापित करता है—बल्बन की पहली आवश्यकता यह थी कि वह एक विशाल और सुयोग्य सेना प्रस्तुत करे। उसने नये और पुराने अश्वारोहियों और पैदलों को अनुभवी मलिकों के नेतृत्व में रख दिया। जिन्होंने पिछले अनेक युद्धों में अपने साहस और राजभक्ति का परिचय दिया। इस सेना

की सहायता से उसने दोआब और दिल्ली के आस-पास व्यवस्था स्थापित कर दी। मेवाती दिल्ली राज्य के लिए बडे उपद्रव की जड हो चले थे, वे राजधानी के निकट देश में लूट-पाट करते थे, रात में "वे छिपकर नगर में घुस आते थे और लोगा को भाँति भाँति के कष्ट देते थे तथा उनकी नीद मे विघ्न डालते थे।" उनका साहस इतना वढ चला कि, अपराह्न की नमाज के समय राजधानी का पश्चिमी द्वार बन्द करना पडता था उनके अत्याचार से साधु, सन्यासी भी सुरक्षित नही थे। सुलतान ने जगलो को साफ करवा दिया और उनकी शक्ति को विलकुल कुचल दिया। राजधानी की रक्षा के लिए उसने अनेक छावनियाँ वनाइ और अफगान सिपाही रख दिये और उनको छोटी-छोटी जागीरे दे दी। नवाबो तथा उच्च पदाधिकारिया ने देश को पूणतया अपने आधीन कर लिया, सहस्रो उपद्रवी तलवार के घाट उतार दिये गये। दोआब में पहले बडी अशान्ति थी और सुरक्षा के लिए लोगा के मन म बडा भय था। कम्पिल, पटियाली और भोजपुर डाकुओ के बडे प्रबल अड्डे थे। वे सडको को घेरे रहते थे और लागा तथा माल का आना-जाना असम्भव कर देते। सुलतान स्वय इन उपद्रवा का शान्त करने के लिए वहाँ पहुँचा, उसने इस अव्यवस्था और लूट-पाट को बद करने के लिए स्थान स्थान पर अफगान सैनिक नियुक्त कर दिये। "इस प्रकार डाकुओ की कन्दराएँ रक्षा-गृहो में परिणित हो गई और डाकुओ के स्थान पर मुसलमान तथा माग-रक्षक विचरण करने लगे।" अत ६० साल पश्चात् 'बर्नी' सन्तोपजनक शब्दो में कह सका कि, सडकें डाकुओ से सुरक्षित थी और यात्रिया का जीवन निरापद हो गया।

डाकुओ का दमन करके सुल्तान ने जूद की पहाडिया पर आक्रमण किया और पहाडी जातिया को दण्ड दिया। दो साल पश्चात वह उस दुग के पास पहुँचा जिसको मगोलो ने नष्ट कर दिया था। सारा देश उजड चुका था सुलतान ने वहा व्यवस्था स्थापित की इस छोटे से आक्रमण से सुल्तान को फिर पता लग गया कि, शमसी योद्धा विलकुल अयोग्य है जिनको पिछले ३०,४० वर्षो से बहुत अच्छी भूमि राज्य से मिली हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि शमसुद्दीन की सेना के दो सहस्र घुडसवारा को वेतन के बदले दोआब में गाव मिले हुए थे बहुत से भोक्ता वृद्ध तथा सवथा अयोग्य थे,अनेको मर चुके थे उनके पुत्रो ने भूमि पर

ऋमण किया। परन्तु जब शाही सेना ने उनका सामना किया, तो वे पीछे हट गे।

अंतिम आक्रमण—अंतिम आक्रमण १२५९ ई० में मेवात के पहाडी प्रदेश : हुआ। वहा एक हिन्दू मल्का के नेतृत्व में कुछ विद्रोहियो ने गांवा को लूटा र सताया था और हरियाना सिवालिक और वियाना जिलो के किसानो को ातग किया था। उलुग खाँ ने विद्रोहिया को कुचल दिया और उन्हे निकालकर ग्रस्त देश में शान्ति स्थापित कर दी।

बलबन की सफलता—पूरे दो वर्ष तक बलबन ने अनेक विपत्तियो से राज्य रक्षा की और अव्यवस्था तथा उपद्रव फलानेवालो को कठोरता से दबा था। सीमान्त प्रान्त की छावनियों को उसने सुदृढ बना दिया और एक शाल तथा शक्तिशाली सेना बनाई। मगोलो के आक्रमणो को उसने बडी फलतापूर्वक लौटा दिया। विद्रोही हिन्दू दबा दिये गये और असतुष्ट अमीर ा मलिको के मुह भी उसने मोड दिये। बिना बलबन की शक्ति और साहस दिल्ली का राज्य आन्तरिक विद्रोहा और बाह्य आक्रमणा की चोटो को दापि सहन नही कर सकता था।

बलबन का सिंहासनारूढ होना—१२६६ ई० मे नासिरुद्दीन की मृत्यु के चात् बल्बन राजा हुआ। उसने सबसे पहले राज्य प्रबन्ध की व्यवस्था की और ोलो के आक्रमणो को रोकने का प्रबन्ध किया। बर्नी ने लिखा है, "शासन क्त का भय, जो उत्तम शासन का लक्षण ह और जो राज्य के यश और उसकी ता का कारण है, लोगो के हृदयो से एकदम निकल चुका था और देश बडी दुदशा हो गई थी।" नया सुल्तान शासन-प्रबन्ध में बडा कुशल था। ने कठोर दड तथा निर्मम अनुशासन द्वारा अव्यवस्था एकदम दूर कर और लागा को आज्ञापालन तथा अधीनता की शिक्षा दी।

वह व्यवस्था स्थापित करता है—बल्बन की पहली आवश्यकता यह कि वह एक विशाल और सुयाग्य सेना प्रस्तुत करे। उसने नये और पुराने वारोहिया और पैदलो को अनुभवी मलिको के नेतृत्व में रख दिया। जिन्हाने उन्हे अनेक युद्धा में अपने साहस और राजभक्ति का परिचय दिया। इस सेना

की सहायता से उसने दोआब और दिल्ली के आस-पास व्यवस्था स्थापित कर दी। मेवाती दिल्ली राज्य के लिए बडे उपद्रव की जड हो चले थे, वे राजधानी के निकट देश मे लूट-पाट करते थे, रात में "वे छिपकर नगर में घुस आते थे और लोगो को भाति भाँति के कष्ट देते थे तथा उनकी नीद में विघ्न डालते थे।" उनका साहस इतना बढ चला कि, अपराह्न की नमाज के समय राजधानी का पश्चिमी द्वार बन्द करना पडता था उनके अत्याचार से साधु, संयासी भी सुरक्षित नही थे। सुलतान ने जगलो को साफ करवा दिया और उनकी शक्ति को बिल्कुल कुचल दिया। राजधानी की रक्षा के लिए उसने अनेक छावनियाँ बनाई और अफगान सिपाही रख दिये और उनको छोटी-छोटी जागीरें दे दी। नवाबो तथा उच्च पदाधिकारियो ने देश को पूणतया अपने आधीन कर लिया, सहस्रो उपद्रवी तलवार के घाट उतार दिये गये। दोआब में पहले बडी अशान्ति थी और सुरक्षा के लिए लोगो के मन मे बडा भय था। कम्पिल, पटियाली और भोजपुर डाकुओ के बड़े प्रबल अड्डे थे। वे सडको को घेरे रहते थे और लोगो तथा माल का आना-जाना असम्भव कर देते। सुलतान स्वय इन उपद्रवो को शान्त करने के लिए वहाँ पहुँचा, उसने इस अव्यवस्था और लूट-पाट को बद करने के लिए स्थान स्थान पर अफगान सैनिक नियुक्त कर दिये। "इस प्रकार डाकुओ की कन्दराएँ रक्षा-गृहो में परिणित हो गई और डाकुओ के स्थान पर मुसलमान तथा मार्ग-रक्षक विचरण करने लगे।" अत ६० साल पश्चात् 'बर्नी' सन्तोषजनक शब्दो में कह सका कि, सडकें डाकुओ से सुरक्षित थी और यात्रिया का जीवन निरापद हो गया।

डाकुओ का दमन करके सुल्तान ने जूद की पहाडियो पर आक्रमण किया और पहाडी जातियो को दण्ड दिया। दो साल पश्चात वह उस दुर्ग के पास पहुँचा जिसको मगोलो ने नष्ट कर दिया था। सारा देश उजड चुका था सुल्तान ने वहा व्यवस्था स्थापित की इस छोटे से आक्रमण से सुल्तान का फिर पता लग गया कि, शमसी योद्धा बिल्कुल अयोग्य है जिनका पिछले ३०,४० वर्षों से बहुत अच्छी भूमि राज्य से मिली हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि शमसुद्दीन की सेना के दो सहस्र घुडसवारो को वेतन के बदले दोआब में गाँव मिले हुए थे बहुत से भावता वृद्ध तथा सवथा अयोग्य थे, अनेको मर चुके थे उनके पुत्रो ने भूमि पर

अधिकार कर लिया था और आरिज के लेख पत्रो में अपने नाम लिखवा दिये थे। ये लोग अपने को भूमि का स्वामी बतलाते थे और कहते थे कि सुलतान ामसुद्दीन ने हमको भूमि का राजस्वोमुक्त दान दे दिया है। उनमें से कुछ ाग अपना सैनिक कत्तव्य का पालन वडी ढील-ढाल के साथ करते थे। कुछ लाग घर पर बैठकर बहाने बना देते थे और सेना एकत्रित करने वाले उपपदाधिकारी आदि को उत्कोच दे देते थे जिससे वे उनके कत्तव्य न पालन करने की ओर उपेक्षित दृष्टि रखें। सुल्तान ने तुरत इन सिपाहियो की नौकरी आदि की जाच करवाई और इन भूमि-दान-भोक्ताओ की सूची प्रस्तुत करवाई इस आज्ञा को पाते ही सैनिको के उच्च कुला में बडा आश्चय हुआ जिनका राज्य के प्रियपात्र बनने, पक्षपात पाने तथा विशेषाधिकार मिलने पर एकाधिकार था इनमें से कुछ वृद्ध खान दिल्ली के कोतवाल फखरद्दीन के पास पहुँचे वे समझते थे कि, सुल्तान पर उसकी बात का प्रभाव पडेगा। उन्होने इस मामले को सुल्झाने के लिए कोतवाल से प्रार्थना की। कोतवाल ने वडे प्रभावशाली शब्दो में इन वृद्ध योद्धाओ का पक्ष सुलतान के सामने रक्खा। सुलतान भी द्रवित हो गया और इन रियासतो के अपहरण करने की आज्ञा उसने लौटा ली। यद्यपि पुरानी आज्ञा रद्द हो गई तो भी इन खान लोगो का प्राचीन प्रभाव बहुत कुछ नष्ट हो गया और वे बल्बन की आज्ञाओ का पालन मूक होकर करने लगे।

आन्तरिक शासन प्रबन्ध—बलबन ने देश का राज्य-प्रबध वडी योग्यता मे किया। यह आधा सनिक और आधा नागरिक था। राज्य की सारी शक्ति उसी म कद्रित थी। वह वडी कठोरता स अपनी आज्ञाओ का पालन कराता था। उसके पुत्र भी, जो वडे वडे प्रान्तो के शासक थे, उसको बिना पूछे अपनी मति से कोई काय नही कर सकते थे। सभी जटिल प्रश्नो को सुलतान से पूछना पडता था। उसी की आज्ञा अतिम आज्ञा थी। उसका पालन अनिवाय था। न्याय करने में वह अपने निकटतम मित्र तथा सम्बन्धी के प्रति भी कोई पक्षपात नही करता था, और जब अपराधी वही सम्बन्धी अथवा मित्र होता था, तो दूसरा पक्ष उससे अवश्य न्याय पाता था। सुल्तान के न्याय की कठोरता का इतना अधिक भय था कि कोई भी अपने परिचारक अथवा दास के साथ दुर्व्यवहार करने का
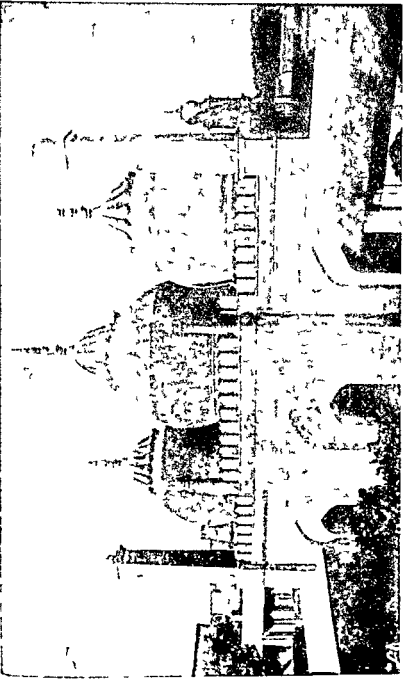
बलबन की मसजिद (जलाली)

साहस न करता था। जब वदायू के जागीरदार, ४००० घुडसवारो के नायक तथा उसके दरबारी मलिक बारबक ने अपने एक सेवक को पीडा देकर मरवा डाला, तो उसकी विधवा पत्नी ने सुल्तान से न्याय की प्रार्थना की। सुल्तान ने इसी प्रकार उस स्त्री के सामने मलिक को कोडो से पिटवाया और उन गुप्तचरो को सबके सामने प्राणदड दिया, जिन्होने मलिक के अनाचार की सुल्तान को सूचना नही दी थी। निरकुश शासन के लिए सुव्यवस्थित गुप्तचरो की योजना की आवश्यकता है। बल्बन ने भी अपने न्याय को उत्तम बनाने के लिए अपनी जागीरो मे गुप्तचर नियुक्त कर दिये थे। वे अन्याय की सभी बातो की उसे सूचना देते थे। इन सूचनाओ के सत्य होने के लिए उसने व्यक्तिगत निरीक्षण का क्षेत्र बहुत कुछ सकुचित कर दिया था। अभियोग का पता लगने पर वह उच्च पद अथवा उच्च वश का कोई ध्यान नही रखता था। गुप्तचर बुगरा खाँ के कार्यों पर भी दृष्टि रखते थे। कहा जाता है कि उसके कार्यों से सुपरिचित होने के लिए सुल्तान बडा सचेष्ट रहता था। इसमे कोई सन्देह नही कि इन गुप्तचरो के कारण अपराध बहुत कम हो गये थे और सशक्त लोगो के अत्याचार से निर्दोष लोगो की बडी रक्षा होती थी। परन्तु उनकी उपस्थिति से समाज का नैतिक स्तर अवश्य गिर गया होगा और सामाजिक जीवन के न्याययुक्त तथा सरल आनन्द प्रमाद तथा सुख आदि भी उससे बहुत कुछ परिचित हो गये होगे।

मगोल—परन्तु सुल्तान को सबसे अधिक चिंता मगोलो के आक्रमण की थी। उनके आने का भय सदैव बना रहता था। यद्यपि उसके पास एक विशाल और सुव्यवस्थित सेना थी, तो भी उसने कभी दिल्ली नही छोडी। उसने इन विचरणशील मगोल झुडो के आक्रमणो को रोकने के लिए उचित व्यवस्था कर दी। मगोलो ने लाहौर को जीत लिया और प्रति वर्ष वे सिंध और पजाब प्रदेश में लूट पाट करते थे। सुलतान कभी राजधानी से बाहर नही जाता था। परन्तु देश के कम रक्षित भागो पर उसकी कठोर दृष्टि रहती थी। उत्तरी सीमा के निकट मुल्तान और समाना के प्रान्तों में जो आक्रमणकारियो के सामने ही पडते थे, उसके पुत्र मुहम्मद और बुगरा खा शासक थे। मगोलो से लडने के लिए वे विशाल और सुव्यवस्थित सेना रखते थे। परन्तु इस भय का उसकी विदेशी नीति पर बडा प्रभाव पडा। उसने किसी दूर देश को जीतने की चेष्टा नही की। उसका सारा ध्यान मगोलो

से अपनी तथा अपने राज्य की रक्षा करने में ही लगा रहता था। उसका राज्य-प्रबंध भी इसी दृष्टि से होता था कि इन विनाशकारी आक्रमणों का सामना करने के लिए राज्य-सत्ता शक्तिशाली बने। अमीर खुसरू* के वर्णनों से हम इन भ्रमणशील जंगली जातियों का कुछ परिचय पा सकते हैं और उनके आक्रमणों की भीषणता का कुछ अनुमान कर सकते हैं। यह वर्णन कवि की निजी भावनाओं से अनुरंजित अवश्य है, एक बार वह स्वयं इनके हाथों में पड़ चुका था। उसने लिखा है कि, "एक बार एक सहस्र से भी अधिक तातार धर्महीन लोग तथा अन्य जातियों के योद्धा ऊँटों पर चढ़कर आये। वे बड़े युद्ध-वीर थे। उनके शरीर पक्के लोहे के थे। वे सूती कपड़े पहने थे। उनके मुख अग्नि के समान आरक्त थे। वे भेड़ की खाल की टोपी पहने थे। उनकी खोपड़ी घुटी हुई थी। उनकी आँखें इतनी पतली और नुकीली थीं कि उनसे कांस्य-पात्र में छेद हो सकता था। उनके शिर उनके शरीर में इस प्रकार जड़े हुए थे मानो उनके गर्दन ही नहीं थी। उनके कपाल कोमल चमड़े की बोतलों के समान थे। उनमें अनेक झुर्रियाँ और गाँठें थीं। उनकी नाक सारे मुँह पर इस कपोल से उस कपोल तक फैली हुई थी और उनका मुँह भी दोनों कपोल-अस्थियों के बीच पूरा फटा हुआ था। उनकी मूँछें भी अत्यधिक लम्बी थीं, परन्तु ठोढ़ी पर दाढ़ी बहुत कम थी। वे श्वेत राक्षस प्रतीत होते थे। उनको देखते ही लोग डर के मारे भाग उठते

---

*अब्दुल हसन का जन्म जो अमीर खुसरो के अपने उपनाम से अधिक विख्यात हैं पटियाली में ६५१ हि० (१२५३ ई०) में हुआ था। वह भारत का बड़ा प्रसिद्ध मुसलमान कवि है। उसकी मृत्यु ७२५ हि० (१३२४-२५ ई०) में हुई थी। वह अपने बचपन ही में शेख निजामुद्दीन औलिया का शिष्य हो गया। वह राजकुमार मुहम्मद का परिचारक नियुक्त हुआ और इस प्रकार वह बल्बन की सेवा में आया। मुहम्मद का विद्वानों का सत्संग अधिक प्रिय था। धीरे-धीरे उसका प्रभाव बढ़ चला और वह राज कवि नियुक्त हुआ। निजामुद्दीन औलिया की मृत्यु से दुखित होकर वह भी मर गया। उसने अनेक पुस्तकें लिखीं, जिनका परिचयात्मक वर्णन इलियट की हिस्ट्री ऑफ इंडिया भाग ३ पृ० ६७ ९२, ५२३ ६७ में दिया हुआ है।

थे।' * इन कष्ट-सहिष्णु तथा निमम आक्रमणकारियो को, जो हिंदूकुश के उस पार के ठड प्रदेश से आये थे, उपेक्षा नही की जा सकती थी। केवल आत्मरक्षा की दृष्टि म ही बल्बन ने सब कुछ छोडकर अपनी सेना को युद्ध के लिए सदव प्रस्तुत रक्खा जिसमे उनके बार-बार होनेवाले आक्रमणो को वह रोक सके।

तुगरिल का विद्रोह—तुगरिल खाँ † को बल्बन ने बगाल का मत्री नियुक्त किया था। अपने परामशदाताओ के चक्कर म आकर उसने सुल्तान से विद्रोह कर लिया। उन्होने उससे कहा कि सुल्तान वद्ध है और उसके दोनो पुत्र मगोलो के आक्रमणो को रोकने म लगे ह। यदि आप स्वतन्त्र हो जायें तो असगठित नवाबो के पास न इतनी सेना ह और न युद्ध सामग्री कि वे लखनौती आकर आपकी योजना को असफल कर सकें। तुगरिल इस झूठे और कुटिल परामश को शीघ्र ही मान गया। "महत्त्वाकाक्षा का अडा उसके मस्तिष्क में सेता रहा।' उसने जाजनगर पर आक्रमण किया और वहा से प्रचुर लूट का सामान ले गया जिसमे अनेक बहुमल्य वस्तुएँ तथा हाथी सम्मिलित थे। इस सब सामान को उसने अपने लिए रख लिया। राजद्रोह के इस काय के पश्चात उसने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी और सुल्तान मुगीसुद्दीन की उपाधि धारण की, उसने अपने नाम के सिक्के बनवाने आरम्भ किये और खुतबा पढवाना शुरू कर दिया। अपार धन का स्वामी होने के कारण उसने अपने साथियो को बहुत सा धन पुरस्कार-स्वरूप दिया। बर्नी ने लिखा है कि, धन ने स्पष्ट दृष्टाओ की आखें बन्द कर दी और सोने के लोभ मे पडकर कुछ अधिक व्यक्ति उदासीन हो गये। राजविद्रोह इतना बढ गया कि, सनिक और नागरिक दोनो का सम्राट का भय जाता रहा और वे विद्रोही गवनर से मिल गये।

इस विद्रोह का समाचार पाकर सुल्तान बहुत क्षुब्ध हुआ। शाही सेना सरयू को पार कर लखनौती की ओर बढी परन्तु जब वह बगाल पहुँची तो तुगरिल की

* इन जगली लोगो के विशेष वणन के लिए इलियट भाग ३ परिशिष्ट पृ० ५२८-२९ देखिए।

† तुगरिल पहले एक तुर्की दास था। उसे बल्बन ने मोल ले लिया था। वह बडा वीर और युद्धप्रिय था उसने आस पास के राजाओ को हराकर उन्ह कर देने के लिए विवश किया।

सेना ने उसका सामना किया और उसे पराजित कर दिया। उसकी उदारता के कारण उसकी सेना में आस-पास अनेक युवक आ मिले थे। दिल्ली के सिपाही भाग खड़े हुए और अनेकों शत्रु से जा मिले।

दूसरी शाही सेना की भी यही दुर्दशा हुई। अपनी इस सफलता से उत्साहित होकर तुगरिल लखनौती के बाहर आया और दिल्ली की सेना पर टूट पड़ा तथा पूर्णतया पराजित कर दिया। इस समाचार को सुनकर सुल्तान लज्जा और क्रोध से भभक उठा और उसने विद्रोहियों को दण्ड देने का प्रण किया। दिल्ली का काम मलिक फखरुद्दीन के हाथों में सौंप कर वह समाना और सुनाम की ओर गया और अपने पुत्र बुगरा खाँ से साथ चलने के लिए कहा। शाहजादा मुहम्मद को उसका प्रान्त सौंप दिया गया और उससे कहा गया कि, मंगोलों पर सतर्क दृष्टि रक्खे। एक बहुत बड़ी सेना लेकर सुल्तान वर्षा में ही लखनौती की ओर चल पड़ा उसने अवध पर सामान्य कर लगा दिया और अपनी सेना में लगभग दो लाख सिपाही भर्ती किये, नावों का एक बहुत बड़ा पुल तैयार किया गया और शाही सेना ने सरयू नदी पार की परन्तु बंगाल के दलदलों में धावा के कारण उसकी गति बड़ी मंद रही। शाही सेना कीचड़ और दलदल पार करती हुई बंगाल की राजधानी पहुँची। वहाँ जाकर उसे पता लगा कि, विद्रोही, सुल्तान का सामना न करने के कारण जाजनगर के जंगलों में भाग गया और अपने साथ कोष, हाथी तथा चुने हुए योद्धा ले गया। शाही सेना ने उसका पीछा किया। सुल्तान ने सार्वजनिक घोषणा में कहा कि उसे चाहे कितना ही कष्ट हो और कितना ही समय लगे वह कभी पीछा करना न छोड़ेगा। अपने सिपाहियों को यह कहकर उसने अपने दृढ़ निश्चय का आभास दे दिया कि, वे आधे दिल्ली साम्राज्य के लिए लड़ रहे हैं और यदि भागकर तुगरिल समुद्र में पहुँचेगा तो वह वहाँ भी उसका पीछा करेगा और तब तक कभी दिल्ली लौटने का नाम भी न लेगा जब तक कि, इस विद्रोही और उसके अनुयायियों का रक्त न बह जायगा। बलबन ने दिल्ली लौटने की आशा ही छोड़ दी और उत्तराधिकार के लिए इच्छापत्र लिख दिये। तुगरिल की खोज में अनेक अश्वारोहियों का दल भेजा गया परन्तु उसका कहीं पता न लगा। बड़े परिश्रम और खोज के बाद तुगरिल के पड़ाव का पता लगा। शाही घुड़सवारों ने उसके

विलासमय जीवन को रौंद डाला उसकी सेना भयभीत होकर मैदान से भाग निकली। वह स्वयं घोड़े की नंगी पीठ पर सवार होकर एक नाले की ओर भागा जो निकट ही बह रहा था। शाही सिपाहियों ने उसका पीछा किया। उसके पार्श्व में एक तीर लगा जिससे वह तुरन्त पृथ्वी पर गिर पड़ा उसका सिर काट लिया गया और धड़ नदी में फेंक दिया गया। उसकी स्त्री, बच्चे तथा अन्य परिवारवाले बन्दी बना लिये गये। अपने आक्रमण की सफलता से सुलतान प्रसन्न हुआ और जिन मनुष्यों ने उसके लिए जीवन आपत्ति में डाल दिया था उनको उसने पर्याप्त पुरस्कार दिया।

बलबन लखनौती लौटा, वहाँ बाजार के दोनों किनारों पर फाँसियाँ तैयार कर दी गई जिनमें तुगरिल के साथी-सम्बन्धी निर्दयता से लटका दिये गये। दो तीन दिन तक इस प्रकार का दण्ड विधान चलता रहा। कहा जाता है कि, काजियों और मुफ्तियों को भी बड़ी कठिनता से क्षमा मिली। हत्याकाण्ड समाप्त होने पर बलबन ने शान्ति स्थापित करने की चेष्टा की। उसने अपने पुत्र बागरा खाँ को इस प्रान्त का शासक नियुक्त किया और उससे कहा कि, शेष बंगाल पर अधिकार कर शान्ति स्थापित करे तथा उत्सवों को बन्द कर दे। इसके पश्चात् उसने बड़ी कठोर मुखाकृति बनाकर शाहजादे से कहा, "देखा?" राजकुमार अपने पिता के अभिप्राय को नहीं समझा, सुल्तान ने फिर कहा "तुमने देखा?" शाहजादा कुछ उत्तर देना ही चाहता था कि, सुलतान ने तीसरी बार फिर वही प्रश्न दुहराया और कहा तुमने बाजार में मेरा दण्ड-विधान देख लिया है। शाहजादे ने पूर्ण स्वीकृति में सिर झुकाया। निर्मम पिता ने तब उससे ये शब्द कहे, "यदि कभी प्रपञ्ची और दुष्ट पुरुष तुम्हें दिल्ली की अधीनता छोड़ देने के लिए उत्तेजित करें तो तुम उस प्रतिशोध को स्मरण करना जो तुमने आज बाजार में देखा है। मेरा स्वभाव तुम भली भांति जानते हो इस बात को तुम कभी मत भूलना कि, हिन्द, अथवा सिन्ध, मालवा, गुजरात लखनौती, सुनारगाँव किसी भी प्रान्त के शासक यदि दिल्ली से विद्रोह कर तलवार निकालेंगे तो उनको उनकी स्त्रियों और बच्चों तथा उनके अनुयायियों को वही दण्ड मिलेगा जो आज तुगरिल और उसके पोषितों को मिल रहा है।" उसने बोगरा खाँ को दूसरी बार फिर बुलाया और राजनीति के सम्बन्ध में बहुत-सी बहुमूल्य बातें उसे बतलाईं। चलते समय उसने बड़े प्रेम

से गले लगाया और विदाई ली। दिल्ली पहुँचकर उसने फिर फाँसियाँ तयार कराई और दिल्ली तथा उसके परिपाश्व के उन निवासियों को मृत्यु-दण्ड दिया जिन्होंने पिछले विद्रोह में तुगरिल को सहायता दी थी। बड़ी कठिनाई से सेना के काजी ने सुल्तान को उस काय से रोका।

शाहजादा मुहम्मद की मृत्यु—विद्रोह तो सफलता से दबा दिया गया परन्तु सुलतान के परिवार में बड़ी दुखद घटना हुई। जब १२८५ ई० में मंगोलों ने समर के नेतृत्व में पंजाब पर आक्रमण किया तो शाहजादा मुहम्मद ने जो उस समय मुल्तान का शासक था लाहौर और दिपालपुर पर उनको रोका। परन्तु उसकी पराजय हुई और वह मार डाला गया। मृत्यु के पश्चात् उसको "शहीद शाहजादा" की उपाधि मिली। सुलतान को इससे इतना शोक हुआ कि, वह कुछ दिन बाद ही १२८६ ई० में मर गया। उसने अपने इच्छापत्र में अपने पौत्र कैखुसरो को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया परन्तु उसकी आँखें बन्द होते ही नवाबों और अमीरों ने उसकी अन्तिम अभिलाषा को ठुकरा दिया और कैकुबाद को गद्दी पर बिठा दिया। यह निणय बड़ा अशुभ निकला और अन्त म गुलाम वंश के पतन का कारण हुआ।

बलबन का व्यक्तित्व—बल्बन का ४० वर्ष का सावजनिक जीवन मध्ययुग के भारत में एक विचित्र स्थान रखता है। उसका समय बड़े कठोर श्रम और क्रियाशीलता का है। उसने राजा के महत्त्व बढ़ाया और 'रक्त तथा शस्त्र' की नीति से देश में शान्ति तथा व्यवस्था स्थापित की। उसका दरबार बड़ा शानदार था, जहाँ वह सावजनिक अवसरों पर बड़े ठाठ-बाट से उपस्थित होता था। वह सुसंस्कृत प्राच्य राजाओं की भाँति आचरण करता था। वह इतना शाही शान से रहता था, कि अपने निजी परिचारकों के सामने भी बिना पूरी पोशाक पहने नहीं निकलता था। अपने दरबार में न वह कभी जोर से हँसता था और न कभी मजाक करता था। अपने सामने वह किसी को न हँसने देता था और न विनोद करने देता था। वह निम्न श्रेणी तथा असंस्कृत लोगों का साथ बिलकुल पसंद नहीं करता था। वह किसी मित्र अथवा अपरिचित व्यक्ति के साथ अनावश्यक रूप से घनिष्ठ नहीं हो सकता था। वह राजपद के महत्त्व की इतनी रक्षा करता था कि उसने एक नवीन धनी व्यक्ति से लाखों रुपये की भेंट इसलिए अस्वीकार
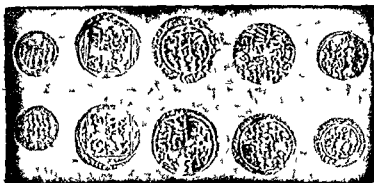
मुहम्मद तुगलक के ताम्र के सिक्के

सोने के सिक्के

चर दी थी कि उसका वश उच्च नही था। उसके समय म निम्न वश मे उत्पन्न होना राज सेवा के लिए सबसे बडी अयोग्यता थी। उसके नवाब और पदाधिकारी ऐसे व्यक्ति को राज सेवा के लिए उसके सामने लाने का साहस ही न करते थे, जो उच्च वश का न हो। अपनी युवावस्था म बलबन को मदिरा से बडा प्रेम था, परन्तु राजा होने पर उसने मदिरा सेवन बिलकुल छोड दिया। आखेट से उसको विशेष प्रेम था। वह बहुधा बडी दूर तक मृगया के लिए चला जाता था। अपने पारिवारिक जीवन में वह बडा दयालु था। वह अपने पुत्रों और सबधियो से प्रेम करता था। उसके दरबार मे अपरिचित व्यक्ति भी आकर शरण लेते थे, उनके प्रति भी वह उदारता स व्यवहार करता था। यद्यपि वह बडे उपद्रव के समय मे उत्पन्न हुआ था, तो भी वह विद्या से प्रेम करता था और विद्वानो का आदर करता था। सब बाता का ध्यान म रखकर हम कह सकते ह कि वह बडा विलक्षण शासक था, जिसने भारत के नवीन मुस्लिम राज्य का मगोलो के आक्रमण से बचा लिया। देश म सामाजिक व्यवस्था स्थापित कर अलाउद्दीन खिलजी के लिए सनिक और शासन सम्बधी सुधारो का माग प्रशस्त कर दिया।

गुलाम वश का पतन—बल्बन की मत्यु से जो क्षति हुई वह पूण न हो सकी, उसके उत्तराधिकारियो में कोई एसा व्यक्ति न था जो उस राजदण्ड को सँभाल सकता जिसको उसने बीस वष तक बडी योग्यता के साथ सचालित किया था। मध्ययुग की राजनीति म राजा के व्यक्तित्व का अधिक महत्त्व था। अत जब काल ने बलबन के सुदृढ हाथो को निष्क्रिय कर दिया तो राज्य म बडी अव्यवस्था फैल गई। शासन की शक्ति और न्याय म जो विश्वास था वह एकदम उठ गया।

दिल्ली के कोतवाल की राजनीतिक चालो के द्वारा कैकुबाद दिल्ली का बादशाह बना। गद्दी पर बठने के समय उसकी अवस्था केवल सत्रह वष की थी। बचपन से ही उसका पालन पोषण इतनी देख-रेख में हुआ था कि, वह किसी सुन्दर रमणी का मुह भी न देख सका था और न मदिरा ही ओठो से छू सका था। उसके सरक्षक रात-दिन उसकी रखवाली करते थे। वे उसे विनम्र कलाएँ तथा पौरुषयुक्त व्यायाम कराते थे और उसको कभी अनुचित काय और अशिष्ट बात नकरने देते थे। ऐसे राजकुमार को अकस्मात् ही एक शक्तिशाली राज्य मिल गया,

कर दी थी कि उसका वश उच्च नही था। उसके समय मे निम्न वश मे उत्पन्न होना राज सेवा के लिए सबस बडी अयाग्यता थी। उसके नवाब और पदाधिकारी एसे व्यक्ति को राज-सेवा के लिए उसके सामने लाने का साहस ही न करते थे, जो उच्च वश का न हो। अपनी युवावस्था म बलबन का मदिरा से बडा प्रेम था, परन्तु राजा हाने पर उसने मदिरा-सेवन बिलकुल छोड दिया। आखेट से उसको विशेष प्रेम था। वह बहुधा बडी दूर तक मृगया के लिए चला जाता था। अपने पारिवारिक जीवन म वह वडा दयालु था। वह अपने पुत्रो और सबधियो से प्रेम करता था। उसके दरबार मे अपरिचित व्यक्ति भी आकर शरण लेते थे, उनके प्रति भी वह उदारता से व्यवहार करता था। यद्यपि वह बडे उपद्रव के समय म उत्पन्न हुआ था, तो भी वह विद्या स प्रेम करता था और विद्वाना का आदर करता था। सब बाता को ध्यान म रखकर हम कह सकते हैं कि वह बडा विलक्षण शासक था, जिसने भारत के नवीन मुस्लिम राज्य का मगोला के आक्रमण से बचा लिया। देश म सामाजिक व्यवस्था स्थापित कर अलाउद्दीन खिलजी के लिए सैनिक और शासन सम्बन्धी सुधारा का माग प्रशस्त कर दिया।

गुलाम वश का पतन—बल्बन की मृत्यु स जो क्षति हुई वह पूण न हा सकी उसके उत्तराधिकारियो में कोई एसा व्यक्ति न था जो उस राजदण्ड को सँभाल सकता जिसको उसने बीस वष तक बडी योग्यता के साथ सचालित किया था। मध्ययुग की राजनीति मे राजा के व्यक्तित्व का अधिक महत्त्व था। अत जब काल ने बलबन के सुदृढ हाथो को निष्क्रिय कर दिया तो राज्य म बडी अव्यवस्था फल गई। शासन की शक्ति और न्याय म जा विश्वास था वह एकदम उठ गया।

दिल्ली के कातवाल की राजनीतिक चाला के द्वारा कैकुबाद दिल्ली का बादशाह बना। गद्दी पर बठने के समय उसकी अवस्था केवल सत्रह वष की थी। बचपन से ही उसका पालन पाषण इतनी देख-रेख में हुआ था कि, वह किसी सुन्दर रमणी का मुँह भी न देख सका था और न मदिरा ही ओठो से छू सका था। उसके सरक्षक रात-दिन उसकी रखवाली करते थे। वे उसे विनम्र कलाएँ तथा पौरषयुक्त व्यायाम कराते थे और उसको कभी अनुचित काय और अशिष्ट बात नकरने दते थे। ऐस राजकुमार को अकस्मात् ही एक शक्तिशाली राज्य मिल गया,

जिसके अपार धन तथा समृद्धि से वह संसार का कोई भी विलास सहज ही भोग सकता था। राजगद्दी पर बैठते ही उसने आत्मसंयम और ज्ञान के सभी पाठ भुला दिये और उसकी बलात् दबी हुई विलास की सभी भावनाएँ जागृत हो गइ। वह आनन्द और भोग विलास में अपना जीवन बिताने लगा। बल्बन का सारा कार्य असफल हो गया। नवाबों और वजीरों ने बादशाह का अनुसरण किया। परिणाम यह हुआ कि, दरबार का जीवन व्यभिचार से दूषित हो चला और सभी श्रेणियों के लोग विलास को ही जीवन का ध्येय मानकर रहने लगे।

जब कैकुबाद इस प्रकार अपना समय आमोद प्रमाद, विलास और मदिरा सेवन में व्यतीत कर रहा था, तो दिल्ली के प्रभावशाली कोतवाल का दामाद मलिक निजामुद्दीन राजकाज सँभालता था। वह अपनी कुशलता से सुल्तान का विश्वासपात्र हो गया था। निजामुद्दीन बडा महत्त्वाकांक्षी था। उसकी उद्दण्डता तथा उन्नति से वृद्ध तथा अनुभवी खान बडे असन्तुष्ट थे जिन्होंने ऐबक और इल्तुतमिश के समय से बडी भक्ति से सेवा की थी। बंगाल में बुगरा खाँ के होने, नवाबों की शक्ति का ह्रास होने, कैकुबाद के विलास और व्यभिचारमय जीवन के कारण निजामुद्दीन राज्य-गद्दी पर अधिकार करने का सुयोग ढूंढने लगा। परन्तु यह दुष्ट योजना तब तक सफल नहीं हो सकती थी, जब तक बल्बन का मनोनीत उत्तराधिकारी कै खुसरो जीवित था। नवाब लोग उसका अब भी सम्मान और सत्कार करते थे। इस सम्बन्ध में उसने अपने अचेत करनेवाले विशेषज्ञ से परामर्श किया। उसने भी मद पिलाकर हत्या कर देने के लिए अपनी स्वीकृति दे दी। निर्दोष तथा सरल हृदय राजकुमार को मुल्तान से बुलाया गया और मार्ग में रोहतक के पास मार डाला गया।

इस हत्या से सारे राज्य में आतंक फैल गया, दलबन्दी होने लगी। खिलजी अमीर जलालुद्दीन फीरोज जो आरिज ममालिक (सेना एकत्रित करनेवाला) था, एक बहुत शक्तिशाली दल का नेता बन गया, जलालुद्दीन की शक्ति बढ़ गई और कई तुर्की मलिक और अमीर उसकी ओर यह सोचकर चले गये कि, उसका विरोध करना असम्भव है। दो दिन बाद एक खिलजी मलिक ने सुल्तान कैकु-बाद को उसके शीशमहल में मार डाला और शव को यमुना में फेंक दिया।

दिल्ली के गुलाम बादशाहो का इस बुरी तरह अन्त हुआ। जलालुद्दीन फीरोज को शत्रु और मित्र दोनों से सहायता मिली और वह किलूगढी नामक स्थान पर गद्दी पर बैठा। परन्तु दिल्ली के लोग खिलजी वंशवालो से असंतुष्ट थे। उन्होंने फीरोज का स्वागत नहीं किया। इस राज्यापहरण का सहन करने म उन्हें कुछ समय लग गया।

मुस्लिम विजय के कारण—मुसल्मानाने भारत का इतनी सरलता मे जो जीत लिया उसका कारण यह था कि, हिन्दू समाज दुर्बल हो गया था। पारस्परिक ईर्ष्या और फूट के कारण उसकी पुरानी शक्ति जाती रही थी। सारा देश अनेक छोटे राज्यों में विभक्त था जो बहुधा आपस में लडा करते थे। देश म वीरत्व की कमी नहीं थी। राजपूत बडे कुशल योद्धा थे। साहस और दृढ निश्चय में व मुसलमानों से किसी प्रकार कम नही थे। मुसलमान अफगान पहाडियो के उस पार ठंडे देशो से आये थे, अतएव रणक्षेत्र में उनमे अधिक शक्ति और श्रमशीलता दिखलाई पडती थी उनका प्रबन्ध, अनुशासन और संगठन अधिक अच्छा था। इस्लाम में भ्रातृत्व की भावना प्रधान है जिसमे ऊँच-नीच तथा धनी और निर्धन सब समान है और मनुष्य मनुष्य में कोई अन्तर नहीं। उनमें दूसरा को मुसल्मान बनाने की प्रथा के कारण मुसल्मानो में धर्म-प्रचार का बडा भारी उत्साह था और धर्मानुयायी सामने एक ही व्यूह म बडे मेल और संगठन के साथ खडे हो सकते थे। लेनपूल का कथन है उनकी धार्मिक कट्टरता ही आत्मरक्षा का एक बडा भारी साधन थी। धर्महीन व्यक्तियो के सम्मुख भगवान के विशेष प्रिय बन्दा के रूप में आत्मरक्षा के लिए उनका संगठित होना अनिवार्य था। अपना अल्पसंख्यक जाति को बढाने के लिए हिन्दुओं को मुसल्मान बनाना भी उनके लिए आवश्यक था। अपनी धर्मान्धता के कारण ही वे मुस्लिमेतर जातियो से इतना उग्र व्यवहार करते थे और उन पर आक्रमण कर बैठते थे। अपने धर्म के लिए व प्रसन्नता के साथ प्राणों की बाजी लगा देते थे तथा अन्य प्रकार के बडे-बडे त्याग करने के लिए प्रस्तुत रहते थे। मुसल्माना की अपेक्षा हिन्दू दुर्बल थे और उनमे फूट थी। अपने वंश और जाति का ही हित वे प्रधान समझते थे। जाति व्यवस्था के कारण उनमें अनेको कृत्रिम वर्ग थे, जिनके कारण सर्वसामान्य रक्षा के लिए भी वे संगठित नहीं हो सकते थे। बडे प्रसिद्ध सेनानायक और योद्धा भी जाति के प्रभाव से

नहीं बच सकते थे। शत्रु सामने होने पर भी उनमें प्राय आपस में ही लड़ाई हो उठती थी।

हिंदुओं की सैनिक-व्यवस्था भी अब प्राचीन समय से भिन्न थी। भीषण और सुशिक्षित अश्वारोहियों के सामने केवल हाथियों पर ही भरोसा रखना विश्वसनीय नहीं था। अनुभव अनेक चेतावनी दे चुका था परन्तु हिंदू सेनापतियों ने उसकी उपेक्षा ही की। वे बड़ी अन्ध भक्ति से प्राचीन परिपाटी का ही अनुसरण करते रहे। अफगान पहाड़ियों के उस पार मुसलमानों के पास सिपाही भरती करने के लिए सुन्दर स्थान था जहां से वे हिंदुओं से लड़ने के लिए नित्य नये वीर ला सकते थे। भारत के धन से आकर्षित होकर अनेक युद्धप्रेमी वीर महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी की सेना में भरती हो गये। इधर हिंदुओं को अपने देश तक और प्राय एक राज्य तक ही सीमित रहना पड़ता था, जो आधुनिक एक प्रान्त के बराबर होता था। हिन्दुओं की राजनीतिक व्यवस्था में लड़ने का काम केवल क्षत्रियों का ही था। परिणाम यह हुआ कि, अधिकांश जनता सैनिक कार्य के लिए बिल्कुल अयोग्य हो गई, अथवा देश की जड़ें हिला देनेवाली राजनीतिक क्रांति के प्रति भी उदासीन रही। राजपूतों ने प्रत्येक बार विदेशियों के आक्रमण को रोकना चाहा परन्तु राष्ट्रीय शक्ति अथवा राष्ट्रीय इच्छा शक्ति का आश्रय न पाने से वे ऐसे भीषण शत्रुओं के सामने न ठहर सके। इस प्रकार जब मुसलमानों को इतने अव्यवस्थित तथा दुर्बल हिन्दुस्तान के निवासियों से लड़ना पड़ा तो उनकी विजय के मार्ग में कुछ भी कठिनाइयां न आई। इन दो जातियों का युद्ध वास्तव में दो विरोधी सामाजिक व्यवस्थाओं का युद्ध था—जिनमें से एक प्राचीन और पतनोन्मुख थी और दूसरी नवचेतनायुक्त तथा नवघटनाप्रिय थी।

मुसलमानों की सफलता का एक और कारण उनकी दास-व्यवस्था थी। इसमें प्राय इल्तुतमिश और बलबन जैसे सुयोग्य व्यक्ति उत्पन्न हो जाते थे जो सर्वसाधारण मनुष्यों से कहीं अधिक श्रेष्ठ थे, जिनको केवल राजवंश में जन्म लेने के ही कारण राजमुकुट और राज्य मिल जाते हैं। पूर्वीय मुसलमानी प्रदेशों में किसी राजा अथवा सेनापति का दास होना बड़े गौरव की बात समझी जाती थी और प्राय दास तथा निम्न वंश में जन्म लेने पर भी वे उच्च वंशवाले नवाबों के समकक्ष तथा उनसे उत्तम समझे जाते थे।

दास-व्यवस्था के सम्बन्ध में लेनपूल के विचार यहा उद्धत करना समीचीन होगा —'सुयोग्य राजा का पुत्र असफल हो सकता है किन्तु मनुष्यों के सच्चे नेताओ का दास बहुधा अपने स्वामी के बराबर ही निकल जाता है। कारण यह है कि पुत्र से तो हमारी आशाये पूर्ण होना एक कल्पना-मात्र ही है। वह उत्तराधिकार रूप में अपने पिता के गुणो को प्राप्त कर भी सकता है और नही भी कर सकता। यदि उसमें गुण हुए भी तो पिता की सफलता के कारण एक विलासमय वातावरण उपस्थित हो जाता है, जिससे स्वतन्त्र प्रयासो को प्रोत्साहन नही मिलता। पुत्र चाहे अच्छा हो या बुरा हम उसे बदल नही सकते। कदाचित किसी ही पिता में सार्वजनिक कर्तव्य-पालन की इतनी प्रबल भावना हो कि वह अपने अयोग्य पुत्र का वध करा दे जिससे सुयोग्य दास उसका स्थान ग्रहण कर सके। इसके विपरीत दास अपनी सर्वश्रेष्ठ योग्यता के ही कारण उच्च पद पाता है। उसका निर्वाचन शारीरिक और मानसिक योग्यता के कारण ही होता है और कठोर सेवा तथा सतत प्रयासो से ही वह अपने स्वामी का प्रिय पात्र रह सकता है। यदि उसमें कुछ कमी हुई तो उसके भाग्य का द्वार अवरुद्ध है।''*

सहायक ग्रन्थ

इलियट एण्ड डाउसन—हिस्ट्री ऑफ इण्डिया भाग २ और ३
रवर्टी—तबकात नासिरी (अँगरजी अनुवाद)
ऐलियट एण्ड रास—ए हिस्ट्री ऑव दा मुगल्स ऑव सेन्ट्रल एशिया
ईश्वरीप्रसाद—हिस्ट्री ऑव मेडीवल इण्डिया
ब्रिग्ज—राइज ऑव मुहमडन पॉवर इन दी ईस्ट भाग १
हावर्थ—हिस्ट्री ऑव मगोल्स ३ भाग

* मेडीवल इण्डिया पृष्ठ ६४

अध्याय ७

खिलजी साम्राज्यशाही

जलालुद्दीन खिलजी १२९०-९६—अब दिल्ली की राजगद्दी खिलजी तुर्कों के हाथों में चली गई। किलूगढ़ी में एक सार्वजनिक दरबार हुआ, जिसमें सब नागरिकों तथा सिपाहियों ने स्वामिभक्ति प्रकट की। धीरे-धीरे उसने अपना अधिकार स्थापित कर लिया। मुस्लिम इतिहासकार लिखता है कि उसके उत्तम चरित्र, न्यायप्रियता उदारता और कर्त्तव्यपालन से लोगों की दुर्भावनाओं का अन्त हो गया और भूमि का पुरस्कार पाने की आशा में लोग नवीन राजवंश के प्रति भक्ति दिखाने लगे, यद्यपि उनके मन अब भी कुछ खिंचे खिंचे से रहते थे।' फीरोज की अवस्था सत्तर वर्ष की थी। रक्त बहाने तथा युद्ध से उसे घृणा थी। उसकी कोमल वृत्ति तथा सहृदयता के कारण राजद्रोह फलने लगा और विद्रोह और अव्यवस्था बढ़ चली। दूसरे ही वर्ष बल्बन के भतीजे मलिक छज्जू ने विद्रोह खड़ा कर दिया। यह कड़ा का जागीरदार था। वह बहुत बड़ी सेना लेकर दिल्ली पर चढ़ आया, परन्तु जब शाही सेना से उसका सामना हुआ, तो उसके अनुयायी डर के मारे भाग गये। जो लोग पकड़ गये, उनको सुल्तान ने क्षमा कर दिया और कड़ा की जागीर अपने दामाद तथा भतीजे अलाउद्दीन को दे दी।

सुल्तान की विदेशी नीति भी इतनी दुर्बल तथा कायरतापूर्ण थी, जितनी उसकी गृह-नीति थी। रणथम्भौर का अभियान असफल रहा और सुल्तान की सेना निराश होकर राजधानी लौट आई। जब हलाकू के नातेदार में मंगोलों ने भारत पर आक्रमण किया तो उसको अच्छी सफलता मिली। वे पराजित हुए और अनेक मार डाले गये। अन्त में उनसे संधि हो गई और उनको दिल्ली के निकट बसने की आज्ञा मिल गई। इस नीति का परिणाम बड़ा विनाशकारी हुआ। मुगलपुर षड्यन्त्रों और राजविद्रोह का केन्द्र बन गया। इससे दिल्ली के सुल्तानों की चिन्ता बहुत बढ़ गई।

अलाउद्दीन का देवगिरि पर अभियान १२९४ ई०—सुलतान का भतीजा और दामाद अलाउद्दीन कडा और अवध का जागीरदार था। वह बडा महत्त्वाकाक्षी था। सुल्तान के अधिकार से दूर होने के कारण उसन देवगिरि पर चढाई करने की महान् योजना बनाई। मध्ययुग के भारतीय इतिहास की यह बडी महत्त्वपूण घटना है। महाराष्ट्र के यादवनरेश के अपार धन की उसने बात सुन रक्खी थी। अत देवगिरि को लूटने के लिए वह बहुत दिना से लाला यित था।

आठ सहस्र अश्वारोहिया को लेकर वह एलिचपुर पहुँचा जो महाराष्ट्र राज्य की सीमा के निकट ही था। एलिचपुर वह घाटी-लजौरा पहुँचा जो देवगिरि से १२ मील दूर था। यहाँ तक उसे कोई विरोध नही मिला। जब देवगिरि के राजा रामचन्द्र ने शत्रु सेना के आने का समाचार सुना, तो उसने दुग के फाटक बन्द कर लिये और मुसलमानो के आक्रमण का सामना करने का निश्चय किया। अलाउद्दीन की सेना नगर में घुस गई। उसने व्यापारिया और धना धीशो मे बडा रुपया इकट्ठा किया। जब रामचन्द्र देव ने यह समाचार सुना कि स्वय सुलतान भी २०,००० घुडसवारो को लेकर दक्षिण आ रहा ह, तो वह डर गया और उसने सधि का प्रस्ताव किया। उसने पचास मन सोना, सात मन हीरे-जवाहरात तथा अन्य बहुमूल्य पदार्थ, चालीस हाथी, कुछ सहस्र घाड दना स्वीकार कर लिया। जो माल उसने नगर में से पहले ही लूट लिया था, वह अलग था।

जब रामचन्द्र के पुत्र शकर देव न इस सधि का हाल सुना, तो वह अपने पिता की सहायता के लिए बडी शीघ्रता से आया। उसने अलाउद्दीन से सारा लूट का सामान लौटाने तथा राज्य मे बाहर चले जाने के लिए कहा। अलाउद्दीन ने शकर की इस बात से अपना बडा अपमान समझा और उस पर आक्रमण कर दिया। दुग को घेरने के लिए उसने एक सहस्र घुडसवारो का छोड दिया। महाराष्ट्र सेना ने मुसलमानो को हरा दिया और उन्हें छिन्न-भिन्न कर दिया। इतने में वह सेना भी आ पहुँची, जिसे अलाउद्दीन ने दुग का घेरा डालने के लिए छोड दिया था। मुसलमान सेना में नवीन उत्साह आ गया और हिन्दुआ में भगदड पड गई। उनकी बडी भारी हार हुई। विजयी सेनापति के हाथ अपार लूट का धन लगा।

उसने वहाँ एक सेना छोड़ देने का निश्चय किया और उसके व्यय के लिए उसने एलिचपुर मांगा। रामचन्द्र ने इन शर्तों को स्वीकार कर लिया और विजयी अलाउद्दीन कड़ा लौट गया।

अपने भतीजे की विजय का समाचार सुनकर सुलतान बड़ा प्रसन्न हुआ। कुछ थोड़े से सिपाहियों को लेकर उसने बजरे द्वारा गंगा नदी पार की और कुछ लोगों के साथ वह अलाउद्दीन से मिला। जब वह वृद्ध पुरुष बड़े स्नेह से उससे मिला, तो अलाउद्दीन ने उसका वध करा दिया। उसके सभी साथी मार डाले गये। सुलतान का सिर सेना में घुमा दिया गया और अलाउद्दीन दिल्ली का राजा घोषित कर दिया गया।

अलाउद्दीन की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ—राजगद्दी पर बैठते ही अलाउद्दीन को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जलाली नवाब अपने वृद्ध सुलतान का वध नहीं भूले थे वे इसका बदला लेने को छिपे-छिपे षड्यन्त्र करते थे। राजमाता मल्लिकाजहां, जिसे बर्नी ने 'मूर्खों में भी महामूर्ख' बतलाया है, अपने पुत्रों का राज पर अधिकार स्वीकृत कराने के लिए षडयन्त्र करने लगी। अरकाली खाँ और कद्र खाँ उसके दो पुत्र थे। सुलतान ने नवाबों और अमीरों को उदार पुरस्कार देकर तथा पदोन्नति करके प्रसन्न कर लिया। साधारण जनता में मजनीकों द्वारा स्वर्ण वितरण करा दिया गया। इससे उनका विरोध शान्त हो गया। मल्लिकाजहां ने कद्र खां को रुकुनुद्दीन इब्राहीम की उपाधि देकर गद्दी पर बैठा दिया था। उसने अरकाली खाँ को भी मुलतान से दिल्ली आने के लिए लिखा। परन्तु उसने यह कहकर टाल दिया कि नवाबों में विरोध होने के कारण अब फिर राजसिंहासन प्राप्त करना असम्भव है। जब अलाउद्दीन दिल्ली के निकट पहुँचा, तो रुकुनुद्दीन इब्राहीम उसका विरोध करने के लिए नगर के बाहर निकला, परन्तु आधी रात के समय उसकी सेना का वाम पार्श्व शत्रुपक्ष में चला गया। स्वर्णटकों से भरे हुए कुछ थैले और कुछ घोड़े लेकर राजकुमार मुल्तान भाग गया। तब अलाउद्दीन ने बड़े विजय-गर्व में सिरी के मैदान में प्रवेश किया। वहाँ उसे सभी वर्गों के लोगों से श्रद्धाञ्जलि मिली। बर्नी इन शब्दों में उस समय का वर्णन करता है—'*अब राजसिंहासन सुरक्षित था। माल के पदाधिकारी, हाथियों के स्वामी* हाथी लेकर, कोतवाल दुर्ग की ताली लेकर, शान्तिरक्षक तथा नगर के प्रधान

लोग सब आकर अलाउद्दीन से मिले। राज्य में नई व्यवस्था स्थापित हो चली। उसका धन तथा उसकी शक्ति बहुत थी। अतः व्यक्तिगत रूप से लोग उसके अधिकार को मानते थे अथवा नहीं, इस बात की उसे बिल्कुल चिन्ता नहीं थी, क्योंकि उसी के नाम से खुतबा पढ़ा जाता था और सिक्के बनाये जाते थे।

मंगोलों के विरुद्ध—अपनी स्थिति को सुरक्षित करके अलाउद्दीन ने मंगोलों के आक्रमणों को रोकने का प्रबंध किया, जो लगातार अपने धावे करते रहते थे। उसने बलबन के कार्य को पूरा किया और राज्य की सीमान्त चौकियों पर पर्याप्त सेना की व्यवस्था कर दी। मंगोलों ने बार बार आक्रमण किये, परन्तु उनको प्रत्येक बार लौटा दिया गया और उनकी बड़ी भारी क्षति हुई। उसके राजत्व काल के दूसरे ही वर्ष मावराउन्नहर (ट्रांस औक्सिआना) के राजा अमीर दाऊद ने मुल्तान, पंजाब और सिंध जीतने के लिए १,००,००० मंगोलों को लेकर भारत पर आक्रमण किया। परन्तु उलुग खां से पराजित होकर वह लौट गया और उसकी बड़ी भारी क्षति हुई। मंगोलों ने इसकी कुछ चिन्ता नहीं की। वे सल्दी के नेतृत्व में फिर आ धमके। जफर खाँ ने उनका सामना किया और सल्दी तथा उसके २००० अनुयायियों को पकड़कर बन्दी बना लिया तथा दिल्ली भेज दिया। परन्तु १२९८ में मंगोलों का बड़ा भीषण आक्रमण हुआ जब एक असंख्य सेना लेकर कुतुलुग ख्वाजा दिल्ली पर चढ़ आया। जनता में बड़ा भारी भय फैल गया। सुल्तान ने इस आक्रमण को लौटाने के लिए युद्ध-समिति बुलाई। जफर खाँ और उलुग खाँ ने उनका सामना किया। १२,००० सुसज्जित स्वयंसेवकों को लेकर सुल्तान स्वयं रणभूमि में पहुँचा। मंगोलों की हार हुई और वे छिन्न भिन्न होकर भाग निकले, परन्तु उस समय का सबसे बड़ा योद्धा जफर खाँ रणभूमि में मारा गया। इसी समय तरगी नाम का एक और मंगोल सेनानायक एक बहुत बड़ी सेना लेकर चढ़ आया परन्तु निजामुद्दीन औलिया के बीच में पड़ जाने से यह विपत्ति टल गई। इतनी हार होने पर भी मंगोलों ने आक्रमण करना न छोड़ा। और १३०४ ई० में अलीबेग ख्वाजा ताश ने लाहौर के उत्तर होकर, और शिवालिक पहाड़ियों का चक्कर काटकर भारत में प्रवेश किया और अमरोहे तक घुस आया। गाजी तुगलक दिपालपुर का शासक था, और सीमा-रक्षक का भी कार्य उसी का था। उसने मंगोलों का सामना किया और उन्हें

पराजित कर दिया। मगोलो की बड़ी भारी क्षति हुई। परन्तु उन्होंने फिर दूसरा आक्रमण किया। गाजी तुगलक ने उनको फिर मार भगाया। जब इकबाल मन्दा बहुत बडी सेना लेकर फिर चढ आया, तो सुल्तान ने उसके विरुद्ध एक सेना भेजी। उसकी हार हुई और वह मार डाला गया। सहस्रो मगोल मार डाले गये। उनको मगोल अमीर जो एक सहस्र अथवा एक शत सिपाहियो के नायक थे, वे पकड लिये गये और सुल्तान की आज्ञा से हाथियो के पैरो के नीचे कुचलवा दिये गये। इससे मगोल इतने डर गये कि उन्होंने हिन्दुस्तान में आने का फिर नाम तक न लिया। मगोलो से देश की रक्षा करने के लिए सुल्तान ने बलबन की सीमान्त-नीति का अनुसरण किया। मगोलो के मार्ग पर जितने दुर्ग थे, उन सबका पुनरुद्धार किया गया और वे अनुभवी नायको की अध्यक्षता में रख दिये गये। समाना और दिपालपुर की छावनियो पर रक्षा का पूरा प्रबन्ध किया गया। शाही सेना की शक्ति बहुत बढा दी गई और राज्य के कारखाना में हथियार बनाने के लिए यन्त्रकार नियुक्त किये गये। शत्रु का सामना करने के लिए सभी प्रकार के हथियार बनाने का उनको आदेश हुआ।

सुलतान की महत्त्वपूर्ण योजनाएँ—इन भ्रमणशील आक्रमणकारियो से पीछा छूटने पर अलाउद्दीन ने विदेश विजय की ओर ध्यान दिया। उलुग खाँ और नुसरत खाँ ने गुजरात और अन्हलवाडा जीत लिया था और खम्भात के सौदागरो को बहुत धमकाया था। बघेला राजपूत कर्ण अपने स्त्री-बच्चो को शत्रु के हाथो में पडने के लिए छोडकर १२९७ ई० म देश छोडकर भाग गया। चारो ओर स सफलता के समाचार आने लगे और सुल्तान के कोष में अपार लूट का धन आने लगा। बर्नी ने लिखा है कि, "इस समृद्धि स सुल्तान मदान्ध हो गया। उसके मस्तिष्क में बडी-बडी अभिलाषाएँ और महत्त्वाकाक्षाएँ जन्म लेने लगी। उनका पूर्ण करना उसकी शक्ति के बाहर था। इसके पूर्व अन्य किसी सुल्तान के मन में ये बातें कभी नहीं आई थी। अपने अभिमान, अज्ञान और अनभिज्ञता के कारण, उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई और वह बडी असभव योजनाएँ बनाने लगा तथा महत्त्वपूर्ण अभिलाषाएँ रखने लगा। वह बहुत बुरे स्वभाव का, हठी और हृदयहीन था, परन्तु ससार उसके सामने नतमस्तक था, भाग्य उसका साथ दे रहा था, और उसकी योजनाएँ,

खूब सफल हो रही थी। अत वह निश्शक और दुर्विनीत हो गया।" उसको अपने विषय में इतना भ्रम हो गया था, कि वह नया धर्म चलाने का स्वप्न देखने लगा और सिकन्दर महान् की भाँति विश्व विजय करने की योजना बनाने लगा। इन महत्त्वाकाक्षा की योजनाओ के विषय में वह इस प्रकार कहा करता था,"सर्वशक्तिमान् ईश्वर ने पगम्बर साहब को सहायता के लिए चार मित्र दिये थे, जिनकी सहायता धर्म और सदाचार की प्रतिष्ठा हुई। इस धर्माचरण की प्रतिष्ठा से पगम्बर साहब का नाम कयामत तक रहेगा। ईश्वर ने मुझे भी चार मित्र दिये ह—उलुग खाँ, जफर खाँ, नसरत खाँ, और अलप खाँ जो मेरी विभूति और समृद्धि से राजवैभव तथा ठाट-बाट के साथ जीवनयापन करते ह। यदि म चाहूँ तो इनकी सहायता से म भी एक नया धर्म अथवा सम्प्रदाय चला सकता हूँ। मेरी तलवार तथा मेरे मित्रो की तलवार इसे सर्वस्वीकृत करा लेगी। इस धर्म-स्थापन द्वारा मेरा और मेरे मित्रो का नाम पगम्बर साहब और उनके मित्रो के समान कयामत के दिन तक रहेगा। मेरे पास अपार धन, अगणित हाथी और असख्य योद्धा ह। मेरी इच्छा है कि दिल्ली में कोई अपना प्रतिनिधि छोडकर सिकन्दर महान् की भाँति विश्व विजय के लिए निकलूँ और जहाँ तक मनुष्यो का निवास है, उस सारे ससार को अपने अधिकार में लाऊँ।"

इतिहासकार जिया बर्नी के चाचा काजी अलाउलमुल्क से सुल्तान ने इस सम्बन्ध म परामर्श किया। उसने इस प्रकार अपने विचार प्रकट किये—'धर्म और नीति ईश्वरीय ज्योति से उत्पन्न होते है। मनुष्य की योजनाओ से उनकी स्थापना नही होती। आदम के समय से आज तक यह काय पैगम्बरो और सिद्ध पुरुषो का ही उसी प्रकार रहा है, जिस प्रकार शासन प्रबन्ध तथा राज्य-व्यवस्था करना राजाओ का काम रहा है। बादशाहो का पगम्बर के काम से कोई सम्बन्ध नहीं रहा और न ससार के अन्त तक यह उनका काय कभी होगा ही यद्यपि कुछ पैगम्बरो ने राजा का काम अवश्य किया ह। मेरा परामर्श यह है कि श्रीमान् कभी इस ओर ध्यान न दें और न इसकी चर्चा करें। श्रीमान् जानते ह कि मुसलमानो के नगरो में चगेज खाँ ने कितनी रक्त की नदियाँ बहा दी थी परन्तु वह मुसलमानो में मुगल धर्म अथवा मुगल सस्थाएँ स्थापित नही कर सका। अनेको मुगल मुसलमान बन गये, पर कोई भी मुसलमान मुगल नहीं बना।"

विश्व विजय के सम्बन्ध में काजी ने यह कहा—"दूसरी योजना का सम्बन्ध बड़े-बड़े राजाओं से है। बादशाह सारे संसार को अपने अधिकार में करना चाहते हैं। परन्तु ये दिन सिकन्दर के समय के नहीं हैं। अब अरिस्टौटिल के समान कोई वजीर भी नहीं है। बादशाह सलामत के सामने दो कर्त्तव्य प्रमुख हैं जिनकी ओर सर्वप्रथम ध्यान देने की आवश्यकता है। एक तो समस्त भारत की विजय और उस पर अधिकार करना है। रणथम्भौर, चित्तौड, चन्देरी, मालवा, धारा और उज्जैन, पूर्व की ओर सरयू तक, शिवालिक से जालौर तक, मुल्तान से दमरीला और पालम से लाहौर और दिपालपुर के स्थानों को अभी जीतना है और इन पर ऐसा अधिकार जमाना है कि विद्रोह और विद्रोही का नाम तक न सुनाई दे। दूसरा इससे भी महत्वपूर्ण कर्त्तव्य यह है कि मुल्तान की सड़क मुगलों के लिए बिल्कुल बंद हो जाय।" अपना वक्तव्य बन्द करने के पहले काजी ने कहा कि—"जो कुछ मैंने कहा है, उसकी पूर्ति तभी हो सकती है, जब श्रीमान् अत्यधिक मात्रा में मदिरा-सेवन बंद कर दें और विश्राम-गोष्ठियों और भोजों से दूर रहें। यदि बिना मदिरा के आपका काम बिल्कुल न चल सके, तो अपराह्न तक बिलकुल न पीजिये और फिर भी एकान्त में अकेले ही पीजिये।" सुल्तान ने काजी का परामर्श बहुत पसन्द किया और उसे बहुत पुरस्कार दिया।

राजपूताने की विजय—अपने मन्त्रियों और सेनानायकों के पूर्ण परामर्श से अलाउद्दीन ने सन् १२९९ ई० में रणथम्भौर के प्रसिद्ध दुर्ग को जीतने का निश्चय किया। बहुत बड़ी बड़ी सेनाएँ लेकर उलुग खाँ और नुसरत खाँ अपनी अपनी जागीरों से राजपूताने की ओर चले। उन्होंने झाईन का गढ़ जीत लिया। रणथम्भौर का घेरा डाल दिया गया। परन्तु घेरे के समय जब शाही सेनाध्यक्ष नुसरत खाँ एक बारूद का गारा बनवा रहा था, तो दुर्ग से 'मगरिबी' यन्त्र से फेंके हुए एक पत्थर से वह आहत हुआ। वह घाव घातक सिद्ध हुआ और वह वीर पुरुष दो-चार दिन में मर गया। राणा हम्मीर दुर्ग के बाहर आया और कुछ ही समय में उसने २,००,००० वीर सिपाहियों की एक सुसज्जित सेना तैयार की। उसकी सहायता से उसने मुसलमानों पर बड़ा भीषण आक्रमण किया। उलुग खाँ को झाईन लौटना पड़ा उसकी बड़ी भारी क्षति हुई। जब इस दुर्घटना का समाचार सुल्तान को मिला तो वह स्वयं

रणथम्भौर की ओर बढा, परन्तु मार्ग में उसी के भतीजे अक्त खाँ ने उस पर आक्रमण किया और उसे घायल कर दिया। वह कुछ नये मुसलमानो की सहायता से स्वय राजगद्दी पर अधिकार करना चाहता था। परन्तु उसका प्रयत्न असफल रहा और इस राजद्रोह के लिए उसे प्राणदड मिला। इसके अतिरिक्त सुल्तान की राजगद्दी छीनने के लिए अन्य षड्यत्र हुए, परन्तु वे सब दबा दिये गये। इन सकटो से मुक्त होने पर शाही सेना ने पूरी शक्ति रणथम्भौर पर लगा दी। लगभग एक वर्ष तक घेरा रहा। रेत के बोरो की सहायता से आक्रमणकारी दुर्ग की दीवारो पर चढ गये और उस पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया। हम्मीर और उसके परिवारवाले मार डाले गये। दुर्ग में जो सिपाही बच रहे थे और जिन्होने अत तक अपने स्वामी के लिए युद्ध किया था, वे भी मार डाले गये।* राणा के मत्री रणमल को अपनी कर्त्तव्य विमुखता के लिए निदनीय प्राणदड मिला। इस रक्तपिपासु इतिहास में भी हमको सच्ची वीरता तथा दृढ स्वामिभक्ति के भी कभी कभी दर्शन हो जाते है। जब हम्मीर का एक मगोल सेनापति मीर मुहम्मद शाह रणक्षेत्र में घायल होकर पडा हुआ था, तो अलाउद्दीन ने उससे पूछा कि यदि तुम्हारे घावो की मरहम पट्टी करवा दी जाय और प्राणो की रक्षा का प्रबन्ध, कर दिया जाय, तो तुम क्या करोगे? निर्भीक वीर ने बडे गर्व से उत्तर दिया, "यदि मेरे घाव अच्छे हो जायेंगे, तो मै तुमको मारकर हम्मीर देव के पुत्र को राजगद्दी पर बैठाऊँगा।" मुसलमानो मे इस प्रकार की वीरता के उदाहरण बहुत कम थे। वहाँ पर षड्यन्त्रो और स्वार्थपरता का वातावरण था। यद्यपि उस वीर को हाथी के पैरा नीचे डलवाकर कुचलवा दिया गया, परन्तु उसके पौरुष ने विजेता के भी हृदय को स्पर्श किया। उसने आज्ञा दी कि उसका अतिम सस्कार उत्तम रीति से किया जाय। जुलाई १३०१ ई० में रणथम्भौर का दुर्ग जीत लिया गया। राणा के महल और दुर्ग पृथ्वी पर ढा दिये गये।

* जौहर का भयानक सस्कार हुआ और अमीर खुसरो के शब्दो में राय ने पहाडी के शिखर पर आग जलाई और अपने स्त्री-बच्चो को उसकी ज्वाला में फेक दिया और कुछ स्वामिभक्त अनुयायियो को लेकर शत्रु पर टूट पडा। इस प्रकार निराश होकर सबने प्राण होम दिये।

रणथम्भोर और झाईन को उलुग खाँ के अधिकार में छोड़कर सुल्तान राजधानी लौट गया।

इस विजय से उत्साहित होकर राणा ने मेवाड़ पर चढ़ाई की, जो राजपूताने का प्रमुख राज्य था। अब तक कोई भी मुसलमान शासक उस एकान्त प्रदेश तक नहीं पहुँचा था, जो लम्बी पर्वत-श्रेणियों और घने वनों से सुरक्षित था। मेवाड़ की इस प्राकृतिक परिस्थिति के कारण किसी भी विजेता के लिए उस पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना असम्भव था। चित्तौड़ का दुर्ग भी एक पहाड़ी के शिखर पर प्रकृति द्वारा सुरक्षित था। विदेशी आक्रमणकारी के लिए उस पर अधिकार करना सहज नहीं था। यह दुर्ग एक बड़े भारी शिला खंड को काटकर बनाया गया था। उसका दृश्य बड़ा अद्भुत तथा आतंकपूर्ण था। नीचे बड़ा विस्तृत मैदान था, जिसमें अनेकों बार हिन्दू और मुसलमानों ने प्राणों की बाजी लगाकर भीषण युद्ध किये। परन्तु इस दुर्ग की अजेयता को देखकर भी महत्त्वाकांक्षी सुल्तान इसको जीतने का प्रयत्न करने से हिचकिचाया नहीं। १३०३ ई० में उसने मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी। आक्रमण का तात्कालीन कारण राणा रत्नसिंह की अकृत्रिम सुन्दर रानी पद्मिनी को प्राप्त करना कहा जाता है जो सारे भारतवर्ष में अपने सुन्दर रूप के लिए विख्यात थी। दर्पण द्वारा रानी का प्रतिबिम्ब देखने की सुल्तान की इच्छा को जिस उदारता से पूर्ण करने को राणा प्रस्तुत हो गया और जिस प्रकार शिष्टाचारवश बिदा के लिए दुर्ग के फाटक पर आने के समय जिस प्रकार अलाउद्दीन ने धोखे से उसे पकड़ लिया, उस कहानी को यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं है। अपनी छावनी से उसने सन्देश भेजा कि यदि रानी मेरे हरम में आने के लिए प्रस्तुत हो, तो मैं उसके स्वामी को छोड़ सकता हूँ। राजपूत अपने वंश पर इस कलंक को कब सहन कर सकते थे। उन्होंने मंत्रणा की कि इस सम्बन्ध में क्या किया जाय। वीर राजपूत रमणी की भाँति, रानी ने जो अपनी रक्षा के स्थान पर अपनी जाति के सम्मान की रक्षा के लिए अधिक चिंतित थी, उनके निर्णय के अनुसार कार्य करने को प्रस्तुत हो गई। वह मुसलमानों के पड़ाव में जाने के लिए प्रस्तुत हो गई। कामान्धता के कारण अलाउद्दीन विवेकशून्य हो रहा था। उसने इस बात की आज्ञा दे दी कि

यह राजसी ठाठ-बाट से आ सकती है। सात सौ पालकियाँ सजाई गईं, पर्दे के भीतर उनमें सशस्त्र राजपूत सैनिक बैठे हुए थे। शाही पडाव में पहुँचकर उन्होंने बिलकुल पर्दे की प्रार्थना की। उन सिपाहियों ने राणा को छुडा लिया और वे उन्हें चित्तौड ले आये। दुर्ग के बाहरी फाटक पर बडा भयानक युद्ध हुआ। राजपूतों ने बडी वीरता से आक्रमणकारियों का सामना किया, परन्तु अंत में वे हार गये। जब उन्होंने देखा कि अब रक्षा का कोई साधन नहीं है, तो वे अपनी वंशपरम्परा के अनुसार मरने के लिए प्रस्तुत हो गये। जौहर का भीषण काड संपन्न हुआ और राज घराने की अकृत्रिम सुंदरियाँ जलकर भस्म हो गईं। इस अभियान में अमीर खुसरो सुल्तान के साथ गया था। उसने इस घेरे का वर्णन करता है। वह लिखता है कि, 'चित्तौड का दुर्ग ११ मुहर्रम ७०३ हि० (अगस्त १६, १३०३ ई०) को जीत लिया गया। राणा भाग गया, परन्तु अंत में उसने आत्म-समर्पण कर दिया। तीस सहस्र हिन्दुओं के वध की आज्ञा देकर उसने चित्तौड का शासन अपने पुत्र खिज्र खाँ के हाथों में छोड दिया और चित्तौड का नाम खिज्राबाद रख दिया। उसने उसे लाल छत्र, सुनहरी वेश-वस्त्र और दो झंडे प्रदान किये—एक हरा और दूसरा काला और उसके ऊपर लाल और पन्नों की निछावर की।" तब वह दिल्ली लौट आया।

कुछ आधुनिक विद्वानों का मत है कि पद्मिनी की कहानी केवल मनगढ़त है। यह बात सच है कि समसामयिक साहित्य में इसका कोई वर्णन नहीं है। मुसलमान इतिहासकारों में से केवल फरिश्ता और अरेबिक हिस्ट्री आव गुजरात के लेखक हाजी-उद-दबीर ने इसका वर्णन किया है। उनके वर्णनों में सूक्ष्म अंतर अवश्य है। अपने वर्तमान ज्ञान के आधार पर हम यह नहीं कह सकते कि इन मुसलमान इतिहासकारों ने यह कथा पद्मावत के रचयिता मलिक मुहम्मद जायसी से ग्रहण की है। इस विषय पर विशेष अन्वेषण की आवश्यकता है। तभी हम किसी निश्चित परिणाम पर पहुँच सकते हैं।

चित्तौड का दुर्ग राजकुमार खिज्र खाँ की अधीनता में रख दिया गया और इस नगर का नाम खिज्राबाद रख दिया गया। कुछ दिन तक खिज्र खाँ चित्तौड रहा। परन्तु १३११ ई० के आसपास उसे राजपूतों के दबाव के कारण

छोडकर आना पडा। तब सुल्तान ने इसे सोनिग्रा राज माल्देव को दे दिया। सात वष तक चित्तौड उसके अधिकार में रहा। इसके पश्चात् कूटनीति तथा छल से हम्मीर ने उसे फिर ले लिया। हम्मीर की अध्यक्षता में चित्तौड का महत्त्व फिर वढ गया और वह राजपूताने का प्रमुख राज्य हो गया।

चित्तौड के पतन के पश्चात् मालवा के राय को दबाया गया। वह एक बडी सेना लेकर मुसलमानो से लडा परन्तु वह पराजित हुआ और मार डाला गया। माल्वा का एक मुसलमान शासक नियुक्त हुआ। इसके कुछ दिन पश्चात मांडू, उज्जैन, धारा नगरी और चन्देरी जीत लिये गये। उनके राजाओ ने दिल्ली की अधीनता स्वीकार कर ली। १३०५ ई० तक लगभग सारे उत्तरी भारत पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया। प्रत्येक नई विजय और देश-विस्तार के साथ अलाउद्दीन की साम्राज्यशाही को नया जीवन मिलन लगा।

दक्षिण की विजय—देवगिरि—उत्तरी भारत के पश्चात् सुल्तान ने दक्षिण की ओर ध्यान दिया। देश की प्राकृतिक दशा, हिन्दू राजाओ की शत्रुता और साम्राज्य से दूरी होने के कारण दक्षिण को अधीनता में रखना यदि असम्भव नही तो अत्यन्त कठिन अवश्य हो गया था। परन्तु अलाउद्दीन अपने निश्चय से हटनेवाला मनुष्य नही था। उसने अपने दास काफूर को प्रधान सेनानायक नियुक्त करके दक्षिण विजय के लिए भेजा। दक्षिण जाते समय वह काफूर मालवा और गुजरात से होकर गया और बघेले राजा कर्ण को पराजित कर अधीनता स्वीकार करने के लिए वाध्य किया। युद्ध-सामग्री की कमी के कारण उसे हार माननी पडी। सुल्तान के भाई उलुग खा ने राजा कर्ण की पुत्री देवलदेवी को पकडकर दिल्ली शाही हरम में भेज दिया। बाद में राजकुमार खिज्र खाँ से उसका विवाह हो गया जो दिल्ली राज का उत्तराधिकारी प्रतीत हो रहा था। काफूर ने सारा देश रौंद डाला और रामचन्द्र देव को अधीनता स्वीकार करने के लिए वाध्य किया। रामचन्द्र यादव राजदरबार में उपस्थित किया गया। सुल्तान ने उसका आदर किया और उसे 'राय रायान' की उपाधि दी।

वारगल की विजय—देवगिरि की पराजय ने दक्षिण के अन्य हिन्दू राजाओ की पराजय का मार्ग सरल कर दिया। १३०९ ई० में काफूर ने वारगल* के काक्तीय राजाओ पर आक्रमण किया। कठिन और दुर्गम प्रदेशो को पार करता हुआ वह वारगल के दुर्ग के सामने पहुँच गया। राजा प्रताप रुद्रदेव ने जिसे मुसलमान इतिहासकारो ने लदरदेव लिखा है, दुर्ग के फाटक बन्द कर लिये और कठोर प्रतिरोध किया। अमीर खुसरो के शब्दो में दुर्ग इतना सुदृढ था कि कठोर लोहे की बर्छी भी उसमें प्रवेश नही कर सकती थी। यदि पश्चिमीय कैटापल्ट के द्वारा इसमें कोई गोला मारा जाय, तो वह बालको की गेंद की भाँति लौट आता है। बहुत लम्बे घेरे के पश्चात् प्रताप रुद्रदेव काकतीय ने विरोध करना समाप्त कर दिया और सधि की प्रार्थना की। वह वार्षिक राज-कर देने के लिए प्रस्तुत हो गया और "अपनी अधीनता की स्वीकृति में अपनी स्वर्ण-प्रतिमा बनाकर तथा उसके गले में स्वर्ण शृ खला बाँधकर उसने भेजी।" परन्तु काफूर ने इसको स्वीकार नही किया। काकतीय राजा के ब्राह्मण मन्त्रियो ने व्यर्थ ही अपने स्वामी के लिए प्रार्थना की। निर्मम सेनाध्यक्ष काफूर ने केवल इसी शर्त पर हिंदुओ का सामूहिक वध न करने का वचन दिया कि रा॰ । अपना सारा कोष समर्पित कर दे और दिल्ली को वार्षिक कर भेजता रहे। जब प्रताप रुद्रदेव ने कोई आशा न देखी, तो उसने इन अपमान-पूर्ण शर्तों को स्वीकार कर लिया और अपार धन देकर अपनी सुरक्षा क्रय की। इस विजय श्री को लेकर "काफूर वारगल से चल दिया और अपार कोष के भार से दबे हुए एक सहस्र ऊँटो को लेकर" देवगिरि, धारा और झाईन होता हुआ वह मार्च १३१० ई० में दिल्ली पहुँच गया।

माबर की विजय—इस अभियान की सफलता तथा इन आक्रमणो द्वारा प्राप्त अपार धनराशि देखकर अलाउद्दीन का उत्साह बहुत बढ़ गया। अपने भाग्योदय पर उसका विश्वास दृढ हो गया। उसने सुदूर दक्षिण तक अपने साम्राज्य की सीमाएँ बढाने का निश्चय कर लिया। द्वारसमुद्र और माबर

---

* वारगल तिलगाने की प्राचीन राजधानी थी।

अब भी साम्राज्य की सीमा के बाहर थे। नृसिंह के वीर बल्लाल तृतीय के राजत्व काल में घाटों के ऊपर और नीचे के होयसल प्रदेश मिल गये थे। इस शक्तिशाली राज्य के अन्तर्गत कुर्ग, कोनकन का एक भाग और समस्त वर्तमान मैसूर प्रदेश सम्मिलित था।[1] बल्लाल बहुत योग्य राजा था, जिसने अपने समय के अन्य हिन्दू राजाओं की भाँति अनुचित करों को तोड़कर तथा धार्मिक दान देकर अपनी शक्ति को सुदृढ़ किया था। होयसल तथा यादव राजाओं में बड़ी भारी प्रतिद्वंद्विता थी। एक दूसरे का नाश करने के लिए प्रत्येक राज्य प्रयत्न करता था। अंत में इन पारस्परिक झगड़ों के कारण दोनों राज्य दुर्बल हो गये और उनकी दुर्बलता का लाभ मुसल्मानों की तीसरी शक्ति ने उठाया। १८ नवम्बर सन १३१० ई० को शाही सेना काफूर की अध्यक्षता में दिल्ली से चल पड़ी। गहरी नदियों, नालों, पर्वतों और घाटियों को लाँघती हुई अंत में यह सेना मावर पहुँची। वीर बल्लाल[2] की बड़ी भारी हार हुई। विजयी सेनानायक के सामने उसने आत्मसमर्पण कर दिया। परन्तु काफूर केवल आत्मसमर्पण से संतुष्ट न था। उसने राय से कहा कि या तो तुम मुसल्मान हो जाओ अथवा जिम्मी[3] की स्थिति स्वीकार करो। राय ने दूसरी बात स्वीकार कर ली। उसने युद्ध-व्यय रूप में अपार धन दिया और दिल्ली की अधीनता स्वीकार कर ली। मुसलमानों ने अपार सम्पत्ति लूटी। इसमें ३६ हाथी, बहुत सा सोना, चाँदी, जवाहर और मोती थे।

---

१ वस्साफ, मार्कोपोलो और अब्बुल फिदा के अनुसार मावर उस पट्टी का नाम था, जो कुलाम् से लेकर नीलावर (नीलोर) तक चली गई थी। तजियत-उल-असार में वस्साफ ने लिखा है कि मावर प्रदेश कुलाम से नीलावर तक लगभग ३०० परसाग (१½ मील) तक समुद्र के किनारे किनारे चला गया था।

२ वीर बल्लाल का राज्याभिषेक १२९२ ई० में हुआ था। १३४२ ई० में तुर्कों से युद्ध करते समय उसकी मृत्यु हो गई।

३ जिम्मी उस व्यक्ति को कहते हैं जो इस्लाम स्वीकार नहीं करता, परन्तु धन देने पर उसके जान माल को छोड़ दिया जाता है।
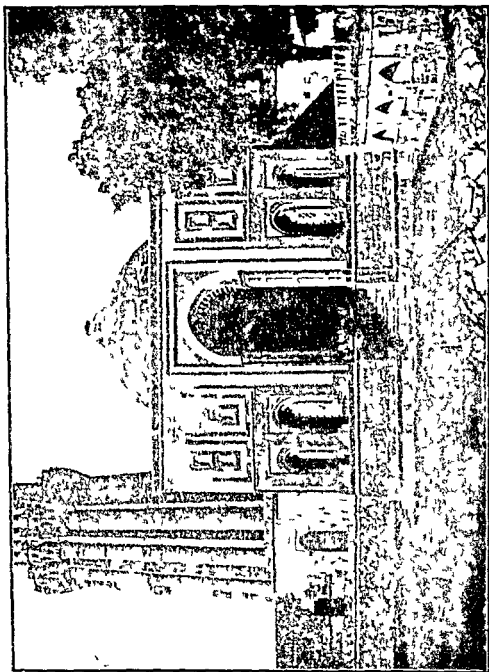
हाथी और घोडो के साथ वीर बल्लाल भी दिल्ली भेज दिया गया। उसके लेखो में इस दिल्ली-यात्रा का वर्णन है।

इसके पश्चात् मदुरा के पाड्य राजाओ की ओर काफूर ने ध्यान दिया। सुन्दर पाड्य तथा पाड्य राजा के अवध पुत्र वीर पाड्य दो भाइयो के युद्ध ने मुसलमानो को वह अवसर प्रदान किया जिसके लिए वे इतने दिन से अधीर थे। काफूर एक बहुत बडी सेना लेकर दक्षिण की ओर चल दिया। दक्षिण के इन सुदूर तथा दुर्गम देशो की यात्रा का अमीर खुसरो ने 'तारीखे अलाइ' में बडा सजीव वर्णन लिखा है। मार्ग में उसने हाथी पकड लिए और अनेक स्थानो पर मन्दिर गिरा दिये। १७ जिलक्दा ७१० हि० (अप्रल १३११) को वह 'खाम' पहुँचा। वहाँ से वह मदुरा की ओर बढा, जो पाड्य प्रदेश की राजधानी थी। आक्रमणकारियो के आने पर राय भाग गया। उन्होने हाथी पकड लिये और मन्दिर तोड दिये। अमीर खुसरो के शब्दो में इस लूट के सामान में ५१२ हाथी, पाँच सहस्र घोडे और पाच हीरे और लाल सम्मिलित थे। ऐसा प्रतीत होता है कि काफूर रामेश्वरम् तक पहुँच गया था, जो प्रसिद्ध हिन्दू तीर्थ-स्थान है। वह विशाल मदिर लूट लिया गया और मूर्ति तोड दी गई। इसके पश्चात् सन् १३११ ई० के अत तक काफूर दिल्ली लौट गया। इस प्रकार सारे देश को दबाकर ४ जिलहिज्जा ७१० हि० (२८ अप्रल १३११ ई०) को अपार लूट का माल लेकर काफूर दिल्ली पहुँचा। सुल्तान ने उसका बडा स्वागत किया। ऊँचे ऊँचे मचो पर चढकर इस विजय की घोषणा की गई। नवाबो और उच्च राज-पदाधिकारियों में बडे बडे पुरस्कार बाटे गये।

शकरदेव की पराजय—रामदेव की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र शकरदेव ने अपना नियमित कर देना बद कर दिया और काफूर के अभियान में हौसले के विरुद्ध उसने सहायता नही दी। इस प्रकार आधीन राजा होने का अपना कर्त्तव्य-पालन उसने नहीं किया। इस देशद्रोह को देखकर अलाउद्दीन बडा क्रोधित हुआ। सन् १३१२ ई० में चौथी बार वह गुलाम सेनापति फिर दक्षिण भेजा गया। उसके साथ एक बडी भारी सेना थी। उसने सारा महाराष्ट्र देश रौंद डाला। बहुत थोडे युद्ध के पश्चात् यादव राजा हार गया और मार डाला गया। सारा दक्षिण भारत काफूर के चरणों पर नतमस्तक था।

चोल, चेर, पाड्य, होयसल, काकतीय और यादव पुराने राजवश सब पराजित हो गये। उनको दिल्ली की अधीनता स्वीकार करनी पडी। १३१२ ई० तक अलाउद्दीन के साम्राज्य में सारा उत्तरी और दक्षिणी भारत सम्मिलित था और सभी बडे बडे राजा उसकी आधीनता स्वीकार करते थे।

राज्य के सबध मे अलाउद्दीन के सिद्धात—राज्य के मामले में वह उलमा के हस्तक्षेप के विरुद्ध था। इस मामले में वह दिल्ली के अन्य राजाओं की परम्परा से बिलकुल भिन्न था। उसके अनुसार राज्य नियम बादशाह की इच्छा पर निर्भर होना चाहिए। धर्म के नियमो से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। अलाउद्दीन का यही प्रधान सिद्धान्त था। सुल्तान के राजनीतिक सिद्धान्तो का पता उन शब्दो से लगता है, जो उसने काजी मुगीसुद्दीन से कहे थे जिसका परामर्श उसने राजा की न्यायपूर्ण शक्ति के विषय में लिया था। वह दड देने के राजा के विशेषाधिकार में विश्वास रखता था और झूठे तथा भ्रष्ट पदाधिकारियो के हाथ-पैर कटवाने को न्यायपूर्ण समझता था। कुरान के अनुसार काजी उन्हें नियम-विरुद्ध समझता था। सुल्तान ने उससे पूछा, "जब मैं मलिक था, तब देवगिरि में बडे भीषण रक्तपात के पश्चात् जो मैं धन लाया था, वह मेरा है अथवा राजकोष का ?" काजी ने उत्तर दिया, "मैं श्रीमान् के सामने सत्य बात ही कहूँगा। देवगिरि का धन इस्लाम की सेना की वीरता द्वारा ही प्राप्त हुआ था और इस प्रकार जितना भी द्रव्य प्राप्त हुआ है, वह सब राजकोष का है। यदि इस धन को केवल आपने वैध मार्ग से प्राप्त किया होता, तो वह आपका होता।" सुल्तान क्रोध से लाल हो गया और काजी से पूछा कि राज्य के पास कितना कोष होना चाहिए ? काजी ने नम्रता से उत्तर दिया, "श्रीमान् ने मुझसे वैधानिक प्रश्न किया है। यदि मैं वह न कहूँ, जो मैंने ग्रन्थो में पढा है और यदि मेरे कथन की पुष्टि के लिए आप किसी अन्य विद्वान् से पूछें और यदि मेरा उत्तर उसके उत्तर से भिन्न हो, तो आप समझ जायेंगे कि आपको प्रसन्न करने के लिए मैंने झूठ उत्तर दे दिया। फिर आपको मेरी बात पर क्या विश्वास रहेगा ? और क्या आप फिर कभी इन वैधानिक समस्याओ पर मेरा परामर्श लेंगे।"

राजा तथा उसकी सन्तान का राजकोष (बेतुलमाल)* पर कितना

* राज-कोष को बेतुलमाल कहते हैं।

अधिकार है, इस विषय में काजी से एक और प्रश्न हुआ। सुल्तान की कठोर आकृति को देखकर काजी भयभीत हो गया। बडी कठिनता से साहस करके उसने यह उत्तर दिया, "यदि श्रीमान् सुसस्कृत खलीफाओ के उदाहरण का अनुकरण करना चाहे और सवश्रेष्ठ सिद्धान्तो पर चलना चाहे, तो आप अपने लिए तथा अपने रहन-सहन के लिए उतना ही धन लेगे जितना प्रत्येक सिपाही को मिलता ह—दो सौ चौंतीस टक। यदि आप कोई मध्यम माग ग्रहण करना चाहते ह और समझते ह कि सेना के सामान्य सिपाहिया की भाँति समझे जा ने में अपमान है, तो आप अपने लिए तथा अपनी रहन-सहन के लिए उतना ले सकते ह, जितना आप मलिक किरन आदि अपने प्रधान पदाधिकारियो को देते ह। यदि श्रीमान् राजनीतिज्ञो के मतानुसार आचरण करना चाहत ह, तो आप सबसे बडे आदमिया को प्राप्त रुपयो से भी अधिक रुपया राजकोष से लगे, जिससे आप सबसे अधिक रुपया व्यय कर सकें और आपका महत्त्व कम न हो। मने श्रीमान् के सामने तीन माग रक्खे ह। जो करोडो रुपय और रत्न आप राजकोष से लेकर स्त्रियो पर व्यय करते ह, उन सबका हिसाब आपको कयामत के दिन देना पडेगा।" सुल्तान क्रोध से लाल हो गया। उसने काजी को कठोर दड देने की धमकी दी। जब सुल्तान ने फिर यही कहा, तो काजी ने अपना मस्तक जमीन पर टेककर बडे उच्च स्वर से कहा, "मेरे स्वामी ! चाहे आप इस अपने नाचीज गुलाम को बदीगृह भेज दें और चाहे दो टुकडो में कटवाने की आज्ञा दें, यह सब अवैधानिक ह। इसकी व्यवस्था न तो पगम्बर साहब की वाणी में ही ह और न विद्वानो के वचनो में ही।" काजी को निश्चय हा गया कि अत निश्चय है, परन्तु जब वह दूसरे दिन राज-दरबार में पहुँचा, तो सु ा ा ने उससे नम्रता का व्यवहार किया और उसे प्रचुर पुरस्कार दिया। ब ा ा ाश्चयपूण नम्रता के साथ उसने इन शब्दो में राज्य-सिद्धान्तो का वणन कि ा—"विद्रोहा को शान्ति करने के लिए, जिनमें सहस्रो की जानें जाती ह, म वही आ ाएँ देता हूँ जिन्हे म राज्य के लिए हितकर और जनता के लिए लाभप्रद समझता हूँ। मनुष्य उन पर ध्यान नही देते, अवज्ञा करते ह और मेरी आज्ञाओ का उल्लघन करते ह। तब म उनको अनुशासन में लाने के लिए कठोर व्यवहार करता हूँ। म नही जानता कि यह वध है अथवा अवैध। जो कुछ

भी मैं राज्य के लिए हितकर और परिस्थिति के अनुकूल समझता हूँ, वैसी ही आज्ञा दे देता हूँ। कयामत के दिन मेरा क्या होगा, यह मैं बिल्कुल नहीं जानता।" राज्य के इन सिद्धान्तों का कारण तत्कालीन परिस्थिति थी। लोगों ने इस नीति को बिना किसी आपत्ति के स्वीकार कर लिया और उलमा के विचारों की कोई परवाह न की। कारण यह था कि उसने देश में शान्ति और व्यवस्था स्थापित की, जिसकी उस समय विशेष आवश्यकता थी। जनता के इस सहयोग के कारण उसकी शक्ति अबाध रही।

राज्यद्रोह का अंत—अलाउद्दीन ने अपने राज प्रबंध की विधियों में अलाउद्दीन की जो योग्यता और अन्तर्दृष्टि दिखलाई वह केवल सैनिक योग्यतावाले व्यक्तियों में मिलना असम्भव है। विद्रोहों और षडयन्त्रों को देखकर उसने आलस्य छोड दिया और उनका अंत करने के लिए कठिन परिश्रम तथा कठोर साधनों की आवश्यकता अनुभव की। राजनीतिक अव्यवस्था के कारणों पर उसने शान्ति से विचार किया और अन्त में वह इस परिणाम पर पहुँचा कि उनके प्रधान कारण चार हैं —(१) राज्य के कामों की ओर सुल्तान की उदासीनता (२) मदिरा पान (३) राज्य के मलिकों, अमीरों तथा उच्च राजदरबारियों की मित्रता तथा पारस्परिक आहार-व्यवहार, (४) धन की अधिकता जो अपने मद से मनुष्य के मन को विकृत कर देती है जिससे राज्यद्रोह तथा षड्यन्त्र होने लगते हैं।

इस विश्लेषणात्मक निदान पर पहुँचकर, सुल्तान ने बड़ी दमनकारी नीति का अनुसरण प्रारम्भ किया। पहले तो उसने सम्पत्ति का अपहरण प्रारम्भ कर दिया। सब पुरस्कार, पेंशन और दान की सम्पत्ति छीन ली। जो गाँव मिल्क (अधिकृत भूमि) इनाम (पुरस्कार) अथवा वक्फ (दान) रूप में दे दिये थे, वे सब छीन लिए गये और राजभूमि (खालसा) में सम्मिलित कर दिये गये। षड्यन्त्रों और हत्याओं के भय से सुल्तान बड़ा चिंतित हुआ। अतः उसने अपनी प्रजा तथा अपने पदाधिकारियों के काम का पता लगाने के लिए गुप्तचरों की बड़ी समुचित व्यवस्था की। ये गुप्तचर नवाबों के घर का प्रत्येक समाचार सुल्तान तक पहुँचाते थे और सुल्तान के प्रियपात्र बनने की उत्सुकता में बाजार की मूर्खतापूर्ण गप्पों को भी सुल्तान के कानों तक पहुँचाते थे। मदिरा-सेवन

वर्जित था। मदिरा पीना बिलकुल बद करके उसने स्वय उदाहरण उपस्थित किया। सुल्तान के मदिरालय के सब चीनी और कांच के बर्तन तोड डाले गये। "शाही तहखाना से मदिरा के घडे और पीपे निकालकर बदायू फाटक के सामने इतनी अधिकता में उडेल दिये गये, कि वर्षा की भाँति कीचड हो गई।" परन्तु यह नियम बडा कठोर निकला। इसका पालन नही हो सका। मदिरा छिप छिपकर नगर में आती थी। अमीर लोग अलग अलग अपने घर मदिरा पी सकते थे परन्तु सामाजिक आहार-व्यवहार वर्जित था। सब उत्सव और विलास-गोष्ठिया निजी अथवा सावजनिक सभी स्थाना के लिए वर्जित थी। परिणाम यह हुआ कि सब सामाजिक जल्से बद हो गये और जीवन भारस्वरूप हो गया।

हिन्दुओं के प्रति व्यवहार—हिन्दुओ के साथ कठोर व्यवहार होता था। दोआब में उनकी उपज का ५० प्रतिशत राज्य को देना पडता था। इसमें कोई छूट नही होती थी। राज्य-कर इतनी कठोरता से लिया जाता था कि कोई भी बिस्वा भूमि छोडी नही जाती थी। पशुओ पर चरागाही का कर लगता था। गृह-कर भी लगता था। खूतो और बलाहारा* के लिए भी वही नियम लागू थे, जिससे निधनो पर भारी कर न पडे। इन नियमो का पालन इतनी कठोरता से होता था कि 'चौधरी खूत और मुकद्दम न तो घोडे की सवारी कर सकते थे न हथियार रख सकते थे, न सुदर कपडे पहन सकते थे और न पान खा सकते थे।" राज्य की नीति यह थी कि हिन्दुओ के पास इतनी सम्पत्ति ही न हो कि वे घोडे पर चढ सके, सुन्दर कपडे पहन सके, हथियार रख सके अथवा विलासमय जीवन व्यतीत कर सके। वे इतने दीन हो गये थे कि खूतो और मुकद्दमो की स्त्रिया मुसलमाना के घर सेवा-काय करती थी। साम्राज्य के वजीर की इतिहासकार बर्नी बडी प्रशसा करता है। उसने लिखा है कि उसने सब सूबो में एक-सा ही भूमि-कर लगा दिया था मानों वे सब एक ही गाव थे। वह सभी अपहार (गबन) के मामलो की जाच स्वय करता था और अपराधियो को कठोर दड देता था। यदि पटवारी के

*खूत और बलाहार शब्द भूस्वामिया के लिए प्रयुक्त हुए ह। यहाँ वे सम्भवत जमीदारो और किसानो के लिए प्रयुक्त हुए ह। (इलियट, भाग ३, परिशिष्ट पृ० ६२३)

किसी खाते में एक भी जीतल किसी पदाधिकारी पर रह जाता था, तो उसको यत्रणा और कारावास का दड दिया जाता था। भूमि-कर के मुशी का पद बडा कठिन समझा जाता था। निर्भीक पुरुष ही इसके उम्मेदवार होते थे।*

सेना का प्रबध और बाजार का नियत्रण—अलाउद्दीन पक्का सेनानी था। उसने स्पष्ट रूप से देख लिया कि बिना स्थायी सेना के साम्राज्य की रक्षा नही हो सकती। इस उद्देश्य से उसने सेना में सुधार करना आरम्भ किया। उसने अश्वारोही योद्धा का वतन २३४ टक और दो-अस्प (छोटे सैनिक) का ७८ टक वार्षिक नियत कर दिया था परन्तु जीवन की आवश्यक वस्तुएँ बिना सस्ती हुए, इतने में जीविका निवाह होना कठिन था। इसलिए दैनिक आवश्यकता की सभी वस्तुओ का मूल्य सुल्तान ने निश्चित कर दिया था। सब शाही अन्न भण्डारो में अनाज इकट्ठा किया जाता था। और दो अरब के खाल्सा ग्रामो म कर उपज के रूप में ही लिया जाता था। भोजन की सभी वस्तुओ का मूल्य निश्चित था। यदि दूकानदार इन नियमो का पालन नही करते थे, तो उनको कठोर दड दिया जाता था। गुप्तचर तथा अन्य विशेष प्रकार से नियुक्त व्यक्ति सुल्तान को बाजार का समाचार देते थे।

सभी सौदागरो को, चाहे वे हिन्दू हो चाहे मुसलमान, अपना नाम रजिस्टर कराना पडता था और अपना सामान सराये अद्ल (बदायूँ फाटक में खुला हुआ स्थान) में लाने के लिए, वहाँ के नियम-पालन का वचन देना पडता था। वहाँ सब सामान बिक्री के लिए खोलकर रख दिया जाता था। मुल्तानी सौदागरो को सरकारी कोष से रुपया उधार मिल जाता था, जिससे वे अधिक परिमाण में माल खरीद सके। जो मलिक और अमीर बहुमूल्य वस्तुएँ मोल लेना चाहते थे, उन्हे दीवान अनुमति पत्र दे देता था। यह उपाय इसलिए किया गया था जिससे कि सौदागर सस्ता माल मोल लेकर देहात में अधिक दामो में न बेच सके।

---

* बर्नी ने लिखा है कि भूमि-कर के मुशी का पद इतना बदनाम हो गया था कि उससे कोई अपनी कन्या का विवाह नही करता था। मुशिरफ का पद वही लोग स्वीकार करते थे, जिनको अपने जीवन की कोई चिंता नही थी। इन लोगो को प्राय कारावास का दड दिया जाता था।

बाजार की देखभाल दो पदाधिकारी करते थे—दीवान-ए-रियासत और शहना-ए मडी। ये पदाधिकारी अपना कर्त्तव्य ईमानदारी और नियमित रूप से पालन करते थे। पशुओ का मूल्य भी नियन्त्रित था। उनका मूल्य भी बहुत गिर गया था। बहुत उत्तम घोडे १०० से १२० टक तक बिकते थे। दूसरी कोटि के ८० से ९० टक और तीसरी श्रेणी के ६५ से ७० टक मे मोल लिये जा सकते थे। टट्टू तो १० टक से २५ टक तक बिकते थे। दूध देनेवाली गाय का मूल्य ३, ४ टक था और बकरी का मूल्य दस-बारह अथवा चौदह जीतल तक था। दासो और परिचारिकाओ का भी मूल्य बहुत कम हो गया। बाजार के नियमो का उल्लघन करनेवाले को कठोर दड दिया जाता था। यदि दूकानदार कम तोलते थे, तो उतने ही परिमाण का मास उनके शरीर से काट लिया जाता था, जिससे वजन की कमी पूरी हो जाय। बेईमानी के साथ काम करने पर दूकानदारो को ठोकर मारकर दूकाना से नीचे ढकेल दिया जाता था। परिणाम यह हुआ कि बाजार के लोग बडे विनम्र हो गये। वे चुपचाप आज्ञा-पालन करने लगे। उन्होने ग्राहको को ठगना एकदम छोड दिया। वे प्राय निश्चित परिमाण से अधिक ही वस्तु उनको देते थे।

इन सुधारों का परिणाम—ये सुधार बडे सफल हुए। सेना की शक्ति और योग्यता के कारण मगोल आक्रमणो से देश सुरक्षित हो गया और विद्रोही राजा और अमीर शान्त रहे। राज्यद्रोह का अत हो गया। मनुष्य इतने अनुशासित हो गये कि अपराध बहुत कम हो गये। आवश्यक वस्तुएँ सस्ती होने से लोगो की प्रसन्नता बहुत कुछ बढ गई। वे सुल्तान की निरकुशता से अभ्यस्त हो चले। यद्यपि निरन्तर युद्ध होने से सरकारी कोष रिक्त हो चला था, तो भी बहुत से सार्वजनिक हित के काम हुए। विद्वानो और धार्मिक व्यक्तियो का सुल्तान आदर करता था। राजकवि अमीर खुसरो उसके राज्य का गौरव था। शेख निजामुद्दीन औलिया और शेख रुकनुद्दीन ने भी उसका सम्मान बहुत बढ़ाया। परन्तु इन सुधारो का सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि इनसे केन्द्रीय शक्ति और दृढ हो गई। साम्राज्य के बडे बडे लोगो की अव्यवस्थित आदतें निर्दयता से कुचल दी गई। किसी भी प्रकार का पक्षपात अब नही चल पाता था। सुदूर प्रान्तीय शासक सम्राट की आज्ञाओ का अक्षरश पालन करते थे। सरकार के प्रतिनिधियो को काम करने में स्वच्छन्दता नही थी। सुल्तान की इच्छाओ

की अवहेलना करना भारी अपराध समझा जाता था। इसके लिए अनेक प्रकार के दडो की व्यवस्था थी।

शासन-पद्धति की दुर्बलताएँ—अलाउद्दीन ने जिस शासन पद्धति की नीव रक्खी थी वह दुबल थी। जिस नये अनुशासन में उसने लोगो को रक्खा उससे उनमें बडा भारी असतोष पैदा हो गया। जिन हिन्दू राजाओ के उसन राज्य छीन लिये थ, वे असतुष्ट थे और अपनी स्वतन्त्रता फिर प्राप्त करने का उचित अवसर खोजते थे। नवाब लोग ठाट-बाट और विलास के जीवन स अभ्यस्त थे। वे अलाउद्दीन के कठोर नियमो स तग आ गये और मन ही मन उनसे घृणा करने लगे। सौदागर लोग बाजार की देख-भाल से असतुष्ट थे और हिन्दू उन अपमानो के कारण इस शासन से ऊब गय थे, जो रात दिन उन पर होते रहते थे। नय मुसलमान सुल्तान के विरुद्ध षड्यत्र किया करते थे। शासन प्रबन्ध के अत्यधिक केन्द्रीयकरण, दमन और गुप्तचरो की व्यवस्था के कारण साम्राज्य को बडी ठेस लग रही थी। ज्यो ज्यो सुल्तान की अवस्था बढती गई वसे ही वसे वह हठी, वहमी और उद्दड होता गया। उसकी सन्देहात्मक प्रकृति के कारण उसके बड़े बडे अमीरो की सहानुभूति जाती रही। उसने निम्न श्रणी के लोगो को सम्मानित और उत्तरदायित्व के पदो पर इसलिए नियुक्त किया, जिससे वे उसी के ऊपर निभर रह। इस वृद्धावस्था में सारा राज्य भार अपने ऊपर लेना बडी भारी भूल थी। उसन अपन पुत्रो की सुशिक्षा का प्रबन्ध नही किया और काफूर के प्रभाव में आकर उनके साथ कठोरता का व्यवहार किया। इसके अतिरिक्त काफूर छिपे छिपे स्वय शक्ति ग्रहण करने की चेष्टा कर रहा था। उसने सुल्तान को अपने पुत्र शिहाबुद्दीन को उत्तराधिकारी मनोनीत करन के लिए प्रस्तुत कर लिया। राजाज्ञा का निरादर होने लगा और सीमान्त प्रान्तों में विद्रोह प्रारम्भ हो गये। मुसलमान इतिहासकार लिखता ह "स्वाभाविक गति के अनुसार भाग्यचक्र में परिवर्तन हुआ और यमराज का दड उसे नाश करने के लिए उठा।" क्रोध से शक्तिशाली सुल्तान अपने ओठ चबाने लगा। इसके ही आँखों के सामने उसका जीवनकृत्य नष्ट होने लगा। इन कठोर परिस्थितियों में सुल्तान, जो पहले से ही बडे घातक रोग के चगुल में था, सन् १३१६ ई० में मर गया।

अलाउद्दीन का साम्राज्य
काबुल
काँगड़ा
लाहौर
मुलतान
दिपालपुर
दिल्ली
सिन्ध
चित्तौड़
चन्देरी
मालवा
प्रयाग
उज्जैन
भिलसा
धार
नर्मदा
ताप्ती
देवगिरि
गोदावरी
वारंगल
तैलंगाना
कृष्णा
द्वारसमुद्र
मदुरा
रामेश्वर
लखनौती
गौड़
बंगाल
अवध
अ र ब
सा ग र
ब गा ल
की
खा डी

अलाउद्दीन और उसका कार्य—अलाउद्दीन स्वभावत ही बडा निर्दयी, साहसी और निरकुश शासक था। उसने धार्मिक नियमो और कुरान शरीफ के राज्य-काय म हस्तक्षेप को बिलकुल पसद नही किया। राज्य-वश के लिए भी उसके मन में कोई स्थान नही था। बिना किसी भेद-भाव के वह दड देता था। वह जन्म से ही सैनिक था। उसम सेना का नेतत्व करने और राज्य प्रबन्ध करने के गुण थ। जब तक वह जीवित रहा तब तक उसने विशाल साम्राज्य को कठोर नियत्रण म रक्खा। तत्कालीन भयो को उसन भली भाँति समझ लिया था और उनसे बचन के लिए उचित व्यवस्था कर दी थी। सैनिको को उसमें दृढ विश्वास था और उसके दृष्टान्त से उनम उत्साह भर जाता था। अपने शासन प्रबन्ध को व्यवस्थित करने में बडी भारी मौलिकता और मानसिक स्फूर्ति तथा ओज का परिचय दिया। उस मध्य युग में बाजार का नियत्रण करना राजनीतिक क्षेत्र की एक बडी आश्चर्यजनक वस्तु है। उसने बडी दृढता से शासन किया और अपने पदाधिकारियो के काय का स्वय निरीक्षण किया। किसानो से कोई पदाधिकारी एक पसा तक न ले सकता था। उसने धोखे और छल का कठोरता से दमन कर दिया। वह स्वय अशिक्षित था। परन्तु धार्मिक पुरुषो और विद्वानो का आदर करता था। उनके जीवन-यापन के लिए वृत्तियाँ देता था। प्रारम्भिक मुसलमान शासको मे वही सबसे पहला व्यक्ति था जिसने उलमा की नीति का विरोध करने का साहस किया। इस्लाम की चेतनता और स्फूर्तिपूर्ण शक्ति का प्रतिनिधित्व वह अपने व्यक्तित्व मे ही करता था।

अलाउद्दीन के अशक्त उत्तराधिकारी—अलाउद्दीन की मृत्यु होते ही गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। और प्रतिद्वन्द्वी दल शक्ति प्राप्त करने के लिए झगडा करने लगे। मलिक काफूर ने एक एक करके राजवश के कुमारो को मार्ग से हटा दिया और सुल्तान का एक झूठा इच्छापत्र लोगो को दिखलाया जिसमे उमर खाँ राजगद्दी का उत्तराधिकारी मनोनीत किया गया था। उमर की अवस्था केवल ६ वर्ष की थी, अत काफूर उसका प्रतिनिधि बनकर राज-काज चलाने लगा। पहला काम उसने यह किया कि अलाउद्दीन के वशजो को नष्ट कर दिया। मुबारक खाँ को छोडकर अन्य राजकुमार या तो बदी बना लिये गये अथवा मार डाले गये। काफूर ने अपने प्रियपात्र व्यक्तियो को उच्च राजपद दिये।

पुराने राज्य के पक्षपातियों में इस नीति से असंतोष उत्पन्न हो गया। एक षड्यंत्र किया गया और सेना की सहायता से अलाउद्दीन के गुलामों ने काफूर और उसके साथियों को मार डाला। काफूर की मृत्यु के पश्चात् कुतुबुद्दीन मुबारकशाह के नाम से सन् १३१६ ई० में मुबारक खाँ गद्दी पर बैठा।

कुतुबुद्दीन मुबारकशाह—मुबारक ने बहुत अच्छी तरह राज्य करना प्रारम्भ किया। उसने राजनीतिक बंदियों को छोड़ दिया। जो भूमि लोगों से छीन ली गई थी, वह अपने स्वामियों को लौटा दी गई। व्यापार और व्यवसाय को जिन करों से बाधा पड़ रही थी, उन सबको उसने बंद कर दिया। बर्नी ने लिखा है कि अलाउद्दीन के नियम अब शिथिल पड़ गये थे। अब लोग फिर पुराने ढंग पर आ गये। परन्तु सन् १३१८ में देवगिरि के राजा हरपाल देव के विद्रोह के अतिरिक्त कोई विद्रोह नहीं हुआ। यह विद्रोह तुरन्त दबा दिया गया और विद्रोही जीवित जला दिये गये। गुजरात निवासी नीच जाति के पुरुष, खुसरो ने तिलंगाने पर आक्रमण किया। इसमें पूर्ण सफलता हुई। राय ने आत्मसमर्पण कर दिया और पाँच जिले खुसरो को दे दिये और दस्ताकार सौ हाथी, १२,००० घोड़े और असंख्य जवाहर, हीरे और अतुलित 'सोना' वार्षिक-कर देना स्वीकार कर लिया।

इस भाग्योदय से मुबारक बिगड़ गया। वह घमंडी, प्रतिहिंसक और अत्याचारी हो गया। वह बड़ा विलासी हो गया। सदाचार, शिष्टाचार तथा नीति का वह कोई ध्यान न करता था। वह सुन्दरियों के साथ सार्वजनिक स्थानों में आता था। नृत्य कुमारियों की बड़ी भारी माँग थी। सुन्दर बालक, हिजड़े और सुन्दर लड़की का मूल्य ५०० टंक से लेकर १००० और २००० टंक था। सभी प्रकार के शिष्टाचार का उस समय अंत हो गया जब सुल्तान के निम्न वर्ग के संगी-साथी गंदी और अश्लील भाषा में दरबार के सम्मानित नवाबों का अपमान करने लगे। खुसरो का प्रभाव दिन पर दिन बढ़ने लगा। उसने राजा को मारने के लिए अपने जातिवालों से षड्यंत्र किया। सुल्तान को खुसरो के दुष्ट विचारों की सूचना दी गई, परन्तु अपने शुभचिंतकों की बातों की उसने कोई चिंता नहीं की। एक बार रात को षड्यंत्रकारी राजमहल में घुस गये और सुल्तान को मार डाला। आधी रात के समय दरबार का जोड़-

तोड़ दिया और नवाबों और पदाधिकारियों से बलात् स्वीकृति लेकर सन् १३२० ई० में खुसरो गद्दी पर बैठा और उसने नासिरुद्दीन की उपाधि धारण की।

राजवंश का विप्लव—मुसलमान इतिहासकारों के मतानुसार खुसरो ने बड़ा आतंकपूर्ण राज्य करना प्रारम्भ किया। उसने राजकोष के रुपये से लोगों को मनमाना धन देना प्रारम्भ किया, जिससे वे उसके सहायक बन जायँ। इस्लाम धर्म की उपेक्षा होने लगी। खुसरो के परिवारवाले नवाबी तथा अन्य उच्च पद पाने लगे। पुराने बहुधा निकाल दिये जाते थे। इस दुर्दशा को देखकर अलाई अमीरों को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने चिरकाल से राज्य की बड़ी सेवा की थी। उनमें से एक ने खुसरो के विनाश का षड्यन्त्र किया। वह फखरुद्दीन जूना था जो बाद में मुहम्मद तुगलक के नाम से गद्दी पर बैठा था। उसने प्रत्येक बात अपने बाप गाजी मलिक को सूचित कर दी थी जो दिपालपुर के मार्ग का रक्षक था। उस वृद्ध तथा अनुभवी योद्धा को इस पर बड़ा क्रोध आया और उसने इस नापाक परवारी से बदला लेने का निश्चय किया। मुल्तान के शासक को छोड़कर, जिसको उससे व्यक्तिगत रूप से ईर्ष्या थी, अन्य सभी अमीरों ने उसका साथ दिया।

गाजी मलिक के आने का समाचार सुनकर खुसरो सतर्क हो गया और अपनी सेना व्यवस्थित करने लगा। परन्तु दिल्ली की सेना आलस्य और विलास-प्रियता से बिगड़ चुकी थी। गाजी मलिक के झंडे के नीचे लड़नेवाले सुव्यवस्थित मुसल्मानों के सामने वे बिलकुल न ठहर सके। अनुभवी सेनानायकों तथा अनुशासन की कमी के कारण खुसरो का पक्ष प्रारम्भ से ही बड़ा दुर्बल हो रहा था। जब दोनों सेनाएँ एक दूसरे के सामने आईं तो विजय की आशा में वे विविध युद्ध कलाओं से काम लेने लगे। परन्तु खुसरो की क्षीण सेना अव्यवस्थित होकर भाग गई। परवारियों का पक्ष इतना नैराश्यपूर्ण हो गया और वे इतने डर गये कि उनके शरीर में जीवन नाम-मात्र को भी न रह गया।

लूट का प्रचुर सामान लेकर विजेता सेनानायक अंतिम विजय के लिए दिल्ली की ओर चला। निराश खुसरो चारों ओर सहायता के लिए भटकता था। 'भाग्य-द्वारा तिरस्कृत अथवा जुए में हारे हुए की भांति' उसने राजकोष

का समस्त धन सिपाहियों में बाँट दिया, जिससे वे शत्रुपक्ष में न जा मिलें। परन्तु यह उदारता भी उसके कुछ काम न आई। सिपाही समझते थे कि गाजी तुगलक का पक्ष न्यायपूर्ण तथा उचित है। उन्होंने खुसरो का स्वर्ण तो स्वीकार किया परन्तु उसकी ओर से युद्ध करने का निश्चय छोड़ दिया और विजय से निराश होकर दिल्ली की सेना ने एक बार फिर घोर युद्ध किया। खुसरो युद्ध भूमि से भागा परन्तु वह पकड़ लिया गया और उसका सिर काट डाला गया। उसके सहायक ढूढ ढूढकर पकड़ लिये गये। उन पर देशद्रोह का अपराध लगाया गया और उनको कठोर दंड दिया गया। अमीरों ने मिलकर गाजी मलिक को बधाई दी और शाही महल की तालिया अर्पित कर दी। वृद्ध नायक ने राजपद का भार ग्रहण करने में संकोच किया। उसने पूछा कि क्या अलाउद्दीन के वंश का कोई राजकुमार जीवित है। अमीरों ने उत्तर दिया कि कोई नहीं और गाजी मलिक का ध्यान देश की दुर्दशा और अव्यवस्था की ओर आकर्षित किया जो राजशक्ति दुर्बल होने से हो गई थी। उन्होंने मिलकर एकस्वर से उससे राजदंड ग्रहण करने की प्रार्थना की और उसे गद्दी पर बैठाया। जिया बर्नी ने जो धार्मिक पक्षपात तथा उत्साह से इतिहास लिखता है, लिखा है—"इस्लाम का पुनर्जन्म हुआ और उसमें फिर एक नया जीवन आया। अधार्मिकता पाताल को चली गई। मनुष्य के मन सन्तुष्ट हो गये और हृदय आनन्द से पूर्ण हो गये। अल्ला का शुक्र है।" प्रजा के प्रतिनिधि के राजा होने से असंदिग्ध भाषा में इस्लाम की प्रजातन्त्रता प्रकट होती है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि शक्तिशाली की अंत में विजय होनी है। तेरहवी और चौदहवी शताब्दी के भारत के मुसलमान राज्य में यही सिद्धान्त हम प्रत्यक्ष रूप से व्यवहृत देखते हैं कि "जिसकी लाठी उसकी भैंस।"

सहायक ग्रन्थ

इलियट एण्ड डासन—हिस्ट्री आफ इण्डिया भाग ३

हनीव—खजायन-उल-फतूह (अँगरेजी अनुवाद)

ब्रिग्ज—राइज आव मुहमडन पावर इन दी ईस्ट १ भाग

के० आयंगर—साउथ इंडिया एण्ड हर मुहमडन इनवेडर्स

ईश्वरीप्रसाद—हिस्ट्री आव मिडियवल इंडिया।
टॉड—एनल्स एण्ड एटिक्विटीज आव राजस्थान (स० कुक)
हबीब—अमीर खुसरो
हौवर्थ—हिस्ट्री आव मंगोल्स भाग ३
अमीर खुसरो—तुगलकनामा

अध्याय ८

तुगलक-वंश

(१३२०–१४१२ ई०)

गयासुद्दीन तुगलक (१३२०–२५ ई०)—दिपालपुर का शासक तथा मार्ग-रक्षक गाजी मलिक गयासुद्दीन तुगलक के नाम से राजगद्दी पर बैठा। उसका जन्म साधारण परिवार में हुआ था। उसका पिता करौना तुर्क था* और उसकी माता पंजाब की जाट स्त्री थी। अपनी व्यक्तिगत योग्यता के कारण ही वह उच्च पद पर पहुँचा था। अलाउद्दीन के समय में उसने मंगोलों के युद्ध में बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया था और उन्होंने बार बार देश से निकाल बाहर किया था। जब उसने राज्य भार अपने कंधों पर लिया तो दिल्ली में बड़ी अव्यवस्था थी। गयासुद्दीन ने बड़ी चतुराई, बुद्धिमानी और दृढ़ता से व्यवस्था और राजमहत्ता की प्रतिष्ठा स्थापित की। अलाउद्दीन के सम्बन्धियों के साथ जो उसने सहृदयता का व्यवहार किया, इससे उसके हृदय की उदारता का पता लगता है। उसने उनका समुचित प्रबंध कर दिया और उनको उच्च राजपद दिये। किसी भी उचित अधिकार की उपेक्षा नहीं की गई और कोई पुरानी राजसेवा विस्मृत नहीं हुई। वंश और राजपद के स्वत्वों का आदर किया गया। बहुत से ऐसे परिवार जो इस बीच नष्ट हो गये थे, उनको फिर अपने प्राचीन महत्त्व के पद पर स्थापित किया गया।

* इब्नबतूता लिखता है कि मैंने रुकुनुद्दीन मुल्तानी से सुना था कि तुगलक सुल्तान करौना तुर्क था जो सिंध और तुर्किस्तान के बीच के पहाड़ी भागों में रहते थे। अपने बचपन में वह बड़ा निर्धन था। उसको सिंध में एक व्यापारी के यहाँ नौकरी करनी पड़ी। बाद में उसने सेना में नौकरी कर ली और केवल अपनी योग्यता के कारण उन्नति करते करते उच्च पद पर पहुँच गया।

वारगल का अभियान—साम्राज्य की व्यवस्था ठीक करके गयास ने वारगल पर चढाई करने की आज्ञा दी जो तिलगाने मे काकतीय राजाओ की राजधानी थी। मुबारक खिलजी के राज्यकाल में प्रताप रुद्रदेव द्वितीय ने अपनी शक्ति बहुत बढा ली थी। एक बहुत बडी सेना के साथ युवराज उसके साथ युद्ध करने के लिए भेजा गया। बडे घोर युद्ध के पश्चात, राजा ने आत्मसमपण कर दिया। समस्त देश दबा दिया गया। काकतीय वश का यश और महत्त्व सवदा के लिए नष्ट हो गया और अब दक्षिणी भारत मे उसकी शक्ति नष्ट हो गई।

गयास का राज्य प्रबध—गयास का राज्य प्रबध न्याय और सहनशीलता के सिद्धान्तो पर आश्रित था। भूमि-कर की पुनर्व्यवस्था हुई और सुल्तान ने इसके दोषो का दूर करने का बडा प्रयत्न किया। खुसरो द्वारा दी गई जागीरे लौटा ली गई और राज्यकोष की फिर से व्यवस्था की गई। किसानो के साथ सद्-व्यवहार होता था और यदि कोई पदाधिकारी भ्रष्टाचार मे पकडा जाता, तो उसका कठोर दड मिलता था। न्याय और पुलिस के विभाग बडी योग्यता से काय करते थे। साम्राज्य के सुदूर स्थानो में भी सुरक्षा का प्रबध था। सेना का भी प्रबध हुआ। सिपाहियो के साथ दया और उदारता का व्यवहार होता था। वे कठोर अनुशासन मे रहते थे और उनको उदारता से हथियार तथा युद्ध-सामग्री दी जाती थी।

गयास की मृत्यु—१३२४ ई० मे अपने राज्यकाल के अन्तिम दिनो म सुल्तान बगाल की ओर गया। लखनौती के राजा को उसके भाई बहादुर ने गद्दी से उतार दिया था। उसको गद्दी पर बैठाने के लिए सुल्तान वहा गया। बहादुर को दड दिया गया और प्राचीन राजाओ को अपने अपने देश दे दिये गये। जब सुल्तान दिल्ली पहुँचा, तो एक महल को गिराकर उसे मार डाला गया जो उसके पुत्र जूना ने १३२५ ई० में राजधानी मे छ मील दूर अफगानपुर में बनवाया था। लोगो ने सन्देह किया कि राजकुमार ने सुल्तान की हत्या कराई है, क्योकि इतनी शीघ्रता से महल बनवाना बिलकुल व्यथ था। इस घटना म सत्य का चाहे जितना ही अश क्या न हो, परन्तु इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण ह कि सुल्तान की मृत्यु केवल आकस्मिक नही थी। उसके पीछे एक षड्यत्र था, जिसम युवराज स्वय सम्मिलित था।

गयासुद्दीन का कार्य—गयास कोमल और उदार शासक था। उसको सादगी से प्रेम था। अपने साथियों के साथ राजा होने पर भी उसका वही व्यवहार रहा जो पहले था। वह बडा सौम्य और शान्तिप्रिय बादशाह था। अपने धर्म का वह दृढता से पालन करता था और अपने धर्मानुयायियो के हित चिन्तन में लगा रहता था। अन्य मुस्लिम राजाओ की अपेक्षा वह पवित्र जीवन व्यतीत करता था और प्रत्येक प्रकार के विलासप्रिय जीवन से घृणा करता था। जब तक वह जीवित रहा तब तक उसने अपनी प्रजा की भलाई की चेष्टा की और दृढता से शासन किया।

राज्य प्रबन्ध म उसने नया जीवन डाल दिया जो कुवल मुबारक और खुसरो के राज्य में अव्यवस्थित हो गया था। सुल्तान के राज्य प्रबन्ध के विषय म अमीर खुसरो ने कुछ प्रशसात्मक पक्तिया कही हैं जिनका अर्थ यह है —

"उसने कोई ऐसा काय नही किया जो विवेक और बुद्धिमानी से पूर्ण नही था। उसके मुकुट के नीचे एक शत महापडितो (डाक्टरो) का मस्तिष्क था।"

मुहम्मद का व्यक्तित्व—गयासुद्दीन तुगलक के पश्चात् सन् १३२५ ई० उसका पुत्र राजकुमार जूना मुहम्मद तुगलक के नाम से राज्य सिंहासन पर बैठा। वह निस्सदेह ही मध्य युग के राजाओ म सबसे अधिक योग्य था। मुसलमानो की विजय से लेकर तब तक जितने भी राजा दिल्ली की गद्दी पर बैठे थे उनमें यह सबसे अधिक विद्वान् और सुसस्कृत था। उसकी धारणा-शक्ति बडी आश्चर्य-जनक थी। उसकी बुद्धि बडी तीक्ष्ण थी और सभी प्रकार के ज्ञानो को सचित करने की उसमें अपूर्व योग्यता थी। उसकी ज्ञान-बहुलता को देखकर उसके समसामयिक व्यक्ति बडा आश्चर्य करते थे। वह कला-प्रेमी सुसस्कृत विद्वान और उच्च कोटि का कवि था। तर्क, खगोल, गणित, दर्शन और भौतिक विज्ञानो में उसको समान अधिकार था। रचना तथा सुलेख में उसकी समकक्षता का कोई दूसरा व्यक्ति न था। उसको फारसी की बहुत सी कविताएँ कठ थी जिनका प्रयोग वह अपनी रचनाओ और वक्तृताओ में प्रचुरता के साथ करता था। उपमाओ और रूपको के प्रयोग में वह कुशल था। उसकी साहित्यिक कृतियाँ फारसी की उत्तम उत्तम रचनाओ से सपृक्त रहती थी। बडे कुशल साहित्य शास्त्री

तुगलकशाह का मकबरा
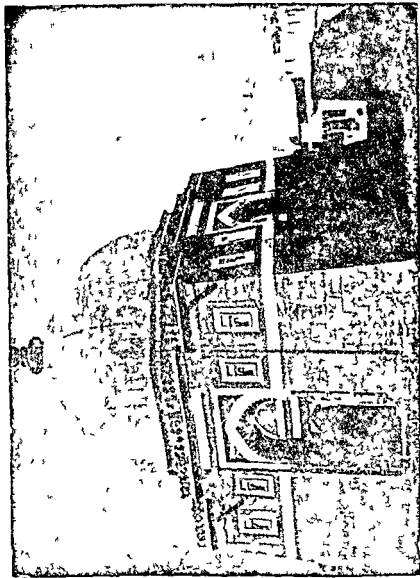
भी उसकी कल्पना की ज्योति, रुचि परिष्कार और अभिव्यजना की सूक्ष्मता तथा गहराई को नही पा सकते थे। देशी बोलियो पर उसका विशेष अधिकार था। एरिस्टौटिल (अरस्तू) के तर्क और दशन का वह पडित था। धर्म-शास्त्री तथा साहित्य शास्त्री उससे शास्त्रार्थ करने से डरते थे। बर्नी ने लिखा है कि वह बडे उच्च कोटि का विद्वान् था, ईश्वर की सृष्टि की वह बडी अद्भुत कृति थी। उसकी योग्यता देखकर स्वय एरिस्टौटिल और आसफ[1] आश्चयचकित हो गये होते। वह अत्यन्त उदार था। याचको को वह जो दान देता था, उसकी सभी समसामयिक लेखको ने प्रशसा की है। वे उसके द्वार को समय असमय घेरे रहते थे। वह धमनिष्ठ था और कुरान के नियमो का दृढता के साथ पालन करता था। परन्तु अन्य पूववर्त्ती राजाओ की भाति उसमे धार्मिक कट्टरता नही थी। हिंदुओ के प्रति उदारता दिखाने म और तत्कालीन सती-प्रथा बद करने आदि सामाजिक सुधार करने की चेष्टा से उसकी उदारता का पता लगता है।

अफ्रीका का यात्री इब्नबतूता १३३३ ई० में भारत आया था। उसने इन शब्दों में सुल्तान का वणन किया है।

"मुहम्मद इस प्रकार का व्यक्ति है जो पुरस्कार देने और रक्तपात करने दोनो में विशष रुचि रखता ह। उसके द्वार पर हम प्रतिक्षण किसी दरिद्र को धनी होते और किसी मित्र को प्राणदड पाते देख सकते हैं। प्रजा में एक ओर उसके उदार और वीर कार्यों की प्रशसा है और दूसरी ओर उसके निदय और उद्दड कार्यों की निंदा। इतना होने पर भी वह बडा विनम्र है और लोगो में समानता रखना चाहता है। धार्मिक उत्सव उसको प्रिय ह। नमाज के विषय म तथा उसकी उपेक्षा पर दड देने में वह बडा कठोर ह। वह ऐसे राजाओ में ह जो बडे भाग्यशील हैं और जिनकी सफलता साधारण सीमाओ को पार कर जाती है परन्तु उसका प्रधान गुण अत्यधिक उदारता है। उसकी उदारता की आश्चयपूण घटनाओ का वणन करूँगा जिनकी समकक्षता अन्य किसी राजा की उदारता से न की जा सकती।"

---

१ तारीख, फीरोजशाही, फारसी पृष्ठ ४६१

स्थूल दृष्टि से देखने पर सुल्तान में आश्चर्यपूर्ण विरोधी बातों का समन्वय प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। तत्कालीन लेखकों ने उस पर जो रक्तपिपासु और पागल होने के अपराध लगाये, उनका कोई प्रमाण नहीं है। रक्तपिपासा का अपराध मौलवियों और मुल्लाओं ने लगाया था, जिनकी उपेक्षा सुल्तान सार्वजनिक रूप से करता था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मध्ययुग के अन्य राजाओं की भांति उसको भी कभी कभी बड़ा क्रोध आता था और जो उसकी इच्छा के विरुद्ध कार्य करते थे उनको वह बिना किसी भेद भाव के कठोर तथा पाशविक दंड भी देता था। परन्तु इस कारण उसको निर्दयी और क्रूर कहना और यह बताना कि मनुष्य के रक्तपात से उसको प्रसन्नता होती थी, बिल्कुल झूठ है। यदि हम उन सब मामलों पर विचार करें जिनके लिए सुल्तान उत्पीडक तथा नृशंस और मनुष्यों का वध करनेवाला कहा जाता है तो हम देखेंगे कि मनुष्यों की यह सर्वसामान्य धारणा बिल्कुल अप्रमाणिक है कि मनुष्य जाति को नाश करने में उसको आनन्द आता था और वह मनुष्यों का आखेट करता था। सच बात तो यह है कि सुल्तान का स्वभाव हठी था और साथ ही राज्य प्रबन्ध के विषय में उसके बड़े उत्तम और मौलिक विचार थे। समय से पहले होने के कारण जनता ने उनके महत्त्व को नहीं समझा और जब उसकी इच्छाओं के अनुसार लोगों ने कार्य नहीं किया तो उसकी क्रोधाग्नि विकराल रूप से भभक उठी। जिस प्रकार नवीन सुधारों और प्रयोगों से सार्वजनिक उदासीनता उत्पन्न हो गई थी उसी प्रकार लोगों की उदासीनता देखकर वह अधीर हो उठता था।

दोआब का कर—सुल्तान का पहला शासन सम्बन्धी सुधार दोआब की कर-वृद्धि थी। बर्नी ने लिखा है कि इससे देश का नाश और लोगों का पतन हुआ। एक दूसरे इतिहासकार ने कुछ नियन्त्रण के साथ लिखा है कि जीवन की आवश्यक वस्तुओं पर जो कर लगाया जाता था और वह जिस कठोरता से प्राप्त किया जाता था, उसे सहन करना व्यवसायियों की शक्ति के बाहर था। बर्नी के अनुसार दोआब के कर लोगों की राय में कहीं अधिक बढ़ गये थे और कुछ दमनकारी अब्वाबों (दंड कर) का भी आविष्कार हुआ जिन्होंने प्रजा की कमर तोड़ दी और उसे अत्यन्त दीन और निर्धन कर दिया। इस अधिक कर

से लोगो को जो कष्ट पहुँचा उसका वणन सब इतिहासकारा ने किया ह। वरन् प्रान्त के रहनेवाले बर्नी को भी इस कर-वद्धि से अवश्य हानि पहुँची थी। इसीलिए उसने सुल्तान की निदा की है। उसके इस कथन में बडी अत्युक्ति है कि दोआब के लोगो की दयनीय और विनाशकारी दशा को देखकर सुदूर प्राता की प्रजा ने विद्राह प्रारम्भ कर दिया और स्वतन हा गये। दुभाग्यवश यह सुधार उस समय हुआ था जब दोआब में बडा भारी अकाल पड रहा था। इस कर के कारण लोगा का कष्ट बहुत कुछ वढ गया। परन्तु तो भी हम सुल्तान को अपराध से एकदम मुक्त नही कर सकते, क्योकि उसके पदाधिकारी बढी हुई दर से कर लगाते रहे। अकाल ने उनकी कठोरता मे कोई अन्तर नही किया। बहुत समय पीछे उसने कुएँ खुदवाने और अकालपीडित देश म खेती की उन्नति के लिए किसाना का ऋण दने की आज्ञा दी। उपचार बडी देर से हुआ। अकालपीडित प्रजा अपना धय खो चुकी थी। चिरकालीन दुख के कारण जनता निराश हो गई और सुल्तान की सुधार-योजना का वह कुछ लाभ न उठा सकी। मुहम्मद तुगलक को छाडकर अय किसी राजा के सुधारा की उदार योजनाओ को दुभाग्य ने इतनी निममता स नही कुचला।

राजधानी का स्थानान्तर (१३२६-२७)—दूसरा सुधार, जिससे लोगा को अत्यधिक कष्ट पहुँचा, देवगिरि राजधानी ले जाना था जिसका नाम उसाने दौलताबाद रख दिया। साम्राज्य बहुत बडा हो गया था। उत्तर की ओर उसने दाआब, पजाब के मदान और लाहौर तथा उसके समीपस्थ सिध नदी से लेकर गुजरात के समुद्रतट तक का मैदान सम्मिलित था। पूव की आर उसका विस्तार बगाल तक था और इसके बीच में मालवा, उज्जन, महोबा और धारा राज्य थे। दक्षिण का दमन हो चुका था और उसके प्रधान राजाओ ने दिल्ली[१] की अधीनता

१ मुहम्मद तुगलक के गद्दी पर बैठने के समय बर्नी ने उसके राज्य में निम्न प्रान्त बताये ह—(१) दिल्ली, (२) गुजरात, (३) मालवा, (४) देवगिरि, (५) तेलग, (६) कम्पिल, (७) धोर (द्वारसमुद्र) समन्दर, (८) माबर, (९) तिरहुत, (१०) लखनौती, (११) सतगाव, (१२) सुनारगाँव—बर्नी, तारीख फीरोजशाही, फारसी पष्ठ ४६८।

न्यूरुढ दृष्टि से देखने पर सुल्तान में आश्चर्यपूर्ण विरोधी बातों का समन्वय प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। तत्कालीन लेखकों ने उस पर जो रक्तपिपासु और पागल होने के अपराध लगाये, उनका कोई प्रमाण नहीं है। रक्तपिपासा का अपराध मौलवियों और मुल्लाओं ने लगाया था, जिनकी उपेक्षा सुल्तान सार्वजनिक रूप से करता था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मध्ययुग के अन्य राजाओं की भाँति उसको भी कभी कभी बड़ा क्रोध आता था और जो उसकी इच्छा के विरुद्ध कार्य करते थे उनको वह बिना किसी भेद-भाव के कठोर तथा पाशविक दंड भी देता था। परन्तु इस कारण उसको निर्दयी और क्रूर कहना और यह बताना कि मनुष्य के रक्तपान से उसको प्रसन्नता होती थी, बिल्कुल झूठ है। यदि हम उन सब मामलों पर विचार करें जिनके लिए सुल्तान उन्मत्त तथा नृशंस और मनुष्यों का वध करनेवाला कहा जाता है तो हम देखेंगे कि मनुष्यों की यह सर्वसामान्य धारणा बिलकुल अप्रमाणिक है कि मनुष्य जाति का नाश करने में उसको आनन्द आता था और वह मनुष्यों का आखेट करता था। सच बात तो यह है कि सुल्तान का स्वभाव हठी था और साथ ही राज्य प्रबन्ध के विषय में उसके बड़े उत्तम और मौलिक विचार थे। समय से पहले होने के कारण जनता ने उनके महत्त्व को नहीं समझा और जब उसकी इच्छाओं के अनुसार लोगों ने कार्य नहीं किया तो उसकी क्रोधाग्नि विकराल रूप से भभक उठी। जिस प्रकार नवीन सुधारों और प्रयोगों से सार्वजनिक उदासीनता उत्पन्न हो गई थी उसी प्रकार लोगों की उदासीनता देखकर वह अधीर हो उठता था।

दोआब का कर—सुल्तान का पहला शासन सम्बन्धी सुधार दोआब की कर-वृद्धि थी। बर्नी ने लिखा है कि इससे देश का नाश और लोगों का पतन हुआ। एक दूसरे इतिहासकार ने कुछ नियन्त्रण के साथ लिखा है कि जीवन की आवश्यक वस्तुओं पर जो कर लगाया जाता था और वह जिस कठोरता से प्राप्त किया जाता था, उसे सहन करना व्यवसायियों की शक्ति के बाहर था। बर्नी के अनुसार दोआब के कर लोगों की राय में कहीं अधिक बढ़ गये थे और कुछ दमनकारी अब्वाबों (दंड कर) का भी आविष्कार हुआ जिन्होंने प्रजा की कमर तोड़ दी और उसे अत्यन्त दीन और निर्धन कर दिया। इस आर्थिक

से लोगों को जो कष्ट पहुँचा उसका वर्णन सब इतिहासकारों ने किया है। वरन् प्रान्त के रहनेवाले बर्नी को भी इस कर-वृद्धि से अवश्य हानि पहुँची थी। इसीलिए उसने सुल्तान की निन्दा की है। उसके इस कथन में बड़ी अत्युक्ति है कि दोआब के लोगों की दयनीय और विनाशकारी दशा को देखकर सुदूर प्रान्तों की प्रजा ने विद्रोह प्रारम्भ कर दिया और स्वतन्त्र हो गये। दुर्भाग्यवश यह सुधार उस समय हुआ था जब दोआब में बड़ा भारी अकाल पड़ रहा था। इस कर के कारण लोगों का कष्ट बहुत कुछ बढ़ गया। परन्तु तो भी हम सुल्तान को अपराध से एकदम मुक्त नहीं कर सकते, क्योंकि उसके पदाधिकारी बढ़ी हुई दर से कर लगाते रहे। अकाल ने उनकी कठोरता में कोई अन्तर नहीं किया। बहुत समय पीछे उसने कुएँ खुदवाने और अकालपीडित देश में खेती की उन्नति के लिए किसानों को ऋण देने की आज्ञा दी। उपचार बड़ी देर में हुआ। अकालपीडित प्रजा अपना धैर्य खो चुकी थी। चिरकालीन दुःख के कारण जनता निराश हो गई और सुल्तान की सुधार-योजना का वह कुछ लाभ न उठा सकी। मुहम्मद तुगलक को छोड़कर अन्य किसी राजा के सुधारों की उदार योजनाओं को दुर्भाग्य ने इतनी निर्ममता से नहीं कुचला।

राजधानी का स्थानान्तर (१३२६-२७)—दूसरा सुधार, जिससे लोगों को अत्यधिक कष्ट पहुँचा, देवगिरि राजधानी ले जाना था जिसका नाम उसने दौलताबाद रख दिया। साम्राज्य बहुत बड़ा हो गया था। उत्तर की ओर उसने दोआब, पंजाब के मैदान और लाहौर तथा उसके समीपस्थ सिंध नदी से लेकर गुजरात के समुद्रतट तक का मैदान सम्मिलित था। पूर्व की ओर उसका विस्तार बंगाल तक था और इसके बीच में मालवा, उज्जैन, महोबा और धारा राज्य थे। दक्षिण का दमन हो चुका था और उसके प्रधान राजाओं ने दिल्ली[1] की अधीनता

१ मुहम्मद तुगलक के गद्दी पर बैठने के समय बर्नी ने उसके राज्य में निम्न प्रान्त बताये हैं—(१) दिल्ली, (२) गुजरात, (३) मालवा, (४) देवगिरि, (५) तेलंग, (६) कम्पिल, (७) धोर (द्वारसमुद्र) समन्दर, (८) माबर, (९) तिरहुत, (१०) लखनौती, (११) सतगाव, (१२) सुनारगाँव—बर्नी, तारीख फीरोजशाही, फारसी पृष्ठ ४६८।

स्वीकार कर ली थी। अत दिल्ली को अपनी राजधानी बनाये रखने की हानिया पर पूणतया विचार करके उसने दौलताबाद को राजधानी बनाने का निश्चय किया। इसकी स्थिति साम्राज्य के केन्द्र में थी और मगोलो के माग से दूर तथा सुरक्षित थी। वे प्राय दिल्ली के समीपस्थ प्रान्त में आया करते थे। उनके कारण धन, जन बडी अरक्षित अवस्था में रहता था। इससे स्पष्ट ह कि इस परिवतन का कारण क्रूर तथा निरकुश शासक की मनोतरग नही थी। उपर्युक्त से स्पष्ट है कि सुरक्षा और सुव्यवस्था के ध्यान से ही प्रेरणा पाकर सुल्तान ने यह महान् योजना बनाई थी। अपने अधीन देशो पर वह यातायात के उन साधनो से ही शासन करना चाहता था जो उत्तर और दक्षिण में उपस्थित थे।[१]

यदि सुल्तान केवल अपने राज्य-प्रबध के यत्र को ही देवगिरि ले जाता तो राजधानी परिवतन का काय बिना किसी कठिनता के हो जाता, परन्तु दिल्ली के स्त्री, पुरुषो, बच्चो सबको अपने सामान के साथ दौलताबाद जाने की आज्ञा देना बडी भीषण भूल थी। यात्रा में सब प्रकार की सुविधाएँ कर दी गइ। दिल्ली से दौलताबाद को सडक बना दी गई। यात्रियो को भोजन और मकान प्रचुरता से दिया जाता था। जिनके पास अपने भोजन को साधन नही था, उनको राज्य की ओर से भोजन मिलता था। "दौलताबाद जानेवाला के प्रति सुल्तान बडी उदारता दिखाता था। चलत समय और पहुँचते दोनो समय उनका विशेष सत्कार होता था।"[२] परन्तु यह पक्षपात और उदारता भी कुछ काम न आई। जो लोग अनेक वर्षो से पिता-पितामह आदि के समय से दिल्ली मे रह

---

१ इब्नबतूता का यह कथन कि दिल्ली के लोग अनाम पत्र बादशाह के दीवान में डालते थे जिनमें गालिया भरी रहती थी और जिनसे क्रोधित होकर उसने राजधानी बदलने का आदेश दिया था, केवल कपोल कल्पना पर आश्रित है क्योकि जब १३२६-२७ ई० म राजधानी का स्थानान्तर हुआ था तो वह भारत में उपस्थित नही था।

२ बर्नी, तारीख फीरोजशाही, पृ० ४७४, इलियट, भाग ३ पृ० २३९।

रहे थे और जिनको अनेक प्रिय सम्बन्धो के कारण नगर से प्रेम हो रहा था, उसे सवदा के लिए छोडने में उनको बडी मार्मिक पीडा हुई। ७०० मील की लम्बी यात्रा के कारण लोगो को अनेक कष्ट हुए। थकान तथा गह प्रेम से पीडित बहुत से लाग माग में ही मर गये और जो लोग अपनी यात्रा पूरी कर निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच भी गये, उनको अपरिचित स्थान में पहुँचकर देशनिष्कासन-सा प्रतीत हुआ। इस निराशा में उनके हाथ-पर सब शिथिल हो गये। बर्नी ने लिखा ह कि उस धमहीन देश में अनेको मुसलमानो ने निराशा में प्राण दे दिये। केवल कुछ ही लोग अपने अपने घरो को जीवित लौटे।[१]

इब्नबतूता ने लिखा है कि राजाज्ञा के कारण दिल्ली में जब तलाशी हुई कि कोई निवासी अब भी कही छिपा तो नही है, तो दो मनुष्य मिले। एक लँगडा था और दूसरा अधा। वे खदेडकर दौलताबाद पहुँचाये गये। यह बात केवल बाजार की गप्पो पर ही आश्रित ह और सुल्तान को बदनाम करने के लिए ही गढी गई प्रतीत होती ह। यह सच है कि सुल्तान की आज्ञाओ का पालन बडी हृदयहीनता से हुआ परन्तु यह कहना कि उसका उद्देश्य ही लोगो को अकारण सताना था, उस पर व्यथ का दोषारोपण करना ह। वरन् इसके विपरीत उसको इस बात का श्रेय देना चाहिए कि जब उसने अपनी योजना असफल होते देखी, तो उसने लोगा को दिल्ली लौट जाने की आज्ञा दी और लौटती यात्रा में उनके साथ उदारता का व्यवहार किया और उनकी क्षति की पूर्ति की। परन्तु अब दिल्ली वीरान थी। चारो आर से ला लाकर सुल्तान ने वहाँ

---

१ बर्नी, तारीख फीरोजशाही, पृ० ४७४, इलियट भाग ३ पृ० २३९।

जिया बर्नी ने लिखा ह—"नगर का विनाश इतना अधिक हुआ कि उसके भवना में कोई कुत्ता और बिल्ली भी न रही।" मध्ययुग के पूर्वी देशो के लेखक के इस प्रकार के कथन का शाब्दिक अथ नही लेना चाहिए। भारतीय वणनात्मक शली से अनभिज्ञ यूरोपीय विद्वानो ने इस प्रकार की भूलें की ह। डा० स्मिथ ने इब्नबतूता के उपर्युक्त कथन को बिना किसी विवेचन के स्वीकार कर लिया ह—(आक्सफाड हिस्ट्री आफ इडिया पृ० २३९)

विद्वान, सौदागर, जमीदार आदि फिर बसायें परन्तु इस परिवर्तित परिस्थिति मे अपने चित्त का समाधान कर लेना उनके लिए कठिन था। पुरानी समृद्धि फिर नहीं लौटी। दिल्ली का ठाट-बाट एकदम विदा हो गया। १३३४ ई० में अफ्रीका का यात्री भारत में आया था। कुछ स्थानो पर उसका नगर उस समय भी उजाड मिला।

जैसा लेनपूल ने लिखा है दौलताबाद व्यय परिश्रम का ही स्मारक रह गया। स्थानान्तर का प्रयोग असफल हुआ और उसका बडा विनाशकारी परिणाम हुआ। यदि यह प्रयोग सफल भी हो गया होता तो भी इस बात में बडा सन्देह है कि इससे साम्राज्य के विभिन्न भागो पर अधिक नियत्रण हो गया होता। उसने इस बात पर विचार नही किया कि दौलताबाद साम्राज्य की उत्तरी सीमा से बहुत दूर है जिस पर बडी कठोर दृष्टि रखने की आवश्यकता है। उसने इस अनुभव से लाभ नहीं उठाया कि हिन्दुओ के विद्रोह और मगोलो के आक्रमणो से उसका उत्तरी भारत का राज्य कितना अरक्षित था। यदि कोई ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई होती कि एक ओर मध्य एशिया के इन भ्रमणशील मगोलो ने आक्रमण कर दिया होता और दूसरी ओर अर्द्ध पराजित दक्षिण रहता तो देश की अव्यवस्थित दशा को सुधारना उसके लिए बडा कठिन काम हो गया होता।

प्रतीक मुद्रा (१३३०)—मुहम्मद तुगलक को जो अर्थ-दक्ष कहा गया है वह उचित ही है। उसने अपने राज्य के प्रारम्भिक काल में ही मुद्राओ की पुनर्व्यवस्था की और उसमें सुधार किये। बहुमूल्य धातुओ का मूल्य उसने निर्धारित किया और ऐसे सिक्के निकाले जिससे विनिमय में सहायता मिले और आदान-प्रदान में सुविधा हो, परन्तु इससे भी कही अधिक मौलिक साहस का काम प्रतीक-मुद्रा का चलाना था। इतिहासकारो ने इस बात को जानने का प्रयत्न किया है कि सुल्तान ने किस उद्देश्य से यह नवीन प्रयोग किया। कहा जाता है कि कोष रिक्त हो जाने के कारण सुल्तान ने प्रतीक मुद्रा का प्रयोग किया। इसमें कोई सन्देह नही कि सुल्तान की अत्यधिक उदारता, राजधानी परिवर्तन के अपार व्यय तथा विद्रोह शान्त करने के लिए अभियान भेजने के कारण कोष को बहुत कुछ क्षति पहुँची थी। परन्तु इसके अतिरिक्त इस प्रतीक-मुद्रा का

चलाने के और भी कारण थे जिनको बताना आवश्यक है। दोआब की कर-व्यवस्था असफल हो चुकी थी। राज्य के सर्वाधिक उपजाऊ भागो मे दुर्भिक्ष था, कृषि की दशा अच्छी न होने के कारण राज्य के भूमि-कर में अवश्य कमी हो गई होगी। परन्तु हमको यह नही समझना चाहिए कि सुल्तान का कोष रिक्त हो गया था, क्योकि बाद में नये सिक्को के बदले उसने सोने के सिक्के दिये और आश्चर्यपूर्ण सफलता के साथ बडी कठिन परिस्थिति को सुलझाया। शासन-सुधार और देश-विजय की उसकी बडी भारी योजनाएँ थी। उसी के लिए वह अपने साधन और शक्ति बढा रहा था। उसकी महत्त्वाकांक्षा की प्रवृत्ति के लिए यह अनुकूल था। एक कारण और भी था। सुल्तान बडा मेधावी व्यक्ति था, उसमें मौलिकता थी और नवीन प्रयोगो मे उसको रुचि थी। चीन और फारस के राजाओ की भाँति उसने अपनी प्रजा को बिना धोखा दिये और उसके साथ बिना छल किये अपने प्रयोग करने का निश्चय किया। उसकी मुद्राओ की कथाओ से यही बात सिद्ध होती है। ताँबे की मुद्राएँ प्रचलित की गई और वैधानिक घोषित कर दी गई। परन्तु वह इसकी व्यवस्था न कर सका कि ये सिक्के केवल राज्य ही से निकले। समसामयिक इतिहासकार बर्नी लिखता है कि इसका परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक हिन्दू का घर टकसाल बन गया और विभिन्न प्रान्तो के हिन्दुओ ने लाखो और करोडो मुद्राएँ बना ली। कट्टर मुसलमान तथा धार्मिक पक्षपात होने के कारण वह अपने सहधर्मियो को इस दोष से मुक्त कर देता है। वह लिखता है कि गैर टकसाली सिक्के स्वतन्त्रता से बनाये जा रहे थे। हिन्दू और मुसलमान उसमे समान रूप से भाग ले रहे थे। नई मुद्राओ में ही लोग कर देते थे और उन्ही से हथियार, कपडे तथा अन्य विलास की सामग्री क्रय करते थे। गावो के मुखियाओ, सौदागरो और भूस्वामियो ने अपना सोना छिपा दिया और ताँबे के प्रचुर अवैध सिक्के बना डाले और उन्ही से अपना व्यय करने लगे। परिणाम यह हुआ कि राज्य की बडी भारी क्षति हुई और लोगो ने व्यक्तिगत रूप से बडा लाभ उठाना प्रारम्भ कर दिया। राज्य को सदैव हानि उठानी पडती थी। असली और नकली मुद्राओ में भेद समझना असम्भव था। सोने और चादी का बडा भारी अभाव हो गया। व्यापार रुक गया और सारे कार्य बद हो गये। राज्य भर मे अव्यवस्था फैल गई। सौदागरो ने नये सिक्के लेना

अस्वीकार कर दिया और वे कंकड पत्थर की भांति बेकार हो गये।[1] जब सुल्तान ने अपनी योजना को असफल होते हुए देखा, तो उसने पुरानी आज्ञा विलेखित कर दी और लोगों को इस बात की अनुमति द दी कि वे तांबे के सिक्का के बदले राजकोष से चादी सोने के सिक्के ले जायँ। सहस्रों पुरुष इन सिक्कों को राजकोष में लाये और बदले में सोन चादी के सिक्के मांगने लगे। सुल्तान तो अपनी प्रजा को कोई धोखा दना नही चाहता था, परन्तु उसकी प्रजा ने उसके साथ छल किया और इन मांगों के कारण कोष रिक्त हो गया। सब सांकेतिक मुद्राएँ लौटा ली गइ। इसके तीन वर्ष पश्चात ही इब्नबतूता दिल्ली पहुँचा। इस सम्बन्ध में उसका मौन रहना इस बात का प्रमाण ह कि इस नीति का कोई भीषण दुष्परिणाम नही हुआ और शीघ्र ही लोग सांकेतिक मुद्रा का बात भूल गये।

चौदहवी शताब्दी के भारत म सांकेतिक मुद्रा की योजना का असफल होना अवश्यभावी था। साधारण प्रजा के लिए तांबा तांबा ही था। सुल्तान के उदार तथा प्रजा हितकारी उद्देश्यों से उसका कोई सम्बन्ध न था। सुल्तान ने प्रजा से आवश्यकता से अधिक आशा कर रक्खी थी। उसने प्रजा के परम्परा-प्रेम का कोई ध्यान न रक्खा। आजकल भी लोग विवश होकर ही प्रतीक-मुद्रा स्वीकार करते ह। सुविधापूर्ण परिचारण माध्यम की दृष्टि से व उसका सहर्ष उपयोग नही करते। टकसाल पर राज्य का एकाधिकार नही था। सुल्तान इस बात का प्रबन्ध नहीं कर सका कि अवैध मुद्राएँ न बन सकें ऐलफिन्स्टन के इस कथन का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं ह कि सुल्तान की मुद्रा योजना इसलिए असफल हो गई कि उसका कोष रिक्त हो गया था और उसके राज्य की स्थिरता अनिश्चित थी, क्योंकि उसने तुरन्त ही सब तांबे के सिक्के लौटा लिये और उसकी साख जमी रही। श्री० गार्डनर ब्राउन ने इस मुद्रा की गडबडी का कारण यह बतलाया है कि चौदहवी शताब्दी में समार भर म ही चादी का अभाव था। गद्दी पर बैठने के पश्चात् मुहम्मद तुगलक ने शीघ्र ही सोने और चादी के टक के स्थान पर जो अब तक प्रचलित थे। २०० ग्रेन का स्वर्ण दीनार चलाया और १४० ग्रेन की चांदी की अदली चलाई।

---

१ बर्नी—तारीख फीरोजशाही, पृ० ४८६
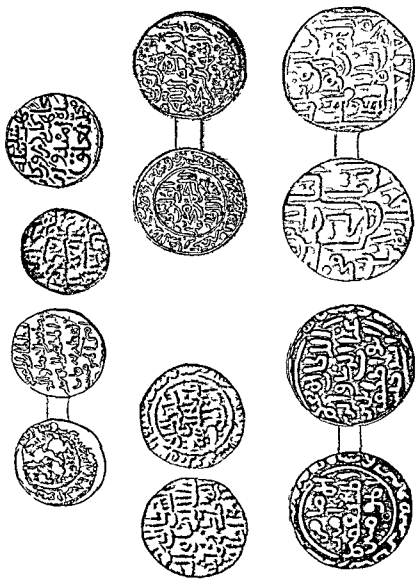
दिल्ली सुल्तानो के सिक्के

इन टको की प्रत्येक मुद्रा का भार १७५ ग्रेन था। स्वण दीनार और अदली के प्रयाग से स्पष्ट है कि देश मे सोने की तो प्रचुरता थी परतु चाँदी का अपेक्षाकृत अभाव था। दक्षिण से काफूर जो लट का माल लाया था, उसमें सोना और जवाहर ही अधिक थे। इस कारण सोने के मूल्य में ह्रास हो गया था। चादी का अभाव सुल्तान मुहम्मद तुगलक की मत्यु के पश्चात् भी चलता रहा। फीरोज के समय की केवल तीन चादी की मुद्राएँ मिली ह। एडवड टोमस ने मुहम्मद बिन फीराज की दा मुद्राओ, मुबारक शाह की एक मुद्रा और मुहम्मद बिन फरीद की एक मुद्रा का वणन किया है। लोदी वश के आलमशाह और उसके उत्तराधिकारियो के एक भी सिक्के का उसने वणन नही किया। इसके पश्चात् हम सोलहवी शताब्दी के मध्य में ही अनेक चादी की मुद्राएँ पाते ह, जो शेरशाह सूरी और उसके उत्तराधिकारियो की टकसाला से निकले थे। इस योजना की असफलता के विपय में प्रसिद्ध मुद्राविन एडवड टोमस का कथन सत्य ही ह कि, "कोई ऐसा यत्र उस समय नही था जिससे राज-मुद्राओ की आकृति तथा साधारण रूप से कुशल कलाकार की कृति का अतर स्पष्ट हो जाता। जिस प्रकार चीन के कागज के नोटो की अनकृति को रोकने की सावधानी रक्खी गई थी, उस प्रकार इन ताबे के सिक्को की प्रमाणिकता की रक्षा का कोई प्रयत्न नही किया गया। जनता ने अत्यधिक परिमाण में सिक्के बनाये। इस पर भी प्रतिबध की काई व्यवस्थित योजना नही हुई।"

राज्य प्रबध की उदारता—मुहम्मद तुगलक की नीति कट्टर मुसलमानो के विचारो और उनकी आकाक्षाओ के बिलकुल विपरीत थी। चार वैध करा के अतिरिक्त उसने अन्य अनेक कर लगाये जिनकी कुरानशरीफ में अनुमति नही थी।[१] उसने सब पूववर्त्ती सुल्तानो की अपेक्षा हिदुओ की धार्मिक भावनाओ का अधिक ध्यान रक्खा। अपने चचेरे भाई दुबल हृदय फीरोज की भाँति उसमें धार्मिक कट्टरता और असहिष्णुता नही थी। सुसस्कृति के कारण उसका दृष्टिकोण विस्तत हो गया था। दार्शनिको और तकशास्त्रियो से बातचीत करते

१ शरियत के अनुसार चार वध कर य ह—खिराज, जकात, जजिया और खम्स।

-करने उसमें वह सहिष्णुता उत्पन्न हो गई थी, जिसके लिए अकबर की इतनी अधिक प्रशंसा की जाती है। कुछ हिंदुओं को उसने अपने राज्य में ऊँचे ऊँचे पदों पर नियुक्त किया था।[१] अकबर महान् की भाँति उसने भी सती की भीषण प्रथा को बन्द करने का प्रयत्न किया था। उसने स्वतंत्र राजपूत राज्यों को नहीं छेड़ा, क्योंकि उसका विश्वास था कि चित्तौड़ तथा रणथम्भौर ऐसे स्वतंत्र राज्यों पर स्थायी अधिकार रखना असम्भव है। इस नीति को मौलवी और मुल्लाओं ने बिलकुल पसंद नहीं किया। लूट के माल का ⅘ भाग अपने लिए लेने और शेष भाग सिपाहियों के लिए छोड़ने की अलाउद्दीन की नीति का वह अनुसरण करता रहा। परन्तु जब न्याय पर एकाधिकार बनाये रखने से उसने उलमाओं को वंचित किया तो वे सुल्तान से बड़े रुष्ट हो गये। न्याय करने की उसकी इतनी प्रबल इच्छा रहती थी, कि वह न्याय विभाग के कार्य का स्वयं निरीक्षण करता था। यदि कोई न्यायालय उसी को दोषी ठहराता तो वह प्रसन्नता से उसके निर्णय को स्वीकार कर लेता था।

अपील करने का सर्वोच्च न्यायाधिकरण वह स्वयं था। यदि उसका निर्णय मुफ्तियों के निर्णय से भिन्न होता तो वह अपने विचारों को ही मान्य रखता। कट्टरता को सीमित रखने के लिए, उसने राज्य के प्रमुख पदाधिकारियों को न्याय के कुछ अधिकार दे दिये थे यद्यपि वे काजी, मुफ्ती तथा धार्मिक विधानवेत्ता न थे। उसका न्याय भी बड़ा कठोर होता था। यदि उलमा और मौलवी राज विद्रोह, षडयंत्र अथवा राजधनापहार में पकड़े जाते, तो वह निस्संकोच होकर उनको दंड देता था। नियम के अनुसार जो कुछ दंड व्यवस्था होती थी, उसमें उच्च वंश में जन्म लेने, उच्च राजपद पर होने अथवा मौलवी मुल्ला होने किसी भी प्रकार से रक्षा नहीं होती थी। इसी कारण इब्नबतूता ने, जो अनेक देशों में भ्रमण कर चुका था और जो मनुष्य की कृति और प्रकृति दोनों से भली भाँति परिचित हो चुका था, अपने देश में पहुँचकर भी जब सुल्तान के

---

१ इब्नबतूता ने एक रतन नाम के हिन्दू का वर्णन किया है, जो राज-सेवा में नियुक्त था। अफ्रीका के यात्री ने अर्थशास्त्र में उसके कौशल की बड़ी प्रशंसा की है। इब्नबतूता, पेरिस संस्करण भाग ३ पृ० १०५-१०६

क्रोध का भी उसे भय न था, इन शब्दों में सुल्तान के विषय में अपना निर्णय दिया है—"यह सुल्तान सबसे अधिक विनम्र है और सबसे अधिक न्यायप्रिय है।"

सुल्तान ने राज-कर्मचारियों की भी सुव्यवस्था की। देश में योग्य व्यक्तियों की कमी होने के कारण उसने विदेशियों को राज-सेवा में नियुक्त किया और उनको बहुमूल्यवान् पुरस्कार तथा उपहार दिये। इस नीति से देशी नवाबों में असंतोष उत्पन्न हो गया और साम्राज्य में विद्रोह होने लगे। सुल्तान की उदारता असीम थी। उसके यहां कई विभाग थे, उनमें से दो का नाम लेना अत्यन्त आवश्यक है। उपहार विभाग, जो उपहारों के लेन-देन की व्यवस्था करता था और व्यवसाय विभाग जो राजवंश की महिलाओं और नवाबों की पत्नियों के लिए सुन्दर और बहुमूल्य वस्त्र बनवाने का प्रबंध करता था।

सुल्तान की विजय की योजनाएँ—अलाउद्दीन की भांति मुहम्मद तुगलक को भी विदेशों को जीतने की बड़ी भारी कामना थी। राज्यकाल के प्रारम्भ में कुछ खुरासानी अमीरों ने जो उसके दरबार में आश्रय पा रहे थे, उसे अपने देश पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया। यह योजना भी कोरी कल्पना-मूलक नहीं थी। अबू सईद की अध्यक्षता में खुरासान की दशा बड़ी असन्तोष-जनक हो गई थी। चगताई शासक तरमाशीरी खाँ और मिस्र का बादशाह फारस के देश को हड़प कर जाना चाहते थे। मुहम्मद ने मिस्र के बादशाह से मित्रता कर ली और ३,७०,००० योद्धाओं की बड़ी भारी सेना इकट्ठी की। पूरे एक वर्ष तक उसको राजकोष से वेतन दिया गया। परन्तु यह योजना कार्य रूप में परिणत न हो सकी। दिल्ली की सेना के लिए इस समय यह कार्य असम्भव था। इस योजना को छोड़कर भारत पर ही ध्यान एकाग्र करना मुहम्मद तुगलक की बुद्धिमानी का ही परिणाम है।

दूसरी एक और योजना समसामयिक इतिहासकार बर्नी के अनुसार कराचल अथवा कराजौल के पहाड़ी प्रदेश को जीतने की थी, जो भारत और चीन के

बीच में था। फरिश्ता का अनुकरण कर अनेक इतिहासकारो ने[1] इस सम्बध में बडी भारी भूल यह की है कि उन्होने समझा है कि सुल्तान चीन पर आक्रमण करना चाहता था। इब्नबतूता ने स्पष्ट लिखा है कि वह अभियान कराजील पहाड पर किया गया था जो दिल्ली से दस मजिल की दूरी पर स्थित है। इससे प्रकट है कि यहाँ हिमाचल (हिमालय) पहाड से तात्पय है, जिसस भारत और चीन का आवागमन असम्भव ह। उस स्थान के एक विद्रोही राजा पर चढाई की गई थी जिसने दिल्ली का आधिपत्य स्वीकार नहीं किया था। पहला आक्रमण सफल हुआ, परन्तु जब वर्षा ऋतु प्रारम्भ हुई, तो सेना का साहस टूट गया और केन्द्र से युद्ध सामग्री प्राप्त करना असम्भव हो गया। सेना की बडी भारी क्षति हुई। उसका समस्त सामान पहाडियो ने लूट लिया। इस भीषण दुघटना का सम्राट् को समाचार देने के लिए केवल दस अश्वारोही सैनिक दिल्ली पहुँचे। परन्तु इस अभियान का उद्देश्य पूण हो गया। पहाडी शासक ने सुल्तान से सधि कर ली और वह कर देने के लिए भी प्रस्तुत हो गया। दिल्ली के शासक का बिना आधिपत्य स्वीकार किये तराई प्रदेश में कृषि करना असभव था। यह प्रदेश उसी पवतीय राज्य का अग था।

अव्यवस्था का प्रारम्भ अहसनशाह का विद्रोह—सन् १३३५ से मुहम्मद तुगलक के भाग्य ने पलटा खाया और पतन प्रारम्भ हुआ। इसका एक कारण तो उसके उत्तरकालीन राज्य का कठोर व्यवहार था और दूसरे दीघकालीन दुर्भिक्ष था, जिससे भारत के सभी भागो में बडा भारी कष्ट रहा। जब राज्य

१—ब्रिग्ज, फरिश्ता प्रथम भाग पृ० ४१६

ऐलफिन्स्टन, हिस्ट्री ऑव इडिया पृ० ३९६

फरिश्ता ने लिखा ह कि—"चीन के अपार धन की बात सुनकर, मुहम्मद ने उस साम्राज्य को जीतने का निश्चय किया। परन्तु अपनी योजना को सफल बनाने के लिए हिमाचल प्रदेश को जीतना आवश्यक था।" उसने यह भी लिखा है कि सुल्तान के अमीरो और वजीरो ने उसे यह समझाया कि यह योजना बडी निरथक ह। परन्तु सुल्तान ने उनके परामश पर बिल्कुल ध्यान न दिया। बर्नी का कथन विश्वसनीय है। इब्नबतूता ने उसके कथन का समथन किया ह।

प्रबघ के प्रधान आधार सावजनिक राजस्व मे कमी हो गई, तो दूसरे सारे साम्राज्य मे विद्रोह होने लगे। सबसे पहले माबर में जलालुद्दीन अहमनशाह का सन् १३३५ ई० मे बडा विद्राह हुआ[१]। यद्यपि दुर्भिक्ष और आस-पास की अव्यवस्था के कारण दिल्ली की बडी दुदशा हुई तो भी सुल्तान विद्रोही को दण्ड देने के लिए स्वय चल पडा, परन्तु जब वह तलगाने में पहुँचा तो हजा फैल गया और उसके बहुत से साथी मर गये। इस दुघटना के कारण अहसनशाह के विरुद्ध अभियान छोड दिया गया और वह स्वतत्र हो गया।

बगाल मे विद्रोह—बख्तियार के पुत्र मुहम्मद के समय स बगाल ने कभी स्वामि-भक्ति के साथ दिल्ली का आधिपत्य स्वीकार नही किया था। कद्रखाँ केसलाहदार फखरुद्दीन न जो लखनौती का शासक था अपने स्वामी को मार डाला और ७३७ ३८ हिजरी (१३३७ ई०) में उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। दिल्ली की अव्यवस्था देखकर उसने अपने को बगाल का स्वतत्र शासक घोषित कर दिया और अपने नाम की मुद्राएँ बनाने लगा। सुल्तान इस समय अपने विस्तृत साम्राज्य के अन्य उपद्रवो के कारण व्यस्त था। इस विद्रोही की ओर वह ध्यान न दे सका। सुल्तान की ओर से कुछ हस्तक्षेप न होने के कारण फखरुद्दीन ने स्थानीय विरोध को सफलतापूवक दबा दिया। शीघ्र ही सारा बगाल प्रदेश उसके अधिकार में हो गया और उस पर वह बडी योग्यता और उत्साह के साथ शासन करन लगा।

ऐनुलमुल्क का विद्रोह—बगाल के विद्रोह के पश्चात् अन्य छोटे छोटे विद्रोह हुए, परन्तु वे शीघ्र ही दबा दिये गये। इन सबमें अवध और जफराबाद के शासक ऐनुलमुल्क का विद्राह सबसे महत्वपूण था, जो सन् १३४०, ४१ में प्रारम्भ हुआ। एनुलमुल्क बडा प्रसिद्ध अमीर था जिसने राज्य की बडी बडी सेवाएँ की

---

१ डा० स्मिथ ने 'आक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इडिया' में २४२ पष्ठ पर इस घटना की तिथि १३३८-३९ दी ह जो अशुद्ध है। अहसनशाह का विद्रोह १३३५ में हुआ था इस वष उसमें स्वतत्र शासक के रूप में अपनी निजी मुद्राएँ निकालना प्रारम्भ किया।

थी और दरबार में जिसका बड़ा भारी मान था। जब सुल्तान दुर्भिक्ष के कारण अपना दरबार फर्रुखाबाद जिले में सरगद्वारी नामक स्थान पर ले गया तो दुर्भिक्ष के कष्टों का दूर करने में ऐनुलमुल्क और उसके भाइयों ने बड़ी सहायता की थी। सुल्तान की दूरदर्शिता की थोड़ी कमी के कारण यह स्वामिभक्त शासक विद्रोही बन गया दक्षिण के कुछ पदाधिकारियों का अनुचित आचरण सुनकर सुल्तान ने ऐनुलमुल्क को वहाँ का शासक बनाने का निश्चय किया और सपरिवार उसे वहां जाने की आज्ञा दी। स्थानान्तर की इस अनुल्लघनीय आज्ञा को पाकर मलिक को बड़ा आश्चर्य हुआ। जो लोग सुल्तान के क्रोध से बचने के लिए अवध और जफराबाद में आश्रय लेने के लिए पहुंच गये थे उन्होंने ऐनुलमुल्क के कानों को सुल्तान के विरुद्ध भर दिया। भावी सकट की आशका के भय से ऐनुलमुल्क ने विद्रोह कर दिया और अपने भाई से मिलकर उसने सब शाही सामान ले लिया जो उसके अधिकार में था। इस विद्रोह का समाचार पाकर सुल्तान को बड़ा आश्चर्य हुआ और कुछ देर के लिए वह किंकर्तव्य विमूढ़-सा हो गया परन्तु शीघ्र ही सँभल गया और अपनी सेना सुधारने लगा। उसने सेना के आत्मबल की ओर विशेष ध्यान दिया और उसका सचालन स्वय करने लगा। ऐनुलमुल्क की हार हुई और वह बन्दी बनाकर शाही डेरे पर लाया गया। उसके साथी निर्दयतापूर्वक मार डाले गये परन्तु अपनी पूर्व सेवाओं के कारण वह क्षमा कर दिया गया और राजोद्यानों का निरीक्षक नियुक्त किया गया।

सिन्ध के विद्रोह का दमन--इस भाग्यहीन सुल्तान को विधाता ने चैन नहीं लेने दिया जैसे ही वह राज्य के एक भाग के विद्रोह को दबाता वैसे ही दूसरे भाग में उससे भी बड़ा विद्रोह प्रारम्भ हो जाता सिन्ध में ऐसा ही एक बड़ा विद्रोह खड़ा हो गया। सुल्तान अपनी सेना लेकर उधर गया और विद्रोहियों के दल का छिन्न भिन्न कर दिया। उनके नेता पकड़ लिए गये और उनको बलपूर्वक मुसल्मान बना दिया गया। १३४२ ई० के अन्त तक भारत में व्यवस्था स्थापित हो गई परन्तु दक्षिण में और भी बड़े विद्रोह प्रारम्भ हो गये। इन विद्रोहों का स्वरूप सीमा के बाहर पहुँच गया और सुल्तान में इतनी शक्ति न रही कि वह षड्यन्त्रकारियों को उचित दण्ड देकर दिल्ली पर प्रभुत्व स्थापित करता।

दक्षिण—दक्षिण में षड्यन्त्र राजविद्रोह और अव्यवस्था का साम्राज्य था। ने राज्यकाल के प्रारम्भ में तो सुल्तान ने मावर, वारगल और द्वारसमुद्र सुदूरवर्ती प्रान्तो पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। उसके म्राज्य मे प्राय सारा दक्षिण ही सम्मिलित था। परन्तु सन् १३३५ ई० में बर स्वतत्र हो गया और १३३६ ई० में हरिहर और उसके भाई बुक्का ने मुसल- न शक्ति के विरुद्ध विजयनगर राज्य की नीव डाली। इसका सविस्तर वर्णन गे किया जायगा। सन् १३४४ ई० में प्रतापरुद्र देव काकतीय ने दक्षिण के दुओ का एक सघ बनाया। दक्षिण का महान् विद्रोह प्रारम्भ हुआ और बल्लाल तुथ, हरिहर तथा कृष्ण नायक अन्य छोटे मोटे नायको के सहयोग से इसने ऐसा रूप धारण किया कि, वारगल द्वारसमुद्र और कारोमण्डल समुद्र तट के किनारे प्रदेशो पर मसलमानो का आधिपत्य सर्वदा के लिये उठ गया। १३४६ ई० होयसल-वश के पतन के बाद हरिहर को अपनी शक्ति सुदृढ करने का सुअवसर ल गया और इसके आगे विजयनगर दक्षिण का बडा भारी राज्य बन गया और तर के मुसलमानो के आक्रमणो को रोकना रहा।

मुहम्मद तुगलक के हाथ में अब केवल गुजरात और देवगिरि रह गये। सकी अनेक असफलताओ के कारण उसका स्वभाव कटु हो गया था और उस मान- ीय सहानुभूति का सन्तुलन नष्ट हो चुका था जिसके बिना विरोधी पुरुषो का मन सम्भव नही था। उसने देवगिरि के शासक कुतुलुग खाँ को अपने पद से टा दिया और उसके स्थान पर अपने भाई को नियुक्त किया इससे देश में बडा सन्तोष उत्पन्न हो गया। राजस्व में कमी हो गई और राज-पदाधिकारी दीन जा से अपने लिए धनापहरण करने लगे। कुतुलुग खा की फिर नियुक्ति करनी डी। इसके पश्चात् माल्वा और धार के जागीरदार मुख्य कलार-पुत्र अजीज म्मार ने विदेशी अमीरो की हत्या कर एक और बडी भारी भूल की। अजीज के त्याकाण्ड को देखकर अमीरो में आतक छा गया और वे आत्म रक्षा से प्रेरित ोकर युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गये। दक्षिण में अत्यन्त शीघ्र अव्यवस्था बढने लगी ौर स्थान-स्थान पर सिपाही विद्रोह प्रारम्भ हो गया। गुजरात के विद्रोह को ान्त करने के लिए सुल्तान स्वय पहुँचा और भडौंच से उसने दौलताबाद के नये ासक कुतुलुग खाँ के भाई निजामुद्दीन अलिमुल्मुल्क के पास एक सन्देश भेजा और

जिसमें उसने आज्ञा दी कि, विदेशी अमीर तुरन्त भेज दिये जायें। रायचूर, मुदगल, गुलबर्गा, बीदर, बीजापुर, बरार तथा अन्य स्थानों के अमीर शाही हुकुम को मानकर गुजरात की ओर चल दिये परन्तु मार्ग में वे अकस्मात् डर गये और उनको यह सन्देह हो गया कि, सुल्तान उन्हें मरवाना चाहता है। उन्होंने सुल्तान के साथियों पर आक्रमण कर दिया और कुछ आदमियों को मारकर वे दौलताबाद लौट गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने निजामुद्दीन को बन्दी कर लिया। दौलताबाद के दुर्ग पर उनका अधिकार हो गया। उन्होंने राजकोष को अपने अधिकार में कर लिया और मरहठा देश को आपस में बाँट लिया। मलिक इस्माइल मख नामक अफगान को उन्होंने अपना बादशाह निर्वाचित कर दिया। जब सुल्तान को इन घटनाओं का पता लगा तो वह दौलताबाद की ओर बढ़ा और खुले युद्ध में उसने विद्रोहियों को परास्त कर दिया। मलिक मख अफगान देवगिरि के दुर्ग में पहुँच गया, और दूसरा अफगान नेता हसन काँगू अपने अनुयायियों को लेकर गुलबर्गा की ओर चला। सुल्तान ने दौलताबाद का घेरा डाल दिया और अपने एक सेना-नायक इमादुलमुल्क सरतेज को विद्रोहियों का पीछा करने के लिए भेजा। दौलताबाद जीत लिया गया परन्तु गुजरात में तगी का विद्रोह प्रारम्भ होने के कारण सुल्तान को वहाँ से चला जाना पड़ा। ज्यों ही सुल्तान की पीठ फिरी, वैसे ही विदेशी अमीरों ने एक बार फिर अपनी खोई हुई शक्ति को प्राप्त करने की चेष्टा की। उन्होंने देवगिरि के दुर्ग को घेर लिया और इस पर अधिकार करने की शाही सेना की चेष्टाओं को असफल कर दिया। शाही सेना-नायक इमादुल मुल्क को हसन ने हरा दिया और विद्रोहियों ने दौलताबाद पर अधिकार कर लिया। इस्माइल मख ने "स्वेच्छा और अप्रसन्नता" से हसन के लिए राज्य छोड़ दिया। हसन बड़ा उत्साही युवक और योद्धा था। इन दक्षिण के युद्धों में उसने प्रमुख भाग लिया था। हसन ने १३ अगस्त सन् १३४७ ई० को अपना राज्याभिषेक किया और अलाउद्दीनवद्दीन अब्बुल मुजफ्फर बहमनशाह की उपाधि धारण की। इस प्रकार बहमनी वंश की नींव पड़ी जिसका विस्तृत वर्णन आगे के अध्याय में किया जायगा।

सुल्तान की मृत्यु—तगी के विद्रोह का समाचार सुनकर सुल्तान देवगिरि से गुजरात की ओर चल दिया। विदेशी अमीरों को बिना अच्छी तरह दबाय

हुए विद्रोही तगी को दण्ड देने के लिए चल पडना बडी भारी भूल थी। उसने अनेक स्थानों पर विद्रोही का पीछा किया परन्तु उसे पकड न सका। उसने करनाल के राजा को हरा दिया और सारे समुद्र तट पर अधिकार कर लिया। यहाँ से वह गोडल पहुँचा वहा वह बीमार पड गया। कुछ दिन तक वहाँ उसे ठहरना पडा। एक बडी सेना इक्ट्ठी कर वह 'ठट्ठ' की ओर चल दिया। परन्तु वहाँ पहुँचने के तीन-चार दिन पहले ही उसे ज्वर आ गया और २० मार्च सन् १३५१ ई० म उसकी मृत्यु हा गई।

मुहम्मद का आगमन—इस मन्दभाग्य बादशाह का इस प्रकार अन्त हुआ। जीवन भर उसने कठिनाइयो से सघष किया परतु कभी निराश होकर अपने कत्तव्य-पथ से नही हटा। इसमें कोई सन्देह नही कि, वह सफल नही हुआ परन्तु उसकी असफलता का कारण ऐसी परिस्थितिया थी जिनके ऊपर उसका प्राय कोई अधिकार ही न था। १० साल से भी अधिक समय तक उसके राज्य में घोर दुर्भिक्ष रहा। इससे उसके राज्य का गौरव नष्ट हो गया और उसकी प्रजा उसकी विरोधी बन गई। लोगो का यह कथन, कि 'वह नीरो और कलीगुला की भाति निदयी और रक्त पिपासु क्रूर शासक था, उसकी उदारता और विद्वत्ता को देखकर सत्य नही प्रतीत होता। इस प्रकार के निणय में उसकी उन महत्त्वपूण योजनाओ का कुछ भी ध्यान नही रखा गया जो उसने दुर्भिक्ष पीडित लोगा के कष्टो को दूर अथवा कम करने के लिए बनाई थी। 'बर्नी' और इब्नबतूता की रचनाओ में इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि, रक्त बहाने से उसको कोई प्रेम न था और वह शत्रुओ के प्रति भी दयालु,उदार और न्यायी हो सकता था। उसमें व्यावहारिक उन्नति के लिए प्रतिभा भी थी और उत्कट अभिलाषा भी। मध्ययुग के अन्य शासको में इसका अभाव सा ही था। परन्तु यह काय अत्यन्त ही कठिन था। उसको सतत विकासशील साम्राज्य की समस्याओ को हल करना था और ऐसे राज पदाधिकारियो से काम लेना था जो कभी भक्तिपूवक उसका सहयोग नही देते थे। कट्टर उल्मा के विरोध का भी उसे सामना करना पडता था, जो अपने अधिकारो के लिए लडते थे और प्रजा में न्याय तथा समानता का व्यवहार करने के उसके प्रयत्नो में अनेक प्रकार की बाधाएँ डालते थे।

वत्तमान सभी इतिहास लेखक सुल्तान को पागल बतलाते है। परन्तु इब्न-

बतूता और बर्नी ने इस प्रकार की कोई बात नही लिखी। इसी प्रकार सुल्तान को रक्त पिपासु कहने का भी कोई प्रमाण नही है। सुल्तान में कोई भारी विषमताएँ न थी और न रक्त बहाने से ही उसको कोई प्रेम था, परन्तु वह अपराधियो को कठोर दड देता था। इस काल में युरोप और एशिया दोना महाद्वीपो में दड कठोर ही दिया जाता था। अत यूरोपीय विद्वानो द्वारा सुल्तान की निंदा, अनुचित है। वे प्राच्य राजनीतिज्ञो और शासको की कठोर आलोचना किया करते है। मुहम्मद के विषय में कोई मत स्थिर करने के पूर्व उसकी कठिनाइयो को ध्यान मे रखना आवश्यक है।

इब्नबतूता—मुहम्मद तुगलक के राज्य के विषय में हमको बहुत-सी बातें अफ्रीका के यात्री इब्नबतूता के यात्रा विवरण से प्राप्त होती है। अबू अब्दुल्ला मुहम्मद का जन्म, जो साधारणतया इब्नबतूता के नाम से प्रसिद्ध है, तजा में २४ फरवरी सन् १३०४ ई० को हुआ था। यात्राओ से उसको स्वाभाविक प्रेम था। ज्यो ही वह युवक हो गया, वैसे ही उसने अपनी आकाक्षाओ को पूरा करने का निश्चय किया। इक्कीस वर्ष की अवस्था में ही वह चल दिया और अफ्रीका तथा एशिया के अनेक देशो में घूमता हुआ हिन्दूकुश पर्वत के दर्रों से वह भारत में पहुँचा। १२ सितम्बर सन् १३३३ ई० को वह सिन्धु नदी के तट पर पहुँचा। वहाँ से वह दिल्ली पहुँचा। वहा उसका बडा सत्कार हुआ। मुहम्मद तुगलक ने उसे दिल्ली का काजी नियुक्त कर दिया और दरबारी बना लिया। इस प्रकार उसको इस अत्यन्त विलक्षण बादशाह के स्वभाव, चरित्र और कार्यों के निकटतम अध्ययन का सुयोग प्राप्त हो सका। वह आठ वर्ष तक भारत में रहा और सन् १३४२ ई० में उसने सुल्तान की सेवा छोड दी। उस समय के हिन्दू और मुसलमान दोनो के आचार-व्यवहार का बहुत कुछ पता उसके विवरण से प्राप्त होता है। जिया बर्नी के वर्णनो की बहुत सी बातो को वह पूरा करता है। मुहम्मद तुगलक ने उसे चीन का राजदूत नियुक्त किया था। १३४९ ई० में वह स्वदेश लौट गया और वहाँ उसने अपने अनुभवो को लिखा। ७३ वर्ष की आयु में सन् १३७७-७८ ई० में उसका मृत्यु हो गई।

इब्नबतूता के कथनो की सत्यता के विषय में कोई सन्देह नही किया जा सकता।

अन्य इतिहासकारो ने भी उसके वणना का समथन किया है। वह निष्पक्ष होकर अपने स्वामी के दान और दड तथा दयालुता और कठोरता का वणन करता ह। उसके सुल्तान के चरित्र के वणन का जियाबर्नी भी समथन करता है जो उसकी प्रशसा करने में अधिक उदार और निंदा करने मे कुछ कम सयत है। उसके वणनो से इब्नबतूता का चरित्र बडा रोचक प्रतीत होता है। इब्नबतूता का जीवन नवीनता, चेतनता, साहस, रूढिगत धार्मिकता और सरल विश्वास स पूण था। वह बहुधा आर्थिक सकट में फँस जाता था। अनेक बार उसके कृपालु स्वामी ने उसका इन सकटो से निकाला था। जब तक वह भारत में रहा तब तक उसने अपने स्वामी का साथ न छोडा।

फीरोज तुगलक का राज्यारोहण—ठट्ठ (सिंध) के निकट मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के कारण सारे राज दरबार में अव्यवस्था फल गई। सेना नायको तथा सिपाहियो में निराशा छा गई। मगोल सिपाही जो तगी के अभियान में सहायता देने के लिए आये थे, वे शाही छावनी को लूटने लगे। बडी कठिनाई से सेना राजधानी लौट सकी। मुहम्मद के काई उत्तराधिकारी न था। अत कठिनाई और बढ गई। अमीरो को यह अनुभव होने लगा कि यदि वे उत्तराधिकारी का निर्वाचन शीघ्र ही न कर देंगे, तो विनाशकारी परिणाम हो सकते ह। बर्नी ने इन घटनाओ को अपनी आँखो देखा था। वह लिखता ह कि स्वर्गीय सुल्तान ने फीरोज को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया था। दूसरे समसामयिक इतिहासकार शम्स ए सिराज अफीफ ने इसका समथन किया ह। स्वर्गीय सुल्तान के इच्छा-पत्र के अनुसार फीरोज को राजगद्दी दी गई। उससे प्रायना की गई कि राजदड ग्रहण स्वीकार कर वह सेनानायको और सिपाहियो के परिवार की रक्षा करे। फीरोज बिलकुल महत्त्वाकाक्षी नही था। उसने इस प्रस्ताव को स्वीकार करने में आनाकानी की। वह विरक्त जीवन का प्रेमी था। उसने कहा कि म तो मक्का की यात्रा को जाना चाहता हूँ। परन्तु जब अमीरो का दबाव अधिक पडा तो देश हित के लिए उसे राजगद्दी स्वीकार कर लेनी पडी। फीरोज का राज्याभिषेक होने से सेना में सतोष और शान्ति हुई और शीघ्र ही सुव्यवस्था स्थापित हो गई। परतु उधर दिल्ली में ख्वाजाजहा ने मुहम्मद के एक झूठे पुत्र को सुल्तान पद के लिए खडा कर बडी कठिन परिस्थिति उत्पन्न कर दी। परन्तु ख्वाजा पर

राजद्रोह का अपराध नहीं लगाया जा सकता क्योंकि उसने यह देश हित की दृष्टि से ही उस समय किया था, जब उसने यह सुना कि शाही सेना के प्रधान नायक फीरोज और तातार खाँ युद्ध क्षेत्र से लापता हैं। फीरोज ने राज्य के पदाधिकारियों और अमीरों से पूछा कि क्या सुल्तान के कोई पुत्र था। उत्तर मिला, 'नहीं'। ख्वाजा ने अपने काय पर पश्चाताप किया और बड़ा विनीत होकर सुल्तान के सामने क्षमा-याचना के लिए उपस्थित हुआ। प्राचीन राजसेवा और स्वामिभक्ति के कारण सुल्तान ने उसके साथ नरमी से व्यवहार करना चाहा, परन्तु अमीरों ने इसे "अक्षम्य राजद्रोह" बतलाया। ख्वाजा को अपनी जागीर समाना जाने की आज्ञा हुई। परन्तु माग में ही वह मार डाला गया। इस प्रकार दुबल हृदय और अनिश्चित स्वभाववाले फीरोज को अपने विश्वसनीय मित्र और सहयोगी की मृत्यु के लिए स्वीकृति देनी पड़ी जिसके निरपराध होने का कदाचित् उसे पूर्ण विश्वास था।

फीरोज का चरित्र—२४ माच सन् १३५१ ई० को फीरोज तुगलक गद्दी पर बैठा। इस उच्च पद के लिए न उसमें योग्यता थी और न इसकी उसे आकांक्षा ही थी। समसामयिक मुसलमान इतिहासकार उसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं, क्योंकि उसके राज्य में धार्मिक कट्टरता और असहिष्णुता का ही प्राधान्य रहा। बर्नी ने लिखा है कि मुईज़ुद्दीन मुहम्मद बिन साम के समय से दिल्ली का कोई सुल्तान इतना विनम्र, दयालु, सत्यप्रिय, धर्मनिष्ठ और पवित्रात्मा नहीं हुआ जितना फीरोज था। शम्स सिराज अफीफ उसकी बड़ी प्रशंसा करता है और अत्युक्तिपूर्ण शब्दों में उसके सद्गुणों का वर्णन करता है। उसमें बड़ी धार्मिक कट्टरता थी और वह बड़ी कठोरता से शरियत के नियमों का पालन करता था। धार्मिक उत्सवों और त्यौहारों पर वह धर्मप्रिय मुसलमान की भांति आचरण करता था। उसने मुस्लिमेतर जातियों को मुसलमान बनने का प्रलोभन दिया और धर्म परिवर्तन करनेवालों को जजिया से मुक्त कर दिया। ब्राह्मणों पर भी जजिया लगाया गया। उनकी प्रार्थनाएँ ठुकरा दी गईं। राजमहल में शृंगार और सजावट की वस्तुओं की आज्ञा नहीं थी। भोजन में सुल्तान ने स्वयं सोने चाँदी के बर्तनों के स्थान पर मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। परन्तु कुरान शरीफ के प्रति इतनी श्रद्धा होने पर भी उसके निम्न श्रेणी के व्यसन न छूट सके। एक बार,

आक्रमण के समय, जब तातार खाँ उससे मिलने गया तो उसने फीरोज को अर्द्ध-नग्न अवस्था में पड़े हुए देखा। मदिरा पीने के प्याले उसके बिछौने में छिपे हुए थे। खाँ ने इस व्यसनी आचरण के लिए उससे बहुत बुरा-भला कहा। उसने वचन दिया कि जब तक सेना के साथ आप (तातार खाँ) हैं तब तक मैं बिलकुल संयम से रहूँगा। परन्तु मन की दुर्बलता ने थोड़े ही समय में विजय प्राप्त कर ली और खाँ हिसारफीरोजा के समीपस्थ प्रदेश को स्थानान्तरित कर दिया गया।

यद्यपि फीरोज में धार्मिक कट्टरता थी, परन्तु वह उदार और सहृदय था। अपने सहधर्मियों के प्रति वह बड़ी उदारता से कार्य करता था। निर्धनों और व्यवसायहीन व्यक्तियों की वह खुले हाथों सहायता करता था। वैधानिक नियमों के सुधार से उसकी दयालुता प्रकट होती है। शारीरिक यंत्रणाएँ उसने बंद कर दी, न्याय विधान सरल कर दिया और गुप्तचरों की प्रथा को प्रोत्साहन देना बन्द कर दिया। उसने विद्वानों को आश्रय दिया और धार्मिक शिक्षा के लिए अनेक मदरसे तथा विद्यालय खोले। प्रजा के सभी वर्गों के हित के लिए उसने अनेक कार्य किये जिनमें से एक तो प्रधान कार्य सिंचाई का प्रबन्ध था और दूसरे दिल्ली का अस्पताल था, जिसमें रोगियों को मुफ्त दवा दी जाती थी।

इतिहास में फीरोज तुगलक अपने शासन-सम्बन्धी सुधारों के लिए प्रसिद्ध है, परन्तु उसमें अलाउद्दीन खिलजी अथवा मुहम्मद तुगलक की-सी योग्यता, चतुरता और स्फूर्ति नहीं थी। वह बड़े अनिश्चयात्मक हृदय का व्यक्ति था और मुफ्ती और मुल्लाओं के परामर्श को बहुत सुनता था। इस नीति के विनाशकारी परिणाम एक पीढ़ी बाद दिखाई पड़े जब दिल्ली सुल्तानों का साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया।

बंगाल का प्रथम अभियान (१३५३ ५४ ई०)—मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के पश्चात् जो देश में अव्यवस्था फैली, उसमें बंगाल दिल्ली साम्राज्य से एकदम स्वतन्त्र हो गया। हाजी इलियास ने शमसुद्दीन के नाम से अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। एक बहुत बड़ी सेना लेकर सुल्तान बंगाल की ओर चला। वहाँ पहुँचकर उसने एक घोषणा निकाली जिसमें हाजी इलियास के अपराधों की व्याख्या थी, उसने लोगों के प्रति न्याय करने तथा देश में सुव्यवस्था स्थापित करने के अपने निश्चय को प्रकट किया।

जब हाजी इल्यिास ने सुल्तान के आगमन का समाचार सुना, तो वह इक्दला के दुग में चला गया। उसको दुर्ग छोटने का प्रलोभन देने के लिए फीरोज ने बडे कौशल से काम लिया। वह कुछ मील पीछे की ओर इस आशा से हट गया कि लौटती हुई सेना को तग करने के लिए कदाचित् वह दुग से बाहर निकले। ऐसा ही हुआ। दस सहस्र घुडसवार और बीस सहस्र पैदल सिपाहियो को लेकर वह बडी उत्सुकता से देहलवियो से युद्ध करने के लिए निकल पडा। सुल्तान ने अपनी सेना को मध्यकाल की युद्ध परम्परानुसार तीन भागों में विभक्त किया दक्षिण, वाम तथा केन्द्र और स्वय उनके सचालन में सक्रिय भाग लेने लगा। बडा घोर युद्ध हुआ, दोनो ओर के योद्धा बडी वीरता और दृढता से लडे। जब शम सुद्दीन ने अपनी हार निश्चित देखी, तो वह युद्ध-क्षेत्र से भाग गया और फिर उसने इकदला के दुग मे शरण ली। शाही सेना ने उसका पीछा किया और पूरी शक्ति से दुग घेर लिया। परन्तु दुग की स्त्रियो के करुण क्रदन को सुनकर सुल्तान का हृदय द्रवित हो गया और इस कठिनता से प्राप्त विजय के फल को उसने छोड देने का निश्चय कर लिया। कठिन परिस्थिति का सामना करने की फीरोज की अयोग्यता का वर्णन राज इतिहासकार इन शब्दो में करता है "दुग को घेरना अधिक मुसलमानो को तलवार के घाट उतारना, प्रतिष्ठित स्त्रियो का अपमान करना आदि ऐसे अपराध होंगे, जिनका कयामत के दिन उत्तर देना बडा कठिन होगा। इस प्रकार तो उसम और मुगलो में कोई अन्तर नही रहेगा।" उसके सेनानायक तातार खा ने इस प्रान्त को राज्य मे मिलाने का परामर्श दिया। परन्तु दुबल हृदय फीरोज ने यह कहकर इसे अस्वीकार कर दिया कि बगाल दलदलो का प्रदेश है और राज्य में सम्मिलित करने के योग्य नही।

दूसरा अभियान (१३५९-६०)—बगाल से लौटकर सुल्तान बडे परिश्रम और उत्साह से राज्य प्रबन्ध को सुधारने में लग गया। परन्तु जब बगाल के प्रथम स्वतन्त्र शासक फखरुद्दीन के दामाद जफर खाँ ने शम्सुद्दीन के अत्याचार की शिकायत की और सुल्तान से हस्तक्षेप करने की प्रार्थना की, तो बगाल का दूसरा अभियान आवश्यक हो गया। जफर खा का दरबार म बडा आदर हुआ। जब सुल्तान ने खानजहाँ को दूसरे अभियान की तयारी की आज्ञा दी, तो उसका हृदय प्रसन्नता से उछलने लगा। इस दिशा में जनता का उत्साह इतना अधिक था कि अनेक

सिपाही स्वेच्छा से ही सेना में भर्ती हो गये। अन्त में, इसमें ७०,००० घुडसवार, असंख्य पदल, ४७० हाथी और नावो का एक बेडा सम्मिलित हो गया। शम्सुद्दीन की मृत्यु हो चुकी थी और उसका पुत्र सिकन्दर बगाल का शासक था। अपने पिता की भाति वह भी इकदला के दुर्ग में बठ रहा। दुर्ग का घेरा डाल दिया गया। शाही सेना ने स्थान-स्थान पर दीवार तोड ली, परन्तु बगालियो ने बडे साहस और पौरुष से काय किया और टूटे हुए स्थानो की मरम्मत कर ली। परन्तु इस अनन्त घेरे के कारण दोनो पक्षो का धय जाता रहा और सधि की बातचीत प्रारम्भ हो गई। सिकन्दर के दूत ने बडी धीरता, दृढता तथा चतुराई से बातचीत की। उसने जफर खा को सोनारगाव लौटा देना स्वीकार किया और सुल्तान से अपनी मित्रता दृढ करने के लिए उसने चालीस हाथी तथा बहुमूल्य भेंट का सामान भेजा। परन्तु जफरखाँ ने, जो इस उपद्रव की जड था, स्वदेश लौटने के स्थान पर दिल्ली रहना ही पसन्द किया। एक बार फिर फीरोज अपनी दुबलता के कारण बगाल प्रान्त पर अपना आधिपत्य न स्थापित कर सका जो एक प्रकार से उसके अधिकार में पहुँच ही गया था।

जाजनगर के राय का दमन—बगाल से लौटकर सुल्तान जौनपुर ठहरा। वहा से उसने जाजनगर पर चढाई की (वर्तमान उडीसा) जो उस समय बडा उन्नतिशील था। शाही सेना का आना सुनकर राय भाग गया और उसने एक टापू में शरण ली। सुल्तान की सेना ने वहाँ भी उसका पीछा किया। उन्होने पुरी का जगन्नाथ जी का मन्दिर भ्रष्ट कर दिया और मूर्तियाँ समुद्र में फेंक दी। शत्रु की बडी भारी सेना देखकर राय ने सधि करने के लिए दूत भेजे। सुल्तान ने कहा कि आपके स्वामी के भागने के कारण से म बिलकुल अनभिज्ञ हूँ। यह सुनकर वे आश्चर्यचकित हो गये। राय ने अपने आचरण की व्याख्या की और कर रूप मे प्रति वर्ष कुछ हाथी देना स्वीकार किया। सुल्तान ने इन शर्तों को स्वीकार कर लिया और अन्य अनेक गणाधीशो और जमींदारो का दमन करके वह राजधानी को लौट गया।

नगरकोट की विजय (१३६०-६१)—मुहम्मद तुगलक ने सन् १३३७ में नगरकोट का दुर्ग जीत लिया था, परन्तु उसके राज्य के उत्तरकाल में ही वहाँ का

राय स्वतंत्र हो गया था। नगरकोट में ज्वालामुखी का मंदिर बड़ा प्राचीन था। उसका बड़ा महात्म्य था। सहस्रों हिंदू तीर्थ यात्री वहाँ दर्शन के लिए जाते थे और बहुमूल्य पदार्थ भेंट चढ़ाते थे। इसी कारण असहिष्णु और कट्टर फीरोज ने नगरकोट पर चढ़ाई की। समसामयिक इतिहासकार अफीफ ने लिखा है कि जब सुल्तान मन्दिर में पहुँचा, तो उसने एकत्रित राणाओं, रायों और जमींदारों से यह कहा, "यह पत्थर की पूजा तुम्हारे किस काम आयगी। इसकी प्रार्थना करने से तुम्हारी कौन-सी कामनाएँ पूरी हो जायँगी? हमारे यहाँ कुरान शरीफ में यह लिखा है कि जो लोग इन नियमों के विरुद्ध आचरण करते हैं वे नर्क में जायगे।" नगरकोट का दुर्ग घेर लिया गया और चारों ओर मंजनीक और अर्रादे रख दिये गये। छ मास तक घेरा डालने के पश्चात् दोनों पक्ष के योद्धा थक गये। फीरोज ने राय को क्षमा कर दिया। वह "दुर्ग में से निकलकर आया, क्षमा-याचना की और सुल्तान के परों पर गिर पड़ा। सुल्तान ने उसकी पीठ पर हाथ रख दिया, सम्मानपूर्वक राज-वस्त्र दिये और दुर्ग को लौट जाने की अनुमति दे दी।"

ठट्ठ की विजय (१३७१-७२ ई०)—ठट्ठ का अभियान फीरोज तुगलक के शासन काल की एक बड़ी रोचक घटना है। भूतपूर्व सुल्तान का बदला लेने के लिए ठट्ठ पर चढ़ाई करने का विचार हुआ। युद्ध की तैयारी होने लगी और स्वयं सेवक सेना में भर्ती होने लगे। अंत में ९०,००० अश्वारोही सैनिक, असंख्य पैदल और ४८० हाथियों की विशाल सेना तयार हुई। पाँच सहस्र नावों का एक बेड़ा भी तैयार हुआ और अनुभवी नौ सेनाध्यक्षों की अधीनता में रख दिया गया। सिंध के शासक जाम बाबीनिया ने अपनी सेना व्यवस्थित की। इसमें २,००,००० अश्वारोही सैनिक, ५०,००० पैदल सम्मिलित थे। यह सेना युद्ध के लिए प्रस्तुत हुई। उधर सुल्तान की सेना में दुर्भिक्ष और रोग के कारण भोजन की कमी पड़ गई। इससे लगभग एक चौथाई घुड़सवार मर गये और सेना दुर्बल हो गई।

इस कठिनाई में पड़कर सुल्तान गुजरात की ओर हट गया। कच्छ की खाड़ी में वह पथ भ्रष्ट हो गया। गुजरात पहुँचकर उसने अपनी सेना को व्यवस्थित किया और युद्ध-सामग्री क्रय करने में दो करोड़ रुपये व्यय कर दिये। उधर

दिल्ली से खानजहाँने भी सहायता भेजी। इस प्रकार शक्तिशाली सेना को देखकर सिंधी लोग डर गये। उन्होने आत्मसमपण कर दिया। जाम दिल्ली भेज दिया गया और वहाँ उसे अच्छी वृत्ति दे दी गई। उसने स्थान पर उसका भाई जाम बना दिया गया।

शासन प्रबध—अलाउद्दीन ने जागीर की प्रथा बन्द कर दी थी। फीरोज ने उसे फिर प्रारम्भ कर दिया। सारा साम्राज्य जागीरो में बाँट दिया गया। जागीरें जिलो में विभक्त थी, जिनमें सुल्तान के कमचारी नियुक्त थे। इन भू-स्वीकृतियो के अतिरिक्त राज्य के पदाधिकारियो को भत्ता भी दिया जाता था। अत उनके पास बडी सम्पत्ति जमा हो गई। किसानो के हित का बडा ध्यान रक्खा जाता था। सुल्तान ने चार नहरें बनवाईं, जिनसे देश का बहुत बडा भाग सीचा जाता था। केवल पदावार का १० प्रतिशत सिंचाई का कर लिया जाता था। करो की योजना में भी सुधार किया गया और इस्लाम के विधान के अनुसार कर दिया गया। सब प्रकार के उद्वेगकारी कर बद कर दिये गये। फतूहाते फीरोजशाही में फीरोज ने इस प्रकार के २३ कर बद कर देने का श्रेय लिया है। उसने केवल कुरान के विधानानुसार केवल चार कर रक्खे—खिराज, जकात, जजिया और खुम्स। इस्लाम की सेना जो लूट का माल लाती थी वह शरियत में दिये हुए अनुपात के अनुसार सिपाहियो और राज्य मे बाँट दिया जाता था। करो की नवीन व्यवस्था से कृषि और वाणिज्य की उन्नति हुई। वस्तुएँ सस्ती थी। आवश्यक वस्तुओ का अभाव कभी अनुभव नही हुआ। न्याय करने में फीरोज पक्के मुसलमान की भाँति ही शरियत के नियमो का पालन करता था। वह बडी भक्ति के साथ कुरान का अनुसरण करता था। मुफ्ती विधान समझाता था और काजी फसला करता था। वैधानिक नियमो में सुधार किया गया। शारीरिक यन्त्रणाएँ बन्द कर दी गईं और अपराधियो को नरम दड दिये जाने लगे।

निधनो और व्यवसायहीन पुरुषो के साथ सुल्तान दया का वर्ताव करता था। व्यवसाय चाहनेवाले लोगो की कोतवाल सूची बनाता था और उसे दीवान के पास भेज देता था। उनके उचित व्यवसाय की व्यवस्था की जाती

सुल्तान स्वय चिकित्सा-शास्त्र से परिचित था। उसने

अस्पताल (दार-उल-शफा) खोला, जहाँ रोगियो को मुफ्त दवा दी जाती थी। उनको राज्य की ओर से भोजन भी मिलता था। उनमें बडे सुयोग्य चिकित्सक नियुक्त थे।

सेना—साम्राज्य के सैनिक योजना सामन्तप्रणाली पर आधारभूत थी। सिपाहियो को अपने पालन-पोषण के लिए भूमि दे दी जाती थी। अस्थायी सिपाहियो को (गरवजह) को राजकोष से वेतन मिलता था। जिनको न भूमि मिली थी और न वेतन मिलता था उनको मालगुजारी पर छूट मिलती थी। सामन्तो और राज्य के अमीरो तथा दरबारियों के सिपाहियो के अतिरिक्त शाही सेना में ८०-९० सहस्र घुडसवार सम्मिलित थे। इनकी सख्या २ लाख से कुछ ही कम होगी। अश्वारोही केवल उचित प्रकार के घोडे ही सेना में भर्ती कराने के लिए ला सकते थे। नायब आरिजे ममालिक मलिक रजी की सावधानी के कारण इस काम में जो भ्रष्टाचार फल रहा था वह सब बद हो गया। सिपाहियो के साथ दया का वर्ताव होता था और उन्हें सब प्रकार की सुविधा दी जाती थी। परन्तु सुल्तान की इस उदारता के कारण सेना की योग्यता में बहुत कुछ कमी हो गई क्योंकि सुल्तान वृद्ध और अशक्त पुरुषो को भी सेना से अलग नही करता था। एक नया नियम बन गया कि जब वृद्धावस्था के कारण कोई सिपाही सेना के योग्य नही रहता था, तो उसका पुत्र, दामाद अथवा दास उसके स्थान पर नियुक्त किया जाय। इस प्रकार 'योग्य तथा अनुभवी सनिक आराम से घर रहते थे और युवक सनिक उनके स्थान पर युद्ध-क्षेत्र को जाते थे।'

दास प्रथा—फीरोज के राज्य की एक विशेषता यह थी कि उसके समय में दास प्रथा बहुत बढ गई। साम्राज्य के विविध भागो से राज प्रतिनिधि दासो को भेजते रहते थे और राज्य की ओर से उनको भत्ता स्वीकृत हो जाता था। सुल्तान की इधर रुचि होने के कारण दासो की सख्या शीघ्र ही बढ गई। इस कारण कुछ ही वर्षों में राजधानी तथा साम्राज्य के प्रान्तो में उनकी सख्या १,८०,००० हो गई। इस दास-सेना की उचित व्यवस्था करने के लिए स्थायी पदाधिकारी नियुक्त होने लगे और इसका एक विभाग ही खुल गया। राजकोष को इससे अवश्य ही भारी क्षति पहुँची होगी।

सार्वजनिक हित के कार्य—फीरोज को भवन बनाने से बडा प्रेम था। उसने फीरोजाबाद फतहाबाद, जौनपुर तथा अन्य कई नगर बसाये और मसजिदें, महल, खानकाएँ और सराएँ बनवाई, जिससे यात्रियो को सुविधा हो। अनेको इमारतो की उसने मरम्मत करवाई जो बहुत दिनो तक पडे रहने के कारण टूट-फूट गई थीं। राज्य में अनेक कारीगर नौकर थे और प्रत्येक कोटि के कारीगरो के काय की देख भाल के लिए अलग अलग सुदक्ष निरीक्षक नियुक्त थे। प्रत्येक नये भवन के मान चित्र का निरीक्षण दीवाने वजारत में होता था और तब उनके निर्माण के लिए रुपया स्वीकृत किया जाता था।

सुल्तान को उद्यानो मे भी बडा प्रेम था। उसने अलाउद्दीन के ३० बागों का पुनरुद्धार कराया और दिल्ली के आस पास १२०० नये बाग लगाये। राज्य में और भी अनेक बाग बगीचे लगाये गये, जिसमे राजस्व में बडी वृद्धि हो गई। बहुत सी ऊसर भूमि तोडकर खेत बना लिये गये। यद्यपि साम्राज्य का विस्तार कम हो गया, परन्तु राजस्व में लाखो की अभिवृद्धि हो गई।

प्राचीन स्मारको की रक्षा म भी सुल्तान को बडी अभिरुचि थी। उसने अशोक के दो स्तम्भ अपने नये नगर को हटा लिये। स्तम्भो के लेखो को पढने के लिए उसने विद्वान ब्राह्मणो को बुलवाया, परन्तु वे उस भाषा और लिपि से बिल्कुल अनभिज्ञ थे, जो उन पर लिखी हुई थी। कुछ लोगो ने सुल्तान को प्रसन्न करने के लिए यह कह दिया कि इन पर लिखा है फीरोज के आने तक इन स्तम्भो को कोई हटा नहीं सकेगा।

शिक्षा की उन्नति—यद्यपि फीरोज अपने चचेरे भाई मुहम्मद तुगलक की भाँति प्रकाण्ड विद्वान् नहीं था, परन्तु विद्या की उन्नति से उसको बडा प्रेम था। वह शेखो और विद्वानो का आदर करता था और अपने अंगूरी महल में उनका हृदय से स्वागत करता था। वह उन्हे पेंशन और पुरस्कार देता था। साम्राज्य के सभी भागो में विद्वानो को प्रोत्साहन देना उसने राज्य की नीति बना दी थी। उसको इतिहास से भी प्रेम था। जिया बर्नी तथा शम्से सिराज अफीफ ने अपनी रचनाएँ उसी के राजत्व काल में लिखी। इसके अतिरिक्त विधान और धर्म पर अनेक ग्रन्थ लिखे गये। उसने अनेक महाविद्यालय और मठ खुलवा दिये

जहा मनुष्य अध्ययन तथा चिंतन करते रहते थे। प्रत्येक महाविद्यालय के साथ एक मसजिद रहती थी ।

अब्दुलवकीनहावदी की पुस्तक मासिर रहीमी में लिखा है कि उसन पचास मदरसे खोले। निजामुद्दीन और फरिश्ता का अनुमान है कि उनकी सख्या तीस थी। फीरोज न भी अपनी आत्मकहानी फतूहात में इनका वणन किया ह। फीरोजवाद का फीरोजशाही मदरसा, अन्य मदरसा की अपेक्षा उत्तम था। इसको प्रचुर धन की स्वीकृति थी। सुल्तान ने सस्कृत के कई ग्रथा का अनुवाद फारसी में कराया। इनमें से एक दलायले फीरोजशाही था, जो नगरकोट की विजय मे मिला था।

खानजहाँ मकबूल—फीरोज के राज्य काल का वणन तव तक पूरा नही हो सकता, जब तक उसके योग्य और अध्यवसायी वजीर खानजहा मकबूल का कुछ वर्णन न किया जाय। वह वास्तव मे तलगाने का हिन्दू था, फिर पीछे मुसल्मान हो गया था। सुल्तान मुहम्मद तुगलक के समय में उसको शासन-सम्बन्धी कार्यों का बडा अनुभव हो गया था। उसने उसे मुल्तान की जागीर दे दी थी। जव फीरोज गद्दी पर बठा, तो उसने खानजहा को प्रधान मत्री बनाया। अहमद बिन अयाज निकाल दिया गया। जब सुल्तान सुदूर देशो के आक्रमण क लिए चला जाता था, तो वह राजधानी में प्रधान मत्री को ही छोड जाता था और वह इतनी योग्यता तथा तत्परता से राज्य का काम सँभालता था कि सुल्तान की चिरकालीन अनुपस्थिति का भी शासन प्रबध पर कुछ प्रभाव न पडता था। वह बडा कुशल राजनीतिज्ञ था। परन्तु तत्कालीन उच्च पदस्थ सभी लोगो की भाँति वह 'हरम' के आनन्द का प्रेमी था। कहा जाता ह कि उसके हरम में विभिन्न देशो की दो सहस्र स्त्रियाँ थी और अनेको बच्चे थे। उन सब का प्रबन्ध राज्य की ओर से बडी उत्तमता से होता था। खानजहाँ बडी वृद्धावस्था तक जीवित रहा। जब १३७० ई० में उसकी मृत्यु हो गई तो उसका पुत्र जूनाशाह, जो मुहम्मद तुगलक के समय में मुल्तान में पदा हुआ था, उसके स्थान पर नियुक्त हो गया और उसको वही उपाधि दी गई जो उसके पिता को इतने दिन से विभूषित कर रही थी।

फीरोज के अंतिम दिन—फीरोज के अन्तिम दिन दुःख और चिंता में व्यतीत हुए और विभिन्न वर्गों और दलों के झगड़ों और पारस्परिक संघर्ष के कारण उसका जीवन चिंताकुल रहने लगा। वृद्धावस्था में दुर्बल हो जाने के कारण उसको अपने वटुन म अधिकार खानेजहाँ को दे देने पड़े, परन्तु उसके मंत्री के गर्व और धृष्ठ व्यवहार के कारण पुराने तथा अनुभवी नवाब तंग आ गये। राजकुमार मुहम्मद को अपने मार्ग से हटाने के लिए उसने सुल्तान से कहा कि राजकुमार कुछ असंतुष्ट अमीरों के साथ षड्यंत्र कर रहा है और उसे मारना चाहता है। दुर्बल हृदय फीरोज को उस चतुर मंत्री ने इस प्रकार सुझाया कि उसने शीघ्र ही षड्यंत्रकारियों के पकड़ने की आज्ञा दे दी। परन्तु राजकुमार ने और भी चतुराई से काम लिया और बड़े कौशल से शत्रु के प्रयासों को असफल कर दिया। उसने अपने हरम की स्त्रियों के लिए शाही हरम में जाने की अनुमति ले ली। अपना कवच आदि पहनकर वह एक पालकी में बैठ गया और राजभवन में पहुँचकर अपने पिता के चरणों में गिर पड़ा और क्षमा मांगी। उसको क्षमा मिल गई और सुल्तान ने उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। इस प्रकार अपनी स्थिति को सुरक्षित करके राजकुमार अपना समय विलास में व्यतीत करने लगा। उसने अपने अयोग्य प्रियपात्रों को सम्मानित पदों पर नियुक्त किया। ऐसा करने से उसका विरोध होने लगा। और गृहयुद्ध प्रारम्भ हो गया। नवाबों ने वृद्ध सुल्तान की शरण ली और उसकी उपस्थिति का शत्रु पर जादू का सा प्रभाव पड़ा। राजकुमार सिरमौर की पहाड़ियों की ओर भाग गया और देश में शान्ति स्थापित हो गई। फीरोज ने एक बार फिर सब राजशक्ति अपने हाथ में ले ली, परन्तु वृद्धावस्था के कारण वह राज काज सँभालने में असमर्थ रहा। अपने पौत्र तुगलकशाह बिन फतहखाँ को राज्य भार सौंपना उसके जीवन का अंतिम सार्वजनिक कार्य था। इसके कुछ दिन पश्चात् ही अस्सी वर्ष की अवस्था में वृद्ध सुल्तान की रमजान के महीने में सन् ७९० हि० (१३८८ ई०) में मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात् प्रतिद्वंद्वी राजकुमारों और दलों में शक्त्यापहरण के लिए बड़ा संघर्ष हुआ। इसका वर्णन अगले अध्याय में किया जायगा।

साम्राज्य के पतन के कारण—फीरोज तुगलक की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली साम्राज्य का महत्त्व घट चला। अब वह एक छोटे से सामन्त राज्य के बराबर ही रह गया था। मुहम्मद तुगलक के समय के उपद्रवों के कारण साम्राज्य की शक्ति बहुत कुछ नष्ट हो चुकी थी। जो प्रान्त राज्य से बाहर निकल चुके थे, उनको प्राप्त करने का फीरोज ने कोई उद्योग नहीं किया। इस नीति के परिणाम स्वरूप साम्राज्य का विकेन्द्रीकरण प्रारम्भ हो गया और एक एक करके उसके अधीन प्रान्त साम्राज्य से निकलने लगे। महत्त्वाकांक्षी अमीरों तथा राज्यद्रोही शासकों ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया और वे केन्द्रीय सरकार की आज्ञाओं का उल्लंघन करने लगे। केन्द्रीय सत्ता अपना अधिकार स्थापित करने में असमर्थ थी। चौदहवीं शताब्दी के मुस्लिम राज्य का मूलभूत सिद्धान्त शक्ति था। और अब राज्य की दुर्बलता के कारण लोगों के मन से भय और श्रद्धा का एकदम लोप हो गया था। फीरोज से प्रजा डरती न थी, उससे प्रेम करती थी। दरबार के विलास तथा आनन्दपूर्ण जीवन के कारण मुसलमानों का प्राचीन पौरुष और स्फूर्ति नष्ट हो गई थी। युद्ध के समय में वे एक अव्यवस्थित भीड़ के रूप में हो जाते थे। जागीर प्रथा के भी बड़े अवगुण थे। प्राय सामन्त और जागीरदार स्वतन्त्र होने की चेष्टा करते थे। फीरोज के दासों की संख्या भी बहुत बढ़ गई थी और ये भी उसकी दुर्बलता का एक बहुत बड़ा कारण बन गये थे। दासों की प्रथा बिल्कुल बिगड़ चुकी थी। अब दास न इतने योग्य थे और न स्वामिभक्त थे, जितने अलाउद्दीन और बलबन के समय के दास थे। वे बुरे-बुरे षड्यन्त्रों में भाग लेते थे और देश की तत्कालीन अव्यवस्था को बढ़ाते ही थे। बाद के तुगलक सुल्तानों की अयोग्यता के कारण अनेक विद्रोह होने लगे। दोआब में ऐसे विद्रोह विशेष हुए, जहाँ जमींदारों और खूतों ने राजस्व देना बन्द कर दिया और छोटे-छोटे निरंकुश शासक बन गये। राजस्व प्राप्त न होने के कारण राज्य प्रबंध अव्यवस्थित हो चला। जो राज्य केवल सैनिक शक्ति पर ही निर्भर था, उसका इस प्रकार बालकों के घरोंदों की भाँति ध्वस्त हो जाना अनिवार्य ही था, जब उसका संचालन ऐसे लोगों के हाथों में हो जो न योद्धा ही थे और न नीतिज्ञ ही और जो स्वार्थी लोगों के हाथ की कठपुतली बने हुए थे। फीरोज के उत्तराधिकारियों की अयोग्यता

के कारण साम्राज्य और शीघ्रता से छिन्न भिन्न होने लगा। पतन के बीज उसी के राज्यकाल म बोये जा चुके थ।[1]

फीरोज के अशक्त उत्तराधिकारी—फीरोज के पश्चात् राजकुमार फतहखाँ का पुत्र तुगलक शाह दिल्ली का सुल्तान हुआ। उसने गयासुद्दीन तुगलक द्वितीय की उपाधि धारण की। इस युवक और अनुभवहीन सुल्तान को अपनी कठिनाइयो का तथा राज्य के सकटो का कुछ अनुमान ही न था। वह भोग विलास में ग्रस्त हो गया और राज्य के कार्यों के प्रति उदासीन हो गया। उसके आचरण से उच्च राजपदाधिकारी तथा अमीर असतुष्ट हो गय और जब उसने जफरखा के पुत्र अबूबक्र को कारावास कर दिया, तो उसे राजच्युत करने के लिए उन्होंने उसके विरुद्ध षड्यन्त्र करना प्रारम्भ कर दिया। षड्यन्त्रकारी राजमहल में घुस गये। सुल्तान को उनकी चालो का पता लग गया और वह वजीर को लेकर नदी की ओर चला गया परन्तु एक षडयन्त्रकारी ने उसका पीछा किया और ज्यो ही वह नदी को पार करनेवाला था त्यो ही उसे पकड लिया और तत्काल १९ फरवरी सन् १३८९ को मार डाला। उसके बाद अबूबक्र सुल्तान हुआ। धीरे धीरे दिल्ली के ऊपर उसका आधिपत्य जम गया और दिन प्रतिदिन उसका प्रभाव बढने लगा, परन्तु समाना के अमीर की हत्या के समाचार से साम्राज्य

---

१ *लेनपूल न लिखा ह कि साम्राज्य के पतन का एक कारण यह भी था कि हिन्दुओ* और मुसल्मानो के पारस्परिक विवाह होने लगे थे। परन्तु यह सत्य प्रतीत नही होता। स्वय फीरोज हिन्दू माँ से उत्पन्न था परतु हिन्दुओ के प्रति वह बिल्कुल पक्षपात नही दिखाता था। इसके विपरीत वह कट्टर मुसलमान था, जो मुस्लिमेतर जातियो को सताना एक बहुत बडा गुण समझता था। उत्तरकालीन इतिहास ने लेनपूल के कथन की पुष्टि नही की ह। मुगल सम्राट अकबर महान ने साम्राज्य को दृढ करने के लिए ववाहिक सम्बन्धो की नीति का अनुसरण किया था और उसकी नीति अत्यधिक सफल भी हुई। उसके दो उत्तराधिकारियो के राज्यकाल म साम्राज्य सुदृढ बना रहा। साम्राज्य का पतन तभी हुआ जब औरगजेब ने उस धार्मिक सहिष्णुता की नीति का परित्याग किया जो उसके प्रपितामह ने प्रारम्भ की थी।

की शान्ति क्षीण हो गई। वह अमीर सुल्तान फीरोज के छोटे पुत्र शाहजादा मुहम्मद के विरुद्ध भेजा गया था। इस अवसर से शाहजादा मुहम्मद ने लाभ उठाया। समाना पहुँचकर उसने अपने को सम्राट् घोषित कर दिया। दिल्ली के अमीरो और नवाबो से सहायता का वचन पाकर वह दिल्ली की ओर चला, और उसके निकट पडाव डाला। गृह युद्ध की पूरी तैयारी हो गई। महत्त्वाकांक्षी नवाब और दास कभी इधर और कभी उधर सहायता की बात कर कभी एक पक्ष को सबल कर देते कभी दूसरे को। मेवात का बहादुर नाहिर अबूबक्र से जा मिला और उसकी सहायता से फीरोजाबाद के युद्ध में दिल्ली की सेना ने शाहजादा मुहम्मद को बुरी तरह से हरा दिया। पराजित राजकुमार दोआब में पहुँचा और नवीन मित्रो की खोज करने लगा। उसकी सेना अपनी हार के कारण क्षुब्ध थी। उसने दोआब प्रान्त को लूटना शुरू कर दिया। बहुत से दिल्ली के अमीरो की रियासतो को उन्होने लूट लिया। जमीदारो और सरदारो से लडाइयाँ होने लगी। इन अनाचारो के प्रति अबूबक्र की उदासीनता देखकर बहुत से अमीर उसके विरुद्ध हो गये और शत्रु पक्ष से जा मिले। अपनी सेना को सुगठित करके मुहम्मद जलेसर लौट आया यहाँ उसने पडाव डाला और युद्ध की तयारी करने लगा। पानीपत के निकट युद्ध हुआ। भाग्य न फिर अबूबक्र का साथ दिया। मुहम्मद के पुत्र शाहजादा हुमायूँ की हार हुई। मुहम्मद को दिल्ली से अब भी कुछ सहायता मिल रही थी। उसने साहस नहीं छोडा और जब अबूबक्र बहादुर नाहिर की सहायता लेने मेवात चला गया तो असन्तुष्ट नवाबो ने उसे दिल्ली आने के लिए आमन्त्रित किया। इस निमत्रण को पाकर मुहम्मद दिल्ली पहुँचा उसके सहयोगियो ने उसका स्वागत किया। इस प्रकार दिल्ली में प्रवेश कर मुहम्मद राजमहल में जा ठहरा और नासिरुद्दीन मुहम्मद के नाम से अगस्त सन् १३९० ई० में फीरोजाबाद नामक स्थान पर राज गद्दी पर बैठा। अपनी शक्ति का सुदृढ करने के लिए उसने फीरोजशाही गुलामो को जो अबूबक्र से सहानुभूति रखते थे, हाथियो के सरक्षण से पृथक् कर दिया। उन्होने इसके विरुद्ध प्रार्थना की, परन्तु नये सुल्तान ने उनकी एक न सुनी और एक दिन-रात को वे अपने स्त्री बच्चो को लेकर अबूबक्र के पास चले गये। सुल्तान ने अपने पुत्र शाहजादा हुमायूँ और इस्लामखाँ को अपने प्रतिद्वन्द्वी और

पुराने दासो के विरुद्ध युद्ध करने के लिए भेजा। इस्लामखा ने बडे कौशल से अबूबक्र को हटा दिया। जब उसने यह देखा कि अब बचने की कोई आशा नही है तो आत्मसमर्पण कर दिया। सुल्तान ने बहादुर नाहिर को क्षमा कर दिया और अबूबक्र को बन्दी बनाकर मेरठ के दुर्ग मे भेज दिया। कुछ दिन बाद वही उसकी मृत्यु हो गई।

सुल्तान अब दिल्ली लौट आया परन्तु दोआब के जमीदारो के विद्रोह के कारण उसकी विजय का बहुत कुछ फल नष्ट हो गया। इटावे के जमीदार नरसिंह का विद्रोह सफलतापूर्वक दबा दिया गया परन्तु इस्लामखाँ के राजद्रोह के कारण सुल्तान को बडी चिन्ता हुई। अपने एक कुटुम्बी के साक्ष्य के आधार पर उसने इस्लाम खा को मृत्यु-दण्ड दिया। परन्तु इन सब विद्रोहो से बडा विद्रोह मेवात के बहादुर नाहिर का हुआ।

वह दिल्ली के समीपवर्ती प्रदेश तक आक्रमण करने लगा। सुल्तान का स्वास्थ्य कुछ बिगड चला था तो भी उसने बहादुर को पराजित कर दिया जिसके कारण वह अपने दुर्ग मे लौट जाने के लिए बाध्य हुआ। सुल्तान का स्वास्थ्य दिन पर दिन बिगडने लगा और पन्द्रह जनवरी सन् १३९४ ई० को उसकी मृत्यु हो गई। उसके पश्चात उसका पुत्र हुमायूँ सुल्तान हुआ परन्तु एक भीषण अव्यवस्था के कारण उसका जीवन-सूत्र टूट गया और कुछ दिन बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। अब मुहम्मद के सबसे छोटे पुत्र शाहजादा महमूद को सिंहासन मिला वह नासिरुद्दीन महमूद तुगलक के नाम से राज काज करने लगा। उसके सामने अनेको प्रकार की कठिन परिस्थितिया उपस्थित थी। राजधानी में दलबन्दी के कारण राज्य प्रबन्ध असम्भव हो रहा था। राज्य के बाहर हिंदू राजा और मुसलमान शासक खुल्लमखुल्ला दिल्ली राज्य की आज्ञा की अवहेलना करते थे। कन्नौज से लेकर बगाल और बिहार तक सारे देश में अव्यवस्था फैल गई और अपनी सीमाओ के भीतर जागीरदार और जमीदार एक तरह से पूर्ण रूप से स्वतन्त्र बन गये। जौनपुर में ख्वाजा जहाँ मलिक-उश शर्क (प्राच्यधिपति) बनाया गया था, वह स्वतन्त्र हो गया। उत्तर में खोखरो ने विद्रोह किया, गुजरात स्वतन्त्र हो गया और कुछ दिन बाद ही मालवा और खानदेश भी स्वतन्त्र हो गये। राजसत्ता के लिए इस अव्यवस्था को रोकना असम्भव हो गया।

दिल्ली की दलबन्दी के कारण अवस्था और शोचनीय हो गई। कुछ लोगों ने फीरोज तुगलक के पौत्र नुसरत खाँ को राजगद्दी के लिए खड़ा किया। फीरोजाबाद के अमीरों और मलिकों ने पुराने राज्य के गुलामों से मिलकर नुसरत का साथ दिया और दिल्ली के लोगों ने महमूद तुगलक की सहायता दी। इस प्रकार दो सुल्तान खड़े हो गये। अनेक नेता भी खड़े हो गये। इनमें बहादुर नाहिर, मल्लूइकबाल और मुकरब खाँ प्रधान थे। निरन्तर युद्ध होने लगे, दोनों पक्ष अपनी अपनी विजय की आशा में युद्ध करने लगे। परन्तु कोई निश्चित फल न निकला। प्रान्तीय शासकों ने इस गृह-युद्ध में कोई भाग तो न लिया, परन्तु वे प्रतिद्वन्द्वी दलों की हार-जीत को बड़े ध्यान से देखते रहे। सन् १३९७ ई० के अन्त में समाचार मिला कि तैमूर लंग ने सिन्ध नदी को पार कर उच्छ को घेर लिया है। विदेशी सेना के आगमन का प्रभाव राजधानी पर तुरन्त पड़ा और बड़ी शीघ्रता से विभिन्न दलों की शक्तियों में परिवर्तन होने लगा। मल्लू इकबाल नुसरत खाँ की ओर चला गया। नये मित्रों ने एक दूसरे का साथ देने की शपथ ली, परन्तु यह शपथ बहुत दिन न चली। सुल्तान महमूद और उसके शक्तिशाली सहयोगी मुकरबखाँ और बहादुर नाहिर ने पुरानी दिल्ली पर अधिकार कर लिया। मल्लू इकबाल ने नुसरत पर छल से आक्रमण किया परन्तु उसके षड्यन्त्र का अनुमान करके शाहजादा पानीपत तातारखाँ के पास चला गया। मल्लू इकबाल अब अपने प्रबल प्रतिद्वन्द्वी मुकरब की ओर आकृष्ट हुआ। उसने उसे राजधानी के बाहर निकालने का निश्चय किया। दोनों में घोर युद्ध हुआ, दो महान बाद कुछ अमीरों के बीच में पड़ने से उन दोनों में सन्धि हो गई परन्तु मल्लू ने इन सन्धि के नियमों का पालन नहीं किया। उसने मुकरब के घर पर आक्रमण किया और बड़ी निर्दयता से उसको मरवा डाला। मुकरब की मृत्यु से सुल्तान का दाहिना हाथ ही टूट गया। अब उसकी शक्ति बिल्कुल नष्ट हो गई और वह मल्लू इकबाल के हाथ की कठपुतली रह गया। उसने राज्य प्रबन्ध को व्यवस्थित करने की फिर चेष्टा की परन्तु विदेशी आक्रमण का दृश्य उसकी आँखों के सामने नाच रहा था इतने में उसे भयावह समाचार मिला कि अपार सेना के साथ तैमूर हिन्दुस्तान को रौंदता चला आ रहा है।
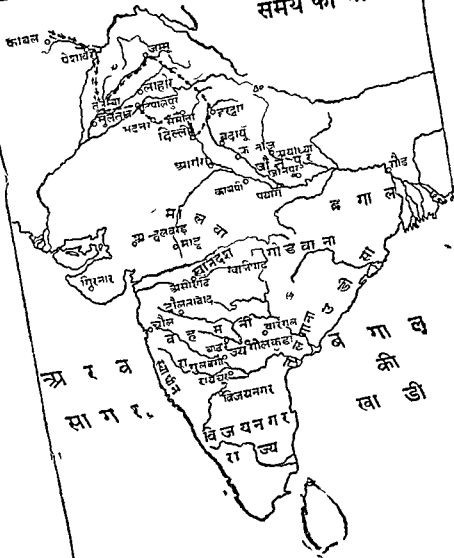
तैमूर का आक्रमण (१३९८ ई०)—तैमूर का जन्म सन् १३३५ ई० में मावरा उनहर (Transoxiana) में केश नामक स्थान पर हुआ था जो समरकन्द से ५० मील दूर है। वह बरलस वश की गुरकन शाखा के प्रधान अमीर तुरगे का पुत्र था, यह तुर्कों का बडा उच्च वश समझा जाता ह। तमूर हाजी बरलस का भतीजा था। ३३ वष की अवस्था मे वह चगताई तुर्कों का प्रधान बन गया। फारस और उसके आस-पास के देशो से उसका निरन्तर युद्ध चलता रहा। मध्य एशिया के देशो पर पूण अधिकार करके उसने भारत पर आक्रमण करने का निश्चय किया, जो उस समय बडी अव्यवस्थित दशा में था। इस आक्रमण का उद्देश्य "देश को पवित्र कर देना और कुफ् तथा अनेकेश्वर वाद के कूडे-करकट को निकाल फेंकना था।'

तमूर की सेना का अग्रभाग पीरमुहम्मद के नेतत्व में तुरन्त भारत आ पहुँचा। उसने सिध नदी को पारकर उच्छ को जीत लिया और फिर मुलतान की ओर बढा और छ महीने क घेरे के बाद उस भी जीत लिया। अपने विस्तृत साम्राज्य से बहुत बडी सेना इकट्ठी करके तमूर ने २४ सितम्बर सन् १३९८ ई० को हिन्दूकुश के माग स आकर सिध नदी को पार किया। जब वह दिपालपुर के निकट पहुँचा तो वहा के लोग भय के कारण भाग गये और उन्होन भटनर में शरण ली। इन लोगा ने नगर के शासक मुसाफिर काबुली को मार डाला जिसको पीरमुहम्मद ने नगर का शासक नियुक्त किया था। भटनेर का दुग हिन्दुस्तान भर में प्रसिद्ध था तमूर के सेनापतियो ने दुग पर दाहिने और बायें दोना ओर से आक्रमण किया और उस जीत लिया। वहाँ के राय ने आत्म-समपण कर दिया, परन्तु भटनेर के निवासियो को बडा कठोर दण्ड मिला। स्त्री पुरुष मार डाले गये, उनका सामान छीन लिया गया तथा उनके मकान गिरा दिये गये। नगर का दुग मटियामेट कर दिया गया।

भटनेर स तमूर सिरसुती (सरस्वती) की ओर चला और उसे बडी सरलता से जीत लिया। जब वह कथल पहुँचा जो समाने से ३४ मील की दूरी पर है, तो दिल्ली पर आक्रमण करने की तयारी करने लगा। उसकी सेना का आना सुनकर नगर निवासी भाग गये। अपना घर और सामान वह आक्रमणकारियो के लिए छोड गये। एक नगर के पश्चात् दूसरा नगर आत्मसमपण करता गया।

तमूर जहाँपनाह पहुँचा। यह रमणीक स्थान फीरोज तुगलक ने दिल्ली से ६ मील दूर बनाया था। उसने समीपस्थ देश को रौंद डाला। सिपाहियों को आज्ञा मिल गई कि वे लूट द्वारा अपने लिए भोजन और अपने पशुओं के लिए चारा प्राप्त कर लें। जब तैमूर दिल्ली के निकट पहुँचा तो उसने आज्ञा दी कि एक लाख हिन्दू जो उसके डेरे में थे मार डाले जायँ क्योंकि उसे यह आशंका हुई कि महासमर के दिन वे कहीं शत्रु पक्ष मे न जा मिलें। मौलाना नासिरुद्दीन उमर ऐसे पवित्र व्यक्ति ने जिसने अपने जीवन में एक चिडिया भी न मारी थी पन्द्रह हिन्दुओं का हाथ किया जो उसके यहाँ कद थे।

तमूर ने अपनी सेना की व्यूह-रचना की और युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गया। मुल्तान महमूद और मल्लू इकबाल ने एक सेना एकत्रित की जिसमें १० सहस्र अच्छे घुडसवार ४० सहस्र पदल और १२५ हाथी थे। दिल्ली के बाहर दोनो सेनाओ की मुठभेड हुई। दिल्ली की सेना जी तोडकर लडी, परन्तु उसकी हार हुई। महमूद और मल्लू इकबाल युद्ध क्षेत्र से भाग गये। दिल्ली के दुर्ग पर तमूर ने अपना झडा फहराया। उसने नगर को मथ डाला, सहस्रो नगर निवासियों को तलवार के घाट उतारा। जफरनामे के अनुसार स्त्री पुरुष दास बना लिए गये और अपार लूट का सामान शत्रु के हाथ लगा। अनेको सहस्र कारीगर और शिल्पकार नगर से इकटठे किये गये और उन शाहजादो, अमीरो और आगाओ में बाँट दिये गये, जिन्होने इस युद्ध में सहायता दी थी।

तैमूर पन्द्रह दिन तक नई दिल्ली मे ठहरा और खूब आनन्दोत्सव में मग्न रहा। इसके पश्चात वह मेरठ की ओर गया और वहाँ से हरिद्वार पहुँचा। वहा हिन्दुओ और मुसल्मानो से घोर युद्ध हुआ, इसके बाद उसने शिवालिक की पहाडियो पर चढाई की। वहाँ के राय की हार हुई और विजयी सेना के हाथ लूट का बहुत सा सामान लगा।

शिवालिक प्रदेश की विजय के पश्चात् तमूर जम्मू पहुँचा। वहाँ के राजा की भी हार हुई। वह बन्दी कर लिया गया और मुसलमान होने के लिए बाध्य किया गया।

[illegible] का काय अब समाप्त हुआ। तमूर ने सोचा अब लौट चलने का

समय ह। लाहौर, मुलतान और दिपालपुर की जागीरे खिज्र खाँ के हाथो में छोडकर वह समरकन्द के लिए चल दिया।

तैमूर के आक्रमण का प्रभाव—तैमूर के आक्रमण से भारतवष में वडी अव्यवस्था फल गई। दिल्ली की राज्य सत्ता नष्ट हो गई। दिल्ली के आसपास तथा दूरस्थ प्रान्तो में सब जगह अराजकता का साम्राज्य हो गया। हृदयहीन तथा निमम जगली जातियो के युद्ध से ही प्रजा एक तो पीडित थी जो धमान्धता रक्त पिपासा तथा लूट खसोट स ही प्रेरित होकर यहाँ आये थे। दूसरे देश मे घोर दुर्भिक्ष और महामारी फल गई। इससे अनेका मनुष्य और पशु मर गय और खेती रुक गई। सामाजिक व्यवस्था भी बिगड गई, राजनीतिक सत्ता अशक्त हो गई। देश म शान्ति और व्यवस्था स्थापित न हो सकी। ऐमी दशा मे सैनिका के अनक दल प्रजा को तरह तरह से पीडित करने लगे। सेना में भी दलबन्दियाँ और कूटनीति चलने लगी। स्वाथ साधन ही मूल मत्र हो गया। माच १३९९ ई० में सुल्तान नुसरतशाह ने जो दोआब की ओर भाग गया था, दिल्ली पर अधिकार कर लिया। परन्तु इक्बाल खाँ ने शीघ्र ही दिल्ली पर अधिकार कर लिया। दोआब के कुछ जिले और राजधानी की निकटस्थ कुछ जागीरें उसका आधिपत्य मानती थी[१]। मल्लू इक्बाल ने धीरे धीरे अपना अधिकार

---

१ शप साम्राज्य स्वतत्र जागीरा में बँटा हुआ था—तारीख मुबारिकशाही इल्यिट भाग ४ पृष्ठ ३७

साम्राज्य में प्रमुख जागीरे निम्न थी —

१—दिल्ली और दोआब	इक्बाल खाँ
२—गुजरात इसके सब जिले तथा अधीन देश	जफर खाँ वजीहुल मुल्क
३—मुल्तान, दिपालपुर और सिन्ध के कुछ भाग	खिज्र खाँ
४—महोवा और काल्पी	महमूद खाँ
५—कन्नौज, अवध, कडा, दलमऊ, सडीला, बहराइच, बिहार और जौनपुर	ख्वाजाजहाँ
६—धार	दिलावरखाँ
७—समाना	गालिबखाँ
८—बियाना	

जमा लिया और १४०१ ई० में सुल्तान महमूद उससे आ मिला। उसने उसका राजधानी मे स्वागत किया। परन्तु अब वास्तविक शक्ति इकबाल के हाथ में थी। सुल्तान महमूद इससे मन ही मन बडा चिढता था। उसके ऊपर जो प्रतिबन्ध लगाये गये थे वे उसे असह्य थे। उसने जौनपुर के सुल्तान इब्राहीमशाह से सहायता मागी, परन्तु वह उसे प्राप्त न हुई, और इधर इकबाल से भी सहयोग प्राप्त करने में असमर्थ होकर सुल्तान कन्नौज में जाकर बस गया। वहा सेना से निकाले हुए सिपाही तथा अन्य सनिक उससे मिल गये। इक्बाल ग्वालियर के राजा भीमदेव को दण्ड देने के लिए गया परन्तु उसे घेरा उठाकर दिल्ली लौटना पडा। इटावे के हिन्दू जमीदारो के विरुद्ध उसका आक्रमण सफल हुआ, परन्तु जब वह मुल्तान की ओर बढा तो वहा के शासक खिज्र खाँ ने उसे रोका और परिणामस्वरूप जो युद्ध हुआ उसमे सन् १४०५ ई० में वह मार डाला गया। इक्बाल की मृत्यु से महमूद के मार्ग की बहुत बडी बाधा हट गई और दौलतखाँ तथा अन्य अमीरो का निमन्त्रण पाकर दिल्ली पहुँचा, परन्तु अपने चरित्र की दुर्बलता के कारण सेना का प्रिय पात्र न बन सका और वह अपने अधिकारो का ठीक-ठीक प्रयोग न कर सका। तारीख मुबारकशाही के लेखक ने इस सकट काल की घटनाओ का सही वर्णन किया है। उसने लिखा है कि, "सारा राजकाज अव्यवस्थित था। सुल्तान अपने कर्त्तव्यो की ओर कोई ध्यान नही देता था। राजगद्दी पर स्थायी अधिकार प्राप्त करने की भी उसे कोई चिन्ता नही थी। उसका सारा समय भोग विलास मे ही व्यतीत होता था।"

सन् १४१२ ई० में सुल्तान की मृत्यु हो गई। उसी के साथ साथ जैसा फरिश्ता ने भी लिखा है दिल्ली साम्राज्य भी तुर्कों के हाथ से चला गया, जो दो शताब्दियो तक सफलतापूर्वक उस पर अधिकार किये हुए थे। उसकी मृत्यु के पश्चात् अमीरो और मलिको ने दौलतखाँ को अपना राजा चुना और उसको सहयोग दिया। दौलत खा ने राज प्रतिष्ठा ग्रहण करना स्वीकार नही किया। वह केवल सेना का ही प्रधान रहा। सकट के समय में वह देश की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझता था। इसलिए इस अर्ध राजपद को ग्रहण करने के पश्चात् दौलतखाँ ने कटेहर पर आक्रमण किया और वहाँ के हिन्दू राजाओ को पराजित

किया। इसी समय उसे यह चिन्ताजनक समाचार मिला कि जौनपुर के सुल्तान इब्राहीम ने कद्रखा को कालपी के किले मे घेर लिया है। परन्तु इस समय उसे सहायता देन के लिए दौलतखा के पास सेना नही थी। इसी समय मुल्तान के शासक और तमूर के भारतीय प्रतिनिधि खिज्र खा न दिल्ली की अव्यवस्थित दशा देखकर उस पर आक्रमण कर दिया और चार महीने के घेरे के पश्चात २३ मई सन् १४१४ को दौलतखा को आत्मसमपण करने के लिए बाध्य किया। खिज्रखां का भाग्य उदय हुआ। उसन बडी सरलता से दिल्ली पर अधिकार कर लिया और एक नये वश की नीव डाली।

सहायक ग्रन्थ

इलियट—हिस्ट्री ऑव इण्डिया भाग ३
ईश्वरीप्रसाद—हिस्ट्री ऑव मिडिअवल इण्डिया
ईश्वरीप्रसाद—हिस्ट्री आव दी कारोनाटक्स
एम० एच० आगा—राइज एण्ड फाल आव मुहम्मद बिन तुगलक
ब्रिग्ज—राइज ऑव मुहमडन पावर, भाग १
यहिया—तारीखे मुबारिक शाही (अँगरेजी अनुवाद, गायकवाड ग्रन्थमाला);
मोरलण्ड—ऐग्रेरियन सिस्टिम्स आव मुस्लिम्स
किंग—हिस्ट्री ऑव दी डक्न

—————

अध्याय ६

साम्राज्य का ह्रास

(अ) प्रान्तीय राजवंशों का अभ्युदय

मालवा—दसवी शताब्दी में माल्वा राज्य पर परमार राजपूतो का अधिकार हो गया था। उनके राज्यकाल में इसकी बडी उन्नति हुई। धार के राजा भोज के समय में माल्वा बडा प्रसिद्ध हो गया। १२३५ ई० में इल्तुतमिश ने उज्जन पर आक्रमण किया और महाकाली के प्रसिद्ध मंदिर को गिरा दिया। सन् १३१० ई० मे अलाउद्दीन ने इसे जीत लिया। तब से फीरोज तुगलक की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली साम्राज्य के ह्रास तक उस पर मुसलमान शासको का ही अधिकार रहा। सन् १४०१ ई० में फीरोज तुगलक के जागीरदार और मुहम्मद गोरी के वंशज दिलावर खाँ ने, तमूर के आक्रमण के पश्चात् जो अराजकता फैली उस समय, स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की और धार को अपने राज्य की राजधानी बनाया[1]। दिलावर के पश्चात् उसका पुत्र अल्पखा हुशगशाह के नाम से (१४०५ १४३४) गद्दी पर बैठा। उसने मांडू को अपनी राजधानी बनाया और इस नगर को अनेक सुन्दर भवनो से सुशोभित किया। माल्वा की स्थिति और उपजाऊ भूमि के कारण दिल्ली, जौनपुर और गुजरात के निकटवर्ती राज्यो से इसका निरन्तर युद्ध होता रहा। इस कारण इसके कोष को बडी क्षति पहुँची। गुजरात के एक युद्ध में हुशग की हार हुई और वह बंदी बना लिया गया। उसके पश्चात् उसका पुत्र गजनी खा राजा हुआ। वह बडा व्यभिचारी तथा निकम्मा था। उसको उसी के मन्त्री महमूदखा ने मार डाला जो खिलजी वंश का तुर्क था[2]। उसने राजगद्दी

१—फरिश्ता ने मालवा के राजाओ का सुसम्बद्ध वर्णन किया है। देखिए ब्रिग्स, भाग ४, पृ० १६७-२७९

२—महमूद खिल्जी मलिक मुगीस खिलजी का पुत्र था। पिता पुत्र दोनो हुशग के मन्त्री थे। हुशग के पुत्र गजनी खा का विवाह महमूद खिल्जी की बहिन से हुआ था। उसने मुहम्मद गोरी की उपाधि धारण की। इन्द्रिय लोलुप और

पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया। महमूद खिल्जी के राज्यकाल में (१४३६-६९ ई०) मालवा बडा समृद्ध और शक्तिशाली राज्य हो गया। मालवा का सुल्तान सैन्य-सचालन और युद्ध कौशल के लिए भारत में प्रसिद्ध हो गया क्योंकि वह राजपूताना और गुजरात के राणाओ और बहमनी सुल्तानो से निरन्तर युद्ध करता रहा। महमूद बडा वीर योद्धा था। युद्ध मे उसको इतना प्रेम था कि, उसका सारा जीवन छावनियो मे ही बीता। उसका शासन प्रबन्ध भी बहुत उत्तम और पक्षपात रहित तथा उदार था। फरिश्ता ने लिखा है, "कि सुल्तान महमूद बडा नम्र, वीर, न्यायप्रिय और विद्वान् था, उसके राज्य मे हिन्दू और मुसल्मान उसकी सारी प्रजा सुखी थी और सब लोगो मे मेल-जोल और सौहार्द्र था। कोई ही वर्ष ऐसा जाता हो जब वह किसी युद्ध मे भाग न लेता हो। खेमा ही उसका घर हो गया था और रणभूमि ही उसका विश्रामस्थल थी। वह अवकाश के समय इतिहास तथा अन्य राजाओ के दरबारो के वर्णन सुना करता था।

महमूद खिल्जी ने अपने राज्य को बहुत बढाया। दक्षिण में उसकी सेना सतपुडा श्रेणी तक पश्चिम में गुजरात की सीमा तक पूर्व में बुन्देलखण्ड तक और उत्तर में मेवाड और हडौती तक पहुँच गई थी। १४४० ई० में इस महत्वाकाक्षी सुल्तान ने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया परन्तु बहलोल लोदी ने सफलता पूर्वक उसका सामना किया। उसी समय चित्तौड के राणा कुम्भा से भी उसका युद्ध हुआ। परन्तु इस युद्ध का कोई परिणाम न निकला। दोनो पक्ष अपनी अपनी विजय बतलाने लगे। इस विजय के स्मारक स्वरूप राणा ने चित्तौड में विजय स्तम्भ बनवाया और खिलजी योद्धा ने भी माण्डू में अपनी विजय के स्मारक स्वरूप सात मजिल का मीनार बनवाया।

महमूद के बाद उसका पुत्र गयासुद्दीन सन् १४६९ ई० मे मालवा का शासक हुआ। उसको उसके पुत्र नासिरुद्दीन ने विष देकर मार डाला। सन् १५०० ई० में वह गद्दी पर बैठा। ऐसा प्रतीत होता है कि, उस समय नासिरुद्दीन की इस पित

शराबी होने के कारण उसने राज्य का सारा प्रबध महमूद खिल्जी के हाथो मे छोड दिया था। महत्त्वाकाक्षा से प्रेरित होकर उसने अपने स्वामी को बदी बना लिया। (ब्रिग्स भाग ४ पृ० १८६, १९१, १९३ इलियट भाग ४, पृष्ठ ५५२ ५४)

हत्या से मुसलमानो के हृदयो पर कोई प्रभाव नही पडा । एक शताब्दी बाद जहागीर ने इस घोर अपराध की निन्दा की और आज्ञा दी कि, उस पितघातक की अवशिष्ट अस्थियो को खोदकर निकाला जाय और आग में डाल दिया जाय।

नासिरुद्दीन वडा विषयी और इन्द्रिय लोलुप तथा अत्यन्त निर्दयी था। जहागीर जब सन् १६१७ ई० में वहा गया तो उससे कहा गया कि उसके हरम में १५ सहस्र स्त्रिया थी। वे अनेको कलाओ और विद्याओ मे कुशल थी। जहा कही भी वह किसी सुन्दर कुमारी की चर्चा सुनता वहा से उसे विना लाये नही रहता था। मदिरा के नशे में एक बार जब वह कालियदह झील में गिर पडा, तो उसके किसी सेवक को यह साहस न हुआ कि, उसे निकाले, क्योकि पहले इसी प्रकार के अपराधो पर उसने उनको वहुत पीटा था। इस प्रकार वह डूबकर मर गया। सन् १५१० ई० में उसके पश्चात् महमूद द्वितीय गद्दी पर बैठा। उसने मुसलमान अमीरो का दमन करने के लिए राजपूतो से सहयोग प्राप्त किया जो राज्य में बडे शक्तिशाली हो गये थे। उसने एक राजपूत सरदार मेदिनीराव को अपना मत्री बनाया। परिणाम यह हुआ कि, दरवार में राजपूतो का प्रभाव बढ गया। तव उसको अपने शक्तिशाली मत्री की ओर सन्देह होने लगा और उसे निकालने के लिए उसने गुजरात के बादशाह मुजफ्फरशाह से सहायता मांगी। महमूद भी युद्ध में विश्वास करता था। एक वार वह इसी कारण मेवाड के प्रसिद्ध राणा साँगा के साथ उसका सघर्ष हुआ। राणा साँगा ने उसे पराजित कर दिया परन्तु उदारता से प्रेरित होकर उसने उसे छोड दिया और राज्य भी लौटा दिया। बुद्धिहीन सुल्तान ने इस उदारता को नही समझा और राणा के उत्तराधिकारी पर चढाई कर दी। राणा के मित्र गुजरात के बादशाह बहादुरशाह ने उसे पराजित कर दिया और मार डाला। शाही घराने के सब सदस्य मार डाले गये परिवार का केवल एक सदस्य बचा जो हुमायूँ के दरवार में था। १५३१ ई० में माल्वा का राज्य गुजरात में मिला लिया गया और जब तक हुमायूँ ने इसे न जीत लिया तब तक उसी में सम्मिलित रहा। हुमायूँ ने १५३५ ई० में बहादुरशाह को माल्वा से निकाल दिया और मन्दसौर और माण्डू नामक स्थानो पर उसे हरा दिया जब दिल्ली पर

शेरशाह का अधिकार हुआ तो उसने मालवा प्रान्त को अपने मित्र शुजाअखाँ को दे दिया। उसकी मृत्यु होने पर उसका पुत्र मलिक बायजीद गद्दी पर बैठा जो बाजबहादुर के नाम से प्रसिद्ध है।

सारंगपुर की राजकुमारी रूपमती से प्रेम करने के कारण दन्तकथाओं और काव्यों में वह बड़ा प्रसिद्ध हो गया। १५६२ ई० में अकबर के सेनापतियों आदमखाँ और पीर मुहम्मद ने बड़ी निर्दयता से मालवा को जीता और मुगल-साम्राज्य में मिला लिया। कुछ संघर्ष के पश्चात् बाजबहादुर ने अकबर का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। अकबर ने भी उसे दो हजार अश्वारोहियों का अध्यक्ष बना दिया।

गुजरात—गुजरात का सूबा भारत के बड़े उपजाऊ और धनी प्रान्तों में से था। इस कारण विदेशी आक्रमणकारियों की इस पर सदा ही दृष्टि रही। सर्वप्रथम महमूद गजनवी ने यहाँ के सोमनाथ के मन्दिर पर आक्रमण किया था इसके पश्चात अन्य मुसलमानों के आक्रमण यहाँ होने लगे। परन्तु गुजरात की स्थायी विजय अलाउद्दीन खिलजी ने की और १२९७ ई० में उसे दिल्ली राज्य में मिला लिया। इसके पश्चात् मुसलमान प्रान्ताधीशों का इस पर अधिकार रहा, जो दिल्ली राज्य के अधीन थे। परन्तु उनकी स्वामि-भक्ति केन्द्रीय राज्य की शक्ति के अनुसार घटती-बढ़ती रहती थी। तैमूर के आक्रमण के बाद जब दिल्ली राज्य में अराजकता फैल गई, तो यहाँ का सूबेदार जफरखाँ १४०१ ई० में स्वतन्त्र हो गया और उसने इसकी घोषणा भी कर दी। उसके पुत्र तातार खाँ ने कुछ असन्तुष्ट नवाबों की सहायता से अपने पिता के विरुद्ध षड्यन्त्र किया। अन्त में वह सफल हुआ और अपने पिता को बन्दी बनाकर सन् १४०३ ई० में नासिरुद्दीन मुहम्मदशाह के नाम से गद्दी पर बैठा। परन्तु उसका समय भी बहुत दिन तक न रहा उसको उसके पिता के एक विश्वस्त व्यक्ति ने विष देकर मार डाला। जफरखाँ को आसावल से बुलाया गया। नवाबों और सरदारों के परामर्श से वह मुजफ्फरशाह के नाम से गद्दी पर बैठा। उसने धार को जीत लिया और अपनी शक्ति को दृढ़ करने के लिए अन्य कई आक्रमण किये परन्तु चार वर्ष पश्चात् उसके पौत्र

अहमदशाह ने उसे विष देकर मार डाला जो स्वय राज्य करने के लिए अधीर हो रहा था।

अहमदशाह १४११ १४४१ ई०—गुजरात की स्वतन्त्रता की वास्तविक नीव अहमदशाह ने डाली। वह बडा वीर और युद्धप्रिय था। अपने छोटे से राज्य का विस्तार बढाने के लिए वह निरन्तर युद्ध करता रहा। गद्दी पर बठने के पश्चात् प्रथम वष में ही उसने प्राचीन नगर आसावल के निकट साबरमती नदी के बायें किनारे पर अहमदाबाद बसाया। उसने वहा सुन्दर भवन बनवाय और सौदागरा और कारीगरो को वहाँ बसने के लिए बुलाया। वह बडा कट्टर मुसलमान था। उसने हिन्दुओ से युद्ध किये, उनके मन्दिर तोडे और उन्हे बलपूवक मुसलमान बनाया। १४१४ ई० में उसने गिरनार पर चढाई की और वहाँ के राय को पराजित कर दिया। राय ने आत्मसपण कर दिया। १४२१ ई० में उसने मालवा पर चढाई कर दी और माण्डू का घेरा डाल दिया। हुशग की सेना दो युद्धो में पराजित हुई। कर देन का वचन देकर उसने क्षमा माग ली। १४३७ ई० में उसने मालवा के हुशग के पौत्र मसूदखाँ को सहायता देने के लिए अन्तिम बार युद्ध किया। शाहजादा मसूद अपने पितृ-घातक महमूद खिलजी के अत्याचार से पीडित होकर भागा था जिसने उसके पतृक राज्य पर भी अधिकार कर लिया था। माण्डू का घेरा डाल दिया गया और राज्यापहर्त्ता महमूद खिलजी घोर युद्ध में पराजित हुआ। परन्तु बडी भीषण महामारी क कारण इस विजय से लाभ न उठाया जा सका और सुलतान को बहुत जल्दी अहमदाबाद लौट जाना पडा, जहाँ १४४१ ई० में उसकी मत्यु हो गई। अहमदशाह बडा वीर तथा प्रतिभाशाली बादशाह था। वह अपने धम का बडा पक्का समथक था। वह आजीवन धम के नियमा का पालन करता रहा और हिन्दुओ से युद्ध करना अपना धार्मिक कत्तव्य समझता रहा। उसकी न्यायप्रियता अद्वितीय थी। उच्च वश, उच्च पद अथवा राजवश का उसकी दृष्टि में कोई मूल्य न था। एक बार उसने अपने दामाद को बाजार में बडी निदयता से प्राणदण्ड दिया था क्योकि, उसने एक निरीह पुरुष को मार डाला था। मीरात सिकन्दरी के लेखक ने ठीक ही लिखा है कि, इस दण्ड का दृष्टान्त और प्रभाव उसके राज्य के प्रारम्भ से अन्त तक रहा। और

फिर किसी सरदार या सिपाही ने किसी हत्या में भाग नहीं लिया। अहमदशाह के बाद उसका पुत्र मुहम्मदशाह बादशाह हुआ। जो "जरवक्श अथवा स्वणदाता" के नाम से विख्यात था। उसने चम्पानेर पर चढाई की परन्तु चम्पानेर ने मालवा के बादशाह से सहायता माँगी और चम्पानेर और मालवा की सम्मिलित सेना ने उसे भगा दिया। उसके सरदारो ने उसके विरुद्ध षड्यत्र किया और १४५१ ई० में उसे विष देकर मार डाला। उसका पुत्र कुतुबुद्दीन गद्दी पर बिठाया गया। उसने अपना अधिक समय चित्तौड के राणा से युद्ध करने में व्यतीत किया। साढे आठ साल तक राज्य करने के पश्चात् १४५९ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद उसका चचा दाऊद गद्दी पर बैठा। वह बडा विलासी और चरित्रहीन था। इस कारण उसके सरदार इतने रुष्ट हो गये कि, एक ही सप्ताह में उसे गद्दी से उतार दिया और उसके स्थान पर अहमदशाह के पौत्र फतहखाँ को सन् १४५८ ई० में गद्दी पर बठाया। उसने महमूद की उपाधि धारण की। वह महमूद बीगड के नाम से प्रसिद्ध है।

महमूद बीगड़ १४५८-१५११ ई०—महमूद बीगड को हम गुजरात का सबसे प्रसिद्ध बादशाह कह सकते है। 'मीरात सिकन्दरी के रचयिता' ने इन शब्दो में उसके स्वभाव का बडा रोचक वणन किया है। "राजसी ठाट-बाट और शानशौकत होने पर भी उसकी भूख बडी प्रबल थी। सुलतान के लिए गुजराती तोल का एक मन भोजन नियत था जिसमें ५ सेर भात सम्मिलित होता था। सोने के पूव इसे तयार कराकर अपनी चारपाई के आधा एक ओर और आधा दूसरी ओर रखवाता था जिससे जिस ओर उसकी नीद खुले उस ओर ही उसे खाने को मिल जाय और जिसे खाकर वह तुरन्त सो जाय। प्रातःकाल नमाज पढने के बाद वह एक प्याला शहद एक प्याला मक्खन और सौ या डेढ सौ सुनहर रग के केले खाता था। वह बहुधा कहा करता था, 'कि, यदि भगवान् महमूद को गुजरात का बादशाह न बनाता तो उसकी क्षुधा को शान्त कौन कर सकता था'।"

महमूद बडा वीर और युद्धप्रिय बादशाह था। उसने मालवा के महमूद खिलजी से निजामशाह बहमनी की रक्षा की और जूनागढ के राय को आधिपत्य

स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। उसने गुजरात के समुद्रतट के जल-दस्युओं का दमन कर दिया और वहा के हिन्दू प्रधान को आधिपत्य स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। चम्पानेर के राजपूत इसके बाद दबा दिये गये और १४८४ ई० में वहाँ का दुर्ग मुसलमानो के अधिकार में हो गया। अपनी विजय की स्मृति में महमूद ने चम्पानेर के चारो ओर दीवार बनवाई और इसका नाम मुहम्मदाबाद रखा।

पुर्तगीजों से युद्ध—१५०७ ई० में अपने राज्य काल के अन्तिम भाग में उसने पुतगीजो पर आक्रमण किया, जो पश्चिमी समुद्रतट पर बस गये थे और जिन्होंने मुसलमानो के व्यापार को क्षति पहुँचाई थी। उसने तुर्की के सुलतान से इस सम्बन्ध में सन्धि की। स्थल द्वारा जो व्यापार होता था उसमें पुतगीजो के हस्तक्षेप का अन्त कर देने के लिए उसने १२ जलयानो का एक बेडा १५,००० नाविको के साथ 'मीर होजम' के अधिनायकत्व में भारत भेज दिया और आज्ञा दी कि, उनके अधीन भारतीय राज्य पर आक्रमण किया जाय। इस युद्ध में अन्त में पुतगालवालो की विजय हुई। समुद्रतट पर उनका अधिकार जम गया और समुद्री व्यापार पर उनका एकाधिकार स्थापित हो गया।

५२ वर्ष तक राज्य करने के पश्चात् १५११ ई० में सुलतान की मृत्यु हो गई। वह बडा प्रसिद्ध बादशाह था। अपनी आदतो के कारण वह योरप भर में प्रसिद्ध हो गया जब तक वह जीवित रहा तब तक उसने बडी योग्यता से राज्य किया। मुसलमान इतिहास लेखक इन शब्दो में उसके राज्य का वर्णन करता है —

"उसने गुजरात का यश और वैभव बढाया। गुजरात के सभी पूर्ववर्ती और परवर्ती बादशाहो से वह श्रेष्ठ था। निष्पक्ष न्याय, विशाल उदारता, धार्मिक युद्धो की सफलता, इसलाम का प्रचार विवेक की स्पष्टता, जो उसके बचपन, युवावस्था और वृद्धावस्था में समान रही तथा शक्ति, साहस और विजय प्राप्ति सभी दृष्टियो से वह श्रेष्ठता का आदर्श था।"

बहादुरशाह १५२६ १५३७ ई०—दूसरा प्रसिद्ध बादशाह बहादुरशाह था। वह १५२६ ई० में गद्दी पर बैठा। वह बडा वीर और युद्धप्रिय सुलतान

था। गद्दी पर बैठने के पश्चात् तुरन्त ही वह देशो को जीत-जीतकर अपने राज्य में मिलाने लगा। उसने माण्डू और चदेरी जीत लिए और १५३४ ई० में चित्तौड पर चढाई कर दी। बहादुरशाह की उच्चाभिलाषाओ से हुमायूँ सतर्क हो गया। उसने गुजरात पर चढाई कर दी। माण्डू और चम्पानर को जीतकर उसने गुजरात पर अधिकार कर लिया। परन्तु बहादुर बडा सुयोग्य सेनापति था। उसने बडी भारी सेना इकट्ठी की और उसकी सहायता से शाही सेना को हरा दिया और गुजरात पर फिर अधिकार कर लिया। ड्यू से पुर्तगीजो को निकालने का भी उसने प्रयत्न किया, परन्तु इसमें उसे सफलता नही मिली। उन्होने उसके साथ छल किया और जहाज पर उसे बडी निर्दयता से मरवा डाला। इस समय उसकी अवस्था केवल ३१ वर्ष थी। बहादुर की मृत्यु के पश्चात् गुजरात में अव्यवस्था और अराजकता फैल गई। प्रतिद्वद्वी दल अपने अपने बादशाह खडे करने लगे। वे बहुत थोडे समय तक ही रह पाते थे। अन्त में सन् १५७२ ई० मे अकबर ने गुजरात को अपने साम्राज्य में मिलाकर इस अव्यवस्था का अन्त कर दिया।

जौनपुर—जब १३५९-६० ई० मे फीरोज ने दूसरी बार बगाल के सिकदरशाह पर चढाई की तो उसे वर्षा में जफराबाद में ठहर जाना पडा[१]। यही पर उसने एक ऐसा नगर बसाने की बात सोची, जो बगाल के आक्रमण के लिए शिविर का काम दे सके। गोमती नदी के किनारे उसने एक नया नगर

---

१ जफराबाद पुराना नगर था। हजरत चिरागे हिन्द के महल के फाटक के लेख से प्रकट होता है कि दिल्ली के सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक के समय में यह नाम विख्यात था। यह समझना भूल है कि इस नगर को १३६० ई० में फीरोज तुगलक के सूबेदार शाहजादा जफर ने बसाया था।

इस लेख की अन्तिम पक्ति इस प्रकार है—"क्योकि, इस नगर को जीतकर फिर से बसाया गया था अत इसका नाम जफराबाद रखा गया।"

फसीहुद्दीन—दी शरकी मोनूमेण्ट ऑव जौनपुर पृष्ठ १०५ (लेख सख्या १) दी शर्की आर्कीटेक्चर ऑव जौनपुर पृष्ठ ६४-६६ पर जफराबाद के विषय में 'फ्यूरर' की टिप्पणी भी देखिये।

बसाया और अपने चचेरे भाई मुहम्मद जूना की स्मृति में उसका नाम जौनपुर रखा। और उसे सुदर तथा आकर्षक बनाने में कुछ उठा न रखा। १३८८ ई० में फीरोज की मृत्यु के बाद जौनपुर के इतिहास में कोई महत्त्वपूर्ण घटना नही हुई। मुहम्मद के राज्यकाल मे ख्वाजाजहा की शक्ति बढ गई। ख्वाजाजहाँ का वास्तविक नाम सरवर था। वह हिजडा था। अपनी योग्यता ही के कारण वह इस उच्च पद को प्राप्त कर सका। १३८९ ई० में उसे ख्वाजा जहाँ की उपाधि मिली। थोडे दिन बाद जब "अधम अधर्मियो के कारण हिन्दुस्तान की जागीरो में अराजकता फल गई, तो १३९४ ई० म मुहम्मद तुगलक ने ख्वाजाजहा को मलिक-उस्-शक (पूर्वाधिपति) की उपाधि दी और कन्नौज से लेकर बिहार तक के सारे प्रदेश का राज्य प्रबन्ध सौंप दिया। नये सूबेदार ने दोआब में जाकर इटावा कोल और कन्नौज के उपद्रवो को शान्त किया और फिर अपने पद का काम करने के लिए जौनपुर पहुँचा। थोडे ही दिनो मे उसके अधिकार मे कन्नौज, कडा, अवध सडीला, दलमऊ, बहराइच, बिहार और तिरहुत की जागीरें आ गइ। उसने विद्रोही गणाधीशो को दबा दिया। उसकी शक्ति इतनी अधिक थी, कि जयनगर का राय और लखनौती का राजा उसका आधिपत्य मानते थे। उन्होने राज-कर रूप में उसे वे हाथी देने स्वीकार किये, जिन्हें वे दिल्ली भेजा करते थे। तमूर के आक्रमण के बाद जो अव्यवस्था हुई, उसके कारण ख्वाजा को अपनी महत्वाकाक्षाओ की योजना को सफल बनाने में सहायता मिली। उसने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी और 'अतबाके आजम' की उपाधि ग्रहण की।

जौनपुर का सबसे विख्यात शासक इब्राहीम था। उसकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उसने अपना नाम शम्सुद्दीन इब्राहीमशाह शरकी रक्खा था। महमूद तुगलक इकबाल खा के हाथ की कठपुतली बन रहा था। वह इस अवस्था से निकलना चाहता था। अत जब इकबाल कन्नौज पर पडाव डाले था तो महमूद शिकार खेलने के बहाने निकल गया और इब्राहीम के पास जाकर इकबाल के विरुद्ध उससे सहायता माँगी, परन्तु इब्राहीम ने उसकी प्रार्थना पर कोई ध्यान नही दिया। इस प्रकार निराश और अपमानित होकर महमूद दिल्ली लौट आया और दिल्ली की सेना की सहायता से कन्नौज पर शान्ति से

अधिकार कर लिया। इकबाल खाँ ने १४०५ में फिर कन्नौज प्राप्त करने की चेष्टा की परन्तु वह असफल रहा।

सुल्तान के सूबेदार खिजरखाँ से युद्ध करते समय इकबाल की आकस्मिक मृत्यु के कारण महमूद की सब बाधायें दूर हो गइ। दिल्ली के कुछ अमीरो ने राज्य-शासन ग्रहण करने के लिए उसे आमन्त्रित किया। इब्राहीम ने कन्नौज की जागीर फिर प्राप्त करने का यह उत्तम अवसर समझा। दिल्ली की सेना ने उसका सामना किया और उसे जौनपुर लौट जाना पडा। महमूद दिल्ली लौट आया, परन्तु ज्याही उसकी पीठ फिरी वसे ही इब्राहीम ने चार मास के घेरे के बाद कन्नौज पर फिर अधिकार कर लिया। इस सफलता से प्रोत्साहित होकर सन् १४०७ ई० में उसने दिल्ली पर भी आक्रमण किया। परन्तु गुजरात के मुजफ्फरशाह का आना सुनकर जिसने धार को भी जीत लिया था, वह जौनपुर लौट आया और सम्भल तथा बुलन्दशहर के जीते हुए जिले भी उसने छोड दिये। इसके कुछ दिन पश्चात् ही इब्राहीम ने कालपी के स्वामी कद्रखाँ पर चढाई की परन्तु उसे घेरा उठा लेना पडा। परन्तु इस बीच २३ मई सन् १४१४ को खिजरखाँ के गद्दी पर बैठने के कारण दिल्ली की राजनीति में बडा भारी परिवत्तन हो गया था। इब्राहीम विद्या और कला का बडा प्रेमी था उसने बडे-बडे विद्वानो को अपने यहाँ आश्रय दिया। इस कारण पूव में जौनपुर विद्या का प्रसिद्ध केन्द्र हो गया। तमूर के आक्रमण के कारण लोगो का जान-माल बडे सकट में था, इस कारण बहुत से विद्वान् दिल्ली छोडकर उसके दरबार में जा पहुँचे। शिहाबुद्दीन मलिक-उल-उलमा इनम सबसे प्रसिद्ध था। उसने अपने आश्रयदाता के बाद अपनी अनेक रचनायें समर्पित की थी। चिरकालीन शान्ति रहने के कारण सुल्तान ने अपनी राजधानी को अनेको सुन्दर भवनो से सुसज्जित किया। १४०८ में अटाला मसजिद पूरी हुई। यह आज तक इब्राहीम की परिष्कृत रुचि के स्मारक रूप में खडी है।

परन्तु यह शान्ति बहुत दिन न रही, तत्कालीन विषम परिस्थिति कारण दिल्ली और जौनपुर मे सघष हो गया। वर्षों तक इब्राहीम और

उत्तराधिकारियो तथा दिल्ली राज्य में युद्ध होते रहे। इनका वर्णन उपयुक्त स्थान पर किया जायगा।

बगाल—फीरोज तुगलक की दुर्बल नीति के कारण बगाल साम्राज्य से अलग हो गया था। फीरोज तथा शम्सुद्दीन और उसके उत्तराधिकारी सिकन्दरशाह के युद्धो का वर्णन पीछे हो चुका है। यद्यपि ये शासक कभी-कभी दिल्ली सुलतान को भेंट भेज दिया करते थे परन्तु वास्तव में वे स्वतन्त्र थे।

हुसेनी वश की शक्ति स्थापित हो जाने से बगाल के इतिहास का एक नया अध्याय प्रारम्भ हो गया। इस वश का प्रथम बादशाह हुसेनशाह (१४९३ से १५१९ ई०) बडा योग्य व्यक्ति था। उसने देश का शासन प्रबध बडी बुद्धिमत्ता और उत्तमता से किया। अपने राज्य के विभिन्न भागो में उसने अपनी शक्ति सुगठित की। अत उसके राज्यकाल में कोई विद्रोह नहीं हुआ। उसने मस्जिदे बनवाई तथा अन्य उदार सस्थायें खोली, विद्वानो और साधुओ को उसने वृत्तिया स्वीकृत कर दी। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र नुसरतशाह गद्दी पर बैठा। वह भी बडा विख्यात शासक हुआ है। विभिन्न देशो को जीतकर उसने अपने राज्य की सीमा बढाई। देश में उसका मान बढ गया।

अपने स्मृति ग्रन्थ में बाबर ने उसे हिन्दुस्तान के शक्तिशाली शासकों में रखा है। अपने पिता की भाति नुसरत भी विद्यानुरागी था और शिल्प में बडी रुचि रखता था। उसने कितनी मसजिदें बनवाई, जो आज तक अपनी विशालता और सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध है। इस स्वतन्त्र वश के बादशाहो की शक्ति क्षीण हो जाने पर बगाल पर अफगानो का अधिकार हुआ। मुगल सम्राट हुमायूँ को पराजित कर शेरशाह पूर्व का स्वामी हो गया और बिहार और बगाल में उसने अपनी शक्ति जमा ली। १४वी और १५वी शताब्दी में बगाल में बहुत बडा धार्मिक आन्दोलन हुआ। १४वी शताब्दी में अफरीका के यात्री इब्नबतूता ने बगाल की यात्रा की। उसने लिखा है कि, फखरुद्दीन के समय में बगाल में फकीरो की १५० गद्दियाँ थी। इसी समय हिन्दू और मुसल्मानो का सम्पर्क हुआ और उन शक्तियो का उदय हुआ जिनके कारण हिन्दू और मुसल्मान एक दूसरे के निकट आये तथा हिन्दू दृष्टिकोण में भी

परिवर्तन हुआ। बगाल में वष्णव धम की बडी उन्नति हुई। और जब चैतन्य महाप्रभु का उदय हुआ तो उसकी आश्चयजनक उन्नति होने लगी। उन्होंने भक्ति की शिक्षा दी और अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण अपने शिष्यो और अनुयायियो की आत्मा को प्रकाशित कर दिया। कृष्ण के गीत बगाल भर मे गाये जाने लगे। उनकी भक्ति के प्रवाह में पडकर अनेक स्त्री पुरुषो ने सामाजिक बधन तोड दिये और प्रेम के बधन में बँध गये।

जसा पहले कहा जा चुका है इन नवीन शक्तियो के कारण हिन्दू और मुसल्मानो में मेल-जोल बढने लगा।

बगाल के हुसनशाह ने सत्यपीर नाम का एक नया सम्प्रदाय चलाया। हिन्दू और मुसलमानो में मेल उत्पन्न करना इसका उद्देश्य था। सत्यपीर समास शब्द ह, सत्य शब्द सस्कृत का ह और पीर अरबी का। यह एक देवता का नाम रखा गया ह, जिसकी पूजा हिन्दू और मुसलमान दोनो करते थे। बगाली साहित्य म ऐसी अनेक कवितायें ह जो इस देवता की स्तुति में रची गई ह।

खानदेश—खानदेश प्रान्त ताप्ती नदी की घाटी में है। इसके उत्तर में विन्ध्याचल और सतपुडा की श्रेणिया थी। दक्षिण में दक्षिणी पठार था, पूव में बरार और पश्चिम में गुजरात का सूबा था। मुहम्मद तुगलक के साम्राज्य का यह एक सूबा था और फीरोज के राज्य में भी वह दिल्ली के अधीन रहा। १३७० ई० में फीरोज ने उसे अपने एक निजी सेवक मलिक राजा फरूकी को दे दिया था। फीरोज की मृत्यु के बाद जब दिल्ली साम्राज्य के टुकडे-टुकडे हो गये तो मलिक राजा ने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। वह बडा महत्वाकाक्षी और साहसी पुरुष था और साथ ही उदार शासक भी था। उसने हिन्दुओ के साथ अच्छा व्यवहार किया और प्रजा के सुख तथा समृद्धि की चेष्टा की। १३९९ ई० में उसकी मत्यु के पश्चात् उसका पुत्र मलिक नसीर सुल्तान हुआ। इसने एक बडे शक्तिशाली गणाधीश आसा अहीर से असीरगढ का प्रसिद्ध दुग जीत लिया। अपने पिता के राज्य पर मलिक नसीर ने पूण अधिकार रखा और १४३७ ई० मे जब उसकी मत्यु हुई तो उसके उत्तराधिकारी को सुदृढ तथा अविभक्त खानदेश प्राप्त हुआ। परन्तु उसके उत्तराधिकारी योग्य नही थे। उनके समय में खानदेश का पतन होने लगा। १५२० ई० में नसीर

के पौत्र आदिल की मृत्यु के पश्चात् कई दुर्बल शासक हुए। वे विदेशियों को अपने यहाँ आने से न रोक सके। उन्होंने मालदेश की दुर्बल शक्ति और वहाँ के सरदारों की गृह-कलह का पूरा लाभ उठाया। १६०१ ई० में अकबर ने असीरगढ़ का किला जीत लिया। इस प्रकार खानदेश के राजवंश का अन्त हो गया।

(आ) बहमनी राज्य

बहमनी वंश का उदय—मुहम्मद के राज्य में दिल्ली साम्राज्य के विभाजित हो जाने के कारण दिल्ली के अमीरों ने विद्रोह किया और दौलताबाद में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। इस्माइल मख को उन्होंने अपना बादशाह बनाया। इस्माइल बड़ी निरीह प्रकृति का मनुष्य था। उसने हसन के लिए राज्य छोड़ दिया। हसन बड़ा वीर योद्धा था। १३४७ ई० में वह बादशाह निर्वाचित किया गया। फरिश्ता ने लिखा है कि हसन पहले दिल्ली के एक ज्योतिषी गंगू के यहाँ नौकर था, जो मुहम्मद तुगलक का विश्वासपात्र था। एक दिन हसन अपने स्वामी के खेत को जोत रहा था, तब उसे स्वर्णमुद्राओं से भरा हुआ एक कलश मिला। उसने तुरन्त इसे अपने स्वामी को दे दिया। हसन की ईमानदारी से वह ब्राह्मण इतना प्रभावित हुआ कि, उसे वह राज्य सेवा के लिए मुहम्मद तुगलक के पास ले गया। सुल्तान ने उसको नौकरी दे दी। ब्राह्मण ने हसन का भाग्य बहुत उत्तम बतलाया था और उससे यह कहा कि, जब तुम राजा हो जाओ तो मुझे अपना मन्त्री बनाना। हसन ने यह स्वीकार कर लिया और जब वह बादशाह हुआ तो अपने गुमाश्ता ब्राह्मण के प्रति कृतज्ञता प्रगट करने के लिए उसने बहमनी की उपाधि धारण की। आधुनिक अन्वेषण ने फरिश्ता की भूल दिखला दी है और अब यह मत सर्वमान्य है कि, हसन फारस के शाह बहमन बिन इस्फन्दियार का वंशज था। वह अपने को बहमनशाह का वंशज मानता था। उसकी मुद्राओं पर यही नाम अंकित है।*

---

* बुरहान मासिर के रचयिता ने स्पष्ट लिखा है कि, हसन अपने को बहमन बिन इस्फन्दियार की वंश परम्परा में मानता था।

मुहम्मदशाह प्रथम—उसने अपने पिता की विजय की नीति को कायम रखा। उसने पड़ोसी राज्य विजयनगर और तैलंगाना से युद्ध करना ही उसके राज्य की प्रमुख घटना है। हिन्दू बड़े साहस और बड़ी दृढ़ता से लड़े परन्तु उसने उनको पराजित कर दिया। उनका देश लूट लिया गया और मन्दिर तोड़ दिये गये। दस वर्ष तक मुहम्मद के राज्य में शान्ति रही परन्तु एक छोटे मे अपराध पर तैलंगाना के राजा को प्राणदण्ड देने के कारण फिर युद्ध की ज्वालायें प्रदीप्त हो उठीं। हिन्दुओं ने अधीनता स्वीकार नहीं की। दो वर्ष के निरन्तर युद्ध के पश्चात् राजा ने गोलकुंडा का दुर्ग समर्पित करना और ३३ लाख युद्ध की क्षति देना स्वीकार किया। गोलकुंडा इन दोनों राज्य की सीमा निश्चित हुई। कुछ समय पश्चात् विजय नगर राज्य से घोर युद्ध छिड़ गया। गुलबर्गा में एक राजदूत का अपमान ही युद्ध का मुख्य कारण था जो विजयनगर से कर मांगने के लिए आया था।

विजयनगर का राज्य इससे शोषित हो गया। ३० सहस्र घुड़सवारों और १ लाख पदल तथा ३०० हाथी लेकर यह सुल्तान ने प्रदेश में घुस गया, कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच का प्रदेश उसने रौंद डाला। उसने ५२

दुग जीत लिया और मुसल्मान सिपाहियो को तलवार के घाट उतार दिया। मुहम्मद ने बदला लेने की शपथ ली और एक बहुत बडी सेना लेकर विजयनगर पर चढाई कर दी। उसने बडी चतुराई मे प्रलोभन देकर सेना को दुग क के बाहर निकाल लिया आर उसको बुरी तरह से पराजित कर दिया। राय के डेरे पर भी आक्रमण हुआ, वह तो भाग निकला परन्तु उसके सिपाही, पदाधिकारी और समीपवर्ती देश के निवासियो को मुसलमान सिपाहियो न बडी निदयता से काट डाला। अन्त में विजयनगर के राय से सधि हो गई और सुलतान ने शपथ ली कि, म भविष्य में कभी निरपराध व्यक्तियो का रक्त न बहाऊँगा।

अपनी गृहनीति मे मुहम्मदशाह बडी निदयता से काम लेता था उसने सब सावजनिक मदिरालयो को बद कर देने की आज्ञा दे दी। और बडी कठोरता से अनुशासन न माननेवालो का दमन कर दिया। सत्रह वष और सात महीने राज्य करने के पश्चात् सन् १३७३ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। उसके पश्चात् उसका पुत्र मुजाहिदशाह बादशाह हुआ।

मुजाहिदशाह १३७३ १३७७—मुजाहिद ने फारसवासियो और तुर्कों के साथ बडा पक्षपात दिखलाया। बहिष्कार की इस नीति के कारण उसने दक्षिणी और विदेशियो के पुराने झगडे को फिर उखाडा। इन्ही झगडो के कारण मुहम्मद तुगलक का राज्य नष्ट हो गया था परन्तु उस समय सबसे बडी समस्या रायचूर दोआब और रायचूर तथा मुद्गल दुग पर अधिकार करन के लिए विजयनगर से युद्ध करने की थी। उसने विजयनगर पर दो बार चढाई की परन्तु उनके पारस्परिक मेल के कारण दोनो बार उसे पीछे हटना पडा। अन्त में सधि हो गई। परन्तु सुलतान को उसके चचेरे भाई दाऊद ने मार डाला और १३७७ ई० में राजगद्दी पर अधिकार कर लिया। दूसरे वष एक दास ने दाऊद का भी मार डाला। मुजाहिद की धम भगिनी रूह परवर आगा ने इस दास को कुछ रुपये देकर नियत कर दिया था।

दाऊद की मृत्यु के पश्चात् १३७८ ई० में मुहम्मदशाह द्वितीय गद्दी पर बैठा। वह बडा शान्तिप्रिय व्यक्ति था। युद्ध बन्द होने के कारण वह अपना समय साहित्य और विज्ञान में लगा सका। उसने मसजिदें बनवाइ तथा सावजनिक मदरसे और मक्तब खोले। उसने किसी को कुरान शरीफ के आदशो को उल्लघन की आज्ञा नही दी। उसके राज्य में कोई विद्रोह नही हुआ। सरदारा और पदाधिकारियो ने बडी भक्ति से अपने स्वामी की सेवा की। सुलतान सवदा अपनी प्रजा के हितचिन्तन में लगा रहता था और जब एक बार वहाँ दुर्भिक्ष पडा तो उसने दस सहस्र बैल लेकर अकाल पीडिता की सहायता के लिए मालवा और गुजरात मे अनाज मँगवाया। उसके जीवन के अन्तिम वष म राज्यगद्दी पर अधिकार करने के लिए उसके पुत्रा ने षड्यन्त्र किया। १३९७ ई० म उसकी मृत्यु हो गई और उसके बाद उसके पुत्र बादशाह हुए, परन्तु छ मास बाद ही सुल्तान अलाउद्दीन हसनशाह के पौत्र फीरोज ने उनको पराजित कर दिया। गुल्बर्गा के सरदारो और नवाबो की सहायता से ही फीरोज वहाँ पहुँच सका। फरवरी १३९७ ई० में उसने गद्दी पर अधिकार कर लिया।

फीरोजशाह (१३९७ १४२२)—बुरहान मासीर के रचयिता ने लिखा है—"वह न्याय प्रिय उदार और सद्वृत्तिवाला व्यक्ति था और कुरान शरीफ की नकल कर अपना पालन किया करता था। उसके हरम की स्त्रिया कपडो पर कढाई करके और उन्हे बेचकर अपना पालन करती थी।" इसी लेखक ने आगे फिर लिखा ह कि "उसके समान दूसरा शासक न था। उसके न्याय के बहुत से लेख समय के पृष्ठ पर लिखे हुए ह।" परन्तु यह अत्युक्ति प्रतीत होती ह क्योकि फरिश्ता ने स्पष्ट लिखा ह कि "यद्यपि वह अपने धम क नियमो का कठोरता से पालन किया करता था, तथापि वह मदिरा का सवन अधिकता से करता था। सगीत से उसे विशेष रुचि थी। और उसके हरम में अनेक जातियो की बहुत सी स्त्रियाँ थीं। कहा जाता ह कि शाही हरम में मुता ववाहिक पद्धति के अनुसार ८०० स्त्रियाँ रोज प्रवेश करती थी। फीरोज कुछ सीमा तक स्पष्ट वक्ता और विनोदी था। सामाजिक उत्सवो में उसको आनन्द आता था। अपने साथियो से यह बडे निष्कपट हृदय से मिलता था।

परन्तु एसी सुहृद गोष्ठियो में वह कभी राज-काज की चर्चा नही होने देता था।

सवदा की भाँति मुदगल दुग के लिए १३९८ ई० में विजयनगर के साथ सघष प्रारम्भ हुआ। हरिहर द्वितीय की सेना रायचूर दोआब में घुस आई। फीरोज ने भी अपनी सेना इकट्ठी की। परन्तु उसे केरल के राय को भी रोकना था, जिसने वरार पर आक्रमण कर दिया था। राय की हार हुई। पूव स्थिति पर पहुँचना निश्चित हुआ। परन्तु ब्राह्मण वन्दियो का मुक्त कराने के लिए राय को बहुत सा रुपया देना पडा।

युद्ध फिर प्रारम्भ हो गया। १४१९ ई० में फीरोज ने अकारण ही पगल दुग पर आक्रमण कर दिया, जो कि विजयनगर के अधीन था। रोग फलने के कारण सुल्तान की सेना हार गई। विजयी हिन्दुओ ने मुसलमानो को निदयता से काट डाला। उनके देश को रौंद डाला और मसजिदो को अपवित्र कर दिया।

स्वास्थ्य विगडने के कारण फीरोज को अपना राजकाज अपने दासो के हाथ में छोडना पडा। उसके राज्य काल के अन्तिम दिनो में उसके भाई अहमदशाह का प्रभाव सर्वाधिक हो गया। १४२२ ई० में उसकी मृत्यु के वाद वही वादशाह हुआ।

अहमदशाह (१४२२–३५)—अहमदशाह बिना किसी विरोध के गद्दी पर आ गया। उसके मन्त्री ने उसे सलाह दी कि स्वर्गीय सुल्तान के पुत्र को मरवा दिया जाय, जिससे कोई भय का कारण न रह जाय। परन्तु उसने ऐसा करना अस्वीकार कर दिया और उसे फीरोजाबाद में एक अच्छी जागीर दे दी। बिना किसी उच्चाभिलाषा के राजकुमार वहाँ अपना समय भोग विलास में व्यतीत करने लगा। उसने विजयनगर से युद्ध किया और वडी निममता से २० सहस्र स्त्री पुरुष और बच्चो को मार डाला। अहमदशाह की इस निदयता को देखकर हिन्दुओ के कान खडे हो गये और उन्होने उसे मार डालने का निश्चय किया। एक बार जब वह शिकार को गया था, तो इन्होने उसका बडे आवेश में पीछा किया। परन्तु अगरक्षक अब्दुल कादिर ने उसे बचा लिया। अहमदशाह ने विजयनगर को इतना तग किया कि देवराय उससे सधि करने के लिए बाध्य

हो गया। उसने पिछला सब कर देना स्वीकार किया और तीस हाथियो को अपार धन जवाहर मोती आदि से लादकर अपने पुत्र के साथ शाही डेरे में भेजा।

१४२४ ई० में उसने वारगल के राजा को हरा दिया और उसके देश के बडे भाग को अपने राज्य में मिला लिया। उसने मालवा तथा निकटवर्ती राज्यो के मुसलमान शासको को हरा दिया, अनेको मनुष्यो को मार डाला और अपार धन लूट लिया।

उसने वली की उपाधि ग्रहण की और लौटने के पश्चात् बीदर नगर की नीव डाली। बीदर ही बहमनी राज्य की राजधानी स्वीकृत हुई। १४२९ ई० में उसने कोकण के शासको स युद्ध किया। गुजरात के बादशाह से भी उसकी लडाई हुई, परन्तु उसका कोई परिणाम न निकला। उसका अन्तिम युद्ध एक हिन्दू विद्रोह दबाने के लिए तिलगान के साथ हुआ। इसके पश्चात् उसने सार्वजनिक जीवन त्याग दिया और अपने पुत्र जफर खा को राज्य दे दिया। १४३५ ई० में वह बीमार होकर मर गया।

अलाउद्दीन द्वितीय (१४३५-५७)—अलाउद्दीन द्वितीय के नाम से जफरखाँ गद्दी पर बैठा। प्रारम्भ में उसका राज्य अच्छा रहा। परन्तु बाद में उसका चरित्र बिगड गया और वह अपना समय व्यभिचार और विलास में व्यतीत करने लगा।

वह अपने भाई मुहम्मद के साथ अच्छा व्यवहार करता था। परन्तु उसने विद्रोह किया और विजयनगर की सहायता से रायचूर दोआब, बीजापुर तथा अन्य जिलो पर अधिकार कर लिया। अन्त मे उसकी हार हुई। सुलतान ने उसको क्षमा कर दिया और रायचूर की जागीर उसे दे दी। परन्तु अलाउद्दीन का वशागत शत्रु विजयनगर का राय था जिसने सुल्तान के देश पर अकारण ही आक्रमण कर दिया। पहले तो युद्ध का परिणाम अनिश्चित ही रहा, परन्तु कुछ घेरा डालने के बाद देवराय ने निश्चित कर देना स्वीकार कर लिया। दक्षिणी मुसलमानो के कारण शासन प्रबन्ध बडा अव्यवस्थित था। ये मुसलमान अधिकतर सुन्नी थे और कुछ अरब तुर्क फारसी और मुगल

थे। वे शिया धम के अनुयायी थे और उपद्रव किया करते थे। १४५४ ई० में खल्फ हसन मलिक-उल-तज्जार को काकण के हिदू गणाधीश ने बुरी तरह से हरा दिया। वे लोग अपने प्राण लेकर भाग ही रहे थे कि दक्षिणी सरदार ने सुलतान को यह सुझा दिया कि वे राजद्रोह करना चाहते हैं, अत सुलतान ने उनको दावत पर बुलाया और धोखे से मार डाला। १४५७ में अलाउद्दीन की मृत्यु हो गई।

अलाउद्दीन वडा विलासी था। परन्तु प्रजा के हित का वडा ध्यान रखता था। उसने मसजिदे, बनवाईं विद्यालय खोले तथा अन्य उदार सस्थायें स्थापित की। उसके राज्य मे सब ओर शान्ति थी। चोरो और बदमाशो को कठोर दण्ड दिया जाता था। यद्यपि वह स्वय धम के नियमो का पालन करता था, परन्तु औरो से वह धम पालन कठोरता से करवाता था और अपने धर्मानुयायिओ के विचारो का सम्मान करता था।

हुमायूँ (१४५७-६१)—अलाउद्दीन के बाद उसका पुत्र हुमायूँ बादशाह हुआ। वह निदयता का अवतार था। विद्वान्, अच्छा वक्ता तथा कुशाग्र बुद्धि-वाला होते हुए भी उसका स्वभाव बडा उग्र और भयानक था। रक्त बहाने में उसे विल्कुल सकोच न होता था और न दया आती थी। परन्तु सौभाग्य से महमूद गावान की सेवायें उसे उपलब्ध हो गइ थी। उसने बडी श्रद्धाभक्ति के साथ राज्य की सेवा की। उसके राज्य की विशेषता उन निदयता की वीभत्स कहानियो में है जिन्हे वह नित्य ही बडी पाशविकता से किया करता था। एक षड्यन्त्र के बाद उसने अपने भाई हसन और यहिया को बन्दीगृह से निकलवाया और अपने सामने हसन को एक भयानक चीते के आगे डाल दिया जिसने उसे उसी क्षण मार डाला और खा लिया। बादशाह की निदयता सीमायें पार कर चुकी थी।

अक्टूबर १४६१ ई० में हुमायूँ की साधारण रूप से ही मृत्यु हो गई। परन्तु फरिश्ता के अनुसार जो अधिक यथाथ प्रतीत होता है, उसकी मृत्यु शराब के नशे में नौकर के हाथ से हुई।

निजामशाह (१४६१-६३)—हुमायूँ की मृत्यु के बाद ख्वाजाजहाँ महमूद गावान और राजमाता ने जो पूव के देश की स्त्रियो में बहुत ही अद्भुत स्त्री थी,

निजाम को बादशाह चुना, निजाम की अवस्था उस समय केवल आठ वर्ष की थी अत सारा राज-काज राजमाता मखदूमाजहा के हाथो मे रहा। अपने मन्त्री महमूद गावान की सहायता से उसने उन सभी निरपराध व्यक्तियो को मुक्त कर दिया जिनको उसके पति ने बन्दी कर लिया था और उन सभी आदमियो को अपने अपने पदो पर नियुक्त कर दिया जो अकारण ही पदच्युत कर दिये गये थे।

उडीसा और तलगाना के राजाओ ने उस पर आक्रमण कर दिया परन्तु उसने बडी सफलतापूर्वक उनके आक्रमण को रोक दिया। किन्तु जब मालवा के बादशाह महमूद खिलजी ने सन् १४६१ मे बीदर पर अधिकार कर लिया तो दक्षिण की सेना जिसका नेतृत्व महमूद गावान और ख्वाजाजहा के हाथो में था, बुरी तरह से पराजित हुई। राजमाता ने इस सकट के समय गुजरात के बादशाह से सहायता मागी। उसके आने पर महमूद खिल्जी अपने देश को लौट गया। महमूद खिल्जी ने एक और प्रयत्न किया परन्तु वह भी इसी कारण असफल रहा। सन् १४६३ ई० म अकस्मात् ही निजामशाह की मृत्यु हो गई, इस समय उसका विवाह होनेवाला था।

मुहम्मदशाह तृतीय (१४६३–८२)—अब सरदारो ने स्वर्गीय बादशाह के भाई को राजगद्दी के लिए चुना। नये बादशाह ने राजकोष का अपहरण कर लेने के कारण ख्वाजाजहाँ को मरवा डाला। अब महमूद गावान की शक्ति राज्य में प्रमुख हो गई। उसके अधिकार असीम थे। उसने कई वर्षो तक राज्य की स्वामि-भक्ति-पूर्वक सेवा की। *उसने युद्ध किये, देश जीते और बहमनी राज्य की* सीमायें इतनी बढा ली जितनी पहले कभी नही थी। कोकण के हिंदू राजा के विरुद्ध उसे भेजा गया। उसने एक विशाल सेना लेकर कोकण पर चढाई कर दी और वहा के राजा को कल्ना का दुर्ग समर्पित कर देने को बाध्य किया इसका वर्तमान नाम विसाल्गढ है। उसने उडीसा के राजा को भी कर देने को विवश किया परन्तु सुल्तान का सबसे प्रसिद्ध आक्रमण विजयनगर के राय नरसिंह के विरुद्ध युद्ध करते समय काञ्ची अथवा काञ्जीवरम पर हुआ था। नगर जीत लिया गया और विजेताओ के हाथ अपार धन लूट में लगा।

१४७४ ई० में दक्षिण में एक भीषण दुर्भिक्ष पडा जो बीजापुर दुर्भिक्ष के नाम से प्रसिद्ध है। १४७० ई० में 'ऐथनेसियस निक्तिन' नाम का एक

रूसी सौदागर बीदर आया उसने देश, राज्य प्रबन्ध तथा प्रजा के विषय में लिखा है। सुलतान के आखेटो और महल का वर्णन भी उसने किया है।

शासन सुधार—महमूद गावान बडा कुशल राजनीतिज्ञ था। दक्षिणी और ईरानियो में पारस्परिक वैमनस्य होने के कारण अनेको बाधायें आने पर भी वह शासन प्रबन्ध में बहुत कुछ सुधार कर सका। प्रत्येक विभाग पर उसकी दृष्टि पहुँची, अर्थ विभाग को उसने सुधारा, सार्वजनिक शिक्षा को प्रोत्साहन दिया, न्याय विभाग की उन्नति की और देश की भूमि की नाप-तौल कराई जिससे राजस्व ठीक ठीक लगाया जा सके। भ्रष्टाचार बन्द हो गया, सेना सुधर गई, उसका अनुशासन उत्तम हो गया और सिपाहियो की आर्थिक स्थिति अच्छी हो गई।

महमूद गावान की मृत्यु—दक्षिणी लोग उसके प्रभाव से जलते थे। उन्होंने उसके विरुद्ध षड्यन्त्र किया और उसके नाम से नरसिंह राय के लिए पत्र लिखा जिसमें राज्यद्रोह की बातें लिखी हुई थी। बादशाह को मदिरा पिलवा कर यह सुझाया गया कि महमूद गावान देशद्रोही है। बादशाह ने उसे मार डालने की आज्ञा दे दी। इस प्रकार बधिक के निर्दय हाथो द्वारा उस युग के एक बहुत निर्मल चरित्र व्यक्ति की हत्या हुई। 'मडोज टेलर' ने ठीक ही लिखा है कि, "उसके साथ साथ बहमनी राज्य का सगठन और शक्ति दोनो ही विदा हो गये।"

महमूद गावान का चरित्र—महमूद गावान मध्ययुग का बहुत ही उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ था। राज्य के प्रति उसकी दृढ भक्ति थी। उसने बडी योग्यता और प्रतिष्ठा के साथ आजीवन राज्य की सेवा की। उसके सार्वजनिक जीवन के विषय में बहुत कुछ कहा जा चुका है। उसने देश के लिए अथक परिश्रम किया। सादगी से उसे विशेष प्रेम था, दीनो के लिए उसका हृदय बहुत कोमल था। सभी मुसलमान इतिहासकारो ने लिखा है कि वह साहसी, उदार और न्यायप्रिय था। उस युग के बडे लोगो में जो दुर्गुण पाये जाते थे वे उसमें नाममात्र को न थे। उसकी आवश्यकतायें बहुत कम थी। वह विद्वानो और धर्माचारियो के सत्सग में अपना समय व्यतीत करता था। बीदर महाविद्यालय में उसका एक बहुत बडा पुस्तकालय था जिसमें तीन सहस्र पुस्तकें थीं।

दिन भर परिश्रम करने के पश्चात् सन्ध्या समय वह अपने महाविद्यालय को चला जाता था। वहा विद्वानो की मण्डली में उसका मनोरजन होता था। गणित, विज्ञान चिकित्सा, साहित्य का वह पण्डित था, और पत्र-लेखन शली में बडा कुशल था। फरिश्ता ने लिखा ह कि, वह दो पुस्तको का रचयिता था, 'रौजत-उल इशा' और दीवाने अश्र'। यद्यपि ख्वाजा विद्वान् और पवित्र आत्मा था परन्तु अपने युग के धार्मिक पक्षपात के ऊपर वह न उठ सका। मूर्ति पूजा के विरुद्ध उसने बराबर युद्ध किया। कुछ भी हो ऐसे स्वामि भक्त राजसेवक को मरवा डालना बडी भारी भूल थी। बहमनी वश के पतन के जितने भी कारण थे उन सबमें महमूद गावान की मृत्यु ही प्रमुख कारण था। इससे उसका ह्रास और शीघ्रता से हो गया।

बहमनी राज्य का पतन—१४८२ ई० में मुहम्मदशाह की मृत्यु हो गई। उसके पश्चात् उसका पुत्र महमूद शाह गद्दी पर बठा उसकी अवस्था केवल १२ वर्ष की थी। वह बडा ही विलासी था और अपना समय आमोद प्रमोद में व्यतीत किया करता था। चारो ओर अराजकता फलने लगी और प्रान्तीय सूबेदार स्वतत्र होने लगे। *बहमनी राज्य अब केवल बीदर और राजधानी* के निकटस्थ प्रदेश तक सीमित रह गया। नया मत्री अमीर बरीद ही वास्तविक बादशाह था। वह महमूद को अपने अपमानपूर्ण आश्रय में ही रखता था।

१५१८ ई० में महमूद की मृत्यु के पश्चात् बहमनी राज्य का एक प्रकार से अन्त ही हो गया। राज्य के ५ स्वतत्र भाग हो गये —

(१) बरार का इमादशाही वश
(२) अहमदनगर का निजामशाही वश,
(३) बीजापुर का आदिलशाही वश
(४) गोलकुण्डा का कुतुबशाही वश
(५) बीदर का बरीदशाही वश

सामान्य समीक्षा—बहमनी वश में कुल १४ बादशाह हुए। बहुत कम को छोडकर सभी निष्ठुर और भयकर थे और हिन्दुओ का रक्त बहाने में उनको बिलकुल सकोच नही होता था। बहमनी राज्य का जन्मदाता हसन गंगू बहुत योग्य प्रबन्धकर्त्ता था, परन्तु हिन्दुओ के प्रति उसका व्यवहार बहुत निर्मम

था। उसके उत्तराधिकारी बडे निर्दयी व्यभिचारी और विलासी थे, उनके कोई सिद्धान्त न थे। दक्षिणी और विदेशी अमीरो के पारस्परिक कलह के कारण उनके काय में सदैव बाधा पहुँचती रही। राजप्रबध को उत्तम बनान की भी समय समय पर चेष्टाये हुई, परन्तु महमूद गावान के समय को छोडकर उनमें प्राय सफलता नही मिली। छोटे छोटे पदो पर हिन्दू नियुक्त किय जाते थे। माल के काम का अच्छा ज्ञान और अनुभव होन के कारण कदाचित् यह अनिवार्य ही था। महमूद गावान ने माल की योजना में सुधार किया और किसानो को सुविधा दी कि, वे राज्य-कर चाहे सिक्का में दे अथवा उपज क रूप में। एथनसियस निकितिन ने लिखा है कि देश बहुत घना बसा हुआ था और खेत बहुत अच्छे जोते जाते थे। सडको पर डाकुओ का भय न था। राज्य की राजधानी का नगर बहुत ही भव्य था और अनेको उद्यानो और उपवनो से सुसज्जित था। सरदार लोग बडे ठाट बाट से रहते थे, परन्तु साधारण प्रजा की दशा अच्छी न थी। इसी के वणन से डा० स्मिथ इस परिणाम पर पहुँचते ह कि इन बादशाहो ने देश को चूस कर नीरस और दरिद्र बना दिया था। परन्तु वे भूल जाते ह कि मध्यकालीन ससार के सभी राजा प्रजा का धन बिना किसी सकोच के अपन विलास के लिए व्यय करते थे। इसमें सन्देह नही कि बहमनी वशवालो ने अपन शत्रुओ के देश लूटे परन्तु उन्होने कभी युद्ध के समय में भी दमनकारी कर नही लगाय। अपने राज्य में उन्होने कृषि के लिए सिंचाई की सुविधा उपस्थित कर दी थी। वे प्रजा के हित की भी चिन्ता करते थे। इनमें से कुछ बादशाह कला और शिक्षा को भी आश्रय दते थ विद्वानो और धार्मिक व्यक्तियो के पालन के लिए वे दान देते थे। उन्होन बडे बडे भवन नही बनवाये। उन्होने केवल बीदर नगर बसाया, उसमें सुन्दर भवन,मसाये और कुछ दुग बनवाये जो आज तक विद्यमान हैं। बहमनी बादशाहो के काय का मूल्याकन करने के लिए आधुनिक मान-दण्ड का प्रयोग करना अनुचित होगा। १५वी और १६वी शताब्दियो में पाश्चात्य देशो में भी धार्मिक अत्याचार साधारण रूप से होते थे। धम और राजनीति प्राय मिल जाती थी और महत्त्वाकाक्षी शासक अपन स्वार्थ के लिए धार्मिक उत्तेजना स काम लेते थे। यदि हम यह बात ध्यान में रखें, तो न तो हम बहमनी बादशाहो की
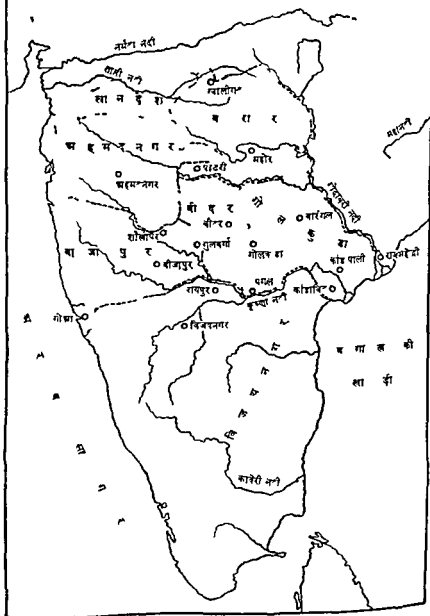
वह प्रशसा ही स्वीकार कर सकते ह जो मडोज टेलर ने की है और न उनकी घोर निन्दा ही कर सकते ह जो डा० विन्सेण्ट स्मिथ ने 'आक्सफाड हिस्ट्री आफ इण्डिया' में की है।

दक्षिण के पाँच मुसलमान राज्य

बरार—इमादशाही वश की नीव फतहउल्लाह इमादशाह ने डाली थी। वह कर्नाटक का हिन्दू था। उसने बरार के सूबेदार खानजहा के समय में नाम कमाया था। उसका उत्तराधिकारी भी वही हुआ। सवप्रथम उसी ने स्वतन्त्रता की घोषणा की। १५७४ ई० तक उसके वश ने राज्य किया और इसी वप वह निजामशाही राज्य म मिला लिया गया।

बीजापुर—आदिलशाही वश की नीव यूसुफ आदिल खाँ ने डाली थी वह महमूद गावान का दास था परन्तु फरिश्ता के अनुसार वह टर्की के सुलतान मुराद द्वितीय का पुत्र था, जिसकी मत्यु १४५१ ई० में हुई थी। जब उसका ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद गद्दी पर आया तो उसने आज्ञा दी कि, स्वर्गीय सुलतान के सभी पुत्रो का निष्कासन कर दिया जाय। परन्तु यूसुफ की माता ने बडी चतुरता से उसकी रक्षा कर ली। अपने आश्रयदाता महमूद गावान की कृपा से वह उच्च पद पर पहुँच गया। १४८९ ई० में उसने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। उसके घोर शत्रु कासिम बरीद ने विजयनगर के राय को बीजापुर पर चढाई कर देने के लिए उत्तेजित कर दिया, परन्तु नरसिह की हार हुई। १४९५ ई० में उसने गुलबर्गा के सूबेदार दस्तूर दीनार को हराने मे कासिम बरीद की सहायता की। उसने विद्रोह का झण्डा खडा कर दिया था परन्तु उसने किसी प्रकार गुलबर्गा उसी को दिलवा दिया और उसकी प्राण-रक्षा भी की। इसके पश्चात् गुलबर्गा लेने की उसकी स्वय अभिलाषा हुई, कासिम की हार हुई और उसकी हार से अली आदिलशाह की प्रतिष्ठा बहुत बढ गई। १५०२ ई० में उसने शिया राजधम घोषित किया परन्तु सुन्नियो को भी पूरी धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान कर दी। तो भी समीपवर्ती राज्य उसके विरुद्ध हो गये और वह बरार भागा। इसी बीच इमादुलमुल्क ने मित्र राज्यो को लिखा कि अमीर बरीद उनकी सहायता का अपव्यय केवल अपने स्वाथ-साधन के लिए कर रहा है।

यह समाचार पाकर अहमदनगर और गोल्कुण्डा के सुल्तान युद्ध छोडकर चले गये अकेले अमीर बरीद को यूसुफ ने हरा दिया। इस प्रकार विजयी होकर उसने बीजापुर में प्रवेश किया। यूसुफ आदिलशाह दक्षिण का बडा विख्यात राजा हुआ। वह विद्वानो का आदर करता था। फारस, तुर्किस्तान और रूम के विद्वान् लोग उसके दरबार में आते थे और उसकी उदारता से लाभ उठाते थे। वह धार्मिक पक्षपात से रहित था। उसकी दृष्टि में राजपद के लिए कोई धर्म बाधक नही हो सकता था फरिश्ता ने लिखा है कि, "वह देखने में सुदर प्रभावशाली वक्ता और पाण्डित्य उदारता तथा साहस के लिए विख्यात था।"

इस्माइलशाह—यूसुफ आदिल के पश्चात् इस्माइल गद्दी पर बैठा। गद्दी पर बैठने के समय उसकी अवस्था केवल नौ वर्ष की थी। स्वर्गीय राजा का एक पदाधिकारी कमालखाँ राज्य का काम करता था। वह राज्यद्रोही निकला, परन्तु राजमाता ने उसकी योजनाएँ सफल न होने दी। एक दास द्वारा वह मार डाला गया। अब इस्माइल ने राज्य-प्रबध स्वय अपने हाथो में ले लिया। परन्तु उसे अहमदनगर और विजयनगर से युद्ध करना पडा। इस्माइल ने अपने सब युद्धो में सफलता प्राप्त की। विजयनगर से रायचूर दोआब उसने फिर प्राप्त कर लिया। १५३४ ई० में इस्माइल की मृत्यु हो गई। उसके बाद मल्लू आदिलशाह गद्दी पर बैठा, परन्तु वह अधा कर दिया गया और राजगद्दी से उतार दिया गया। उसके पश्चात उसका भाई इब्राहीम बादशाह बनाया गया।

इब्राहीम आदिलशाह प्रथम—उसने सर्वप्रथम सुन्नी धर्म की फिर से प्रतिष्ठा की और राजसेवा से विदेशी लोगो को निकालकर दक्षिणी लोगो और हब्शियो की नियुक्ति की। उसने बीदर, अहमदनगर और गोल्कुडा के सुलतानो को हरा दिया और बडी काम-क्षमता का परिचय दिया। परन्तु व्यभिचार उसके विनाश का कारण बना। वह बीमार हुआ और १५५७ ई० में मर गया। उसके पश्चात् अली आदिलशाह बादशाह हुआ।

अली आदिलशाह—नये सुलतान ने फिर शिया धर्म की स्थापना की। इस नीति से देश में असतोष फैल गया। विजयनगर के राय की सहायता से

उसने १५५८ ई० में अहमदनगर को रौंद डाला। हिंदुओं ने इतना अधिक अत्याचार किया कि उससे उनका मित्र अली आदिल भी सतर्क हो गया। विजयनगर की बढ़ती हुई शक्ति से इन मुसल्मान राज्यों का अस्तित्व संकटापन्न प्रतीत होने लगा। विजयनगर के विरुद्ध बीजापुर, बीदर, अहमदनगर और गोल्कुंडा ने संयुक्त संघ बनाया और सन् १५६५ ई० में तालीकोट के युद्ध में राम राय को पराजित कर दिया। १५७९ ई० में अली आदिल का वध हो गया।

इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय—इब्राहीम बालक था। अतः राज्य प्रबंध उसकी माता चाँदबीबी के हाथों में था, जो भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध है। १५९४ ई० में इब्राहीम ने अहमदनगर पर विजय प्राप्त की। सुलतान रणक्षेत्र में मारा गया। १६२६ ई० में इब्राहीम की मृत्यु हो गई। वह इस वंश का सबसे विख्यात शासक था।

आदिल्शाहियों का मुगलों से घोर युद्ध चल्ता रहा। अंत में औरंगजेब ने सन् १६८६ ई० में बीजापुर को मुगल साम्राज्य में मिला लिया।

अहमदनगर—निजामशाही वंश की नींव निजामुल्मुल्क बहरी ने डाली थी। वह बीदर के दक्षिणी दल का नेता था। महमूद गावान की मृत्यु के पश्चात् वह मंत्री बनाया गया। उसका पुत्र मलिक अहमद जुनीर का सूबेदार नियुक्त हुआ। उसने अपने पुत्र से मिल्ने का निश्चय किया परन्तु बीदर के सूबेदार ने उसकी योजना सफल न होने दी। बादशाह की आज्ञा से उसने उसका गला घुटवा डाला। १४९८ ई० में मलिक अहमद ने स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। वह अपना दरबार अहमदनगर को ले गया। बड़े घोर युद्ध के पश्चात् सन् १४९९ ई० में उसने दौल्ताबाद पर अधिकार कर लिया। उसकी मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र बुरहान निजामशाह गद्दी पर बैठा।

बुरहान और उसके उत्तराधिकारी—बुरहान (१५०८-५३) बालक था। अतः उसके पिता के प्राचीन राजपदाधिकारी ही राज्य-संचालन करते थे। उसने बीजापुर की शाहजादी से विवाह किया। बीजापुर के बादशाह से उसकी लड़ाई हो गई। विजयनगर के राय से संधि करके उसने राजनैतिक क्षेत्र में शान्ति सी उपस्थित कर दी।

१५५३ ई० में उसने बीजापुर का घेरा डाल दिया । परन्तु कुछ पश्चात् ही उसकी मृत्यु हो गई। इसके बाद का अहमदनगर का इ साधारण ही है । केवल चादबीबी द्वारा शाहजादा मुराद के विरुद्ध नगर की वीरतापूर्वक रक्षा करना महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना हुई। १६०० ई० में शाही सेना ने अहमदनगर को जीत लिया और साम्र मिला लिया ।

गोलकुडा—कुतुबशाही वश की नीव कुतुब उल-मुल्क ने डाली। शिक्षा अच्छी हुई। वह पहले महमूदशाह ... नी के कार्यालय में काम था। अपनी योग्यता के कारण वह तैलगान का सूबेदार हो गया। सन १५ ई० मे उसने स्वतत्रता की घोषणा कर दी। १५४३ ई० में उसकी मृत्यु हा के पश्चात् अनेको दुर्बल बादशाह हुए। उन्होने १६८७ ई० तक मुगलों से अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा की। इस वर्ष औरगजेब ने गोलकुडा को म... साम्राज्य मे मिला लिया।

बीदर—कासिम बरीद के पुत्र अमीर बरीद ने बादशाह की उपाधि धार की और १५२६ ई० मे स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी जब अतिम सुल्ता कलीमुल्ला बीजापुर भाग गया। १६०९ ई० में आदिल शाहिया ने इस पर अधिकार कर लिया और अपने राज्य मे मिला लिया।

(इ) 'विजयनगर' का उत्थान

साम्राज्य की नींव—विजय नगर की नीव मुहम्मद तुगलक के समय की अराजकता के समय पडी। विजयनगर साम्राज्य के इतिहासकार 'सीवल' ने साम्राज्य के जन्म के सात परम्परागत वर्णन दिये है[१] परन्तु इन वर्णनों में जो सबसे अधिक सत्य प्रतीत होता है वह यह है कि, इसकी नीव हरिहर और बुक्का नाम के दो भाइयों ने डाली जो वारंगल के प्रताप रुद्रदेव काकतीय के कोष में नियुक्त थे। वे १३२३ ई० में अपना देश छोडकर के उस समय ... जब मुसलमानो ने इस पर आक्रमण किया। रायचूर जिले में अनागुन्दी के राजा

१ सीवल, ए फौरगोटिन एम्पायर पृष्ठ २०२२

बीदर का किला
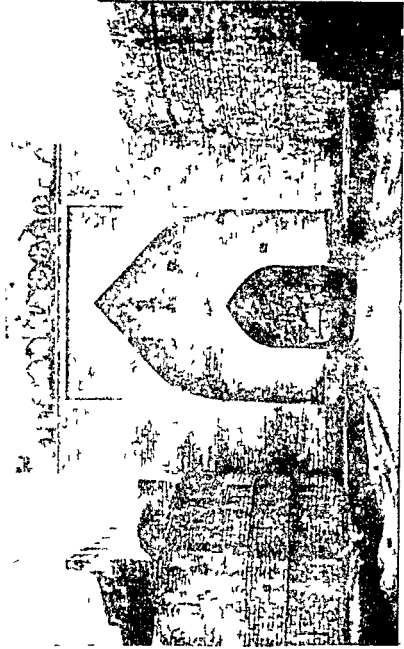
गया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस वर्णन में अतिरंजना है। परन्तु हम इससे यह परिणाम तो निकाल ही सकते हैं कि वह बड़ा ही प्रतापी राजा था। उसने चीन के सम्राट को राजदूत भेजे और बहमनी राज्य से युद्ध किये। वह बड़ा सहिष्णु और उदार शासक था। कहा जाता है कि एक बार उसने बीच में पड़कर जैनों और वैष्णवों में सन्धि कराई थी।

हरिहर द्वितीय—१३७९ ई० में बुक्का की मृत्यु हो गई। उसके पश्चात् हरिहर द्वितीय राजा हुआ। वह इस वंश का प्रथम राजा था, जिसने राजकीय उपाधि ग्रहण की। वह अपने को महाराजाधिराज कहता था। उसने मंदिरों को दान दिये और अपने विस्तृत साम्राज्य को सुसंगठित किया। सीवेल ने लिखा है कि वह शान्ति प्रकृति का मनुष्य था। विंसेंट स्मिथ ने लिखा है कि जहाँ तक मुसलमानों का सम्बन्ध है, वह बड़ी शान्ति से रहा। इस प्रकार जो उसे अवकाश मिला, उसमें उसने अपने उस समस्त राज्य को व्यवस्थित किया जो समस्त दक्षिणी भारत में फैला हुआ था और जिसमें त्रिचनापल्ली और कांजी-वरम् (कांची) भी सम्मिलित थे। उसने दक्षिण के अन्य देशों की ओर ध्यान दिया। सेनापति गुंड ने कई नये सूबों को जीत लिया। हरिहर द्वितीय ३० अगस्त सन् १४०४ ई० को मर गया और उसके बाद उसका पुत्र गद्दी पर बैठा परन्तु उसने बहुत थोड़े दिन तक राज्य किया। उसके पश्चात् देवराय गद्दी पर बैठा। उसको बहमनी सुल्तानों से बार बार युद्ध करने पड़े। फरिश्ता ने लिखा है कि, एक बार फीरोज ने उसको अपनी कन्या का विवाह उससे कर देने के लिए बाध्य किया था। परन्तु हमको इसमें बहुत सन्देह है क्योंकि 'बुरहान-मासिर' के रचयिता ने जिसके वर्णन बहुत विस्तृत तथा विशुद्ध हैं, कहीं विवाह का उल्लेख नहीं किया। अन्य लेखों में भी इस विवाह का संकेत नहीं मिलता। १४१० ई० में देवराय की मृत्यु हो गई और उसके पश्चात् विजयराय गद्दी पर बैठा और उसने नौ वर्ष तक राज्य किया। उसके पश्चात् देवराय द्वितीय गद्दी पर बैठा।

देवराय द्वितीय (१४१९–४६)—देवराय द्वितीय ने पूर्ववर्ती राजाओं की नीति को यथाक्रम रखा। मुसलमान घुड़सवारों की और अच्छी शक्ति को देखकर उसने अपनी सेना में घुड़सवार नियुक्त किये, परन्तु इस असाधारण कार्य

का भी कोई फल न निकला। जब १४४३ ई में पुन युद्ध छिड गया तो मुसल्मानो ने राय की सेना को हरा दिया और उसे कर देने के लिए बाध्य किया। देवराय द्वितीय के राज्य में दो विदेशी आये। एक इटली का यात्री निकोलोकोण्टी था और दूसरा फारस का राजदूत अब्दुरज्जाक था। दोना ने विजयनगर शहर और साम्राज्य दोना का सुन्दर वर्णन किया है। निकोलोकोण्टी १४२०-२१ ई० में विजयनगर आया। उसने इसका वर्णन इस प्रकार किया है।

"विजैगल्या नगर बहुत ऊँचे पहाडो के निकट बसा हुआ है। नगर का घेरा ६ मील का था। इसकी दीवारें पहाडो तक चली गई ह उनके नीचे घाटियाँ ह जिससे इसका विस्तार बड गया है। इस नगर में नब्बे सहस्र व्यक्ति युद्ध के योग्य ह।"

'इस देश के व्यक्ति चाहे जितनी स्त्रियो से विवाह कर लेते हैं। पति की मृत्यु होने पर वे उसी के साथ जला दी जाती ह। यहाँ का राजा भारत के अन्य सभी राजाओ से अधिक शक्तिशाली है। उसके १२ सहस्र स्त्रियाँ हैं जिनमें से चार सहस्र उसके साथ पैदल चलती ह। वे केवल भोजन बनाने के लिए नियुक्त ह। लगभग इतनी ही स्त्रियाँ जो अधिक सुदर वेश में रहती हैं, घोड पर चलती हैं। शेष पालकियो में जाती ह जिनमें से दो, तीन सहस्र पत्नी रूप में इस दशा में चुन ली जाती हैं कि पति की मृत्यु होने पर वे स्वेच्छा से ही उसके साथ आग में जल जायेंगी। उनके लिए यह काय बडी प्रतिष्ठा का समझा जाता है।"

"वष में एक बार निश्चित समय पर देवमूर्ति को नगर की परिक्रमा कराई जाती है। वह दो रथो के बीच में स्थापित की जाती ह जिनमे भली भाँति सुसज्जित युवती स्त्रियाँ बैठी रहती ह। वे देव-प्रार्थना के गीत गाती जाती ह। नागरिको का बहुत बडा समूह इस रथ-यात्रा के साथ चलता है। धार्मिक भावनाओ से प्ररित होकर बहुत से लोग रथ के पहियो के नीचे लेट जाते हैं। जिससे उनके बीच दबकर उनकी मृत्यु हो जाय। इस मृत्यु से वे समझते ह कि, उनके देवता बडे प्रसन्न होते ह। कुछ लोग अपने बगल में एक छेद कर लेते ह और एक रस्सी उसमें बाँधकर रथ में आभूषण रूप में लटक जाते हैं और

प्रकार अर्द्धजीवित अवस्था में लटके हुए वे देवमूर्ति का साथ देते है। इस प्रकार का बलिदान सर्वोत्तम समझा जाता है।

"साल में तीन बार बड़ी श्रद्धा और भक्ति से तीन उत्सव मनाये जाते है इन में से एक अवसर पर सभी स्त्री-पुरुष आबाल वृद्ध नदियों अथवा समुद्र में स्नान कर नवीन वस्त्र धारण करते है, तीन दिन तक निरन्तर नाच-गान और भोज होते हैं दूसरे अवसर पर वे अपने मन्दिरों में बाहर और छतों पर तेल के दीपक रात-दिन जलाते है। तीसरे अवसर पर नौ दिन तक उत्सव रहता है। नगर के बड़े बड़े मार्गों पर बड़े बड़े लट्ठे लगा दिए जाते हैं, उनका आकार छोटे जल्यानों के मस्तूल के बराबर होता है। इनके ऊपरी भाग में सुन्दरी कामदार विभिन्न प्रकार के सुंदर वस्त्र लपेट दिये जाते हैं। इन लट्ठों के ऊपर प्रत्येक दिन एक पवित्रात्मा तथा धार्मिक मनुष्य चढ़ा दिया जाता है जो सभी परिस्थितियों में समान भाव से रह सकता है। उसका काम देव प्रार्थना करना होता हैं। इन व्यक्तियों को लोग नीचे से तंग करते है उनमें नी... से वे नीबू, नारंगी तथा अन्य फल फेंककर मारते है। उनको वे प्रसन्नता से सहन करते है। इनके अतिरिक्त तीन और उत्सव के दिन होते है जिनमें वे सभी यात्रियों पर यहाँ तक कि, राजा और रानी पर भी केसर का पानी डालते हैं। रास्ते के किनारे यह पानी इसी उद्देश्य से रख लिया जाता है। इसका स्वागत लोग बड़ी प्रसन्नता से करते है।'

अब्दुर्रज्जाक द्वारा विजयनगर का वर्णन—निकोलोकोन्टी* के २० वर्ष पश्चात् फारस का राजदूत अब्दुर्रज्जाक १४४२ ई० में विजयनगर आया। यह अप्रैल सन् १४४३ के प्रारम्भ तक नगर में ठहरा। उसने नगर और इसके राज्य का विस्तृत वर्णन लिखा है।

---

* अब्दुर्रज्जाक का विस्तृत वर्णन, इलियट भाग ४ पृष्ठ १०५ १२० में मिलता है। यह सन् १४१३ ई० में हिरात में पैदा हुआ था फारस के शाह ... ने उसे विजयनगर में राजदूत बनाकर भेजा था। १४८२ ई० में उसकी मृत्यु हुई थी।

राय—"एक बार राजा ने मुझे कुछ सेवको द्वारा बुलवाया। सन्ध्या के समय में दरबार में पहुँचा। मने पाच सुन्दर घोडे और दो थाल राजा का भेंट किये जिनमे से प्रत्येक में दमस्क और साटन के नौ, नौ थान थे। राजा चालीस स्तम्भ-वाली एक विस्तृत शाला में बडे राजसी ठाट-बाट में बैठा हुआ था। उसके दायें-बायें ब्राह्मण तथा अन्य व्यक्तियो का समूह उपस्थित था। वह जतून साटन के वस्त्र पहने हुए था। उसके गले में बहुत उत्तम कोटि की शुद्ध मोतियो की माला पडी हुई थी जिसका मूल्यांकन करना किसी जौहरी के लिए भी कठिन था। उसका रग जैतूनी था। वह शरीर का छरहरा और कुछ लम्बा था, और अल्पवयस्क था। उसके कपोलो पर थोडी सी कालिमा थी, और ठोढी पर बिलकुल नही थी। उसकी समस्त आकृति बडी आकर्षक थी। मेरे लिए इतना खाद्य द्रव्य नित्य आता था —दो भेडें, चार जोडे पक्षी, पाच मन चावल, एक मन मक्खन, एक मन चीनी और दो वरवस सोना। यह नित्य प्रति होता था। सप्ताह में दो बार सन्ध्या समय राजा मुझे बुलाता था और खाकाने सईद' के विषय म अनेको प्रश्न पूछता था। प्रत्येक अवसर पर मुझे पानो की एक ढाली और फनामो की थली और कपूर के कुछ 'मिस्काल' दिये जाते थे।

नगर—"विसनगर शहर ऐसा ह कि, इसकी समता का दूसरा नगर पृथ्वी भर में न आख से देखा, न कानो से सुना। इस नगर के चारो ओर बाहर भीतर सात दीवारें ह। बाहरी दीवार के बाहर ५० गज तक मनुष्य की ऊँचाई के आकार के पत्थर एक दूसरे के बहुत निकट गडे हुए ह। यह पत्थर इतने ही नीचे गडे हुए ह इस कारण कोई पदल मनुष्य अथवा घोडा चाहे वह कितना ही वीर क्यो न हो सरलता से बाहरी दीवार तक नही आ सकता।

बाजार तथा पदाधिकारी—" एक व्यवसाय की दूकानें बिलकुल एक साथ ह जौहरी बिल्कुल खुले आम बाजार में मोती, माणिक्य, पन्ना और हीरा बेचते ह। इस सुन्दर स्थान पर तथा राजमहल में अनको जलधारायें तथा नहरें ह। जो बहुत सुन्दर कटे हुए, पालिश किये हुए और चिकने पत्थरो से बनी हुई ह। 'सुलतान' के तोरण के बायी ओर दीवानखाना (सभाभवन) ह जो बहुत ही विशाल और महल के समान ह। इसके सामने एक शाला है जिसकी उँचाई मनुष्य की उँचाई से अधिक है। इसकी लम्बाई ३० गज चौडाई १०

प्रकार अर्द्धजीवित अवस्था में लटके हुए वे देवमूर्ति को साथ देते हैं। इस प्रकार का बलिदान सर्वोत्तम समझा जाता है।

"साल में तीन बार बड़ी श्रद्धा और भक्ति से तीन उत्सव मनाये जाते हैं इन में से एक अवसर पर सभी स्त्री-पुरुष आबाल वृद्ध नदियों अथवा समुद्र में स्नान कर नवीन वस्त्र धारण करते हैं, तीन दिन तक निरन्तर नाच-गान और भोज होते हैं दूसरे अवसर पर वे अपने मन्दिरों में बाहर और छतों पर तेल के दीपक रात-दिन जलाते हैं। तीसरे अवसर पर नौ दिन तक उत्सव रहता है। नगर के बड़े बड़े मार्गों पर बड़े बड़े लट्ठे लगा दिए जाते हैं, उनका आकार छोटे जलयानों के मस्तूल के बराबर होता है। इसके ऊपरी भाग में सुनहरी कामदार विभिन्न प्रकार के सुंदर वस्त्र लपेट दिये जाते हैं। इन लट्ठों के ऊपर प्रत्येक दिन एक पवित्रात्मा तथा धार्मिक मनुष्य बैठा दिया जाता है जो सभी परिस्थितियों में समान भाव से रह सकता है। उसका काय देव प्रार्थना करना होता है। इन व्यक्तियों को लोग नीचे से तंग करते हैं उनमें नीचे से वे नीबू, नारंगी तथा अन्य फल फेंककर मारते हैं। उनको वे प्रसन्नता से सहन करते हैं। इनके अतिरिक्त तीन और उत्सव के दिन होते हैं जिनमें वे सभी यात्रियों पर यहाँ तक कि, राजा और रानी पर भी केसर का पानी डालते हैं। रास्ता के किनारे यह पानी इसी उद्देश्य से रख लिया जाता है। इसका स्वागत लोग बड़ी प्रसन्नता से करते हैं।"

अब्दुर्रज्जाक द्वारा विजयनगर का वर्णन—निकोलोकोण्टी* के २० वर्ष पश्चात् फारस का राजदूत अब्दुरज्जाक १४४२ ई० में विजयनगर आया। वह अप्रैल सन् १४४३ के प्रारम्भ तक नगर में ठहरा। उसने नगर और इसके राय का विस्तृत वर्णन लिखा है।

---

* अब्दुरज्जाक का विस्तृत वर्णन, इलियट भाग ४ पृष्ठ १०५ १२० में मिलता है। वह सन् १४१३ ई० में हिरात में पैदा हुआ था फारस के शाह रुख ने उसे विजयनगर में राजदूत बनाकर भेजा था। १४८२ ई० में उसकी मृत्यु हुई थी।

राय—"एक वार राजा ने मुझे कुछ सेवको द्वारा बुलवाया। सध्या के समय मे दरबार में पहुँचा। मने पाच सुदर घोडे और दा थाल राजा का भेंट किये जिनमे से प्रत्येक में दमस्क और साटन के नौ, नौ थान थे। राजा चालीस स्तम्भ-वाली एक विस्तृत शाला में बडे राजसी ठाट-बाट म बठा हुआ था। उसके दायें-बायें ब्राह्मण तथा अय व्यक्तिया का समूह उपस्थित था। वह जतून साटन के वस्त्र पहने हुए था। उसके गले में बहुत उत्तम कोटि की शुद्ध मोतिया की माला पडी हुई थी जिसका मूल्याकन करना किसी जौहरी के लिए भी कठिन था। उसका रग जतूनी था। वह शरीर का छरहरा और कुछ लम्बा था, और अल्पवयस्क था। उसके कपोला पर थोडी सी कालिमा थी, और ठोढी पर बिलकुल नही थी। उसकी समस्त आकृति वडी आकषक थी। मेरे लिए इतना खाद्य द्रव्य नित्य आता था —दो भेडें, चार जोडे पक्षी, पाच मन चावल, एक मन मक्खन, एक मन चीनी और दो वरवस सोना। यह नित्य प्रति होता था। सप्ताह मे दो वार सध्या समय राजा मुझे बुलाता था और 'खाकाने सईद' के विषय मे अनेको प्रश्न पूछता था। प्रत्येक अवसर पर मुझे पाना की एक ढोली और फनामो की थैली और कपूर के कुछ 'मिस्काल' दिये जाते थे।

नगर—"विसनगर शहर ऐसा ह कि, इसकी समता का दूसरा नगर पथ्वी भर मे न आख से देखा, न काना से सुना। इस नगर के चारा ओर बाहर भीतर सात दीवारें ह। बाहरी दीवार के बाहर ५० गज तक मनुष्य की ऊँचाई के आकार के पत्थर एक दूसरे के बहुत निकट गडे हुए ह। यह पत्थर इतन ही नीचे गडे हुए ह इस कारण कोई पदल मनुष्य अथवा घोडा चाहे वह कितना ही वीर क्या न हो सरलता से बाहरी दीवार तक नही आ सकता।

बाजार तथा पदाधिकारी—" एक व्यवसाय की दूकानें बिलकुल एक साथ ह जौहरी बिलकुल खुले आम बाजार में मोती, माणिक्य, पन्ना और हीरा बेचते ह। इस सुन्दर स्थान पर तथा राजमहल में अनका जलधारायें तथा नहरें ह। जो बहुत सुदर कटे हुए, पालिश किये हुए और चिकने पत्थरा से बनी हुई ह। 'सुलतान' के तोरण के बायी ओर दीवानखाना (सभाभवन) है जो बहुत ही विशाल और महल के समान ह। इसके सामने एक शाला ह जिसकी ऊँचाई मनुष्य की ऊँचाई से अधिक है। इसकी लम्बाई ३० गज चौडाई १०

गज है, इसमें दफ्तर खाना (पुरालेख संग्रह) है। यहीं पर मुंशी बैठते हैं। इस महल के बीच में एक ऊँचे चबूतरे पर एक हिजड़ा बैठता है, उसे दयग कहते हैं वही दीवान का अध्यक्ष होता है। शाला के अन्त में एक पंक्ति में चोबदार खड़े रहते हैं। किसी काम के लिए कोई भी मनुष्य क्यों न आये उसे चोबदारों में से होकर जाना पड़ता है। वह कुछ भेंट चढ़ाता है, साष्टांग दण्डवत् करता है और फिर खड़ा होकर अपना काम बतलाता है जिसके लिए वह वहाँ पहुँचा और तब इस राज्य के नियमों के अनुसार दयग अपना निर्णय देता है। इसके पश्चात् किसी आदमी को अपील करने का अधिकार नहीं है।"

दूसरा नवीन वंश—देवराय द्वितीय कदाचित् १४४९ ई० में मर गया। उसके बाद उसके दो पुत्र एक एक करके राजा हुए परन्तु वे इतने विशाल साम्राज्य को सँभालने में बिलकुल असमर्थ थे। अब राजगद्दी पर सलूवा नरसिंह ने अधिकार कर लिया जो करनाट और तैलगाना का सबसे अधिक शक्तिशाली सरदार था। यह प्रथम राज्यापहरण कहलाता है। सलूवा नरसिंह का राज्य बहुत दिन नहीं चला। उसके उत्तराधिकारी को उसके प्रसिद्ध सेनापति तलूवा वंश के नरेश नायक ने निकाल दिया और इस प्रकार एक नये वंश की नींव डाली। कृष्णदेवराय इस वंश का सबसे प्रसिद्ध राजा हुआ है।

कृष्णदेवराय का चरित्र और व्यक्तित्व—कृष्णदेवराय १५०९ ई० के आस पास गद्दी पर बैठा। उसके राज्यकाल में विजयनगर समृद्धि और महत्ता की चरम सीमा तक पहुँच गया था। उसने दक्षिण के मुसलमानों से समतुल्य शक्ति से युद्ध किये। उसके पूर्ववर्ती राजाओं के प्रति जो उन्होंने अत्याचार किये थे, उनका उसने बदला ले लिया। वह बड़ा योग्य और प्रतिभाशाली राजा था। 'पाइस' ने उसे स्वयं देखा था। उसने इन शब्दों में राजा का वर्णन किया है। "राजा की ऊँचाई मध्यम श्रेणी की है, उसका रंग गोरा है और उसकी आकृति सुन्दर है। उसके मुख पर चेचक के चिन्ह हैं। लोगों को उसका बड़ा भय रहता है। वह सर्वांगपूर्ण राजा है, जो प्रसन्न मन और हँसमुख रहता है। वह विदेशियों का आदर करता है और उनके साथ दया का बर्ताव करता है, उनके विषय में वह सब बातें पूछता है

और उनकी दशा से परिचय प्राप्त करना चाहता है। वह महान राजा ह और ब
न्यायप्रिय है परन्तु उसे कभी कभी क्रोध का आवेश आ जाता है।

दक्षिण के शासकों में कृष्णदेव की समता का हिन्दू और मुसलमा
में कोई शासक नहीं था। वह स्वय वष्णव था परन्तु अपनी प्रजा
उसने पूरी धार्मिक स्वतन्त्रता दे दी थी। वह बहुत ही दयालु अ
अतिथिसवी था। विदेशियों का वह बडा सत्कार करता था। वे उस
उदारता, उसकी मनोरम आकृति और उसकी सुसस्कृति की प्रश
करते थे वह बडा सम्भाषणकुशल था। लेखों से पता चलता है, कि,
सस्कृत और तेलगू साहित्य का बडा आश्रयदाता था। उसकी स
को आठ उच्च कोटि के कवि सुशोभित करते थे। वे 'अष्ट दिग्गज' कहलाते थ
युद्ध-कौशल का भी उसमें अभाव न था। अपने शत्रुओं से जो उसने युद्ध वि
उनसे उसकी प्रबन्धकुशलता और साहस का पता चलता ह वह बडा निर्भी
और विख्यात सेनानायक था। साथ ही कृष्णदेवराय अत्यन्त ही उदार प्रकृ
का पुरुष था। मन्दिरों और ब्राह्मणों को उसने अनेक दान दिये। इन सब बा
को विचारकर हम इस निर्णय पर पहुँचते ह कि वह दक्षिणी भारत का सब
प्रसिद्ध राजा था। 'सीवल' ने उसके राजपद और व्यक्तित्व का बडा रोच
वर्णन किया ह —

'कृष्णदव केवल नाम का ही राजा नहीं था वह यथार्थ मे बडा शक्तिशा
और निरकुश शासक था। उसका व्यक्तित्व बडा प्रभावशाली था और वह वास्त
में शासन करता था। युवावस्था मे उसकी शारीरिक शक्ति भी बहुत अधिक थी
व्यायाम करके वह इस शक्ति को स्थिर रखता था। वह बहुत तडके उठता थ
मुग्दर और तलवार घुमाकर वह शरीर की सभी मास-पेशियों को दृढ रख
था। वह बडा सुन्दर अश्वारोही था। उसकी आकृति बहुत सुन्दर थी। जो क
भी उसके सम्पर्क में आता था उस पर उसका बडा प्रभाव पडता था। अप
विशाल सेना का सचालन वह स्वय करता था। वह बडा योग्य, वीर राजनीति
था और साथ ही उसकी प्रकृति बडी कोमल थी और चरित्र उदार था। उस
चरित्र पर केवल एक ही दोष लगाया जाता ह कि, मुसलमान बादशाह को पराजि
करने के बाद उसके सम्मुख बडी सगर्व और धृष्ट मांगें उपस्थित थीं।

युद्ध तथा देश-विजय—कृष्णदेवराय ने सुदूर दशो को विजय किया। उसने उडीसा के राय को पराजित कर दिया और राजघराने की कन्या स विवाह किया। सन् १५२० ई० में बीजापुर-विजय उसकी सबसे महत्त्वपूण घटना थी। मुसलमानो के डेरो में आतक छा गया और अपार सम्पत्ति हिदुओ के हाथ लगी। आदिलशाह की प्रतिष्ठा इतनी कम हो गई कि कुछ समय तक वह दक्षिण की ओर देश विजय करने की बात ही भूल गया। परन्तु वह अगले युद्ध के लिए अपनी शक्ति को बडी दृढता से व्यवस्थित करने लगा। विजय के समय हिदुओ ने इतने स्वाभिमान से काय किया कि उसमे सभी मुसल्मान राज्य चिढ गये और दक्षिण के सभी मुसलमान उनसे घृणा करने लग।

पुर्तगीजों से सम्बन्ध—विजयनगर के राय के साथ पुत्तगीजो की बडी मत्री थी। घोडो तथा अय वस्तुओ के व्यापार से उन्होने बडा लाभ उठाया था। १५१० ई० में पुत्तगीज सूबेदार एल्बुकक ने भत्कल नामक स्थान पर दुग बनाने की आज्ञा मागने के लिए विजयनगर का राजदूत भेजे। इसकी स्वीकृति मिल गई। इसी समय पुत्तगीजो ने गोआ पर अधिकार कर लिया, जो सदव ही बडा महत्त्वपूण स्थान रहा ह। दक्षिण के हिदू और मुसलमानो के पारस्परिक सघष के कारण इन विदेशी व्यापारियो की शक्ति दिन पर दिन वढती गई क्योकि इनमें से कोई न कोई अवश्य ही उनकी सहायता लिया करता था।

राज्य का विस्तार—कृष्णदेवराय की विजयो से राज्य का विस्तार बहुत बढ गया। उसके राज्य में वह प्रदेश सम्मिलित था, जो आजकल मद्रास प्रसीडेंसी मैसूर तथा अन्य दक्षिणी रियासतो में सम्मिलित ह। पूव में इसी की सीमा कटक तक और पश्चिम म सालसिट तक पहुँच गई थी। दक्षिण में प्रायद्वीप के अन्तिम छोर तक उसका राज्य चला गया था। विजयनगर के विस्तार और उसकी शक्ति को देखकर दक्षिण के मुसलमान शासको को बडी चिन्ता हुई। वे सदव युद्ध के लिए तैयार रहते थे और विजयनगर की शक्ति और प्रतिष्ठा को कम करने के लिए कुछ उठा न रखते थे।

भाग्य विपर्यय—कृष्णदेव की मत्यु के बाद पतन प्रारम्भ हुआ। नवीन राजा अच्युतदेव कृष्णदेवराय का भाई था। वह बडा अयोग्य शासक था। और सशक्त प्रतिवेशियो से अपनी रक्षा नही कर सकता था। बीजापुर के

सुलतान ने रायचूर और मुदगल के दुर्ग जीत लिये और इस प्रकार राय का अपमान किया। १५८२ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद सदाशिव राय गद्दी पर बैठा जो कि उसके मृत भाई का पुत्र था, परन्तु वह केवल नाम का ही राजा था और राज्य की सारी शक्ति कृष्णदेव राय के प्रसिद्ध मन्त्री सल्वातिम्मा के पुत्र रामराय सल्वा के हाथो में थी। रामराय बडा योग्य व्यक्ति था। परन्तु उसके धृष्ट व्यवहार और अहकार के कारण उसके शत्रु और मित्र दोनो रुष्ट रहते थे। अहमदनगर और गोल्कुडा की सहायता से १५४३ ई० म उसने बीजापुर पर चढाई कर दी, परन्तु अली आदिलशाह के मन्त्री असद खाँ की कूटनीति से बीजापुर की रक्षा हुई। उसने राय को इस सघ से अलग कर दिया और बुरहान से सधि कर ली, परन्तु १५५७ ई० में इन सम्बन्धो में फिर परिवर्तन हुआ। बीजापुर, गोल्कुडा और विजयनगर ने मिलकर अहमद-नगर पर चढाई कर दी। हिन्दुओ ने सारे देश को उजाड दिया। फरिश्ता ने लिखा है, "विजयनगर के अधर्मी बहुत दिनो से ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में थे। उन्होने किसी भी प्रकार की निर्दयता करने में कभी भी सकोच नही किया। उन्होने मुसलमान स्त्रियो का अपमान किया, मसजिदो को नष्ट किया और कुरान शरीफ का भी आदर नही किया।" हिन्दुओ के इस वर्ताव से मुसलमान बहुत चिढ गये और उनके मित्रराष्ट्र भी उनसे अलग हो गये। उन्होने उस हिन्दू राज्य को कुचल देने का दृढ निश्चय कर लिया। अपने पारस्परिक वैमनस्य का अन्त करके उन्होने १५६४ ई० म विजयनगर के विरुद्ध एक सघ बनाया जिसमें बीजापुर, गोल्कुडा, अहमदनगर, बीदर राज्य सम्मिलित थे। बरार इससे अलग रहा। इस सघ ने—जिसके बनने का मूल कारण द्वेष और घृणा ही थी—ऐसा बदला लिया, जिसकी समता दक्षिण के इतिहास में नही मिलती।

तालीकोट का युद्ध—२५ दिसम्बर सन् १५६४ ई० को इन सयुक्त राष्ट्रो ने दक्षिण की ओर प्रस्थान कर दिया। कृष्णा नदी के किनारे तालीकोट नामक स्थान पर वे इकट्ठे हुए। राय ने उनकी चालो पर ध्यान नही दिया। उसने उनके प्रति घृणित भाषा का प्रयोग किया और शत्रु की उपेक्षा की, परन्तु अपनी भूल का उसे शीघ्र ही पता चल गया। उसने अपने सबसे छोटे भाई तिरुमल को २०,००० अश्वारोहियो, एक लाख पदातियो और ५०० हाथियो के साथ

युद्ध तथा देश विजय—कृष्णदेवराय ने सुदूर देशो को विजय किया। उसने उडीसा के राय को पराजित कर दिया और राजघराने की कन्या से विवाह किया। सन् १५२० ई० में बीजापुर-विजय उसकी सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। मुसलमानो के डेरा में आतक छा गया और अपार सम्पत्ति हिदुओ के हाथ लगी। आदिलशाह की प्रतिष्ठा इतनी कम हो गई कि कुछ समय तक वह दक्षिण की ओर देश विजय करने की बात ही भूल गया। परन्तु वह अगले युद्ध के लिए अपनी शक्ति को बडी दृढता से व्यवस्थित करने लगा। विजय के समय हिदुओ ने इतने स्वाभिमान से काय किया कि उससे सभी मुसलमान राज्य चिढ गय और दक्षिण के सभी मुसलमान उनस घृणा करने लगे।

पुर्त्तगीजों से सम्बन्ध—विजयनगर के राय के साथ पुत्तगीजो की बडी मत्री थी। घोडा तथा अन्य वस्तुओ के व्यापार से उन्होने बडा लाभ उठाया था। १५१० ई० में पुत्तगीज सूबेदार एल्बुकक ने भत्कल नामक स्थान पर दुग बनाने की आज्ञा माँगने के लिए विजयनगर को राजदूत भेजे। इसकी स्वीकृति मिल गई। इसी समय पुत्तगीजो ने गोआ पर अधिकार कर लिया, जो सदव ही बडा महत्त्वपूण स्थान रहा ह। दक्षिण के हिदू और मुसल्मानो के पारस्परिक सघष के कारण इन विदेशी व्यापारियो की शक्ति दिन पर दिन बढती गई क्योकि इनमें से कोई न कोई अवश्य ही उनकी सहायता लिया करता था।

राज्य का विस्तार—कृष्णदेवराय की विजयो से राज्य का विस्तार बहुत बढ गया। उसके राज्य में वह प्रदेश सम्मिलित था, जो आजकल मद्रास प्रेसीडेंसी मसूर तथा अन्य दक्षिणी रियासतो में सम्मिलित ह। पूव में इसी की सीमा कटक तक और पश्चिम म साल्सिट तक पहुँच गई थी। दक्षिण में प्रायद्वीप के अन्तिम छोर तक उसका राज्य चला गया था। विजयनगर के विस्तार और उसकी शक्ति को देखकर दक्षिण के मुसल्मान शासको को बडी चिन्ता हुई। वे सदैव युद्ध के लिए तैयार रहते थ और विजयनगर की शक्ति और प्रतिष्ठा को कम करने के लिए कुछ उठा न रखते थे।

भाग्य विपर्यय—कृष्णदेव की मत्यु के बाद पतन प्रारम्भ हुआ। नवीन राजा अच्युतदेव कृष्णदेवराय का भाई था। वह बडा अयोग्य शासक था। और सशक्त प्रतिद्वेन्द्रियो से अपनी रक्षा नहीं कर सकता था। बीजापुर के

सुलतान ने रायचूर और मुद्गल के दुर्ग जीत लिये और इस प्रकार राय का अपमान किया। १५४२ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद सदाशिव राय गद्दी पर बैठा जो कि उसके मृत भाई का पुत्र था, परन्तु वह केवल नाम का ही राजा था और राज्य की सारी शक्ति कृष्णदेव राय के प्रसिद्ध मन्त्री सलूवातिम्मा के पुत्र रामराय सलूवा के हाथों में थी। रामराय बड़ा योग्य व्यक्ति था। परन्तु उसके धृष्ट व्यवहार और अहंकार के कारण उसके शत्रु और मित्र दोनों रुष्ट रहते थे। अहमदनगर और गोलकुंडा की सहायता से १५४३ ई० में उसने बीजापुर पर चढ़ाई कर दी, परन्तु अली आदिलशाह के मन्त्री असद खाँ की कूटनीति से बीजापुर की रक्षा हुई। उसने राय को इस संघ से अलग कर दिया और बुरहान से संधि कर ली, परन्तु १५५७ ई० में इन सम्बन्धों में फिर परिवर्तन हुआ। बीजापुर, गोल्कुंडा और विजयनगर ने मिलकर अहमदनगर पर चढ़ाई कर दी। हिंदुओं ने सारे देश को उजाड़ दिया। फरिश्ता ने लिखा है, "विजयनगर के अधर्मी बहुत दिनों से ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में थे। उन्होंने किसी भी प्रकार की निर्दयता करने में कभी भी संकोच नहीं किया। उन्होंने मुसलमान स्त्रियों का अपमान किया, मसजिदों को नष्ट किया और कुरान शरीफ का भी आदर नहीं किया।" हिंदुओं के इस बर्ताव से मुसल्मान बहुत चिढ़ गये और उनके मित्रराष्ट्र भी उनसे अलग हो गये। उन्होंने उस हिन्दू राज्य को कुचल देने का दृढ़ निश्चय कर लिया। अपने पारस्परिक वैमनस्य का अन्त करके उन्होंने १५६४ ई० में विजयनगर के विरुद्ध एक संघ बनाया जिसमें बीजापुर, गोल्कुंडा, अहमदनगर, बीदर राज्य सम्मिलित थे। बरार इससे अलग रहा। इस संघ ने—जिसके बनने का मूल कारण द्वेष और घृणा ही थी—ऐसा बदला लिया, जिसकी समता दक्षिण के इतिहास में नहीं मिलती।

तालीकोट का युद्ध—२५ दिसम्बर सन् १५६४ ई० को इन संयुक्त राष्ट्रों ने दक्षिण की ओर प्रस्थान कर दिया। कृष्णा नदी के किनारे तालीकोट नामक स्थान पर वे इकट्ठे हुए। राय ने उनकी चालों पर ध्यान नहीं दिया। उसने उनके प्रति घृणित भाषा का प्रयोग किया और शत्रु की उपेक्षा की, परन्तु अपनी भूल का उसे शीघ्र ही पता चल गया। उसने अपने सबसे छोटे भाई तिरूमल को २०,००० अश्वारोहियों, एक लाख पदातियों और ५०० हाथियों के साथ

कृष्णा नदी के सभी घाटों पर भेज दिया कि वह उन सभी घाटों की रक्षा करें। दूसरी सेना को उसने दूसरे भाई की अध्यक्षता में भेजा। शेष सेना उसने अपने साथ रखी और युद्ध-क्षेत्र के लिए चल दिया। संयुक्त राष्ट्रों ने भी बडी बडी तैयारियाँ की थी। इतनी विशाल सेनाएँ दक्षिण में कभी नही मिली थी। युद्ध प्रारम्भ हुआ। पहले हिंदुओ की विजय प्रतीत होने लगी, परन्तु जब संयुक्त राष्ट्रों के बारूदखाने ने हिन्दू सेना पर तांबे के सिक्कों के थलो से प्रहार किया, तो थोडे ही समय में ५,००० हिन्दू खेत रहे। इसके बाद अश्वारोहियों का आक्रमण हुआ। रामराय पकड लिया गया। हुसैन निजामशाह ने उसका सिर काट डाला और काटते समय यह कहा, अब मैंने तुमसे बदला ले लिया। भगवान् अब मुझे चाहे जो दण्ड दें। सेना में भय के कारण भगदड पड गई। एक लाख हिन्दू मारे गये और लूट इतनी अधिक हुई कि "संयुक्त सेना का प्रत्येक सैनिक सोने, जवाहर सामान तम्बू हथियार घोडे और दासो से सम्पन्न हो गया। सुलतान ने अपने लिए केवल हाथी लिये। अन्य सामग्री—जिसने जो लूट ली थी—उसी के पास रही। इसके पश्चात् विजयी राष्ट्र विजयनगर पहुँचे और सारी जनता को तहस-नहस कर डाला। सम्पत्ति लूट ली और स्त्री-पुरुषों को मार डाला। मुसलमानों ने विजयनगर के लोगों पर जो अत्याचार किये और जो यातनाएँ उनको दीं, उनका वर्णन करने में वाणी असमर्थ है। 'सीवल' ने उस भयंकर दृश्य का वर्णन इन शब्दों में किया है —

"तीसरे दिन अन्त का प्रारम्भ दिखाई देने लगा। विजयी मुसलमान विश्राम और मनोरंजन के लिए युद्ध भूमि पर ठहरे हुए थे। अब वे राजधानी पहुँचे और फिर ५ मास तक विजयनगर को विश्राम नही मिला। शत्रु विनाश के लिए आया था और उसने बडी नृशंसता से अपने उद्देश्य की पूर्ति की। उन्होंने बडी निर्दयता से लोगों को काट डाला। उनके मंदिर और महल ढा दिये और राजा के महल पर इस बर्बरता से टूट पडे कि अब कुछ पत्थर के बने मंदिरो और दीवारो को छोडकर उनका कोई भी चिह्न अवशिष्ट नहीं है। जिस स्थान पर किसी समय महल खडे थे वहाँ अब खँडहरों का ढेर है। उन्होंने मूर्तियाँ तोड डालीं और एक [illegible] निर्मित विशाल नृसिंह प्रतिमा के [illegible] तोड डाले। उनका [illegible] बच गया। उन्होंने

विशाल चबूतरे पर बने हुए उस मण्डप को भी तोड दिया, जहा से राजा उत्सव देखा करते थे। शिल्प और कढाई का सब कार्य भी नष्ट भ्रष्ट कर दिया। तुङ्गभद्रा नदी के किनारे स्थित विट्ठल स्वामी के सुसज्जित मन्दिर में आग लगा दी। आग से, तलवार से, कुल्हाडियो से तथा भालो से व विनाश कार्य करते रहे। ससार के इतिहास में इतना बडा विनाश और इतनी बडी दुर्घटना ऐसे सुन्दर नगर पर इस आकस्मिक रूप से कभी नही हुई। जो नगर आज धनी और व्यवसायी जनता से समृद्ध और सम्पन्न था, वही दूसरे दिन लूट पाट के बाद खँडहरा म परिवर्तित हो गया और ऐसे अत्याचार लोगो पर हुए जिनका वर्णन करना शब्दो की शक्ति के बाहर है।"

तालीकोट के युद्ध का प्रभाव—भारतीय इतिहास के जिन युद्धो का परिणाम सर्वाधिक निश्चित हुआ, तालीकोट का युद्ध उन्ही में से एक है। इसके परिणाम-स्वरूप दक्षिण के विशाल हिन्दू साम्राज्य का अत हो गया। इसके पतन के पश्चात् अराजकता और अव्यवस्था फल गई। मुसलमान अपने प्रबल प्रति-द्वन्द्वी के नाश होने से पहले तो बडे प्रसन्न हुए, परन्तु शीघ्र ही उनकी शक्ति और उत्साह का ह्रास होने लगा। विजयनगर उनको शक्तिवर्द्धन की प्रेरणा दिया करता था। इस लाभ को कदाचित् वे नही समझ सके। इससे वे सदव सतर्क और सावधान रहते थे। परन्तु ज्यो ही इस भय का अत हो गया वसे ही वे आपस मे लडने लगे और इसी कारण वे बडी सरलता से महत्वाभिलाषी मुगल सम्राट् के शिकार बन गये।

नवीन वश—रामराय की मृत्यु के पश्चात् उसका भाई तिरुमल सदाशिव के नाम से राज करने लगा। परन्तु १५७० ई० के आस-पास उसने राजगद्दी पर अधिकार कर लिया और एक नये वश की नीव डाली। तिरुमल के द्वितीय पुत्र रग द्वितीय के पश्चात् १५८६ ई० के आस-पास वेंकट प्रथम गद्दी पर बैठा। वह इस वश का सबसे प्रधान शासक था। वह बडा योग्य और सच्चरित्र था। कवियो और विद्वानो को वह आश्रय देता था। वेंकट के उत्तराधिकारी अपने पूर्वजो से प्राप्त छोटे से राज्य की भी रक्षा नही कर सके और राजवश का प्रभाव कम होते होते नष्टप्राय हो गया। साम्राज्य के बहुत बडे भाग पर

मुसलमानों का अधिकार हो गया और इसी के खंडों से तंजौर और मदुरा के नायकों ने अपने लिए छोटे छोटे स्वतंत्र राज्य निर्मित कर लिये।

राज्य-प्रबंध—साम्राज्य की शासन-व्यवस्था सुसंगठित थी, राजा उसका केंद्र था। एक समिति उसकी सहायता करती थी, जिसके सदस्य राजमंत्री, प्रान्तीय सूबेदार, सेनानायक, पंडित और कवि होते थे। परन्तु राज-व्यवस्था अत्यन्त ही केंद्रित थी। राजा पूर्ण निरंकुश और स्वेच्छा-चारी था। उसकी शक्ति अपरिमित थी। वही देश के शासन प्रबंध की देख-भाल करता था और वही सैन्य-संचालन करता था। जो मामले निर्णय के लिए उसके सामने आते थे, उनमें वह न्यायाधीश का भी कार्य करता था। राज्य के प्रधान पदाधिकारी ये थे —प्रधान मंत्री, प्रधान कोषाध्यक्ष, राजकीय रत्नरक्षक और पुलिस का अधिनायक। अन्य अन्य छोटे छोटे कर्मचारी उनकी सहायता करते थे। प्रधान मंत्री सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर राजा को प्रधान रूप से परामर्श देता था। पुलिस के अधिनायक का कर्त्तव्य नगर में शान्ति-स्थापन करना था। विजयनगर की राजसभा बड़ी भव्य और सुसज्जित थी। उस पर अपार धन व्यय किया जाता था। सरदार, पंडित, ज्योतिषी और संगीतज्ञ इसके सदस्य होते थे। उत्सवों के अवसर पर आतिशबाजी छूटती थी तथा राज्य की ओर से अन्य मनोरंजन के साधन एकत्रित किये जाते थे।

स्थानीय शासन भी सुपरिचालित था। साम्राज्य में २०० से अधिक प्रान्त थे। नाडू और कोटम इन प्रान्तों के और छोटे भाग थे। इनके और छोटे भाग ग्राम तथा नगर-समुदाय थे। प्रत्येक प्रान्त में एक राज प्रतिनिधि रहता था। वह या तो राजवंश का कोई व्यक्ति होता था अथवा राज्य का कोई शक्तिशाली सामन्त होता था। प्रान्त साम्राज्य का ही एक प्रतिरूप था। राज प्रतिनिधि की अपनी अलग सेनाएँ होती थीं, वह अपनी सभा अलग करता था और अपनी सीमा के भीतर वह पूर्ण निरंकुशता से कार्य करता था। परन्तु वह सम्राट् के सामने अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी था। युद्ध के समय उसको सैनिक सहायता देनी पड़ती थी। इन प्रान्तीय सूबेदारों के पद-ग्रहण का समय अनिश्चित था। परन्तु जब तक वे पद पर रहते थे तब तक उनका समय बड़े आनंद से व्यतीत होता था।
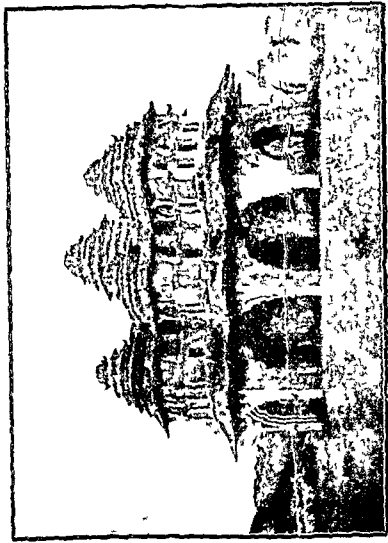
विजयनगर का कौंसिल भवन

यह स्थानीय शासन की व्यवस्था गाँवो तक चली गई थी। स्मरणातीत काल से ही गाँव शासन की इकाई था। अपने वशागत कमचारियो की सहायता से गाव सभा अपना प्रबध स्वय करती थी। ये कमचारी आयगर कहलाते थ। इनमें से कुछ लोग छोटे छोटे झगडो का निणय करते थे, राजस्व इकट्ठा करते थे और शान्ति और व्यवस्था स्थापित करते थे। इन गाव सभाओ से बडी सहायता मिलती थी। इन के द्वारा केद्रीय शासन और जनता का सम्पक बना रहता था।

विजयनगर के राजाओ की बहुत बडी आय थी। भूमि-कर उनका प्रधान साधन था। पुत्तगाली इतिहासकार ने लिखा ह कि सेनानायको को राजा से भूमि मिली रहती थी। वे उस किसाना को दे देते थ। किसान अपनी पदावार का $\frac{9}{10}$ भाग अपने भूस्वामियो को दे देते थे जो राजा को आधा भाग समर्पित करते थे। इस वणन में अत्युक्ति प्रतीत होती ह। क्योकि, उपज के $\frac{1}{10}$ भाग पर किसान अपना जीवन निर्वाह नही कर सकते। भूमि-कर के अतिरिक्त और भी अनेक उपकर लगाये जाते थे जिनके कारण राज्य की आय बहुत बढ जाती थी। गणिकाओ पर कर लगता था। इस साधन से जो आय होती थी उसका बहुत बडा भाग पुलिस-विभाग में व्यय किया जाता था। किसाना पर बहुधा आवश्यकता से अधिक कर लग जाता था और राज-कर उगाहनेवाले लोग प्राय कठोरता का व्यवहार करते थे।

सनिक-व्यवस्था भी गणतान्त्रिक थी। युद्ध के समय राजा की निजी सेना के अतिरिक्त प्रान्तीय शासक भी अपना अपना भाग देते थे। अय प्रत्येक प्रकार की सहायता देना उनका कत्तव्य था। विजयनगर-सेना की पूरी सख्या कितनी थी, इस विषय में इतिहासकारो में मतभेद ह। एक इतिहासकार का कहना ह कि, १५२० ई० में कृष्णदेव के पास बडी विशाल सेना थी जिसमें ७,०३,६६० पदाति, ३२,६०० अश्वारोही और ५५१ हाथी थे और असख्य सफरमना सेना और सेवक थे। यह सख्या अधिक प्रतीत होती है और यह असम्भव सा ही प्रतीत होता है कि राय के पास इतनी सेना हो। मध्ययुग की अय देशा की हिन्दू सेनाओ की भाँति यहाँ भी सैनिक व्यवस्था थी। इसमें भी हाथी, घुडसवार और पैदल थे, परन्तु युद्ध-कौशल में उत्तर के मुसलमानों

की सेना से यह हीन थी। हाथियो पर बहुत विश्वास किया जाता था परन्तु कुशल धनुधारियो अथवा सुशिक्षित अश्वारोहियो के सामने वे बिलकुल न ठहर पाते थे।

न्याय-व्यवस्था बडी स्थूल थी। न्यायाधिकारियो के विवेकानुसार तुरन्त निर्णय हो जाता था। राजा अथवा प्रधान मत्री से निर्णय की पुन प्रार्थना की जा सकती थी। दीवानी मामलो में हिंदू विधान तथा स्थानीय लोकाचार के अनुसार निर्णय किया जाता था। फौजदारी विधान बहुत कठोर और बर्बर था। अर्थदण्ड के अतिरिक्त शारीरिक यत्रणा बहुधा दी जाती थी। चोरी, व्यभिचार और राजद्रोह के लिए या तो प्राणदण्ड दिया जाता था या हाथ-पैर काट लिये जाते थे। ब्राह्मण और पुरोहित प्राणदण्ड से मुक्त थे।

सामाजिक दशा—राज-सभा के ठाट-बाट और दीन की कुटी के दारिद्र्य में अतर स्पष्ट दिखाई देता था। विदेशी आगतुको ने राजधानी के राजकीय उत्सवो और जुलूसो के वैभव और ठाट-बाट तथा सामन्तो के धन और विलास का बडा विस्तृत वर्णन किया है। पारस्परिक झगडो का निर्णय करने के लिए द्वन्द्व युद्ध की विधि मान्य थी। सती की प्रथा प्रचलित थी और ब्राह्मण लोग इस सस्कार का समर्थन करते थे परन्तु राजधानी की स्त्रियो की दशा सन्तोषजनक थी।

उनमें पहलवान, ज्योतिषी और भविष्यवक्ता भी थी। राजघराने के आय-व्यय का लेखा रखने के लिए स्त्रियाँ नियुक्त रहती थी। इससे प्रकट है कि स्त्रियां राज-काज मे भी बडी सुशिक्षित और अनुभवी थी। भोजन में बडा शैथिल्य था। यद्यपि ब्राह्मण किसी जीव को न मारते थे, न खाते थे, परन्तु साधारण लोग सभी जीवो का मास खाते थे। गाय और बैल का मास वर्जित था। राजा भी इस नियम का कठोरता से पालन करते थे। प्रत्येक जीवित पशु ही बाजार में बेचा जाता था।

ब्राह्मणो का समाज में बडा आदर था। 'नुनीज' के अनुसार ब्राह्मण बडे सत्यनिष्ठ, गुणज्ञ और सुदर होते थे। गणित के कार्य में वे विशेष कुशल होते थे परन्तु कठिन परिश्रम वे नहीं कर सकते थे। बलिदान सर्वसामान्य थ। राज-

धानो के अपार धन के कारण विलासिता फैल गई और साथ-साथ अन्य अनेक दुर्गुण भी लोगो में आ गये थे ।

सहायक ग्रन्थ

ब्रिग्ज—राइज आव मुहमडन पावर इन दी ईस्ट भाग ४
ब्रिग्ज—हिस्ट्री आव माण्डू।
स्टीवर्ट—हिस्ट्री आव बंगाल
बेली—लोकल मुहमडन डायनेस्टीज आव गुजरात
कम्मरियट—हिस्ट्री आव दी गुजरात सल्तनत
ग्रिबिल—हिस्ट्री आव दी डेकन
किंग—हिस्ट्री आव दी डैकन
फ्यूरर—शर्की आर्कीटेक्चर
सीवल—ए फारगोटिन एम्पायर

—

अध्याय १०

पतन का युग

दिल्ली राज्य की दशा—खिज्र खाँ ने दिल्ली की गद्दी पर तो अधिकार कर लिया था परन्तु उसकी स्थिति बडी सकटापन्न थी। वह खुले आम राजपद स्वीकार करने से हिचकता था। तैमूर के प्रतिनिधि रूप में ही उसने शासन का काम प्रारम्भ किया। प्रान्तीय सूबदारो के स्वार्थ, लोभ और उच्चाभिलाषाओ के कारण तैमूर के आक्रमण के समय से साम्राज्य की प्रतिष्ठा भी कम हो गई थी और उसका राज्य विस्तार भी कम हो गया था। राज्य का विभाजन जो प्रारम्भ हो चुका था, उसका भी अन्त नही हुआ। राजधानी में विभिन्न दल अपनी शक्ति के लिए द्वन्द्व कर रहे थे और बडी आश्चर्यजनक शीघ्रता से अपनी परिस्थिति को बदल देते थे। उनके नेता केवल स्वार्थ की भावनाओ से ही प्रेरित थे। बल्बन के समय से ही दोआब साम्राज्य का बडा असन्तुष्ट अग था। इटावा के राठौर राजपूतो ने तथा कटेहर, कन्नौज और बदायू के जमीदारो ने राज्य-कर देना बन्द कर दिया और केन्द्रीय शक्ति की कोई परवाह नही की। उन्होने बार-बार उपद्रव किये और सुल्तान को उन्हे दण्ड देने के लिए आक्रमण करना पडा। मालवा, जौनपुर और गुजरात के राज्य दिल्ली से बिल्कुल स्वतन्त्र हो गये। वे आपस में लडते थे। उत्तर पश्चिम से भी लडते थे और बहुधा दिल्ली-साम्राज्य के प्रदेशो में घुस जाते थे। मालवा और गुजरात के शासको में आपस में युद्ध होता था। राजपूतो से भी वे लडे और दिल्ली की राजनीति में भाग न लेने के लिए उन्हे विवश किया। राजधानी के निकट ही मेवाती बडे असन्तुष्ट थे। उन्होने कर देना बन्द कर दिया था। दिल्ली का आधिपत्य स्वीकार करने में भी वे आनाकानी करने लगे थे। उत्तरी सीमा के निकट खोखरो ने मुल्तान और लाहौर को लूटा और देश की अराजकता

से लाभ उठाने की चेष्टा की। सरहिन्द के तुर्क बच्चा भी इसी प्रकार अशान्त हो रहे थे। उन्होंने दलबन्दी करके अपना प्रभाव जमाने के लिए षडयन्त्र करना प्रारम्भ कर दिया था। प्रान्तों के मुसलमान शासक अपने पडोसियों से लडने लगे और बिलकुल स्वतन्त्र तथा निरकुश शासक के रूप में कार्य करने लगे थे। दिल्ली सुलतान की प्रतिष्ठा बिल्कुल नष्ट हो गई थी। मुसलमानों की भी पुरानी शक्ति और तेज नष्ट हो गये थे। हिन्दू और मुसलमानों में कोई सहानुभूति न थी, वे प्राय आपस में लडा करते थे। १५वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत की राजनैतिक परिस्थिति बडी चिन्ताजनक थी और सैयदों के सामने समाज का पुनर्व्यवस्थित करने का कठिन कार्य उपस्थित था।

खिज्र खाँ १४१४-२१—दिल्ली में जो राजनतिक अव्यवस्था फल रही थी उसके कारण खिज्र खाँ बहुत शक्तिशाली हो गया। १४१४ ई० में उसने दौलतखाँ को पराजित कर राजधानी पर अधिकार कर लिया। उसके सम्मुख दोआब मे तथा उन प्रान्तों में जो अब भी दिल्ली का आधिपत्य स्वीकार करते थे, व्यवस्था स्थापित करने की समस्या प्रमुख थी। उसका वजीर ताजुल्मुल्क १४१४ ई० में कटेहर के जिले में घुस गया उसने और देश को रौंद डाला।

राय हरसिंह बिना सामना किये भाग गया परन्तु शाही सेना ने उसका पीछा किया और आत्मसमर्पण कर देने के लिए बाध्य किया। खोर,[1] कम्पिल, सकीट,[2] पालम, ग्वालियर, सियौनी और चन्दवार के जमीदारों ने हार स्वीकार कर ली और कर देने लगे थे। चन्दवार के राजा से जलेसर[3] छीन लिया गया

१ खोर, उत्तर प्रदेश जिला फरुखाबाद में है इसका वर्तमान नाम शमसाबाद है। बूढ़ी गंगा के दक्षिणी तट पर फतहगढ से १८ मील उत्तर की ओर यह नगर स्थित है। फरुखाबाद डिस्ट्रिक्टगजटियर पृ० १२३,१२४

२ सकीट, कम्पिल और रपडी के बीच तथा एटा से १२ मील दक्षिण पूर्व को है। इसी परगने के वदोत्री नामक स्थान पर ग्वालियर के आक्रमण से लौटते समय बहलोल लोदी की मृत्यु हुई थी।

३ जलेसर, उत्तर प्रदेश आगरा और अवध में मथुरा से ३८ मील की दूरी पर है।

और उन मुसलमानों को दे दिया गया जिनके अधिकार में वह पहले था। दोआब, बियाना और ग्वालियर बार बार विद्रोह करते थे परन्तु वहाँ शान्ति स्थापित हो गई और वहाँ के गणाधीश दिल्ली का आधिपत्य स्वीकार करने के लिए विवश कर दिये गये।

दोआब में व्यवस्था और शान्ति स्थापित करने के पश्चात खिज्र खाँ ने उत्तरी सीमा की ओर ध्यान दिया। सरहिन्द के तुर्क बच्चाओं का विद्रोह दबा दिया गया। दोआब में फिर उपद्रव प्रारम्भ हो गया। परन्तु प्रमुख विद्रोही जमींदार दबा दिये गये। मेवातियों का भी दमन हो गया। ग्वालियर और इटावा के गणाधीशों को दमन करने के लिए सुल्तान स्वयं चला। उन्होंने फिर अधीनता स्वीकार कर ली। दिल्ली लौटने पर खिज्र खाँ बीमार हो गया और २० मई सन् १४२१ ई० को उसकी मृत्यु हो गई।

खिज्र खाँ का जीवन बिलकुल सैयदों का-सा था। उसने कभी अनावश्यक रक्तपात नहीं किया। अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिए अथवा अपने शत्रुओं से बदला लेने की दृष्टि से उसने कभी अत्याचार नहीं किया। यदि उस समय शासन-सुधार नहीं हो सका, तो इसमें उसका कोई अपराध नहीं था। देशव्यापक तत्कालीन अराजकता ने उसे विश्राम नहीं लेने दिया। उसका सारा जीवन उन प्रान्तों में दिल्ली की प्रतिष्ठा स्थापित करने में ही बीता, जो अब तक उसके आधिपत्य में थे। फरिश्ता ने इन शब्दों में उसकी प्रशंसा की है, जो उचित ही है— "खिज्र खाँ बड़ा महान् और बुद्धिमान् सुल्तान था। वह बड़ा दयालु और वचन का पक्का था। उसकी प्रजा उसे श्रद्धा और स्नेह की दृष्टि से देखती थी। परिणामस्वरूप छोटे-बड़े स्वामी, सेवक सबने मिलकर तीन दिन तक काले वस्त्र पहनकर उसके लिए शोक मनाया। इसके पश्चात् शोक के वस्त्र उन्होंने उतार दिये और उसके पुत्र मुबारकशाह को गद्दी पर बैठा दिया।"

मुबारकशाह १४२१-३४—खिज्र खाँ के पश्चात् उसका पुत्र मुबारक गद्दी पर बैठा। उसने अपने सरदारों को उनकी जागीरों में स्थायी कर दिया और इस प्रकार वह उनका प्रियपात्र बन गया। व्यापक अराजकता ही इस युग के इतिहास की विशेषता है। पहले की भाँति दोआब के जमींदारों ने फिर विद्रोह किया। सुल्तान १४२३ ई० में राजस्व को प्राप्त करने के लिए कटेहर पहुँचा। कम्पिल

और इटावा के राठौर राजपूत दबा दिये गये। राय सरवर के पुत्र ने स्वामिभक्ति प्रदर्शित की और पिछला सब राजस्व चुका दिया।

इस युग में दो प्रधान विद्रोह हुए। १४२८ ई० में जसरथ खोखर का विद्रोह हुआ और दूसरा सरहिन्द के निकट पौलाद तुर्क बच्चा का विद्रोह हुआ। पौलाद किसी प्रकार अनुशासन नहीं मानता था, उसने बड़ी शक्ति से सामना किया और एक मास तक विद्रोही बना रहा। नवम्बर १४३३ ई० में चिरकालीन युद्ध के पश्चात् वह पराजित हुआ और मार डाला गया। राज्यप्रबन्ध को उत्तम बनाने के लिए उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति में सुल्तान ने कुछ परिवर्तन कर दिया। इससे कुछ सरदार बड़े क्रोधित हुए और उन्होंने उसे मार डालने के लिए षड्यन्त्र किया। जब सुल्तान मुबारकबाद गया, तो एक षड्यन्त्रकारी ने तलवार से उसका शिरच्छेद कर दिया, वह तुरन्त मर गया। मुबारकबाद एक नया नगर था इसको सुल्तान ने स्वयं बसाया था और वहाँ भवन निर्माण का काम देखने के लिए गया था। २० फरवरी सन् १४३४ ई० को यह घटना हुई। मुबारक बड़ा दयालु राजा था उसके समसामयिक इतिहासकार ने इन शब्दों में उसके विषय में अपने विचार संक्षेप में परन्तु मार्मिक रूप से प्रकट किये हैं।

'एक दयालु और उदार सुल्तान और अनेक सद्गुणों का भाण्डार'।

मुबारक की मृत्यु के बाद खिज्र खाँ का पौत्र शाहजादा मुहम्मद गद्दी पर बैठा। वह अव्यवस्था और विद्रोहियों का सामना करने में असमर्थ रहा। दिल्ली के कई परगनों पर जौनपुर के सुल्तान इब्राहीमशाह ने अधिकार कर लिया। ग्वालियर के राय तथा अन्य हिन्दू सामन्तों ने कर देना बन्द कर दिया। मालवा का महमूद खिल्जी दिल्ली तक चढ़ आया, परन्तु मुहम्मदशाह से सन्धि कर वह तुरन्त लौट गया। क्योंकि उसकी राजधानी माण्डू पर गुजरात का अहमदशाह दाँत लगाये हुए था। लाहौर और सरहिन्द के सूबेदार बहलोल खाँ लोदी ने, जो मुहम्मदशाह की सहायता करने आया हुआ था, मालवा की सेना का पीछा किया और उसका बहुत कुछ सामान छीन लिया। उसकी खानखाना की उपाधि मिली। [illegible] ने उसे पुत्र कहकर अपना स्नेह प्रकट किया। परन्तु [illegible] की [illegible] अल्पकालीन थी। जब १४४५ ई० में अलाउद्दीन [illegible] सो उसकी अयोग्यता और असावधानी के कारण [illegible]

होने लगी। बहलोल की शक्ति धीरे धीरे बढ चली। केन्द्रीय शक्ति की दुर्बलता से उसने पूरा लाभ उठाने की चेष्टा की। १४४७ ई० में सुल्तान बदायूँ गया। अपने दरबार और मन्त्रियो के विरोध करने पर भी वह वहाँ स्थायी रूप से रहने लगा। उसने अपने वजीर हामिद खाँ को मारने की चेष्टा करने में बडी भारी भूल की। उसने बहलोल को राजधानी में आने और राजगद्दी पर अधिकार कर लेने के लिए आमन्त्रित किया। राजधानी में ही एक राज्यद्रोही वर्ग की सहायता मिल जाने के कारण बहलोल को अपनी चिरकालीन अभिलाषाओ को पूरा करने में कठिनाई नही हुई। दिल्ली पर उसने पूर्ण अधिकार कर लिया। अलाउद्दीन आलमशाह ने अपने प्रिय जिले बदायूँ को छोडकर स्वच्छा से ही सारा राज्य बहलोल के लिए छोड दिया। बहलोल ने खुतबा से आलमशाह का नाम निकलवा दिया और अपने को दिल्ली का सुल्तान घोषित कर दिया।[१] आलमशाह बदायूँ रहने लगा। १४७८ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

---

१ तारीख इब्राहीम शाही और तारीख निजामी में लिखा है कि मलिक बहलोल सुल्तान शाहलोदी का भतीजा था जो मल्लू इकबाल की मृत्यु के पश्चात् इस्लाम खाँ के नाम से सरहिन्द का सूबेदार नियुक्त किया गया था। उसके भाइयो को भी इस समृद्धि से लाभ हुआ। उनमें बहलोल का पिता मलिक काली भी था। बहलोल के गुणो से मुग्ध होकर मलिक सुल्तान ने उसे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया और उसकी मृत्यु के पश्चात् बहलोल सरहिन्द का सूबेदार नियुक्त किया गया। फरिश्ता ने लिखा है कि इस्लाम खाँ ने अपनी पुत्री का विवाह बहलोल से कर दिया और अपने पुत्र होते हुए भी उसने बहलोल को ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया, क्योकि वह इन सब में योग्य था। परन्तु इस्लाम खाँ का पुत्र कुतुब खाँ इससे बडा असन्तुष्ट था। वह दिल्ली पहुँचा और सुल्तान से बहलोल की शिकायत की। एक विशाल सेना के साथ हसन खाँ बहलोल के विरुद्ध भेजा गया, परन्तु वह पराजित हुआ।

बहलोल के विषय में एक बडी रोचक कथा कही जाती है। एक बार जब वह अपने चाचा के यहाँ नियुक्त था, तो अपने कुछ मित्रो के साथ वह सयद अइन नाम के एक प्रसिद्ध दरवेश के पास गया। दरवेश ने कहा—'क्या दो सहस्र

शक्ति संचय—गद्दी पर अधिकार करके बड़ी सावधानी से और बड़ा नम्र व्यवहार प्रदर्शित करके उसने हामिद का विश्वास प्राप्त करने की चेष्टा की। पहले उसने उसका बड़ा सम्मान किया परन्तु बाद में उसकी बढ़ती हुई शक्ति से उसे ईर्ष्या होने लगी। अपने मार्ग से उसे हटाने के लिए बहलोल ने उसे बन्दी बना लिया और कारागार में डाल दिया।

यद्यपि गुजरात में बहलोल का नाम पढ़ा जाने लगा, तो भी बहुत से लोग उससे असन्तुष्ट थे और राजगद्दी पर उसका अधिकार स्वीकार नहीं करते थे। जब उत्तरी पश्चिमी प्रान्त को सुव्यवस्थित करने के लिए सुल्तान सरहिन्द गया हुआ था तो उन्होंने महमूदशाह शर्की को राजधानी पर अधिकार कर लेने के लिए आमंत्रित किया। एक विशाल सेना लेकर वह दिल्ली पर चढ़ आया और नगर को घेरा डाल दिया। इस समाचार को सुनकर बहलोल लौट पड़ा। महमूद जौनपुर लौट आया।

प्रान्तों का दमन—शर्की सुल्तान की पराजय से शत्रु और मित्र दोनों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। अपने राज्य में उसकी स्थिति दृढ़ हो गई और सरीत राजवंश के असन्तुष्ट व्यक्ति अब चुप हो रहे। बाहर, भय के कारण उन प्रान्तीय जागीरदारों ने चुपचाप दिल्ली का आधिपत्य स्वीकार कर लिया जो किसी न किसी सीमा तक स्थानीय स्वतन्त्रता भोग रहे थे। सुल्तान मेवात गया। अहमद खाँ ने उसे श्रद्धांजलि अर्पित की। उसमें उसने सात परगने ले लिये। बाद में [illegible] खाँ को अपनी जागीर यथावत् रखने की आज्ञा मिल गई। [illegible] मुबारक खाँ के साथ तथा मैनपुरी तथा भोगाँव के राजा [illegible] व्यवहार हुआ। वे अपनी जागीरों में स्थायी कर दिए गए। [illegible]

टके में कोई दिल्ली साम्राज्य प्राप्त करना चाहता है [illegible] अभीष्ट धन दे दिया। उस संत ने धन [illegible] करके दिल्ली साम्राज्य की राजगद्दी का [illegible] अफ़ग़ानी, पृ० ४३

तारीख़ दाऊदी में २००० टके [illegible]

तथा दोआब के अन्य जिलो ने, जिन्होंने पहले राज्य में इतने उपद्रव किये थे दिल्ली का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। इस प्रकार राज्य में शान्ति स्थापित हुई।

जौनपुर से युद्ध—दोआब के विद्रोही सूबेदारो का तो दमन हो गया परन्तु बहलोल अभी सकटो से मुक्त नही हुआ। जौनपुर का सुल्तान उसका प्रमुख शत्रु था। अपनी पत्नी की प्रेरणा से महमूदशाह शर्की ने दिल्ली पर अधिकार करने की एक और चेष्टा की। परन्तु कुछ सरदारो के बीच मे पडने से सधि हो गई और वे अपनी अपनी पूर्व स्थिति पर पहुँच गये।

परन्तु सधि के नियम तुरन्त ही भग हो गये। और जब हुसैन शर्की गद्दी पर बैठा, तो जौनपुर के साथ युद्ध अनिवार्य हो गया। हुसन बडा योग्य और साहसी शासक था। उसके दरबारियो ने उसे यह सुझा दिया कि बहलोल ने दिल्ली की गद्दी पर अनधिकार रूप से ही अधिकार कर लिया है। राजगद्दी पर उसी का वैध अधिकार उन्होने बतलाया। उसने यमुना नदी पार की। शाही सेना से कुछ छोटे-मोटे युद्ध हुए, जिसमें जौनपुर की सेना की कुछ जीत रही। अन्त में सधि हो गई। गगा नदी दोनो राज्यो के बीच की सीमा निर्धारित की गई। अपना पडाव और सामान छोड़कर हुसन जौनपुर लौट गया। लेकिन बहलोल ने तुरन्त ही सन्धि को भग कर दिया और लौटती हुई जौनपुर की सेना पर आक्रमण किया। उसने हुसन का सामान छीन लिया और उसकी पत्नी मलकाजहा को पकड लिया। सुल्तान ने अपने इस बदी को बडे सम्मान से रखा और फिर उसको 'ख्वाजा सरा' के साथ जौनपुर भेज दिया। युद्ध फिर आरम्भ हो गया और काली नदी के पास दिल्ली की सेना ने हुसन को पराजित करा दिया। बहलोल जौनपुर पहुँचा और उस पर अधिकार कर लिया। हुसन ने अपना राज्य प्राप्त करने की फिर एक बार चेष्टा की परन्तु उसकी फिर पराजय हुई और वह जौनपुर से बहिष्कृत कर दिया गया। अफगान सरदारो की स्वामिभक्ति पर उसको विश्वास नही था, अत उसने जौनपुर का अपने एक पुत्र बारबकशाह को दे दिया।

जौनपुर की विजय से बहलोल की शक्ति बहुत बढ गई और अब उसने कालपी, धौलपुर, बाडी, अलापुर के जागीरदारो पर चढाई की। उन्होने आत्मसमर्पण कर

दिया[1]। ग्वालियर के विद्रोही राजा को दण्ड देने के लिए सेना भजी गई। वह पराजित हुआ और कर देने के लिए बाध्य किया गया। इसके बाद सुल्तान को ज्वर आ गया और थोडे दिन बीमार रहकर मर गया।

बहलोल का कार्य—बहलोल ने एक नये राज्य की नींव डाली, और दिल्ली राज्य की जो प्रतिष्ठा नष्ट हो चुकी थी उसे फिर से स्थापित किया, अत इतिहास में उसका स्थान बडा उच्च ह। व्यक्तिगत चरित्र में भी वह अपने पूर्ववर्ती राजाओं की अपेक्षा बहुत श्रेष्ठ था। वह वीर, उदार, सहृदय तथा सत्यनिष्ठ था। वह अपने धम का पक्का था और बडी भक्ति से उसका पालन करता था। ऊपरी दिखावा उस बिलकुल पसन्द न था। मध्य युग के अन्य राजाओ की भाँति भव्य वस्त्राभूषण से सुसज्जित होकर वह रत्नजटित सिंहासन पर कभी नही बठा। वह कहा करता था कि यह पर्याप्त है कि बिना मेरे राजसी ठाट-बाट प्रदर्शित किये ही ससार मुझे बादशाह समझता ह। दरिद्रो पर वह दया करता था। उसके द्वार से कोई भी भिक्षुक निराश नही लौटा। यद्यपि वह स्वय विद्वान् नही था, परन्तु वह विद्वानो के ससग का मूल्य समझता था और उनका आदर करता था तथा उन्हें आश्रय देता था। वह इतना न्यायप्रिय था कि वह अपनी प्रजा की प्राथना स्वय सुनता था और उसके कष्टो को दूर करता था। उसका कोई निजी कोष नही था। युद्धो म प्राप्त लूट के सामान को वह बडी प्रसन्नता से अपने सिपाहियो म बाँटता था। तारीख दाऊदी के लेखक ने बहलोल का चरित्र इन शब्दो में वणन किया है —

'सामाजिक उत्सवो में वह कभी राजगद्दी पर नही बठा और न वह अपने सरदारो को खडे होने देता था। सावजनिक अवसरो पर भी वह राजगद्दी पर न बठकर कालीन पर बठता था। जब कभी वह अपने सरदारो के लिए फरमान लिखता तो उन्हें मसनद, आली कहकर लिखा करता था। यदि वे कभी अप्रसन्न

---

१ उत्तर प्रदेश आगरा व अवध मे कालपी नगर जालौन जिले मे स्थित ह। धौलपुर आगरा और ग्वालियर के बीच में एक रियासत है। बाडी, धौलपुर रियासत में धौलपुर से १९ मील दूर एक कस्बा है। अलापुर, ग्वालियर र। में मुरैना के निकट स्थित है।

हो जाते तो उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए यहा तक करता था कि स्वय, उनके घर जाता और कमर से अपनी तलवार खोलकर उनके सामने रख देता था। केवल यही नही कभी-कभी तो वह अपने सिर से टोपी या पगडी उतार कर उनसे क्षमा मागता और उनसे यह कहता कि, यदि आप इस पद के मुझे अयोग्य समझते है, तो आप किसी दूसरे को बादशाह बना दीजिए और मेरी नियुक्ति किसी दूसरे पद पर कर दीजिए। सभी सरदारो और सिपाहियो के साथ उसका भाईचारे का बर्ताव था। यदि कोई बीमार पड जाता तो वह स्वय उसके यहा जाता और उसकी देख-भाल करता था।"

सिकन्दर का राज्यारोहण—बहलोल की मृत्यु के बाद उसके पुत्र निजाम खा को सिकन्दरशाह के नाम से गद्दी पर बठा दिया। कुछ लोगो ने आपत्ति अवश्य की। जब उत्तराधिकार के प्रश्न पर विचार हो रहा था तो बारबकशाह के नाम का भी प्रस्ताव हुआ, परन्तु दूर होने के कारण यह प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया और बडे विवाद के पश्चात् खानजहान और खानखाना फरमूली की सहायता से निजाम खा रोजा निर्वाचित हुआ।

जौनपुर से युद्ध—सिकन्दर ने बडे उत्साह और परिश्रम स राज्य प्रबन्ध करना आरम्भ किया, सबसे पूर्व उसी के भाई बारबकशाह से लोहा बजा, वह पराजित हुआ और बन्दी बना लिया गया और अफगान सरदारो को उसका देश सौंप दिया गया।

जौनपुर के जमीदारो ने हुसैन शर्की को सन्देश भेजा कि अपने पूर्वजो के राज्य के लिए एक बार फिर प्रयत्न करे। बहुत बडी सेना लेकर वह युद्ध-क्षेत्र में आ डटा परन्तु बनारस के निकट वह पराजित हुआ और उसकी सेना भाग गई। हुसैनशाह लखनौती की ओर भाग गया। वहाँ शेष जीवन उसने अज्ञात वास में बिताया। उसकी हार के बाद जौनपुर की स्वतन्त्रता समाप्त हो गई। सारा देश बडी सरलता से दबा दिया गया और राज्य-प्रबन्ध के लिए सुल्तान ने अपने पदाधिकारी नियुक्त किये।

अफगानों के विरुद्ध—अब सिकन्दर ने अफगान सरदारो की ओर ध्यान दिया जिनके पास बडी-बडी जागीरें थी। कुछ प्रमुख अफगान सरदारो के हिसाब-

किताब की सुल्तान ने जाच की। इसम उसको बडी विचित्र बातो का पता लगा। इस नीति से वे सरदार बडे क्रुद्ध हो गये। उन्होने समझा कि, सुल्तान उनके अधिकारो पर आघात कर रहा है। सुल्तान ने उनको बलपूवक दबाने की चेष्टा की तो वे उसके विरुद्ध षड्यन्त्र करने लगे। जब वे अपनी योजना पूण कर चुके तो उन्होने बादशाह के भाई फतह खाँ को इस योजना मे सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित किया परन्तु शाहजादा फतह खा का अपना आचरण बडा सकटपूण दिखाई पडा। उसने सारी योजना सुल्तान को बतला दी। सुल्तान ने अपराधियो को बडा कठोर दड दिया।

आगरे की नींव—सुल्तान ने अनुभव किया कि, उस स्थान पर जहा आज आगरा स्थित है सेना की एक छावनी बननी चाहिए जिससे कि इटावा, बयाना, कोल, ग्वालियर और धौलपुर की जागीरो पर ठीक ठीक नियत्रण रखा जा सके। इसी दृष्टि से सन १५०४ ई० म उसने उस स्थान पर एक नगर की नीव डाली जहा आज आगरा नगर स्थित है। धीरे-धीरे वहा एक सुदर नगर बस गया और बाद में सुल्तान स्वय वहा रहने लगा।

आगरे में भूकम्प—अगले वष (९११ हिजरी १५०५ ई०)आगरे में बडा भीषण भूकम्प आया। पृथ्वी कापने लगी, बहुत से सुदर भवन और घर मिट्टी में मिल गये। राजकीय इतिहासकार ने लिखा है कि भकम्प इतना भीषण था, "कि, पहाड उलट गये। सब ऊँचे-ऊँचे मकान गिर पडे, जीवित मनुष्यो ने अनुभव किया कि, कयामत का दिन आ गया और मृत यह अनुभव करने लगे कि, अब पुनर्जीवन का दिवस आ गया।" पहले कभी ऐसा भीषण भूकम्प नही आया था। मृतसख्या गणनातीत और बडी रोमाचकारी थी।

राज्य के अतिम दिवस—सिकदर के जीवन के अतिम दिन राजपूतो के विद्रोहो को शात करने तथा प्रान्तीय सूबेदारो का दमन करने मे व्यतीत हुए जो स्वतत्र राज्य स्थापित करने की चेष्टा में लगे हुए थे। धौलपुर, ग्वालियर और नरवर दबा दिये गये और उनके सुल्तानो का आधिपत्य स्वीकार करने के लिए विवश किया। चदेरी के राजा ने भी अधीनता स्वीकार कर ली। यद्यपि नाम के लिए नगर पर उसी का अधिकार बना रहा परन्तु वास्तविक राज प्रबन्ध अफगान पदाधिकारियो को सौंप दिया गया।

सुलतान की अन्तिम चढाई रणथम्भौर के दुर्ग पर हुई। वह एक सरदार को सौंप दिया गया, जो दिल्ली राज्य के अधीन रहा। ग्वालियर के राजा ने फिर विद्रोह किया। सुलतान ने अपनी सेना को सुसज्जित करना प्रारम्भ किया परन्तु इसी तैयारी के बीच १ दिसम्बर सन १५१७ ई० को वह बीमार होकर मर गया और उसके पश्चात उसका पुत्र इब्राहीम लोदी गद्दी पर बठा।

राज्य-प्रबंध—सिकन्दर लोदी-वंश का सबसे योग्य शासक था। उसने अफगान सरदारो को नियन्त्रण में रखा और उनसे अपनी आज्ञाओ का पालन कराया। अफगान सूबेदारो और जागीरदारो के हिसाब की उसने जाँच कराई, और जो धनापहरण के लिए अपराधी पाये गये उनको दण्ड दिया। प्रान्तीय सूबेदार उससे डरते थे और उसकी आज्ञाओ का पूर्ण रूप से पालन करते थे। निर्धनों के हितो की रक्षा का सुलतान पूरा ध्यान रखता था। उसने अनाज पर से कर उठा लिया और कृषि को प्रोत्साहन दिया। सडकें डाकुओं से मुक्त हो गईं। जो जमींदार अपने अनाचारो के लिए प्रसिद्ध हो चुके थे, वे बड़ी कठोरता से दबा दिये गये। 'तारीख दाऊदी' के रचयिता ने सिकन्दर के राज्य का वर्णन इन शब्दो में किया है।

"सुलतान नित्य सभी वस्तुओ के मूल्य का हिसाब माँगता था और साम्राज्य के सभी जिलों में जो कुछ होता था उसका हाल भी वह प्राप्त करता था। यदि उसे कोई थोडी सी भी अनुचित बात प्रतीत होती तो तुरन्त उसकी जाँच करवाता था। उसके राज्य में सब काम शान्ति, ईमानदारी और निष्पक्षता से होता था। उत्कृष्ट साहित्य के अध्ययन की भी उपेक्षा नहीं थी। कलो और कारखाना के स्थापन को उसने इतना प्रोत्साहन दिया कि, छोटे छोटे सरदार और सिपाही, सबको कुछ न कुछ लाभदायक काय मिल गया। सिकन्दर के सभी सरदार और सिपाही इससे सन्तुष्ट थे। उसका प्रत्येक सरदार किसी न किसी जिले का राज्य प्रबन्ध करने के लिए नियुक्त था और उसकी यह अभिलाषा थी कि अपनी प्रजा की शुभाकाक्षाओ और स्नेह को प्राप्त करे। अपने राज्य-कर्मचारियो और सिपाहियो के हितो का ध्यान करके उसने तत्कालीन राजाओ और सरदारो से युद्ध और झगडा करना बन्द कर दिया। और किसी प्रकार के लडाई-झगडे का रास्ता ही उसने बन्द कर दिया। उसने अपने मित्र

के छोड़े हुए राज्य पर ही सन्तोष किया और अपना सारा जीवन आनन्द, विलास तथा सुरक्षा में ही व्यतीत किया, और छोटे बड़े सबका प्रिय पात्र बन गया।

सिकदर का चरित्र—सिकन्दर बहुत ही सुन्दर पुरुष था। उसे आखेट से बड़ा प्रेम था। राजपद के लिए जिन गुणो की आवश्यकता है वे उसमें प्रचुर मात्रा म विद्यमान थे। वह बड़ा धार्मिक था। राज्य प्रबन्ध की प्रत्येक बात में उलमा उसको परामर्श देते थे जिन्हें वह मानता था। अपने धर्म के लिए उसको इतना अधिक उत्साह था कि, मथुरा के मन्दिर तुड़वाने और उनके स्थान पर सराय तथा मस्जिद बनवाने की उसने आज्ञा दे दी। हिन्दुओं को यमुना के घाटो पर स्नान करने की आज्ञा नही थी और नाइयो को आज्ञा दे दी गई कि, हिन्दुओ की धार्मिक प्रथा के अनुसार वे उनके सिर अथवा दाढी के बाल न बनावें।

सुल्तान बड़ा न्यायप्रिय था। वह दरिद्रो की प्रार्थना स्वयं सुनता था और उनके कष्टो को दूर करने की यथासम्भव चेष्टा करता था। अपने साम्राज्य की सभी बातो से वह परिचित रहता था। बाजार पर उसका पूरा नियन्त्रण था और धोखाधडी के सब मामले के पास जाते थे।

सुल्तान अपनी गम्भीरता और विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध था। चरित्रहीन व्यक्ति उसके पास नही फटकने पाता था। वह स्वयं साहित्यिक था और विद्वानो का आदर करता था और बहुधा उनकी बातो को सुनने के लिए वह उन्हे अपने महल में बुलाता था।

अपने जीवन काल में अपनी दृढ नीति से सिकन्दर ने शान्ति स्थापित की और उपद्रवी सरदारो को नियन्त्रण में रखा। परन्तु जब उसकी मृत्यु के बाद राजमुकुट ऐसे व्यक्ति के हाथो में चला गया जो योग्यता और चरित्र दोनो में उससे हीन था तो राज्य की वे सब शक्तियाँ, जो अब तक नियन्त्रित थी, बलवती हो गई और उन्होने साम्राज्य की जड हिला दी।

अफगान राज्य की विशेषताएँ—इब्राहीम के राज्य-काल में अफगान राज्य का विधान बदल गया। वह बडा हठी और चिडचिडे स्वभाव का व्यक्ति था। अपने अहंकार और दुराग्रह से उसने अफगान सरदारो की सहानुभूति खो दी। अफगान

अब तक अपने बादशाह को अपना ही साथी समझते थे। वे उसे स्वामी नहीं मानते थे। अपनी इच्छा से ही वे उसे बड़ा सामन्त समझकर उसका आदर करते थे। लोहानी, फरमूली और लोदी वंश के लोग राज्य में उच्च पद पर आसीन थे। वे सदैव उपद्रव करते थे और बड़ी कठिनाई से राजभक्ति की ओर प्रेरित होते थे। अपने उच्च पद तथा प्रभाव के कारण वे सुल्तान के विरुद्ध षड्यन्त्र करने में समर्थ हो जाते थे। सुल्तान की शक्ति और दुर्बलता के अनुसार ही उनकी स्वामिभक्ति घटती-बढ़ती रहती थी। सिकन्दर ने उनको कठोर नियन्त्रण में रखा और जब कभी भी उन्होंने उसकी आज्ञाओं की अवहेलना की तो उसने उन्हें कठोर दण्ड दिया। परन्तु जब इब्राहीम ने कठोरता से उनकी विद्रोही प्रवृत्तियों का दमन करने और अपने राज्य को सुदृढ़ करने की चेष्टा की तो उन्होंने उसका विरोध किया। 'एरस्किन' ने लिखा है, कि "प्रमुख जागीरदार अपनी जागीरों को अपनी निजी सम्पत्ति समझते थे जिसको उन्होंने अपनी तलवार के बल से जीता था, बादशाह की उदारता अथवा अनुग्रह से नहीं। इब्राहीम के सामने कठिन परिस्थिति उपस्थित थी। सरदार और सामन्त नियन्त्रण के बाहर जा रहे थे। असन्तोष के बीज जो भीतर भीतर अंकुरित हो रहे थे वे अब ऊपर आने लगे। सिकन्दर की दमनकारी धार्मिक नीति से हिन्दू असन्तुष्ट थे। वे विदेशी राज्य से घृणा करते थे, क्योंकि वह उनकी प्रिय भावनाओं को कुचलने में कुछ भी संकोच न करता था। इब्राहीम के सामने लगभग वही समस्या थी जो १५वीं शताब्दी के अन्त में इंगलैण्ड के ट्यूडर राजाओं के सम्मुख थी। परन्तु उसमें न व्यवहारकुशलता थी और न दूरदृष्टि तथा शक्ति थी जिससे हेनरी सप्तम ने यत्नपूर्वक इंगलैण्ड के धनी सामन्तों को दबा दिया जो उनके राजकीय अधिकारों पर स्वयं अधिकार करना चाहते थे। इब्राहीम के इस आचरण से अर्द्धराजकीय सरदार बड़े क्रोधित हुए और उन्होंने अफगान साम्राज्य के विनाश का मार्ग प्रस्तुत कर दिया। परन्तु इस विनाश का उत्तरदायित्व पूर्ण रूप से इब्राहीम लोदी पर ही नहीं है। साम्राज्य का अन्त कभी न कभी निकट भविष्य में होना ही था। यदि इन सरदारों को सन्तुष्ट करने में इब्राहीम सफल हो भी जाता तो भी उन्होंने अपने लिए स्वतन्त्र

स्वतंत्र राज्य बनाने की चेष्टा की होती और तब वह केवल नाम का ही राजा रह जाता। भिन्न भिन्न दलो में युद्ध होता, षड्यन्त्र चलते और वह राजा होते हुए भी असमर्थावस्था में मुंह ताकता रहता।

सस्ती—यद्यपि इब्राहीम सरदारो के प्रभाव को न बढने देना चाहता था और उन्हे कठोरता से दबा देना चाहता था तो भी उसने लोगो के हितो का ध्यान रखा। उसके राज्य में बडी अच्छी फसले हुई। साधारण वस्तुओ का मूल्य बहुत गिर गया। लगान के बदले सुल्तान अनाज लेता था। सभी सरदारो और जागीरदारो को उसने आज्ञा दे दी कि, वे पैदावार के रूप में लगान स्वीकार कर ले। गल्ले की कमी कभी अनुभव नही हुई।

तारीख दाऊदी के रचयिता ने लिखा है कि, ५ टके मासिक पर एक प्रतिष्ठित व्यक्ति की सेवाएँ प्राप्त हो सकती थी। और एक बहल्लोली में एक मनुष्य दिल्ली से आगरा आ सकता था जिसमें उसका अपना, उसके घोडे का और उसके कुछ सेवको और साथियो का व्यय पूरा हो सकता था।

शाहजादा जलाल का विद्रोह—जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि इब्राहीम की विवेकहीन कठोरता के कारण लोदी अमीरो की सहानुभूति उससे जाती रही। उसके राजगद्दी पर बैठते ही उन्होंने जौनपुर की गद्दी पर उसके भाई शाहजादा जलाल को बैठाने की चेष्टा की। इस योजना के अनुसार शाहजादा कालपी से चला और उसने जौनपुर का राज्य प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया। परन्तु सिकन्दर के एक बहुत ही ऊँचे अमीर खानजहाँ लोदी ने इस योजना को ठीक नही समझा। उसने इस अराजनीतिक आचरण के लिए सरदारो को बहुत डाटा और राज्य में दो सुल्तान होने के भय की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया। अफगान सरदारो ने अपनी भूल स्वीकार कर ली और उन्होंने शाहजादा जलाल को समझाया कि, तुम जौनपुर से लौट जाओ परन्तु उसने यह स्वीकार नही किया। जब कहने-सुनने तथा समझाने बुझाने से काम नही चला तो इब्राहीम ने फरमान निकाला जिसमें उसने आज्ञा दी कि, जलाल की आज्ञाओ पर कोई भी अमीर ध्यान न दे। यदि वे राजाज्ञा का पालन नही करेंगे तो उनको कठोर दण्ड देने की भी उसने धमकी दी। प्रभावशाली अमीरो को इब्राहीम ने पुरस्कार तथा भेंट दी। इस प्रकार वे शाहजादा जलाल से

अलग हो गये। उनका आश्रय न मिलने पर उसने जमींदारों से मेल कर लिया और उनकी सहायता से सेना की दशा सुधारी। इब्राहीम ने अपने सब साथियों को हाँसी के दुर्ग में बन्द कर दिया और स्वयं जलाल से युद्ध करने के लिए चला जिसकी शक्ति उसके प्रधान सहायक आजम हुमायूँ के चले जाने के कारण बहुत कम हो गई थी। काल्पी का घेरा डाल दिया गया। कुछ दिन तक बड़े उत्साह के साथ युद्ध होता रहा और अन्त में दुर्ग जीत लिया गया। जलाल आगरे की ओर भागा। वहाँ के सूबेदार ने उससे सन्धि की बातचीत करना प्रारम्भ किया जिसमें यह निश्चय हुआ कि, यदि वह बादशाह बनने की सब बातें छोड़ दे तो उसे काल्पी का पूरा अधिकार दे दिया जाय। यह सन्धि बिना इब्राहीम की अनुमति के की गई थी। पता चलने पर उसने इसे अस्वीकार कर दिया। विद्रोही शाहज़ादे को मार डालने की आज्ञा हुई। जलाल आत्मरक्षा के लिए ग्वालियर की ओर भागा।

राजधानी से व्यवस्थित करके इब्राहीम ने अपनी सेना ग्वालियर के दुर्ग को जीतने के लिए भेजी। जलाल मालवा की ओर भागा परन्तु गोंडवाना के जमींदारों ने उसे पकड़ लिया और जंजीरों में बाँध कर सुल्तान के पास भेज दिया। शाहज़ादा हाँसी भेजा गया परन्तु विश्रामागार में पहुँचने के पहले ही सुल्तान की आज्ञा से मार्ग में मार डाला गया।

कुछ समय से हिंदुस्तान म जितनी भीषण लडाइयाँ हुइ उनमें से कोई भी इसके समकक्ष न थी। भाई भाई से लड रहे थ, पिता पुत्र से लड रहे थे, पारस्परिक लज्जा और सहज वीरता उनको उत्तेजना दे रही थी। तीर-कमान को अलग रखकर व कटार तलवार चाकू और भाला लेकर पैशाचिक नर-वध म लगे हुए थे।'

अन्त म इस्लाम खाँ इस युद्ध में मारा गया। उसका शव रणक्षेत्र में लोटने लगा। सईद खा बन्दी हुआ। विद्रोही पराजित हुए और उनकी बडी भारी क्षति हुई।

यद्यपि इब्राहीम सरदारो के प्रभाव को न बढने देना चाहता था और उनका दमन करना चाहता था जिससे कि उसकी स्थिति सुदढ हो जाय तो भी परिणाम इसके विपरीत हुआ और अन्त मे उसका विनाश हो गया। उसकी निर्दयता का वर्णन हो चुका ह। वृद्ध और अनुभवी 'मियां भुआ' उसके क्रोध का भाजन बना। आजम हुमायू का कारावास में छल से वध कर दिया गया। बडे-बडे सरदार भी आत्मरक्षा के लिए चिन्ताकुल थे। दरिया खाँ, खानजहा लोदी और हुसन खा फरमूली ने इसी डर स खुल्लमखुल्ला विद्रोह कर दिया। हुसन खाँ फरमूली को चन्देरी के किसी मुल्ला ने सोते म मार डाला। इस दुर्घटना से अफगान सरदार सुल्तान के कट्टर शत्रु हो गये और उन्हे विश्वास हो गया कि सुल्तान विश्वासघात करना चाहता है। दरिया खा के पुत्र बहादुर खाँ ने मुहम्मद शाह की उपाधि धारण की और वह अपने नाम के सिक्के बनाने लगा। उसने एक बडी भारी सेना इकट्ठी की जिसकी सहायता से वह सुल्तान का सफलतापूर्वक सामना करता रहा। जब इब्राहीम ने दौलत खा लादी के पुत्र के साथ निर्दयता का व्यवहार किया तो सरदारो के असन्तोष की पराकाष्ठा हो गई। दौलत खाँ एक बार दरबार में बुलाया गया परन्तु उसने यह कहकर टाल-मटाल की कि म राजकोष को लेकर बाद म आऊँगा। सुल्तान के क्रोध को शान्त करने के लिए उसने अपने पुत्र दिलावर खा को भेज दिया। वह बन्दीगृह भेजा गया। वहा उसे वे व्यक्ति दिखलाये गये जो सुल्तान के क्रोधभाजन हो चुके थे। वे दीवारो पर लटका दिये गये थ। इस भीषण दृश्य को देखकर वह युवक अफगान भय से

काँप रहा था। सुल्तान ने उससे कहा कि क्या तुमने इन लोगों की दशा देखी जिन्होंने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया है? इन शब्दों में जो चेतावनी थी उसे समझकर दिलावर खाँ बड़ी नम्रता से नतमस्तक हो गया और चुपचाप अपने पिता के पास लौट गया, और जो कुछ उसने राजधानी में देखा था उसका सजीव वर्णन उसके सामने किया। अपनी रक्षा के लिए अधीर होकर दौलत खाँ ने अपने पुत्र दिलावर खाँ द्वारा काबुल के शासक बाबर को हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया। बाबर की हिन्दुस्तान-विजय की कथा आगे के अध्याय में दी जायगी।

सहायक ग्रन्थ

इलियट—हिस्ट्री ऑव इण्डिया भाग ४ और ५
निजामुद्दीन अहमद—तबकाते अकबरी (अँगरेजी अनुवाद)
डौन—हिस्ट्री ऑव दी अफगान्स
टॉड—ऐनल्स एण्ड एण्टिक्विटीज ऑव राजस्थान
गौरीशंकर हीराचन्द ओझा—हिस्ट्री ऑव राजपूताना (हिन्दी) ३ भाग
ए० एस० बैवरिज—मेमायर्स ऑव बाबर

अध्याय ११

मध्ययुग का समाज और संस्कृति

मुसलमानी राज्य--अन्य देशों की भांति भारत का मुसलमानी राज्य धर्म-तान्त्रिक था। बादशाह सीजर भी था और पोप भी परन्तु धार्मिक बातों पर उसका अधिकार कुरान शरीफ के नियमों से सीमित था। "वह पृथ्वी पर भगवान की छाया है। जब जीवन की अदृष्ट परिस्थितियों से हम दुःख पाते हैं, तो उसी की शरण में त्राण पाते हैं।" परन्तु उसका कर्त्तव्य ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करना ही है। उसका शासन धर्म विधान पर आश्रित होना चाहिए। इस प्रकार के राज्य में मुल्लाओं की प्रधानता होना आवश्यक ही है। हिंदुस्तान के मुसलमान शासक निरंकुश थे। वे अपने नाम से ही सिक्के निकालते थे और खुतबा पढ़वाते थे, यद्यपि इल्तुतमिश, मुहम्मद तुगलक और फीरोज तुगलक की भांति कुछ बादशाहों ने अपनी स्थिति दृढ़ करने के लिए खलीफाओं की सहायता ली थी। सैनिक वर्ग के ऊपर ही राज्य स्थिर था, जिसमें केवल मुसलमान ही सम्मिलित थे। उलमाओं ने उनमें धार्मिक कट्टरता उत्पन्न कर दी थी, जो उनको धार्मिक पताका के नीचे युद्ध करने का महत्व समझाते थे और युद्धभूमि की मृत्यु में शहीद होने का सम्मान प्राप्त होने का लोभ दिखलाते थे। आर्थिक लाभ की आशा और साहसिक कार्यों के प्रेम के अतिरिक्त युद्धभूमि में मृत्यु हो जाने पर धर्म लाभ के विश्वास से प्रेरणा पाकर बहुत से उत्साही युवक अपने जीवन को निस्संकोच होकर संकट में डाल देते थे। मूर्तिपूजा का नाश, शरियत में स्वीकृत प्रत्येक विधान से भिन्न प्रत्येक प्रथा का नाश तथा मुस्लिमेतर जनता का धर्म परिवर्तन कराना ही आदर्श मुसलमानी राज्य के कर्त्तव्य समझे जाते थे। अधिकांश मुसलमान शासकों ने अपनी बुद्धि और सुयोग के अनुसार कट्टर धार्मिक विचारों के अनुकूल

राज्य करने की चेष्टा की। जिन्होंने उल्मा और मुल्लाओं के इच्छानुकूल कार्य किया, उनकी मुसलमान इतिहासकारों ने बड़ी प्रशंसा की है। ये इतिहासकार भी प्रायः उल्मा वर्ग के ही थे। भारत के प्रारम्भिक मुसलमान बादशाहों में अलाउद्दीन ने स्वतन्त्र मार्ग ग्रहण किया। अपने परवर्ती सम्राट अकबर की भाँति वह भी राज्यकार्य में उल्मा का हस्तक्षेप नहीं होने देता था। उसके राजनीतिक सिद्धान्तों का पूर्ण स्वरूप हम उन शब्दों में पाते हैं, जो उसने काजी मुगीस से कहे थे, जिसमें उसने बादशाह की वध शक्ति और अधिकारों के विषय में परामर्श किया था। वह राज्य में धर्माधिकारियों की प्रमुखता को बड़ा अहितकर समझता था। अतः उसने राज्याधिकार के नये सिद्धान्त बनाये थे। वह कहता था कि, 'जिस प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र में पाण्डी ईश्वर का प्रतिनिधि है, उसी प्रकार सांसारिक क्षेत्र में मैं (राजा) ईश्वर का प्रतिनिधि हूँ।' उस समय उल्मा ने इस नीति का विरोध नहीं किया, क्योंकि उस समय देश की राजनीतिक अवस्था इतनी बिगड़ी हुई थी कि उसे सँभालने के लिए बड़े शक्तिशाली बादशाह की आवश्यकता थी जो मंगोलों के आक्रमणों को रोक सके और देश में शान्ति और व्यवस्था स्थापित रख सके। परन्तु मुहम्मद तुगलक का बुद्धिवाद लोगों को सहन नहीं हुआ। उसमें और मुल्लाओं में सदैव लड़ाई रही। उन्होंने सुल्तान के विरुद्ध षडयन्त्रों में भाग लिया और उसकी योजनाओं को असफल कर दिया। उसके दुर्बल उत्तराधिकारी के समय में उनकी फिर प्रधानता हो गई। उन्होंने कुरान के सिद्धान्तों के अनुसार राज्यव्यवस्था करने के लिए सुल्तान को सहमत कर लिया। करों की संख्या घटा कर शरियत के अनुसार कर दी गई। अधार्मिकता और नास्तिकता का दमन करने के लिए राजशक्ति का प्रयोग स्वतन्त्रता से किया जाता था। फीरोज की मृत्यु के बाद की अराजकता के पश्चात् जब फिर साम्राज्य सुव्यवस्थित हुआ तो उल्मा की प्रधानता बढ़ गई और सिकन्दर लोदी के समय में हिन्दुओं का उत्पीड़न प्रारम्भ हुआ। इस युग में राजनीतिक क्षेत्र में उल्माओं की प्रधानता ही रही। यथार्थ बात तो यह है कि उनके परामर्श की उपेक्षा करने के लिए बड़ी प्रबल इच्छाशक्ति की आवश्यकता थी। धार्मिक परम्पराओं के मार्ग के

विरुद्ध दूसरा भाग ग्रहण करना साधारण मनुष्य का काय न था। मुल्ला और मौलवियों का प्रभाव राज्य के लिए अहितकर ही था, इसमें कोई सन्देह नहीं।

मुस्लिमेतर जातियों को राज्य की ओर से बड़ी बाधायें थीं। बलात धर्म-परिवर्तन कराया जाता था। परन्तु निरंतर युद्ध होने के कारण न तो यह धर्म-परिवर्तन किसी योजना के अनुकूल ही होता था और न बारबार ही। मंगोल आक्रमणों के कारण राज्य के सब काय बन्द हो जाते थे। मुस्लिम-अतिरिक्त जातियों को वे जिम्मी[1] कहते थे। अपनी जान माल की रक्षा के लिए उन्हें जजिया

---

१ हनफी आचार्यों के अनुसार जिम्मियों से जजिया इसलिए लिया जाता है कि, वह प्राणदण्ड से मुक्त कर दिया जाता है। जजिया देकर मुस्लिमेतर व्यक्ति मृत्यु से बचते हैं और इस कर से अपना जीवन क्रय कर लेते हैं। अगनाईदीज मुहम्मडन थिओरीज आफ फाइनेन्स, ७० पृष्ठ ३९८,४०७। परन्तु यह बहुत से लोगों को स्वीकृत नहीं है। विचार है कि जजिया सैनिक कर था जो जिम्मियों से लिया जाता था।

प्रति शीर्ष कर जो मुसल्मान उन विधर्मियों पर लगाते हैं जो उनके द्वारा आत्मरक्षा (अमान) चाहते हैं उसकी स्वीकृति कुरान शरीफ में प्राप्त है —

"ऐसे लोगों से युद्ध करो जो न ईश्वर में विश्वास करते हैं और न कयामत के दिन में और जो उसे नहीं त्यागते जिसे ईश्वर अथवा उसके पैगम्बरों ने छोड़ दिया है और जो सत्य का मार्ग नहीं ग्रहण करते जब तक वे कर देना स्वीकार न कर लें और जब तक वे इस प्रकार अपमानित न हो जाए। ह्यूज, डिक्शनरी ऑव इस्लाम पृष्ठ २४८ में।

मध्य युग के पूर्वकालीन भाग में सहिष्णुता सर्वमान्य वस्तु नहीं थी। उसके दर्शन कहीं कहीं प्राप्त होते थे। उलमाओं ने मुहम्मद तुगलक जैसे उदार बादशाह की निन्दा की और उसके ऊपर यह दोषारोपण किया जाता है कि, उसने इस्लाम की प्रतिष्ठा कम कर दी है। कट्टर दल यह चाहता था कि, कुरान शरीफ की आयतों का जो अर्थ वे समझते हैं उसी के अनुसार सुल्तान आचरण करे, चाहे इस नीति का परिणाम राज्य के लिए कुछ भी हो।

नाम का कर देना पडता था जो प्रत्येक व्यक्ति से लिया जाता था। यह एक प्रकार से विनिमयकारी धन था, जो उन्हें सैनिक सेवाओं के बदले देना पडता था। कुरान शरीफ में लिखा है कि, विनम्रता और अधीनता उनका कर्त्तव्य है। परन्तु कुरान में यह भी लिखा है कि, "धर्म के मामलों में दबाव डालकर विवश करना ठीक नही, क्या तुम दबाव डालकर किसी से विश्वास करा सकते हो? बिना ईश्वरीय प्रेरणा के किसी के हृदय में विश्वास उत्पन्न नही हो सकता।" यहा यह स्पष्ट कर देने की आवश्यकता है कि, पैगम्बर साहब ने बलपूर्वक धर्म परिवर्तन कराना वर्जित कर दिया था। धर्म प्रचार के साधन उन्होंने केवल उपदेश और धर्म-व्याख्या ही लोगो को बतलाये। परन्तु उनके अनुयायियो ने इस सम्बन्ध में उनकी आज्ञाओं का पालन नही किया। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है जब मुस्लिम-अतिरिक्त के साथ बडी कठोरता का व्यवहार किया गया। यदि वे चाहते तो भी सेना में भर्ती नही हो सकते थे। थोडे में भी सार्वजनिक रूप से वे अपनी धार्मिक क्रियायें और धार्मिक उत्सव नही मना सकते थे। ऐसे अनेक दृष्टान्त मिलते है जब इस प्रकार धार्मिक क्रिया करनेवाले लोगो को अपने जीवन से हाथ धोना पडा था। कुछ सुल्तान तो इतने कट्टर थे कि, उन्होंने न नये मन्दिर बनने दिये और न पुरानों की मरम्मत होने दी, और कुछ सिकन्दर लोदी की भाति इतने असहिष्णु और मूर्तिपूजा के इतने विरोधी थे कि, उन्होंने सब मन्दिरो के तोडने की आज्ञा दे दी।

जनता पर इसका प्रभाव—मुसलमानी राज्य के प्रभाव से शासक वर्ग में विलासिता उत्पन्न होती थी। राज्य के उच्च पदाधिकारी मुसल्मान ही थे। सम्मानित पद पर पहुँचना योग्यता पर निर्भर न होकर सुल्तान की इच्छा पर ही निर्भर था। सरलता से ही धन प्राप्त कर लेने से तथा दरबार के उत्सवो में भाग लेने के कारण मुसलमानो में बडे दोष उत्पन्न हो गये थे और १४वी शताब्दी के अन्त में उनमें न तो पुराना पौरुष पाते है और न ओज। प्रारम्भिक मुसलमान जिन्होंने इल्तुतमिश, बल्बन और अलाउद्दीन की सेवा की थी, वे हुतात्मा योद्धा थे जो प्रसन्नता से इस्लाम के लिए सकटों का सामना करते थे, परन्तु उनके वंशज जिनको कार्य करने का कोई प्रोत्साहन नही था साधारण मध्यम श्रेणी के ही व्यक्ति

हो गये। उनमें न तो अपने पूर्वजों की योग्यता थी और न उत्साह। उनके प्रति राज्य का पक्षपात होने के कारण उनमें स्वतन्त्रता की भावनायें नष्ट हो गई और बडी खानकाओ (दानसस्थाओ) के स्थापित हो जाने के कारण वे राज्य का मुँह ताकने लगे। उनमें आत्म सम्मान, कार्यक्षमता तथा आत्मप्रेरणा का बिलकुल अभाव हो गया। मुसलमानो की संख्या कम होने के कारण वे इस निम्नश्रेणी के परिश्रम से बचे रहते थे जो एक साधारण मुस्लिमातिरिक्त गृहस्थ को करना पडता था। उनके पास जो भूमि होती थी, उस पर वे केवल $\frac{1}{10}$ भाग कर के रूप में (उश्र) देते थे। इस प्रकार उनके पास इतना धनाधिक्य हो जाता था जो विधर्मियों को प्राप्त नही था। वे इसका स्वप्न भी न देख सकते थे। हिन्दुओ पर मुसल्मान आधिपत्य का प्रभाव दूसरे रूप में हुआ। वे इन बन्धनो और असुविधाओ के कारण मन ही मन बडे चिढते थे और बडे असन्तुष्ट रहते थे। उन पर कराधिक्य भी बहुत था। जिया बर्नी ने लिखा है कि, दोआब के हिन्दुओ से अलाउद्दीन पैदावार का ५० प्रतिशत भाग कर के रूप में लेता था। धन सञ्चित करने के लिए और कोई प्रोत्साहन न था। उनमें से अधिकांश बडे दारिद्र्य अभाव और संघर्ष का जीवन व्यतीत करते थे। वे इतना ही कमा सकते थे कि, अपना और अपने परिवार का येन केन प्रकारेण जीवन निर्वाह कर सकें। पराधीन वर्ग के लोगो का जीवन स्तर बहुत निम्न कोटि का था। कर का बोझ अधिकांश रूप से उन्ही के ऊपर था। उच्च राज पद उनको प्राप्त नही हो सकते थे। इस अविश्वास और अपमान से पूर्ण परिस्थिति में हिन्दुओ की राजनैतिक प्रतिभा के विकास का कोई अवसर न था।

सामाजिक दशा—मुसलमान राज्य के प्रिय पात्र थे। उन्ही की शक्ति और उत्साह पर प्रत्येक वस्तु निर्भर थी। अत राज्य उनके साथ पक्षपात करता था। समय समय पर उनकी धार्मिक मांगो को स्वीकार करना पडता था और सबसे पहले उन्ही के हित का ध्यान रखना पडता था। मुसल्मानो में भी कई सामाजिक श्रेणियां थी। कुछ बादशाह उच्च पदो पर केवल उच्च वंशवालो, अमीरो और सरदारो के पुत्रो को ही नियुक्त करते थे। बल्बन दरबार के शिष्टाचार का पालन बडी कठोरता से करता था। वह कभी मध्यम या निम्न श्रेणी के मनुष्य को प्रोत्साहन नही देता था और एक बार सामान्य परिवार के एक व्यक्ति

द्वारा दिये गये बड़े भारी उपहार को उसने अस्वीकार कर दिया था जिसने व्याज और ठेक द्वारा बहुत-सा धन इकट्ठा किया था। बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में मदिरा पीने और जुआ खेलने के सब सामान्य दुर्गुण लोगों में पाये जाते थे। बलबन ने आज्ञा दे दी थी कि, मदिरा कोई न पिये और उसके पुत्र मुहम्मद के उदाहरण का प्रभाव समाज के आचरण और नीति पर अच्छा पड़ा। वह मदिरा बहुत कम पीता था और अपने सामने इधर-उधर की बातें न होने देता था। इस कारण लाहौर के समाज का नैतिक-स्तर कुछ उच्च हो गया था। मदिरा के दुर्गुण को रोकने के लिए अलाउद्दीन ने भी कठोर नियम बना दिये थे। उसने जुआ खेलना तथा अमीरों का सामाजिक व्यवहार बन्द कर दिया था। जब तक वह जीवित रहा तब तक उसने इन नियमों का पालन कठोरता से किया परन्तु उसकी मृत्यु के बाद वही पुराना शिथिल्य फिर आ गया। अलाई सरदारों का प्राचीन वर्ग कुतुबुद्दीन मुबारक के व्यभिचार-पूर्ण दरबार को देख कर खिन्न होता था। बर्नी ने लिखा है कि, सुन्दर बालक अथवा हिजड़े अथवा सुन्दर लड़की का मूल्य ५०० टंक से लेकर एक सहस्र और दो सहस्र टंक तक था, परन्तु तुगलक शाह और उसके प्रसिद्ध पुत्र मुहम्मद तुगलक के समय में समाज की रुचियाँ बहुत कुछ परिष्कृत हो गई थीं। वे दोनों अपने युग के निम्न कोटि के दुर्गुणों से बहुत कुछ मुक्त थे। फीरोज तुगलक के समय में भी राज्यव्यवस्था पूरे रूप से नहीं बिगड़ी, यद्यपि उसका सैनिक उत्साह कुछ कम हो गया था और कुछ अपवादों को छोड़कर अब राज्य के सभी विभागों में प्रतिभा का स्थान साधारण कोटि की बुद्धि ने ले लिया था। राज्य के ठाट बाट और महत्ता की रक्षा पूर्ण रूप से की जाती थी। अफीफ ने लिखा है कि प्रत्येक शुक्रवार को नमाज के बाद संगीतज्ञ, पहलवान, कलाकार आदि दो तीन सहस्र की संख्या में एकत्रित होते थे। जनता का मनोरंजन करना उनका कर्तव्य था। दासप्रथा सर्वमान्य थी और खानजहाँ मकबूल की भाँति योग्य दास राज्य के सर्वोच्च पद पर पहुँच सकते थे। मुसलमान समाज में धन बढ़ जाने के कारण उन पर धर्म का अधिकार कुछ कम हो गया था। अन्धविश्वास तथा अज्ञान ने घर कर लिया था। फतूहाते फीरोज शाही में फीरोज ने लिखा है कि उस समय बहुत से नास्तिक दल उपस्थित थे जिनका उसने कठोरता से दमन किया और उनके नेताओं का

बन्दी बना लिया अथवा मरवा डाला। स्त्रिया की स्वतन्त्रता सीमित थी। वे नगर के बाहर पीरो की दरगाहो के दर्शन के लिए नही जा सकती थी। फीरोज ने और भी असहिष्णुता दिखलाई और उन स्त्रियो के लिए कठोर दड की व्यवस्था कर दी जो उसकी आज्ञाओ का पालन नही करती थी।

राजनीतिक शक्ति न रहने के कारण हिन्दुआ का पतन हो गया था। वे देश में राज्य के कट्टर शत्रु समझे जाते थे। उच्च पद तो उनको बहुत ही कम मिलते थे और जजिया देने पर ही उनके साथ कुछ सहिष्णुता का व्यवहार होता था। अलाउद्दीन के समय में दोआब के हिन्दुओ के साथ बडा कठोर व्यवहार हुआ। मुसलमानी राज्य मे हिन्दुओ की क्या स्थिति होनी चाहिए, इसके विषय में विधान शास्त्रिया के यही विचार थे। मध्ययुग के साधारण मुसलमान और साधारण परिस्थिति में मुसल्मान बादशाह उन्ही विचारो के अनुसार काय करते थ जो काजी मुगीसुद्दीन के विचार थ और जिनका वणन पिछले अध्याय में हो चुका ह। बर्नी ने लिखा ह कि, हिन्दू अपनी गरदन सीधी नही कर सकते थे और उनके घरा में सान-चादा के टक अथवा जीतल देखन को नही मिलते थे। चौधरी और खूतो पर चढन के लिए घोडे न थ, हथियार नही थे, सुन्दर कपडे नही थे और वे पान खान का आनन्द भी नही उठा सकते थे। इसी इतिहासकार ने लिखा ह कि, इन लोगो की दरिद्रता इतनी अधिक थी कि उनकी स्त्रिया मुसल्मान घरा में सेवाकाय करती थी। धम परिवतन के लिए राज्य से प्रोत्साहन मिलता था।

कुतुबुद्दीन मुबारकशाह के राज्य का वणन करता हुआ इब्नबतूता लिखता ह कि, जब कोई हिन्दू मुसल्मान होना चाहता था तो लोग उसे सुल्तान के सम्मुख उपस्थित करते थ। सुल्तान उसे स्वण खचित वस्त्र और स्वण-वलय देता था। कट्टर दल हिन्दुआ से इतनी घृणा करता था कि, कुतुबुद्दीन मुबारकशाह के राज्य मे जब अलाउद्दीन के कठोर नियमो के शिथिल हो जाने के कारण और कुछ खुसरो के हिन्दुओ के साथ पक्षपात करने के कारण हिन्दुआ की कुछ दशा सुधर चली तो बर्नी खेद प्रकट करते हुए लिखता है कि "हिन्दू अब फिर आनन्द और प्रसन्नता से रहने लगे और अब सुख के कारण उन्हें कोई चिन्ता नही'। प्रथम दो तुगलक बादशाहो के राज्य म हिन्दुआ का उत्पीडन नही हुआ

परन्तु फीरोज ने इस नीति को उलट दिया। उसने ब्राह्मणो पर भी जजिया लगा कर कट्टरता की नीति को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। अब तक ब्राह्मणो पर जजिया नही लगा था। जब ब्राह्मणो ने इसका विरोध किया तो सुल्तान ने उसकी दर कम कर दी परन्तु कर बनाये रखा। फीरोज की मृत्यु के बाद जो अराजकता फैली उससे हिन्दुओ ने बहुत लाभ उठाया। परन्तु जब हिन्दुओ ने अपनी शक्ति फिर स्थापित कर ली तो सिकन्दर लोदी ने उनका फिर उत्पीडन किया। यद्यपि उन्हें कोई आर्थिक कष्ट नही हुआ तो भी उनका जीवन गुलामी से अच्छा नही था।

इब्नबतूता ने १४वी शताब्दी के भारत का बडा रोचक वर्णन किया है। उसके वर्णन से हमें तत्कालीन सामाजिक अवस्था का बहुत कुछ पता चलता है। उलमा की प्रतिष्ठा नष्ट हो चुकी थी। मुहम्मद तुगलक का न्याय बडा कठोर था। वह शेखो और मौलवियो को भी अनाचार के लिए कठोर दण्ड देता था। दास प्रथा सर्वमान्य थी परन्तु दासो को स्वतन्त्र[1] करने की प्रथा को प्रोत्साहन दिया जाता था। दास स्त्रियो को रखना उस समय की स्वीकृत प्रथा थी। प्रसिद्ध कवि बदर चाच को एक बार एक सुशिक्षित तथा सुन्दर कन्या के लिए ९०० दीनार देने पडे थे। यह यात्री हिन्दुओ की अतिथिसेवा की प्रशसा करता है। उसने लिखा है कि जाति के नियम बडे कठोर थे। हिन्दू मुसलमानो से निम्न श्रेणी के समझे जाते थे। जब कोई हिन्दू दरबार में सुल्तान को कोई भेंट लाता था तो हाजिब "हदाकअल्लाह" कह कर चिल्लाते थे। इसका अर्थ है, ईश्वर तुम्हें सत्य पथ पर लाये। अनैतिक आचरण के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था थी। राज-परिवार के लोगो को भी साधारण मनुष्यो की भाँति दण्ड दिया जाता था। व्यभिचार करने के कारण मसूद की माँ को विधान के अनुसार, पत्थरो से मार डाला गया था। मदिरा का प्रयोग निषिद्ध था। मसालिक-अल-अब्सार' के रचयिता ने लिखा है कि भारतवासी मदिरा का स्वाद ही नही पहचानते। वे केवल पानी से ही सन्तुष्ट रहते है।[2] उसी लेखक ने लिखा है कि धन सचय करने में लोगो की बडी रुचि है। जब कभी किसी मनुष्य से उसकी सम्पत्ति के विषय में पूछा जाता

१ इब्नबतूता, भाग ३, पृष्ठ २३६
२ मसालिक, इलियट भाग ३, पृष्ठ ५८१

है तो वह यह उत्तर देता है कि, "म अपने वश का दूसरा अथवा तीसरा पुरुष हूँ जिसने बडे परिश्रम से धन सचय कर गड्ढ में गाड रखा ह अथवा अयन किसी गुप्त स्थान म छिपा रखा है, परन्तु मुझ यह पता नही कि, वह कितना ह।"[1] चौदहवीं शताब्दी म ऋण लेने देने के जो नियम थ उनका उसने रोचक वणन किया ह। उसके पहले मार्कोपोला, जो भारत आया था, उसन भी उसके कथन का समथन किया ह। ऋणदाता अपना रुपया लेन क लिए बादशाह की सहायता लेते थे। जब किसी बडे अमीर पर ऋण होता था तो राजमहल में जाते समय ऋणदाता उसका मार्ग रोककर खडा हो जाता था और सुल्तान की सहायता प्राप्त करने के लिए उच्च स्वर से चिल्लाता था। इस विषम परिस्थिति मे पडकर या तो वह उसका ऋण चुका देता था अथवा कभी भविष्य में देने का वचन देता था। कभी कभी सुलतान स्वय हस्तक्षप करता और रुपया दिलवा देता था।[2] सती और आत्म-बलिदान की प्रथा प्रचलित थी परन्तु बिना राजाज्ञा प्राप्त किये कोई स्त्री सती नहीं हो सकती थी।[3] गध की सवारी आजकल की भाँति घृणास्पद थी। यदि किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई अपराध सिद्ध हो जाता था तो उस कोडे लगाकर और फिर गधे पर बिठाकर घुमाया जाता था।[4] मध्य कालीन यूरोप की भाति भारत के लोग भी जादू टोना चमत्कार आदि में विश्वास रखते थे। हिंदू योगियो की क्रियाओ को स्वय सुलतान देखा करता था। इब्नबतूता ने उनको जोगी लिखा ह। दान देने का बहुत चलन था। बडी-बडी सस्थाओ को लोग दान देत थे, जहाँ दीनो को भोजन बँटता था। यद्यपि सुल्तान की सच्चरित्रता का मुसलमान समाज पर अच्छा

---

१ मसालिक, इलियट भाग ३ पष्ठ ५८४ मोरलेण्ड, इण्डिया एट दी डैथ ऑव अकबर पृष्ठ २८४। उसका कहना है कि, धन इकट्ठा करना हिंदू समाज की ही विशेषता थी।

२ इब्नबतूता भाग ३ पृष्ठ ४११। यूल मार्कोपोलो पष्ठ २७९-८०

३ इब्नबतूता भाग ३ पष्ठ १३७-३९। लोग गगा में डूबकर प्राण देते थे और इसे पुण्य कम समझते थ। इसका नाम जलसमाधि था।

४ इब्नबतूता भाग ३ पष्ठ ४४१

प्रभाव पडता था, परन्तु ऐसा प्रतीत होता ह कि वैवाहिक व धनो की पवित्रता का लोगा में आदर नही था। इब्नवतूता ऐसे व्यक्ति न चार से अधिक विवाह किये और विना कोई उत्तरदायित्व अनुभव किये एक एक करके सब स्त्रियो का छोड दिया।[१] स्त्रियो की शिक्षा विल्कुल उपेक्षित नही थी। इब्नवतूता ने लिखा ह कि जव हनोर पहुँचा तो मुझे १३ विद्यालय लडकिया के और २३ लडको के मिले। यह देखकर उसे वडा आश्चय और आन द हुआ।

दक्षिण के लोगो के रीति रिवाज उत्तरवालो से कई बाता में भिन्न थे। आत्मशुद्धि और सती की प्रथा प्रचलित थी। पत्थर के स्मारक आज भी सती प्रथा के साक्षीरूप में खडे हुए ह। ब्राह्मणो का विशेष सम्मान होना था और गुरु वडी श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था। ब्राह्मणो का राजस्व स्पश करके लौटा दिया जाता था। मलाबार के नायरो में बहुपतित्व की प्रथा प्रचलित थी और इसकी निन्दा नही होती थी। इब्नवतूता के वणन से प्रतीत होता ह कि बहुत छोटे-छोटे अपराधो के लिए भी मलाबार में बडे कठोर दण्ड की व्यवस्था थी। कभी कभी एक नारियल के चुराने पर मृत्यु का दड दिया जाता था।

आर्थिक दशा—मुस्लिम विजय के आरम्भिक काल में मुसल्माना ने भारतीया का धन लूट लिया। महमूद गजनवी इस देश से जो अपार सम्पत्ति ले गया, उसका फरिश्ता ने वणन किया है। पहले मुसल्मान शासक युद्ध करने और देश जीतने में व्यस्त रहे। वलबन पहला शासक था जिसने देश के अन्दर शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न किया। उसने कम्पिल और पटियाली के आस पास के प्रदेश का डाकुआ और लुटेरो से मुक्त कर दिया। परिणाम यह हुआ कि कृषि की दशा बहुत अच्छी हो गई और व्यापारी अपना माल एक स्थान से दूसरे स्थान को बिना किसी कठिनाई के ले जाने लग।[२] खिलजी सुलतानो के समय में देश की आर्थिक दशा मे वहुत परिवतन हो गया। उसका वणन पहले हो चुका ह। फीरोज के राज्य में दिल्ली में वडा भारी दुर्भिक्ष पडा। बर्नी ने लिखा ह कि इस दुर्भिक्ष के समय दिल्ली में अनाज

१ इब्नवतूता भाग ३ पृष्ठ ३३७ ३८
२ इलियट, भाग ३ पृष्ठ १०५

एक जीतल का एक सेर तक बिकने लगा था। शिवालिक पहाडियो म भोजन और चारे की इतनी कमी हो गई कि, वहा के हिन्दू अपने-अपने परिवारो के साथ दिल्ली चले आये और जब जीवन भार वहन करना उनके लिए असह्य हो गया, तो उनम से अनेको ने यमुना मे गिर कर प्राण दे दिये।[१] परन्तु यह नही प्रतीत होता कि राज्य ने इस सकट को कम करने के लिए कोई उद्योग किया। अलाउद्दीन इस वश का सबसे बडा सुलतान था। वह अथ सम्बधी प्रश्नो पर भी खूब विचार करता था। उसने बडी निर्भीकता से आयात निर्यात कर लगाये। विश्व विजय की कामना से प्रेरित होकर उसने इस प्रकार की अथ-व्यवस्था की जिसकी गणना मध्य युग की वडी आश्चयजनक वस्तुओ में की जा सकती ह। देश में धन का अभाव न था। राजगद्दी पर बठने के पश्चात् अलाउद्दीन न जब राजधानी में प्रवेश किया तो उसने लोगो में बहुत धन बँटवाया और उन्हें बडे-बडे अपहार दिये। एक मजनीक में पाँच मन स्वण नक्षत्र भरकर उन लोगो मे बरसा दिये गये, जो राज-मडप के सम्मुख एकत्रित हो गये थे।[२] माल-विभाग पूणत व्यवस्थित था। साम्राज्य के सूदूरवर्त्ती प्रान्तो की भूमि भली भाँति नप चुकी थी और उस पर उचित कर लग गया था। खूत, चौधरी और मुकद्दम अत्यन्त हीन और दरिद्र हो गये थे। उनकी दयनीय दशा को देखकर बर्नी बडा सतोष प्रकट करता है। परन्तु अलाउद्दीन का सबसे महत्त्वपूण काय आयात निर्यात कर के नियम बनाना था। वस्तुओ का मूल्य इतना कम था कि एक सिपाही अपने घोडे के साथ २३४ टक वार्षिक म बडे आराम स जीवन निर्वाह कर सकता था। इस हिसाब से मासिक व्यय २० टक से भी कम पडता है। आजकल इतने में घोडे की घास का पूरा भी नही पडता। राज्य की बुखारियो मे अनाज सग्रह किया जाता था और अन्नाभाव होन पर लोगो में बाट दिया जाता था। इब्नबतूता ने लिखा ह कि अलाउद्दीन के कोठारो में जो चावल सग्रह किया गया था, वह मने स्वय देखा है। अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् उसकी आर्थिक व्यवस्था नष्ट हो गई, क्योंकि इस व्यवस्था म राजनीतिक

---

१ बर्नी, पष्ठ २१२
२ वही, पृष्ठ २४५

अर्थविज्ञान का कुछ भी ध्यान नही रखा गया था। उसकी मृत्यु के पश्चात् ही प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो गई। बाजार के लोग बडे प्रसन्न हुए और मनमाने मूल्य पर वस्तुएँ बेचने लगे। आयात-निर्यात नियमो की उपेक्षा होने लगी। भाव बढ जाने पर बर्नी ने क्षोभ प्रकट किया है। परन्तु पदावार में कोई कमी न थी और न राज्य ने कोई अर्थ-संकट अनुभव किया। नवाबो और दरबारियो की सहायता प्राप्त करने के लिए नासिरुद्दीन खुसरो ने राज्य-कोष को खूब लुटाया, तो भी मुहम्मद तुगलक को अपने अपार व्यय-साध्य प्रयोग करने के लिए पर्याप्त धन मिल गया। मुहम्मद तुगलक की अर्थनीति नितान्त असफल रही, तो भी उसकी आर्थिक स्थिति सँभली रही। संकेत-मुद्रा के असफल हो जाने पर भी राज्य की मान-प्रतिष्ठा अथवा उसकी साख को कोई धक्का न पहुँचा, क्योकि सुल्तान ने तुरन्त अपनी आज्ञा रद्द कर दी और घोषणा करवा दी कि लोग तावे के बदले सोने चादी के सिक्के ले जा सकते है। दस वर्ष तक देश में भीषण दुर्भिक्ष रहा और उसने लोगो को बडा दीन और असहाय कर दिया। राज्य ने सजग होकर दुर्भिक्ष नीति का पालन किया। बर्नी ने लिखा है कि दो वर्ष में किसानो को ७० लाख टक सौंधर अथवा तकावी-रूप में ऋण दिये गये। इब्नबतूता ने सुलतान की दुर्भिक्ष नीति का वर्णन बडे विस्तार से किया है। उसने लिखा है कि लोगो को राज-कोठारो से अनाज मिलता था। प्रत्येक गाँव के दीन व्यक्तियो की सूची फकीअ और काजी बनाते थे। आज्ञा के लिए वे सुल्तान के सामने उपस्थित किये जाते थे। एक बार, जब घोर दुर्भिक्ष पड रहा था, तो काजी, मुशी और अमीर गाँव-गाँव घूमकर अकाल पीडित लोगो को १½ पाश्चात्य रितल प्रतिदिन के हिसाब से सहायता देते थे। बडी-बडी खानकाहें इस पुनीत काय में राज्य की सहायता करती थी। इब्नबतूता ने लिखा है कि कुतुबुद्दीन की खानकाह में सैकडो मनुष्यो को भोजन मिलता थ, जिसका वह स्वय मुतवल्ला था और जिसमें ४६० कर्मचारी थे। राज्य की ओर से उद्योग-धंधो को प्रचुर प्रोत्साहन मिलता था। एक राज्य का कारखाना भी था, जिसमें ४०० रेशम के कारीगर काम करते थे। इस कारखाने में सभी प्रकार का माल तयार होता था। सुलतान के यहाँ सुनहरी काम करनेवाले ५०० कारीगर नियुक्त थे, जो राजपरिवार तथा अमीरो के लिए सुन्दरी वस्त्र, गोटा पट्टा आदि बनाते

थे। विदेशा से व्यापार होता था। मार्कोपोलो और इब्नबतूता दोनों ने ऐसे बन्दरगाहो का वर्णन किया है जहा विदेशी व्यापारी आते जाते थे। भडौच और कालीकट व्यपार के प्रसिद्ध केन्द्र थे। कालीकट के विषय में इब्नबतूता ने लिखा है कि यहाँ ससार के सभी देशा के लोग सामान लेने आते थे।

तेरहवी और चौदहवी शताब्दियो म व्यापार बडी समुन्नत दशा में था। वस्साफ न लिखा है कि गुजरात वडा धनी और घना बसा हुआ प्रदेश है। इसमें ७००० गाव और नगर ह तथा लोग धन धान्य से समृद्ध ह। कृषि की दशा बहुत अच्छी ह। वष में अगूरो की दो फसलें होती ह। यहा की भूमि इतनी उपजाऊ ह कि कपास के पौधो की शाखाएँ दूर दूर तक फल जाती ह और लगातार कई वर्षों तक उनसे कपास इकट्ठी की जाती ह। मार्को पोलो ने भी कपास की बहुत भारी खेती का वणन किया है। उसने लिखा है कि कपास के पौधे पूरे छ पग ऊँचे होते थे और उनकी आयु बीस वष की होती थी। मिच, अदरक और नील भी बहुत अधिक माना में उत्पन्न होते थे। स्थानीय कारीगर लाल और नीले चमडे की चटाइया बनाते थे जिनमें पशु-पक्षियो के चित्र अकित रहते थे और जिनके किनारा पर सोने-चादी के तारो का काम बना रहता था। खम्भात भी बडा भारी व्यापारिक केन्द्र था, जहाँ नील की बहुत भारी पदावार थी। व्यापारी जहाजो में माल भरकर लाते थे, परन्तु वे विशेष रूप से देश में सोना-चादी और तावा ही लाते थे। वह यात्री लिखता ह कि "देशवासी बडे सज्जन हैं और अपना व्यवसाय, वाणिज्य अथवा उद्योग सच्चाई के साथ कर जीवन यापन करते ह।' मावर धन से पूण प्रदेश था, परन्तु इसका बहुत बडा भाग, जसा मार्को पोलो ने लिखा ह, घोडे क्रय करने में व्यय हो जाता था, जिनका देश में अत्यन्त अभाव था। इब्न बतूता ने लिखा ह कि बगाल बडा धनी तथा उपजाऊ प्रदेश ह। खाद्य पदाथ सस्ते हैं और थोडी आय में भी मनुष्य सुख और सुविधा से जीवन यापन कर सकते ह।

सन् १३५१ ई० से १३८८ ई० तक देश की आर्थिक दशा बडी अच्छी रही। फीरोज तुगलक ने सिंचाई की बडी सुविधाएँ कर दी। इससे कृषि को बडा प्रोत्साहन मिला और राजस्व में वृद्धि हो गई। दिल्ली तथा उसके

अन्तगत प्रदेश का राजस्व ६ क्रोड ८५ लाख टक हो गया। अकेले दोआब का भूमि कर ८५ लाख टक था। सामान सस्ता होने के कारण राज्य के कम चारियो ने अपार धन इकट्ठा कर लिया था। उस समय इतनी अधिक सस्ती थी कि थोडे व्यय में लोग एक स्थान से दूसरे स्थान को आ जा सकते थे। दिल्ली से फीरोजाबाद तक गाडी द्वारा जाने में चार रजत जीतल, खच्चड से छ जीतल और घोड से १२ जीतल लगते थे। पालकी में जाते से ½ टक लगता था। कुली बडी सुविधा से मिल जाते थे। समसामयिक इतिहास कार लिखता है कि उनकी आय अच्छी थी।

चौदहवी शताब्दी के अन्तिम भाग में अथसकट प्रारम्भ हो गया। साम्राज्य अनेक स्वतत्र भागा में विभक्त हो गया। १३९९ ई० में तमूर के आक्रमण से देश में बडी अराजकता फैल गई और बहुत सा धन बाहर चला गया। व्यापार और कृषि की व्यवस्था बिगड गई। जो नगर आक्रमणकारी के माग में पडे, उनकी सम्पत्ति लुट गई। दिल्ली साम्राज्य का महत्त्व कम हो गया और प्रान्तीय राज्य अपनी सम्पत्ति, सैनिक शक्ति और स्थापत्य कला के लिए प्रसिद्ध हो गये। इनका वणन उचित स्थान पर हो चुका ह।

कला—प्रारम्भिक मध्य युग में कला की बडी उन्नति हुई। मुसलमानो की कला का भारतवष कितना ऋणी है, यह विषय विवादास्पद ह। कुछ लोगो का मत है कि भारतीय केवल मुसलमानी कला का एक भेद ह। हैवेल की भाति कुछ लोगो का मत ह कि यह हिन्दू कला का केवल रूपान्तर मात्र है। सत्य इन दोनो विरोधी मतो के बीच में है। इसमें कोई सदेह नही कि हिदू शिल्पकारो तथा कारीगरो न इस्लामी कला को बहुत कुछ परिवर्तित कर दिया, परन्तु यह समझना भी भूल होगी कि इसके अपने कोई निजी आदश न थे। भारत में मुसलमानो की शक्ति स्थापित होते होते उनमें भवन निर्माण की परिष्कृत रुचि उत्पन्न हो गई थी और स्थापत्य के विषय में उनके अपने निजी विचार उत्पन्न हो गये थे। जिस परिस्थिति में भारतीय मुस्लिम कला का प्रादुर्भाव हुआ, उसके कारण दोनो आदर्शों का समन्वय अनिवार्य हो गया। हिंदुओ में मूर्तिपूजा थी, मुसलमान इसका विरोध करते थे। हिन्दू सजधज और शृगार चाहते थे और इस्लाम सादगी को ही

पसद करता था। इन विरोधी आदर्शों ने मिलकर एक ऐसी नवीन कला को जन्म दिया, जिसे हम सुविधा की दृष्टि से 'भारतीय मुस्लिम कला' कहते ह। शन शन जसे जमे हिदू कारीगर और कुशल वास्तुकार ईंट और पत्थरो में इस्लामी विचारा की अभिव्यक्ति करने लगे, वसे ही वसे सम्मिश्रण और समन्वय प्रारम्भ हो गया। दोनो ने एक दूसरे से सीखा। यद्यपि मुसलमाना की श्रृगार-कला इतनी सुन्दर न थी, तो भी उसने भारतीय विजय में प्राप्त भारतीय विचारो और वस्तुआ से पूरा लाभ उठाया। सम्मिश्रण की प्रक्रिया का वणन सर जौन मारशल ने बडे स्पष्ट शब्दो में किया ह —

"इस प्रकार अनेक हिदू मदिरा और प्राय प्रत्येक मुस्लिम मसजिद की विशेषता यह थी—जो कदाचित् पूर्वी देशा के निवासगहा से प्राप्त की गई थी और भारत तथा एशिया के अय देशो में जिससे लोग अत्यधिक रूप में परिचित थ—कि बीच में खुला आगन होता था। इसके चारो ओर कक्ष, मडप अथवा गह बने रहते थे। इस प्रकार के मदिरो को विजेताओ ने सवप्रथम मसजिदा मे परिणत कर दिया। इसके अतिरिक्त दानो कलाओ की शलिया म एक और बात सामान्य थी कि हिन्दू और मुसल्मान दोना कलाएँ श्रृगार-पूण थी। अलकार दोना को समान रूप से प्रिय था। दोनो का अस्तित्व इसी श्रृगार पर निभर था।"

अरबा ने यहाँ कोई भवन नही बनवाये, परन्तु व हिन्दू सस्कृति का आदर करते थे और हिदू वास्तुकारो तथा कलाकारा के कौशल के प्रशसक थे। हिदू वास्तुकारो के कौशल से महमूद गजनवी इतना प्रभावित हुआ था कि वह सहस्रो राज और कारीगर गजनी ले गया और वहाँ उनसे उसने वह प्रसिद्ध मसजिद बनवाई जो 'देववधू' के नाम से विख्यात ह। उसके पश्चात् इस्लाम के अय वीर योद्धा भारत आये जसे मुहम्मद गोरी और उसके वीर दास कुतुबुद्दीन तथा इल्तुतमिश, जिहाने ११९३ ई० से १२३६ ई० तक उत्तरी भारत की विजय सम्पन्न की। अजमेर की मसजिद दिल्ली की कुतुबी मसजिद और मीनार और बदायूँ की कुछ इमारतें कुतुबुद्दीन और इल्तुतमिश के समय के प्रधान स्मारक ह। इनको हिदू कारीगरा ने बनाया था। अत हिन्दू स्थापत्य का प्रभाव इन पर अनिवाय रूप से पडा, जिसके दशन हम आज भी कर सकते हैं।

कुतुबी मसजिद में सबसे महत्वपूर्ण वस्तु ग्यारह बिंदुवाली डाटो का पर्दा है, जिसकी फर्गुसन ने इतनी अधिक प्रशंसा की है। कुतुब मीनार का निर्माण कुतुबुद्दीन ने प्रारम्भ किया। वह इसकी पहली मंजिल ही बनवा सका। इल्तुतमिश ने उसे पूरा कराया। इसका नामकरण प्रसिद्ध संत कुतुबुद्दीन के नाम पर हुआ जो साधारण रूप से कुतुबशाह के नाम से विख्यात था। इसकी ऊँचाई लगभग २४२ फुट है और आज भी यह उत्कृष्ट कला का सुंदर दृष्टान्त समझा जाता है। फीरोज तुगलक के समय में मीनार के ऊपर बिजली गिर गई। उसने चौथी मंजिल उतरवा दी और उसके स्थान पर छोटी छोटी दो मंजिलें बनवा दी। फीरोज के शिलालेख से इस बात का पता लगता है। १५०३ ई० में सिकंदर लोदी ने ऊपर की मंजिलो की फिर मरम्मत कराई। अजमेर में कुतुबुद्दीन ने ढाई दिन का झोंपड़ा बनवाया था। इल्तुतमिश ने एक पर्दा बनवाकर इसे सजाया था। वह अब तक मौजूद है। यह दंतकथा कि इसका निर्माण केवल ढाई दिन में हुआ था, केवल कपोल कल्पना प्रतीत होती है, क्योंकि इतने कम समय में कितने ही परिश्रम अथवा कौशल से इतना विशाल भवन प्रस्तुत नहीं हो सकता था। कदाचित् मराठों के समय से उसका यह नाम चला आता है। उस समय यहाँ ढाई दिन के लिए एक वार्षिक मेला लगता था। हौज शम्सी और शम्सी ईदगाह इस समय की अन्य प्रसिद्ध इमारतें हैं। बदायूँ की सूबेदारी के समय में (१२०३–९) इल्तुतमिश ने इन्हें बनवाया था। गद्दी पर बैठने के बारह वर्ष पश्चात् सन् १२२३ ई० में उसने जाम मसजिद बनवाई।

अलाउद्दीन खिल्जी के समय में दिल्ली सुल्तानों की शक्ति बहुत बढ़ गई। यद्यपि उसका समय युद्धों में ही व्यतीत हुआ, तो भी उसने अनेक दुर्गों, तालाबों और महलों के निर्माण की आज्ञा दी। सीरी गाँव के निकट उसने इसी नाम का दुर्ग बनवाया। राय पिथौरा के दुर्ग से दो मील उत्तर पूर्व की ओर यह स्थान है। दुर्ग की दीवारें पत्थरों और वास्तु द्वारा निर्मित थीं। इसकी किलाबन्दी बड़ी सुरक्षित तथा दृढ़ थी। हजार सितून (सहस्र स्तम्भ) का महल अलाउद्दीन ने बनवाया था। बर्नी ने लिखा है कि इस विशाल भवन की नींव तथा दीवारों में सहस्रों मुगलों के सिर चुन दिये गये थे। १३११ ई० में अलाई
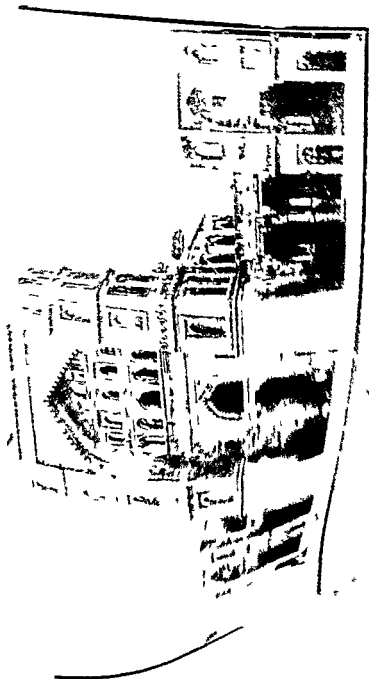
दरवाजा बना। इस्लामी स्थापत्य का यह बडा अमूल्य रत्न है। हौज अलाई और हौज खास इस युग के अन्य प्रधान स्मारक ह जो इतिहास में प्रसिद्ध ह। दिल्ली सल्तनत के इतिहास में चौदहवी शताब्दी बडी क्रान्ति और विभीषिका का युग था। मगोल निरतर दिल्ली नगर के फाटक तक आते थे। हिदू राजा केन्द्रीय शक्ति की उपेक्षा करते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि तुगलको के समय का स्थापत्य विशाल और सरल हो गया। इस प्रकार का सबसे अच्छा उदाहरण तुगलकशाह का मकबरा ह, जो अब भी तुगलकाबाद के प्राचीन दुग के निकट मौजूद ह। फीरोज स्थापत्य का बडा प्रेमी था। नगर, महल, मसजिद, तालाब, सग्रहालय तथा उद्यान आदि बनवाने में उसने बहुत सा धन व्यय किया। उसने अनेक नये भवन बनवाये और पुराना का जीर्णोद्धार कराया। उसने फीरोजाबाद नगर बसाया, जिसके ध्वसावशेष आज भी वत्तमान शाहजहानाबाद के निकट विद्यमान ह। अत्यन्त सुव्यवस्थित नहरो से उसने यहा प्रचुर परिमाण में पानी पहुँचवाया था। उसने फतहाबाद और हिसारफीरोजा नाम के दो नगर और बसाये थे। अपने विख्यात चचेरे भाई मुहम्मद तुगल्क (जूना खा) के नाम पर उसने गोमती नदी के तट पर जौनपुर की नीव डाली। वह दो अशोक स्तम्भो को भी दिल्ली ले गया—एक अम्बाला जिले में टोपरा नामक स्थान से और दूसरा मेरठ जिले के एक गाव से। समसामयिक इतिहासकार अफीफ ने इन शिलास्तम्भो के स्थानान्तर का बडा रोचक वणन किया ह। भवन-निर्माण से सुल्तान को इतना स्नेह था कि जब तक उसका पूव चित्र दीवाने-विजारत निरोक्षण न कर लेता और उसकी योजना को न स्वीकृत कर देता तथा अत में वह स्वय उससे सहमत न हो जाता तब तक वह कोई भवन निर्मित न होने देता था। फीरोज कटटर मुसल्मान था, अत उसके समय में नवीन शाली अपरिवर्तित रही। उसकी मत्यु के पश्चात् प्रान्तीय राजवशो का उत्थान हुआ और कला को प्रोत्साहित करना उन्ही का काय रह गया।

जौनपुर के सुल्तान कला और साहित्य के बडे प्रेमी थे। उनके बनवाये हुए भवन आज तक विद्यमान ह और भारतीय मुस्लिम कला के अन्यतम उदाहरण ह। अटाला मसजिद, जो सुल्तान इब्राहीम के राज्य में पूरी हुई, जामा

मसजिद जो हुमैनशाह के आश्रय में बनी तथा लाल दरवाजेवाली मसजिद, जहागीरी का टूटा हुआ अग्रभाग और खालिस मुखलिस भारतीय कला के उत्तम उदाहरण हैं।

गौड के मुनी सुल्ताना को भी कला मे इतनी ही रुचि थी। उनकी शली दिल्ली और जौनपुर से भिन्न थी। गौड के भवन पूरे ईंट के बने हुए ह। उन पर हिदू मदिरो की स्थापत्य-कला के अनुकरण के स्पष्ट चिह्न ह। शाहशाह का मकबरा छोटी और बडी सुनहरी मसजिदें तथा कदम रसूल वहाँ की प्रसिद्ध इमारतें ह, जिनको सुल्तान नुसरतशाह ने बनवाया था। छोटी सुनहरी हिजडेवाली मसजिद का भवन बिल्कुल ठोस बना हुआ ह। इसके भीतर और बाहर खोदकर चित्रकारी की गई ह। इसमें भारतीय कला भी सम्मिलित है। इनमें सबसे विख्यात पँडुआ की अदीना मसजिद ह जो गौड से २५ मील पर है और जिसे १३६८ ई० में सिकदरशाह न बनवाया था।

प्रादेशिक स्थापत्य शलियो में गुजरात की शैली सब से सुदर थी। मुस्लिम विजय के पहले गुजरात पर जन धम का प्रभाव था। अत जब देश मुसलमाना के अधिकार में आया तो कारीगरो और कलाकारो न, जिनका मुसलमान शासको ने नियुक्त किया था, हिदू और जन पद्धति का अनुसरण किया। मुसलमानो की विशुद्धि-वादिता के कारण उसमें यथावश्यक परिवतन कर लिय गये। अहमदशाह ने बहुत से भवन बनवाय। पद्रहवी शताब्दी के पूवाद्ध में उसने अहमदाबाद की नीव डाली और मसजिदें तथा महल बनवाय। अहमदाबाद, खम्बात, चम्पानेर तथा अय प्रसिद्ध स्थानो में पद्रहवी शताब्दी में अनक भवन बनाय गये। मुहाफिज खा की मसजिद बडी सुदर कृति ह जो इस शताब्दी के अन्तिम भाग में बनाई गई थी। मसजिदो और मकबरा के अतिरिक्त गुजरात बावडियों, सिंचाई व्यवस्था तथा सावजनिक उद्यानो के लिए भी प्रसिद्ध है।

पद्रहवी शताब्दी में वास्तुकला के लिए माँडू भी इतना ही प्रसिद्ध था। जो विशाल भवन वहाँ आज भी विद्यमान ह, वे माँडू के सुल्ताना की शक्ति

और महत्ता के ज्वलंत प्रमाण हैं। जाम मसजिद, हिंडोला महल, जहाज-महल, हुशंगशाह का मकबरा और बाजबहादुर तथा रूपमती के महल वहा की सुविख्यात इमारतें हैं।

केवल उत्तरी भारत में ही कला की उन्नति नही हुई, वरन् दक्षिण के बहमनी सुल्तानो तथा विजय नगर के राजाओ ने भी इस कला को बडा प्रश्रय और प्रोत्साहन दिया। बहमनी बादशाहो ने नगर बसाये तथा मसजिदें और दुर्ग बनवाये। गुलबर्गा और बीदर की मसजिदें दक्षिणी कला के उत्कृष्ट उदाहरण है। ईरानी कलाकारो द्वारा बनाई हुई गुल्बर्गा की जाम-मसजिद, दौल्ताबाद का चाँद-मीनार तथा ईरानी शली का महमूद गावान का महा विद्यालय उनकी विख्यात इमारतें है परन्तु बहमनी सुल्तान इतिहास में दुग बनाने के लिए प्रसिद्ध है जिनम से ग्वालीगढ तथा आदिलाबाद प्रान्त के नरनाल और माहर के दुग प्रधान है। इनमें से अन्तिम दुग सतपुडा पवत-श्रेणियो के हिंदू राजाओ के विरुद्ध सीमान्त की रक्षा के लिए बनाया गया था। परेडा, नलदुग और पनहाला के दुग उन्होने अपनी शक्ति को सुदृढ करने के लिए बनवाये थे। गुल्बर्गा में इन प्रसिद्ध भवनो के दो वग है। एक वग में अलाउद्दीन हसन बहमन शाह, मुहम्मद शाह, मुहम्मद शाह द्वितीय तथा अन्य दो परवर्ती सुल्तानो के मकबरे है। दूसरा वग हफ्त गुम्बद (सप्त मडप) के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें मुजाहिद शाह, दाऊद शाह गयासुद्दीन और उसका परिवार तथा फीरोजशाह और उसके परिवार के मकबरे है। इन सब में बडा पारस्परिक साम्य है। बीदर नगर अहमदशाह ने बसाया था। इसमें एक दुग है तथा दो अन्य प्रसिद्ध भवन है—एक अहमदशाह वली का मकबरा और दूसरा सोला मसजिद जो मुहम्मदशाह तृतीय के राज्यकाल में बनाई गई थी। दक्षिणी राज्यो म बीजापुर की वास्तु कला सब से विचित्र है। मुहम्मद आदिलशाह का मकबरा जो गोल गुम्बज के नाम से विख्यात है, बडी विशाल कृति है और उस प्रकार के अन्य किसी भवन से वह किसी प्रकार कम नही।

इस विषय म विजय नगर के राजा बहमनी सुल्तानो से किसी प्रकार पीछे नही है। सभा-भवन, सावजनिक-कार्यालय, सिंचाई की योजना, जलमार्ग, मन्दिर और महल बनवाने में उन्होने बडा उत्साह दिखलाया। अपनी कृतियो को उन्होने

मसजिद जो हुसैनशाह के आश्रय में बनी तथा लाल दरवाजेवाली मसजिद, जहाँगीरी का टूटा हुआ अग्रभाग और खालिस मुखलिस भारतीय कला के उत्तम उदाहरण ह।

गौड के सुनी सुल्ताना को भी कला में इतनी ही रुचि थी। उनकी शली दिल्ली और जौनपुर से भिन्न थी। गौड के भवन पूरे ईंट के बने हुए ह। उन पर हिंदू मंदिरा की स्थापत्य-कला के अनुकरण के स्पष्ट चिह्न ह। शाहशाह का मकबरा छोटी और बडी सुनहरी ममजिदें तथा कदम रसूल वहाँ की प्रसिद्ध इमारतें ह, जिनको सुल्तान नुसरतशाह ने बनवाया था। छोटी सुनहरी हिजडेवाली मसजिद का भवन बिल्कुल ठोस बना हुआ ह। इसके भीतर और बाहर खोदकर चित्रकारी की गई है। इसमें भारतीय कला भी सम्मिलित है। इनमे सबसे विख्यात पाँडुआ की अदीना मसजिद ह जो गौड से २५ मील पर ह और जिमे १३६८ ई० में सिकदरशाह न बनवाया था।

प्रादेशिक स्थापत्य शलियो में गुजरात की शली सब से सुदर थी। मुस्लिम विजय के पहले गुजरात पर जन धम का प्रभाव था। अत जब देश मुसलमाना के अधिकार में आया ता कारीगरो और कलाकारा ने, जिनको मुसल्मान शासका ने नियुक्त किया था, हिदू और जन पद्धति का अनुसरण किया। मुसल्मानो की विशुद्धि-वादिता के कारण उसगें यथावश्यक परिवतन कर लिय गये। अहमदशाह ने बहुत से भवन बनवाये। पद्रहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उसने अहमदाबाद की नीव डाली और मसजिदें तथा महल बनवाये। अहमदाबाद, खम्बात, चम्पानेर तथा अय प्रसिद्ध स्थानो में पद्रहवी शताब्दी में अनक भवन बनाये गय। मुहाफिज खाँ की मसजिद बडी सुदर कृति ह जो इस शताब्दी के अन्तिम भाग में बनाई गई थी। मसजिदा और मकबरा के अतिरिक्त गुजरात बावडियों, सिंचाई व्यवस्था तथा सावजनिक उद्याना के लिए भी प्रसिद्ध ह।

पद्रहवी शताब्दी में वास्तुकला के लिए माँडू भी इतना ही प्रसिद्ध था। जो विशाल भवन वहाँ आज भी विद्यमान ह, वे माँडू के सुल्ताना की गम्भि

और महत्ता के ज्वलन्त प्रमाण है। जाम मसजिद, हिंडोला-महल, जहाज महल, हुशगशाह का मकबरा और बाजबहादुर तथा रूपमती के महल वहाँ की सुविख्यात इमारतें है।

केवल उत्तरी भारत में ही कला की उन्नति नही हुई, वरन् दक्षिण के बहमनी सुल्तानों तथा विजय नगर के राजाओ ने भी इस कला को बडा प्रश्रय और प्रोत्साहन दिया। बहमनी बादशाहो ने नगर बसाये तथा मसजिदें और दुर्ग बनवाये। गुलबर्गा और बीदर की मसजिदें दक्षिणी कला के उत्कृष्ट उदाहरण है। ईरानी कलाकारो द्वारा बनाई हुई गुलबर्गा की जाम-मसजिद, दौलताबाद का चाँद-मीनार तथा ईरानी शैली का महमूद गावान का महा विद्यालय उनकी विख्यात इमारतें है परन्तु बहमनी सुल्तान इतिहास में दुर्ग बनाने के लिए प्रसिद्ध है जिनमें से ग्वालीगढ तथा आदिलाबाद प्रान्त के नरनाल और माहर के दुर्ग प्रधान है। इनमें से अन्तिम दुर्ग सतपुडा पर्वत-श्रेणियो के हिन्दू राजाओ के विरुद्ध सीमान्त की रक्षा के लिए बनाया गया था। परेंडा, नल्दुर्ग और पनहाला के दुर्ग उन्होने अपनी शक्ति को सुदृढ करने के लिए बनवाये थे। गुल्बर्गा में इन प्रसिद्ध भवनो के दो वर्ग है। एक वर्ग में अलाउद्दीन हसन बहमन शाह, मुहम्मद शाह, मुहम्मद शाह द्वितीय तथा अन्य दो परवर्ती सुल्तानो के मकबरे है। दूसरा वर्ग हफ्त गुम्बद (सप्त मडप) के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें मुजाहिद शाह, दाऊद शाह गयासुद्दीन और उसका परिवार तथा फीरोजशाह और उसके परिवार के मकबरे है। इन सब में बडा पारस्परिक साम्य है। बीदर नगर अहमदशाह ने बसाया था। इसमें एक दुर्ग है तथा दो अन्य प्रसिद्ध भवन है—एक अहमदशाह वली का मकबरा और दूसरा सोला मसजिद जो मुहम्मदशाह तृतीय के राज्यकाल में बनाई गई थी। दक्षिणी राज्यो में बीजापुर की वास्तु कला सब से विचित्र है। मुहम्मद आदिलशाह का मकबरा जो गोल गुम्बज के नाम से विख्यात है, बडी विशाल कृति है और उस प्रकार के अन्य किसी भवन से वह किसी प्रकार कम नही।

इस विषय में विजय नगर के राजा बहमनी सुल्तानो से किसी प्रकार पीछे नही है। सभा-भवन, सार्वजनिक-कार्यालय, सिंचाई की योजना, जलमार्ग, मन्दिर और महल बनवाने में उन्होने बडा उत्साह दिखलाया। अपनी कृतियो को उन्होने

बडे सुन्दर ढग से सजाया था। इस बात का पर्याप्त प्रमाण ह कि नगर में सिंचाई की बडी सुन्दर योजना थी और पानी इकट्ठा करने के लिए बडे बडे तालाब बनवाये गये थ। अनेको मन्दिरो का निर्माण हुआ। विट्ठल मन्दिर सब से प्रसिद्ध था। फर्गुसन ने लिखा है कि द्रविड शैली की विशेषतायें इसमें सब से अधिक पाई जाती ह। शिल्प और चित्र-कला का भी अभाव न था और ऐसा प्रतीत होता है कि इस काम में कलाकारो ने बडी योग्यता प्राप्त की थी। पुर्तगाली इतिहास-लेखको तथा ईरानी राजदूत अब्दुल रज्जाक के वर्णनो से इसका पूरा पूरा पता लगता है।

साहित्य—मध्ययुग के साहित्य की विभिन्न शाखाओ का विस्तृत वर्णन करना असम्भव है। यहाँ केवल प्रसिद्ध रचयिताओ और विद्वानो की कृतियो का संक्षेप में वर्णन करना ही सम्भव होगा। राज्याश्रय में फारसी साहित्य ने बडी उन्नति की। खिलजी और तुगलक सुल्तानो के समय में अमीर खुसरो बडा प्रसिद्ध राज्यकवि था। वह अपने युग का सबसे बडा कवि था। उसने अनेक ग्रन्थ लिखे, जिनका पठन-पाठन आज भी बडे आदर के साथ होता है। उसका समसामयिक कवि मीरहसन देहलवी भी उच्चकोटि का कवि था। वह शहीद शाहजादा मुहम्मद और सुल्तान मुहम्मद तुगलक के आश्रय में रहा। उसने एक दीवान की रचना की और अपने आश्रयदाता शेख निजामुद्दीन औलिया का स्मृतिग्रन्थ लिखा। दरबार के इतिहासकारो की कृतियाँ इतनी अधिक थी कि उन सबका वर्णन करना सम्भव नही। उनमें से जियाउद्दीन बर्नी की तारीख फीरोजशाही, शम्स सिराज अफीफ की तारीख फीरोजशाही, यहिया बिन अब्दुल्ला की तारीख मुबारकशाही तथा अफगान इतिहासकारो की रचनाएँ अधिक प्रसिद्ध हैं। मध्ययुग में जौनपुर विद्या का बडा भारी केन्द्र था। इब्राहीमशाह शर्की बडी उदारता से विद्वानो को आश्रय देता था। उसके राज्यकाल में कई साहित्यिक, दार्शनिक तथा आध्यात्मिक ग्रन्थ लिखे गये।

मुसलमान विद्वान् संस्कृत से भी नितान्त अनभिज्ञ न थ। अलबरूनी, जो दसवी शताब्दी में भारत में आया था, संस्कृत का प्रकाण्ड पडित था। उसने दर्शन तथा खगोल के कई ग्रन्थो का संस्कृत से अरबी में अनुवाद किया। उसकी
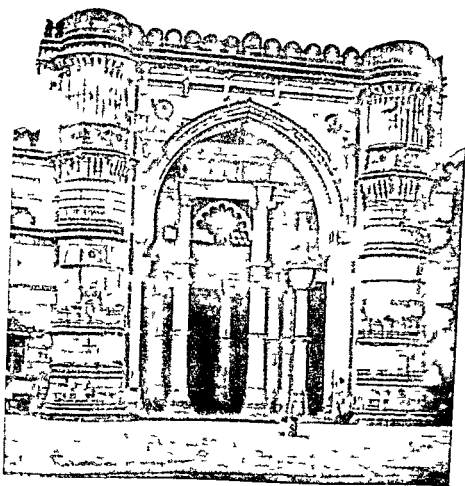
जाम मसजिद—अहमदाबाद

तारीख हिन्द हिन्दू सभ्यता की विविध सूचनाओ का एक अच्छा सा कोष ह। चौदहवी शताब्दी में जब फीरोज तुगल्क ने नगरकोट का दुग जीता तो उसने दशन, फलित ज्योतिष और शकुन सम्बधी एक ग्रथ को फारसी मे अनूदित होने की आज्ञा दी। इसका नाम उसने दलायल फीरोजशाही रक्खा। लोदियो के समय में साहित्यिक काय का अन्त नही हो गया। सिकन्दर के समय में एक चिकित्सा सम्बधी ग्रथ का सस्कृत से फारसी में अनुवाद हुआ।

साहित्यिक काय में हिन्दू भी मुसल्मानो से पीछे न थ। यद्यपि दरबार मे उनको आश्रय न मिलता था, तो भी वे उन स्थानो मे जो मुस्लिम प्रभाव से दूर थे, सस्कृत तथा हिन्दी दोनो मे उच्चकोटि का साहित्य सजन करते रहे। रामानुज ने ब्रह्मसूत्र का भाष्य लिखा, जिसमें उन्होने भक्ति के सिद्धान्त की पुष्टि की। बारहवी शताब्दी मे जयदेव ने गीतगोविन्द लिखा। यह गीति काव्य की बडी उत्कृष्ट रचना है और इसमे उन्होने राधा-कृष्ण के प्रम, उनके वियोग और फिर चिरमिलन और व्रज की गोपियो के साथ कृष्ण की लीलाओ का वणन किया है। जिन स्थानो मे मुसल्मानी प्रभाव न पहुँच सका, वहा नाटच साहित्य की भी उन्नति हुई। ललित विग्रहराज नाटक, हरिकेलि नाटक, पावती परिणय, विदग्ध माधव तथा ललित माधव इस समय के उल्लेखनीय ग्रथ ह। इस समय कतिपय सर्वोत्तम भाष्य ग्रथ लिखे गये। खगाल के विषय पर भी ग्रथ लिखे गये परन्तु हिन्दू लेखको ने इतिहास की उपेक्षा की। यदि किसी ग्रथ को ऐतिहासिक निबन्ध कहा जा सकता ह, तो वह कल्हण की 'राजतरगिणी' है, जिसकी रचना बारहवी शताब्दी के मध्य में हुई थी।

इस युग के भाषा साहित्य का कुछ वणन करना भी समाचीन होगा। चन्द बरदाई, आल्हखड के रचयिता जगनिक, हिन्दी काव्य के शुक खुसरो और बाबा गोरखनाथ, जो चौदहवी शताब्दी में हुए, हिन्दी के प्रारम्भिक कवि हैं। इसके पश्चात् भक्ति की प्रतिष्ठा हो जाने के कारण हिन्दी साहित्य को बडा प्रोत्साहन मिला। कबीर, नानक और मीराबाई ने अपने भक्ति के गीत हिन्दी में ही गाये और उनकी रचना से हिन्दी साहित्य की बडी अभिवृद्धि हुई। राधा-कृष्ण सम्प्रदाय के प्रचारको ने व्रजभाषा में रचनायें कीं और हिन्दी-साहित्य के विकास में बडी सहायता पहुँचाई। बगाल, गुजरात, महाराष्ट्र

इच्छा करने लगे। जो तुर्क सर्वप्रथम भारत में आये, वे अपने साथ अपनी स्त्रियों को नहीं लाये थे। उन्होंने यहीं विवाह कर लिया था। फलत उनकी सन्तान के स्वभाव और भावनाओ मे तुर्कीपन कम और भारतीयता अधिक आ गई। भारतीय स्त्रियों ने तुर्की घरानो पर अधिकार कर लिया और भावी मुसलमानो के चरित्र और आचरण को बहुत कुछ प्रभावित किया और उनमे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर दिये। हैवेल ने कहा है कि—"भारतीय माता की परम्परागत कोमलता और वत्सलता ने भ्रमणशील तुर्क और मंगोल के हृदय को बहुत कुछ कोमल कर दिया।" सौहार्द की इस प्रक्रिया में कुछ अन्य बातो ने भी सहायता की। कहीं-कहीं हिन्दुओ का राज्याश्रय और सहानुभूति भी प्राप्त हुई जिससे उनके हृदय में सद्भावनाओं की जाग्रति हुई और हिन्दू मुसलमानो में पारस्परिक सामाजिक सम्बन्ध बढ गये। मुसलमान भी समझ गये कि हिन्दुओ को पूरे रूप से कुचलना असम्भव है और हिन्दुओ को भी मंद तथा कटु अनुभव द्वारा यह प्रतीत होने लगा कि ऐसे शत्रुओं के साथ निरन्तर युद्ध करने में कोई लाभ नहीं, जो देश में स्थायी रूप से बसने के लिए आ गये हैं। जिन हिन्दुओ को राजनीतिक दबाव अथवा आर्थिक संकट के कारण अपना धर्म छोडना पडा था, उनकी प्राचीन प्रथाएँ तथा आदतें वैसी ही बनी रहीं। मुसलमानो से उनका सम्पर्क होने के कारण दोनों धर्मों का पारस्परिक आदान-प्रदान चलने लगा और दोनों पक्षों की कटुता तथा कट्टरता कम होने लगी। इससे सहानुभूति उत्पन्न हो गई और फलत इससे उन शक्तियों को बड़ी सहायता मिली जो इन दो धर्मों को एक दूसरे के निकट ला रही थीं। हिन्दुओं में निम्न श्रेणी के लोगों का इस्लाम में उन्नति तथा सामाजिक समानता तथा न्याय की एक नवीन आशा दिखाई पडने लगी। उनके हृदय में इसके प्रति कोई विराग अथवा घृणा की भावना नहीं थी। इसके साथ उत्तरी भारत में पाकपटन के फकीर शकरगंज तथा दिल्ली के निजामुद्दीन औलिया और दक्षिणी भारत में गेसूदराज ऐसे फकीरों का प्रभाव पड रहा था। उनके शिष्य हिन्दू और मुसलमान दोनों ही थे। उनके उपदेश जाति-पाँति तथा ऊँच-नीच के बिना किसी भेद भाव के सबके हृदय पर प्रभाव डालते थे। उनके सामने सभी

और सुदूर दक्षिण में भी देशी भाषाओं की बडी उन्नति हुई। बगाल में कृत्तिवास ने सस्कृत रामायण का अनुवाद बगभाषा में किया, जो वास्तव में गगा की घाटी के लोगो के लिए बाइबिल बन गया'। राज्य के आश्रय में भागवत, और महाभारत के भी अनुवाद हुए। महाराष्ट्र सत नामदेव ने अधिकाश रचना मराठी में ही की। उनके कुछ गीत सिक्खो के धर्मग्रथ गुरु ग्रथसाहब में अब तक सुरक्षित ह। दक्षिण में तामिल और कनाडी भाषाओ के प्रारम्भिक ग्रथ जैनियों ने लिखे। परन्तु तेरहवी और चौदहवी शताब्दियो मे शव सम्प्रदाय ने साहित्यिक विकास मे बडी सहायता पहुँचाई। इसी युग में सायन तथा माधव विद्यारण्य ने ऐसे ग्रथ लिखे, जिनसे उनका नाम सस्कृत के विद्वानो में प्रमुख समझा जाने लगा। सायन ने वेदो पर भाष्य लिखा, जिसकी इतनी अधिक ख्याति हुई। विद्यारण्य ने दशन पर कई ग्रथ लिखकर अपने भाई के दृष्टान्त का अनुसरण किया। विजयनगर के राजाओ ने तेलगू साहित्य को बडा प्रोत्साहन दिया। कृष्णदेव राय की विद्या तथा विद्वानो में विशेष रुचि थी। उसने स्वय कई विद्वत्तापूण ग्रन्थ लिखे।

धार्मिक सुधार—मुसलमानो के आने और देश में बस जाने के कारण भारतवासियो के धार्मिक और सामाजिक दष्टिकोण में बडा भारी परिवतन हो गया। जिस प्रकार यूनानी, हूण, सिथियन और शक हिन्दू समाज में घुल-मिल गये, उस प्रकार मुसलमान न मिल सके। इसका कारण यह था कि मुसलमानो का निश्चित और स्पष्ट अपना निजी धम था, जिसके प्रति उनका इतना अधिक उत्साह और आकषण था, जो हिदुओ ने कभी न देखा था। मुसलमान अपने धम को विजित देश के बहुदेववादी हिदू धम से श्रेष्ठ समझते थ। इस विश्वास के कारण पगम्बर साहब और कुरान शरीफ में उनकी श्रद्धा और दृढ हो गई। हिदुओ की मूर्तिपूजा और उनके धार्मिक सस्कारो तथा कमकाण्ड की जटिलता देखकर उनको अपने धम के महत्त्व का और पता लगा, जिसका मूलतत्त्व सादगी और एक ही ईश्वर की प्रधानता में विश्वास था। परन्तु ये अन्तर होने पर भी हिदुओ और मुसलमानो का सम्पक में आना अनिवार्य था। समय पाकर प्राचीन कटुता दूर हुई, दोनो पक्ष के सुसस्कृत व्यक्ति कुछ न कुछ पारस्परिक सामजस्य और समन्वय की

इच्छा करने लगे। जो तुर्क सर्वप्रथम भारत में आये, वे अपने साथ अपनी स्त्रियों को नहीं लाये थे। उन्होंने यहीं विवाह कर लिया था। फलतः उनकी सन्तान के स्वभाव और भावनाओं में तुर्कीपन कम और भारतीयता अधिक आ गई। भारतीय स्त्रियों ने तुर्की घरानों पर अधिकार कर लिया और भावी मुसलमानों के चरित्र और आचरण को बहुत कुछ प्रभावित किया और उनमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर दिये। हैवल ने कहा है कि—"भारतीय माता की परम्परागत कोमलता और वत्सलता ने भ्रमणशील तुर्क और मंगोल के हृदय को बहुत कुछ कोमल कर दिया।" सौहार्द की इस प्रक्रिया में कुछ अन्य बातों ने भी सहायता की। कहीं-कहीं हिन्दुओं को राज्याश्रय और सहानुभूति भी प्राप्त हुई जिससे उनके हृदय में सद्भावनाओं की जाग्रति हुई और हिन्दू मुसलमानों के पारस्परिक सामाजिक सम्बन्ध बढ़ गये। मुसलमान भी समझ गये कि हिन्दुओं को पूरे रूप से कुचलना असम्भव है और हिन्दुओं को भी मंद तथा कटु अनुभव द्वारा यह प्रतीत होने लगा कि ऐसे शत्रुओं के साथ निरन्तर युद्ध करने में कोई लाभ नहीं, जो देश में स्थायी रूप से बसने के लिए आ गये हैं। जिन हिन्दुओं को राजनीतिक दबाव अथवा आर्थिक संकट के कारण अपना धर्म छोड़ना पड़ा था, उनकी प्राचीन प्रथाएँ तथा आदतें वैसी ही बनी रहीं। मुसलमानों से उनका सम्पर्क होने के कारण दोनों धर्मों का पारस्परिक आदान-प्रदान चलने लगा और दोनों पक्षों की कटुता तथा कट्टरता कम होने लगी। इससे सहानुभूति उत्पन्न हो गई और फलतः इससे उन शक्तियों को बड़ी सहायता मिली जो इन दो धर्मों को एक दूसरे के निकट ला रही थीं। हिन्दुओं में निम्न श्रेणी के लोगों का इस्लाम में उन्नति तथा सामाजिक समानता तथा न्याय की एक नवीन आशा दिखाई पड़ने लगी। उनके हृदय में इसके प्रति कोई विराग अथवा घृणा की भावना नहीं थी। इसके साथ उत्तरी भारत में पाकपटन के फकीर शकरगंज तथा दिल्ली के निजामुद्दीन औलिया और दक्षिणी भारत में गेसूदराज ऐसे फकीरों का प्रभाव पड़ रहा था। उनके शिष्य हिन्दू और मुसलमान दोनों ही थे। उनके उपदेश जाति-पाँति तथा ऊँच-नीच के बिना किसी भेद-भाव के सबके हृदय पर प्रभाव डालते थे। उनके सामने सभी

भेद-भाव मिट जाते थे और उनके सभी शिष्य पारस्परिक सहानुभूति के एक नवीन बधन से बँध जाते थे।

एकेश्वरवाद को प्रधानता देकर मुसलमानो ने हिन्दुओ में एक नवीन भावना उत्पन्न कर दी। यद्यपि ईश्वर की एकता की भावना हिन्दुओ के लिए नवीन न थी परन्तु इस्लाम में इस तत्त्व की प्रधानता होने के कारण नामदेव, रामानन्द, कबीर, नानक आदि सन्त उपदेशक इससे बडे प्रभावित हुए। इन सन्तो में हिन्दू और मुसलमान धर्मों का बहुत सुन्दर समन्वय दिखाई देता है। मुसलमान धर्म की सादगी और केवल एक ही ईश्वर के प्रति उनकी निष्ठा से प्रभावित होकर उन्होने मूर्तिपूजा तथा जाति पात का छोड दिया। उन्होने उपदेश दिया कि कर्मकाण्ड तथा निरर्थक पूजाविधियो म सच्चा धर्म नही है। उन्होने बतलाया कि भक्ति ही धर्म का मूल तत्त्व है। रामानुज के पश्चात् जो सन्त हुए उनके प्रभाव से भक्ति का प्रचार बहुत कुछ बढ गया। चौदहवी तथा पन्द्रहवी शताब्दी में धर्म की बागडोर उन्ही के हाथो में रही।

भक्ति के सर्वप्रथम उपदेशक रामानुज थे, जो बारहवी शताब्दी में हुए और उन्होने दक्षिणी भारत में विष्णु-पूजा का उपदेश दिया। उनका भक्ति मार्ग शकर के अद्वैतवाद की प्रतिक्रिया-रूप में था। उन्होने कहा कि यद्यपि सब की उत्पत्ति का कारण ब्रह्म इसी प्रकार है, जिस प्रकार आग से चिनगारियाँ उत्पन्न होती ह, तो भी आत्मा और परमात्मा एक नही है। वह परमात्मा निराकार और निर्लेप नही ह। वह दया और सौन्दर्य का आगार है। इस प्रकार उन्होने सद्गुणो की खानि सगुण ईश्वर की भक्ति का उपदेश दिया। दक्षिणी भारत के अनेक मनुष्यो पर उनके उपदेशो का प्रभाव पडा।

रामानन्द दूसरे भक्ति-उपदेशक हुए। वे रामानुज की शिष्य-परम्परा में पाचवें स्थान पर आते थ। वे चौदहवी शताब्दी में उत्तरी भारत में हुए। रामानन्द के उपदेशको की सबसे बडी विशेषता यह है कि उन्होने ब्राह्मण धर्म के जाति-पाँति के नियमो को एकदम तोड दिया। वे देश में एक स्थान से दूसरे स्थान को भ्रमण करने लगे। तीर्थ स्थानो में जाकर उन्होने सीता-राम की पूजा का प्रचार किया। उन्होनें सभी जातियो के लोगो को अपना शिष्य

बनाया। उनके बारह शिष्य बतलाये जाते है, जिनमें एक नाई, एक चमार और एक कोरी था। रामानन्द ही पहले उपदेशक थे जिन्होंने उत्तरी भारत की प्रधान भाषा हिन्दी में उपदेश दिया। अतः हिन्दू-समाज के निम्न वर्ग में वे बड़े लोकप्रिय हो गये। उनके अनुयायी सीता और रामचन्द्र के रूप में विष्णु की पूजा करते है। उनका प्रधान केन्द्र उत्तर-प्रदेश में प्राचीन कोशल राज्य की राजधानी अयोध्या है। रामानन्द के शिष्यों में कबीर सबसे प्रसिद्ध हुए है।

वैष्णव धर्म की दूसरी शाखा 'कृष्ण-भक्ति' शाखा थी। इसके सर्वप्रधान उपदेशक वल्लभाचार्य थे। वे तैलंग ब्राह्मण थे और सन् १४७९ ई० में दक्षिण में तेलगू देश में उनका जन्म हुआ था। बाल्यावस्था से उनकी मेधा दिखाई पड़ने लगी और अल्प काल में ही उन्होंने अपार ज्ञान संचय कर लिया। वे मथुरा, वृन्दावन तथा अनेक तीर्थ स्थानों में पहुँचे। अन्त में वे काशी में रहने लगे और वहीं उन्होंने अपने दर्शन-ग्रन्थ लिखे। वल्लभ स्वामी की शिक्षा थी कि ब्रह्म और जीवात्मा में कोई अन्तर नहीं है और जीव भी भक्ति द्वारा बंधन-मुक्त हो सकता है। उन्होंने एक ग्रन्थ में लिखा है कि समस्त सांसारिक कामनाओं के केन्द्र घर को प्रत्येक प्रकार से त्याग देना चाहिए और यदि यह असम्भव हो, तो इसे भगवत् अर्पण कर देना चाहिए, क्योंकि केवल ईश्वर ही मनुष्य को पाप से बचा सकता है। इससे कृष्ण की भक्ति का प्रचार बढ़ने लगा। भक्तों को अपना सर्वस्व कृष्णार्पण करना पड़ता था। इस सर्वस्वार्पण का आशय यही था कि भक्त के पास जो कुछ है उसे वह भगवान् का ही समझे, परन्तु श्री वल्लभाचार्य के पश्चात उनके अनुयायियों ने उनके उपदेशों के मूल तत्त्व को स्मरण नहीं रखा। वे उनके बाह्य अर्थ से ही संतुष्ट रहे। इस प्रकार इस सम्प्रदाय में अनेक दोष उत्पन्न हो गये। इसके उपदेशक अपने उदाहरण से और अपनी शिक्षाओं से यही सिखलाते थे कि ईश्वर को प्राप्त करने के लिए त्याग और विरक्ति की आवश्यकता नहीं है, परन्तु समस्त मानवी भोग विलासों को उसी के अर्पण कर देना चाहिए। भक्ति का यह अर्थ उनके धनी अनुयायियों को अच्छा लगा। वे अधिकांश व्यापारी थे और इस सम्प्रदाय के जन्मदाता के उपदेश का अर्थ सविवेक समझने की उनमें क्षमता नहीं थी। इस सम्प्रदाय की त्रुटियों को दूर करने के लिए कुछ

उत्साही भक्त यह प्रयत्न कर रहे है कि वह अपनी प्राचीन पवित्रता तथा चेतनता को फिर प्राप्त कर ले।

सुविख्यात वैष्णव भक्त और उपदेशक नवद्वीप के चैतन्य महाप्रभु वल्लभ स्वामी के समसामयिक थे। उनका जन्म १४८५ ई० म बगाल म हुआ था। २५ वष के नूतन वय मे ही उन्होने ससार छोड दिया और सन्यासी हो गए। वे देश मे विचरण कर कृष्ण-भक्ति और प्रेम की शिक्षा देने लगे। जहा जहा वे पहुँचे, वहा वहा उनकी उपस्थिति का ही जादू का-सा प्रभाव पडा। उनके श्रीमुख से प्रेम और शान्ति का उपदेश सुनते ही लोग बडी श्रद्धा और भक्ति म उनके चरणो पर नत हो जाते थे। वे इतने प्रेमी थे कि वृन्दाविपिन में वशी बजाने वाले कृष्ण का ध्यान आते ही आनन्द मग्न और गदगद हो जाते थे। वे दीनता तथा शील का महत्त्व बतलाते थे और कहा करते थे कि वैष्णव मे अहकार का लेश मात्र भी नही होना चाहिए। "कृष्ण का निवास प्रत्येक आत्मा मे है अत वह अपने लिए कुछ नही चाहता, परन्तु दूसरो का सम्मान करता है।' इन शब्दो को कहते कहते उनका हृदय भक्ति से गदगद हो जाता था और वे यह गा उठते थे —

'म न तो अनुयायी चाहता हूँ, न धन और न विद्या और न कवित्व शक्ति। (हे कृष्ण) मुझे अपनी भक्ति का केवल एक अश दो। अहकार से कोई लाभ नही। जिसने सम्पूण अहकार पर विजय प्राप्त कर ली है, वह तुम्हारा अहकार किस प्रकार सहन कर सकेगा?'

मनुष्य के दुख को देखकर उनका हृदय, जो दीन और दरिद्र के लिए दया से पूर्ण था, द्रवित हो उठता था। उन्होने जाति पाति के बन्धन को तोड दिया और मनुष्य मात्र के भ्रातृत्व की घोषणा की। उन्होने बतलाया कि सर्वोच्च धर्म और आनन्द को प्राप्त करने का एक मात्र साधन हरि-पूजा ही है। कृष्ण के नाम के आगे जाति और देश के सब भेद भाव नष्ट हो जाते है। उन्होने अपने शिष्यो को उपदेश दिया कि वे चाण्डाल से लेकर सब मनुष्यो को भक्ति और प्रेम की शिक्षा दें। वे बडी स्वच्छन्दता से अपने शिष्य हरिदास को प्यार करते थे जिसे उनके सहजातियो ने बहिष्कृत कर दिया था। हरिदास ने एक बार प्रार्थना की, 'स्वामी मुझे स्पर्श न कीजिए म अपवित्र तथा जातिच्युत हूँ। स्पर्श

वे नेत्रों में ज्योति उठने लगी। उनका हृदय प्रेम से प्लावित हो गया और वे आनन्द विह्वल होकर उसका आलिंगन करने के लिए दौड़ पड़े और बोले "तुमने अपना सर्वस्व मुझे अर्पित कर दिया है। तुम्हारा शरीर प्रत्यक्ष रूप में मेरा ही है। इसके भीतर सर्वत्यागी और सर्वस्व प्रेम करनेवाला आत्मा का निवास है। यह मन्दिर की भांति पवित्र है। तुम क्या अपने को अपवित्र समझते हो?' इसी कारण उच्च-नीच ब्राह्मण शूद्र आदि सभी उनके उपदेशों को सुनते थे और उनका अनुसरण करते थे। वह प्रेम की प्रतिमूर्ति थे और उनकी शिक्षा यही थी कि प्रेम की वेदी पर सर्वस्व निछावर करने के लिए हमको प्रस्तुत रहना चाहिए। सच्चे भक्त का कर्त्तव्य है कि वह रात दिन भगवान् तथा संसार की सेवा के लिए प्रस्तुत रहकर अपने कृष्ण प्रेम का परिचय दे। वैष्णव धर्म का एक जागरूक शक्ति होने की आवश्यकता है। वह जीवन-यापन की गति विधि है। वह साधु-संन्यासियों द्वारा ही आचरित होने योग्य कोई धार्मिक सम्प्रदाय नहीं है। धर्म शिक्षकों के प्रति उनका कहना यह था —

"बहुत से शिष्य न बनाओ दूसरों के देवी देवता तथा धर्म ग्रन्थों की निन्दा न करो, बहुत से ग्रन्थ न पढ़ो, शिक्षक बनने तथा सदैव ही धार्मिक सिद्धान्तों का विवेचन करने और उन पर विचार प्रकट करने की चेष्टा न करो। हानि लाभ बराबर समझो। जहां वैष्णव की निन्दा हो वहां न ठहरो। ग्रामीण कथा-कहानियां को न सुनो। अपनी वाणी अथवा अपने विचारों से किसी जीव को कष्ट न पहुँचाओ। हरिनाम कीर्त्तन सुनो। उसकी दया का स्मरण करो। उसको सिर नवाओ और उसकी पूजा करो। उसकी आज्ञा का पालन सेवक की भांति करो। विश्वास रखो कि वह तुम्हारा हितैषी है। उसे आत्म-समर्पण कर दो।

बंगाल में चैतन्य महाप्रभु का नाम घर घर में व्याप्त है। लाखों मनुष्य कृष्ण के अवतार के रूप में उनकी पूजा करते हैं और बड़ी श्रद्धा तथा भक्ति से उनका नाम लेते हैं।

नामदेव, कबीर और नानक के उपदेशों में इस्लाम का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। वे सभी जाति पाँति बहुदेववाद और मूर्ति पूजा की निन्दा करते थे और सच्चे धर्म, निष्कपटता सदाचार तथा जीवन की पवित्रता को ही सच्चा धर्म बतलाते थे। उनके मूल सिद्धान्त जिन पर वे अधिक जोर देते थे ये थे

हिंदू तथा मुसलमान सबका ईश्वर एक है वही ब्राह्मणो और चाण्डालो का भी जन्मदाता है और उसके सामने सभी बराबर है। यदि कोई व्यक्ति सन्मार्ग ग्रहण करना चाहता है तो उसे जाति-पाति के भेद-भाव तथा अंध विश्वासो को तिलाञ्जलि दे देनी पड़ेगी। इन सन्तो में सबसे पहले नामदेव हुए। वे महाराष्ट्री संत थे। उनका जन्म निम्न परिवार में हुआ था। उन्होने ईश्वर की एकता का उपदेश दिया। मूर्ति-पूजा तथा बाह्य कर्मकाण्ड का खण्डन किया। वे ईश्वर पर अपनी निर्भरता का अनुभव करते हैं और अपनी असहायता का वर्णन इन शब्दो में करते है

हे प्रभु ! मैं अन्धा हूँ, तेरा नाम ही मुझ अन्धे की लकड़ी है, मैं दीन और दुखी हूँ, तेरा नाम ही मेरा सहारा है, उदार और दयालु अल्लाह तू एक है, तेरी उदारता का स्रोत अक्षुण्ण है, तू ही दाता है, तेरे धन का पारावार नही, तू ही देता है और तू ही लेता है, तेरे अतिरिक्त और दूसरा कोई नही, तू ही ज्ञानवान् है, तू ही दूरदर्शी है, मैं तेरा क्या स्वरूप समझ सकता हूँ, हे नामा के स्वामी ईश्वर ! तू ही क्षमा करनेवाला है।

रामानन्द के शिष्यो में कबीर प्रधान थे। उनके जन्म के विषय में अब भी ठीक ठीक पता नही चलता। इस विषय में जो दंतकथा चली आ रही है वह यह है कि कबीर एक ब्राह्मण विधवा के पुत्र थे। समाज निन्दा से बचने के लिए उसने उन्हें एक तालाब के किनारे छोड़ दिया। नीरू नाम के एक जुलाहे ने बच्चे को उठा लिया। उसकी स्त्री ने बड़े स्नेह और सावधानी से बच्चे का पालन-पोषण किया। बड़े होने पर कबीर अपना पैतृक व्यवसाय करने लगे। इसके साथ साथ वे नीति, सदाचार तथा अध्यात्म पर भी विचार करने का समय निकाल लेते थे।

कबीर के विचारो की समस्त पृष्ठ भूमि हिन्दू धर्म की ही है। उन्होने राम का वर्णन किया है। वे जन्मान्तर के कष्ट से बचना चाहते थे और भक्ति द्वारा ही सच्चे मार्ग को प्राप्त करना चाहते थे। वे ईश्वर के सम्बन्ध में विवाद अथवा शास्त्रार्थ करना बिल्कुल नही चाहते थे। वे छल-कपट तथा ढोग की निन्दा करते थे जिसे लोग भूल से धार्मिकता समझ जाते है। उनकी दृष्टि में हिन्दू और मुसलमानो में कोई भेद-भाव नही। वे एक ही मिट्टी से बने घड़े है। वे विभिन्न

मार्गो से एक ही गन्तव्य स्थान पर पहुँचना चाहते ह। सत्य और धम के उच्चादर्शा के प्रति केवल मौखिक श्रद्धा से कोई लाभ नही। यदि हृदय अपवित्र है तो पत्थर पूजने अथवा गगा म स्नान करने मे क्या लाभ ह? यदि कोई व्यक्ति कपटपूण तथा अशुद्ध हृदय लेकर काबा जाता ह, तो मक्के की यात्रा करने से उसको क्या लाभ? मनुष्य की रक्षा उसके विश्वास से होती है, कामो से नही।

ईश्वर के मन की बात कोई नही जान सकता, अत उस पर विश्वास रखो और जो उसे अच्छा लग करन दो। वे मूर्ति पूजा की निन्दा करते ह और कहते है कि

'पाहन पूज हरि मिल, ता म पूज पहाड

'दुनिया ऐसी बावरी पत्थर पूजन जाय,

घर की चाकी कोई न पूजे जिहिका पीसा खाय।'

आध्यात्मिक विवाद करने के लिए व ब्राह्मण और मौलवियो को फटकारते थे। उन्होन जाति पाति का व्यथ बतलाया और बड सशक्त शब्दो में घोषित किया

"जाति-पाति का भेद भाव व्यथ है। जितने भी रग ह वे सब एक ही प्रकाश खण्ड के टुकडे ह। मनुष्य प्रकृति की सब विभिन्नताएँ एक ही मानवता के खण्ड ह। ब्रह्म का सामीप्य लाभ करना ब्राह्मणो का ही एकाधिकार नही, जिनका हृदय निष्कपट है उन सबको साक्षात्कार हो सकता ह।'

वतमान जाति पाति विरोधी कोई भी व्यक्ति इतन उत्साह और कटटरता से उसका खण्डन नही कर सकता, जितना कि महात्मा कबीरदास ने किया ह। उनकी दृष्टि मे ईश्वर को प्राप्त करने म जाति कोई बाधा नही पहुँचा सकती। पूजा के बाह्य कमकाण्डो का उनके लिए कोई महत्त्व न था, क्योकि उन्होने स्पष्ट कहा है

"प्रत्येक मनुष्य को अपने अपन विश्वास क अनुसार पूजा करन दो। किसी भी परम्परा के अन्ध भक्त न बनो और केवल तक के लिए ही तक न करो। यदि कोई माग हमको सत्य-स्वरूप भगवान् तक पहुँचा सकता है तो हमे निर्भीक होकर उस पर चलना चाहिए चाहे उस माग पर अब तक और कोई व्यक्ति न चला हो।"

दूसरे बड़े संत नानक थे जिन्होंने सिक्ख धर्म को जन्म दिया। उनका जन्म तलवन्दी नामक स्थान पर १४६९ ई० में हुआ था। तलवन्दी गुजरांवाला जिले का एक गांव है। नानक की रुचि बचपन से ही धर्म की ओर थी। पढ़ने-लिखने में उनका मन नहीं लगता था। कबीर की भाँति उन्होंने भी कहा कि ईश्वर एक है उन्होंने मूर्ति-पूजा की निन्दा की और कहा कि ईश्वर के सामने जाति पाँति का कोई मूल्य नहीं वह सबके ऊपर है। उन्होंने लोगों को छल, स्वार्थ, माया रखना तथा असत्य परित्याग करने के लिए कहा और उन्हें बतलाया कि ईश्वर के दरबार में सबका हिसाब है और कर्मों के फल से कोई नहीं बच सकता। उन्होंने प्रेम और जीवन की शुद्धता का महत्त्व बतलाया और कहा कि मोक्ष के लिए आध्यात्मिक वाद विवाद से आचरण की शुद्धता कहीं अधिक लाभदायक है। उनकी शिक्षा का सार इन शब्दों में संगृहीत है

'धर्म का तत्त्व केवल शब्दों में नहीं है,
जो सब मनुष्यों को समान समझता है, वह धार्मिक है।
मकबरों, श्मशानों में जाना अथवा समाधि लगाना धर्म नहीं है।
विदेशों में घूमना अथवा तीर्थों में स्नान करना धर्म नहीं है।
संसार की अपवित्रता में पवित्रता का अनुसरण करो।
इस प्रकार तुम धर्म के मार्ग पर पहुँचोगे।"

नानक ही अन्तिम संत नहीं थे। यह विचार-धारा अबाध गति से प्रवाहित होती रही। उनके पश्चात् अनेकों संत और सुधारक हुए। उनका वर्णन आगे किया जायगा। यहाँ यह बात फिर स्मरण दिलाने की आवश्यकता है कि मध्य युग के सामाजिक तथा धार्मिक दोनों आन्दोलनों में समन्वय की भावना का प्राधान्य था। हिन्दू और मुसलमानों के बीच जो एक विशाल गड्ढा हो गया था, उसकी पूर्ति की बड़ी चेष्टा हुई। यद्यपि दिल्ली के सुल्तान संकुचित हृदय के निरकुश शासक थे, तो भी कुछ लोग ऐसे भी थे, जो दोनों जातियों में सद्भावनाएँ तथा सहयोग उत्पन्न कराने का प्रयत्न करते थे और सतर्क होकर विचार करते थे तथा विवेक से काम लेते थे। इस मेल में धार्मिक उपदेशकों का बहुत बड़ा हाथ था। मुसलमान पीर-पगम्बरों तथा फकीरों को हिन्दू पूजने लगे और मुसलमान भी हिन्दू देवी-देवताओं का सम्मान करने लगे। इस पारस्परिक सद्

भावना का एक दृष्टान्त हम कबीर के सम्प्रदाय में देखते हैं जिसकी नींव जौनपुर के स्वतन्त्र शाह ने डाली थी और जिसमें हम दोनों धर्मों का सम्मेलण पाते हैं। परन्तु उस समय इसी प्रकार के राजनीतिक सुधार नहीं हो सकते थे। इस कार्य के लिए एक प्रतिभा सम्पन्न तथा शक्तिशाली व्यक्ति की आवश्यकता थी। इसके इस महान उद्देश्य के स्वप्न का सत्य रूप में प्रतिष्ठित होने के लिए भारत को अकबर के समय तक ठहरना पड़ा। उसी के शासनकाल में हिन्दू और मुसलमान लोगों ने कन्धे से कन्धा भिड़ाकर मुस्लिम साम्राज्य की रक्षा की और उसे समुन्नत किया। इस समय धार्मिक कट्टरता इतनी दूर हो गई जितनी इसके पूर्व भारत विजय से लेकर कभी नहीं हुई थी। सम्राट् के मुख से कबीर और नानक की वाणी ही निकलने लगी और उसने कट्टर धर्माधिकारियों के दल में हलचल उत्पन्न कर दी।

कारपेंटर—थीज्म इन मिडियवल इण्डिया।
भण्डारकर—वैष्णविज्म।
फारकुहर—आउटलाइन आफ रिलीजस लिटरेचर इन इण्डिया।
सरकार—लाइफ एण्ड टीचिंग्स आफ चैतन्य।
मैकॉलिफ—सिक्ख रिलीजन ६ भाग।
हैवेल—मिडियवल आरकीटैक्चर।
फरगुसन—हिस्ट्री आफ ईस्टरन आरकीटक्चर।
हग—कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया।
अशरफ—लाइफ एण्ड कंडीशन्स आफ दी पीपिल आफ हिंदोस्तान।
ईश्वरीप्रसाद—हिस्ट्री आफ मिडियवल इण्डिया।
मेजर—इण्डिया इन दी फिफ्टीन्थ सेंचुरी।
रानाडे—इण्डियन मिस्टिसिज्म।

अध्याय १२

सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ का भारत

सोलहवी शताब्दी के आरम्भ म भारतवष अनेक राज्यो म विभाजित था। दिल्ली का अफगान साम्राज्य विस्तार म बहुत घट गया था। अफगान बादशाह इब्राहीम लोदी का अधिकार दिल्ली आगरा, बियाना और चन्देरी तक सीमित था। पजाब पर दौलत खा उसने पुत्र गाजी खाँ आर दिलावर खाँ का अधिकार था जो इब्राहीम लोदी के उच्छ खल व्यवहार के कारण सशक रहत थे आर उससे स्वतत्र हो जाने का अवसर ढूँढ रहे थे। अन्य अफगान सरदारो की भाँति इन्हें भी इब्राहीम की आधीनता की अपेक्षा बगावत म ही अधिक भलाइ जान पडता थी, क्योकि बादशाह के अनिश्चित स्वभाव तथा मनमाने व्यवहार के कारण सरदारो को सदा अपने जान माल से हाथ धोने की आशका बनी रहती थी। पश्चिम में सिन्ध और मुल्तान तथा पूव म जौनपुर बगाल और उडीसा स्वतत्र राज्य हो गए थे। मध्य म मुसलमान नामको द्वारा शासित माल्वा आर खानदेश के राज्य थे। उत्तर और मध्य के राज्यो के बीच राजपूत रियासत थी। दिल्ली की शक्ति के ह्रास तथा उत्तर के मुसलमान राज्यो के लगातार झगडो के कारण इनकी शक्ति बढ गई थी।

अफगान राज्य के दक्षिण पूव म जौनपुर का राज्य था, जो वरावधराव वतमान उत्तर प्रदेश में पूर्वी जिलो के स्थान म था। यह एक शक्तिशाली राज्य था। इसके बादशाह दिल्ली के अफगान साम्राज्य के विरुद्ध दृढतापूवक लडते रहे। अन्त मे १४९१ ई० म सिकन्दर लोदी ने समूचे बिहार को विजय कर लिया और जौनपुर के अतिम शासक हुसनशाह को भगा दिया और उसे बगाल के शासक के यहा शरण लेने के लिए बाध्य कर दिया। इब्राहीम लोदी बडा घमण्डी व्यक्ति था जिसके कारण जौनपुर के मामलो म उसके हस्तक्षेप करते ही वहाँ के शक्तिशाली अफगान सरदार नसीर खा लोहानी, मारूफ फरमली आदि के नेतृत्व म बागी हो गए।

अदीना मसजिद—बंगाल
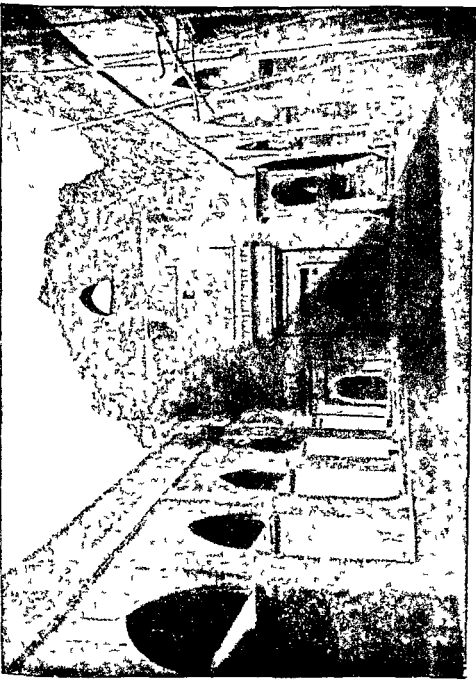
बिहार का दरिया खा लोहानी विद्रोहियों के मध का नेता बना। उसने विद्रोह-दमन के लिए भेजी हुई दिल्ली की सेनाओं को कई बार पराजित किया। उसकी मृत्यु के पश्चात विद्रोहियों ने उसके पुत्र को अपना नेता चुना और पहले की तरह दिल्ली के शासक के विरुद्ध लड़ते रहे। बंगाल दिल्ली के साम्राज्य से फीरोजशाह तुगलक के शासन काल में अलग हो गया था। इलियास शाह के पुत्र सिकन्दर ने करीब करीब समूचे बंगाल पर अपना अधिकार जमा लिया था। सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में हुसनी वंश ने अपनी शक्ति भली भाँति स्थापित कर ली थी। इसका पहला शासक अलाउद्दीन हुसनशाह (१४९३-१५१९) एक योग्य पुरुष था जिसने अपनी विजयों से अपने राज्य का बहुत विस्तार बढ़ाया। उसके पुत्र नुसरतशाह ने अपने शासन काल में कई अच्छी इमारतें बनवाईं। बाबर ने अपने रोजनामचे में उसे हिन्दुस्तान में एक योग्य शासक माना है। मध्यभारत में तीन प्रसिद्ध मुसलमानी राज्य थे जिनका वर्णन नीचे दिया जाता है।

गुजरात—गुजरात के स्वतन्त्र राज्य के राजवंश का संस्थापक जफर खाँ था, जो १३९१ ई० में गुजरात का हाकिम नियुक्त हुआ था। इस वंश में मुहम्मद अहमदशाह और महमूद बीगड़ के समान अनेक योग्य तथा महत्त्वाकांक्षी शासक हुए, जिन्होंने इसकी शक्ति तथा प्रभाव को बहुत बढ़ाया। सुल्तान महमूद बीगड़ की मृत्यु होने पर १५११ ई० में मुजफ्फरशाह द्वितीय गद्दी पर बैठा। उसे मालवा के स्वतंत्र राजवंश के अन्तिम शासक, सुल्तान महमूद खिलजी द्वितीय (१५१०-३१ ई०) तथा मेवाड़ के राजपूत शासक राणा सांगा इन दो शक्तिशाली शत्रुओं का सामना करना पड़ा। मालवा के शासक महमूद की सब शक्ति उसके शक्तिशाली मन्त्री राजपूत सरदार मेदिनीराय ने अपने हाथ में कर ली थी। १५१८ ई० में महमूद के प्रार्थना करने पर गुजरात का शासक एक बड़ी सेना लेकर मालवा की ओर गया और उसने माडू के किले को ले लिया। राजपूतों ने बड़ी वीरता से सामना किया। कहा जाता है कि अन्तिम मुठभेड़ में १९ हजार राजपूत खेत रहे, जिनमें मेदिनीराय का लड़का भी था। मेदिनीराय का प्रभाव जाता रहा, किन्तु मेवाड़ के वीर शासक राणा सांगा ने उसे चंदेरी का स्वामी बना दिया। उसने १५२७ ई० के इतिहास प्रसिद्ध खानवा के युद्ध में बाबर के विरुद्ध राणा सांगा का साथ

देकर उसके प्रति अपनी कृतज्ञता का परिचय दिया। गुजरात और मेवाड़ के बीच बहुत दिनों से विद्वेष के भाव चले आते थे। इस समय ईडर के मुसलमान सूबेदार ने राणा के प्रति कुछ अपशब्द कहे। जब यह बात राणा के कानों तक पहुँची तो उसने ८०,००० वीर राजपूतों की सेना लेकर ईडर के विरुद्ध रण-यात्रा की और गुजरात की सेना को हराया। हम नहीं कह सकते कि इस समय दिल्ली और गुजरात के राज्यों के बीच कैसे सम्बन्ध थे। सन् १५२५ की घटनाओं का उल्लेख करते हुए मिरात-ए-सिकन्दरी के लेखक ने लिखा है कि दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम के चचा आलम खाँ ने मुजफ्फरशाह से भेंट की और अपने घमंडी भतीजे के विरुद्ध उसकी सहायता चाही। निस्सन्देह उसे यह सहायता प्राप्त न हो सकी।

मालवा—खानदेश के उत्तर में मालवा का राज्य था। मालवा के स्वतन्त्र शासकों के वंश का संस्थापक दिलावर खाँ था जो पहले दिल्ली के सुल्तान फीरोजशाह तुगलक का एक जागीरदार था। तैमूर के हमले के बाद जो अशान्ति मची, उसमें दिलावर खाँ स्वतन्त्र हो गया। गोरी वंश का १४३५ ई० में अन्त हो गया और गोरी शासक का मन्त्री महमूद खाँ, महमूद खिलजी के नाम से बादशाह बन बैठा। वह गुजरात और मेवाड़ से बराबर लड़ता रहा। फरिश्ता ने ठीक ही कहा है कि सेना ही उसका घर था और रणभूमि ही उसकी विश्राम भूमि थी। खिलजी वंश के चौथे शासक महमूद द्वितीय (१५१०-३१) के शासनकाल में राजपूतों ने मालवा की राजशक्ति को अपने हाथ में कर लिया और उनके सरदार मेदिनीराय ने, जिसने सुल्तान महमूद को राजसिंहासन हस्तगत करने में सहायता दी थी, पूर्णरूप से अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। किन्तु राजपूतों का यह प्रभाव मुसलिम सामन्तों की आँखों में खटकता था और उन्होंने मेदिनीराय के विरुद्ध षड्यन्त्र किया। सुल्तान महमूद गुप्तरूप से मुजफ्फरशाह की सहायता माँगने के लिए गुजरात चला गया। वहाँ उसका स्वागत हुआ। मुजफ्फरशाह ने एक बड़ी सेना के साथ मालवा पर चढ़ाई की और माँडू में महमूद को फिर गद्दी पर बैठा दिया। इसके थोड़े ही समय बाद, महमूद ने मेदिनीराय के विरुद्ध रण यात्रा की जिसके सहायक चित्तौर के राणा साँगा थे। राजपूतों और मालवा की सेना के बीच भयंकर युद्ध हुआ जिसमें मालवा की सेना पूर्णरूप से पराजित हुई और सुल्तान स्वयं घायल होकर बन्दी हो गया। विशाल हृदय राणा ने उसके साथ उदारतापूर्ण व्यवहार किया।

वह उसे अपने खेमे में ले गया और उसके घावों की मरहमपट्टी कराई और स्वस्थ हो जाने पर उसे मुक्त कर दिया। सन् १५२५ में माल्वा की ऐसी ही अशान्त स्थिति थी। आन्तरिक फूट के कारण महमूद परेशान था और घरेलू युद्ध के कारण देश की बुरी दशा थी। इसी बीच एक नई आफत आई। सन् १५२६ में महमूद ने मुजफ्फरशाह के बाद गुजरात की गद्दी पर अधिकार जमा लेनेवाले बहादुरशाह के विरोधी भाई चाद खा को शरण दी। बहादुरशाह ने माडू पर चढाई करके महमूद की सेना का बुरी तरह हरा दिया। महमूद जजीरो में जकड दिया गया और अपने लडको के साथ कद करके आसफ खा की निगरानी मे चम्पानेर भेज दिया गया। पाच दिन बाद दाहद के पडाव में २,००० भीलो और कोलो ने आसफ खा के दल पर छापा मारा। आसफ खा ने इसे राजवश को उसकी कैद से छुडाने का प्रयत्न समझा और सुल्तान और उसके लडको को मरवा डाला। इस प्रकार माल्वा के खिलजी वश का अत हो गया और उसके अधिकृत प्रदेश गुजरात के शासक के आधीन हो गए।

खानदेश—मध्य भारत का एक और राज्य खानदेश था। खानदेश पहले दिल्ली साम्राज्य का एक सूबा था, किंतु मलिक राजा फारूकी के समय मे स्वतत्र हो गया जो १३७० ई० में इस सूबे का सूबेदार नियुक्त हुआ था। सन् १३९९ में मलिक राजा की मृत्यु होने पर उसका अधिक योग्य तथा महत्वाकाक्षी पुत्र मलिक नसीर खा गद्दी पर बैठा। उसने विश्वासघात करके आसा अहीर से असीरगढ का प्रसिद्ध किला ले लिया। खानदेश का अतिम प्रसिद्ध शासक आदिल खाँ फारूकी (१४५७–१५०३ ई०) था जिसने अपने राज्य की आर्थिक समृद्धि की वृद्धि में पूरा योग दिया। उसके समय में बुरहानपुर हिंदुस्तान के सुन्दरतम नगरो में से एक हो गया। आदिल ने ही असीरगढ की किलेबन्दी पूरी की। फारूकी बादशाहो के समय सोने चादी के सल्मे सतारे और रेशम व मखमल पर जरदोजी का काम बहुत उन्नत हुआ। फारूकी बादशाहो ने गुजरात के बादशाहो से वैवाहिक सम्बन्ध किए थे जो दक्षिण के मुस्लिम राज्यो के विरुद्ध उनकी प्राय सहायता करते थे। हिंदुस्तान पर बाबर के हमले के समय खानदेश का शासक मीरन मुहम्मद था,

देकर उसके प्रति अपनी कृतज्ञता का परिचय दिया। गुजरात और मेवाड़ के बीच बड़ा दिया मे विद्वेष के भाव रह आते थे। इस समय ईडर के मुसलमान सूबेदार न राणा के प्रति कुछ अपशब्द कहे। जब यह बात राणा के कानों तक पहुँची तो उसने ८०,००० वीर राजपूतों की सेना लेकर ईडर के विरुद्ध रण-यात्रा की और गुजरात की सेना को हराया। हम नहीं कह सकते कि इस समय दिल्ली और गुजरात के राज्यों के बीच कैसे सम्बन्ध थे। सन १५१५ की घटनाओं का उल्लेख करते हुए मिरात ए सिकन्दरी के लेखक ने लिखा है कि दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम के चचा आलम खाँ ने मुजफ्फरशाह से भेंट की और अपने भतीजे के विरुद्ध उसकी सहायता चाही। निस्सदेह उसे यह सहायता प्राप्त न हो सकी।

मालवा—खानदेश के उत्तर में मालवा का राज्य था। मालवा के स्वतन्त्र शासकों के वंश का संस्थापक दिलावर खाँ था, जो पहले दिल्ली के सुल्तान फीरोज शाह तुगलक का एक जागीरदार था। तैमूर के हमले के बाद जो अशान्ति मची, उसमें दिलावर खाँ स्वतन्त्र हो गया। गोरी वंश का १४३५ ई० में अंत हो गया और गोरी शासक का मंत्री महमूद खाँ, महमूद खिलजी के नाम से बादशाह बन बैठा। वह गुजरात और मेवाड से बराबर लड़ता रहा। फरिश्ता ने ठीक ही कहा है कि सेना ही उसका घर था और रणभूमि ही उसकी विश्राम भूमि थी। खिलजी वंश के चौथे शासक महमूद द्वितीय (१५१०-३१) के शासनकाल में राजपूतों ने मालवा की राजशक्ति को अपने हाथ में कर लिया और उनके सरदार मेदिनीराय ने, जिसने सुल्तान महमूद को राजसिंहासन हस्तगत करने में सहायता दी थी, पूर्णरूप से अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। किन्तु राजपूतों का यह प्रभाव मुस्लिम शक्तियों की आँखों में खटकता था और उन्होंने मेदिनीराय के विरुद्ध एका किया। सुल्तान महमूद गुप्त रूप से मुजफ्फरशाह की सहायता मांगने के लिए गुजरात चला गया। वहाँ उसका स्वागत हुआ। मुजफ्फरशाह ने एक बड़ी सेना के साथ मालवा पर चढ़ाई की और माडू में महमूद को फिर गद्दी पर बैठा दिया। इसके थोड़े ही समय बाद, महमूद ने मेदिनीराय के विरुद्ध रण यात्रा की जिसके सहायक चित्तौर के राणा सांगा थे। राजपूतों और मालवा की सेना के बीच भयंकर युद्ध हुआ जिसमें मालवा की सेना पूर्णरूप से पराजित हुई और सुल्तान स्वयं घायल होकर बंदी हो गया। विशाल हृदय राणा ने उसके साथ उदारतापूर्ण व्यवहार किया।

यह उसे अपने खेमे म ले गया और उसके घावो की मरहमपट्टी कराई और स्वस्थ हो जाने पर उसे मुक्त कर दिया। सन् १५२५ म मालवा की ऐसी ही अशान्त स्थिति थी। आन्तरिक फूट के कारण महमूद परेशान था और घरेलू युद्ध के कारण देश की बुरी दशा थी। इसी बीच एक नई आफत आई। सन् १५२६ म महमूद ने मुजफ्फरशाह के बाद गुजरात की गद्दी पर-अधिकार जमा लेनेवाले बहादुरशाह के विरोधी भाई चाद खा को शरण दी। बहादुरशाह न माडू पर चढाई करके महमूद की सेना को बुरी तरह हरा दिया। महमूद जजीरा म जकड दिया गया और अपने लडको के साथ कद करके आसफ खा की निगरानी म चम्पानेर भेज दिया गया। पाच दिन बाद दाहद के पडाव म २,००० भीलो और कोलो ने आसफ खा के दल पर छापा मारा। आसफ खा ने इसे राजवश को उसकी कैद से छुडाने का प्रयत्न समझा और सुल्तान और उसके लडको को मरवा डाला। इस प्रकार मालवा के खिलजी वश का अत हो गया और उसके अधिकृत प्रदेश गुजरात के शासक के आधीन हो गए।

खानदेश—मध्य भारत का एक और राज्य खानदेश था। खानदेश पहले दिल्ली साम्राज्य का एक सूबा था, किंतु मलिक राजा फारुकी के समय में स्वतत्र हो गया जो १३७० ई० म इस सूबे का सूबेदार नियुक्त हुआ था। सन १३९९ म मलिक राजा की मृत्यु होने पर उसका अधिक योग्य तथा महत्त्वाकाक्षी पुत्र मलिक नसीर खा गद्दी पर बैठा। उसने विश्वासघात करके आसा अहीर से असीरगढ का प्रसिद्ध किला ले लिया। खानदेश का अतिम प्रसिद्ध शासक आदिल खा फारुकी (१४५७–१५०३ ई०) था जिसने अपने राज्य की आर्थिक समृद्धि की वृद्धि म पूरा योग दिया। उसके समय म बुरहानपुर हिंदुस्तान के सुदरतम नगरो में से एक हो गया। आदिल ने ही असीरगढ की किलेबदी पूरी की। फारुकी बादशाहो के समय माने चादी के सलमे सितारे और रेशम व मखमल पर जरदोजी का काम बहुत उन्नत हुआ। फारुकी बादशाहो ने गुजरात के बादशाहो से वैवाहिक सम्बन्ध किए थे जो दक्षिण के मुस्लिम राज्यो के विरुद्ध उनकी प्राय सहायता करते थे। हिंदुस्तान पर बाबर के हमले के समय खानदेश का शासक मीरन मुहम्मद था,

जो १५२० ई० मे गद्दी पर बैठा था। इस वश के इतिहास में महत्त्वपूर्ण घटनाओ का अथात प्रसिद्ध युद्धो का अभाव रहा जिनका वणन पाठको के लिए मनोरजक होता है, किंतु इसका सतोषजनक फल यह हुआ कि इस वश क शासनकाल मे शाति रहने के कारण यह भूखड समद्ध हो गया।

राजपूताना--अलाउद्दीन खिलजी के समय से ही राजपूताने की रियासतो ने दिल्ली की सल्तनत के मामलो मे हस्तक्षेप नही किया था। अलाउद्दीन ने चित्तौर का किला जालोर के मानिगरा सरदार मालदेव को सौंपा था। जान पडता है कि अलाउद्दीन के मरने के बाद मालदेव का प्रभाव जाता रहा। मालदेव के जीवनकाल में ही सीसोदिया वीर हम्मीर ने अपनी शक्ति बढा कर चित्तौर के कुछ हिस्सो को हस्तगत कर लिया था। उसकी मत्यु के पश्चात हम्मीर ने उसके पुत्र जसी को पराजित कर दिया और धीरे धीरे मवाड के समूचे राज्य पर अधिकार जमा लिया। हम्मीर एक शक्तिशाली राजा था, जिसने राजपूत विवरण के अनुसार दिल्ली की सेनाओ का सफलता पूवक सामना किया। हो सकता है यह ठीक न हो, किन्तु महाराणा कुम्भा के समय के १४३८ ई० के एक शिलालेख म हम्मीर के युद्ध-भूमि म असख्य मुसलमानो के वध द्वारा यशस्वी होने का उल्लेख मिलता है[१]। हम्मीर ने भील का बुरी तरह पराजित किया और उनसे जिलवाडा जीत लिया। इसी प्रकार ईदर के शासक जीतकण के विरुद्ध भी उसे विजय प्राप्त हुई। १३६४ ई० के लगभग जब हम्मीर दव की मत्यु हुई, मेवाड एक विस्तृत तथा समृद्धि-शाली राज्य हो गया था। उसके पुत्र क्षेत्रसिंह ने भी अपने पिता की भाँति युद्धो द्वारा अपनी वीरता प्रदर्शित की। उसके पुत्र लाखा ने, जो १३८२ ई० में सिंहासनासीन हुआ, शत्रुओ पर अपनी विजयो द्वारा तथा प्रजा की भलाई के कार्यो द्वारा ख्याति लाभ की। किंतु १४३३ ई० म जब लाखा का पौत्र राणा कुभा गद्दी पर बैठा, जो मेवाड के राज्यवश म बहुत प्रसिद्ध ह मवाड का स्थिति मालवा और गुजरात की मुस्लिम शक्तियो के उदय से बहुत प्रभावित हुई। मुसलमान शासको ने मवाड की शक्ति को कुचल डालने के लिए प्राण

१ Bombay Branch Jour A S XXXIII पृ० ५०

चित्तौड़ का जयस्तम्भ
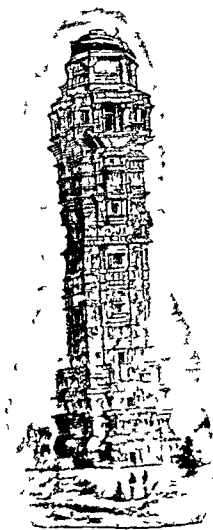
पण से चेष्टा की, किंतु वे सफल न हो सके। अनेक युद्ध हुए जिनमे कभी मुसलमानो की विजय होती और कभी राणा की। १४६८ ई० म राणा के पुत्र ऊदा ने मेवाड की गद्दी पर अधिकार जमाने के लिए उसका वध कर डाला। मेवाड के सरदारो ने इस पितृहत्या का विरोध किया और पाच वर्ष बाद १४७३ ई० मे उसके भाई रायमल ने उससे गद्दी छीन ली। रायमल की मृत्यु होने पर सन १५०९ की मई म उसका छोटा भाई सग्रामसिंह गद्दी पर बठा। उसका राज्याधिकार मेवाड के इतिहास मे एक चिरस्मरणीय घटना सिद्ध हुआ है।

दिल्ली के अफगान साम्राज्य की शक्ति बहुत घट गई और सग्रामसिंह को सिकदर लोदी से भय नही रहा। किन्तु मालवा और गुजरात इस समय नसीर-शाह और महमूद बीगड द्वारा शासित थे, जिनसे उनका विरोध होना अवश्य-म्भावी था। अपने शासनकाल के प्रारम्भिक वर्षो म सग्रामसिंह ने गुजरात की फौजो को हराकर और ईदर के मामलो मे काफी दखल देकर अपनी धाक जमा ली। राणा कई वर्षो से दिल्ली राज्य के छोटे-छोटे हिस्सो पर दखल जमाते चले आ रह थ। जब इब्राहीम लोदी गद्दी पर बठा तो उसने एक बडी सेना लेकर मेवाड पर आक्रमण किया। जीत राजपूतो की हुई। राणा ने मालवा के कुछ जिलो को ले लिया, जिन्ह सिकन्दर लोदी ने दिल्ली के राज्य में मिला लिया था।

इसके बाद मालवा की बारी आई। मालवा के सुल्तान महमूद द्वितीय न अपने शक्तिशाली अमीरो के प्रभाव को दूर करने के लिए राजपूत सरदार मेदिनीराय को अपना मत्री बना लिया था। अमीरो ने काफिरो के विरुद्ध दिल्ली और गुजरात के शासको की सहायता मागी। मेदिनीराय ने दिल्ली और गुजरात की सयुक्त सेनाओ को पराजित कर दिया और सुल्तान पर अपना प्रभुत्व पूर्ववत् बनाये रखा। इस प्रकार विफल मनोरथ होने पर विद्वेषी अमीरो ने मेदिनीराय के विरुद्ध सुल्तान महमूद के कान भरने शुरू किये, जिसम उन्ह सफलता मिली। सुल्तान न गुजरात के शासक मुजफ्फरशाह के यहाँ जाकर सहायता की प्रार्थना की। मुजफ्फर न एक बडी सेना लेकर उसकी सहायता की और माडू म उसे फिर गद्दी पर बैठा दिया। मेदिनीराय ने राणा साँगा

(संग्रामसिंह) से सहायता मागी। राणा ने ५०,००० राजपूतो को साथ लेकर माडू के सुल्तान पर आक्रमण किया। सुल्तान युद्ध म बुरी तरह घायल होकर बदी हुआ और तीन महीने तक चित्तौड मे कैद रहा। अत म युद्ध का व्यय और भविष्य मे अपने सद्व्यवहार के लिए जामिन के तौर पर एक शाहजादे को देने पर उसने मुक्ति पाई। इसका फल राणा के लिए अच्छा नही हुआ।

गुजरात के सुल्तान मुजफ्फर न अपनी पूर्व पराजय के अपमान को धोने के लिए मालवा के सुल्तान के साथ एका किया। सोरठ का सूबेदार मलिक अयाज जो २०००० सवार और कुछ तोपे लेकर उनकी सहायता को आया था, सम्मिलित सेनाओ का सचालक बनाया गया। राणा एक बडी सेना लेकर उनके विरुद्ध बढा। अयाज राणा का मुकाबिला किये बिना ही अपने सूबे को लौट गया और माडू के सुल्तान ने भी वैसा ही किया। मुसलमान इतिहासकारो ने सेना के सचालको मे फूट के कारण जो पीछे हटना लिखा है, वह सभवत मेवाड की सेना द्वारा पराजय ही थी।

इन विजयो के कारण राणा का यश दूर दूर तक फैल गया और विदेशी शासक भी उससे डरने लगे। सन् १५२५ तक मेवाड एक प्रथम श्रेणी की सैनिक शक्ति हो गया था। उसकी शक्तिया सुसगठित थी और यह स्पष्ट था कि जो विदेशी भारत को विजय करना चाहता, उसे मेवाड के वीर राणा से लोहा लेना पडता।

बूँदी के हाडा मेवाड की प्रमुख शक्ति के विरुद्ध जोर लगा रहे थे, किंतु दिल्ली की मुस्लिम सल्तनत से उनका कुछ भी सबध नहीं था। जोनपुर का राठौर वशीय राज्य सोलहवी शताब्दी के आदि म जब राव गग (१५१६ ३२) गद्दी पर थे, घरेलू झगडो के कारण कमजोर पड गया था, किंतु जोधा के वशजो न अपनी बिखरी शक्तियाँ इकट्ठी करके बाबर के विरुद्ध राणा सागा का साथ दिया।

सिन्ध—चौदहवी शताब्दी के आदि म सिंध अलाउद्दीन खिल्जी के साम्राज्य का एक भाग था। बाद मे यह फिर मुहम्मद तुगलक के राज्य म मिला लिया गया। मुल्तान का एक बागी को पीछा करने के लिए सिंध मे गया था, वहो थट्टा में मर गया। फीरोजशाह तुगलक के समय म सिंध के

जाम सुनदारा ने स्वतन्त्र हो जाने का प्रयत्न किया और सुल्तान को फिर सिंध विजय करना पड़ा। चौदहवीं शताब्दी के मध्य में सिंध सम्मा वंश के अधिकार में चला गया। इस वंश का भाग्य अफगानिस्तान के राजनैतिक परिवर्तन से बहुत प्रभावित हुआ। सन १५१६ में बाबर ने कन्धार के शासक शाहबेग अरगून पर चढ़ाई की और उसके किले पर घेरा डाला। शाह किले को समर्पित करने के लिए बाध्य हुआ। कन्धार को खो देने के बाद शाह सिंध की तरफ मुड़ा और सन १५२० में थट्टा पर अधिकार जमाकर उसे लूट लिया। इस प्रकार सिंध में अरगून वंश का राज्य स्थापित हुआ। इस वंश की शक्ति को शाह बेग के पुत्र शाह हुसन ने बहुत बढ़ाया। उसने मुल्तान को अपने राज्य में मिला लिया और लंगा वंश का अन्त कर दिया। जिस समय बाबर हिन्दुस्तान की चढ़ाई की तैयारी कर रहा था, उस समय ये दोनों वंश सिंध के प्रभुत्व के लिए परस्पर युद्ध में व्यस्त थे।

दक्षिण भारत—मुहम्मद बिन तुगलक के शासन काल में दक्षिण में दो शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित हुए, एक विजयनगर का हिन्दू राज्य और दूसरा बहमनी वंश का मुसलिम राज्य। ये दोनों राज्य दक्षिण के प्रभुत्व के लिए एक दूसरे के प्रतिस्पर्द्धी थे, और इनके शासक भिन्न धर्मों के अनुयायी थे, इसलिए इनके बीच युद्ध बहुत होते थे, जिससे दोनों पक्षों को बहुत हानि उठानी पड़ती थी। ये दोनों शक्तिशाली राज्य आपस की प्रतिस्पर्द्धा के कारण उत्तर भारत के राजनैतिक क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं कर सके। विजयनगर का राज्य हरिहर और बुक्काराव नामक दो भाइयों द्वारा सन १३३६ में स्थापित हुआ था और तभी से यह योग्य राजाओं के प्रयत्न से विस्तार और शक्ति में बढ़ता रहा। कृष्णदेव राय का शासनकाल जो १५०९ से १५३० ई० तक रहा, इस राज्य के इतिहास में एक परमोज्ज्वल काल था। कृष्णदेव राय के पास एक शक्तिशाली सेना थी। उसने दक्षिण के मुसल्मानी राज्यों के विरुद्ध कई युद्ध किए। उसकी रायचूर घाटी की विजय ने उसके सम्मान को बहुत बढ़ा दिया और बीजापुर के आदिलशाह की ताकत को इतना कमजोर बना दिया कि उसे कुछ समय के लिए राज्य विस्तार का विचार त्याग देना पड़ा। इस साम्राज्य की राजधानी विजयनगर एक बड़ा विशाल,

सुदृढ़ सुन्दर और समृद्धिशाली नगर था, जैसा फारस के राजदूत अब्दुल रज्जाक के वर्णन से विदित होता है जिसने इस नगर को १५४२-४३ ई० में देखा था। विजयनगर के शासकों की विजयों ने उन्हें घमंडी बना दिया जिससे उनका व्यवहार दक्षिण के मुसलमान बादशाहों को असह्य हो गया। उन्होंने एकमत होकर तथा अपनी सम्मिलित शक्ति को संगठित करके सन् १५६५ में तालीकोटा के युद्ध में विजयनगर के साम्राज्य को ध्वस्त कर दिया। किन्तु सोलहवीं शताब्दी के आदि में विजयनगर एक शक्तिशाली साम्राज्य था। यह ठीक है कि उत्तर भारत के अफगान साम्राज्य तथा अन्य राज्यों के साथ इसका सम्बन्ध नहीं था, किन्तु जैसा प्रोफेसर रशब्रुक विलियम्स ने कहा है, इसके कारण दक्षिण के मुसलमान राज्यों की शक्ति बहुत न बढ़ सकी जिससे राजपूत रियासतों की स्वतंत्रता बची रह सकी। इसने दक्षिण के मुसलमानी राज्यों को उत्तर की ओर राज्य प्रसार करने से रोका जिन्होंने इसे भी विन्ध्याचल के इस पार विजय वैजयन्ती फहराने का अवसर नहीं दिया, जैसा पहिले इन्द्र और तलप मालवा और धार पर विजय प्राप्त करके कर चुके थे। बहमनी राज्य जो सुल्तान मुहम्मद तुगलक के एक अफगान अफसर हसन द्वारा सन् १३४७ में स्थापित हुआ था। १४८१ ई० में सुयोग्य तथा सुप्रसिद्ध मंत्री महमूद गावान के प्राणदण्ड के बाद राज्य के सूबेदारों के स्वतंत्र हो जाने से पाँच स्वतंत्र मुसलिम राज्यों में विभाजित हो गया। इस राज्य के शक्तिशाली सुल्तान विजयनगर के हिंदू राज्य के विरुद्ध बराबरी के साथ लड़ते रहे। किन्तु इसके टुकड़े हो जाने पर दक्षिण में मुसल्मानों की शक्ति बिखर गई। १५६५ ई० में दक्षिण में मुसल्मानों का प्रभुत्व फिर स्थापित हो गया जब उनकी सम्मिलित शक्ति ने विजयनगर के राज्य को नष्ट कर दिया।

बाबर का लिखा हुआ हिन्दुस्तान का राजनैतिक जीवन—बाबर ने अपनी आत्मकहानी में अपनी चढ़ाई के समय के हिन्दुस्तान का एक विवरण दिया है। वह पाँच मुसल्मान और दो हिंदू प्रसिद्ध शासकों का उल्लेख करता है। वह कहता है कि हिंदुस्तान का सबसे बड़ा भाग दिल्ली के साम्राज्य के अधिकार में था, किन्तु देश में और स्वतंत्र तथा शक्तिशाली राज्य थे। उसके द्वारा उल्लिखित प्रमुख राज्य ये हैं—अफगान राज्य जो देहली से बिहार तक फैला

बैठ गया। किन्तु वह समरकन्द की गद्दी पर शान्ति से नहीं रह सका। उजबेग सरदार ने एक बडी फौज इकट्ठी की और अरचियान की गहरी लडाई (जून १५०३) में उसने बाबर को हरा दिया। बाबर बडी मुश्किल से अपनी जान बचा सका। वह करीब एक बरस तक आफतें झेलता हुआ बेघरबार का मारा फिरा, किन्तु आफतो म भी वह घबराया नहीं। इस समय फरगाना भी उसके हाथ से निकल गया था। तुर्किस्तान म अपना राज्य स्थिर करने की आशा न देख-कर बाबर १५०४ ई० म काबुल चला आया और उस पर अधिकार जमा लिया। इस बीच म शबानी खाँ न खुरासान के सारे देश पर आसानी से अधिकार जमा लिया था। उसकी बढती हुई शक्ति को रोकनेवाला कोई नहीं था। बाबर भी अपनी रक्षा क लिए सशक हो गया था और अपने शत्रुओ के कार्यों को उत्सुकता-पूर्वक ध्यान मे देख रहा था जिन्होने ट्रान्स आक्सियाना, ख्वारिज्म, फरगाना और खुरासान को उजाड डाला था और तमूर के वशजो को उनके राज्यो से भगा दिया था। उजबग लोगो ने कन्धार पर चढाई की, उनके भय से बाबर हिन्दुस्तान की ओर हट गया। किन्तु उसके सौभाग्य से शबानी के राज्य के एक दूसरे भाग में विद्रोह हो गया जिससे विवश होकर उसे कन्धार का घेरा उठा लेना पडा तथा अफगानिस्तान का छोड देना पडा। इससे बाबर को शीघ्र ही अपनी राजधानी को लौटने का अवसर मिल गया। इसी समय उसने पादशाह की उपाधि ग्रहण की, जिसे अब तक किसी तमूर वशीय ने ग्रहण नहीं किया था। बाबर का सिंहासन अभी सुरक्षित भी नहीं था, किन्तु इस उपाधि से उसके राज-नीतिक विचारो म एक महान् परिवर्तन आ गया।

काबुल पर अच्छी तरह अधिकार जमा लेने के बाद बाबर ने एक बार फिर समरकन्द जीतने का उद्योग किया। फारस के बादशाहो के सफवी वश के सस्थापक शाह इस्माइल के द्वारा शबानी खाँ के नाश ने उसे अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए प्रोत्साहित किया। इस्माइल की सहायता से वह उजबेगो के विरुद्ध बढा। बाबर के नाम ने जादू का काम किया। शहरो और गाँवो के लोगो ने हृदय से उसका स्वागत किया। बुखारा को उसने बिना किसी विरोध के ही ले लिया। वहाँ से वह समरकन्द की ओर बढा और अक्टूबर १५११ मे उस पर नौ महीने बाद एक बार फिर अधिकार जमा लिया।

किन्तु तैमूर के सिंहासन पर बैठकर राज्य करना बाबर के भाग्य में नहीं था। बाबर ने शाह इस्माइल की शर्त के अनुसार उसकी सहायता प्राप्त करने के लिए दिखावटी तौर पर शिया मत कबूल कर लिया था जिससे उसकी प्रजा उससे असन्तुष्ट हो गई। केवल आठ महीने तक उसका समरकन्द पर अधिकार रहा। शैबानी खां के पुत्र के अधीनस्थ उजबेगों के विरुद्ध १५१२ ई० में उसे एक युद्ध करना पड़ा जिसमें उसकी पूर्ण पराजय हुई। इस पराजय के बाद वह हिसार के किले में चला गया। उसकी सहायता के लिए शाह इस्माइल ने फारस से जो सेना भेजी थी, वह उजबेगों द्वारा पराजित हुई और उसका सेनापति लड़ाई में मारा गया। बाबर को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा और वह निराश होकर काबुल लौट आया। उसने देखा कि पश्चिम में सफलता प्राप्त करना उसके लिए असंभव था, इस लिए उसने पूर्व में अपने भाग्य की परीक्षा करने का इरादा किया।

हिन्दुस्तान पर बाबर के आरंभिक हमले—हिन्दुस्तान पर अपने अंतिम तथा प्रसिद्ध हमले के पहले बाबर ने भारतीय सीमा पार करके कई छोटे-मोटे हमले किये जिनका उल्लेख कर देना ठीक होगा। उसने बजौर के किले पर हमला किया। किले की सेना ने उसकी रक्षा में बड़ा वीरता दिखलाई, किन्तु अंत में वह बाबर के हाथ में आ गया। सन् १५१९ में उसने झेलम के तट पर स्थित भीरा पर चढ़ाई की और बिना किसी लड़ाई के ही उस पर अधिकार जमा लिया। निवासियों के साथ दया का बर्ताव हुआ और जिन सिपाहियों ने अत्याचार किया, वे मार डाले गये। अपने सलाहकारों की राय से बाबर ने सुल्तान इब्राहीम लोदी के पास एक राजदूत इस संदेश के साथ भेजा कि सुल्तान उन प्रदेशों को लौटा दे जो बहुत दिनों से तुर्कों के हाथ में थे। किन्तु वह दूत दौलत खां द्वारा लाहौर में ही रोक लिया गया और बिना कुछ उत्तर पाये ही पाँच महीने बाद लौटा। भीरा, खुशाब और चिनाब का प्रदेश वश में लाकर बाबर दर्रा खुरम के रास्ते से काबुल लौट गया। उन दिनों बाबर आमोद-प्रमोद में बहुत भाग लेता था। वह बहुत शराब पीने लगा और अफीम भी खाने लगा।

किन्तु बाबर अपनी इन्द्रियों का दास नहीं था। गुलबदन की उक्ति

उसकी विजया और चढाइया में बाधा नही डाल सकी। सन् १५२० में उसने बदख्शा ले लिया और शाहजादा हुमायूँ को उसका अधिकारी बना दिया। दो वर्ष बाद बाबर ने अरगूनो से कन्धार छीन लिया और उसे अपने छोटे लडके कामरान के हवाले किया।

अफगानिस्तान से निश्चिन्त होकर बाबर ने अपना ध्यान फिर हिंदुस्तान की ओर फेरा। दिल्ली के अफगान शासक इब्राहीम लोदी की हुकूमत से सब लोग असन्तुष्ट थे। प्रमुख अफगान सरदार उसके घमड तथा कठोर दड की नीति के कारण विद्रोह करने के लिए बाध्य हो गए थे। दौलत खाँ लोदी के पुत्र दिलावर खा के प्रति इब्राहीम के निर्दय व्यवहार पर सरदारो का असन्तोष चरम सीमा को पहुँच गया। उसके इस व्यवहार से चिढकर दौलत खा ने अपने पुत्र को हिन्दुस्तान पर चढाई के लिए बाबर को निमन्त्रित करने के लिए काबुल भेजा।

बाबर ने जो बहुत दिनो से भारत विजय का स्वप्न देख रहा था, इस प्रस्ताव का स्वागत किया। वह काबुल से १५२४ ई० में रवाना हुआ और लाहौर पर हमला किया और यहा एक अफगान को हराकर उसने शहर को ले लिया। किन्तु दौलत खा ने, जो अब फिर राज भक्त बन गया था, बाबर के इन कार्यों का समर्थन नही किया। बाबर ने उसके असन्तोष पर ध्यान न देकर उसे जालन्धर और सुल्तानपुर की जागीर दी। किन्तु जब उसके शत्रुतापूर्ण षड्यन्त्रो का पता चला तो उसकी जागीर ले ली और उसे दिलावर खाँ को दे दिया जिसने दौलत खाँ के षड्यन्त्रो का पता दिया था। दिपालपुर को आलम खा को सौंपकर बाबर काबुल लौट गया।

बाबर के लौट जाने पर दौलत खाँ ने अपने पुत्र से सुल्तानपुर छीन लिया और आलम खा को दिपालपुर से भगा दिया। आलम खा भागकर काबुल गया और बाबर के साथ एक समझौता किया जिसके अनुसार दिल्ली का बादशाह बनाये जाने पर उसने लाहौर और उसके पश्चिम के देश बाबर को समर्पित करना स्वीकार किया। किन्तु थोडे ही समय बाद आलम खाँ ने दौलत खाँ की मन्त्रणा में आकर यह समझौता तोड दिया और उन दोनो ने मिलकर

इब्राहीम लोदी पर आक्रमण किया जिसने उन्हें बुरी तरह से पराजित करके युद्ध-भूमि से भगा दिया।

इन्हीं दिनों राणा सांगा ने भी हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करने के लिए बाबर को बुला भेजा। बाबर ने राणा को इस अवसर पर प्रतिज्ञापालन न करने का दोष दिया है। वह अपनी दिनचर्या में लिखता है कि "राणा सांगा ने काबुल में मेरे पास दूत भेजकर कहलाया था कि यदि मैं उधर से दिल्ली राज्य पर हमला करूँ तो वह दूसरी ओर आगरा की ओर से हमला करेगा, किन्तु मैंने इब्राहीम को हराकर दिल्ली और आगरा ले लिया और इस बीच में राणा सांगा ने कुछ भी नहीं किया।" बाबर तो हिन्दुस्तान जीतने के लिए उत्सुक था ही। उसने अच्छा अवसर देखकर अफगान राज्य पर चढ़ाई कर दी। किन्तु जैसा प्रोफेसर रशब्रुक विलियम्स कहते हैं, दौलत खाँ के षड्यन्त्रों तथा आलम खाँ के विश्वासघात से उसने जान लिया था कि उनका विश्वास करना ठीक नहीं है, इसलिए उसने अपने बल पर ही भारतवर्ष के साम्राज्य के लिए उद्योग करने का निश्चय किया। किन्तु जब वह पंजाब पहुँचा तो दौलत खाँ ने फिर नई शर्तें रक्खीं और क्षमा माँगी। बाबर ने अपनी स्वाभाविक उदारता से उसे क्षमा कर दिया और उसकी पुश्तैनी जागीर को उसके पास रहने दिया, किन्तु उसकी और सम्पत्ति से उसे बेदखल कर दिया। पंजाब आसानी से उसके अधिकार में आ गया, किन्तु प्रधान कार्य तो दिल्ली की विजय थी। इस कार्य के लिए उसके साधन अपर्याप्त थे। इस बार उसे सरहद्दी जातियों से नहीं किन्तु एक बड़े साम्राज्य की शक्ति से लड़ना था। किन्तु उसने हिम्मत न हारी और ईश्वर में विश्वास रखकर अपने स्वाभाविक साहस तथा उत्साह के साथ इस कार्य में अग्रसर हुआ।

इब्राहीम ने बाबर के आने की खबर सुनकर उसका मुकाबिला करने के लिए सेनायें आगे भेजीं, जिन्हें हराकर वह निर्विघ्न सिरसावा तक बढ़ आया। यहाँ वह युद्ध के लिए तैयारियाँ करने लगा। अफगानों की सेना बाबर की सेना से बहुत बड़ी थी, किन्तु उसे विश्वास था कि वह अपनी सुरक्षित घुड़सवार सेना तथा अपने नये तोपखाने की सहायता से उसे हरा सकता था। उसके तोपखाने के अफसर उस्ताद अली और मुस्तफा रूमी सवार और पैदल सेना की सहायता

पाकर अफगानो की सेना को आसानी से हरा सकते थे। इसलिए उसने सबसे अधिक ध्यान तोपखाने के प्रबन्ध पर दिया। उसने ७०० तोपो की गाडियाँ इकट्ठी की जो बटे हुए चमडे के रस्सो से जकडकर मुस्तफा और उस्ताद अली के बन्दूकचियो की रक्षा के लिए उनके आगे आड के लिए रक्खी जा सकें और बहुत सी लकडी की तिपाइया बनवाई गई, जो हर दो गाडियो के बीच म उनके लिए आड का काम दे सकें।

१२ अप्रैल १५२६ को बाबर पानीपत पहुँचा। वहा उसने अपनी सेना के लिए एक ऐसा स्थान चुना, जो युद्ध के लिए बहुत ही उपयुक्त था। इसका दाहिना पार्श्व पानीपत के शहर द्वारा सुरक्षित था। इसके मध्य भाग के आगे बाबर ने तोपो को जमा किया और पहले से तयार की हुई गाडियो और सिपाहियो से उसे सुरक्षित कर दिया, जिनके पीछे तोपची और बन्दूकची रक्खे गये। वाम भाग खाई काटकर गिराये हुए पेडो द्वारा सुरक्षित किया गया था। मध्य भाग को आगे की ओर से रक्षित करनेवाली गाडियो और सिपाहियो की पंक्ति लगातार नहीं चली गई थी, उसमें बीच-बीच में फासले छोडे हुए थे जिनमे से होकर सिपाही सौ-सौ या डेढ डेढ सौ की कतारो म शत्रु की सेना पर हमला कर सकें।

सुल्तान इब्राहीम भी एक बडी सेना लेकर पानीपत पहुँच गया था। बाबर के अनुमान के अनुसार उसके साथ एक लाख सिपाही थे। किन्तु वह सेना सुशिक्षित नही थी और इसम बहुत से रंगरूट थे जिन्हे लडाई का अनुभव बिल्कुल नही था। इसके अतिरिक्त सुल्तान भी एक कुशल तथा अनुभवी सैन्य सचालक नहीं था। इन कारणो से व्यक्तिगत रूप म अफगान सिपाहियो के वीर होते हुए भी अफगान सेना इतनी आसानी से हराई जा सकी।

दोनो सेनाएँ आमने सामने एक दूसरे पर बिना आक्रमण किये आठ दिनो तक पडी रहीं। अत में बाबर ने युद्ध आरभ करने का निश्चय किया। उसने अपनी सेना को मध्य, वाम और दक्षिण इन तीन भागो म विभाजित किया और इस सेना के दोनो दूरस्थ पार्श्वों पर मंगोलो की एक एक सेना रक्खी जिसका काम युद्ध जम जाने पर दोनो ओर से बढकर शत्रु की सेना को घेर

लेना था। मगोल व्यूह-रचना की यह प्रसिद्ध रीति जो तुलुगमा कहलाती है, विजय का एक प्रसिद्ध साधन मानी जाती थी, शत्रुओं पर इसका बड़ा घातक प्रभाव पड़ता था। अफगान सेना बाबर की सेना के दक्षिण पार्श्व पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ी। इस पर उसने अपनी रक्षित सेना को उसकी सहायता के लिए बढ़ने की आज्ञा दी। अफगान जब तोपों और गाड़ियों की पंक्ति, खाइयों और कटे पेड़ों की रुकावट के पास पहुँचे तो कुछ देर तक किंकर्तव्यविमूढ़ से रह गये। उन्हें जान नहीं पड़ता था कि हमला करना चाहिए या पीछे हटना चाहिए। पीछे की आगे बढ़ती हुई सेना के दबाव से उनमें गड़बड़ी मच गई जिससे बाबर ने पूरा लाभ उठाया। उसकी घेरने वाली दोनों दूरस्थ पार्श्वों की सेनाएँ घूमकर आगे बढ़ीं और शत्रुओं पर उनके पीछे से आक्रमण किया। सेना के दक्षिण और वाम पार्श्व आगे बढ़े और मध्य भाग ने गोले और गोलियाँ चलाना आरंभ किया। युद्ध बड़ा भयंकर हो गया। अफगान चारों ओर से घिर गये और उन पर तीरों और गोले-गोलियों की मार पड़ने लगी। उस्ताद अली और मुस्तफा के सिपाहियों के गोले गोलियों की बौछार से अफगान बेतरह मरने लगे, वे न आगे बढ़ सकते थे, न पीछे हट सकते थे। वे जान हथेली पर लेकर बड़ी बहादुरी से लड़ रहे थे, लेकिन उनमें बड़ी गड़बड़ी मची हुई थी। कुछ घंटों तक उनका वध जारी रहा, अन्त में निराश हो जाने पर उनमें भगदड़ मच गई। इब्राहीम की पूर्ण पराजय हुई और उसकी सेना का भयंकर संहार हुआ। बाबर के अफसरों की गणना के अनुसार १५ या १६ सहस्र सैनिक इस युद्ध में धराशायी हुए। इब्राहीम लोदी एक वीर अफगान के समान लड़ता हुआ मारा गया। उसका मृत शरीर लाशों के ढेर में पाया गया। बाबर लिखता है कि आगरा पहुँचने पर उसे हिन्दुस्तानियों से मालूम हुआ कि ४० या ४५ हजार आदमी इस लड़ाई में काम आये थे। बाबर की सफलता उसके कुशल सैन्य-संचालन और घुड़सवार सेना और तोपखाने के ठीक उपयोग के कारण हुई। बहुत से युद्ध-बन्दियों और साथ में आये हुए सामान के साथ इब्राहीम का सिर बाबर के सामने पेश किया गया। बाबर लिखता है कि ईश्वर की कृपा से दिल्ली की सत्ता आधे दिन में धूल में मिल गई।

पानीपत की इस लड़ाई से दिल्ली का साम्राज्य बाबर के हाथ में आ गया। लोदीवंश की शक्ति छिन्न भिन्न हो गई और हिंदुस्तान का साम्राज्य चगताई तुर्कों के हाथ में चला गया जो मुगल के नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्ध के बाद बाबर ने फौरन ही शाहजादा हुमायूँ को आगरे पर अधिकार जमाने के लिए भेज दिया और आप भी जल्द ही वहां गया। हुमायूँ ने उसका स्वागत किया और उसे वह प्रसिद्ध हीरा भेंट किया जो उसने ग्वालियर के राजा से प्राप्त किया था, किन्तु बाबर ने अपनी स्वाभाविक उदारता से उसे अपने पुत्र को लौटा दिया। दिल्ली और आगरे में बहुत बड़ी संपत्ति बाबर के हाथ लगी। उसने अपने भाई बंधुओं और अफसरों को बहुत सा धन दिया। लड़ाई में शरीक होनेवाले सिपाहियों और मामूली नौकरों को भी इनाम मिले। भेंट मक्का और मदीना भेजी गई। उसने इतनी उदारता दिखलाई कि काबुल के प्रत्येक व्यक्ति को एक-एक रौप्य मुद्रा इनाम मिली।

अभी दिल्ली के सम्पूर्ण साम्राज्य पर बाबर का अधिकार नहीं हुआ था। बहुत से अफगान सरदारों के पास बड़ी-बड़ी जागीरें थीं, जो उसका अधिकार नहीं मानते थे। उसके अफसर और सिपाही इस गरम मुल्क में रहना नहीं चाहते थे। वे अपने ठंडे देश को लौट जाने को उत्सुक थे। किन्तु बाबर इस देश में केवल धन के लिए नहीं आया था। वह यहां एक सुदृढ साम्राज्य जमाना चाहता था। उसने समझा-बुझाकर अपने सरदारों (बेगों) को राजी और उन्हें बड़ी बड़ी जागीरें देकर सन्तुष्ट किया। उसके इस देश में ठहरने के दो महत्त्वपूर्ण तात्कालिक प्रभाव दृष्टिगोचर हुए, एक तो यह कि राजपूतों की आंखें खुल गईं, उन्होंने उसके दुष्परिणाम को समझ लिया और दूसरे यह कि दोआब के और दूसरी जगहों के बहुत से सरदारों ने उसकी वश्यता स्वीकार कर ली। अपने सरदारों की इस सहायता से वह देश का एक बहुत बड़ा भाग अपने अधिकार में ले आया। राजपूतों के नेता राणा साँगा के शीघ्र आने के भय से बाबर ने बियाना, ग्वालियर और धौलपुर को उनके अधिकारियों को बड़ी आय के परगने देकर अपने अधिकार में कर लिया। हुमायूँ ने जाकर जौनपुर, गाजीपुर और काल्पी जीते और बाबर राजपूतों से मुठभेड़ की तयारी करने के लिए आगरा में रह गया। इन्हीं दिनों

इब्राहीम लोदी की माता ने बाबर को विष देने का असफल प्रयत्न किया था। यदि वह सफल हो गई होती तो भारतवर्ष का इतिहास ही बदल जाता।

बाबर और राजपूत—हिन्दुस्तान में बाबर का सबसे शक्तिशाली शत्रु सीसोदिया वंशीय चित्तौर का महाराणा संग्रामसिंह था जो राणा साँगा के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। वह अपने बल, बुद्धि, सद्गुण और वीरता के लिए राजस्थान में प्रसिद्ध था। वह राजपूत राजाओं में सर्वश्रेष्ठ था। वह युद्धों में दिल्ली, गुजरात और मालवा की सेनाओं को पराजित कर चुका था तथा दिल्ली और मालवा के प्रदेशों को जीत चुका था। उसने मालवा के इलाके भिल्सा, सारंगपुर चन्देरी और रणथम्भौर ले लिये थे और उन्हें अपने अधीनस्थ सामन्तों के हवाले कर दिया था। मारवाड़ और आमेर के राजा उसका आधिपत्य स्वीकार करते थे और ग्वालियर, अजमेर सीकरी रायसीन, काल्पी, चन्देरी, बूँदी, गुरगांव, रामपुरा और आबू के राव उसके अधीनस्थ सामन्त थे। उसकी सैनिक शक्ति उस समय के उत्तर भारत के और शासकों से बढ़ी चढ़ी थी। बाबर अपनी दिनचर्या की पुस्तक में लिखता है कि राणा सांगा ने अपनी वीरता और तलवार के बल से अपने उच्च स्थान को प्राप्त किया था। उसकी शक्ति इतनी बढ़ गई थी कि मालवा, गुजरात और दिल्ली के शासकों में से कोई भी अकेला उसे पराजित नहीं कर सकता था। उसका राज्य १० करोड़ की वार्षिक आय का था। उसकी सेना में १००००० सवार थे और उसके साथ ७ राजा, ९ राव और १०४ छोटे सरदार चलते थे। प्रायः सभी राजपूत राजा और सरदार संगठित होकर बाबर से लड़ने के लिए राणा के झंडे के नीचे इकट्ठे हुए। राणा को उस समय के भारत का सर्वश्रेष्ठ वीर कहने में अतिशयोक्ति न होगी। युद्ध में राजा की एक आँख फूट गई थी, एक हाथ टूट गया था और वह एक पैर से लँगड़ा हो गया था और इसके अतिरिक्त उसके शरीर पर तल्वार, भाले और तीर के ८० घाव थे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इस वीर के झंडे के नीचे खानवा के युद्धभूमि की ओर आती हुई वीर राजपूतों की सेना के सामने बाबर के सरदार व सिपाही पस्तहिम्मत हो गये थे।

जसा पहले कहा जा चुका ह जब बाबर काबुल म था, तभी राणा ने बाबर से मुल्तान इब्राहीम पर हमला करने के लिए कुछ शर्तें की थी। अब दोना पक्ष एक दूसर को प्रतिज्ञापालन न करने का दोष देने लगे और राणा ने कालपी धौलपुर और बियाना का दावा किया जिन पर बाबर ने अधिकार जमा लिया था। राणा बियाना की आर बढा और उसे ले लिया। बाबर लिखता ह कि वहा से भागे हुए सनिको ने राजपूत सेना की वीरता और पराक्रम की बडी प्रशसा की। इसी समय पश्चिमी अफगाना का प्रबल सरदार हसन खा मेवाती राणा से आ मिला। इस प्रबल मेवाती सरदार को अपनी आर मिलाने की इच्छा से बाबर ने उसके पुत्र नाहर खा को जो पानीपत की लडाई में कद हुआ था खिलअत देकर उसके पिता के पास भेज दिया। किन्तु उसकी आशा फलीभूत न हुई। अपने लडके के छूटते ही हसन खा तुर्को को हिन्दुस्तान से निकालने के लिए बाबर के विरुद्ध १२००० अफगानो की सेना के साथ राणा से जा मिला। इन दोनों प्रबल शत्रुओं के मेल ने बाबर को बडा उद्विग्न कर दिया और वह १ फरवरी १५२७ को राणा सागा का मुकाबला करने के लिए रवाना हुआ और सीकरी म पडाव डालकर वहीं मार्चेबन्दी करने लगा। राणा भी अब नजदीक पहुँच गया था। राजपूतो ने बाबर की सेना के एक भाग को सीकरी से नजदीक ही खानवा में बडी बुरी तरह पराजित किया। राजपूता की इस विजय ने मुगल सेना का और भी निराश कर दिया, जो उसकी वीरता की प्रशसा सुनकर पहले ही हतोत्साह हो गई थी।

बाबर लडाई की तैयारियाँ करने लगा, लेकिन उसके आदमी राजपूता के बल और पराक्रम का वणन सुनकर भयभीत तथा हतोत्साह हो गये थे। इसी समय काबुल से एक ज्योतिषी आया। उसने अपनी अशुभ भविष्यवाणी से सेना की निराशा और भय को और भी बढा दिया। उसकी भविष्यवाणी पर ध्यान न देकर बाबर सेना में उत्साह तथा आशा का सचार करने के लिए उपाय करने लगा। यह लडाई उसे काफिरा से लडनी थी इसलिए उसने तथा तुर्कों ने इसे जिहाद का रूप दिया और ईश्वर की सहायता पाने के लिए उसने इसी समय प्रायश्चित्त-स्वरूप फिर शराब न पीने की प्रतिज्ञा की। बहुत शराब फिकवा दी और शराब के सोने चादी के पात्र तुडवाकर गरीबा

को बाट दिय । उसने अपनी दाढ़ी न कटवाने की प्रतिज्ञा की और मुसलमानों के कुछ करों को मुआफ कर दिया। अन्त में अपनी सेना की निराशा दूर करने के लिए बाबर ने अपने सरदारों और सिपाहियों को बुलाकर उनके धार्मिक भावों को उत्तेजित करने के लिए कहा—

"सरदारों और सिपाहियो ! हर एक आदमी जो दुनिया में आया है जरूर मरेगा। हम सब मरेंगे, सिर्फ एक खुदा बाकी रहेगा। जो लोग जीवन का रसास्वादन करते हैं उन्हें मौत का भी स्वाद चखना पड़ेगा। जो इस संसार-रूपी सराय में आता है, उसे इस दुखमय स्थान से एक न एक दिन विदा भी होना पड़ता है इसलिए बदनाम होकर जीते रहने से इज्जत के साथ मर जाना लाख गुना बेहतर है। मैं चाहता हूँ कि मेरी मौत इज्जत के साथ हो, कीर्ति मेरी हो, शरीर तो नाशवान् है ही। खुदा का शुक्र है कि अगर हम लड़ाई में मरेंगे तो शहीद होंगे और जीतेंगे तो गाजी कहलायेंगे। आओ, हम सब कुरान हाथ में लेकर कसम खायें कि बदन में जान रहते मैदान जंग से पीठ न दिखलायेंगे।"

इस भाषण के बाद अफसरों और सिपाहियों ने हाथ में कुरान लेकर कसम खाई और इसका उन पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

किन्तु अब भी बाबर को अपनी जीत का विश्वास न हुआ और उसने रायसेन के सरदार सल्हदी द्वारा संधि की बात चलाई। संधि की यह बातचीत कई दिनों तक चलती रही। राणा के सरदार संधि करने के लिए तैयार न हुए। इस बीच में बाबर लड़ाई की तैयारी बड़ी मुस्तैदी से करता रहा। लड़ाई आरंभ होने में यह देर राजपूतों के लिए बहुत हानिकारक हुई।

राणा के साथ युद्धभूमि में जो सेना आई, वह बाबर की सेना से संख्या में बहुत अधिक थी। राणा के नेतृत्व में राजपूताना के सब प्रसिद्ध सरदार और बाहर के भी कुछ शक्तिशाली सरदार विदेशी आक्रमणकारी के विरुद्ध युद्ध करने के लिए इकट्ठे हुए थे। बाबर की दिनचर्या की पुस्तक के अनुसार राणा सांगा के पास अपने १००००० सवार थे, और भिल्सा का सरदार सल्हदी ३०००० सवारों के साथ, हसन खां मेवाती और चन्देरी का मेदिनी राय बारह-बारह हजार, डूंगरपुर का रावल उदयसिंह और सिकन्दर लोदी का

पुत्र महमूद लादी, जिसे राणा दिल्ली का सुल्तान मान चुका था, दस दस हजार सवारों के साथ, और इनके अतिरिक्त और बहुत से राजा और सरदार ३ हजार से ७ हजार तक सवारों के साथ राणा के साथ थे। एक स्थल पर बाबर ने राणा की सम्मिलित सेना मे २,०१००० सवार बतलाये है, किन्तु यह सख्या निस्सदेह अतिशयोक्तिपूर्ण है। तबकात अकबरी में राणा की सेना म १,२०००० सवारो का होना बतलाया गया है जो ठीक हो सकता है। अर्सकिन ने इसी सख्या को ठीक माना है। बाबर ने खानवा म पडाव डाला था जो सीकरी से दस मील की दूरी पर है। पानीपत की लडाई की तरह इस बार भी उसने व्यूहरचना का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया था। उसकी सेना तीन भागो में विभक्त थी—मध्य दक्षिण पार्श्व और वामपार्श्व। दक्षिण पार्श्व का अध्यक्ष हुमायूँ था और वामपार्श्व का मेहदी ख्वाजा था। इन दोनो के अधीन बहुत से अनुभवी तथा योग्य अफसर थे। मध्य भाग का सचालन बाबर स्वय अपने विश्वस्त बेगो के साथ कर रहा था और दोनो सिरो पर घेरा डालनेवाली एक एक सवार सेना थी जिसका काम युद्ध के जम जाने पर दोनो ओर से घुसकर शत्रु की सेनाओ को घेरकर उन पर पीछे की ओर से आक्रमण करना था। सेना के आगे जजीरो से जकडी हुई गाडियो और तिपाइयो की आड में तोपची और बदूकची थे। मध्य भाग के आगे उस्ताद अली था जिसके अधीन भारी तोप थी। बाबर की सैन्य सख्या का ठीक ठीक पता नही है किन्तु इसमे सन्देह नही कि उसकी सेना राणा की सेना से बहुत छोटी थी।

ता० १६ मार्च १५२७ ई० को सवेरे करीब साढे नौ बजे युद्ध आरभ हुआ और सन्ध्या तक होता रहा। बाबर ने वही नीति ग्रहण की जिससे उसने पानीपत मे काम लिया था। पहले तो अपनी सख्या और वीरता के बल से राजपूत जीतते मालूम हुए किन्तु शाम को लडाई का रुख पल्ट गया और राजपूतो की बडी बुरी हार हुई। उनका बडा भयकर सहार हुआ और बची हुई सेना छिन्न भिन्न हो गई। उनके पक्ष के हसन खा मवाती, उदयसिंह और बहुत से दूसरे सरदार इस युद्ध मे मारे गये। राणा सांगा घायल होकर मूर्छित हो गया और कुछ सरदार उसे पालकी में डालकर युद्ध भूमि से बाहर

ले गये। विजयी बाबर ने अपने विजय चिह्न स्वरूप राजपूतों के सिरों का एक स्तूप (ढेर) बनवाया और गाजी की उपाधि धारण की।

इस युद्ध के फल-स्वरूप राजपूतों का प्रताप जो इस समय बहुत बढ गया था, लुप्त हो गया। इस पराजय के कारण मेवाड की प्रतिष्ठा और शक्ति के प्रभाव के कारण राजपूतों का जो संघ बना था, वह टूट गया और राजनतिक क्षेत्र में राजपूतों का प्रभाव जाता रहा और बाबर स्थिर रूप से भारत का सम्राट् हो गया। अब उसे दिल्ली सिंहासन का हाथ से निकलने का भय न रहा।

बाबर की बादशाह होने की भावना—बाबर अपने साम्राज्य का पूर्ण अधिपति बनना चाहता था। उसे अभी अनेकों सरदारों को वश में लाना था। प्रोफेसर रशब्रुक विलियम्स कहते है कि बाबर को केवल एक राज्य जीतना ही नहीं था, किन्तु उसे बादशाही को एक ईश्वरीय शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित भी करना था। अफगान काल में सुल्तान की शक्ति ईश्वर की दी हुई शक्ति नहीं, केवल एक मनुष्य की शक्ति मानी जाती थी। साम्राज्य के सरदार, सुल्तान के कमजोर पडते ही मौका पाकर स्वतन्त्र हो जाते थे। बाबर ने सुल्तान के स्थान में बादशाह की उपाधि धारण की जिसके पीछे सैनिक तथा राजकीय शक्ति के साथ धर्म-द्वारा स्वीकृत ईश्वरीय शक्ति का भाव भी वर्तमान है। धीरे-धीरे इस भाव ने लोगों के दिलों में घर कर लिया। लोग बादशाह का झरोखा दर्शन करने लगे और उसे ईश्वर का प्रतिनिधि मानकर भक्ति भाव प्रदर्शित करने लगे।

चन्देरी पर अधिकार—चन्देरी का प्रसिद्ध दुर्ग मेदिनीराय के अधिकार में था। बाबर ने मेदिनीराय पर धावा किया और २० जनवरी, सन् १५२८ को वह चन्देरी पहुँचा। मेदिनीराय ने ५००० राजपूतों के साथ किले का फाटक बन्द कर दिया। बाबर ने उसके सामने जागीर लेकर किला सौंप देने का प्रस्ताव किया, किन्तु उसने संधि करने से इनकार कर दिया। इसी समय पूर्व से खबर मिली कि अफगानों ने शाही सेना को हरा दिया है, जो लखनऊ छोडकर कन्नौज लौट आने के लिए विवश हुई थी। इस उद्वेगजनक समाचार को सुनकर बाबर घबराया नहीं और चन्देरी के घेरे को जारी

रक्खा। उसन किले पर चारो ओर से इस जोर का हमला किया कि राजपूतो ने निराश होकर जौहर किया और वीरतापूवक लडकर सब के सब वीर-गति को प्राप्त हुए और किले पर बाबर का अधिकार हो गया। इन्ही दिनो ३० जनवरी को महाराणा सागा का देहान्त हो गया और निकट भविष्य में राजपूत शक्ति के पुनरुत्थान की आशा जाती रही। बागी अफगान सरदार दबा दिये गये और सन १५२८ के अत तक बाबर ने शाति का उपभोग किया।

घाघरा का युद्ध (१५२६ ई०)—परन्तु अफगानो के उपद्रवो का अभी अत नही हुआ था। इब्राहीम लोदी के भाई महमूद लोदी ने बिहार को जीत लिया था और पूर्वी प्रदेशो के एक बडे भाग ने उसका साथ दिया था। बाबर ने इस विद्रोही के विरुद्ध एक सेना के साथ अपने पुत्र अस्करी को भेजा और पीछे से स्वय भी गया। यह सुनकर कि बाबर आ रहा ह, शत्रु तितर बितर हो गये। जब वह इलाहाबाद, चुनार और बनारस होते हुए बक्सर जा रहा था, बहुत से अफगान सरदारो ने उसकी वश्यता स्वीकार की। अपने प्रधान सिपाहियो द्वारा परित्यक्त होकर महमूद ने बगाल में शरण ली। बगाल के शासक नुसरतशाह ने बाबर से मेल दिखाया था, लेकिन उसकी सेनाओ ने भागे हुए अफगान बागी को शरण दी। बाबर बगाल की ओर बढा और अफगानो को ६ मई १५२९ को घाघरा की प्रसिद्ध लडाई में पराजित किया। बाबर की इस विजय से लोदियो की बची-खुची आशा जाती रही और कई प्रधान अफगान सरदारो ने बाबर की अधीनता स्वीकार कर ली। बाबर इस चढाई के फल से सन्तुष्ट होकर दिल्ली लौट आया।

बाबर के अतिम दिन—खानवा की लडाई के बाद हुमायूँ काबुल भेज दिया गया था, वहाँ कुछ उपद्रव की आशका थी। लेकिन उजबगो के विरुद्ध उसकी असफलता से बाबर को बहुत निराशा हुई और उसने हिन्दूकुश के पार के अपने साम्राज्य को सुव्यवस्थित करने के लिए स्वय जाने का निश्चय किया। वह लाहौर तक गया, लेकिन अपनी गिरती हुई तन्दुरुस्ती के कारण आगे बढने में असमर्थ रहा। बहुत दिन राजधानी से दूर रहने के कारण हुमायूँ का जी ऊब गया था। वह बदख्शाँ से चल दिया और जुलाई

उन १५२० में आगरे पहुँच गया। बाबर को चिन्ता हुई। उसने हुमायूँ से वापस जाने को कहा, परन्तु उसने अपनी असमर्थता प्रकट की। इसके बाद वह अपनी जागीर सम्भल को चला गया जहां कुछ दिनों बाद सन १५३० में गर्मी के दिनों में बुरी तरह बीमार हो गया। बाबर उसकी इस बीमारी से घबरा गया और उसकी जान बचाने के लिए अपनी जान देने को तयार हुआ। उसके अमीरों ने उससे ऐसा न करने की प्रार्थना की और कहा कि बदले में आगरे में मिले हुए बहुमूल्य हीरे की भेंट दी जा सकती थी लेकिन वह भेंट बाबर को अपने पुत्र की जान के बदले अपर्याप्त जान पड़ी। कहा जाता है कि वह हुमायूँ के बिस्तरे के चारों ओर तीन बार घूमा और ईश्वर से उसने प्रार्थना की कि उसके पुत्र की बीमारी उस पर चली आवे, और उसी वक्त वह कहने लगा, "ले लिया ले लिया।' मुसलमान इतिहास लेखक कहते हैं कि उसी वक्त से हुमायूँ अच्छा होने लगा और बाबर की तन्दुरुस्ती दिन पर दिन बिगड़ने लगी। कहा जाता है कि इसी समय मीर खलीफा ने जो बाबर का मंत्री था, हुमायूँ को राजगद्दी से वंचित करने के लिए षडयन्त्र रचा, परन्तु वह असफल हुआ।

अपना अंतिम समय निकट आया जानकर बाबर ने अपने सरदारों को अपने पास बुलाया और उनसे हुमायूँ को उसका उत्तराधिकारी स्वीकार करने और राज्य का प्रबन्ध करने में उसका साथ देने के लिए कहा। तब वह हुमायूँ की ओर फिरा और उससे बोला—"मैं तुम्हें, तुम्हारे भाइयों को और अपने परिजनों और सब प्रजा को खुदा को सौंपता हूँ और उसका भार तुम्हारे ऊपर छोड़ता हूँ।'

तीन दिन बाद यह बादशाह २६ दिसम्बर १५३० को इस संसार से चल बसा। पहले उसकी मृत्यु गुप्त रखी गई, किन्तु कुछ समय बाद एक हिन्दुस्तानी सरदार आरायश खाँ ने इस कार्य के अनौचित्य की ओर सबका ध्यान आकर्षित किया। उसने सम्मति दी कि इस बात की घोषणा करके कि बादशाह दरवेश हो गया है और अपना राज्य उसने अपने पुत्र हुमायूँ को दिया है, हुमायूँ को सिंहासनासीन कर देना चाहिए। इस सम्मति से सब लोग सहमत हुए और इसी के अनुसार कार्य हुआ। इस प्रकार

कि इस देश के खेतिहर और निम्नश्रेणी के लोग करीब करीब नगे रहते ह, और सिफ एक लँगोटी पहनते ह। वह इस देश का प्रधान गुण यहाँ सोने चाँदी की अधिकता बतलाता है और वर्षा-ऋतु में यहाँ के जलवायु को भी मनोरम बतलाता ह। वह यहा की वण-व्यवस्था के अनुसार श्रम विभाग या पेशो के पैतृक होने का भी उल्लेख करता ह। इस पुस्तक में बाबर लिखता है कि बेहरे से विहार तक की उसके भारतीय साम्राज्य की वार्षिक आय ५२ करोड रुपये थी जिसमे कुछ परगने राजाओ और रावो के अधिकार में थे जिनकी आय ८ करोड रुपये तक थी, ये लोग सदा दिल्ली की सलतनत के अधीन रहते थे। सम्भव ह कि ये अक अतिशयोक्तिपूर्ण हो।

बाबर की जीवनचर्या की पुस्तक—बाबर की जीवनचर्या की पुस्तक—"बाबरनामा" या "तुजुके बाबरी" जिसे उसने तुर्की भाषा में लिखा था, बडी महत्त्वपूर्ण पुस्तक ह। इसमे जिन व्यक्तियो के ससग में बाबर आया, उनका तथा उनके व्यक्तित्व का सच्चा चित्रण मिलता ह। इसमें उसके चित्ताकषक तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व, युद्ध प्रबन्ध में प्रदर्शित तीव्र बुद्धि तथा सैन्य-सचालन की कुशलता, उसके अपूव साहस और उदारता का बडा अच्छा परिचय मिलता है। एशिया के किसी दूसरे शासक ने अपने जीवन का ऐसा सजीव, मनोरजक और सत्यतापूर्ण विवरण नहीं लिखा ह। उसकी शैली सरल तथा प्रभावशाली ह तथा उसकी भाषा स्वाभाविक, ओजस्वी तथा सयत है। बाबर सच्चाई का बहुत ध्यान रखता था। वह लिखता ह "मने ये बातें अपना गुणगान करने के लिए नही लिखी ह, मने ठीक वही लिखा ह जसा हुआ ह। मने इस इतिहास में इस सिद्धात का पालन किया ह कि प्रत्येक विषय में सत्य प्रकाशित होना चाहिए और प्रत्येक घटना का मने ठीक वसे ही वणन किया ह जस वह घटित हुई ह।" इस विशेषता के कारण यह पुस्तक बडी मूल्यवान् हो गई ह। इस पुस्तक का बाबर की लिखी प्रति से हुमायूँ ने १५५३ में अनुवाद किया और फिर अब्दुर्रहीम खानखाना ने १५९० में फारसी में अनुवाद किया। अब कई योरपीय भाषाओ में इसके अनुवाद हो चुके ह।

बाबर का व्यक्तित्व—बचपन की विपत्तियां और साहस से बाबर का शरीर सुदृढ हो गया था और उसमें धय, सहनशक्ति, स्वावलम्बन के गुण आ गये थे। वह कडे से कडे जाडे मे घोडे पर सवार होकर दूर-दूर तक जगली जानवरा का शिकार किया करता था। वह बरफ-जमी नदिया मे नहाया करता था और रास्ते मे आनेवाली नदिया को तैरकर पार कर जाया करता था। उसके शरीर में इतना बल था कि दोनो ओर बगल मे एक एक आदमी को दबाकर वह बिना किसी असुविधा के निभय होकर किले की दीवार पर दौड सकता था। उसम अपूव आत्मविश्वास था। उसम ऐसी शक्ति थी कि वह प्रवल शत्रु के सामने निराश तथा हतोत्साह सेना मे आशा तथा स्फूर्ति का सचार कर देता था, जसा उसने खानवा के युद्ध के पहले किया था। उसने मध्य एशिया के तुर्कों और मगोलों की युद्ध की प्रथा को ग्रहण किया था, जिसे उसने कुछ परिवर्तित तथा परिष्कृत भी किया। उसने अपने तोपखाने को इतना उनत बना लिया था कि उसे युद्ध में हराना बडा कठिन था। वह बडे पसन्नचित्त और उत्साह-पूण स्वभाव का था। बडी से बडी विपत्ति तथा सकट म भी वह घबराता नही था तथा विषादयुक्त नही होता था। वह हताश होना ता जानता ही नही था।

बाबर का स्वभाव बडा ही उदार, दयालु तथा स्नेहमय था। वह अपने परिजनो तथा मित्रो के प्रति अपनी उदारता के लिए प्रसिद्ध था। वह अपने शत्रुओं के प्रति भी उदारता तथा दया का व्यवहार करता था। वह अपने सिपाहियो को जीते हुए प्रदेशा को उजाडने नही देता था और जो सिपाही इस आज्ञा का उल्लघन करते थे, उन्हें बडा कडा दड देता था। परिजनो तथा मित्रो के प्रति उसके हृदय में बडा स्नेह था। वह सदा अपने वचन का पालन करता था और शत्रुओं के साथ भी विश्वासघात नहीं करता था। उसे अकृतज्ञता से बडी घृणा थी।

बाबर शराब पीने में बहुत आनन्द लेता था और बहुत पीता भी था, और आनन्दोत्सवो के लिए शराब को आवश्यक समझता था। किन्तु वह इसे कभी अपने कर्त्तव्य-पालन म बाधक नहीं होने देता था। उसने कई बार शराब छोड देने का निश्चय किया, परन्तु यह निश्चय दो-तीन दिन

बाद ही टूट जाता था। उसने राजपूतों के साथ के बड़े युद्ध के पः
सीकरी में ईश्वर को साक्षी बनाकर शराब छोड देने की अतिम बार प्रति
की और उसे हमेशा के लिए छोड दिया।

धार्मिक विचार की दृष्टि से बाबर एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था। व
शियो को काफिर समझता था। हिन्दुओ का उल्लेख भी उसने घृणापूर्वक श
में किया है और जिहाद का एक धार्मिक काय बताया है। वह अपने विरो
हिन्दुओ के प्रति दया नही दिखलाता था, लेकिन केवल धार्मिक आधार प
अपने राज्य में किसी को कभी दड नही देता था। उसे ईश्वर म बडा विश्वा
था और अपनी सब सफलताओ को वह उसी की कृपा के कारण मानता था
वह युद्धो में सदा अपनी विजय के लिए ईश्वर से प्रार्थना किया करता था
उसे प्रार्थना में बहुत विश्वास था, जैसा उसके हुमायूँ के बदले अपना प्राण
देने के तरीके से भली भाति प्रदर्शित होता है।

बाबर प्राकृतिक दृश्या का बडा प्रमी था। झरने, सोते, झील, फूल, फल
पौधे आदि तथा अपनी जन्मभूमि के चरागाहो में उसके लिए बडा आकर्षण था।
उसकी कवित्व शक्ति बहुत कुछ इसी प्रकृति प्रेम के कारण थी। उसकी बुद्धि
प्रखर और कल्पना-शक्ति ऊँची थी। उसके दृश्यो के वणन और व्यक्तिया के चित्रण
बडे सजीव तथा सच्चे ह। वह एक सच्चा कवि था। उसने तुर्की भाषा में एक
"दीवान" भी लिखा था। उसकी कविताएँ उच्च भावपूण ह। उसकी शली
स्वाभाविक तथा आडबरहीन थी। वह तुर्की और फारसी दोनों भाषाएँ अच्छी
तरह और बडी सरलता से लिख सकता था। एक बार उसने हुमायूँ को असाव
धानी से लिखने के कारण डाँटा था और उसे सरल तथा अकृत्रिम शली का
अभ्यास करने की राय दी थी। तुजुक बाबरी की भाषा बडी प्रौढ है। यह
पुस्तक उसके शासन-काल का सबसे अधिक प्रामाणिक इतिहास ह।

बाबर निस्सदेह अपने काल का सवश्रेष्ठ मुसल्मान शासक था। यह सच
है कि वह कभी कभी बडा क्रूर हो जाता था, किन्तु ऐसे अवसर बहुत कम
होते थे। साधारणत मनुष्यो का वध कराने में उसे आनन्द नही आता था।
सभी बातों पर ध्यान रखते हुए कहा जा सकता ह कि वह एक योग्य तथा
महान् व्यक्ति था।

अध्याय १४

हुमायूँ और शेरशाह

प्रारम्भिक काल—हुमायूँ २९ दिसम्बर १५३० को आगरा म २३ वष की अवस्था में सिंहासनासीन हुआ। मरते समय बाबर ने हुमायूँ को भाइयो के साथ अच्छा वर्ताव करने का आदेश दिया था। उसने अपने पिता के वचन का इस प्रकार पालन किया कि उसे वहुत दु ख उठाना पडा। अपने भाइयो के कारण उसे सकट का सामना करना पडा। पहली बात जो उसने की, यह थी कि उसने राज्य का एक बहुत बडा हिस्सा अपने भाइयो में बाट दिया। कामराँ को काबुल और कधार की जागीरें मिली जिन पर पहले ही से उसका अधिकार था। मिर्जा अस्करी को सभल की जागीर मिली, और मिर्जा हिन्दाल को अलवर और मेवात की जागीरें दी गईं। अपने चचेरे भाई सुलेमान मिर्जा को हुमायूँ ने वदख्शाँ प्रदेश दिया।

गद्दी पर बैठने के कुछ ही काल बाद हुमायूँ को मालूम हो गया कि उसकी परिस्थिति सकटापन्न है। बाबर के समय राज्य सुव्यवस्थित नही हो सका था। उसे इस काय के लिए समय नही मिला था। देश की अधिकाश प्रजा हिंदू थी जो विजेता मुगलो को (जो वास्तव में तुक थ) बबर समझती थी। उसे उनके प्रति सहानुभूति नही थी। उसके भाई गद्दी पर अधिकार जमाना चाहते थे और पूर्व में अफगान सरदार अपनी खोई हुई शक्ति को फिर प्राप्त करना चाहते थे। उनकी सहायता प्राप्त करने के लिए इस समय महमूद लोदी विहार में घूम रहा था। शेर खाँ अलग अपनी शक्ति बढा रहा था और अफगानो का सगठन कर रहा था। गुजरात में बहादुरशाह ने अपनी शक्ति बहुत बढा ली थी और अब वह राजपूताने को जीतने की तैयारी कर रहा था। उसके पास विशाल सम्पत्ति थी जिसने शेर खाँ द्वारा सगठित मुगलो के विरुद्ध अफगानो के आन्दोलन को जो बाद में सफल हुआ, बहुत सहायता पहुँचाई।

कामराँ के साथ रियायत—बाबर के देहान्त के समय कामराँ काबुल में था। वह अपने प्रदेशो को अस्करी की देखभाल में छोडकर एक बडी सेना के साथ हिंदुस्तान की ओर बढा। उसने यह घोषित किया कि वह अपने भाई को बादशाहत पाने पर बधाई देने के लिए आ रहा है। हुमायूँ ने जो उसके मन्तव्य को खूब अच्छी तरह जानता था, एक दूत आगे भेजकर उससे यह कहलाया कि वह पहले से ही उसकी काबुल की जागीर में पेशावर और लमगान बढाने का निश्चय कर चुका है। लेकिन कामराँ इतने से सतुष्ट नही हुआ और आगे बढकर उसने समूचे पजाब पर अधिकार कर लिया। हुमायूँ ने जो युद्ध के लिए तयार नही था, उसके इस अधिकार को मान लिया और काबुल, कधार और पजाब उसी के पास रहने दिये। यह हुमायूँ की बडी भारी गलती थी, क्योंकि इससे उसके भारतीय साम्राज्य और अफगानिस्तान के पार के उन प्रदेशो के बीच में रुकावट आ गई, जहाँ से साम्राज्य के लडनेवाले सिपाही आते थे। अब कामराँ बडी आसानी से उसकी फौज में लडनेवाले अच्छे सिपाहियो की भर्ती को रोक सकता था। इसके अतिरिक्त उसे हिसार फिरोजा लेने देना एक बडी भारी गलती थी, क्योंकि वह कधार से दिल्ली आनेवाली नई फौजी सडक पर नाका था।

गुजरात का सुल्तान बहादुरशाह—हिन्दुस्तान में हुमायूँ के दो प्रबल शत्रु थे, एक बिहार में अफगानो का सरदार शेर खाँ और दूसरा गुजरात का सुल्तान बहादुरशाह। बहादुरशाह ने १५३१ ई० में मेवाड के राणा के साथ मालवा पर चढाई की क्योंकि वहा के सुल्तान ने बहादुरशाह के विद्रोही भाई को अपने यहाँ शरण दी थी। उसने मालवा के सुल्तान को कैद करके चम्पानेर के किले में भेज दिया और उसके राज्य को अपने राज्य में मिला लिया और खानदेश, अहमदनगर और बरार के शासकों से अपनी वश्यता स्वीकार कराई। पुर्तगालवालो ने भी उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। उसने एक बहुत बडी सेना लेकर १५३२ में चित्तौर पर चढ़ाई की, परन्तु राणा से रुपया लेकर लौट आया।

बहादुरशाह की शक्ति बढती जाती थी। इब्राहीम लोदी का चचा आलम खाँ, और दूसरे अफगान सरदार जिन्होने उसके दरबार में शरण ली थी

चगताइयों को हिंदुस्तान से बाहर निकालने में उसकी मदद चाहते थे। इसी समय एक विद्रोही सरदार मुहम्मदजमाँ भागकर बहादुरशाह के यहाँ आया। हुमायूँ ने उसे गुजरात से निकाल देने के लिए लिखा। बहादुरशाह ने इस पर ध्यान न दिया और हुमायूँ से शत्रुता ठान ली। इस पर हुमायूँ ने उस पर चढ़ाई कर दी।

इस समय बहादुरशाह ने चित्तौर पर दूसरी चढ़ाई की थी। हुमायूँ उसके विरुद्ध चित्तौर की ओर बढ़ा। इस पर बहादुरशाह ने उसको लिखा कि इस समय मैं जिहाद कर रहा हूँ, काफिरों पर मेरी विजय होने में आपको बाधा न डालनी चाहिए। इस पर हुमायूँ ग्वालियर में ही रुक गया और बहादुरशाह ने चित्तौर के किले पर अधिकार कर लिया। अब हुमायूँ बहादुरशाह पर चढ़ाई करने के लिए चला। सुल्तान भी उसका मुकाबला करने के लिए बढ़ा, परन्तु हारकर भाग गया और बहुत सा लूट का माल मुगलों के हाथ लगा। हुमायूँ ने सुल्तान का पीछा किया और वह माडू और माडू से चम्पानेर भागा और फिर वहाँ से ड्यू टापू में चला गया और वहाँ पुर्तगालवालों से संधि की बातें करने लगा। हुमायूँ ने चम्पानेर के किले का घेरा डाला और चार महीने के बाद उसे जीत लिया। इस सफलता के बाद मुगल नाच-रंग में समय व्यतीत करने लगे। बहादुरशाह ने अच्छा मौका देखकर अपने सेनापति इमादुल-मुल्क को भेजा। उसने अहमदाबाद ले लिया और एक बड़ी सेना इकट्ठी कर ली। पुर्तगालवालों ने भी बहादुरशाह को उससे अपनी बस्ती की किलेबन्दी की आज्ञा पाकर मदद देने का वचन दिया।

अब हुमायूँ की निद्रा टूटी और वह इमादुल्मुल्क के विरुद्ध बढ़ा और उसे पराजित किया। उसने गुजरात को अपने भाई मिर्जा अस्करी के हवाले किया। मिर्जा ने बड़ी अयोग्यता और मूर्खता का परिचय दिया। उसने देश में सुव्यवस्था तथा शान्ति स्थापित करने के लिए कुछ भी नहीं किया और अपने अफसरों से झगड़ा कर बैठा। बहादुरशाह ने इस सुअवसर से लाभ उठाया। उसने अपनी शक्ति एकत्रित करके धीरे धीरे सारे गुजरात प्रदेश पर अधिकार जमा लिया। परन्तु उसकी जिन्दगी के दिन खतम हो गये थे, सन् १५३७ में जब पुर्तगालवालों के गवर्नर ने उसे मन्त्रणा के लिए बुलाया

उनके साथ झगडा हो गया जिसमें वह समुद्र मे डूब गया । हुमायूँ जो माडू में था, आगरे लौट गया और कुछ ही समय बाद मालवा भी उसके हाथ से निकल गया ।

इस प्रकार की अकमण्यता और आरामतलबी से उत्तर में उसकी प्रतिष्ठा जाती रही । पूव में अफगानो ने धीरे धीरे अपनी शक्ति बढा ली और शेर खाँ के नेतृत्व में मुगलो के साथ अपनी शक्ति की परीक्षा करने की तयारी करने लगे ।

शेर खाँ का प्रारभिक जीवन—शेर खा का बचपन का नाम फरीद खा था। उसका बाप हमन बिहार में सहसराम का जागीरदार था। उसके जन्म का ठीक समय मालूम नही ह, लेकिन अनुमान किया जाता है कि वह १४८६ ई० के लगभग पैदा हुआ था। फरीद का पिता उसकी सौतेली मा के वश म था। इसलिए उसके लडकपन में उसने फरीद पर ध्यान नही दिया। घर के दुव्यवहार से तग आकर वह जौनपुर चला गया और वहा विद्याध्ययन करने लगा। अपनी कुशाग्र बुद्धि के कारण थोडे ही काल में वह अरबी और फारसी भाषाओ का अच्छा विद्वान् हो गया और उसने साहित्य तथा इतिहास का अच्छा अध्ययन किया। उसकी योग्यता से प्रभावित होकर बिहार के सूबेदार जमाल खाँ ने उसके पिता को उसके साथ अच्छा बर्ताव करने का आदेश किया।

मनस्वी हमन के पिता ने उसे अपनी जागीर का प्रबध करने के लिए नियुक्त किया। उसने जागीर का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया, किन्तु अपनी सौतेली माँ के द्वेष के कारण फिर घर छोडकर चला गया। उसने बिहार के सूबेदार दरिया खाँ लोहानी के पुत्र बहार खाँ के यहा नौकरी की, जो उसकी योग्यता से बहुत प्रभावित हुआ। एक बार जब फरीद खाँ बहार खाँ के साथ शिकार खेलने के लिए गया था, उसने तलवार के एक ही वार से शेर को मार डाला। उसकी बहादुरी से प्रसन्न होकर बहार खाँ ने उसे शेर खाँ की उपाधि दी। कुछ ही दिनो बाद शेर खाँ की बहार खाँ से अनबन हो गई और वह बाबर के यहाँ आगरा चला गया। जब बाबर पूव के अफगानो को वश में लाने लगा तो शेर खाँ ने उसकी बहुत सहायता की जिससे प्रसन्न होकर बाबर ने उसे उसके पिता की जागीर दे दी।

बहार खाँ के मरने के बाद बाबर ने उसके पुत्र जलाल खाँ को उसके प्रदेश दे दिये, लेकिन वह अभी नाबालिग था और शेर खा उसके प्रदेशों का प्रबन्ध करता था। जब जलाल खाँ बालिग हुआ तो उसे शेर खा के हाथो की कठपुतली बने रहना पसन्द नही आया। उसके हाथो से छुट्टी पाने के लिए उसने बगाल के शासक की सहायता चाही। शेर खाँ ने उन दोनो की सेनाओं को हराकर आसानी से बिहार पर अधिकार जमा लिया।

शेर खा ने अब बगाल की ओर अपनी नजर फेरी। उसने बगाल पर हमला किया और वहा की सेनाओ को आसानी से हराते हुए १५३६ की फरवरी के अन्त तक गौड के किले तक पहुँच गया। बगाल के शासक महमूद ने उसका सामना नही किया, बल्कि उसे घूस देकर लौटा दिया। दूसर साल उसने फिर गौड पर हमला किया और उसे आसानी से जीत लिया। जब हुमायूँ ने यह खबर सुनी तो सेना लेकर वह गौड की तरफ बढा। चालाक शेर खा उसके रास्ते से हटकर बिहार की तरफ लौट आया। मुगलो ने गौड ले लिया और उसका नाम जन्नताबाद रक्खा। शेर खाँ बिहार में और जौनपुर में शाही इलाको को लेने की कोशिश करने लगा और उसने कन्नौज तक के देश को लूट लिया।

चौसा का युद्ध १५३९ ई०—जब हुमायूँ को शेर खाँ की इन कारवाइयो का हाल मालूम हुआ तो वह गौड से गगा तट का पकडकर बडी तेजी से चला और मुगेर म गगा को पार किया। अब उसे अपनी भयकर स्थिति का ज्ञान हुआ और उसने शेर खा से सधि करने का उद्योग किया, लेकिन शेर खाँ इसके लिए तयार न हुआ। अफगान चारो ओर से बहुत बडी सख्या म शेर खा के पास इकट्ठ हुए और उन्होने बक्सर के पास चौसा नामक स्थान पर मुगलो को पराजित किया। हुमायूँ भागकर प्राण बचाने के लिए घोडे पर चढा हुआ गगा मे कूद पडा। निजाम खाँ नाम के भिश्ती ने उसे डूबने से बचाया। इस अहसान के बदले उसने भिश्ती को दो दिन के लिए गद्दी पर बैठने दिया और सरदारो स उसका मुजरा कराया। चौसा के युद्ध के बाद शेर खाँ ने शेरशाह की उपाधि धारण की, अपने नाम के सिक्के ढलवाये और फतवा पढवाया।

कन्नौज का युद्ध मई १५४०—हुमायूँ को अब मालूम हो गया कि शेर-

शाह बडा शक्तिशाली है। इसलिए उसका सामना करने के लिए तैयारी करने लगा। उसने अपने भाइयो को मिलाने का उद्योग किया, किन्तु वे मदद करने के बदले उसकी तैयारी में रुकावटें डालने लगे। भाइयो की इस फूट से उत्साहित होकर शेरशाह अपने अफगानो के साथ आगे बढा। हुमायूँ भी उसका मुकाबला करने के लिए बढा। दोनो सेनाओं ने कन्नौज के पास गगा के किनारे पडाव डाले। दोनो सेनाएँ जिनकी सख्या तारीख रशीदी के अनुसार २,००,००० थी, एक महीने तक पडी रही। हुमायूँ ने देखा कि उसकी सेना के सिपाही धीरे धीरे चले जा रहे है। इसलिए उसने युद्ध प्रारम्भ करना ही ठीक समझा। उसके सिपाही भी लगकर नही लडे और उन्हे अफगानो ने बडी आसानी से हरा दिया। अफगानो ने भागती हुई मुगल सेना का नदी की ओर पीछा किया जिससे उसकी बडी क्षति हुई और बहुत से मुगल डूब गये। इस युद्ध के बाद हुमायूँ को गद्दी छोडकर भागना पडा और दिल्ली की सल्तनत शेरशाह के अधिकार म चली गई।

शेरशाह की अन्य विजय—पजाब में हुमायूँ का पीछा करते हुए शेरशाह का ध्यान सतलज और सिंध के बीच के गक्खरो (Gakkars) के पहाडी प्रदेश की ओर गया। इस भू-खड का अधिकार सैनिक दृष्टि से बडा महत्वपूर्ण था। उत्तर-पश्चिम से चढाई करनेवाला शत्रु इस रास्ते से आकर पजाब पर अधिकार जमा सकता था। शेरशाह ने इस प्रदेश को उजाड डाला, परन्तु इसी समय बगाल के सूबेदार के बलवे के कारण उसे वहा से हटना पडा। लेकिन वह अपने योग्य सनापतियो को ५०,००० सनिको के गक्खरो के प्रदेश को अधिकृत करने के लिए छोड गया।

इसके बाद मालवा, रायसेन और सिंध जीतने के पश्चात् शेरशाह ने जोधपुर के शासक, मालदेव की ओर ध्यान दिया। वह नही चाहता था कि दिल्ली के इतने निकट एक शक्तिशाली राज्य रहे। एक बडी सेना लेकर वह मारवाड की ओर चला, और मेडते तक बढ गया जो अजमेर से ४२ मील पश्चिम की ओर है। राजपूत भी बहुत बडी सख्या में इकट्ठे हुए। वे इतनी अच्छी तरह् सगठित थे कि शेरशाह को अपनी विजय में सदेह होने लगा। इसलिए उसने धोखे का सहारा लिया। उसने मालदेव के सरदारो की ओर

में एक जाली पत्र इस आशय का लिखवाया—"बादशाह के मन में किसी प्रकार की चिन्ता या सन्देह न होने दो। युद्ध में मालदेव को पकड़कर हम सरकार हुजूर पास लायेंगे।" और उसे एक तरीके से बन्द करवाकर माल-देव के खेमे के पास रखवा दिया। जब इन पत्रों की बातें मालदेव को मालूम हुईं तो उसे अपने सरदारों पर विश्वासघात का सन्देह हो गया। उसने रक्षा के लिए घबराकर झटपट पीछे हट जाने का निश्चय कर लिया। उसके सरदार अपने विश्वासपात्र होने का विश्वास दिलाते ही रह गये, लेकिन उसने उन पर कुछ ध्यान नहीं दिया। इससे राजपूतों के मन को बड़ी ठेस लगी और उनमें कुछ सरदार इस कलंक को सहन न कर सके। वे अपने प्राणों का मोह छोड़कर शत्रु पर टूट पड़े और बड़ी वीरता से लड़ते हुए बहुत से अफगानों को काटकर वीरगति को प्राप्त हुए। राजपूतों की इस अपूर्व वीरता से शेरशाह बहुत प्रभावित हुआ और कहने लगा कि मैं एक मुट्ठी बाजरे के लिए हिन्दुस्तान की सल्तनत करीब-करीब खो चुका था।

इस विजय के बाद शेरशाह ने आबू को अधिकृत किया और वहाँ से फिर मारवाड़ की ओर बढ़ा। मालदेव जोधपुर से भागकर सिवाना के किले में चला गया। अब्बास खाँ अपनी पुस्तक "तारीख शेरशाही" में लिखता है कि अजमेर लेने के बाद शेरशाह चित्तौर की ओर बढ़ा। राणा ने उसे किला सौंप दिया जिसे वह अहमद शेरवानी के हवाले करके लौट गया। लेकिन चित्तौर पर शेरशाह का अधिकार सही नहीं जान पड़ता। शेरशाह की आखिरी चढ़ाई कालिंजर के राजा पर हुई। राजपूत किले की दीवार पर से घेरा डालनेवालों पर बड़े बड़े पत्थर लुढ़काते थे जिससे किले को लेना बहुत मुश्किल हो गया। लेकिन अंत में जब किला फतह होने के करीब था, बारूद के भड़कने से शेरशाह अकस्मात् जल गया। किला फतह हुआ और अफगानों ने उस पर अधिकार जमा लिया। लेकिन शेरशाह की हालत खराब होती गई और वह २२ मई १५४५ को संसार से चल बसा।

शेरशाह के एकतन्त्र शासन का स्वरूप—शेरशाह का शासन एकतन्त्रीय होते हुए भी बड़ी योग्यता और बुद्धिमानी से संचालित होता था। वह राज्य में शान्ति तथा सुप्रबन्ध स्थापित करके ही सन्तुष्ट नहीं हुआ, उसने एक नई

शासन प्रणाली का संगठन भी किया। उसने उलमा की राय न मानकर हिन्दुओं के प्रति सहिष्णुता की नीति ग्रहण की। वह शासन की छोटी से छोटी बातो की स्वय देख भाल करता था, और प्रजा की भलाई का सदा ध्यान रखता था। वह अपने अफसरों पर बडी कडी नजर रखता था और नियमोल्लघन करने पर उन्हें कडा दड देता था। अफगान उसकी योग्यता को पहचानते थे और उसे अपनी जाति का रक्षक मानते थे। इसी कारण वे उसका सम्मान करते थे और सदा उसका साथ देते थे।

शासन—सम्पूर्ण राज्य ४७ भागों में विभक्त था जिनमें से हर एक में बहुत से परगने थे। अब्बास खा लिखता है कि कुल १,१३,००० परगने थे, लेकिन यह सख्या परगनो की नही, मौजा की जान पडती है। हर एक परगने में एक शिकदार, एक अमीन, एक खजाची, एक मुन्सिफ और हिसाब लिखने के लिए एक हिन्दी लेखक और एक फारसी लेखक होता था। इन सरकारी कर्मचारियो के अतिरिक्त पटवारी, चौधरी और मुकद्दम (मुखिया) होते थे। शिकदार एक फौजी अफसर था और अमीन एक मुल्की इतजाम करनेवाला अफसर था, जिसका खास काम लगान तय करना और वसूल करना था। शिकदार का काम शाही फरमानो को अमल में लाना और जरूरत पडने पर अमीन को फौजी मदद देना था। अमीन परगने के मुल्की शासन का प्रधान अफसर था और अपने कामों के लिए केन्द्रीय सरकार के सम्मुख उत्तरदायी था। कई परगनों की एक सरकार होती थी। हर एक परगने में एक शिकदार शिकदारान और एक मुसिफ-मुसिफान होते थ, जो अपने हल्के के परगना के अफसरों के काम का निरीक्षण करते थे। उनका काम आमिलो और प्रजा दोना पर नजर रखना, परगनों के सरहदी झगडो का फसला करना और प्रजा के विद्रोहात्मक कार्यों का दमन करना था। आमिलो का अक्सर एक दो बरस के बाद एक जगह से दूसरी पर तबादला कर दिया जाता था, लेकिन उनमें से जो विश्वासपात्र और अनुभवी होते थे, उन पर खास रियायत की जाती थी।

लगान—शेरशाह के पहले खेतों की पैमाइश नहीं होती थी। शेरशाह ने राज्य की सारी जमीन की ठीक ठीक पैमाइश करवाई। उसके समय में काश्तकारो से उपज का एक तिहाई सरकारी लगान के रूप में लिया जाता

था। किसान लगान में या तो गल्ला ही देते थे या रुपया। लगान मुखियों द्वारा वसूल किया जाता था, जिन्हें उपज का एक हिस्सा मिलता था, लेकिन कहीं कहीं प्रजा सीधे खजाने में लगान जमा करती थी। शेरशाह काश्तकारों की भलाई का बहुत ध्यान रखता था। उसका हुक्म था कि कर्मचारी लगान तय करते वक्त नर्मी दिखलावें, परन्तु वसूल करते समय किसी तरह की रिआयत न करें। सूखा पड़ने के कारण या और किसी कारण फसल खराब होने पर उनकी सहायता करने के लिए काश्तकारों को रुपया उधार दिया जाता था।

सेना—शेरशाह अलाउद्दीन के सैनिक संगठन से बहुत प्रभावित हुआ और उसने उसके प्रधान सिद्धान्तों को ग्रहण किया। वह सेना को वस्तुतः सुसंगठित तथा सशक्त बनाना चाहता था। उसके समय में मनसबदारी की प्रणाली नहीं थी। सेना देश के विभिन्न भागों में विभक्त रहती थी और छावनियों में रखी जाती थी जिनमें दिल्ली और रोहतास मुख्य थे। हर एक छावनी में रहनेवाली सेना फौज कहलाती थी, जो एक फौजदार के अधीन रहती थी। अफगानों में फिरकों का भेद भाव बड़ा प्रबल था इसलिए प्रसिद्ध फिरकों के सरदारों के पास अधिक सेना रहने दी जाती थी। स्वयं बादशाह के अधीन एक बहुत बड़ी सेना थी, जिसमें १,५०,००० अश्वारोही और २५,००० पैदल सुशिक्षित सैनिक थे जो बन्दूकों और बाणों से सुसज्जित रहते थे। अश्वारोही सेना बड़ी सुशिक्षित तथा सुसंगठित थी। शेरशाह अपने सैनिकों के साथ बड़ी दयालुता का बर्ताव करता था, परन्तु सेना के नियम बड़े कड़े थे। कूच के वक्त सिपाहियों को काश्तकारों और उनकी फसल को नुकसान पहुँचाने की सख्त मुमानियत थी। यदि किसी काश्तकार की फसल नष्ट होती, तो सरकार उसकी क्षति-पूर्ति करती थी और नुकसान पहुँचानेवालों को सख्त सजा दी जाती थी। जब बादशाह फौज के साथ रहता था तो वह रास्ते के दायें-बायें देखता जाता था और यदि किसी सैनिक को फसल को नुकसान पहुँचाते देखता, तो अपने हाथ से अपराधी के कान काट लेता था और अनाज के पौधों को उसके गले में लटकाकर उसे पड़ाव में चारों ओर घुमवाता था। यदि कभी सड़क के तंग होने से फसल का नुकसान पहुँचता था, तो वह उसका मूल्य निर्धारित करने

के लिए अफसरो को भेजता था और रुपये देकर किसानो की क्षति-पूर्ति करता था।

न्याय—शेरशाह बडा और छोटा के साथ एक समान निष्पक्ष न्याय करता था। कोई मनुष्य अपराध करके अपने उच्च वश या ऊँचे ओहदे के कारण दड से नहीं बच सकता था। दारुल अदालत नाम की कचहरिया स्थापित थी जिनमें काजी और मीर अदल मुकदमा का फैसला करते थे। हिन्दू सम्भवत विरासत आदि के झगडे पचायता मे निपटाते थे। फौजदारी कानून बडा सख्त था, बडे निदय तथा क्रूर दण्ड दिये जाते थे जिनका उद्देश्य अपराधिया का सुधार नही, बल्कि अपराधो का भयकर दुष्परिणाम दिखलाकर लोगा को उनसे विमुख करना था। चोरियो और डकतियो के लिए भी प्राण-दड दिया जाता था।

शाति रक्षा—अपराधो के निवारण के लिए शेरशाह ने स्थानीय अधिकारियो के दायित्व का नियम ग्रहण किया था। यदि किसी आमिल या शिकदार के हल्के में कोई चोरी या डकैती होती थी और अपराधी नही पकडे जाते थे, तो मुखिया तलब किये जाते थे और उनसे क्षति पूर्ति कराई जाती थी। जब कोई खून होता था और खूनी का पता नही लगता था तब भी मुखिया पकडे जाते थे और उनसे खूनी को हाजिर करने को कहा जाता था। यदि वे उसे हाजिर नही कर पाते थे या उनका पता नही बतला सकते थे, तो उन्हे ही प्राण दड दिया जाता था। यह नियम बडा ही सफल सिद्ध हुआ। इससे रिआया का 'जान व माल' प्राय पूर्ण रूप से सुरक्षित रहता था। राह चलनेवाले निश्चिन्त होकर सोते थे और जमीदार लोग बादशाह के डर से उनकी और उनके धन की रक्षा करते थे। साधारण पुलिस के अतिरिक्त मुहतसिब नियुक्त थे जिनका कर्तव्य शराबखोरी और दुराचार आदि पापा का निवारण और धार्मिक नियमो का पालन कराना था। बादशाह ने बहुत से गुप्तचर नियुक्त कर रखे थे, जो उसे राज्य में होनेवाली सब बाता की खबर देते थे।

सड़कें—मध्य युग में सडकें बहुत कम थी। शेरशाह पहला मुसलमान शासक था जिसने सबके सुभीते के लिए बडे पमाने पर सडकें बनवाइ। सबसे लम्बी सडक जो सोनारगाँव से सिन्ध नदी के किनारे तक जाती थी १५००

कोस लम्बी थी। अन्य प्रसिद्ध सडको में एक आगरा से बुरहानपुर जाती थी, एक दूसरी आगरे से बियाना होती हुई मारवाड की सरहद तक और फिर चित्तौर के किले तक जाती थी और एक सडक लाहौर से मुल्तान जाती थी। सडको के दोनो किनारो पर पेड लगाये गये थे और हर दो कोस के फासले पर सराये बनी हुई थी, जहा हिन्दू और मुसलमानो के ठहरने के लिए अलग अलग जगह थी। हिन्दुओ के सुभीते के लिए ब्राह्मण नौकर रखे गये थे जो उन्हे पानी देते थे और उनका भोजन बनाते थे। सरायो का खर्च चलाने के लिए राज्य से गाव मिले थे। हर एक सराय मे एक कुआँ, एक मस्जिद और कुछ कर्मचारी रहते थे जिनमे अक्सर एक इमाम, एक मुअज्जिन और कुछ पानी देनेवाले आदमी होते थे, इन लोगो की तनख्वाह सराय के लिए मिले हुए गाँव की आमदनी से दी जाती थी। ये सरायें डाक की चौकियो का भी काम देती थी।

धर्म कार्य मे दान—शेरशाह बडी उदारता से धार्मिक तथा शिक्षा-सबधी कार्यों के लिए जायदाद का या धन का दान देता था और इस बात का ध्यान रखता था कि उनका दुरुपयोग न हो। वह अकसर कहा करता था कि बादशाहो का यह धर्म है कि इमामो और धार्मिक पुरुषो को आर्थिक सहायता पहुँचाएँ, क्योकि उन पर राज्य की खुशहाली और समृद्धि अवलम्बित रहती है। वह कला और विद्या को प्रोत्साहित करता था और उसका यह सिद्धात था कि दीन-दुखियो की सहायता करना बादशाहो का कर्त्तव्य है। उसका कहना था कि प्रत्येक योग्य मनुष्य को राज्य से दान या सहायता मिलनी चाहिए और किसी को इतनी अधिक सपत्ति नहीं मिलनी चाहिए कि उसका दुरुपयोग हो। वह मस्जिदो और मदरसो के चलाने का खर्च देता था और शिक्षको और विद्यार्थियो को वजीफे देता था। राज्य की ओर से कई एक भोजनालय खुले थे जिनमें दीन-दुखियो के लिए मुफ्त भोजन बँटता था। इन भोजनालयो का वार्षिक व्यय उस समय के हिसाब से जब रुपये की कीमत बहुत अधिक थी १,८०,००० अशर्फिया था। बादशाह अफगानो पर खासकर अपने फिरके के आदमियो पर उनकी विशेष पात्रता का विचार न करते हुए बडी कृपा करता था।

शेरशाह का चरित्र—शेरशाह मध्यकालीन भारत के बडे शासको में से एक था। वह कहा करता था कि बडो को सदा कार्य में सलग्न रहना ही

देता है। वह प्रजा की भलाई के लिए बडा कडा परिश्रम करता था और राज्य के विभिन्न विभागो के छोटे-बडे सभी कार्यों का बडी सावधानी और परिश्रम से निरीक्षण करता था। वह प्रतिदिन सूर्योदय के पहले उठता था और नहा धोकर नमाज पढता था। फिर वह चार घटे तक राज्य-काय करता था और सेना के घोडो के दागे जाने और उनके विवरण के चिट्ठी की देख भाल करता था। इसके बाद वह भोजन करके कुछ देर विश्राम करता था और फिर राज काय में लग जाता था। उसने सध्या का समय कुरान के पाठ के लिए और नमाज पढने के लिए अलग कर दिया था। उसने शासन के प्रत्येक विभाग के मत्री के पास सभी बातों का विवरण भेजने का हुक्म दे रखा था। उसे घूसखोरी और अन्याय से बडी घृणा थी, और वह घूसखोरो को बडा कडा दड देता था। वह किसानो की भलाई का बहुत ध्यान रखता था और फसल को नुकसान पहुँचानेवालो को भी बडा कडा दड देता था। दीन-दुखियो पर वह विशेष दया करता था। भूखों के लिए उसके भोजनागार दिन रात खुले रहते थे।

शेरशाह युद्धकला में बडा कुशल था। मुगलो के साथ के युद्ध में उसने अपने युद्ध-कौशल और सैन्य-सचालन की उत्कृष्टता सिद्ध कर दी। युद्ध में वह अपने सैनिको को लूट-पाट नही मचाने देता था। शत्रुओ के साथ वह कभी कभी धोखे और विश्वासघात का बताव करता था। उसका सिद्धान्त था कि शत्रु को किसी प्रकार जीतना चाहिए।

एक कट्टर सुन्नी होते हुए भी वह दूसरे धर्मों के माननेवालो के साथ अच्छा बताव करता था। उसने जजिया तो नहीं उठाया, किन्तु हिन्दुओ के साथ न्याय और सहिष्णुता का पालन किया। अपनी हिन्दू प्रजा में विद्या के प्रचार के लिए वह उन्हें रुपया देता था। उसके समय में हिन्दू शासन प्रबन्ध में काफी भाग लेते थे। इन कारणो से सभी धर्मों की प्रजा उसे चाहती थी।

शेरशाह धार्मिक सहिष्णुता की नीति और शासन-सम्बन्धी सुधारो में अकबर का पथप्रदशक था। उसकी आरम्भ की हुई बातो को अकबर ने विकसित तथा पूर्ण किया। अकबर के समय में टोडरमल और दूसरे अफसरों ने उसकी धरती की पैमाइश की और लगान के तरीके का सुधार किया और

शेरशाह का मकबरा

आवश्यकतानुसार कुछ सुधार करके उन्हें पूर्ण कर लिया। उसके शासन-संबंधी सुधारों और धार्मिक सहिष्णुता की नीति से उसकी दूरदर्शिता सिद्ध होती है।

हुमायूँ का पलायन—कन्नौज के युद्ध के बाद गंगा पार करके हुमायूँ आगरा गया और वहां से अपना परिवार और खजाना साथ लेकर दिल्ली पहुँचा, लेकिन उसे हस्तगत करना असंभव देखकर सरहिन्द की ओर अग्रसर हुआ। उसके भाइयों से उसे कुछ मदद नहीं मिली, तब वह सिंध की ओर बढ़ा और भक्कर पर घेरा डाला, परन्तु वहां भी दुर्भाग्य ने उसका पीछा न छोड़ा। उन्हीं दिनों उसने शेखअली अकबर की लड़की हमीदा से शादी की जो आगे चलकर अकबर की मां हुई। अपने भाइयों के बर्ताव से निराश होकर उसने जोधपुर नरेश से मालदेव की सहायता चाही जिसने उसे २०,००० राजपूतों की सेना से मदद करने का लिखा था। मालदेव ने अपने वचन का पालन नहीं किया, और जब हुमायूँ उसके राज्य में पहुँचा तो उसने उसका स्वागत नहीं किया। उसके मन की बात जानने के लिए जो गुप्तचर भेजे गये थे, उन्होंने खबर दी कि वह विश्वासघात करना चाहता था। हुमायूँ के एक पुराने पुस्तकाध्यक्ष ने जो मालदेव के यहां नौकरी करता था कहला भेजा कि "आप जहाँ कहीं हैं वहीं से लौट जाइए, क्योंकि मालदेव आपको बंदी बनाने का इरादा रखता है। उसकी बातों पर विश्वास न कीजिए।" मालदेव के इरादे में इस परिवर्तन का कारण शेरशाह का भय और हुमायूँ के लिए किसी प्रकार की आशा का न होना था। इसके बाद हुमायूँ ने अपने साथियों समेत अमरकोट में शरण ली। राणा प्रसाद ने उसका स्वागत किया और उसे भक्कर और थट्टा जीतने में सहायता देने की प्रतिज्ञा की। इसी रेगिस्तानी किले में २३ नवम्बर सन् १५४२ को अकबर का जन्म हुआ।

इस शुभ घटना के बाद जल्द ही दस हजार आदमियों के साथ हुमायूँ भक्कर की ओर बढ़ा। परन्तु एक रात को उसके मुसलमान सरदारों से झगड़ा हो जाने के कारण राणा के आदमी लौट गये। भक्कर के सरदार ने जो युद्ध से तंग आ गया था, हुमायूँ के कंधार तक पहुँचने का सामान देकर उसके साथ संधि कर ली। कामराँ समूचे अफगानिस्तान का स्वतंत्र शासक बन गया था। उसके भाई हिन्दाल और अस्करी उसकी अधीनता स्वीकार कर चुके

थे और उससे बहुत डरते थे। हुमायूँ को अपने भाइयों से कुछ मदद नहीं मिली और उसने अपने एक वरस के लड़के अकबर को कन्धार में छोड़कर फारस जाने का इरादा किया जहाँ के शाह से उसे मदद पाने की आशा थी।

हुमायूँ फारस में—फारस के शाह तहमास्प ने, जो इस समय २७ वर्ष का युवक था, हुमायूँ का बड़े आदर से स्वागत किया। परन्तु वह हुमायूँ को शिया बनाना चाहता था। पहले तो वह अपने सुन्नी धर्म पर दृढ़ रहा, लेकिन जब शाह उसे शिया बनाने के लिए बहुत कष्ट देने लगा तो उसके सलाहकारों ने उसे अपना शिया होना प्रकट करके शाह से सन्धि कर लेने की राय दी। एक सन्धि हुई जिसमें शाह ने हुमायूँ को बुखारा, काबुल और कन्धार जीतने में एक सेना देकर इस शर्त पर मदद देना स्वीकार किया कि सफलता होने पर कन्धार उसे समर्पित कर दिया जाय। हुमायूँ ने अपनी इच्छा के विरुद्ध शिया धर्म स्वीकार किया और शाह के नाम से खुतबा पढ़े जाने की शर्तों को स्वीकार किया। शाह से १४०० आदमियों की एक सेना की सहायता पाकर हुमायूँ ने कामरां के राज्य पर चढ़ाई की।

काबुल और कंधार की विजय—मार्च १५४५ में हुमायूँ कंधार पहुँचा और एक घेरा डालने के बाद उसे ले लिया। कंधार हाथ में आने पर हुमायूँ की स्थिति बहुत कुछ सुधर गई और अपनी शक्तियों का संग्रह करके उसने काबुल पर चढ़ाई कर दी। कामरां हार गया और काबुल उसके अधिकार में आ गया। अकबर जिसे कामरां ने एक बार किले की दीवारों पर तीरों और गोलियों की बौछार के सामने कर दिया था, अपने पिता को मिल गया। कामरां ने अपने खोये हुए राज्य को प्राप्त करने की कोशिश की, परन्तु फिर हारकर भाग गया, और मिर्जा हिन्दाल एक रात की मुठभेड़ में मारा गया। कामरां भागकर शेरशाह के उत्तराधिकारी सलीमशाह सूर के दरबार में गया जिसके दुर्व्यवहार के कारण उसने घक्खड़ों के यहाँ शरण ली। घक्खड़ों के सरदार ने उसे हुमायूँ को सौंप दिया। उसने उसे हानि पहुँचाने में असमर्थ बनाने के लिए उसकी आँखें निकलवा लीं। इसके बाद कामरां मक्का चला गया। मिर्जा अस्करी भी जो अपनी चालों से बाज नहीं आता था कैद हो गया, लेकिन हुमायूँ ने

मक्का जाने का हुक्म द दिया। उत्तर-पश्चिम मे अपने प्रतिद्वन्द्वियों से मुक्त होकर हुमायूँ फिर से हिंदुस्तान जीतने की तैयारी करने लगा।

हुमायूँ का लौटना—शेरशाह के बाद सलीमशाह सूर दिल्ली की गद्दी पर बैठा। अफगान सरदार उसके वश में नहीं थे, इसलिए अपनी स्थिति को दृढ करने के लिए वह उनके साथ बडी सख्ती करने लगा। पहले मालवा का सूबेदार शुजाअत खा उसकी कोपाग्नि में पडा। उसने अपने सूबे में बडी योग्यता से सुव्यवस्था स्थापित करके बडा धन सचय किया था। जब उसे बादशाह के क्रोध का पता लगा तो आदरपूर्वक उसकी वश्यता स्वीकार करके वह उसके क्रोध से बच गया। लेकिन पजाब के सूबेदार आजम हुमायूँ ने ऐसी दूरदर्शिता नही दिखलाई। जब बादशाह ने उसे बुलाया तो खुद न जाकर उसने अपना एक प्रतिनिधि भेज दिया। इस पर वह बहुत नाराज हुआ। कडे दड की आशका मे आजम खुल्लमखुल्ला विद्रोही हो गया, लेकिन शाही फौज ने अम्बाला में उसे परास्त कर दिया। वह फिर शक्ति सचय करके लडा लेकिन हार गया। अन्त में वह काश्मीर भाग गया और वहा कुछ पहाडियों ने उसे गोली से मार डाला।

सलीम ने अपनी दमन-नीति जारी रखी। उसने सरदारों की शक्ति का ह्रास करने के लिए नये कायदे बनाये और एक शक्तिशाली सेना रखी। उसने उनकी शक्ति कम कर दी और राज्य मे होनेवाली सब बातो की खबर जानने के लिए गुप्तचरो को नियुक्त किया। न्याय के लिए उसने नये कानून बनाये जिनकी व्याख्या काजी या मुफ्ती नही, किन्तु मुसिफ करते थे और इन नियमो को अमल म लाने के लिए उसने राज्य के विभिन्न भागो में सेनाएँ रखी। शासन को दृढ बनाने के लिए उसने अपनी पूरी शक्ति लगा दी।

सलीम की मृत्यु नवम्बर १५५४ म हुई। उसके बाद उसका पुत्र फीरोज खा गद्दी पर बैठा जिसकी हत्या थोडे ही दिनो बाद उसके मामा मुबारिज खा ने कर डाली और मुहम्मदशाह अदली के नाम से गद्दी पर बैठ गया। वह बडा अयोग्य तथा दुराचारी था, किन्तु उसके हिन्दू मत्री हेमू ने बडी योग्यता और शक्तिमत्ता से राज्य प्रबन्ध किया। परन्तु राज्य में जो हलचल मच गई थी, उसे वह भी नही रोक सका और चारो ओर

होने लगे। मुहम्मदशाह के चचेरे भाई इब्राहीम खाँ ने दिल्ली और आगरा ले लिये, लेकिन उसके दूसरे भाई सिकन्दरशाह सूर ने उसे हराकर सिंध और गंगा नदियों के बीच के सारे देश को अधिकृत कर लिया।

ऐसी परिस्थिति में हुमायूँ जो अफगान साम्राज्य की दुरवस्था को बराबर बड़े ध्यान से देख रहा था, सुअवसर देखकर नवम्बर १५५४ में एक सेना लेकर हिंदुस्तान की ओर बढ़ा और उसकी सेना फरवरी १५५५ में लाहौर पहुँच गई। सिकंदर भी एक बड़ी सेना के साथ बढ़ा, लेकिन सरहिंद के पास हार गया। वह हारकर भाग गया और हुमायूँ ने फिर किसी प्रकार के प्रतिरोध के बिना ही उसके राज्य पर अधिकार कर लिया।

किन्तु वह अपनी तलवार के जोर से प्राप्त किये हुए राज्य-सुख का बहुत दिनों तक उपभोग नहीं कर सका। एक दिन जब वह अपने पुस्तकालय की छत से उतर रहा था, सीढ़ियों पर अजान सुनकर नमाज पढ़ने के लिए झुका लेकिन ऐसा संयोग हुआ कि चिकने संगमरमर पर उसका डंडा फिसल गया और वह सिर के बल फर्श पर गिर गया। चिकित्सा से कुछ लाभ नहीं हुआ और २४ जनवरी १५५६ को वह इस लोक से पयान कर गया। उसकी मृत्यु का समाचार कुछ समय तक गुप्त रखा गया और १७ दिन बाद उसके पुत्र जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर के नाम खुतबा पढ़ा गया।

हुमायूँ का चरित्र—हुमायूँ स्वभाव से ही दयालु, नम्र और सहनशील था। उसके भाई जब उसका नाश करने को तुले हुए थे तब भी उसने उनके साथ उदारता का व्यवहार किया। उसके जानी दुश्मन कामरां के अंतिम बार पकड़े जाने पर जब उसके सरदारों ने उससे उसका वध कर डालने के लिए प्रार्थना की, तो उसने कहा, 'मेरी बुद्धि तो तुम्हारी बातें मानती है लेकिन मेरा दिल नहीं मानता, और उसने अपने भाई के खून से अपना हाथ रँगने से इनकार कर दिया। वह भीरु नहीं था, और उसने अपने पिता के समय में अपने साहस तथा वीरता का अच्छा परिचय दिया था। किन्तु उसे अपने आलस्य, आरामतलबी और अत्यधिक उदारता के कारण अपनी विजयों का फल नहीं मिला और उसे विपत्ति तथा संकट का सामना करना पड़ा। उसमें अपने पिता के उत्साह साहस और इच्छा-शक्ति की दृढ़ता नहीं थी। उसने कभी अपनी विज-

से पूरा लाभ नही उठाया। एक विजय प्राप्त करने पर शत्रु को पूर्ण रूप से वश में लान या पूरा तौर पर उसका बल तोडने के पहले ही वह अपना ध्यान दूसरी ओर फेर देता था जिससे शत्रु पुन शक्तिशाली हो जाता था। वह अफीम भी खाने लगा था जिसमे उसकी मानसिक तथा शारीरिक शक्तिया दुर्बल पड गई थी। फिर भी उसकी बुद्धि तथा योग्यता साधारण नही थी। उसे साहित्य से प्रेम था और वह विद्वानो का आदर करता था। अपने पिता के समान वह भी कविता करता था। उसे गणित और ज्योतिष से प्रेम था और वह दिल्ली में एक वेधशाला बनवाने का इरादा कर रहा था जिसे वह अपनी मृत्यु के कारण पूरा न कर सका। चित्त की प्रसन्नता हुमायूँ का एक प्रधान गुण था। घोर विपत्ति में भी वह प्रसन्नचित्त रहता था।

अध्याय १५

साम्राज्य का विकास

(अकबर १५५६-१६०५)

अकबर का गद्दी पाना—हुमायूँ की मृत्यु के समय अकबर पंजाब में था जहां वह बैरमखां के साथ वहां के सूबेदार अबुलमाली के कुप्रबन्ध का अन्त करने गया था। वहां से लौटते हुए कालानौर में उसे अपने पिता की अकाल मृत्यु का समाचार मिला। सरदारों ने गम मनाने की विधियां पूरी करने के बाद उसके राज्याभिषेक की तैयारी की, जो १४ फरवरी १५५६ को एक साधारण बाग में पूरा हुआ। इस समय उसकी अवस्था केवल १३ वर्ष की थी, इसलिए उसके पिता का विश्वासपात्र सरदार और मित्र बैरम खां राज्य की देख भाल करने लगा।

हिन्दुस्तान की राजनैतिक परिस्थिति—इस समय हिन्दुस्तान सुव्यवस्थित नहीं था। दिल्ली और आगरा के आस पास के प्रदेश में भयंकर अकाल पड़ रहा था। सारा देश बहुत से राज्यों में बँट गया था। उत्तर-पश्चिम में अकबर का भाई मिर्जा हकीम काबुल का स्वतन्त्र शासक बन गया था। काश्मीर एक स्थानीय मुसलमानी वंश के अधीन एक स्वतन्त्र राज्य बन गया था। उसके पड़ोस की हिमालय की पहाड़ी रियासतें भी स्वतन्त्र हो गई थीं। सिन्ध और मुल्तान शेरशाह की मृत्यु के बाद से ही स्वतन्त्र राज्य हो गये थे। बंगाल में सूर वंश का राज्य था। मुहम्मद आदिल अपने सम्बन्धी इब्राहीम खां द्वारा दिल्ली से निकाले जाने के बाद से पूर्व की ओर चला गया था, किन्तु उसका दुर्जेय मन्त्री हेमू अकबर का विरोध करने के लिए मैदान में आ चुका था। सूर वंश का एक दूसरा दावेदार सिकन्दर १५५५ ई० में बैरम खां द्वारा पराजित होने के बाद से पंजाब में दिल्ली का सिंहासन लेने की घात में घूम रहा था। दिल्ली के पश्चिम में राजपूत राज्य थे जो अब स्वतन्त्र हो गये थे। इनमें मेवाड़,

जसलमेर, बूँदी और जोधपुर के राज्य सबसे अधिक प्रसिद्ध थे। उन्होंने अपनी सनिक शक्ति और प्रभाव-क्षेत्र बहुत बडा लिय थ। मालवा और गुजरात के शासक भी स्वतत्र हो गय थ। वे स्वतत्र रूप से अन्य राज्यों के साथ सधि-विग्रह आदि करते थ। गोंडवाना एक अल्पवयस्क राजा के अधीन था जिसकी माँ रानी दुर्गावती राज्य का प्रबध बडी उत्तमता से करती थी। विन्ध्याचल के दक्षिण मे खानदेश, बरार बीदर, अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा के स्वतत्र मुसलमान राज्य थ जिनका दिल्ली-साम्राज्य से कुछ भी सबध नही था। इन मुसलमानी राज्यो के दक्षिण में कृष्णा और तुगभद्रा से कुमारी तक विजयनगर का हिंदू राज्य था। पुर्तगालवालो ने गोआ, डयू आदि बदरगाहो पर अधिकार जमाकर पश्चिमी समुद्र तट पर अपनी शक्ति बढा ली थी, और अरब सागर और फारस की खाडी पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था।

इस समय अकबर चारो ओर कठिनाइयो मे घिरा था जिनका सामना करना एक तरह बरस के लडके की शक्ति के बाहर जान पडता था। किन्तु उसके सौभाग्य से उसका सरक्षक बरम खा एक कुशल सेनापति और एक सुयोग्य राज्य-प्रबधकर्त्ता था, जिसने इस सकटापन्न स्थिति में शक्तिशाली शत्रुओ से सिंहासन की रक्षा की और राज्य में सुव्यवस्था स्थापित की।

अकबर और सूर वश के अफगान—अकबर को सबसे पहले सूर अफगानो का सामना करना पडा। मुहम्मद आदिल न अभी शेरशाह सूर के साम्राज्य को फिर से प्राप्त करने की आशा नही छोडी थी। हेमू अभी उसकी सेवा मे था। वह एक सुयोग्य सेनापति और राजनीतिज्ञ था। उसने उच्च कोटि की वीरता और सगठन शक्ति प्रदर्शित की थी। पहले वह मेवात के रेवाडी गाव का एक साधारण दूकानदार थ। लेकिन अपनी योग्यता के बल से उन्नति करते हुए वह आदिलशाह का प्रधान मत्री बन गया था। धीरे धीरे अफगान दरबार में उसका प्रभाव बहुत बढ गया और वह अपनी इच्छानुसार जागीरो का वितरण करने लगा। इस समय उसने राजा विक्रमादित्य की उपाधि धारण की। अबुल-फजल भी स्वीकार करता है कि उसने असाधारण योग्यता तथा सफलता के साथ राज्य प्रबध किया। उसने युद्धो में बडा यश प्राप्त किया था। वह २२ युद्धो में विजय प्राप्त कर चुका था, और अपने स्वामी के प्रतिद्वन्द्वी इब्राहीम खाँ को परा-

जित कर चुका था। हुमायूँ की आकस्मिक मृत्यु और उसके उत्तराधिकारी के अल्पवयस्कत्व से उसे हिन्दुस्तान का साम्राज्य प्राप्त करने की आशा हुई। मुहम्मद अदली ने जो इस समय पूरब में था, उसे ५०० हाथियों और ५०,००० सवारों की एक सेना देकर आगरे की ओर भेजा जिसे उसने बड़ी आसानी से ले लिया। इसके बाद उसने आगरा से भागती हुई शाही सेना का पीछा करते हुए दिल्ली पर हमला किया, जहाँ पुराने तथा अनुभवी मुगल सेनापति बेग ने, जिसके सुपुर्द उस वक्त दिल्ली थी, उसका सामना किया। उसने बेग को बुरी तरह हराकर आसानी से दिल्ली पर कब्जा जमा लिया। बेग भागकर शाही पड़ाव में गया, जहाँ बैरम खाँ ने उसे मरवा डाला, और नौजवान बादशाह ने भी उसके इस कार्य का समर्थन किया। सम्भव है, इस अमानुषिक कार्य का फल साम्राज्य के लिए हितकर हुआ हो, किन्तु उस समय का विचार रखते हुए भी जिस रूप में यह हत्या पूरी की गई, उसका समर्थन नहीं किया जा सकता।

आगरा और दिल्ली पर अधिकार जमा लेने के बाद हेमू हिन्दुस्तान की सल्तनत के लिए मुगलों से अंतिम युद्ध करने की तयारी करने लगा। इस समय आगरा, बियाना और दिल्ली के इलाकों में अकाल पड़ रहा था। बदाऊनी लिखता है कि एक सेर ज्वार २½ टंक को बिकती थी और कई जगह अच्छे खानदानों के बीसों आदमी घर का दरवाजा बन्द करके भूखों मर जाते थे जिनके लिए कब्र या कफन का कुछ भी प्रबन्ध नहीं होता था। हेमू ने जो राज्य लेने की धुन में था, जनता की इस दुरवस्था पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। एक बड़ी सेना के साथ जिसमें १५०० हाथी थे, वह पानीपत के मैदान में पहुँचा। उसकी बड़ी सेना को देखकर मुगल निरुत्साह हो गये और उसके पहले धावे से शाही सेना के दक्षिण और वाम पार्श्व की सेनाएँ तितर बितर हो गईं। किन्तु जैसे ही वह शत्रु सेना के मध्य पर अपने हाथियों के साथ धावा बोलना चाहता था, उसकी आँख में एक तीर लगा जिससे बेहोश होकर वह हौदे में गिर गया और उसे मरा हुआ समझकर उसकी सेना हताश होकर भाग गई। हेमू, जिसकी वीरता की प्रशंसा अबुल्फजल ने भी की है, कैद होकर अकबर के सामने लाया गया। बैरम ने अल्पवयस्क सम्राट से उसका सिर उड़ाकर गाजी की उपाधि प्राप्त करने के लिए कहा, लेकिन

उसने एक निहत्थे शत्रु पर तलवार उठाने से इनकार कर दिया। इस पर बैरम खा ने उसे अपनी तलवार से मार डाला।

विजयी अकबर ने बडे समारोह के साथ दिल्ली में प्रवेश किया। वहा के सब निवासियो ने बहुत प्रसन्न होकर उसका स्वागत किया। आगरा भी शीघ्र ही अधिकृत हो गया और शाही फौज के कुछ अफसर मेवात में हेमू की सम्पत्ति पर अधिकार करने के लिए भेज दिये गये।

हेमू की मृत्यु से सूरवश की सारी आशाओ पर पानी फिर गया। एक महीने तक राजधानी में ठहरकर बैरम खा अकबर के साथ सिकन्दर सूर का पीछा करने के लिए लाहौर की ओर बढा। सिकन्दर सूर ने अपने आपको मानकोट के किले मे बद कर लिया और बहुत दिनो तक घिरे रहकर आत्म-समर्पण कर दिया। उसके साथ उदारता का बर्ताव हुआ। बैरम खाँ ने उसे बगाल मे कुछ जिले दे दिये, जहा बीस वर्ष बाद उसका देहान्त हुआ।

सिकन्दर की पराजय के बाद ग्वालियर और जौनपुर जीते गये। इसके बाद बैरम खा ने साम्राज्य की सुव्यवस्था की ओर ध्यान दिया। परन्तु शीघ्र ही उसका अकबर से विरोध हो गया, जो अब वयस्क हो चला था और जिसे उसका नियन्त्रण असह्य हो गया था। बैरम खाँ का पतन अकबर के शासनकाल के आरभिक इतिहास में बडी प्रसिद्ध घटना है।

बैरम खाँ का पतन—हुमायूँ की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य का प्रधान अधिकार बैरम खा के हाथ में चला आया और उसने बिना किसी विरोध के वकीले सल्तनत (प्रधान मंत्री) का पद ग्रहण कर लिया। वह एक बडा वीर और अनुभवी मनुष्य था और अपनी योग्यता के बल से ही राज्य में इस पद पर पहुँचा था। उसने बडे सकटो के समय में अपनी राज-भक्ति का परिचय दिया था और हुमायूँ की ऐसी भक्ति तथा विश्वासपात्रता के साथ सेवा की थी जिसकी शत्रुओं तक ने प्रशसा की थी। बदाऊनी जो कट्टर सुन्नी था, इस शिया वकीले सल्तनत की ईमानदारी, विद्या प्रेम और धार्मिकता की प्रशसा करता है, और उसके पतन पर खेद प्रकट करता है। परन्तु साथ ही यह भी कहना पडेगा कि उसने अपनी शक्ति का दुरुपयोग किया। जिन लोगो पर उसे अपना शत्रु होने का सदेह हो जाता था, उनके

साथ वह बडी बडी तथा क्रूर नीति का प्रयोग करता था। वह बडा सशयालु हो गया था। छोटी से छोटी बातो मे उसे अपने विरुद्ध भयकर षड्यन्त्र की गध मिलती थी। इन कारणो से बहुत से लोग उसके विरुद्ध हो गये। अबुलफजल ने बरम खाँ के अकबर तथा दूसरे सरदारो मे विरोध होने के कारणो का उल्लेख किया है। बैरम खा ने शेख गदाई को जो एक शिया था, सदरे सदूर के पद पर नियुक्त किया और उसे सयदा और उल्मा से अधिक आदर प्रदान करने लगा, जिससे सुन्नी बहुत असन्तुष्ट हुए। वह अपने साधारण नौकरो को सुल्तान और खा की उपाधि देता था और बादशाह के नौकरो के उचित हक पर भी ध्यान नही देता था। उसने अपने कृपापात्र २५ आदमियो को पचहजारी मनसब दिये और दूसरो के न्याय अधिकारो पर भी ध्यान न दिया। वह सम्राट् के नौकरो को साधारण से साधारण अपराध पर कठोर दड देता था और उसके नौकर गुरुतर अपराध करके भी बिल्कुल बच जाते थे। क्रोध में आकर उसने सम्राट् के हाथीवान को निरपराध ही जान से मरवा डाला था। तर्दी बेग के प्राणदड से सरदार सशक हो गये थे। जब तक बरम खाँ के हाथ में शक्ति थी, वे अपने को निरापद नही समझते थे। बरम के पतन का एक बडा कारण यह सदेह था कि वह कामरा के पुत्र अबुल कासिम को गद्दी पर बठाने का इरादा कर रहा था। अकबर उसके नियन्त्रण से तग आ गया था और अब वह केवल नाम का ही नही, किन्तु वास्तव में बादशाह बनना चाहता था। औरो के समान वह भी बरम खा के घमड और अत्याचारो को नापसद करता था।

बैरम खा के विरुद्ध एक षड्यन्त्र की सृष्टि हुई जिसमें राजमाता हमीदा बानू बेगम, अकबर की धाय माहम अनगा, उसके पुत्र आदम खा और उसके नरया दिल्ली के सूबेदार शिहाबुद्दीन का प्रधान भाग था। बादशाह का इस षड्यन्त्र की योजना बियाना में समझा दी गई जहा वह शिकार के बहाने गया था। षड्यन्त्रकारियो के प्रबन्ध के अनुसार अकबर अपनी माता को देखने के लिए दिल्ली गया। वहाँ माहम अनगा ने उसके मन में बरम खा के प्रति विरोध बढाने में कोई प्रयत्न उठा नही रखा। बरम खाँ को शीघ्र ही इस षड्यन्त्र का पता लग गया और उसने बादशाह के प्रति अपनी नम्रता तथा अधीनता

प्रकट की, किन्तु अकबर ने उसकी अप्रिय हुकूमत का अन्त कर देने का निश्चय कर लिया था। बरम खा के मित्रो ने एकाएक हमला करके षड्यन्त्रकारियो को कुचल डालने और अकबर को पकड लेने की राय दी, किन्तु उसने ऐसा काय करके अपनी चिरकाल की सेवा को कलकित करना स्वीकार नही किया। अकबर ने उससे कहला भेजा कि मने शासन की बागडोर स्वय अपने हाथो मे लेने का निश्चय कर लिया ह और मरी इच्छा ह कि आप हज करने के लिए मक्का चले जायँ। उसने बरम खाँ की परवरिश के लिए एक जागीर दी जिसकी आय उसके अपने नियुक्त किये हुए आदमियो द्वारा उसके पास भेजने का प्रबध कर दिया।

बरम खा ने इस राजाना को शान्तिपूर्वक स्वीकार किया और मक्का की यात्रा की तयारी करने लगा। जब वह अप्रल १५६० में बियाने की तरफ बढा तो उसका विरोधी दल डरा कि वह कही विद्रोह न करे, और इसी दल की राय से अकबर ने पीर मुहम्मद नाम के एक अफसर को, जो पहले बरम खाँ के अधीन रह चुका था, उसे जल्दी मक्का रवाना कर देने के लिए भेजा। इस अपमान से चिढकर बरम ने विद्रोह करने का इरादा किया। वह पजाब की ओर बढा और तबरहिंदा के किले में अपना परिवार और सपत्ति रखकर आगे बढा। अकबर ने उसके दमन के लिए अपने सेनापतियो को भेजा जिनसे जालन्धर के निकट हारकर वह सिवालिक पहाडी में शरण लेने के लिए बाध्य हुआ। अकबर स्वय पजाब की ओर बढा और उसका पीछा किया। विवश होकर खानखाना ने अधीनता स्वीकार की और क्षमा प्रार्थना की। अकबर ने जो उसकी सेवाओ का मूल्य भली भाँति जानता था, उसे चटपट क्षमा कर दिया और उसे खिलअत दी। खानखाना सम्मान के साथ मक्का की ओर चला गया और बादशाह दिल्ली लौट आया।

बैरम खाँ राजपूताना होता हुआ गुजरात म पाटन म पहुँचा। यहा के सूबेदार ने उसका अच्छी तरह स्वागत किया। वह पाटन म कुछ दिनो तक ठहरा जहाँ से आगे बढना उसके भाग्य में नही था। एक अफगान न उसकी हत्या कर डाली, जिसका पिता मुगलो के साथ एक युद्ध में मारा गया था। बरम खाँ के खेमे को डाकुओ ने लूट लिया, लेकिन उसका पुत्र अब्दुर्रहीम जो उस समय

चार बरस का बालक था, उनके हाथ से बचा लिया गया और दिल्ली दरबार में भेज दिया गया। समय आने पर अपनी योग्यता से बड़ी उन्नति की और साम्राज्य की सेवाओं के उपलक्ष में खानखाना की उपाधि प्राप्त की।

माहम अनगा का प्रभाव-काल, १५६०-६४—बैरम खाँ के पतन के बाद अकबर की धाय माहम अनगा के दल की प्रधानता हुई। माहम अनगा ने, जिसने बैरम खाँ के विरुद्ध षड्यन्त्र का संगठन किया था, जल्द ही राज्य में एक महत्व पूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। कुछ इतिहासकार कहते हैं कि सम्राट पूर्ण रूप से उसी के कहने में था और शासन की बागडोर उसी के हाथ में थी। ये लोग कहते हैं कि वह अपने अयोग्य कृपापात्रों को ओहदे देती थी और अपने स्वार्थ के अतिरिक्त और किसी बात की चिन्ता नहीं करती थी।

किन्तु यह बात पूर्ण रूप से ठीक नहीं है। उस काल की घटनाओं से इस बात का समर्थन नहीं होता। बैरम खाँ के अपमान तथा प्राणदंड से माहम अनगा से बढ़कर किसी को खुशी न होती, किन्तु उसकी इच्छा का विचार न रखते हुए अकबर ने बैरम खाँ को क्षमा कर दिया। यदि बादशाह उसके कहने में होता और उसका उद्देश्य केवल अपने संबंधियों और कृपापात्रों को बड़े ओहदे देना होता, तो उसके पुत्र आदम खाँ को कोई बड़ा पद या बड़ी जागीर मिलती जो बदाऊँनी के कथनानुसार मानकोट में राजपूतों के विरुद्ध बड़ी बहादुरी दिखा चुका था, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। वह मालवा की चढ़ाई का नायक बनाया गया, किन्तु उसे विजय कर लेने के बाद वह उस सूबे का अधिकारी नहीं बनाया गया और जब उसकी लूट की खबर अकबर को मिली, तो वह स्वयं १३ मई १५६१ को आगरे से उसे दंड देने के लिए गया, लेकिन उसकी माँ के बीचबचाव से उसे क्षमा मिल गई। आगे चलकर जब (१६ मई १५६२) आदम खाँ ने शम्सुद्दीन अतका खाँ की हत्या की, जिसे अकबर ने माहम की राय के विरुद्ध वकील के पद पर नियुक्त किया था, तो उसने क्रुद्ध होकर उसे किले की दीवार से दो चार फेंके जाने का हुक्म दिया जिससे उसका भेजा निकल पड़ा और वह मर गया। अकबर ने स्वयं इस बात की खबर माहम अनगा को दी और कहा जाता है कि उसने केवल यही कहा कि जहाँपनाह ने अच्छा किया। इस सदमे से ४० दिन के अंदर ही माहम मर गई।

बाजबहादुर और रूपमती

यदि अकबर उसके बहन म होता तो उसके पुत्र की इस प्रकार मृत्यु नहीं होती।

इस साल की कुछ घटनाएँ उल्लेखनीय ह। आदम खाँ और पीर मुहम्मद शरवानी के सेनापतित्व में एक सेना मालवा के विरुद्ध भजी गई (१५६० ई०)। वहाँ का शासक बाजबहादुर पराजित हुआ और बहुत-सा लूट का माल मुगलों के हाथ लगा। इस विजय म आदम खाँ ने कड निर्दयतापूर्ण काय किये और वह बहुत सा लूट का माल दबा बठा। उस दड दने के लिए अकबर न स्वय आगरे स प्रस्थान किया, किन्तु जसा पहले कहा जा चुका ह, आदम को उसकी माँ के बीच-बचाव से क्षमा मिल गई।

कुछ साल बाद आदम खाँ बुला लिया गया और मालवा पीर मुहम्मद को सौंपा गया किन्तु उसने दश का बडा बुरा प्रबध किया, जिससे बाज बहादुर ने मौका देखकर फिर लडाई छड दी और अपना खोया हुआ राज्य फिर प्राप्त कर लिया। किन्तु वह बहुत दिनों तक अपने राज्य की रक्षा न कर सका और उसे छोडकर उसे भागना पडा। अत में वह दरबार म भजा गया। बादशाह न उसे एक हजारी मनसब दिया, और कुछ दिनों बाद वह दो हजारी मनसबदार हो गया। जसा पहले कहा जा चुका ह उन्हीं दिनों शम्सुद्दीन मुहम्मद अतका खाँ की हत्या के अपराध म, जो नवम्बर १५६१ मे मंत्री (वकील) के पद पर नियुक्त हुआ था, बादशाह के हुक्म से आदम खाँ किले की दीवार पर स गिराकर मार डाला गया।

अकबर की महत्त्वाकाक्षा—मनस्वी अकबर भारत का साम्राट बनना चाहता था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने भारत के अन्य राज्यों की स्वतत्रता हरण करनी आरम्भ की। उसने इस नीति का अनुसरण सन १६०१ तक किया जब उसने असीरगढ का किला जीता।

गोंडवाना विजय—उसकी इस नीति का पहला शिकार मध्यभारत का गोंडवाने का छोटा राज्य हुआ। राजा अल्पवयस्क था इसलिए राज्य का सारा काय उसकी मा रानी दुर्गावती करती थी। कडा के सूबेदार आसफ खा ने गोंडवाने पर चढाई की। रानी ने बडी वीरता से उसका सामना किया किन्तु वतमान गढ और जबलपुर जिले म मडला के बीच एक युद्ध में

शाहा सेना द्वारा पराजित हुई और युद्ध-भूमि म वीरगति को प्राप्त हुई। आक्रमणकारियो ने देश को उजाड डाला और उनके हाथ बहुत सा लूट का माल लगा। अतएवयम्व राजा वीरनारायण ने शत्रु पर विजय प्राप्त करना असभव देख जौहर की आज्ञा दी और रण भूमि में प्राण देकर अपन कुल के गारव की रक्षा की।

विद्रोह—इसी समय तीन राजविद्रोह हुए जिनका पूर्ण रूप से दमन हुआ। अब्दुल्ला खा उजबेग ने, जो पीर मुहम्मद के बाद मालवा का हाकिम हुआ था विद्रोह किया, लेकिन उसे पराजित होकर गुजरात की ओर भाग जाना पडा। १५३५ के आरम्भ में एक दूसरे उजबेग सरदार खा जमा ने जौनपुर में विद्रोह किया। उसका दमन करने के लिए अकबर स्वय पूरब की ओर बढा और बल वाइयो को हराकर पटने की तरफ भगा दिया। खाँ जमाँ ने सुलह कर ली लेकिन शीघ्र ही उसे तोड भी दिया।

इन दोनो से अकबर के भाई मिर्जा हकीम का पजाब पर हमला अधिक जोरदार था। उजबेगो ने उसे इस कार्य के लिए उत्साहित किया था। खाँ जमा ने उसके हिन्दुस्तान के सिहासन के अधिकार को स्वीकार किया और उसके नाम का खुतबा पढवाया। अपने भाई के इस दुष्प्रयत्न से चिढकर अकबर स्वय उसके विरुद्ध पजाब की ओर बढा। उसके आने की खबर सुनकर मिर्जा हकीम चटपट सिंध के उस पार लौट गया। अकबर मई १५६७ में आगरा लौट आया और उसने खा जमा को दड देने का पक्का इरादा कर लिया। एक बडी सेना के साथ हाथी पर सवार होकर उसने गगा को पार किया और उसे बुरी तरह पराजित किया। वह मारा गया और उसका भाई बहादुर पकडा गया और मार डाला गया। उनके साथियो का बडा कडा दड दिया गया। बहुत से हाथियो के पर तले कुचलवा दिये गये। बादशाह ने हर एक उजबग बल्वाइ के सिर के लिए एक मोहर और हर एक हिन्दुस्तानी बल्वाइ के सिर के लिए रुपया देकर बहुत से बलवाइयो को मरवा डाला।

अकबर और राजपूत—अकबर बडा बुद्धिमान् और स्वभाव से ही धार्मिक सहिष्णुता का पालन करनेवाला और उदार हृदय व्यक्ति था। राजपूत हिन्दुओ के सैनिक नेता थे। वे हिन्दुस्तान के सबसे अच्छे योद्धा थे जिनके सहयोग से

बिना हिन्दुस्तान म कोई साम्राज्य स्थायी नहीं हो सकता था। उदार हृदय विद्वाना क ससग स अकबर धार्मिक विद्वेष की असारता का बिल्कुल कायल हो गया और उसके हृदय से धार्मिक सकीणता जाती रही और हिदुओ के प्रति उसकी सहानुभूति और भी बढ गई। टोडरमल और बीरबल जैसे हिन्दुओं की सेवा से वह हिदुओ की प्रतिभा और योग्यता का कायल हो गया और उनका सहयोग प्राप्त करन के लिए अधिकाधिक प्रस्तुत होता गया। उसने अच्छी तरह समझ लिया कि राजपूता की सहानुभूति तथा सहयोग के बिना हिदुस्तान में स्थायी साम्राज्य स्थापित करना असभव ह, इसलिए अपनी महत्त्वाकाक्षा की पूर्ति के लिए उसन अपन सद्व्यवहार से राजपूता का सहयोग तथा सेवा प्राप्त करने का निश्चय किया। पहला राजपूत राजा जो उसकी शरण मे आया आमेर का कछवाहा राजा भारमल (बिहारीमल) था। जनवरी १५६२ में जब अकबर ख्वाजा मुईनुद्दीन की दरगाह के दर्शन को अजमेर जा रहा था तो उसने सुना कि भारमल का उसके भतीजे सूजा के उभाडने से मेवात का सूबेदार शरफउद्दीन हुसेन बहुत तग कर रहा है। साँगानेर मे भारमल बादशाह का अभ्यर्थना को हाजिर हुआ और बादशाह ने भी उसका आदर किया। उसने अकबर की सेवा स्वीकार करने की इच्छा प्रकट की और ववाहिक सबध द्वारा इस मित्रता को दृढ करना चाहा। उसकी इच्छा स्वीकार कर ली गई और अजमेर से लौटते समय अकबर न राजा की पुत्री को ग्रहण किया और उससे विवाह कर लिया। भारमल अपन पुत्र भगवानदास और पौत्र मानसिंह के साथ बादशाह के साथ ही आगरे आया, जहा उसे पचहजारी का मनसब मिला और उसके पुत्र और पौत्र को भी शाही सेना म ओहदे मिले। यह विवाह इस देश के इतिहास म एक महत्त्वपूर्ण घटना ह। इससे दो जातिया तथा धर्मों के बीच की शत्रुता तथा विरोध बहुत कुछ दूर हो गये और उनके बीच सहानुभूति तथा मेल की स्थापना हुई। जसा डाक्टर बनीप्रसाद कहते ह "इसस भारतवष क राजनतिक इतिहास म एक नये युग का आविर्भाव हुआ। इससे देश को प्रसिद्ध सम्राटो की एक परपरा प्राप्त हुई और इसने मुगल बादशाहो की चार पीढिया को मध्यकालीन भारत म जन्म लेनवाले कुछ सबसे बड सेनापतिया और राजनीतिज्ञो की सेवा प्रदान की।"

चित्तौर विजय—राजपूताना में मेवाड का राजवश सवश्रेष्ठ माना ज।

वहाँ का राणा जो श्री रामचन्द्र का वंशज माना जाता था, राजपूत गौरव का प्रतिनिधि था। अकबर ने भली भाँति समझ लिया कि चित्तौर और रणथम्भौर के प्रसिद्ध दुर्गों पर अधिकार किये बिना उसकी भारतवर्ष का सम्राट बनने की आकांक्षा पूर्ण नहीं हो सकती थी। इसलिए उसने मेवाड विजय का निश्चय किया। इसके अतिरिक्त राणा ने माल्वा के भागे हुए शासक बाजबहादुर को शरण देकर और विद्रोही मिर्जाओं को सहायता देकर उससे विरोध भी ठान लिया था। इसलिए अकबर ने चित्तौर पर चढ़ाई करने का विचार किया। सितम्बर १५६७ में माल्वा जाते हुए उसने धौलपुर में डेरा डाला। वहाँ राणा उदयसिंह का पुत्र शक्तिसिंह, जो अपने पिता से अप्रसन्न होकर चला आया था, उसकी सेवा में उपस्थित हुआ। एक दिन अकबर ने उससे हँसी में कहा कि और सब बड़े बड़े जमींदार (राजा) मेरी अधीनता स्वीकार कर चुके है, केवल एक राणा उदयसिंह ने अभी तक नहीं की है इसलिए उस पर चढ़ाई करने का मेरा विचार है। तुम क्या सहायता करोगे? शक्तिसिंह उसी रात को बिना सूचना दिये वहाँ से चलकर अपने पिता के पास पहुँचा और उसे बादशाह के इरादे का समाचार दिया। जब अकबर को उसके गायब होने का समाचार मिला तो वह बहुत क्रुद्ध हुआ और माल्वा की चढ़ाई कुछ काल के लिए स्थगित करके चित्तौर विजय करने के लिए रवाना हुआ।

अकबर ने २० अक्टूबर १५६७ को चित्तौर के किले के पास पहुँचकर पड़ाव डाला और अपनी सेना को क़िले पर घेरा डालने का हुक्म दिया। राणा अपने सरदारों की सलाह के अनुसार पहले ही जयमल और पत्ता की अध्यक्षता में ८००० राजपूतों को किले की रक्षा का भार सौंपकर कुछ सरदारों के साथ परिवार सहित पहाड़ों में चला गया था।

शाही सेना ने किले पर घेरा डाला और अकबर ने साबात बनाने और सुरंग लगाने का हुक्म दिया। राजपूतों ने किले की रक्षा में बड़ी वीरता दिखलाई और कई बार अकबर स्वयं मरते-मरते बचा। गढ़ की विजय कठिन देखकर बादशाह ने विजय होने पर अजमेर के ख्वाजा मुईनुद्दीन की जियारत करने की मनौती मानी। २३ फरवरी १५६८ तक युद्ध बराबर चलता रहा। अन्त में किले की दीवार की मरम्मत कराते समय अकबर की चलाई हुई गोली से जयमल घायल हो गया। अब गढ़ में भोजन की सामग्री समाप्त हो गई थी, इसलिए

जयमल ने सब सरदारों को एकत्र किया और जौहर करके दुर्ग-द्वार खोल देने और वीरता से लड़कर वीर गति पाने का निश्चय किया। जौहर की अग्नि धधक उठी जिसमें सकड़ों स्त्री और बच्चे जलकर मर गये।

दूसरे दिन सुबह होते ही राजपूतों ने दुर्ग-द्वार खोलकर घोर युद्ध किया। राजपूत वीरता से लड़ते हुए एक एक कर कट मरे। जयमल और पत्ता ने मेवाड़ के गौरव की रक्षा में अपूर्व वीरता दिखलाते हुए जीवनोत्सर्ग किया। उनकी वीरता पर मुग्ध होकर अकबर ने आगरे लौटकर हाथियों पर चढ़ी हुई उनकी पाषाण-मूर्तियाँ बनवाकर किले के फाटक पर स्थापित करवाई। सेना के अतिरिक्त प्रजा का भी बड़ा संहार हुआ, क्योंकि उसने भी युद्ध में योग दिया था। अकबर ने कत्लआम का हुक्म दिया था। अबुल्फजल लिखता है कि ३०,००० आदमी मारे गये किन्तु यह कथन अत्युक्तिपूर्ण जान पड़ता है। अब्दुलमजीद आसफ खाँ को किले का अधिकारी नियुक्त करके अकबर अजमेर की तरफ लौट गया और गढ़ के घेरे के समय की मानी हुई मनौती के अनुसार वहाँ पहुँचकर ख्वाजा की जियारत की।

रणथम्भोर और कालिंजर की विजय—चित्तौर विजय के एक वर्ष बाद अकबर ने राणा के दूसरे सुदृढ़ दुर्ग रणथम्भोर को जो सुरजन हाड़ा के अधीन था, लेने के लिए एक बड़ी सेना के साथ आसफ खाँ को भेजा परन्तु फिर उसे मालवा के विरुद्ध भेजकर दिसम्बर १५६८ को स्वयं रणथम्भौर की ओर चला और ८ फरवरी १५६९ को वहाँ पहुँचा। किले के एक ऊँची पहाड़ी पर बने होने के कारण उस पर चढ़ना असंभव था और मजनीक (पत्थर फेंकने के यंत्र) काम नहीं दे सकते थे। किन्तु शाही सैनिक किले के पास की एक दूसरी पहाड़ी पर तोप चढ़ाने में सफल हो गये। उन्होंने वहाँ से गोलाबारी शुरू की जिससे किले की दीवारें गिरने लगीं। किलेदार राव सुरजन हाड़ा ने दुर्ग की रक्षा असंभव देखकर राजा भगवानदास और मानसिंह की मध्यस्थता स्वीकार करके अपने कुँवर दूदा और भोज को बादशाह के पास भेज दिया। उसने उन्हें खिलअत देकर पिता के पास वापस भेज दिया। अकबर के इस उदार व्यवहार से प्रभावित होकर राव ने इस शर्त पर उसके पास उपस्थित होना स्वीकार किया कि उसे लेने के लिए कोई दरबारी भेजा जाये। उसकी इच्छानुसार उसे लाने के लिए हुसेन कुली खाँ भेजा गया और उसने आकर

किले की कुंजियाँ उसे सौंप दी। उसने बादशाह की सेवा स्वीकार कर ली। इस पर वह गढ़कटंग का किलेदार बनाया गया और पीछे चुनारगढ़ तथा बनारस के सूबे का हाकिम नियुक्त हुआ।

रणथम्भौर के लिए आगरा से चलते समय अकबर ने एक बडी सेना के साथ मजनू खा को कालिंजर के किले को जीतने के लिए भेजा था। किले के स्वामी राजा रामचन्द्र ने, जिसके पास चित्तौर और रणथम्भौर के पतन का समाचार पहुँच चुका था, अगस्त १५६९ में बादशाह के सेनापति को किला समर्पित कर दिया। राजा को इलाहाबाद के नजदीक एक जागीर दी गई। इस किले पर अधिकार होने से बादशाह की सैनिक शक्ति और भी दृढ हो गई।

अन्य राजपूत राजाओं का आधिपत्य स्वीकार करना—इन विजयों के पश्चात् कई और राजपूत राजाओ ने वश्यता स्वीकार की। जोधपुर के राजा मालदेव का पुत्र चन्द्रसेन नागौर में बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। किन्तु जान पडता है कि उसका मित्र भाव बहुत दिनो तक नही रहा। बाद में उसने बादशाह का प्रभुत्व अस्वीकार कर दिया और सिवाना के पहाडी किले में चला गया। बादशाह ने जोधपुर पर हमला करने का हुक्म दिया और उसे बीकानेर के राव रामसिंह को दे दिया। रामसिंह का पिता राव कल्याणमल भी अपने पुत्र के साथ बादशाह के पास नागौर आया। राजा ने कर दिया और बादशाह ने उसकी पुत्री से शादी कर ली। रामसिंह बादशाह की सेवा मे दरबार में रहा और एक मनसबदार बन गया।

राजपूतों के साथ का अकबर की नीति—अकबर की राजपूतों के साथ मेल करने की नीति का आरम्भ उसकी उच्च महत्त्वाकांक्षा के कारण हुआ। राजपूतों के साथ उसकी नीति अन्य मुसल्मान शासकों की नीति की अपेक्षा अधिक उदार और मानवोचित थी। वह एक उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ था। उसने हिन्दू मुसल्मान दोनो की सहानुभूति पर अपने राज्य की जड जमानी चाही। उसने हिन्दुओं को काफिर समझकर उनसे घृणा नही की बल्कि उनकी सदिच्छा तथा सहयोग प्राप्त करने की कोशिश की। वह उनके विरुद्ध जी-जान से लडता था और उन्हें दम नहीं लेने देता था, किन्तु उनके अधीनता स्वीकार कर लेने पर उनका सम्मान करता था। वह कोई ऐसा काम नही करता था जिससे उसके राजपूत शत्रुओ के दिलों में

पहुँचे, उसने कभी धार्मिक विद्वेष के वशीभूत होकर हिन्दुओं को कष्ट नहीं दिया। वह राजपूत और मुसलमान सरदारों को समान रूप से अधिकार देता था जिससे राजपूत उसके विश्वासपात्र सेवक बन गये और दूर दूर के देशों को उन्होंने अपने प्राणों पर खेलकर उसके अधीन कर दिया। उसके अधीन होकर उन्हें अपनी युद्ध-कुशलता तथा वीरता दिखलाकर कीर्ति अर्जित करने का पूरा अवसर मिला। अकबर ने उनके मित्र भाव को वैवाहिक संबंधों से और भी दृढ़ कर दिया। अधिकांश राजपूत सरदारों ने अकबर के मनसबदार बनकर उसकी सैनिक शक्ति को अजेय बना दिया और अनेकानेक युद्धक्षेत्रों में मुगल सरदारों के साथ साथ अपनी वीरता प्रदर्शित की। उनके सहयोग के कारण अकबर को हिन्दू जनता की शुभेच्छा प्राप्त हो गई और उसे इस देश में धार्मिक तथा सांस्कृतिक मेल स्थापित करने में सहायता मिली। बहुत से राजपूत सरदार कला तथा साहित्य के बड़े प्रेमी थे और उनकी उपस्थिति से मुगल दरबार प्रभावमय तथा देश-देशान्तर में विख्यात हो गया। मुगलकालीन भारतीय कला की अपूर्व उन्नति का श्रेय अधिकांश राजपूत मुगल-सहयोग को ही है।

शाहज़ादा सलीम का जन्म—अब तक उत्पन्न होनेवाली अकबर की सब सन्तानें शैशव काल में ही काल-कवलित हो गई थीं। उसका कोई उत्तराधिकारी नहीं था जिससे वह बहुत दुखी रहता था। चिरजीवी पुत्र की प्राप्ति की कामना से वह हर साल ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की कब्र की जियारत करता था। अपनी कामना की सिद्धि के लिए उसने कई बार सीकरी के प्रसिद्ध सलीम चिश्ती के दर्शन किये। १५६९ के आरंभ में उसे मालूम हुआ कि उसकी पहली हिन्दू स्त्री, जयपुर के राजा भारमल की पुत्री गर्भवती है। उसने उसे दास-दासियों सहित सीकरी भेज दिया जहाँ उसने ३० अगस्त १५६९ को शेख सलीम के घर में एक पुत्र प्रसव किया। इस पुत्र का नाम, जिसे सब लोग शेख सलीम की दुआ से प्राप्त हुआ मानते थे, उस शेख के नाम पर ही सलीम रखा गया।

फतहपुर का बसाया जाना—शेख सलीम चिश्ती की दुआ से अकबर उनका इतना कृतज्ञ हुआ कि उसने आगरा को छोड़कर सीकरी को ही अपनी राजधानी बना लिया। काल की प्रगति के साथ वहाँ सुन्दर भवनों से परिपूर्ण एक बड़ा नगर बस गया। यहाँ की शाही इमारतें १४ वर्षों में बनकर १५७४ में तैयार हुईं। १५७२ में शेख सलीम का देहावसान हुआ जिसकी कब्र पर अकबर ने एक अति सुन्दर मकबरा

बनवाया, जो अब भी कला के पारखिया के हृदय में प्रशसा तथा विस्मय के भाव भर देता है। बडी मस्जिद जो मक्का की मस्जिद की नकल मानी जाती है १५७२ में बनी। यह मुगल स्थापत्य के श्रेष्ठतम निदशनो में से एक है। किन्तु भव्यता में लाल दरवाजा का स्थान सवप्रथम है जो गुजरात विजय की यादगार में १५७५-७६ में बना था।

इस नगर का नाम गुजरात की विजय की यादगार में बादशाह ने फतहपुर रखा। इसकी इमारतो के बनाने में उसने मुक्तहस्त से धन व्यय किया। सन १५६९ से १५८५ पयन्त १७ वर्षों तक वह अकबर की राजधानी रहा। १५८५ म फिर आगरा मुगल साम्राज्य की राजधानी हो गया। यह नगर परित्यक्त होकर अब उजाड हो गया है। इस ध्वस्त अवस्था में भी दूर-दूर से कला प्रेमी इसे देखने आते है और इसे देखकर विस्मय-मुग्ध हो जाते है।

गुजरात विजय—माल्वा जीत लेने और राजपूतो की शक्ति तोड देने के बाद अकबर ने गुजरात पर चढाई करने का इरादा किया। जैसा पहले बतलाया जा चुका है, हुमायूं ने गुजरात को ले लिया था, लेकिन उसकी सुस्ती और लापरवाही से वह उसके हाथ से निकल गया था। अकबर को इसे फिर जीतने की इच्छा हुई। इसके अतिरिक्त गुजरात बडा उपजाऊ तथा समृद्धिशाली देश था। इसके बन्दरगाह भडौच तथा खम्भात और सूरत पश्चिम के व्यापारिक केन्द्र थे। इस समय वहाँ का शासक मुजफ्फर शाह द्वितीय था, जो बडा ही निर्बल तथा अयोग्य था।

मुजफ्फर शाह नाम-मात्र के लिए सुल्तान था। सारी शक्ति उसके सरदारों के हाथ म थी। सारे देश मे कुप्रबन्ध फैला हुआ था और सब शक्तिशाली स्व स्वतन्त्र हो जाने की तयारी में थे। मिर्जाओं ने जो अकबर के सम्बन्धी थे, देश की अशान्ति को और भी बढा दिया था। वे प्रतिस्पर्धी सरदारों को बारी-बारी से सहायता देकर लडाया करते थे। इन अशान्तिकारी शक्तियो का दमन करने में मुजफ्फर सर्वथा असमर्थ था। ऐसे ही समय म अकबर ने उस पर आक्रमण किया, जिस पर वह राजधानी से भागकर एक अनाज के खेत में छिप रहा। अकबर ने उसकी परवरिश के लिए ३० रुपये मासिक की छोटी रकम मुकरर कर दी। गुजरात के सरदारों ने अकबर की वश्यता स्वीकार कर ली। उसने अहमदाबाद को खान आजम अजीज कोका के सिपुर्द कर दिया। जब बादशाह गुजरात का प्रबन्ध करने में लगा हु

था तो उसे खबर मिली कि एक सरदार को जो उसकी सेवा में उपस्थित होना चाहता था मिर्जाओं में से एक ने मार डाला है। वह विद्रोही मिर्जा को दंड देने के लिए चटपट चल पड़ा और सारनाल में उसे बुरी तरह पराजित किया। इसके बाद उसने सूरत को एक महीने सत्रह दिन तक घेर रहकर ले लिया। मिर्जाओं ने फिर बखेडा मचाया लेकिन मालवा, चन्देरी और दूसरे प्रसिद्ध रियासतों के सरदारों की सहायता से अजीज कोका ने उन्हें पराजित कर दिया। गुजरात को अधीन करके अकबर सीकरी लौट गया।

बादशाह की पीठ फिरते ही मिर्जाओं ने फिर अशांति मचाई जिससे शाही सेना को बहुत क्षति उठानी पड़ी। इसकी खबर सुनकर अकबर बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने गुजरात के झगड़े का सदा के लिए निपटारा कर देने का निश्चय किया। वह एक सुसंगठित तथा सुदक्ष सेना के साथ रवाना हुआ और ग्यारह दिन की सपरिश्रम यात्रा के बाद अहमदाबाद पहुँच गया। मिर्जाओं को यह विश्वास नहीं था कि बादशाह इतनी जल्दी पहुँच सकता है। लड़ाई में वे अपने सहायकों सहित बुरी तरह पराजित हुए। अब गुजरात में अकबर की शक्ति निर्द्वन्द्व रूप से स्थापित हो गई।

देश के पूर्ण रूप से वशीभूत हो जाने पर वहाँ शांति तथा सुव्यवस्था स्थापित करने का प्रबन्ध किया गया। आर्थिक परिस्थिति सुधारने का कार्य राजा टोडरमल को सौंपा गया। उसने जमीन की पैमाइश कराके लगान का नया प्रबन्ध किया जिससे इस सूबे से शाही खजाने में पचास लाख रुपया सालाना आने लगा। राजा टोडरमल के बाद इस सूबे का प्रबन्ध एक दूसरे योग्य अफसर शिहाबुद्दीन अहमद खाँ को सौंपा गया, जो १५७७ से १५८४ तक यहाँ का हाकिम रहा।

बंग विजय—बंगाल हमेशा दिल्ली साम्राज्य का एक बड़ा बागी सूबा रहा था। शेरशाह के समय में यह अफगान सरदारों के अधिकार में था किन्तु १५६४ में बिहार के सरदार सुलेमान खाँ ने गौड़ पर अधिकार कर लिया और दोनों सूबों का शासक हो गया। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र बायजीद उसका उत्तराधिकारी हुआ, लेकिन मंत्रियों ने उसकी हत्या कर डाली और उसके छोटे पुत्र दाऊद को गद्दी पर बैठाया। उसके विषय में तबकात का लेखक लिखता है कि वह बड़ा दुराचारी था और शासन करना बिलकुल नहीं जानता था।

बादशाह ने दाऊद के विरुद्ध एक बड़े पुराने तथा अनुभवी सेनापति मुनाम खाँ को एक बड़ी सेना के साथ भेजा, जिसने विद्रोही के पिता के साथ अपनी मित्रता का विचार करके उससे सुलह कर ली। इस पर अकबर बड़ा अप्रसन्न हुआ और उसे शत्रु पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। मुनीम खाँ ने पटना पर आक्रमण किया लेकिन उसमें असफल रहा। इस पर बादशाह स्वयं पटना की ओर बढ़ा। दाऊद भाग गया और पटना बिना विरोध के शाही सेना के अधिकार में आ गया। मुनीम खाँ बंगाल का सूबेदार बनाया गया और उसने दाऊद को सन्धि करने के लिए विवश किया। लेकिन दाऊद फिर अधिकृत शाही प्रदेश को धीरे धीरे दबाने लगा। मुनीम खाँ, जो अस्सी बरस का हो गया था, अक्तूबर १५७५ में मर गया। दाऊद ने इस अवसर से लाभ उठाया, उसने फिर शक्ति संचय करके सारे देश पर अधिकार कर लिया।

अकबर को दाऊद की इस ढिठाई की खबर मिली तो वह बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने एक दूसरे सेनापति को भेजा, जिसने राजमहल के एक युद्ध में अफगानों को परास्त किया और दाऊद को कैद कर लिया, और उसका सिर काटकर बादशाह के पास भेज दिया। दाऊद के पतन के साथ २४० वर्षों बाद बंगाल के स्वतंत्र राज्य का अन्त हो गया और बंगाल और बिहार का सारा देश अकबर के अधीन हो गया।

मेवाड़ के साथ युद्ध—महाराणा उदयसिंह की मृत्यु के बाद सन् १५७२ में उसके पुत्र प्रतापसिंह मेवाड़ के महाराणा हुए। उन्होंने आत्म गौरव तथा स्वतंत्रता को ही अपना सर्वस्व समझा। उनका यही व्रत था कि वे किसी के सामने सिर न झुकायेंगे। उन्हें अपने पूर्वजों, राणा सांगा और राणा कुम्भा के वीर कृत्यों का बड़ा गर्व था। वे कहते थे यदि उनके और राणा सांगा के बीच कोई मेवाड़ की गद्दी पर न रहा होता, तो मेवाड़ पर मुसलमानों का अधिकार होता। जब और सब राजपूत राजा अकबर की कुटिल नीति के शिकार होकर उसकी शक्ति दृढ़ करने में एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्द्धा दिखला रहे थे, अकेले महाराणा ने सब प्रकार के प्रलोभनों पर लात मार कर अपनी स्वतंत्रता तथा राजपूत गौरव की रक्षा की।

राजपूताने की ख्यातों में, राजप्रशस्ति महाकाव्य में तथा कर्नल टाड के 'राजस्थान' में महाराणा के साथ युद्ध छिड़ने का जो कारण दिया गया है वह

स्तप में वहाँ लिया जाता है। गुजरात से लौटते समय अजमेर से कुँवर मानसिंह उदयपुर होते हुए दिल्ली लौटे। उदयपुर में महाराणा ने मानसिंह का आदर तथा मान किया। किंतु उदय सागर की पाल पर उनके एक दावत दी गई जिसमें उनके साथ भोजन करने के लिए कुँवर मानसिंह उपस्थित हुए, महाराणा उपस्थित न हुए। मानसिंह द्वारा महाराणा के सम्मिलित होने के आग्रह किये जाने पर कहा गया कि पेट में दर्द होने के कारण वे उपस्थित न हो सकेंगे। महाराणा के उपस्थित न होने के कारण असंतुष्ट तथा अपमानित होकर मानसिंह ने भोजन छोड़ दिया और आवेश में आकर कहा कि 'इस पेटदर्द की दवा मैं जल्द ही लेकर आऊँगा। यदि मैं यह गर्व चूर न कर दिया तो मेरा नाम मानसिंह नहीं।' कुलाभिमानी महाराणा ने कहला दिया कि मैं आपके स्वागत के लिए बिल्कुल तैयार रहूँगा। साथ में अपने फूफा (अकबर) को भी लेते आइएगा। मानसिंह के चले जाने पर सब भोजन फिकवा दिया गया और वहाँ की जमीन पर गंगाजल छिड़कवाया गया और वहाँ उपस्थित रहनेवाले सब लोगों ने अपनी अपवित्रता दूर करने के लिए स्नान किया। मानसिंह ने दिल्ली पहुँचकर अपने अपमान का सब हाल अकबर से बयान किया जिस पर क्रुद्ध होकर उसने महाराणा का गर्व चूर्ण करने तथा उसे अधीन करने के लिए मानसिंह को ससैन्य भेजने का निश्चय किया। महाराणा ने भी युद्ध अवश्यम्भावी समझकर अपने राजपूत वीरों को मातृभूमि के गौरव की रक्षा के लिए सुसज्जित किया तथा कुम्भलमेर और गोगुंदा के किलों को सुदृढ़ कर लिया।

मुगलों और राजपूतों की सम्मिलित सेना को युद्ध के सभी सामानों से सुसज्जित करके अकबर ने अजमेर से अप्रैल, १५७६ में मानसिंह और आसफ खाँ की अध्यक्षता में मेवाड़ के विरुद्ध भेजा। यह सेना माँडलगढ़ होती हुई हल्दीघाटी पहुँची जहाँ महाराणा की सेना से एक भीषण युद्ध हुआ। अल्बदाऊनी ने जो इस युद्ध में स्वयं उपस्थित था, इसका एक विस्तृत तथा सजीव वर्णन दिया है। राणा ने दर्रे (हल्दीघाटी) के पीछे से ३००० सवारों के साथ निकलकर शत्रु पर आक्रमण किया। राणा के भीषण आक्रमण के आगे शत्रु-सेना ठहर न सकी। उसमें भगदड़ मच गई। मुगल सेना की हरावल पराजित हुई, परन्तु दक्षिण पार्श्व के राजपूत भेड़ों की तरह भाग निकले और हरावल को पार करते हुए अपनी रक्षा के लिए

दक्षिण पार्श्व की ओर भागे। इसी समय इतिहास-लेखक बदाऊनी ने आसफ खाँ से पूछा कि इसी गड़बड़ी में हम अपने पक्ष के और शत्रुपक्ष के राजपूतों की पहचान कैसे करें? इस पर उसने उत्तर दिया कि तीर चलाये जाओ, चाहे जिस पक्ष के राजपूत मारे जायें इस्लाम को लाभ ही होगा।

अन्त में राणा को हटना पड़ा और वे पहाड़ियों में लौट गये, जहाँ मुगलों ने उनका पीछा नहीं किया। दूसरे दिन शाही सेना गोगुंदा पहुँची और किले की रक्षा करनेवाले राणा के आदमी जो संख्या में बहुत थोड़े थे, वीरतापूर्वक लड़ते हुए सब के सब मारे गये।

मुगल सेना ने कई बार मेवाड़ पर आक्रमण किया, किन्तु इसमें अकबर का मनोरथ पूर्ण न हुआ। वह राणा को वश में न ला सका। राणा मौका पाकर मुगल सेना को लूट लेते या उनकी रसद बंद कर देते थे। उन्होंने अपने समतल प्रदेश को उजाड़ दिया था जिससे मुगलों को वहाँ से रसद नहीं मिल सकती थी। उन्होंने फिर चित्तौर, अजमेर और माडलगढ़ को छोड़कर शेष मेवाड़ पर अधिकार कर लिया और आमेर के इलाके पर आक्रमण करके उसके धनाढ्य नगर मालपुरा को लूट लिया।

सन १५९७ में महाराणा का स्वर्गवास हुआ। टाडकृत राजस्थान में तथा वीरविनोद में लिखा है कि बीमारी के अन्तिम दिनों में राणा बड़े दुखी थे। उनके प्राण शान्ति से नहीं निकल रहे थे। उनके स्वामिभक्त सरदार उपस्थित थे। उनमें से एक ने उनकी अशांति का कारण पूछा। उन्होंने उत्तर दिया कि मैं अपने अमरसिंह का स्वभाव जानता हूँ। वह आरामतलब है। मुझे आशा नहीं है कि वह मेरे पीछे मेवाड़ की तथा मेरे वंश के गौरव की रक्षा कर सकेगा। यदि आप लोग मेरे पीछे देश तथा वंश के गौरव की रक्षा करने का प्रण करें तो मेरे प्राण शान्तिपूर्वक पयान करें। इस पर सरदारों ने शपथपूर्वक प्रतिज्ञा की और महाराणा ने शान्तिपूर्वक इहलीला संवरण की। इससे महाराणा के उच्च आत्म-गौरव तथा देशप्रेम का परिचय मिलता है।

महाराणा प्रतापसिंह के बाद उनके पुत्र अमरसिंह १५९७ में मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। अकबर ने फिर १५९९ ई० में शाहजादा सलीम को मानसिंह आदि कई सरदारों के साथ एक बड़ी सेना देकर भेजा। आक्रमणकारियों ने पहले मेवाड़

के बड़े भाग पर अधिकार जमा लिया, किन्तु फिर राणा के सरदारों ने बड़ी वीरता से लड़कर उनसे ऊटाल का किला ले लिया। इसके बाद राणा ने मालपुरा तक का इलाका लूट लिया और बहुत से स्थानों से मुगलों की नियुक्ति की हुई सेना को भगा दिया। इस प्रकार मेवाड़ पर यह आक्रमण निष्फल हुआ। अबुल फजल लिखता है कि इसके बाद वहां से शाहजादा सलीम अफगानों का उपद्रव शान्त करने के लिए मानसिंह की सलाह से बंगाल लौट गया। जहांगीर अपनी दिनचर्या की पुस्तक में इस चढ़ाई के सबन्ध में लिखता है कि मेरे पिता ने कई विश्वासपात्र सरदारों एवं बड़ी सेना के साथ मुझे राणा के विरुद्ध भेजा लेकिन यह चढ़ाई निष्फल हुई*।

अकबर के धार्मिक विचारों का राजनैतिक प्रभाव—अकबर में धार्मिक संकीर्णता का अभाव था जिसके कारण धार्मिक संकीर्णता के वातावरण में पले हुए कट्टर मुसल्मानों में खलबली मच गई। सन १५७८ और १५७९ में फतहपुर सीकरी के इबादतखाने में विभिन्न धर्मों के विद्वानों में विवाद होते थे। अकबर ने स्वयं इमामेआदिल का स्थान ग्रहण कर लिया और मिम्बर पर आरूढ़ होकर खुतबा पढ़ा। धार्मिक विषयों में इमामेआदिल की राय या उसकी मुस्लिम कानून की व्याख्या सर्वमान्य होती है इसलिए अकबर के इमामआदिल का स्थान ग्रहण करने से उलमा क्षुब्ध हो उठे। बादशाह की धार्मिक कट्टरता की उपेक्षा प्रकट करनेवाले कानूनों और राजाज्ञाओं से कट्टर मुसल्मानों में और भी खलबली मच गई। और उनमें से कुछ इस अधर्मी बादशाह को नष्ट करने की तदबीर करने लगे जिसका फल पाकर कई राजविद्रोह हुए।

बंगाल का विद्रोह—खानजहां जो दाऊद के दमन के बाद बंगाल का सूबेदार बनाया गया था, मई १५७९ में मर गया और उसकी जगह पर मुजफ्फर खाँ तुरबती नियुक्त हुआ। वह बड़ा उग्र स्वभाव का आदमी था। इस समय शाही दीवान शाहमंसूर था जो अपने काम में बड़ा दक्ष था। उसने जमीन के पट्टों और अधिकार पत्रों की जांच कराई और जो लोग अपना अधिकार जायज न साबित कर सके उनकी जमीन बंगाल में बिना किसी तरह की रियायत किये

* तुजुके जहांगीरी का अँगरेजी अनुवाद—जिल्द १ पृ० २५।

जब्त कर ली गई। जागीरदारो में लगानबन्दी के नये तरीके से बडा असन्ताप फैला। इससे जागीरो का ल्गान बगाल में एक चौथाई और बिहार म एक तिहाई बढ गया। एक आर शिकायत यह थी कि अकबर ने बगाल की आबोहवा खराब समझकर बगाल और बिहार मे नौकरी करनेवाले सिपाहियो की तनख्वाह बढा दी थी, शाहमसूर ने उसे घटाकर और सूबो के सिपाहिया की तनख्वाह के बराबर कर दिया, जिससे सिपाहिया की तनख्वाह बगाल में ५० फी सदी और बिहार में ३० फी सदी घट गई। सयूरगाल जमीन भी दीवान की कुदृष्टि से न बची, इसे अपने धार्मिक अधिकारो म हस्तक्षेप समझकर उलमा बडे असन्तुष्ट हुए।

पूरब में अशान्ति फैलने का एक और कारण बादशाह की धार्मिक नीति थी। सभी धर्मों के प्रति समान व्यवहार (सुल्ह कुल) का कट्टर मुसलमान बादशाह द्वारा इस्लाम के परित्याग का चिह्न समझते थे। जौनपुर के काजी मुल्ला मुहम्मद यज्दी न १५८० के शुरु म एक फतवा निकाला जिसमें उसन मुसलमानो का बादशाह के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण करना जायज करार दिया था, क्योंकि उसके कार्यों से हिदुस्तान मे इस्लाम की स्थिति सकटापन्न बन जान की सभावना थी। मुसलमानो के इस धार्मिक असताप से पूरब में विद्रोह आरम्भ होने में सहायता मिली।

किन्तु विद्रोह आरम्भ होने का सीधा कारण मुजफ्फर खाँ की कठोर नीति हुई। उसने बहुत से अमीरो की जागीरें छीन ली और दाग का कर लगाया जिसकी वसूली में उसने अनावश्यक कडाई से काम लिया। चगताइया के शक्तिशाली फिर्के का कर्शालो के सरदार बाबाखा ने दाग का कर देन में आनाकानी की। पर मुजफ्फर खा ने उसके प्रति अपमानजनक भाषा का प्रयाग किया जिस पर उसका समूचा फिरका क्रुद्ध हो उठा और उन लागो ने सशस्त्र होकर गौड पर धावा बोल दिया, और लाग भी जा सरकार से असतुष्ट थ, उनम मिल गये। बादशाह ने विद्रोह की खबर सुनकर टोडरमल और कुछ दूसरे अफसरो को शान्ति स्थापित करने के लिए भेजा, किन्तु उन्हे सफलता नही मिली। जल्द ही मुजफ्फर खाँ मार डाला गया और बगाल और बिहार का सारा देश विद्रोहिया के हाथ में चला गया। टाडरमल को चार महीने तक मुगेर के किले में घिरे रहना पडा। उसकी सहायता के लिए बादशाह ने अजीज कोका

को भेजा और शाही सेनापतियों ने मिलकर विद्रोहियों को परास्त किया। इसके थोड़े ही दिनों बाद जौनपुर के जागीरदार मासूम फरनखुदी ने विद्रोह किया। वह शहबाज खाँ द्वारा पराजित होकर सिवालिक पर्वत में शरण लेने को बाध्य हुआ। अजीज कोका की सिफारिश से बादशाह ने उसे क्षमा कर दिया, किन्तु इसके कुछ ही दिनों बाद एक मनुष्य ने व्यक्तिगत शत्रुता के कारण उसकी हत्या कर डाली।

काबुल की चढ़ाई और ख्वाजा मंसूर को प्राणदण्ड—पूरब के विद्रोह से काबुल के शासक तथा अकबर के भाई मुहम्मद हकीम को आक्रमण अधिक सरल जान पड़ा। पूरब के विद्रोहियों ने मिर्जा हकीम को उनके धर्म के विरुद्ध आचरण करनेवाले भाई के स्थान पर हिन्दुस्तान का बादशाह बनाने का इरादा जाहिर किया था। इससे उसके मन में हिन्दुस्तान के तख्त हासिल करने की आशा फिर उदय हुई। अकबर को हकीम के मनसूबे का हाल मालूम था, लेकिन उसने भाई समझकर पहले इस बात पर ध्यान न दिया। बंगाल के विद्रोहियों के अतिरिक्त दिल्ली दरबार के कुछ अफसरों ने भी मिर्जा हकीम को सहायता देने का वचन दिया था, जिनमें साम्राज्य का दीवान ख्वाजा मंसूर भी था।

मिर्जा हकीम का इरादा हिन्दुस्तान का बादशाह बनने का था जैसा निजा-मुद्दीन साफ साफ लिखता है। दिसम्बर १५८० के मध्य में हकीम ने अपने अफसर को पंजाब पर चढ़ाई करने को भेजा लेकिन वह भगा दिया गया। शाम-दान की अध्यक्षता में एक दूसरी चढ़ाई हुई जिसे राजा मानसिंह ने हराया और मार डाला। उसके पास मिर्जा हकीम की लिखी तीन चिट्ठियाँ मिलीं जिनमें से एक ख्वाजा मंसूर के नाम थी, जिसमें हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करने के निमन्त्रण का उत्तर था। मानसिंह ने इन चिट्ठियों को बादशाह के पास भेज दिया।

शामदान की हार के बाद मिर्जा स्वयं १५,००० सवारों के साथ लाहौर की ओर बढ़ा। स्थानीय सरदारों को अपनी ओर मिलाने के उसके सब प्रयत्न निष्फल हुए, जिस पर निराश होकर और विपत्ति में पड़ने की आशंका से वह चटपट काबुल लौट गया।

मिर्जा के बढ़ने की खबर सुनकर अकबर ने अनिच्छापूर्वक उसके विरुद्ध प्रस्थान करने का निश्चय किया। उसने एक बहुत बड़ी सेना इकट्ठी की जिसमें ५०-००० सवार, ५०० हाथी और असंख्य पैदल सिपाही थे। उसने ख्वाजा मंसूर

को भी साथ ले लिया जिसमें वह षड्यन्त्र में भाग न ले सके और शाहजादा सलीम और मुराद भी साथ ही थे। जब यह सेना पानीपत पहुँची तो मिर्जा हकीम का सेवक मलिक सानी काबुली शाही पडाव में आया और ख्वाजा के साथ ठहरा और उसे मध्यस्थ बनाकर अपने स्वामी के विरुद्ध बातचीत करने लगा। इससे ख्वाजा के विरुद्ध बादशाह का संदेह और दृढ हो गया। ख्वाजा के विरुद्ध फिर कुछ चिट्ठिया मिली जिससे उसके अपराध के विषय मे बादशाह को संदेह नही रह गया। उसने बिना अधिक तहकीकात के ख्वाजा को एक पेड से लटकवाकर फाँसी दिला दी, जिससे उससे विद्वेष तथा शत्रुता रखनेवाले राज्य के और कर्मचारियो को बडी प्रसन्नता हुई।

अकबर समय अम्बाला और सरहिन्द होता हुआ सिन्धु नदी पार करके काबुल की ओर बढा। शाहजादा सलीम ने दर्रा खैबर होते हुए जलालाबाद पर आक्रमण किया और शाहजादा मुराद काबुल की ओर बढा। मिर्जा हकीम ने उस पर आक्रमण किया लेकिन हार कर भाग गया। जब अकबर को मालूम हुआ कि उसका इरादा उजबेगो की शरण में जाने का है, तो उसने उसके अपराधो को क्षमा कर दिया और राजभक्ति की प्रतिज्ञा कराके उसे उसके प्रदेश लौटा दिये। काबुल की इस चढाई की सफलता के बाद धर्मान्ध उपद्रवी सफलता की आशा न देख शान्त हो गये और सम्राट् धार्मिक मामलो में इच्छानुसार कार्य करने को स्वतन्त्र हो गया।

ख्वाजा मंसूर के प्राणदण्ड के विषय में एक और बात कह देनी ठीक होगी। उसे दण्ड देने में बहुत जल्दी की गई। चिट्ठियो की ठीक-ठीक जाँच नही की गई। निजामुद्दीन कहता है कि अन्त में मिलनेवाली जिन चिट्ठियो के आधार पर ख्वाजा के भाग्य का निपटारा हुआ निस्सन्देह जाली थी। वह कहता है कि अकबर ने ख्वाजा के प्राणदण्ड पर पीछे से पश्चात्ताप प्रकट किया। डाक्टर स्मिथ मानसिंह द्वारा भेजी गई चिट्ठियो के आधार पर ख्वाजा को दोषी ठहराते है। किन्तु अबुलफजल, जो किसी प्रकार ख्वाजा का पक्षपाती नही कहा जा सकता इन पत्रो को असन्दिग्ध रूप से जाली बतलाता है। वह कहता है कि बादशाह इन चिट्ठियो को जाली समझता था और इसी वजह से उसने उन्हें ख्वाजा को नही दिखलाया। ख्वाजा की मृत्यु का कारण उसके कडे व्यवहार के कारण

उसकी अप्रियता तथा दरबार के दूसरे अफसरों का विद्वेष था। इन्ही लोगो ने उसके विरुद्ध जाल रचा था।

गुजरात में विद्रोह—गुजरात का बादशाह मुजफ्फर जो नजरबन्द था, सन् १५७८ में निकल भागा और जूनागढ में जा पहुचा। थोडे समय में उसने एक बडी सेना इकट्ठी कर ली और उसकी सहायता से सितम्बर, १५८३ में अहमदाबाद ले लिया और अपने आपको गुजरात का बादशाह घोषित कर दिया। उसने खभात और बडौदा पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने भडौच को ले लिया जहा उसे एक बडा खजाना मिला। उसने पूर्ण गुजरात पर अधिकार कर लिया और उसकी सैन्य-संख्या ३०,००० हो गई।

मुजफ्फर की सफलता की खबर सुनकर अकबर क्षुब्ध हो उठा। और उसने मिर्जा अब्दुर्रहीम को गुजरात का सूबेदार बनाकर उसके विरुद्ध भेजा। उसने जनवरी १५८४ में मुजफ्फर को सरखेज की लडाई में पराजित किया और गुजरात की राजधानी पर अधिकार कर लिया और अपने सदव्यवहार से सबको प्रसन्न कर दिया। शाही सेना ने मुजफ्फर का पीछा किया और उसे राजपीपला में नादौट नामक स्थान पर फिर हराया। इस युद्ध के फलस्वरूप बडौदा के अतिरिक्त सारे प्रदेश पर मुगलो का अधिकार हो गया। सात महीने के लम्बे घेरे के बाद बडौदा भी उन्हे सौप दिया गया।

इस विजय का समाचार सुनकर बादशाह बडा प्रसन्न हुआ और उसने इस विजय में भाग लेनेवाले अफसरो पर बडी कृपा दिखलाई। मिर्जा अब्दुर्रहीम को खानखाना की उपाधि मिली और वह पचहजारी मन्सबदार बना दिया गया। सम्राट ने खानखाना को अगस्त १५८५ में गुजरात से बुला लिया। उसके चले आने के बाद मुजफ्फर ने अपनी शक्ति प्राप्त करने के लिए बडा जोर लगाया। लेकिन अन्त में सन १५९२ में वह कैद हो गया और अपमान के भय से उसने एक छूरे से, जिसे अपने पास छिपा रखा था, आत्मघात कर लिया। अजीज कोका, जो खानखाना के बाद गुजरात का सूबेदार हुआ था, मक्का चला गया और गुजरात शाहजादा मुराद के सुपुर्द किया गया।

अकबर की उत्तर पश्चिमी सीमा सम्बन्धी नीति—भारतीय सम्राटो के लिए उत्तर पश्चिमी सीमा की रक्षा सदा से एक महत्त्वपूर्ण समस्या रही है। तेरहवी

और चौदहवीं शताब्दियों में जब मंगोल बार-बार हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करते थे, दिल्ली के शासकों ने सीमा की रक्षा के लिए कई फौजी छावनियाँ स्थापित की थी जिनमें दिपालपुर की छावनी मुख्य थी। अकबर के लिए उत्तर-पश्चिम के प्रदेशों पर अपना दृढ़ अधिकार स्थापित करने का निश्चय स्वाभाविक ही था।

उत्तर-पश्चिम में दो ओर से खतरा था—एक तो उजबेगों से और दूसरे सीमा पर की युद्धप्रिय अफगान जातियों से। अब्दुल्ला उजबेग अकबर का एक शक्तिशाली प्रतिस्पर्द्धी था जिसे विधर्मी प्रवृत्ति रखनेवाले अकबर के विरुद्ध कट्टर मुल्लाओं की सहानुभूति पाने की सम्भावना थी। अफगानों की पहाड़ी जातियाँ भी कम खतरनाक नहीं थी। वे सन्धियों और प्रतिज्ञाओं का बन्धन नहीं मानती थीं और सीमा पर सदा अशान्ति मचाया करती थी। पहले पहल अकबर ने ही उनका दमन किया। इस दुष्कर कार्य में उसे वीर तथा कुशल राजपूतों की सहायता से सफलता मिली।

मिर्जा हकीम जुलाई १५८५ में अति मद्यपान से मर गया और काबुल साम्राज्य में मिला लिया गया। और उसके शासन का भार राजा मानसिंह को सौंपा गया और साम्राज्य के दूसरे सेनापति काश्मीर के शासक एवं स्वात और बजौर की पहाड़ी जातियों को अधीन करने के लिए भेजे गये। रोशनिये हराये गये और उनका जोशीला सरदार, जिसने हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करने की तैयारी की थी, सन् १६०० के अन्त में गजनी में मारा गया। उसके बीबी-बच्चे कैद कर लिये गये और उसका भाई दूसरे सम्बन्धियों के साथ, जिनकी संख्या १४,००० थी, दरबार में भेज दिया गया।

दूसरा फिरका जिसके कारण बड़ी परेशानी उठानी पड़ी, यूसुफजाइयों का था। उनका दमन करना आवश्यक था जिसमें अब्दुल्ला उजबेग को उनके उपद्रवों से लाभ उठाने का मौका न मिले। जैन खां और बीरबल उनके विरुद्ध ससैन्य भेजे गये, लेकिन इन दोनों सेनापतियों में फूट पड़ गई जिससे वे उनका दमन न कर सके। अफगानों ने मौका पाकर शाही फौज पर तीरों और पत्थरों से आक्रमण किया जिससे उसके ८,००० सैनिक मारे गये। राजा बीरबल भी जिसने इस अवसर पर बड़ी वीरता दिखलाई और भागने से इनकार किया, उनके साथ

मारा गया। उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर अकबर को बडा रज हुआ और कहा जाता है कि उसने निम्नलिखित सोरठा कहा—

दीन देखि सब दीन एक न दीहा दुसह दुख।
सो अब हम कहँ दीन कछु नहिं राख्यो बीरबल॥

इसके बाद राजा टोडरमल और शाहजादा मुराद एक बडी सेना के साथ इन अफगानो के विरुद्ध भेजे गये। इस सेना ने अफगानो का बल बिलकुल तोड दिया। अबुलफजल लिखता है कि वे बहुत बडी सख्या मे मारे गये और बहुत से तूरान और फारस में बेच दिये गये। अब स्वात और बजौर के प्रदेश में शान्ति स्थापित हो गई।

शाही सेना की इस सफलता का अब्दुल्ला उजबेग पर बडा प्रभाव पडा। उसने असम्भव समझकर हिंदुस्तान जीतने की आशा छोड दी और अकबर से मित्रता कर ली।

काश्मीर विजय, १५८६ ई०—अकबर ने राजा भगवानदास को, ५,००० सिपाहियो के साथ काश्मीर जीतने के लिए भेजा। अब रोशनियो और यूसुफजाइयो का बल टूट गया था और अब्दुल्ला से भी कोई आशका नही रह गई थी इसलिए काश्मीर विजय का मार्ग साफ हो गया था। राजा भगवानदास और कासिम खाँ कठिनाइयो का सामना करते हुए बढे और काश्मीर के शासक यूसुफ ने आत्म-समर्पण कर दिया। किन्तु उसका पुत्र याकूब निकल भागा और आक्रमणकारियो के प्रतिरोध का प्रयत्न करने लगा। परन्तु उसका प्रयत्न निष्फल हुआ और वह पराजित होकर आत्म-समर्पण करने को विवश हुआ। काश्मीर साम्राज्य मे मिला लिया गया और काबुल के सूबे का एक भाग बना दिया गया। याकूब और उसका पिता बन्दी बना कर मानसिंह की देख-रेख में जो बगाल का हाकिम बना कर भेजा जा रहा था, बिहार भेज दिये गये। सम्राट स्वय १५८९ की गर्मियो में काश्मीर गये और उन्होने उसके यथोचित शासन का प्रबन्ध किया। वहाँ से काबुल होते हुए लौटते समय उन्हे राजा भगवानदास और टोडरमल की मृत्यु के समाचार मिले।

सिन्ध विजय—उत्तरी भारत में अब केवल सिन्ध और बलोचिस्तान साम्राज्य की सीमा के बाहर रह गये थे। भक्कर १५७४ में ही अधीन कर लिया गया

था, किन्तु दक्षिणी सिंध का एक बडा भाग अभी स्वतंत्र था। सन १५९० में सम्राट् ने मिर्जा अब्दुर्रहीम को मुल्तान का सूबेदार नियुक्त किया और उसे थट्टा का राज्य जीतने का हुक्म दिया। इस समय मिर्जा जानी द्वारा शासित होता था। वह दो बार युद्धो में पराजित होकर थट्ट और सेहवान के किले का समर्पित करने को विवश हुआ। जानी बेग दरबार में पहुँचाया गया और खानखाना की सिफारिश से उसके साथ अच्छा व्यवहार हुआ। राजकृपा के रूप में उसे थट्टा का प्रदेश लौटा दिया गया और पचहजारी मनसब दिया गया।

फारस के साथ सम्बन्ध—अकबर बहुत दिनो से उत्तर पश्चिम के फाटक की कुंजी कंधार पर अधिकार करना चाहता था। इस समय इसे पाना मुश्किल नही था, क्योंकि उसका स्वामी फारस का शाह तुर्कों और उजबगों के उपद्रव से बडा परेशान रहता था। इस समय अच्छा अवसर देखकर बादशाह ने कंधार पर चढाई कराई। यह आक्रमण १५९० में आरम्भ हुआ किन्तु कंधार १५९५ के पहले नही लिया जा सका। कंधार साम्राज्य मे मिला लिया गया और शाह से मैत्री भी बनी रही। यह अकबर की राजनीति-पटुता का एक अच्छा उदाहरण है।

उत्तर-पश्चिम मे साम्राज्य की सैनिक शक्ति के प्रदर्शन का अब्दुल्ला पर बडा प्रभाव पडा। उसे भय हो गया कि अकबर और शाह अब्बास उसके विरुद्ध कहीं एका न कर लें। इसलिए उसने सम्राट से मित्रता स्थापित कर ली और अब उत्तर-पश्चिम से भारत पर उजबेगो की चढाई होने का कोई भय नहीं रह गया।

अहमदनगर विजय—सारे उत्तर भारत और हिन्दूकुश के आगे तक के अफगान प्रदेश का आधिपत्य प्राप्त करके अकबर ने दक्षिण की ओर दृष्टिपात किया। अहमदनगर के राज्य में झगडा होने से उसे वहाँ हस्तक्षेप करने का अवसर मिल गया। मुगलो ने अहमदनगर पर घेरा डाला परन्तु उन्हें बुरहान निजाम शाह की विधवा बहिन सुविख्यात चाँद बीबी के नेतृत्व में एक बडे प्रबल विरोध का सामना करना पडा। चाँद बीबी ने स्वयं हाथ में तलवार लेकर दुर्ग की रक्षा करने में अलौकिक वीरता दिखलाई और असाधारण सैन्य-संचालन और प्रबंध-पटुता का परिचय दिया। उसने मुगलो के दाँत खट्टे कर दिये किन्तु

विश्वासघातक ने उसकी हत्या कर डाली और १६०० ई० में मुगलों ने किले पर अधिकार कर लिया। अहमदनगर साम्राज्य में मिला लिया गया। चाँद बीबी की वीरता, आत्मत्याग और देशप्रेम के कारण उसका नाम सदा आदर से लिया जायेगा और भारतवर्ष के इतिहास में अमर रहेगा।

असीरगढ़ का घेरा—खानदेश का नया शासक मीरन बहादुर मुगल साम्राज्य के प्रति मित्र भाव नहीं रखता था। वह अकबर के आधिपत्य से मुक्त हो जाने के लिए उत्सुक था। बादशाह ने पहले ही बुरहानपुर को जीत लिया था किन्तु मीरन बहादुर अपनी रक्षा के लिए असीरगढ़ के किले का भरोसा रखता था जो दक्षिण में अजेय समझा जाता था और दक्षिण की खास सड़क का नाका था।

अबुल्फजल और फैजी सरहिन्दी के आधार पर असीरगढ़ के घेरे का संक्षिप्त विवरण दिया जाता है। शाही सेना द्वारा किले का घेरा शुरू होने के कुछ काल बाद किले में बीमारी फैल गई जिससे उसमें के बहुत से सैनिक मर गये। और मालीगढ़ ले लिया गया जिससे दुर्गस्थ सेना बाहर आ-जा नहीं सकती थी। इससे वह बड़ी परेशान हो गई। बादशाह के कुछ सेनापतियों के जरिये मीरन बहादुर से एक समझौता हुआ जिसके अनुसार वह शाही दरबार में हाजिर हुआ। उसके साथ विश्वासघात किया गया। सम्राट के हाथ में आ जाने पर वह रोक लिया गया और अपनी इच्छा के विरुद्ध किला सौंप देने के लिए अपने आदमियों के पास एक पत्र लिखने के लिए विवश किया गया। इसके अतिरिक्त बहादुर की दुर्गस्थ सेना को घूस देकर फोड़ा भी गया। इसमें संदेह नहीं कि इस प्रकार विश्वासघात करके तथा घूस देकर किले को लेना निन्दनीय है। संभवतः साम्राज्य की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए किले का लिया जाना और उत्तर में सलीम के विद्रोह के कारण उसका घेरा जल्द समाप्त कर देना आवश्यक होने के कारण और उस दुर्गस्थ सेना की वीरतापूर्ण रक्षा के कारण लड़कर किले का जल्द लेना असंभव होने से अकबर को ऐसा निन्दनीय पथ ग्रहण करना पड़ा हो।

साम्राज्य का प्रसार—सिंहावलोकन—अकबर की विजयों को तीन काल विभागों में बाँट सकते हैं, उत्तर भारत की विजय १५५८ से १५७६ तक, पश्चिमोत्तर सीमा पर की जातियों को वशीभूत करना तथा प्रदेशों को जीतना १५८० से १५९६ तक और दक्षिण में विजय १५९८ से १६०१ ई० पर्यन्त।

साम्राज्य का प्रसार अकबर के शासनकाल के आदि में (१५५८-६०) ही मध्य-भारत में ग्वालियर, राजपूताने में अजमेर और पूरब में जौनपुर की विजय के साथ आरम्भ हुआ। माल्वा की विजय १५६१-६२ में पीर मुहम्मद और आदम खाँ द्वारा सम्पन्न हुई और राजपूताने में मेडते का किला लगभग उसी समय अधिकृत हुआ। १५६४ में रानी दुर्गावती द्वारा शासित गाडवाने पर आक्रमण करने के लिए आसफ खाँ भेजा गया और उसकी स्वतन्त्रता नष्ट कर दी गई। अम्बर के राजा भारमल के वश्यता स्वीकार करने के बाद राजपूताना वशीभूत हो गया। १५६७ में चित्तौर का किला जीता गया और उसके बाद रणथम्भौर और कालिंजर के किले लिये गये, और जसल्मेर, बीकानेर और जोधपुर के राजाओं ने अधीनता स्वीकार की। १५७३ में गुजरात जीता गया और साम्राज्य में मिला लिया गया। इसके बाद १५७६ में बंगाल विजय हुई और वहां के स्वतन्त्र अफगान राजवंश का अन्त हो गया। उडीसा बहुत दिनों तक साम्राज्य के बाहर रहा। १६ वर्ष बाद राजा मानसिंह ने १५९२ में उसे जीतकर साम्राज्य में मिला लिया।

दोआब, पंजाब, राजपूताना, बंगाल, गुजरात और मध्य-भारत का स्वामी बन जाने पर अकबर ने उत्तर-पश्चिम की ओर ध्यान दिया। १५८५ में मिर्जा हकीम के मरने पर काबुल साम्राज्य में मिला लिया गया और १५८६ में यूसुफजाई वशीभूत किये गये। सीमा पर के उपद्रव, १५८६ में काश्मीर को आखिर साम्राज्य में मिला लिये जाने पर शान्त हो गये। १५९१ में सिन्ध के और १५९४ में बिलोचिस्तान और मकरान के समुद्रतट के एवं १५९५ में कंधार के सूबे के साम्राज्य में मिला लिये जाने पर उत्तर-पश्चिम की विजय पूर्ण हो गई। अब अकबर को अब्दुल्ला उजबेग के आक्रमण का भय नहीं रह गया, और १५९८ में इस शक्तिशाली उजबेग सरदार की मृत्यु से जो उसका प्रबल प्रतिद्वन्द्वी था और जिसकी सहायता से अपने धर्म के लिए पुनः राज्याश्रय प्राप्त करने के लिए उत्सुक कट्टर सुन्नी उसे उखाड फेंकने की आशा करते थे, बादशाह पूर्ण रूप से निर्द्वन्द्व हो गया। अब अकबर उत्तर में हिन्दूकुश तथा काश्मीर से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक और पूरब में बंगाल तथा उडीसा से लेकर पश्चिम में सिन्ध और बिलोचिस्तान तक के विस्तृत देश का अधिपति हो गया।

अकबर का साम्राज्य
सन् १६०५ ई०
काबुल
गज़नी
कश्मीर
स्यालकोट
लाहौर
जालंधर
मुलतान
पानीपत
दिल्ली
आगरा
अजमेर
चित्तौड़
ग्वालियर
अवध
पटना
बिहार
ढाका
बंगाल
पाटन
मालवा
अहमदाबाद
उज्जैन
खम्भात
नर्मदा
सूरत
असीरगढ़
गोंडवाना
पुरी
अहमदनगर
बरार
गोलकुण्डा
मंगलौर
कालीकट
मदुरा
१५ सूबे
१ काबुल
२ लाहौर
३ मुलतान
४ दिल्ली
५ आगरा
६ अवध (अयोध्या)
७ इलाहाबाद
८ अजमेर
९ गुजरात
१० मालवा
११ बिहार
१२ बंगाल
१३ खानदेश
१४ बरार
१५ अहमदनगर

साम्राज्य का प्रसार अकबर के शासनकाल के आदि में (१५५८-६०) ही मध्य-भारत में ग्वालियर, राजपूताने में अजमेर और पूरब में जौनपुर की विजय के साथ आरम्भ हुआ। मालवा की विजय १५६१-६२ में पीर मुहम्मद और आदम खाँ द्वारा सम्पन्न हुई और राजपूताने में मेड़ता का किला लगभग उसी समय अधिकृत हुआ। १५६४ में रानी दुर्गावती द्वारा शासित गोंडवाने पर आक्रमण करने के लिए आसफ खाँ भेजा गया और उसकी स्वतन्त्रता नष्ट कर दी गई। अम्बर के राजा भारमल के वश्यता स्वीकार करने के बाद राजपूताना वशीभूत हो गया। १५६७ में चित्तौड़ का किला जीता गया और उसके बाद रणथम्भौर और कालिंजर के किले लिये गये, और जैसलमेर, बीकानेर और जोधपुर के राजाओं ने अधीनता स्वीकार की। १५७३ में गुजरात जीता गया और साम्राज्य में मिला लिया गया। इसके बाद १५७६ में बंगाल विजय हुई और वहाँ के स्वतन्त्र अफ़गान राजवंश का अन्त हो गया। उड़ीसा बहुत दिनों तक साम्राज्य के बाहर रहा। १६ वर्ष बाद राजा मानसिंह ने १५९२ में उसे जीतकर साम्राज्य में मिला लिया।

दोआब, पंजाब, राजपूताना, बंगाल, गुजरात और मध्य भारत का स्वामी बन जाने पर अकबर ने उत्तर-पश्चिम की ओर ध्यान दिया। १५८५ में मिर्ज़ा हकीम के मरने पर काबुल साम्राज्य में मिला लिया गया और १५८६ में यूसुफ़-जाई वशीभूत किये गये। सीमा पर के उपद्रव, १५८६ में काश्मीर को जीतकर साम्राज्य में मिला लिये जाने पर शान्त हो गये। १५९१ में सिन्ध के और १५९४ में बिलोचिस्तान और मकरान के समुद्रतट के एवं १५९५ में कंधार के सूबे के साम्राज्य में मिला लिये जाने पर उत्तर-पश्चिम की विजय पूर्ण हो गई। अब अकबर को अब्दुल्ला उजबेग के आक्रमण का भय नहीं रह गया, और १५९८ में इस शक्तिशाली उजबेग सरदार की मृत्यु से जो उसका प्रबल प्रतिद्वन्द्वी था और जिसकी सहायता से अपने धर्म के लिए पुनः राज्याश्रय प्राप्त करने के लिए उत्सुक कट्टर सुन्नी उसे उखाड़ फेंकने की आशा करते थे, बादशाह पूर्ण रूप से निर्द्वन्द्व हो गया। अब अकबर उत्तर में हिन्दूकुश तथा काश्मीर से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक और पूरब में बंगाल तथा उड़ीसा से लेकर पश्चिम में सिन्ध और बिलोचिस्तान तक के विस्तृत देश का अधिपति हो गया।

अकबर का साम्राज्य
सन् १६०५ ई०
लाहौर
दिल्ली
मुलतान
अजमेर
ग्वालियर
उज्जैन
बंगाल
मदुरा

उत्तर-पश्चिम के खतरे से निश्चिन्त होकर अकबर ने दक्षिण की ओर नजर फेरी। अहमदनगर के निजामशाही राज्य पर आक्रमण किया गया, जो चाँद बीबी की मृत्यु हो जाने पर १६०० म साम्राज्य में मिला लिया गया। अन्त मे १६०१ में असीरगढ के हस्तगत होने के साथ १५५८ मे साम्राज्य का जो प्रसार आरम्भ हुआ था वह पूर्ण हुआ और यह साम्राज्य ससार में सबसे अधिक बडा, सबसे अधिक शक्तिशाली और सबसे अधिक समृद्ध साम्राज्य हो गया।

अकबर के सुधार—अकबर स्वभाव से उदार विचारो का मनुष्य था और सामाजिक तथा धार्मिक विषयो में उसके विचार राजपूत राजकन्याओ के साथ विवाह होने और हिन्दू कार्यकर्ताओ, मित्रो और पडितो एव अबुलफजल और फैजी सरीखे उदार विचार के मुसलमानो से ससग से बहुत प्रभावित हुए। उसने मुस्लिम राज्य के आदि से ही प्रचलित बहुत से कानूनो और सामाजिक कुरीतियो के दुष्परिणामो को दूर करने के लिए बहुत से कानून तथा नियम बनाये। उसने विजित शत्रुओ को गुलाम बनाने की कुप्रथा बद कर दी और आज्ञा निकाली कि उसके सनिक शत्रुओ की स्त्रियो या बच्चो को कष्ट न दें। आमेर की राजकुमारी के साथ विवाह करने के थोडे ही दिनो बाद १५६३ में उसने हिदुओ पर तीर्थयात्रा का जो कर लगाया था, उठा दिया जिससे राज्य की आमदनी में करोडो रुपयो की कमी आ गई। एक वर्ष बाद सन् १५६४ मे सम्राट ने जजिया कर जो गरमुस्लिम प्रजा को देना पडता था और जिससे राज्य को बहुत बडी आमदनी होती थी, उठा दिया। इससे हिन्दू बडे प्रसन्न हुए और राज्य से सहानुभूति रखने लगे। उसके इस कार्य का सकीर्ण विचार के कट्टर मुसलमानो ने तथा उसके कर्मचारियो न बडा विरोध किया किन्तु उसने उस पर ध्यान न दिया। शासन प्रबन्ध में बहुत सुधार हुआ, उसे उन्नत बनाने की एक योजना १५७३-७४ में तैयार की गई। टोडरमल की राय से बादशाह ने घोडो के दागे जाने का नियम जारी किया और जागीरदारी की हानिकारक प्रथा बद कर दी। हाकिमो की जागीरें राज्य की सम्पत्ति हो गईं और उनके बदले में उन्हे वेतन मिलने लगा। शाही टकसाल का बिलकुल नया प्रबन्ध हुआ जिससे सिक्के सुदर-शुद्ध धातु के और ठीक ठीक बराबर तौल के बनने लगे।

बादशाह ने सामाजिक सुधार की भी उपेक्षा नही की। वह सतीप्रथा को

बहुत बुरा समझता था और स्त्रिया को उनकी इच्छा के विरुद्ध जलाया जाना कानून द्वारा रोक दिया। एक बार उसने स्वय एक राजपूत महिला के प्राण बचाये, जिसे उसके सम्बन्धी उसके मृत पति के साथ जबरदस्ती जला रहे थे। प्रत्येक नगर और जिले म निरीक्षक नियुक्त थे जिनका यह कर्त्तव्य था कि यह पता लगायें कि सती होनेवाली स्त्रिया स्वच्छापूवक सती होती ह या बलात सती की जाती ह, और उनकी इच्छा न होने पर उन्ह जला दी जाने से बचाये। कोतवालो को यह हुक्म था कि वे किसी स्त्री को उसकी इच्छा के विरुद्ध न जलाई जाने दें। ववाहिक प्रश्न के सबध में बादशाह के विचार बड उन्नत थ। वह सन्तानोत्पत्ति के योग्य अवस्था हो जाने के पहले विवाह होना ठीक नहीं मानता था। शिक्षा के सम्बध में अकबर के विचार अन्य मुस्लिम शासको की अपेक्षा अधिक अच्छे तथा उदार थ। वह सस्कृत के अध्ययन को प्रोत्साहित करता था और हिन्दू विद्वानो को भी आश्रय देता था। अबुलफजल २१ प्रथम श्रेणी के विद्वानो का उल्लेख करता ह जिनमे से नौ हिन्दू ह। हिन्दू चिकित्सको का आइन अकबरी म उल्लेख हुआ ह, और एक चन्द्रसेन जो दरबार का आश्रित था तबकात अकबरी म एक बहुत अच्छा शल्य चिकित्सक (जर्राह) बतलाया गया ह। बादशाह ने सिजदा करने की नई प्रथा विशेषकर दीनइलाही के सदस्यो म प्रचलित की, जिसे कट्टर मुसलमान आत्मपरस्ती मानकर बुरा समझने लगे जिससे उसने इस बद कर दिया। इसके अतिरिक्त इस्लाम के धार्मिक तथा सामाजिक विधि निषेधो के सबध मे कई नियम प्रचलित किये गये जिनका उल्लेख आगे किया जायगा।

हिन्दुओं के साथ बर्ताव—पहला मुसलमान शासक जिसने शान्ति और प्रजा की सहानुभति की नीव पर अपने राज्य की नीव रखी शेरशाह था। वह हिन्दुओ और मुसलमानो मे भेदभाव नही रखता था, परन्तु जजिया उसके समय मे भी जारी था। अकबर ने जजिया भी उठा दिया और सुल्हकुल का एलान कर दिया जिससे सब धर्मो के अनुयायियो को एक समान स्वतन्त्रता और अधिकार मिल गये। इससे सम्राट को गरमुस्लिम प्रजा की सहानुभूति प्राप्त हो गई तथा उसके राज्य की जड मजबूत हो गई। वह अपनी हिन्दू रानियों के प्रभाव म आकर हिन्दुओ के पूजा के ढग स विशेष सहानुभति रखने लगा तथा प्रकट रूप स हिन्दू सतो और दार्शनिको के उपदेश सुनने लगा।

हिन्दू राजकन्याओ के साथ विवाह से हिन्दुओ मे मुसलमानो के प्रति विद्वेष तथा शत्रुता का भाव बहुत कम हो गया। हरम में दाखिल होनेवाली स्त्रियो मे बादशाह उनकी धार्मिक भिन्नता के कारण कोई विभेद नही रखता था। आमेर की राजकुमारी की, जो युवराज सलीम की माता थी, बडी प्रतिष्ठा थी। इसके पहले भी उत्तर भारत मे और दक्षिण भारत मे भी हिन्दुओ और मुसलमानो मे विवाह हुए थे किन्तु उनका उद्देश्य दोनो जातियो मे मेल उत्पन्न करना नही था। ये विवाह कन्याओ के सबधियो या स्वय उनकी इच्छा के विरुद्ध जबरदस्ती किये जाते थे जिसके फलस्वरूप दोनो जातियो मे शत्रुता का भाव घटता नही था, किन्तु बढ जाता था। इस विषय मे अकबर की नीति गयासुद्दीन तुगलक, फीरोज तुगलक, बहमनी सुल्तानो और विजयनगर के राजाओ की नीति के सर्वथा विपरीत थी। राजा भगवानदास और कुँवर मानसिह को राज्य शासन मे ऊँचे से ऊँचा पद मिला। वे सबसे अधिक महत्वपूर्ण चढाइयो के अध्यक्ष बनाकर भेजे जाते थे। राजा टोडरमल मुहकमे माल का सबसे बडा अफसर था। राजा बीरबल, राजा टोडरमल राजा भगवानदास सम्राट के घनिष्ठतम अन्तरग मित्रो और सबसे अधिक विश्वासपात्र सेवको मे थे। इस उदार नीति का यह फल हुआ कि शासन-प्रबध में बडी उन्नति हुई और गैरमुस्लिम प्रजा मे हार्दिक राजभक्ति आ गई।

अकबर के आश्रय में हिन्दू प्रतिभा के विकसित तथा प्रकाशित होने का बहुत अच्छा अवसर मिला। केवल हिन्दू राजनीतिज्ञो और सेनापतियो ने ही साम्राज्य का गौरव बढाने में योग नही दिया, किन्तु सम्राट् के आश्रित हिन्दू कवियो, विद्वानो, सगीतज्ञो और चित्रकारो ने भी उसके दरबार को अलकृत किया। अकबर के शासनकाल मे कला की सर्वांगीण उन्नति हुई और हिन्दी कविता अपनी उन्नति के चरम शिखर पर पहुँच गई। सूर और तुलसी दोनो सवश्रेष्ठ हिन्दी कवि इसी काल में हुए। स्वय अकबर बादशाह और उसके दरबारी राजा बीरबल, राजा टोडरमल, राजा पृथ्वीराज और नरहरि बदीजन हिन्दी भाषा के अच्छे कवि थे। अकबर हिन्दुस्तान का वास्तविक राष्ट्रीय शासक कहा जा सकता है।

शाहजादा सलीम का विद्रोह—अकबर दक्षिण की ओर जाते समय राजधानी को सलीम के सुपुर्द कर गया और उसे राजा मानसिंह और शाह कुली

खाँ के साथ मेवाड पर आक्रमण करने की आज्ञा दे गया। किन्तु सलीम ने अपने पिता की आज्ञा न मानी। वह सिंहासन पर अधिकार करने के लिए उतावला होकर अपने समय से पहले ही बादशाह बनने के लिए प्रयत्न करने लगा। जब उसकी इस बेजा हरकत के लिए बेगम मरियम मकानी ने डाट बताई तो वह आगरा छोडकर इलाहाबाद चला गया और वहाँ उसने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी और साथियों तथा सहायकों को जागीर तथा उपाधियाँ दी। उसके विद्रोह की खबर पाकर अकबर दक्षिण से राजधानी में लौट आया और सलीम के नाम जो आगरे की ओर बढ रहा था, अपने आदमियों को अलग कर देने और खुद अपने पास उपस्थित होने या इलाहाबाद लौट जाने की आज्ञा भेजी। सलीम इलाहाबाद लौट गया और वहाँ स्वतन्त्र होकर रहने लगा। उसने पुर्तगालवालों से मन्त्रणा आरम्भ की और उनसे सहायता मागी।

बादशाह ने इस संकटापन्न स्थिति में दक्षिण से अबुल फजल को बुलाया। उसे सलीम ने वीरसिंह बुन्देला के हाथ से (सन १६०२) मरवा डाला। इस खबर को सुनकर अकबर बडा शोकाकुल हुआ और व्यथित होकर उसने कहा कि 'अगर सलीम बादशाह होना चाहता था तो मेरी जान ले लेता और अबुल फजल को न मारता।'

बादशाह ने बुन्देला सरदार को दंड देने के लिए सेना भेजी, परन्तु उसने भागकर अपने प्राण बचा लिये। सुल्तान सलीमा बेगम की सहायता से सलीम दंड पाने से बच गया और पिता पुत्र में मेल हो गया। अकबर ने अपनी स्वाभाविक उदारता से उसे क्षमा कर दिया और उसे फिर अपना युवराज बना लिया। किन्तु इस कृपा का सलीम पर कोई प्रभाव नहीं पडा। वह इलाहाबाद लौटकर फिर पूर्ववत स्वतन्त्र बनकर रहने लगा।

सलीम के विरुद्ध षड्यन्त्र—इन्हीं दिनों शाही दरबार में बादशाह के बाद सलीम को सिंहासन से वंचित करने के लिए एक षड्यन्त्र रचा गया, जिसमें राजा मानसिंह और अजीज कोका ने भाग लिया। वे व्यक्तिगत तथा राजनीतिक कारणों से सलीम के स्थान में उसके ज्येष्ठ पुत्र खुसरो को, जिसका विवाह अजीज कोका की पुत्री से हुआ था, अकबर का उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे। खुसरो ने जो इस षड्यन्त्र में बडी दिलचस्पी लेता था, अपनी माता को इस प्रकार कुपथ-

गामी न बनने की राय पर ध्यान न दिया। शाहजादा दानियाल अप्रल, १६०४ में अति मद्यपान के प्रभाव से मर गया जिससे सलीम के मार्ग से उसका एक प्रतिद्वन्द्वी दूर हो गया। शाहजादा मुराद पहले ही मई १५९९ म दक्षिण म मर चुका था। अन्त में अगस्त १६०४ म अकबर स्वय सलीम को दण्ड देकर उस मुराह पर लाने के लिए चला किन्तु वह अभी बहुत दूर नही बढा था कि उसे अपनी माता के बीमार होने का समाचार मिला जिससे वह आगरे लौट गया। सलीम बादशाह का उसको स्वय दड देने के निश्चय और मानसिंह और अजीज कोका के षडयन्त्र के समाचार से डरकर अपनी दादी की मृत्यु पर शोक प्रकट करने के बहाने आगरे चला आया। हरम की महिलाओ के प्रयत्न से पिता पुत्र म फिर मेल हो गया। सलीम क्षमा कर दिया गया और उसे अपना पहला सम्मान प्राप्त हो गया, किन्तु सलीम और उसके पुत्र के बीच प्रतिद्वन्द्विता किसी प्रकार शान्त नही हुई। खुसरो क्रोधतापूर्वक अपने पिता का विरोध करता ही रहा। उसके अनुचित चरित्र से बादशाह को बडी वेदना हुई और वह बीमार होकर शय्यागत हो गया। कुछ ही दिनो म उसकी बीमारी बहुत बिगड गई और चिकित्सको ने उसके अच्छे होने की निराशा प्रकट कर दी।

षड्यन्त्र की असफलता—इस बीच में सलीम को राजगद्दी से वचित करने का षडयन्त्र बराबर चल रहा था। षडयन्त्र के नेताओ ने उसे कैद कर लेना चाहा परन्तु वह उनके हाथ न आया। इस प्रयत्न म असफल होने पर उन्होने साम्राज्य के सरदारो और अधिकारियो की एक बडी सभा की और प्रकट रूप से सलीम के बदले खुसरो को गद्दी पर बठाने का प्रस्ताव किया। कई आदमियो ने इस प्रस्ताव को अन्यायसगत और चगताइयो के नियम के विरुद्ध बतलाकर उसका विरोध किया। धीरे धीरे सलीम का विरोध कम हो गया और उसके विरोधियो म से बहुत से उसके सहायक बन गये। स्वय अजीज कोका ने उसके अधिकार को स्वीकार कर लिया और राजा मानसिंह खुसरो को साथ लेकर बगाल चला गया।

अकबर की मृत्यु—साम्राज्य के सरदारो और बडे हाकिमो का समर्थन प्राप्त करके सलीम ने अपने शय्यागत पिता की सेवा में उपस्थित होने का साहस किया। सम्राट् की बीमारी बहुत बढ गई थी और यह स्पष्ट हो गया था कि

उसका अन्त-समय निकट है। वह बोल नहीं सकता था किन्तु वह समझता था कि उसके चारों ओर क्या हो रहा है। जब सलीम ने अपने अपराधों की क्षमा मांगी और उसके पैर पकड़कर नम्रतापूर्वक प्रणाम किया तो बादशाह ने उसे राजसी वस्त्रों को धारण करने और अपने बिस्तर के पास पड़ी हुई हुमायूँ की तलवार को अपनी कटि में लटका लेने का संकेत किया। सलीम ने उसकी आज्ञा का पालन किया और उसकी स्वच्छ्यनागार कमरे के बाहर चला गया। इसके कुछ ही देर बाद परम प्रतापी बादशाह अकबर १७ अक्टूबर १६०५ को इस संसार से चल बसा। शव-संस्कार की बड़ी शानदार तयारी की गई जिसमें साम्राज्य के सब उच्च अधिकारियों ने भाग लिया और स्वयं सलीम ने एक कर्त्तव्यशील पुत्र के समान कुछ दूर तक लाश को ले जाने में कंधा लगाया। बादशाह की लाश सिकन्दरे के एक मकबरे में दफनाई गई जिसे उसने अपने जीवन काल में ही बनवाना आरम्भ किया था और उसके पुत्र ने पूर्ण किया और यह अब भी मुगल स्थापत्य के एक श्रेष्ठ निदर्शन के रूप में वर्तमान है।

अध्याय १६

पुनर्निर्माण काल—शासन-व्यवस्था

युग की विशेषतायें—अकबर हिंदुस्तान के मुसल्मान शासकों में धार्मिक सहिष्णुता का सबसे अधिक उदार प्रतिपादक था। सोलहवीं शताब्दी धार्मिक क्षेत्र में जिज्ञासा तथा सन्देह का युग था और अकबर इसका सच्चा प्रतिनिधि था। उससे पहले कबीर आदि सुधारकों ने जात-पात तथा हिंदू मुसल्मानों के भेद भाव के विरुद्ध आवाज उठाई थी और ईश्वर की एकता पर जोर दिया था। दोनों जातियां कुछ सन्तों का समान रूप से आदर करती थी, किंतु राजनैतिक क्षेत्र में उनके बीच सहानुभूति तथा एकता स्थापित करने में बहुत कम सफलता मिली थी। मुसलमान धर्म निर्णायक अर्थात उलमा अब भी गैरमुसलिम प्रजा के साथ किसी प्रकार की रियायत करना अधर्म समझते थे। शासन में उलमा का मत पूर्णरूप से मान्य था। वे मुसल्मान शासकों तथा राजनीतिज्ञों के पथ-प्रदर्शक थे। अकबर ने जो हिन्दुओं की सहानुभूति तथा मेल प्राप्त करने की आवश्यकता का अनुभव करता था, उलमा के अधिकार से राज्य को मुक्त करने तथा हिंदुओं और मुसल्मानों में मेल स्थापित करने का निश्चय किया और उसे कार्य रूप में परिणत किया।

अकबर का धार्मिक उद्देश्य—इस राजनैतिक प्रेरणा के अतिरिक्त अकबर का हृदय धार्मिक तत्त्व को जानने के लिए व्याकुल रहता था। बदाऊनी कहता है कि वह प्राय प्रातःकाल एकान्त में एक शिलाखंड पर बैठकर जीवन की चिरन्तन समस्याओं पर मग्न होकर विचार किया करता था। उसे मनुष्य जाति के भेदभाव से बडा दुःख होता था। सुन्नी, शिया, महदवी और सूफी परस्परविरोधी सिद्धान्तों को महत्त्व देते थे और झगडा किया करते थे। वह उनके झगडो का अन्त कर देने और साम्राज्य के सभी विरोधी मतों में मेल

स्थापित करने का स्वप्न देखता था। उल्मा की धर्मान्धता से उसे घृणा हो गई जिससे इस्लाम में उसका विश्वास कम हो गया। उसकी धार्मिक जिज्ञासा बहुत प्रबल हो गई और वह आध्यात्मिक प्रश्नों पर अधिक विचार करने लगा तथा विभिन्न धर्मों और मतों के विद्वानों के विचार सुनने लगा और उसके फलस्वरूप उसने भारत में मुसलमानी शासन की परम्परागत नीति को बिल्कुल बदल दिया।

महान् परिवर्त्तन—यहाँ यह दिखलाना ठीक होगा कि अकबर के धार्मिक विचारों का विकास किस प्रकार हुआ। पहला प्रभाव उसके माता पिता का था। उसके पिता तथा पितामह कट्टर सुन्नी नहीं थे और उसकी माता एक शिया महिला थी, जिसने उसके मन में लड़कपन में ही धार्मिक सहिष्णुता का मूल्य भली भाँति बैठा दिया था। फिर उसने राजपूत राजकुमारियों से विवाह करके उन्हें शाही हरम में दाखिल किया, उन्होंने भी उसके धार्मिक विचारों पर बड़ा प्रभाव डाला। फिर भी वह १५७५ तक अपने बाह्य जीवन में सुन्नी धार्मिक कृत्यों का पालन करता रहा, किन्तु शेख मुबारक और उसके विलक्षण पुत्र फैजी और अबुल फजल ने उस पर गहरा प्रभाव डाला जिससे उसका मन इस्लाम की ओर से उचट गया। ये दोनों भाई सूफी थे। वे विविध धर्मों को सत्य की खोज के प्रयत्न मानते थे और सभी धर्मों के मूल में समरूप से पाई जानेवाली बातों को महत्त्व देते थे न कि उनकी विशिष्ट धार्मिक क्रियाओं को। वे विविध धर्मों के शाब्दिक झगड़ों के विरुद्ध थे और आध्यात्मिक उन्नति के लिए विचारों की स्वतन्त्रता को आवश्यक मानते थे। सूफी मत दार्शनिक दृष्टि से अद्वैत वेदान्त से बहुत साम्य रखता है। इसके अनुसार विविध आत्मायें परमात्मा से भिन्न जान पड़ती हैं और जीव विकारों के नष्ट हो जाने पर परमात्मा में लीन हो जाता है। अकबर का बचपन से ही उदार सूफी मत की ओर झुकाव था। शेख मुबारक और उसके पुत्रों के प्रभाव से सूफी मत के सिद्धान्तों ने उसके मन में घर कर लिया। इस कार्य में उस पर दिल्ली के शेख ताजुद्दीन का भी बहुत प्रभाव पड़ा।

फतहपुर के धार्मिक वाद विवाद—काल की प्रगति के साथ अकबर में धार्मिक उदारता का यह भाव जोर पकड़ता गया। १५७५ में उसने फतहपुर सीकरी में इबादतखाना नाम की एक नई इमारत के बनाये जाने की आज्ञा दी। इसमें विभिन्न धर्मों के माननेवाले धार्मिक शास्त्रार्थ के लिए इकट्ठे होने लगे। इसमें

हिंदू जन, पारसी ईसाई, मुसलमान आदि विभिन्न धर्मों के विद्वान तथा पडित देश के सभी भागो से इकट्ठे होते थे और अपने वाद विवादो तथा धार्मिक चर्चा से सम्राट को उसे उलझन में डालनेवाले धार्मिक रहस्यों को सुलझाने में सहायता देते थे। जहुत्तवारीख का लेखक लिखता है कि बादशाह धार्मिक वाद विवादो में भाग लेनेवाले मुल्लाओ, पडितो आदि को सदा मानव दुर्बलताओ से प्रभावित होकर सच्चाई को न छिपाने की चेतावनी देता था। वह उनके वाद विवाद को बड़े ध्यान से सुनता था और उसका मन सदा सत्य के निर्णय पर लगा रहता था। इन वाद-विवादो में भाग लेनेवाले कट्टर इस्लाम के प्रतिनिधियो के पक्ष के नेता शेख मखदूमुल्मुल्क और शेख अब्दुनबी थे और उदार विचारो के पोषक दल के प्रतिनिधि शेख मुबारक अबुल फजल अबुल फजी और राजा बीरबल थे। भिन्न भिन्न दलों के प्रतिनिधि पारस्परिक वाद विवाद में झगडा करने लगते थे, यहा तक कि एक दूसरे के प्रति अपशब्द उच्चारण करने लगते थे। कट्टर दल के प्रतिनिधि जब उदार दल के प्रतिनिधियो के साथ वाद विवाद करते थे तो उनके आक्रमण अधिक उग्र हो जाते थे, वे प्राय शिष्टता के नियमो का सर्वथा उल्लंघन कर जाते थे। इन वाद विवादो में बादशाह बराबर उपस्थित रहता था।

गैरमुस्लिम प्रभाव—कट्टर मुस्लिम पक्ष के मुल्ला लोग अकबर के प्रश्नो का सतोषप्रद उत्तर नही दे सकते थे। इसलिए उसे विश्वास हो गया कि उनके सिद्धान्त निःसार थे, और इसके फलस्वरूप वह सच्चे धर्म की खोज में अन्य धर्मों की ओर झुका। वह विद्वान् ब्राह्मणो को बुलाता था जिनमें पुरुषोत्तम और देवी मुख्य थे। देवी ने बादशाह को पुनर्जन्म का सिद्धान्त समझाया जिसकी सत्यता में उसे विश्वास हो गया। हिंदू धर्म के समान ही जैन धर्म ईसाई धर्म और सिक्ख मत में भी बादशाह की रुचि थी और वह उनके उपदेशकों का स्वागत करता था।

जिन जैन उपदेशकों का अकबर के धार्मिक विचारो पर बहुत प्रभाव पडना बतलाया जाता है वे हीर विजय सूरि, विजयसेन सूरि, भानुचद्र उपाध्याय और जिनचद्र थे। सन १५७८ से एक या दो जैन उपदेशक सदा शाही दरबार में रहते थे। उक्त जैन शिक्षको में से पहले से बादशाह ने फतहपुर में जैनमत के

सिद्धान्तो की शिक्षा ली। १५८२ में उसने हीरविजय सूरि को दरबार में निमन्त्रित किया और उनकी शिक्षा से प्रभावित होकर बंदियों और पिंजरे के पक्षियों को मुक्त कर दिया और खास-खास दिन पशुओं का वध निषिद्ध कर दिया। ग्यारह वर्ष बाद एक दूसरे जैन उपदेशक सिद्धचन्द्र ने अकबर से लाहौर में भेंट की और यथोचित रीति से सम्मानित हुआ। उससे जैन धर्मावलम्बियों के लिए कई एक रिआयतें प्राप्त कीं। शत्रुञ्जय पहाड़ी की तीर्थ-यात्रा का कर हटा दिया और जैनियों के पवित्र स्थानों पर उनका अधिकार हो गया। अकबर का मांस भक्षण त्याग जैन उपदेशकों की शिक्षा के प्रभाव का ही फल था।

पारसी भी शाही दरबार में उपस्थित रहते थे और वाद विवादों में भाग लेते थे। अकबर उनकी धार्मिक शिक्षा से बहुत प्रभावित हुआ और उनके नियमानुसार अबुल फजल को दरबार में बराबर पवित्र अग्नि जलाये रखने का प्रबंध करने का हुक्म दिया। पारसी धर्मशास्त्री दस्तूर मेहरजी ने, जो गुजरात के नवसारी नामक स्थान का निवासी था, बादशाह को पारसी धर्म की शिक्षा दी। दरबार में उसका बड़ा स्वागत हुआ और उसे बादशाह ने २०० बीघे जमीन दी। बादशाह ने सूर्य का पूजन करना आरम्भ किया और ऐसा करने में उसे अपने मित्र राजा बीरबर द्वारा बड़ा प्रोत्साहन मिला।

बादशाह ईसाई धर्म में भी बड़ी रुचि रखता था। उसने इस धर्म की शिक्षा के लिए गोआ से ईसाई पादरियों को बुलाया। ये पादरी व्यवहार-कुशल नहीं थे। उन्होंने पैगम्बर मुहम्मद और कुरान शरीफ के प्रति अपशब्दों का प्रयोग किया। इसी के फलस्वरूप पादरी रोडल्फ के प्राण संकट में पड़ गये थे और बादशाह को उसकी रक्षा के लिए विशेष प्रबंध करना पड़ा। ये पादरी भी फतहपुर के वाद विवादों में भाग लेते थे। उनकी शिक्षा का भी अकबर के धार्मिक विचारों पर प्रभाव पड़ा था।

बादशाह सिक्ख गुरुओं का भी बड़ा सम्मान करता था। एक बार उसने सिक्ख गुरु के इच्छानुसार पंजाब की रियाया की भलाई के लिए एक साल का लगान मुआफ कर दिया था। वह ग्रन्थ साहेब की बड़ी प्रशंसा तथा प्रतिष्ठा करता था।

शाही खुतबा—उपर्युक्त कारणों से कट्टर इस्लाम धर्म में बादशाह का

विश्वास कम हो गया। उसने उल्मा की बढी हुई शक्ति को आपत्तिजनक समझा और उन्हें मदिग्ध प्रश्नो का प्रधान निर्णायक न रहने देने का निश्चय किया। उसने प्रधान राज्यशक्ति के साथ ही राज्य के प्रधान धर्माधिकारी (मुजतहिद) का पद भी स्वय ग्रहण करने का निश्चय किया। उसने मिम्बर पर से स्वय खुतबा पढने का इरादा किया, जिसे इस अवसर के लिए फैजी ने तयार किया था। बदाऊनी कहता है कि जब बादशाह ने खुतबा पढना आरम्भ किया तो वह कापने लगा और वह इमाम को यह काय शाही खातिब को देकर बैठ गया। किन्तु अबुल फजल उसके इस कथन का समथन नहीं करता, वह कहता है कि राजधानी की प्रधान मस्जिद म अनेको बार बादशाह न खुतबा पढा और श्रोताओ ने उसके उपदेश को सुना। इस बात से कट्टर मुसल्मानो म बडी सनसनी फैली, किन्तु बादशाह अपने इरादे से नहीं डिगा। कट्टर मुसल्मानो ने शाही खुतबे म आये हुए 'अल्लाहो अकबर' शब्द का बादशाह द्वारा उसके निर्मूल बनाये जाने पर भी 'अकबर अल्लाह है' यह अथ लगाया।

बादशाह का इमाम-आदिल का पद ग्रहण करना—इस शाही खुतबे से भी अधिक आपत्तिजनक बादशाह का शेख मुबारक की राय से मुजतहिद का पद ग्रहण करना था। इससे बादशाह राज्य शासन के साथ ही धार्मिक विषयो मे भी सबसे बडा अधिकारी हो गया। १५७९ ई० म प्रमुख उल्मा बादशाह को इमाम-आदिल (मुजतहिद) घोषित करने के लिए सहमत हो गये। शेख मुबारक ने चटपट एक मजमून तयार किया जिस पर सब ने दस्तखत कर दिये। इस घोषणा पत्र में उन्होंने स्वीकार किया कि किसी धार्मिक प्रश्न पर मुजतहिदो म मतभेद होने पर बादशाह का यह अधिकार था कि उनके विभिन्न मतो म से वे जिसे उचित समझे उसे देश के कल्याण के लिए ग्रहण कर ले, जिसका पालन करने के लिए सब लोग बाध्य हो। उन्होने यह भी स्वीकार किया कि यदि बादशाह कोई नया निर्णय देना उचित समझेगे तो सब लोग उसे भी मानने के लिए बाध्य होगे बशर्ते कि वह कुरान की किसी आयत के अनुसार हो और उससे देश की वास्तविक भलाई होती हो।

इस घोषणा-पत्र से कट्टर मुसल्मानो म बडी खलबली मची और वे बादशाह पर सब प्रकार के दोषारोपण करने लगे। डा० विन्सण्ट स्मिथ बदाऊनी और

दरबार में आये हुए पादरियों का अनुसरण करते हुए कहता है कि इस समय से दो एक वर्ष के अन्दर अकबर ने पूर्णरूप से इस्लाम धर्म को छोड़ दिया और धर्म के सम्बन्ध में सोच समझकर एक पाखण्ड-पूर्ण नीति ग्रहण की। कट्टर मुसलमानों ने अकबर के धार्मिक भाव को नहीं समझा और उसकी धार्मिक जिज्ञासा को इस्लाम का परित्याग समझा। अबुल्फजल ने अकबरनामा में अकबर की धार्मिक नीति से कट्टर मुसलमानों की असन्तुष्टि का वास्तविक कारण बतलाया है। वह कहता है कि "कुछ दुष्ट लोग बादशाह को हिन्दू धर्म का अनुयायी बतलाते हैं। उनके अनुचित विचार का आधार उदार धार्मिक विचारवाले बादशाह का हिन्दू संतों का आदर और देश की भलाई तथा सुशासन के लिए हिन्दुओं के दर्जे का बढाया जाना है। इस बात के जोरदार होने में तीन बातों से सहायता मिली है। प्रथम—दरबार में विभिन्न धर्मों के धार्मिक पुरुषों का इकट्ठा होना और चूंकि प्रत्येक धर्म में कुछ अच्छी बातें हैं इसलिए हर एक का कुछ प्रशंसा प्राप्त करना द्वितीय—सार्वजनिक धार्मिक स्वतन्त्रता (सुलह कुल) की नीति, तृतीय—नीचों का दुष्ट स्वभाव।'

असल बात यह है कि बादशाह उलमा की संकीर्णता से ऊब गया था और विभिन्न मतों के मेल से एक ऐसा मत स्थापित करना चाहता था जो सबको स्वीकृत हो सके। वह एक नबी (ईश्वर-दूत) बनना नहीं चाहता था। राजाओं के ईश्वरीय अधिकार में ईश्वरीय दूत होने का दावा समझना भूल है। १६वीं शताब्दी के सभी शासकों के समान वह भी राजाओं के शासन के अधिकार को ईश्वर प्रदत्त मानता था और उस समय के हिन्दुओं मुसलमानों का भी ऐसा ही विश्वास था। उसका वास्तविक उद्देश्य अपने साम्राज्य की सब प्रजा में धार्मिक मेल स्थापित करना था। इसकी पूर्ति उसने दीनइलाही की स्थापना द्वारा करनी चाही।

दीनइलाही—यह नया धर्म सन् १५८१ में स्थापित हुआ। यह एक उदार धर्म था जिसमें सभी धर्मों की अच्छी बातें शामिल थीं। यह रहस्यवाद अध्यात्म विद्या और प्रकृति पूजा का सम्मिश्रण था। इसकी प्रधान विशेषता बुद्धिग्राह्यता थी। इसमें किसी सिद्धान्त पर बिना सोचे-समझे आंख मूँदकर विश्वास करने को नहीं कहा जाता था। इस धर्म में कोई देवता या नबी न थे। और इसका

प्रधान व्याख्याता बादशाह था। इस धम का बदाऊनी का तौहीदे इलाही अर्थात एकेश्वरवादी बनलाना ठीक नही ह। इसके मव सिद्धाता तथा आचारो से प्रकट होता ह कि यह एक ब्रह्मवादी भावना पर सगठित हुआ था। बादशाह पर सूफीमत के गहरे प्रभाव, हिंदू धम में उसके प्रेम और उसकी धार्मिक तथा दार्शनिक जिज्ञासा का यह फल हुआ था कि वह सब धर्मो को एक ही लक्ष्य पर पहुँचने के विभिन्न माग मानता था।

दीनइलाही की विधियाँ—अबुल्फजल ने आईने अकबरी म दीन इलाही का विवरण दिया ह और वह उन विधियो का उल्लेख करता ह जिनका इसके अनुयायियो का पालन करना पडता था। जब वे एक दूसरे से मिलते थे तो 'अल्लाहो अकबर और 'जल्लजल्लाल्हू' इन शब्दो का उच्चारण करते थे। आदमी के मरने के बाद आमतौर पर दिये जानवाले भोज के स्थान में वे अपने जीवन-काल में ही एक भोज देते थ। उन्ह मास भक्षण त्याग देना पडता था, गो कि दूसरो के मास भोजन में उन्ह कोई एतराज नही था, अपने जन्म के महीने म वे मास के समीप भी नही जा सकते थे। वे कसाइयो, धीमरो, चिडीमारो वगरह के साथ भोजन नही कर सकते थे। हर एक अनुयायी को अपने सालगिरह के दिन एक भोज देना पडता था। उस दिन वह दान देता था और अपनी महायात्रा के लिए तयारी करता था। सम्राट के प्रति भक्ति के चार दर्जे थे। बदाऊनी जो एक विद्वेषी कट्टर मुसलमान था, उनके विषय में लिखता ह कि "इन चार दर्जो में शिष्यो का बादशाह के प्रति अपने धन, जीवन, मान और धम का परित्याग करना था। जो इन चारो का परित्याग करता था, चारो दर्जों का अधिकारी होता था, और जो इनमें स एक का परित्याग करता था, एक का अधिकारी होता था।"

अकबर धर्मप्रचारक नहीं था—बादशाह ने इस धम की स्थापना नये आदमियो को भर्ती करने में तत्पर धमप्रचारक के रूप में नही की। उसका उद्देश्य एक नबी या धमाचाय बनने का नही, किन्तु परस्पर विद्वेषी विभिन्न धर्मो मे मेल स्थापित करने का था। वह अपने बहुसख्यक दरबारियो तथा अफसरो को कभी इस धम का अनुयायी बनने के लिए विवश नही करता था। इसके विपरीत वह विचार-स्वातन्त्र्य के महत्त्व पर बहुत जोर देता था और चाहता था कि सब लोग

मूढ-विश्वास और बिना सोचे-समझे आँख मूँदकर धार्मिक सिद्धान्तो के विश्वास के पाश से मुक्त हो। यदि बदाऊनी का कथन माना जाय तो राजा भगवानदास और कुंवर मानसिंह ने इस धर्म में दाखिल होने का अनुरोध किये जाने पर साफ इनकार कर दिया। आईन अकबरी में दीनइलाही के १८ अनुयायियो के नाम दिये हुए है जिनमे सबसे अधिक प्रसिद्ध अबुल्फजल, फैजी, शेख मुबारक, थट्टा का मिर्जा जानी और अजीज कोका है। इसमे सम्मिलित होनेवाला एकमात्र हिन्दू राजा बीरबल था जो अपने उदार विचारो के कारण बादशाह का बड़ा प्रिय हो गया था।

बादशाह के इस्लाम विरोधी कार्य--दीनइलाही के प्रचलित होने के बाद इस्लाम के विरुद्ध कई एक कानून बने जिनका बदाऊनी जो सकीर्ण विचारो का एक कट्टर मुसलमान था एक विस्तृत विवरण देता है। बादशाह पर इस्लाम को नष्ट करने के कट्टर मुसलमानो के अभियोग को समझने के लिए इनमें से कुछ का दिया जाना जरूरी है —

बादशाह का सिजदा किया जाने लगा।

१२ बरस की उम्र के पहले खतना मना कर दिया गया और उसके बाद इच्छा की राय पर छोड दिया गया।

गोमास भक्षण का निषेध हो गया, और यह सदेह है कि हिन्दुओं की सगति के कारण था। अपनी हिन्दू रानियो के प्रभाव के कारण बादशाह प्याज और लहसुन के सेवन के विरुद्ध हो गया जिससे उसने इनका भी निषेध कर दिया। दाढ़ी रखने की चाल अच्छी न समझी जाने लगी।

सोने चाँदी के काम के कपडे जिनका इस्तेमाल शरियत मे मना है आवश्यक कर दिया गया।

जगली सूअर और शेर का मास खाने का निषेध नही था और बादशाह ने हरम में और किले में सूअर और कुत्ते रख जाने का हुक्म दिया था और वह रोज सबेरे उन्हे देखने जाना एक धार्मिक कार्य समझता था।

नमाज और अजान बहिष्कृत कर दिये गये और मुस्लिम नाम जैसे अहमद, मुहम्मद और मुस्तफा बादशाह को ऐसे नागवार मालूम होने लगे कि वह उसे बदलवाकर दूसरे नाम रखवा देता था। रमजान का व्रत और हज करना गैर

दिया गया। अरबी का अध्ययन गुनाह समझा जाने लगा, और कुरान और हदीस का बहिष्कार कर दिया गया। इनका स्थान गणित, ज्योतिष, काव्य वैद्यक शास्त्र, इतिहास आदि ने ले लिया जिनका बड़े परिश्रम से अध्ययन होने लगा।

१६ वर्ष के पहले लड़कों की और १४ वर्ष के पहले लड़कियों की शादी नहीं हो सकती थी, क्योंकि ऐसे विवाहों की सन्तान कमजोर और मरीज होती थी।

मस्जिद और इबादतखाने गुदाम बना दिये गये।

जैसा पाठकगण समझ सकेंगे इनमें से कुछ आक्षेप सर्वथा अविश्वसनीय हैं। क्या यह बात विश्वास करने योग्य है कि अकबर के समान धार्मिक स्वतन्त्रता देनेवाला तथा विशाल हृदय बादशाह जो सब धर्मों का सम्मान करता था, सूअरों और कुत्तों का देखने जाना एक धार्मिक कार्य समझता हो ?

बदाऊनी के आक्षेपों का अधिकांश अविश्वसनीय है। वह एक संकीर्ण हृदय का धर्मान्ध मुसलमान था जिसकी पुस्तक से हिन्दुओं के प्रति उसका दुर्भाव पग-पग पर झलकता है और जो उन्हें किसी ऊँचे पद पर नहीं देख सकता था। उसके उक्त विवरण का समर्थन केवल दरबार में आये हुए ईसाई पादरियों के विवरणों से होता है जो उसके विवरण से भी अधिक अविश्वसनीय हैं। उन्होंने बादशाह के विरुद्ध धर्मांध मुसलमानों से सुनी-सुनाई किम्वदन्तियों पर बिना उनकी जांच किये ही विश्वास करके उन्हें लिख दिया है। बदाऊनी के भी अधिकांश कथनों का आधार सुनी-सुनाई बातें ही हैं। धार्मिक मामलों में बादशाह से विद्वेष रखने के कारण उसने उसके विरुद्ध किये गये आक्षेपों पर चटपट विश्वास कर लिया है और उनकी सत्यता की जाँच करने की कोशिश नहीं की है। डाक्टर विन्सेन्ट स्मिथ ने ईसाई पादरियों और बदाऊनी के इन कथनों के आधार पर ही विश्वास करके लिखा है कि अकबर ने इस्लाम का सर्वथा परित्याग कर दिया था।

दीनइलाही का महत्त्व—यह विचारना व्यर्थ है कि अकबर ने इस्लाम का परित्याग किया या नहीं। दीनइलाही के रूप में उसने एक संस्था स्थापित की जिसमें सब मननशील स्वतन्त्र विचारवाले विद्वान् सम्मिलित हो सकें, जो मतमतान्तरों के घेरों को पार कर चुके हों तथा शताब्दियों से प्रचलित रिवाजों के पाश से मुक्त हो चुके हों या इस संस्था के विशेष नियमों आदि पर जिनमें त्रुटियाँ अवश्य होंगी, हमें ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। इतिहास

के विद्यार्थियो को तो बादश ह के महान् उद्दे य और उसकी पूर्ति के लिए किये गये उद्योग पर ही ध्यान देना चाहिए। सम्प्रदाय के रूप में दीनइलाही की सफलता या विफलता बहुत महत्त्वपूण नही है। राजनैतिक दष्टि से यह पूणरूप से सफल हुआ। डा० विन्सेट स्मिथ इसे अकबर की अहम यता तथा मखता का फल बतलाते ह, कितु हम इस विचार स सहमत नहा हो सकते। एसा कहना अकबर की उच्च अभिलाषा तथा महान् उद्देश्य के प्रति आखे मूँद लेना होगा। इस सम्बन्ध मे हम अकबर के विषय मे लिखनेवाले प्रसिद्ध जमन इतिहास-लेखक फान नोअर के विचार स सहमत ह। वह अपनी प्रसिद्ध पुस्तक के अन्त में लिखता ह कि बदाऊनी बादशाह को दोषी ठहराने के लिए यह सिद्ध करने का कोई अवसर हाथ से नही जान देता कि वह अपन आपको ईश्वर या नबी के रूप में स्वीकार कराना चाहता था। कितु उस दीनइलाही से कभी घनिष्ठ सम्बन्ध नही था, उसने जनता में फली हुई गलतफहमियो को अपन ग्रन्थ में प्रकट किया है। अकबर के जीवन की बहुसख्यक घटनाय यह सिद्ध करती ह कि वह सबसे अधिक नम्र मनुष्यो में से था। अपन आपको ईश्वर मनव न की बात उसके स्वभाव के प्रतिकूल थी। दूसरे ही लोग इस मनुष्य को ईश्वर मानते थे, जो एक ऐसी सस्था का सस्थापक और प्रधान था जो एक साथ ही राजनतिक धार्मिक और दार्शनिक थी।

अकबर का व्यक्तित्व—अकबर भारतवष के ही नही किन्तु सारे ससार के इतिहास में एक परम प्रसिद्ध शासक ह। उसके महान् गुण आईने अकबरी और अकबरनामा के पष्ठो स बहुत अच्छी तरह प्रकट होते ह। उसके विद्वषी बदाऊनी के ग्रन्थ में भी उसकी महानता छिप नही सकी ह। अबुल्फजल के दिय हुए बादशाह के चरित्र के विवरण का अधिकाश बातो का पादरी मानसिरेट द्वारा भी समथन होता ह जो स्वय बादशाह से अच्छी तरह परिचित था। जहागीर "तुजुके जहाँगीरी में अपने पिता के विषय म लिखता ह कि वह मामूली कद से जरा सा लम्बा था। उसका रग गहुआ था, उसकी आखें और भौह काली थीं। उसके चहरे का रग गोरे की अपेक्षा सावला ही अधिक था और उसकी छाती चौडी और भुजाये लम्बी थीं। उसकी नाक की बाइ ओर आध मटर के बराबर एक मसा था जो बडा भला लगता था। उसकी आवाज बडी बुलन्द और गभीर थी।

अकबर देखन में एसा शानदार और रगीला था कि कोई आदमी उस

हाथियों का युद्ध

इच्छा होती थी। मने पशुओ की रक्षा का विचार किया और उनका मास खाना छोड दिया। कसाइयो, मछुवो आदि के—जिनकी जीविका दूसरो का प्राण लेना ही ह—रहने का स्थान अलग होना चाहिए और दूसरे मनुष्यो से उनका रब्त-जब्त अय दड द्वारा रोकना चाहिए। इसका कारण अज्ञान और निदयता ही ह कि अय प्रकार के भोजनो के मिलते हुए भी लोग जानवरो को दुख देने और उह मारकर खाने में तत्पर रहत ह। लोग अहिंसा के सौदय पर ध्यान नही देते और अपने आपको पशुओ का कब्र बनाते ह।" जब वह युवक था तो बहुत मदिरा पीता था लेकिन बाद मे शायद ही कभी मद्यपान करता था।

उसका स्वभाव बडा स्नेहमय था। वह इस बात पर दुख प्रकट करता था कि उसके पिता का इतना पहले देहान्त हो गया कि वह उसकी सेवा न कर सका। वह अपनी माता और दूसरे सम्बधियो का बडा सम्मान करता था और उनके आराम पर बहुत ध्यान देता था। उसने अपने भाई हकीम के साथ उसके विद्रोह करने पर भी बडी कृपा दिखलाई। अपने धम भाई अजीज कोका पर भी वह बडी कृपा रखता था। उसने बडे-बडे सनिक पद उसे दिये थे। वह छोटे बच्चो को बहुत प्यार करता था और कहा करता था कि उनका प्रेम मन को दयालु ईश्वर की ओर झुकाता है। उसे अहकार और दभ से घृणा थी। वह सबसे नम्रतापूवक व्यवहार करता था।

बादशाह का समय बडी सावधानी से विभाजित था जिससे एक क्षण भी व्यथ नष्ट नहीं होता था। वह सिफ चद घटो के लिए रात में सोता था और अपना अधिकाश समय दार्शनिक शास्त्रार्थों और इतिहासकारो से पूवकाल की घटनाओ का विवरण सुनने में बिताता था। सूर्योदय होने पर कृषक, सनिक, दूकानदार व्यापारी आदि सब पेशा की प्रजा राज प्रासाद की दीवार के निकट इकट्ठी होती थी और वहाँ से बादशाह का कार्निश (ताजीम) कर सकती थी। दिन में वह राज-काज सँभालने में व्यस्त रहता था और स्वय शासन प्रबन्ध की सब बातो की देख-भाल करता था और उह अपनी प्रतिभा से सुव्यवस्थित तथा परिष्कृत करता था।

निरक्षर होने हुए भी बादशाह की बुद्धि बडी प्रखर थी। उसकी स्मरण-शक्ति बडी बलवती थी जिसमें वह सब प्रकार का उपयोगी ज्ञान अपने ज्ञान भण्डार में सग्रह करता रहता था। उसे दशन शास्त्र, धम शास्त्र इतिहास और

राजनीति की अच्छी जानकारी थी, और वह गभीर से गभीर विषय पर अपनी सम्मति दे सकता था।

इसके पहले भारतवर्ष के किसी मुसलमान शासक के दरबार में इतने विद्वान्, कवि और दार्शनिक नही रहते थे। उसके महल मे एक बहुत बडा पुस्तकालय था जिसमे सभी विषयो की पुस्तके सगृहीत थी। वह इन पुस्तको को विद्वानो से आद्योपान्त पढवाकर सुनता था। वह स्वय अपनी कलम से प्रतिदिन जहा तक पुस्तक पढी जाती थी निशान बना देता था और पढनेवाला को पढे हुए पृष्ठो के हिसाब से पारिश्रमिक देता था। इस प्रकार उसने एशिया के साहित्य का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उसने सूफी कवियो का भी बहुत अच्छा अध्ययन किया था। उसे कलाओ मे बडी रुचि थी, वह सुलेखन कला का शौकीन था, और उसने कुशल सुलेखको को बहुत बडी सख्या म नौकर रखा था। उसे सगीत-कला से बडा अनुराग था उसके दरबार में बहुत से कलावत थे जिनका शिरमौर तानसेन था। बादशाह स्वय बहुत अच्छा नगाडा बजाता था। वह वास्तुकला का बडा अच्छा पारखी था। उसके शासन-काल की उसकी बनवाई हुई इमारतें इस विषय में उसकी सुरुचि का परिचय देती ह। बादशाह कुछ कल-पुर्जे का काम भी जानता था, उसने स्वय कुछ नये ढग की बदूके ईजाद की। यह देखकर बडा आश्चय होता ह कि निरक्षर होते हुए भी अकबर ने इतना ज्ञान कसे प्राप्त कर लिया था।

उसमें विस्मयकारी शारीरिक शक्ति थी। उसे शिकार का बडा शौक था। उसे भयकर जगली जानवरो के शिकार में बडा आनन्द आता था, भयकर से भयकर सिंह, चीते या हाथी के शिकार से जरा भी नही डरता था। और कितना ही थकने पर वह शिकार का पीछा नही छोडता था। वह भय का नाम ही नही जानता था, और घनघोर युद्ध में भूखे शेर की तरह शत्रुओ पर आक्रमण करता था। उसे हाथियो का युद्ध देखने में बडा आनन्द आता था। वह कभी कभी बरसात में गगा नदी में घोडा डाल देता था, और उसे पार करके दूसरे किनारे पर चला जाता था।

अकबर शासक के कर्तव्यो का बडा ऊँचा आदर्श रखता था। वह सदा ईश्वर की सेवा तथा सत्य की खोज में सलग्न रहते हुए प्रजा की भलाई में तत्पर रहता

था। वह कहता था कि बादशाह को ईश्वर के प्रति अपनी कृतज्ञता न्यायपूर्ण शासन तथा गुणियों के सम्मान द्वारा प्रकट करना चाहिए और प्रजा को उसकी आज्ञाओं का पालन करना चाहिए और उसकी प्रतिष्ठा करनी चाहिए। वह कहता था कि असत्यता सभी मनुष्यों के लिए अनुचित है लेकिन एक शासक के लिए और अधिक अनुचित है।

अकबर की कीर्ति का सबसे बड़ा कारण उसकी धार्मिक सहिष्णुता या समता की नीति है। अन्य धर्मों के अवलम्बियों पर जो प्रतिबन्ध थे उन्हें उसने दूर कर दिये। वह किसी के धार्मिक मतभेद के कारण उस पर अप्रसन्न नहीं होता था। वह शिया फतहउल्ला शीराजी के दरबार में अपने नियमों के अनुसार नमाज पढ़ने में कोई एतराज नहीं करता था। शिवरात्रि के दिन वह हिन्दू साधुओं को निमन्त्रित करता था और उनके साथ खाता-पीता था। वह गैरमुसलिमों को पूजा आदि में पूरी स्वतन्त्रता देता था। वह किसी को जबरदस्ती मुसलमान बनाने के विरुद्ध था। यदि कोई हिन्दू बचपन में जबरदस्ती मुसलमान बना लिया गया था और बड़े होने पर फिर हिन्दू धर्म में चला जाना चाहता तो वह इसमें कोई बाधा नहीं डालता था। उसने अन्य धर्मावलम्बियों के मन्दिरों, मूर्तियों आदि का नष्ट किया जाना अथवा उनके बनाये जाने में बाधा डालना कानून द्वारा रोक दिया था। उसके विचार बड़े उदार थे। वह सभी धर्मों के विद्वानों से मिलता था और उनके धर्मों के गूढ़ तत्त्वों का भाव पूर्णरूप से समझता था। वह हृदय से धर्मिष्ठ तथा ईश्वर में भक्ति रखनेवाला था। अबुल्फजल लिखता है कि वह अपने जीवन का प्रत्येक क्षण आत्मावेक्षण तथा ईश्वर की उपासना में व्यतीत करता था। डाक्टर विन्सेंट स्मिथ अकबर के अपनी विभिन्न वर्गों तथा मतों की प्रजाओं में ऐक्य स्थापित करने के हेतु एक धार्मिक समुदाय सगठित करने के प्रयत्न के यथार्थ महत्त्व को स्वीकार नहीं करते। जिस समय योरप के देशों की प्रजा शासक द्वारा निर्धारित धर्म को मानने के लिए बाध्य की जाती थी, अकबर ने अपने मुस्लिम समाज की धार्मिक संकीर्णता की अवहेलना करके सुल्हकुल अर्थात् सभी धर्मावलम्बियों के लिए पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। सभी बातों पर ध्यान रखते हुए हम कह सकते हैं कि अकबर ससार के बड़े से बड़े नरपतियों में स्थान पाने का अधिकारी है। उसके इस उच्च आसन के आधार हैं उसका चमत्कारी

अकबर के दरबार में जेस्विट

बुद्धि-बल, उसका दृढ चरित्र-बल और उसकी सफल राजनीति-पटुता, जिनके बल से उसने एक छोटे तथा शक्तिहीन राज्य को अपने समय का संसार का सबसे बड़ा, सबसे अधिक शक्तिशाली और सबसे अधिक समृद्धिशाली साम्राज्य बना दिया।

मुगल शासन का स्वरूप—मुगल शासन प्रणाली में कोई मौलिकता नहीं थी। समूचे मुसलिम जगत् में इराक के अब्बासिद खलीफा या मिस्र के फातिमी खलीफों के नियमों का अनुसरण किया जाता था। किन्तु जब तुर्क हिंदुस्तान मे आये तो उनके शासन सम्बन्धी नियमों पर भारतीय रीति नीति का भी बहुत प्रभाव पड़ा। वे लोग लगान के मुहकमे में अधिकतर हिंदुओं को ही भर्ती करते थे, जो अपने पुराने नियमों का ही पालन करते थे। इस प्रकार मुगल शासन पद्धति भारतीय और विदेशी प्रणालियों के सम्मिश्रण से बनी थी। इसमें विभिन्न विभागों का बड़ा विस्तृत विवरण रखना पड़ता था जिसे शासक को बहुत ध्यान देने की तथा सदा सतर्क रहने की आवश्यकता पड़ती थी। यह शासन केवल सैनिक शक्ति पर ही अवलम्बित नहीं था, इसमें आंशिक रूप से प्रजावर्ग का भी योग था। इसमें अफगान शासन की अपेक्षा प्रजा की सुख शान्ति पर अधिक ध्यान दिया जाता था और औरंगजेब के शासन काल को छोड़कर प्रजा को धार्मिक स्वतन्त्रता अधिक प्राप्त थी। इसमें प्रजा के सामाजिक नियमों तथा उनके परम्परागत अधिकारों की रक्षा पर काफी ध्यान दिया जाता था।

शासन का अधिपति बादशाह था। सिद्धान्त रूप से उसकी शक्ति अपरिमित थी, किन्तु व्यवहार में वह सदा अपने सलाहकारों की सम्मति तथा प्रजा की इच्छा पर ध्यान देता था। परम स्वेच्छाचारी बादशाह को भी अपने सहायक दल के सदस्यों की सम्मति लेनी पड़ती थी। अकबर एकतन्त्र शासक था, किन्तु उसकी एकतन्त्रता का अर्थ दायित्वहीनता नहीं थी। उसके नियम मुगल काल के पहले के मुसलमान सुल्तानों के नियमों से भिन्न थे। बहुत थोड़ी अवस्था में ही उसने अपने राज्य का पूर्ण स्वामित्व प्राप्त कर लिया और उदार मानवोचित सिद्धान्तों के आधार पर आश्रित नीति की घोषणा कर दी। गैरमुसलिम प्रजा मुसलिम शासन में जिन विशेष कष्टों का शिकार बनाई गई थी, उनसे मुक्त कर दी गई और सारी प्रजा के साथ सभी बातों में एक-सा व्यवहार होने

लगा। बादशाह के कुछ योग्य मन्त्री और सबसे अधिक विश्वासपात्र मित्र हिन्दू थे, जिनसे वह सभी महत्त्वपूर्ण बातों में सलाह लेता था। यह सत्य है कि उसने उल्मा की कट्टरता को दबाने की कोशिश की, किन्तु उसने ऐसा राजनैतिक क्षेत्र में उसके बुरे प्रभाव का अन्त कर देने के उद्देश्य से किया। शासन के सुप्रबंध के एक बहुत बड़े अंश का श्रेय स्वयं सम्राट की असाधारण प्रतिभा को था। जैसा डाक्टर स्मिथ कहते हैं, वह अधिकतर अपने मन्त्रियों का सिखानेवाला न कि उनसे सीखनेवाला था। इसके पहले भारत में मुसलिम राज्य में कभी राजकर्मचारी ऐसे सुदक्ष न थे या राज प्रबंध ऐसे सुचारु रूप से नहीं होता था। इसमें मुख्य भाग खुद बादशाह का था। बादशाह के नीचे शासन का प्रबंध करनेवाला सबसे बड़ा राजकर्मचारी वकील था। प्रारंभिक वर्षों में इस पद पर बैरमखाँ नियुक्त था।

मुगल राज्य के प्रधान विभाग इस प्रकार थे —आय-व्यय विभाग (दीवान के अधीन), सेना विभाग तथा वेतन विभाग (मीर बख्शी के अधीन), शाही परिवार का प्रबन्ध (खानसामा के अधीन), न्याय विभाग (काजी-उल्-कुजात अथवा प्रधान काजी के अधीन), धार्मिक संस्थाओं आदि के दान आदि का विभाग (सदरे सदूर के अधीन) प्रजा के चरित्र का निरीक्षण (मुहतसिब के अधीन)। इनके अतिरिक्त कुछ कम महत्त्वपूर्ण निम्नलिखित विभाग भी थे —तोपखाना मीर आतिश या दारोगा-ए-तोपखाना के अधीन) खबर अथवा डाक (दारोगा ए-डाक चौकी के अधीन), टकसाल (उस विभाग के दारोगा के अधीन)।

वजीर या दीवान—दीवान आर्थिक विषयों में बादशाह का प्रतिनिधि था। वह शाही खजाने का प्रबंध और उसके हिसाब की जाँच करता था। कर विभाग उसी के अधीन था। करों की रकम और उसकी वसूली के प्रश्नों का वही निर्णय करता था। साम्राज्य के विभिन्न भागों से मालगुजारी के रुपये और कागजात उसके दफ्तर में भेजे जाते थे, और उसी की मंजूरी से सब बड़ी रकम अदा की जाती थी। अन्य बड़े कर्मचारियों के समान वजीर भी एक मनसबदार था। वह प्रायः राजधानी ही में रहता था, लेकिन कभी-कभी सैन्य-संचालन भी करता था।

बख्शी—माल और फौज के महकमे एक दूसरे से बिल्कुल अलग न...

इंसाफ और कानून राज्य में न्याय का सबसे बड़ा अधिकारी सम्राट् था। वह कुछ किस्म के मुकदमों का और प्रान्तीय सरकारों से आई हुई अपीलों का फैसला करता था। प्रजा को सम्राट के न्याय में बड़ा विश्वास था। एक खास दिन छोटे बड़े सब लोग उसकी कचहरी में पहुँचकर उसके सामने अपनी फरियाद पेश कर सकते थे। सम्राट् यात्रा में भी नित्य कचहरी करता था, और अपने अफसरों के भी विरुद्ध फरियाद सुनता था। मीर अर्ज को दिन रात महल पर हाजिर रहना पड़ता था। एक समय तो काम की अधिकता के कारण सात मीर अर्ज नियुक्त किये गये थे जिनमें मिर्जा अब्दुर्रहीम सर्वप्रधान था।

बादशाह के नीचे धार्मिक मामलों में माल के मुकदमों का फैसला सदर-ए-सदूर करता था। बादशाह के बाद न्याय विभाग का सबसे बड़ा अफसर काजीउल्-कुजात था। इंसाफ करने के लिए तीन अफसर रहते थे—(१) काजी (२) मुफ्ती और (३) मीर अदल। मुफ्ती कानून की व्याख्या करता था, काजी मुकदमे के सब प्रमाणों की जांच करता था और मीर अदल फैसला देता था। मीर अदल की नियुक्ति राज्य के हितों पर ध्यान रखने और काजी का प्रभाव बहुत न बढ़ने देने के लिए होती थी। उस समय वकील नहीं थे जिससे वादियों और प्रतिवादियों को खुद ही अपने मुकदमे की पैरवी करनी पड़ती थी। काजी की कचहरी में हिंदुओं और मुसलमानों दोनों के माल और फौजदारी के मुकदमों का फैसला होता था। फौजदारी कानून सबके लिए एक समान था और दंड देने में किसी प्रकार के धार्मिक विभेद पर ध्यान नहीं दिया जाता था। माल के मुकदमे में फरीकैन के हिंदू होने पर उन्हीं के रस्मों और रवाजों का ध्यान रखा जाता था। कोई एक निश्चित तथा लिखित विधान नहीं था जिसका अनुसरण काजी लोग कर सकते। वे साधारणतः कुरान और हदीस के प्रमाणों का अनुसरण करते थे। लगान के बारे में बादशाह के बनाये हुए नियमों का पालन होता था। स्वयं बादशाह सब नियमों से परे था और काजियों के फैसलों को अपनी इच्छानुसार उलट पलट सकता था।

दंड प्रायः कठोर होते थे। अंगच्छेदन का नियम प्रचलित था किन्तु प्राण-दंड बादशाह की स्वीकृति के बिना नहीं दिया जा सकता था। जेलों का कोई आम बंदोबस्त नहीं था। बहुत दिनों के लिए दंडित अपराधियों को किलों में कैद

किया जाता था। जघन्य पापो के करनेवालो को कठोर दण्ड दिया जाता था। जुर्माने की प्रथा भी प्रचलित थी और कभी कभी जुर्माने में बडी रकम वसूल की जाती थी।

बादशाही नौकरी—अकबर बडा गुणग्राही बादशाह था। सुयोग्य मनुष्य ही उसके कृपापात्र हो सकते थे। वह स्वय सब महत्त्वपूर्ण पदो पर ढूँढ ढूँढकर योग्य मनुष्यो को नियुक्त करता था। उसकी इच्छा ही कानून थी। प्रसन्न होने पर तथा उनकी योग्यता का कायल होने पर वह साधारण स्थिति के मनुष्यो को भी दायित्वपूर्ण उच्च स्थानो पर नियुक्त कर देता था तथा अप्रसन्न होने पर उच्चाति उच्च पदाधिकारियो को भी पदच्युत तथा नष्ट कर देता था। उसके यहा योग्यता सम्पन्न मनुष्यो को ऊँचे से ऊँचे पद प्राप्त करने का अवसर मिलता था। धार्मिक विचार आदि उनके मार्ग में बाधक नही हो सकते थे। इस विषय में हमारे सामने राजा टोडरमल का एक बहुत अच्छा उदाहरण उपस्थित है। अकबर के समय मे बहुत से विदेशी उच्च पदो पर नियुक्त थे। ऐसे लोगो की सख्या ७० फीसदी और भारतीयो की केवल ३० फीसदी थी। अकबर के दरबार मे पश्चिमी एशिया के विभिन्न देशो के सुयोग्य मनुष्य नौकरी के लिए आते थे और अच्छी नौकरियाँ पाते थे। हिन्दुओ के लिए उच्चातिउच्च पद प्राप्त करने में कोई बाधा नही थी। हिन्दुओ मे प्राय राजपूतो को ही उच्च पद मिलते थे। राजा टोडरमल और राजा बीरबल ही ऐसे गैरराजपूत हिन्दू थे जिन्हे उच्च पद मिले थे। राजपूत अकबर के राज्य के दृढ स्तम्भ थे। राज्य के बडे अधिकारी अन्य सेवाये करने के साथ फौजी अफसर भी होते थे। राजा बीरबल जो दरबार का कवि तथा विदूषक था, यूसुफजाइयो का दमन करने के लिए भेजा गया था। जिसमें उसके जीवन का ही अन्त हो गया। अबुल्फजल को जो एक लेखक तथा साहित्य-सेवी था, खानदेश के शासक बहादुर पर आक्रमण करने और राजा टोडरमल को बगाल के विद्रोहियो का दमन करने के लिए भेजा गया था। साम्राज्य के उच्च पदाधिकारियो को जहाँ उच्च मान प्रतिष्ठा तथा अधिकार प्राप्त थे, वहा उनके लिए एक बडी अप्रीतिकर बात भी थी। वे अपनी विशाल सम्पत्ति का अपने जीवन में सब प्रकार उपभोग कर सकते थे, किन्तु उनकी मृत्यु पर उनके उत्तराधिकारी उसे प्राप्त नही कर सकते थे। उनकी मृत्यु होते ही उनकी सम्पत्ति सरकारी खजाने

में दाखिल हो जाती थी। इसका फल यह होता था कि पुश्तैनी सरदारों के ऐसे वंशों की सृष्टि नहीं होने पाती थी जो साम्राज्य के लिए भयजनक हो सकें। किन्तु इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि सरदार लोग विलासिता तथा आनन्दोपभोग में डूबे रहते थे तथा अपने पद की रक्षा के लिए दरबार के प्रभावशाली मनुष्यों को बड़ी रकमों की भेंट तथा घूस दिया करते थे।

प्रान्तीय शासन—शेरशाह के समय में दिल्ली का साम्राज्य सरकारों और परगनों में विभाजित था, जिनमें से हर एक के अलग-अलग अफसर थे। उसके समय में सूबे नहीं थे। हुमायूँ ने जब दुबारा राज्य प्राप्त किया तो उसने राज्य का एक बड़ा भाग जागीरों के रूप में अपने सरदारों में तकसीम कर दिया। वे लोग अपनी अपनी जागीरें बढ़ाने की और स्वतन्त्र हो जाने की कोशिश करने लगे। अकबर ने जागीरदारी प्रथा बन्द कर दी और साम्राज्य को बारह सूबों में विभाजित कर दिया, जिनके नाम इस प्रकार हैं (१) आगरा (२) इलाबास या इलाहाबाद, (३) अवध, (४) देहली (५) लाहौर, (६) मुल्तान, (७) काबुल, (८) अजमेर, (९) बंगाल, (१०) बिहार, (११) अहमदाबाद, (१२) मालवा। बाद में दक्षिण विजय से (१३) बरार (१४) खानदेश और १५ अहमदनगर—ये तीन सूबे और बढ़ गये और उनकी संख्या १५ हो गई। शासन प्रबन्ध के लिए सूबे सरकारों और परगनों में विभाजित थे। कई परगनों का एक सरकार होता था। सूबा प्रत्येक बात में साम्राज्य का प्रतिरूप था। सूबे में सूबेदार की शक्ति असीम थी। राजधानी से दूर के सूबों के सूबेदार प्रायः एक छोटे बादशाह के समान रहते थे। सूबेदार जो सिपहसालार कहलाता था, सूबे में बादशाह का प्रतिनिधि था। उसे बादशाह के केवल दो अधिकार प्राप्त नहीं थे, वह झरोखे में नहीं बैठ सकता था और बादशाह की मंजूरी के बिना सन्धिविग्रह नहीं कर सकता था। सिपहसालार को मुल्की और फौजी दोनों अधिकार प्राप्त थे। वह सूबे के न्याय-विभाग और युद्ध विभाग का प्रधान था। उसकी अपनी कचहरी होती थी जिसमें वह काजियों और मीरअदलों के फैसलों की अपील सुनता था। सूबे में न्याय विभाग का प्रधान होते हुए भी सूबेदार बादशाह की स्वीकृति के बिना किसी को प्राण-दण्ड नहीं दे सकता था। वह धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता था। धार्मिक प्रश्नों का निर्णय सदर तथा अन्य अधिकारी करते थे। युद्धविभाग

प्रधान के रूप मे वह सूबे की फौजा का सिपहसालार था और उसी पर फौज को तैयार रखने की जिम्मेदारी थी। सूबे के उच्चतम अधिकारियो को छोडकर वह अन्य अधिकारियो को नियुक्त कर सकता था या उन्हे बर्खास्त कर सकता था।

सूबेदार के नीचे दीवान, सदर, आमिल, बितिक्ची, पोतदार या खिजानेदार, फौजदार, कोतवाल, वाकअ-नवीस कानूनगो, पटवारी आदि अन्य अधिकारी होते थे। सूबे म सूबेदार के बाद सबसे बडा हाकिम दीवान था। पहले उसकी नियुक्ति सूबेदार करता था, लेकिन १५७९ ई० से उसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा होने लगी। सूबे का खजाना उसी के अधीन था। उसके दस्तखत के बिना कोई रकम खजाने से अदा नही हो सकती थी। वह मुहकमा लगान के मुकदमो का फैसला करता था। उसमें और सूबेदार में किसी विषय म मतभेद या विरोध होने पर केन्द्रीय सरकार उस विषय का निर्णय करती थी। दीवान सूबेदार के कामो पर नजर रखने और उसकी शक्ति को बहुत बढने से रोकने का काम देता था। सूबे के सदर को केन्द्रीय सरकार नियुक्त करती थी। उसका प्रधान कार्य सयूरगाला का निरीक्षण था। उसे धार्मिक संस्थाओ को दान आदि देने का अधिकार प्राप्त था। वह दीवान की अपेक्षा सूबेदार के प्रभाव से अधिक स्वतन्त्र था। काजी और मीर अदल सदर के अधीन होते थे। आमिल के कर्तव्य विभिन्न प्रकार के थे। उसका प्रधान कर्तव्य लगान वसूल करना था। किन्तु इसके साथ ही उसे डकैत आदि अपराधियों को दड देकर प्रजा की सुख-शान्ति की रक्षा भी करनी पडती थी। उसे कारकुन, मुकद्दम और पटवारी लोगो के कागजात की जाच भी करनी पडती थी। बितिक्ची जो आमिल का समकक्ष था, उस पर नियन्त्रण का भी काम था। वह कानूनगो के कामो की जाच करता था। वह हर फसल के लगान का हिसाब रखता था और सालाना लगान का विवरण दरबार में भेजता था। पोतदार या खिजानेदार लगान का रुपया खजाने मे जमा रखता था। जो रकम जमा की जाती थी, उसकी वह रसीद देता था और दीवान के दस्तखत पर रकम अदा करता था। फौजदार सिपहसालार के नीचे सूबे में सबसे बडा फौजी अफसर होता था। एक सूबे में कई फौजदार होते थे। फौजदार का कार्य छोटे-

मोटे उपद्रव शान्त करना, लुटेरो को गिरफ्तार करना, लगान वसूल करने म आमिल का सहायता देना आदि था। फौजदारा की नियुक्ति सूबेदार करता था। कोतवाल के कर्तव्यो का विवरण ऊपर केन्द्रीय शासन के विवरण में दिया जा चुका ह। वाक्अ-नवीसो का काय प्रातीय शासन की सब वाता की खबर केन्द्रीय सरकार को देना था। इन्ही लोगा के द्वारा सम्राट सूबा की सब वाता की खबर रखता था। इन अफसरो के सिवाय और भी छोटे अफसर थे, जा सूबे के शासन का काय चलात थे। कारकुन, काननगो और पटवारी ये महकमा लगान के कायकर्त्ता थे। कानूनगो परगन का अफसर था, उसकी तनरवाह २० से २५ रुपये तक होती थी। हर एक परगने म बहुत से गाव होते थे, और हर एक गाव में एक पटवारी और एक मुकद्दम (मुखिया) होते थे। मुकद्दम का काम गाव की शान्ति रक्षा और लगान की वसूली म सहायता देना था।

प्रातीय शासन म सूबेदार की शक्ति को नियन्त्रित करने के लिए पूरा यत्न किया गया था, किन्तु अधिक दूरी और आमद-रफ्त के अच्छे साधनो के न होने के कारण तथा युद्धा की अधिकता के कारण सूबेदारा को पूणरूप से वश में रखन म तथा प्रातीय सरकार पर यथेष्ट नियन्त्रण रखने मे सफलता नही मिलती थी। घूसखोरी का बाजार गम था जिससे अत्याचारा का प्रतिकार नही हो पाता था और बहुधा न्याय का गला घाटा जाता था।

लगान का बन्दोबस्त—शेरशाह पहला मुसल्मान शासक था जिसने जमीन की पैमाइश कराई और लगान के बन्दोबस्त के मुख्य नियमा को निश्चित किया जिनका अक्वर के समय में अनुसरण हुआ। शेरशाह की अकाल मत्यु से इस विषय में उसका काय अधूरा रह गया और उसके बाद शासन के अव्यवस्थित हो जान से उसने जो कुछ किया था, उस पर पानी फिर गया। जब हुमायूँ ने हिदुस्तान का राज्य फिर प्राप्त किया तो उसने राज्य का एक बडा भाग जागीरो के रूप में अपने सरदारा मे विभाजित कर दिया। वे लोग एक निश्चित रकम सम्राट को देते थे। खालसा जमीन में जिसका लगान सीधे सरकारी खजाने में जाता था सैकडा वर्षों से प्रचलित बटाई का नियम स्वीकार किया गया था।

अक्वर के राज्य के आरम्भ से ही मालगुजारी के बन्दोबस्त म सुधार का

प्रयत्न किया जाने लगा, किन्तु इसमें वास्तविक सफलता १५७३ में गुजरात विजय के बाद मिली, जब टाडरमल उस प्रान्त का बन्दोबस्त करने के लिए भेजा गया। उसने वहाँ पहले पहल नियमित रूप से जमीन की पैमाइश कराई और जमीन के रकबे और किस्म के विचार से मालगुजारी नियत की। यही नियम अन्य प्रान्तों के लिए भी ग्रहण किया गया। १५७५ में बंगाल और बिहार के अतिरिक्त सारे साम्राज्य का लगान सीधे सरकारी खजाने में दाखिल होने लगा, जागीर बन्द कर दी गई। उस समय तक सम्पूर्ण अधिकृत साम्राज्य १८२ परगनों में विभाजित किया गया। हर एक परगने में उतनी जमीन रखी गई थी जितनी की मालगुजारी एक करोड थी और हर एक परगने का अफसर करोडी कहलाता था। इन अफसरों ने अपने पद का अनुचित लाभ उठाना चाहा। वे रियाया को कष्ट देकर उनसे अधिक लगान वसूल करने लगे, जिस पर टाडरमल ने उन्हें बडा कडा दंड दिया।

१५८२ में जब टाडरमल दीवान अशरफ मुकर्रर हुआ तो उसने लगान के मुहकमे की कायापलट कर दी। अब तक हर साल उपज और गल्ले के दर के मुताबिक लगान मुकर्रर करने का नियम प्रचलित था, जिससे लगान की रकम हर साल बढती-घटती रहती थी। साम्राज्य के क्षेत्रफल में वृद्धि हो जाने के कारण इस सालाना बन्दोबस्त की प्रथा में सुधार आवश्यक हो गया। टोडरमल ने इसकी असुविधाओं तथा कठिनाइयों को दूर करने के लिए पिछले दस वर्षों अर्थात् राज्य के पन्द्रहवें वर्ष (१५७० ई०) से चौबीसवें (१५८० ई०) तक के लगान की औसत के आधार पर सालाना लगान आगामी दस वर्षों के लिए मुकर्रर कर दिया। खेती की सारी जमीन की पैमाइश की गई। पहले सन की रस्सी से पैमाइश हुआ करती थी जो भीगने पर छोटी और सूखने पर बडी हो जाया करती थी। टाडरमल ने बाँसों में लोहे के छल्ले डालकर जरीबें तयार कराई। जमीन चार वर्गों में बाँटी गई (१) **पोलज**, जिसमें हर साल दोनों फसलें बोई जाती थीं अर्थात् जो कभी परती नहीं छोडी जाती थी, (२) **परौती** जो कभी कभी परती छोडी जाती थी, (३) **चाचर**, जो तीन बरस तक परती रहती थी, (४) **बंजर** जो पाँच या अधिक बरसों तक परती रहती थी। पहले दो वर्गों की उपज की दृष्टि से तीन श्रेणियाँ की गई थीं। तीनों की उपज का औसत उपज की दर होती थी जो बन्दोबस्त का आधार बनाई गई थी। अन्य दो वर्गों

की जमीन के लिए दूसरा तरीका था। औसत उपज निश्चित कर लेने पर नकद लगान का दर नियत किया जाता था। नकद लगान का दर पिछले दस वर्षों के गल्ले की कीमत की औसत के मुताबिक अगले दस बरसों के लिए मुकर्रर किया जाता था। लगान उपज का एक तिहाई लिया जाता था। किसान लगान में नकद या गल्ला जो चाहे दे सकता था।

यह बन्दोबस्त का जब्ती तरीका कहलाता था। यह बिहार, इलाहाबाद, अवध आगरा, मालवा देहली लाहौर और मुल्तान के सूबों में और अजमेर व गुजरात के हिस्सों में प्रचलित था। इसकी विशेषता यह थी कि हर एक खेत के लगान में उसमें बोये गये गल्ले की किस्म के मुताबिक एक खास रकम अदा करनी पड़ती थी। इसके अतिरिक्त बन्दोबस्त के गल्लाबख्श और नसक व कुछ और तरीके भी थे। गल्लाबख्श में गल्ले की बटाई का पुराना तरीका था। यह प्रथा ठट्टा में और काबुल व काश्मीर के सूबों व कुछ हिस्सों में प्रचलित थी। नसक का जमींदारी प्रथा की अपेक्षा रयतवारी प्रथा से अधिक सादृश्य था। इसमें रियाया सीधे सरकार को लगान देती थी। इन तरीकों में से कोई जब्ती तरीके के समान जो राज्य के अधिकांश भागों में प्रचलित था, सुव्यवस्थित तथा सुनियमित नहीं था।

सेना—अकबर की सेना कितनी बड़ी थी, यह प्रश्न बड़ा विवादास्पद है। फिर भी ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि उसकी सेनाओं में कम से कम तीन चार लाख सैनिक थे। हाकिन्स कहता है कि जहांगीर की सेना में तीन चार लाख सैनिक थे। जहांगीर के समय में साम्राज्य की परिस्थिति ऐसी नहीं थी कि अकबर के समय की फौज से बड़ी रखने की आवश्यकता पड़ी हो। आईन अकबरी में कुल मिलाकर ४४ लाख से अधिक सैनिकों का होना बतलाया गया है। अकबर बहुत बड़ी स्थायी सेना नहीं रखता था। सेना के मुख्यतः तीन रूप थे—

(१) मनसबदारों की फौजें जिनमें दाखिली सिपाही और कुमकी सिपाही अर्थात् "बरआवुर्दी" (ऊपरी) भी शामिल थे।

(२) अहदी या वे शरीफ सिपाही जिन्हें मनसब नहीं मिल सकी थी।

(३) राजपूत राजाओं की सहायक सेनायें। ये सेनायें जो लड़ाई के समय साम्राज्य की ओर से लड़ती थीं, बड़ी उपयोगी सिद्ध हुईं। बादशाह भी इनका बड़ा मान करता था।

मनसबदारी प्रथा—जब अकबर बादशाह हुआ, राज्य के सरदारो को जगीरें मिली हुई थी और उन्हे सवारो की एक निश्चित सख्या रखनी पडती थी जिन्हे लेकर उन्हे आवश्यकता पडने पर राज्य की सेवा करनी पडती थी। मनसब शब्द का अर्थ पद व प्रतिष्ठा है। प्रत्येक मनसबदार साम्राज्य का सेवक था और उसे आवश्यकतानुसार फौजी व अन्य प्रकार की सेवा करनी पडती थी। अबुल फजल ने आईने अकबरी में लिखा है कि मनसबदारो के ६६ दर्जे थे लेकिन असल मे ये ३३ से अधिक नही जान पडते। ये मनसब २० से ५००० तक के होते थे। बाद में राज्य के सबसे अधिक प्रतिष्ठित अफसरो के लिए हफ्तहजारी का दर्जा मुकर्रर हुआ। राज्य के उत्तराधिकारी के लिए दस हजारी का एक खास मनसब था। मनसबदारो के पद मे जात और सवार के दर्जे का भेद भी होता था। जात की सख्या मनसबदार की श्रेणी को सूचित करती थी। इसके साथ की सवारो की सख्या मनसबदार का विशिष्ट मान सूचित करती थी। जिसके लिए उसे कुछ अधिक वेतन मिलता था। मनसबदारो की क्रमिक पदोन्नति का कोई नियम नही था। बादशाह जिसे जब जो दर्जा चाहता था देता था। मनसबदारी का दर्जा पुश्तनी नही था। मनसब केवल फौजी अफसरो को ही नहीं मिलते थे। शासन प्रबन्ध करनेवाले अफसरो को भी मनसब मिलते थे और आवश्यकता पडने पर वे सैन्य सचालन के लिए भी नियुक्त किये जाते थे।

प्रत्येक मनसबदार को अपने पद के अनुसार सनिको घोडो हाथियो ऊँटो खच्चरो और गाडियो की एक निश्चित सख्या रखनी पडती थी। लेकिन मनसबदार इस विषय मे अपने कर्तव्य का पालन नही करते थे। वे सरकार को धोखा दिया करते थे। कुछ बेईमान मनसबदार कुँजडा धुनिया, जुलाहा आवारे पठानो तुर्को, आदि को जिन्हे युद्ध का अनुभव तथा हथियार चलाने का ज्ञान नही होता था, अपने साथ लडाई मे ले जाते थे और फिर लौटकर उन्हे अलग कर देते थे। जाच के लिए हाजिरी के वक्त भी वे घसियारो भठियारो, कुँजडो जुलाहो, धुनियो आदि को मँगनी के हथियारो और कपडो से सजाकर और मँगनी के ही घोडो को दिखला देते थे। इस प्रकार सिपाहियो के वेतन वे आप हजम कर जाते थे। इस नाशकारी आचरण का अन्त करने के विचार से बादशाह ने दाग की प्रथा और सवारो तथा घोडो की हुलिया दर्ज करने की प्रथा प्रचलित की।

दाग की प्रथा नई नही थी। अलाउद्दीन खिल्जी ने इसे पहल-पहल प्रचलित किया था और फिर शेरशाह ने भी इससे काम लिया था। अकबर ने एक बख्शी और उसके सहायक दारोगा के अधीन दाग का एक अलग मुहकमा खोल दिया और उसके नियम निर्धारित कर दिये। पचहजारी व उनसे ऊँचे मनसबदार दाग की प्रथा से बरी कर दिये गये। इस प्रथा के अनुसार हर एक सवार का चेहरा (हुलिया आदि की सूची) दर्ज किया जाता था जिसमें उसका नाम पिता का नाम, देश, अवस्था और पूरी हुलिया रहती थी और उसके घोडे की भी पूरी हुलिया दर्ज की जाती थी। इसके साथ ही घोडे को गरम लोहे से दाग देते थे और यह चिह्न भी सूची में दर्ज कर लिया जाता था। हाजिरी के समय इसी सूची के अनुसार हर एक बात का मिलान किया जाता था। इस प्रथा के कारण मनसबदारो और सिपाहियो की दगाबाजी कम तो जरूर हुई किन्तु उसका अन्त नही हुआ।

अकबर जिस समय गद्दी पर बैठा सरदारो को जागीर देने की प्रथा प्रचलित थी। उसे यह प्रथा पसद न आई मनसबदारो की जागीर ले ली गईं और उन्हें नकद वेतन मिलने लगा। सरदारो के जागीरो के भी खाल्सा जमीन के रूप में परिवर्तित हो जाने से राज्य की आमदनी बढ गई।

दाखिली और अहदी—आईने अकबरी के अनुसार मनसबदारो को सैनिको की एक निश्चित संख्या दी जाती थी, जिनकी तनख्वाह सीधे सरकार से मिलती थी। ये लोग दाखिली कहलाते थे। अहदियो का एक अलग ही दल था। ये वीर सुयोग्य तथा शरीफ सिपाही थे जिन्हें सम्राट न मनसब न देकर अपनी नौकरी में रख लिया था। ये लोग सबके सब सवार होते थे। इनके लिए एक अलग ही दीवान तथा बख्शी होता था, और दरबार का एक प्रसिद्ध अमीर उनका सरदार बना दिया जाता था। दाग और हाजिरी के नियम अहदियो के लिए भी लागू थे। इन लोगो को साधारण सैनिको की अपेक्षा अधिक अच्छी तनख्वाह मिलती थी। इनमे से किसी किसी को ५००) मासिक तक वेतन मिलता था।

शाही फौज की शाखायें—शाही फौज की मुख्य शाखायें (१) पैदल, (२) अश्वारोही दल, (३) तोपखाना और (४) जल्सेना थीं। पैदल सेना बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं थी। इसमें सिपाहियो के सिवा दरबान खिदमतिये, पहलवान, कहार वगैरह भी शामिल रहते थे। सिपाहियो में बन्दूकची और शमशेरबाज

होते थे। शाही फौज का मुख्य अंश अश्वारोही सेना थी। अकबर इस पर बड़ा ध्यान देता था और इसे कुशल और शक्तिशाली बनाने के लिए प्रयत्न करता था। दाग की प्रथा जारी करने का प्रधान उद्देश्य यही था। उत्तर भारत में तोपों का प्रयोग सबसे पहले बाबर ने किया। उसी समय से **तोपखाना** भारतीय सेनाओं का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गया। अकबर के पहले की तोप इतनी भारी होती थी कि एक जगह से दूसरी जगह आसानी से नहीं ले जाई जा सकती थी। उसने ऐसी तोपें ढलवाईं जो आसानी से इधर उधर भेजी जा सकती थी। हिन्दुस्तानी तोप चलाने में कुशल नहीं होते थे। मुगल सेना में रूमी तोपची रखे जाते थे। तोपखाने का सबसे बड़ा अफसर मीर आतिश या दारोगा-ए-तोपखाना होता था। मुगलों की **जल-सेना** उन्नत नहीं थी। लेकिन अकबर ने इस ओर भी ध्यान दिया। उसने हलकी तोपों से सजी हुई बहुत सी नाव तैयार कराईं। भारतीय सेनाओं में हाथियों का भी बहुत उपयोग होता था। अकबर को हाथियों का बड़ा शौक था। उसके पास हाथियों का एक अच्छा दल था। मनसबदारों को भी हाथियों की एक निश्चित संख्या रखनी पड़ती थी।

पड़ाव—मुगल सेना पड़ाव में बहुत रहती थी। मुगलों के पूर्वज मध्य-एशिया से आये थे जहाँ के निवासी खानाबदोशी जिन्दगी बसर करते हैं, इसलिए वे लोग पड़ाव में रहना पसंद करते थे। मुगल पड़ाव एक जंगम (एक जगह से दूसरी जगह घूमनेवाला) नगर ही था जिसमें सब प्रकार की सुख-सुविधाएँ प्राप्त थीं। साथ में बादशाह का जनानखाना भी चलता था। अकबर के बाद विशेषकर शाहजहाँ और औरंगजेब के समय मुगल पड़ाव बड़े बिहंगम काय हो गये और उनमें विलासिता की धूम हो गई। अफसरों की बीबियाँ तथा उनकी प्रेमिकाएँ भी पड़ाव के साथ ही साथ रहने लगीं। इन दोषों के कारण मुगलों की सैनिक क्षमता शिथिल पड़ गई। ऐसी सेना यदि कष्ट सहिष्णु कभी एक स्थान पर न रहनेवाले मराठे सवारों का दमन नहीं कर सकी, तो इसमें आश्चर्य ही क्या?

अध्याय १७

विलासप्रिय जहाँगीर (१६०५-२७)

बादशाह की न्यायप्रियता—सब राजनैतिक षड्यन्त्र असफल हुए और २४ अक्टूबर १६०५ ई० को जहाँगीर ३६ वर्ष की अवस्था में बड़े समारोह के साथ अपने पिता के सिंहासन पर आसीन हुआ। गद्दी पर बैठने के थोड़े ही दिनों बाद उसने शाहबुर्ज से जमुना तट के एक प्रस्तर स्तंभ तक प्रसिद्ध न्याय की जंजीर लगवाई। इसमें उसका उद्देश्य न्याय चाहनेवाला को उसके पास आवेदन करने और न्याय प्राप्त करने का अवसर देने का था। निस्सन्देह न्याय के उच्च भाव से प्रेरित होकर ही उसने इस सोने की जंजीर को लगवाया था, किन्तु जहाँ तक जान पड़ता है, उसके भय के कारण प्रजा द्वारा इसका बहुत कम उपयोग होता था। इसी समय उसने अपने सारे राज्य में सुप्रसिद्ध द्वादश नियमों (दस्तूर उल-अमल) के पालन की आज्ञा प्रचलित की। बादशाह ने इस समय बड़ी उदारता दिखलाई। उसने पहले के सब विरोधियों को क्षमा कर दिया और उनके पद तथा अधिकार पूर्ववत् बने रहने दिये। अबुलफजल के पुत्र को दो हजारी का दर्जा (मनसब) दिया गया, और अजीज कोका का, जिसने षड्यन्त्र में भाग लिया था पद और उसकी जागीरें पूर्ववत बनी रहीं। गयासबेग को जिसकी पुत्री आगे चलकर नूरजहाँ के नाम से विख्यात हुई, डेढ़ हजारी का दर्जा (मनसब) दिया गया और इतमादुद्दौला का खिताब मिला। बादशाह ने इस अवसर पर अबुलफजल के वधिक राजा वीरसिंह बुंदेला को भी तीन हजारी का मनसब प्रदान किया। निश्चित रूप से गद्दी पर बैठ जाने के बाद जहाँगीर ने मार्च १६०६ में बड़ी धूम धाम से नौरोज का पहला उत्सव मनाया। यह उत्सव सत्रह-अठारह दिनों तक रहा और इसके अन्त में राज्य के राजभक्त सेवकों को उदारतापूर्वक पारितोषिक दिये गये।

खुसरो का विद्रोह—जैसा पहले कहा जा चुका है, जब अकबर मृत्यु-शय्या पर पडा था तब राजा मानसिंह ने सलीम के स्थान पर उसके पुत्र खुसरो को गद्दी पर बठाने के लिए षड्यन्त्र रचा था। सलीम के गद्दी पर बैठ जाने पर राजा मानसिंह और बादशाह म मेल हो गया और खुसरो दरबार मे उपस्थित किया गया। बादशाह ने उसके साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार किया और उसे एक लाख रुपया दिया जिससे वह अपने पद तथा प्रतिष्ठा के अनुसार रह सके। किन्तु वास्तव मे पिता और पुत्र का मनोमालिन्य दूर नही हुआ। जहागीर सोचता था कि खुसरो का अपराध अक्षम्य है और खुसरो अभी सिंहासन लेने का स्वप्न देख रहा था। उसके मनोहर व्यवहार, सुन्दर रूप और उच्च स्थिति ने उसे राजनतिक षड्यन्त्र और राजविद्रोह का उपयुक्त केन्द्र बना दिया था। उसके पास शीघ्र ही सकडा मनुष्य इकट्ठ हो गये जो उसकी उद्देश्य सिद्धि के लिए प्राण देने को प्रस्तुत थे।

एक रात को वह ३५० सवारा के साथ अपनी दादी की कब्र के दर्शन के बहाने धीरे से आगरे के किले से बाहर हो गया। जब वह मथुरा पहुँचा तो हुसेन-बेग करीब तीन हजार सवारो के साथ उससे आ मिला। राजकुमार और उसके धनपिपासु साथी आस-पास का देश लूटने और उजाडने लगे। इसके बाद वह आगे बढा। पानीपत म उससे लाहौर का दीवान अब्दुररहीम आ मिला, जो बाद-शाह की सेवा में आगरे आ रहा था। राजकुमार ने दीवान का बडा स्वागत किया, उसे मलिक अनवर की उपाधि दी। आगे बढते हुए जिन शाही सेनाओ से राज कुमार की मुठभेड हुई वे उसकी गति को न रोक सकी। तरन-तारन में राजकुमार ने ग्रन्थ साहब का सग्रह करनेवाले गुरु अर्जुन का आशीर्वाद लिया। गुरु ने उसकी दशा पर तरस खाकर उसे कुछ आर्थिक सहायता भी दी। वहा से खुसरो लाहौर की ओर बढा। किन्तु उस नगर की रक्षा के लिए दिलावर खाँ पहले ही से पहुँच गया था। उसने किले की दीवारो की मरम्मत करके युद्ध के लिए तोपें ठीक कर ली थी। उसकी सहायता के लिए सईद खा उपस्थित था, जो इस समय चिनाब के किनारे पडाव डाले पडा था। खुसरो ने शहर का घेरा डाला और क्रुद्ध होकर एक फाटक जला दिया और अपने आदमियो से कहा कि किला ले लेने पर वह सात दिन तक लूट करायेगा और औरतो और बच्चो को कद करेगा।

नौ दिन के घेरे के बाद राजकुमार को एक घुड़सवार सेना के साथ बादशाह के लाहौर के पास पहुँचने का समाचार मिला।

राजकुमार का राजधानी से भागना उपेक्षणीय बात नही थी। जहागीर को डर था कि वह कही पूरब मे मानसिंह से या उत्तर पश्चिम मे उजबेगो या फारसवालो से न जा मिले। इसलिए उसने राजधानी को नसीरुलमुल्क और एतमादुद्दौला के सिपुर्द करके उसका पीछा किया और एक बडी सेना के साथ लाहौर पहुचा। राजकुमार के साथ मेल की बात शुरू हो गई परन्तु कुछ फल नही निकला। वह लडने के लिए तुला उठा था। भैरावाल के पास एक युद्ध हुआ जिसमे विद्रोही बुरी तरह पराजित हुए। उनमें से लगभग चार सौ मारे गये और शेष भयभीत होकर भाग गये। खुसरो युद्ध भूमि से बचकर निकल गया, परन्तु उसका जवाहिरात और बहुमूल्य वस्तुओ का सदूक शाही सेना के हाथ लग गया। उसकी विपत्तियो का यही अन्त नही हुआ उसके साथियो में मतभेद हो गया। अफगान और हिन्दुस्तानी पीछे लौटना चाहते थे और हुसेनबेग जो अपने परिवार को पश्चिम की ओर भेज चुका था, काबुल जाने के पक्ष मे था। अन्त में उसकी राय मानी गई और जब वे लोग चिनाब नदी को पार कर रहे थे तब शाही दल द्वारा बन्दी बना लिये गये।

जहागीर को खुसरो के पकडे जाने की खबर सुनकर बडी खुशी हुई। उसने राजकुमार के साथ अपने पारिवारिक सबध का विचार न करके और अपना दिल कडा करके उसे दड देने का निश्चय किया। उसने राजकुमार को दरबार मे हाजिर किये जाने की आज्ञा दी। बेडिया पहने और रोता हुआ खुसरो दरबार में अपने पिता के सामने हाजिर किया गया। उसने उसे बडे कडे शब्दो में फटकारा और बन्दीगृह मे डालने की आज्ञा दी। उसके साथियो को बडी निर्दयता पूर्वक दड दिया गया और उसका भी बडा अपमान किया गया।

गुरु अर्जुन जिन्होंने राजकुमार के साथ सहानुभूति दिखलाई थी, दरबार में बुलाये गये। उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली गई और उन्हें प्राणदड दिया गया। यह गुरु का वध राजनैतिक कारणो से होते हुए भी बडा अविचारपूर्ण था। सिक्ख-मत के धार्मिक गुरु के साथ एक साधारण अपराधी के समान व्यवहार

करना भयकर भल थी। मुगल साम्राज्य के प्रति सिक्खो की शत्रुता का बीज वपन इसी समय ही हो गया।

कन्धार का घेरा—पश्चिमोत्तर सीमा पर कन्धार की स्थिति बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह माध्यमिक काल म भारत और फारस क बीच का व्यापारिक फाटक था। इसके अधिकार के लिए भारत और फारस मे प्रतिस्पर्द्धा रहती थी। बाबर ने कन्धार को जीता था। उसकी मत्यु होने पर यह उसके पुत्र कामरान के अधिकार म चला गया। हुमायू न इसे १५४५ में फारस की सहायता से अपने भाइ स फिर ले लिया, किन्तु उसकी मत्यु के बाद १५५८ म फारस के शाह न इसे हस्तगत कर लिया। फिर १५९० ई० म अकबर ने कधार पर चढाई की और १५९५ ई० मे उस पर अधिकार कर लिया। तभी से कधार मुगल साम्राज्य में चला आ रहा था।

फारसवालो न इस समय अच्छा अवसर देखकर फिर कधार को लेना चाहा। जहाँगीर तुजुक जहागीरी मे लिखता है कि अकबर की मृत्यु और खुसरो के विद्रोह से प्रोत्साहित होकर उन्होंने फिर कधार लेने का निश्चय किया। इस समय फारस का शासक शाह अब्बास द्वितीय थ, जो अपने समय के एशिया के प्रसिद्ध शासको में था। फारसवालो न कधार पर चढाइ की, किन्तु शाह बेग की बहादुरी के आगे वे कुछ न कर सके। जब इस चढाई की खबर जहाँगीर को मिली, तो उसने थटटा के शासक मिर्जा जानी के पुत्र गाजी की अध्यक्षता में एक सेना भजी। फारसवालो ने डरकर घेरा उठा लिया। शाह अब्बास न चतुराई दिखलाई और इस चढाई के प्रति अपनी अस्वीकृति प्रकट की।

इस प्रकार असफल होने पर शाह ने कूटनीति की शरण ली। उसने मुगल दरबार में कई राजदूत और बहुमूल्य उपहार भेजे। इस दिखावटी मित्रता का फल यह हुआ कि मुगल कधार की रक्षा में असावधान हो गये। शाह ने फिर १६२२ ई० में कधार के किले पर घेरा डाला। जहागीर और नूरजहाँ इस समय काश्मीर में थे। यह खबर सुनकर वे युद्ध की तयारी करने लगे। सब राजकुमारो और सेनापतियो को अपनी सेनाओ के साथ कधार की ओर बढने की आज्ञा दी गई। किन्तु शाहजहाँ द्वारा इस आज्ञा के उल्लघन के कारण राजकीय आयोजन विफल हो गया। उसे आशका थी कि उसके कधार चले जाने पर

न रजहा और आसफ खाँ उसके स्थान मे उसके प्रतिद्वन्द्वी शहरयार को सिंहासन का उत्तराधिकारी बनाने के लिए कुछ उठा नही रखगे। दूसरी वात यह थी कि उसका विचार था कि फारस की इस केन्द्रीभूत प्रबल शक्ति के विरुद्ध मुगल सेना के प्रधान सचालक का पद पाये विना वह कुछ कर नही सकता था। उसके आज्ञा-भग से नूरजहा को अच्छा अवसर मिला और उसने अपने पति को राजकुमार के विद्रोह के इरादे का विश्वास दिला दिया। उसके पास दक्षिण में जो सेना थी तथा जो प्रमुख सेनापति थ, उन्हें राजधानी को भेज देन का फरमान भेजा गया, किन्तु वह इस शाही फरमान को चटपट मान लेने को तैयार नही हुआ। नूरजहा न इस अवसर पर आग मे घी छोड दिया। उसने धौलपुर की जागीर, जिसके लिए शाहजहा बहुत दिना से अभिलाषी था, अपन दामाद शहरयार को दिला दी और उसका पद १२००० जात और ८००० सवार का करा दिया। इसके अतिरिक्त उसे कन्धार की चढाई का प्रधान सचालक भी बनवा दिया। इन बाता का परिणाम यह हुआ कि जब शाहजहा ने देखा कि शान्तिमय उपायो से अपना अधिकार प्राप्त करने की आशा नही ह, तो वह विद्रोही बन गया। जब तक नूरजहाँ का दल शाहजहा का नाश करन में व्यस्त था तब तक फारसवालो ने डेढ महीने के घेरे के बाद कन्धार ले लिया।

इसके बाद फारस के शाह न एक राजदूत भेजकर यह कहला भेजा कि कन्धार पर उसका अधिकार न्यायसगत था। जहाँगीर न शाह को उसके कपटपूर्ण आचरण के लिए बडी फटकार बतलाई और दड देने के लिए उस पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। किन्तु इसी समय खबर मिली कि शाहजहाँ न विद्रोह का झण्डा खडा कर दिया ह जिससे इस सम्बन्ध में कुछ न हो सका।

सम्राट् के विरुद्ध षड्यन्त्र—कन्धार के हाथ से निकलने के बाद जहाँगीर न एक गर्मी का मौसम अपने स्वास्थ्य के सुधार के लिए काबुल में बिताया। अगस्त १६०७ में वह वहाँ स लाहौर के लिए चला। रास्ते में उसे एक षडयन्त्र का पता चला जिसका सगठन उसकी हत्या के लिए हुआ था। राजकुमार खुसरो इस षडयन्त्र का केन्द्र था। उसके मनोहर शिष्टाचार ने उस बन्दी रखनेवालों का मन ऐसा हर लिया कि वे बादशाह की हत्या करके उसे भारतवर्ष के सिंहासन पर बैठाने के षड्यन्त्र में सम्मिलित हो गये। शाहजहाँ से इस षडयन्त्र का भेद

बहुत से आदमियो को मालूम था जिससे सब हाल बहुत जल्द बादशाह को मालूम हो गया। इसके नेता पकडे गये और उनमे से चार को प्राणदण्ड दिया गया और एक को गधे पर पूँछ की ओर मुह कराके बठाकर सारे शहर मे घुमाया गया। खुसरो राजाज्ञा से महाबत खाँ द्वारा अधा कर दिया गया। उसकी दृष्टि पूणरूप से नष्ट नही हुई, और उसके पिता को फिर दया आने पर एक चतुर हकीम से उसकी दवा कराई गई, जिससे उसमे आशिक सुधार हो गया।

नूरजहाँ के साथ विवाह—*नूरजहा के साथ जहागीर का विवाह मुगल* इतिहास की एक परम प्रसिद्ध घटना ह। इस असाधारण रमणी के समान साहस और राजनीतिज्ञता का परिचय ससार की बहुत कम स्त्रियो ने दिया है। उसने अपने पति को वशीभूत करके कई वर्षो तक साम्राज्य का प्रबन्ध अपने हाथो म रक्खा। आधुनिक खोज के अनुसार उसके प्रारभिक जीवन का विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है उसका पिता मिर्जा गयासबेग तेहरान का निवासी था। गरीबी के कारण गयास ने हिदुस्तान म आने का विचार किया और जीविका की खोज में अपनी गभवती स्त्री के साथ हिन्दुस्तान की ओर चला। जब वे कधार पहुँचे तो उसकी स्त्री न एक कन्या को जन्म दिया। इस परिवार की दुदशा पर तरस खाकर एक धनी व्यापारी मलिक मसऊद ने, जिसके साथ व हिदुस्तान आ रहे थे, उनकी सहायता की। इस व्यापारी का मुगल दरबार म कुछ प्रभाव था। उसने अकबर बादशाह से परिचय कराके गयास को एक अच्छी नौकरी दिला दी। अपनी योग्यता से उनति करता हुआ वह १५९५ में तीन सौ का मनसबदार हो गया और उसे काबुल के दीवान का उत्तरदायित्व-पूण पद मिल गया। नौकरी में गयास की प्रतिभा खूब चमकी। उसने राज्य के कार्यों में बडी कुशलता दिखलाई, और वह राज्य का एक चतुर और योग्य सेवक समझा जाने लगा, यद्यपि वह घूस लेने में भी बडा सिद्धहस्त था। वह एक सुलेखक और कवि भी था। उसने अपनी लडकी का नाम मेहरुन्निसा रखा। जब वह सत्रह वष की हुई तो उसका विवाह अलीकुली इस्ताजलू से हो गया, जो इतिहास में शेरअफगन के नाम से प्रसिद्ध ह।

अलीकुली का जन्म किसी उच्च वश में नहीं हुआ था। वह फारस के शाह इस्माइल द्वितीय का सफरची अर्थात दस्तरखान सजानेवाला था। ।

भाग्य-चक्र से उसने भारत में आकर शरण ली। मुलतान पहुँचने पर खानखाना से उसका परिचय हो गया, जिसकी सहायता से उसे अकबर के समय में मुगल दरबार में एक सैनिक पद मिल गया। जब राजकुमार सलीम को मेवाड के राणा पर चढाई करने की आज्ञा मिली तो उसके साथ अलीकुली की भी नियुक्ति हुई। उसके एक शेर मारने पर राजकुमार ने उसे शेर अफगन का खिताब दिया। जब राजकुमार ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया तो उसके अधिकाश मित्रो ने उसका साथ छोड दिया और शेर अफगन ने भी वसा ही किया। किन्तु गद्दी पर बठने पर जहागीर न उसके अपराधा को क्षमा कर, दिया, उसकी जागीर उसके पास बनी रहने दी और उसे बगाल के सूबे में भेज दिया।

इस समय बगाल म असतोष फला हुआ था। अफगान जिन्हें अपनी खोई हुई राजशक्ति फिर प्राप्त करने की अभी आशा थी, चारो ओर से इकट्ठ होने लग, और सरकार के विरुद्ध षडयत्र करने लगे। बादशाह को सूचना मिली कि शेर अफगन की प्रवृत्ति भी विद्रोह की ओर है। उसने सूबेदार कुतबुद्दीन को जो राजा मानसिंह के बाद अगस्त १६०६ में बगाल का सूबदार हुआ था शेर अफगन को दरबार मे भेज देने की आज्ञा भेजी। सूबेदार ने मूर्खतापूवक उसे कद करने का प्रयत्न किया। इस अपमान से शेर अफगन का खून उबल पडा, और कुतबुद्दीन के आदमियो से घिरे होने पर भी उसने उसे अपनी तलवार से साघातिक रूप से आहत कर दिया। इस पर सूबेदार के आदमियो ने उस वही मार डाला। मेहरुन्निसा अपनी पुत्री के साथ दरबार में भेज दी गई। वहा वह राजमाता सुल्तान सलीमा बेगम के सुपुर्द कर दी गई। चार बरस बाद माच १६११ में, मीना बाजार में जहागीर उसके रूप को देखकर मोहित हो गया। काल की गति के साथ उसका शोक कम हो गया था। वह जहागीर के साथ विवाह करने को तयार हो गई। मई के अत मे बादशाह के साथ नियमानुसार उसका विवाह हो गया। इसके बाद उसके पिता और भाई को ऊँचे पद मिले और खिताब और जागीरे दी गईं।

यह एक बडा विवादास्पद प्रश्न ह कि शेर अफगन की हत्या में जहागीर का हाथ था या नही। डाक्टर बेनीप्रसाद ने अपनी पुस्तक मे इस हत्या की कहानी को परवर्ती इतिहास-लेखको के म स्तिष्क की उपज बतलाया ह। उनका

वहना है कि इस कहानी की पुष्टि उस समय के इतिहास-लेखक नहीं करते और न विदेशी यात्री ही इसका समर्थन करते हैं, जो राज परिवार विषयक अप्रिय बातों को लिपिबद्ध करने के लिए सदा तैयार रहते थे। किन्तु हम परवर्ती इतिहास-लेखकों के स्पष्ट कथन की भी अवहेलना नहीं कर सकते जिनसे एक ऐसे मामले में सच्ची बात लिखने की अधिक आशा की जा सकती है। दूसरी बात यह है कि सम्राट् का शेर अफगन के विद्रोही होने का केवल सदेह था और इस बात का समर्थन सब लोग करते हैं कि कुतबुद्दीन को शेर अफगन को तभी दंड देने की आज्ञा दी गई थी जब वह विद्रोहात्मक विचार प्रकट करे। यह स्पष्ट नहीं होता कि सूबेदार को अफगान सरदार के विद्रोहात्मक विचारों का निश्चय कैसे हुआ। इस विषय में हमारा सदेह उसे एकाएक गिरफ्तार करने के प्रयत्न से और भी बढ़ जाता है। जहाँगीर जो अपनी जीवन-कथा कहने में इतना स्पष्टवादी है, इस घटना के विषय में तथा नूरजहाँ के साथ अपने विवाह के विषय में, जो निस्सदेह उसके जीवन में बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना है, बिलकुल चुप है। जहाँगीर का यह मौन इस विषय में सन्देह उत्पन्न करनेवाला है। फिर यह बात समझ में नहीं आती कि मेहरुन्निसा क्यों दरबार में भेजी गई जब उसका पिता राजधानी में ही रहता था और राज्य का एक बड़ा कर्मचारी था। उसकी राजभक्ति में किसी को सन्देह नहीं था और वह अपनी सकटग्रस्त पुत्री को निस्सन्देह शरण दे सकता था। सम्राट ने इस विधवा और उसकी पुत्री को शाही हरम में राजमाता के सुपुर्द रखने का असाधारण कार्य क्या किया? इसका सबसे अधिक सभावित कारण यही जान पड़ता है कि जहाँगीर उससे प्रेम करता था। उसके हाथ में आ जाने पर भी चार बरस बाद विवाह करने के दो कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि पति की दयनीय मृत्यु के बाद नूरजहाँ के शोकाकुल हृदय में कम से कम कुछ समय तक प्रेम और आनन्द के विचार नहीं आ सकते थे। दूसरा यह कि शायद बादशाह नूरजहाँ से जल्द ही विवाह करके शेर अफगन की मृत्यु के विषय में सन्देह उत्पन्न कराना नहीं चाहता था। डच लेखक डी लेट (De Laet) लिखता है कि जब नूरजहाँ कुमारी थी तभी से जहाँगीर उससे प्रेम करता था किन्तु वह शेर अफगन की वाग्दत्ता हो चुकी थी, इसलिए उससे विवाह करने की अकबर ने आज्ञा नहीं दी। इन

सब बातो पर ध्यान देने से शेर अफगन की मृत्यु में जहाँगीर का हाथ होने का सन्देह होता है किन्तु इस बात का कोई दृढ़ प्रमाण नहीं है।

नूरजहाँ का चरित्र—जहाँगीर के साथ विवाह होने के समय नूरजहाँ करीब ३५ बरस की थी, किन्तु इस अवस्था में भी वह अपूर्व सुन्दरी थी, जैसा उसके चित्रों से प्रकट होता है। उसकी बुद्धि बडी प्रखर थी। वह जटिल राजनैतिक समस्याओं को बिना किसी कठिनाई के समझ जाती थी। उसे कविता का बडा शौक था और वह स्वयं बहुत अच्छी कविता करती थी। उसमें सौन्दर्य के प्रति स्वाभाविक प्रेम था। उसने मुगल दरबार की शोभा और भव्यता को बहुत बढा दिया। वस्त्राभूषण के लिए उसकी रुचि आदर्श मानी जाती थी, उसने कई नये ढंग के आभूषण निकाले।

उसमें पर्याप्त शारीरिक बल तथा साहस था। वह जहाँगीर के साथ शिकार खेलने जाया करती थी। उसने कई बार बाघ का शिकार किया। वह विपत्ति में कभी किंकर्तव्यविमूढ़ नहीं होती थी। संकटमय परिस्थिति में वह साहस तथा अपनी शक्तियों का अच्छा परिचय देती थी, जैसा महाबतखाँ द्वारा जहाँगीर के कैद किये जाने के अवसर पर अच्छी तरह प्रकट हुआ था। घमासान युद्ध में उसे हाथी पर बैठकर शत्रुओं पर तीरों की बौछार करते देखकर अनुभवी सेनापति तथा सैनिक भी चकित हो जाते थे। वह बडी परिश्रमी थी। राज्य प्रबंध के सब कार्यों की स्वयं देख भाल करती थी। यद्यपि राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने के लिए वह षड्यन्त्र किया करती थी, उसमें उदारतापूर्ण क्षमाशीलता और दया की कमी नहीं थी। वह दीन दुखियों की बहुत सहायता करती थी, अनाथ मुसलमान लड़कियों के विवाह के लिए धन दिया करती थी। अपने पिता तथा भाई पर उसका बहुत स्नेह था। उसके प्रभाव से वे राज्य के उच्च तम पदों तक पहुँच गये। वह जहाँगीर को पूर्ण हृदय से प्यार करती थी और उसके लिए अपने प्राण तक न्योछावर करने को तैयार रहती थी। बादशाह पर उसका प्रभाव असीम था। वह उसके हाथ का खिलौना हो गया था।

किन्तु नूरजहाँ का प्रभाव साम्राज्य के लिए सब प्रकार हितकर नहीं सिद्ध हुआ। उसकी शक्ति लिप्सा तथा सम्राट् पर उसके अत्यधिक प्रभाव के कारण साम्राज्य की शान्ति नष्ट होने के करीब हो गई थी। उसकी अहम्मन्यता तथा

सशयालुता से विवश होकर ही महाबतखा ने विद्रोह किया जिसस साम्राज्य में विश् खलता आ गई। सम्राट् पर उसके हानिकर प्रभाव के कारण ही शाहजहा को विद्राह की शरण लेनी पडी और १६२२ ई० में कन्धार हाथ से निकल गया। यह जानते हुए भी कि खुरम युवराजपद का नियमानुकूल तथा योग्यतम अधिकारी था उसन सब भाति अयोग्य शहरयार को वह पद दिलाने का उद्योग किया। जसा पहले दिखलाया जा चुका ह शहरयार के प्रति उसके इस पक्षपात का बहुत बुरा परिणाम हुआ। उसके प्रभाव से जहाँगीर की विलासिता अत्यधिक बढ गई जिससे वह राजकाय से बिल्कुल उदासीन रहने लगा। इसका फल यह हुआ कि उसम योग्यता होने हुए भी उसके शासन-काल में सामरिक विजया और शासन सम्बन्धी सुधार का अभाव ही सा पाया जाता है।

बगाल मे उसमान खॉ का विद्रोह—अकबर शासन काल में १५७५ ई० में दाउद को पराजित करके बगाल साम्राज्य म मिला लिया गया था किन्तु अफगान पूण रूप से अशक्त नही हुए थे। उन्हे एक योग्य तथा महत्त्वाकाक्षी नायक मिल गया। वह उसमान था जो प्रत्यक्ष रूप में तो मुगलो का राजभक्त था, किन्तु मन मे अफगानो की स्वतन्त्रता का स्वप्न देखा करता था। उसने एक बार पहले १५९९ ई० में विद्रोह किया था जब राजा मानसिंह न उसका दमन किया था। बगाल में जल्द-जल्द सूबेदारा के बदलने से उसके विद्राहात्मक विचारा को प्रोत्साहन मिला और जब कुतबुद्दीन के बाद नियुक्त होनेवाले जहागीर कुली की मृत्यु पर इस्लाम खाँ बगाल का सूबेदार नियुक्त हुआ, बगाल के अफगान जमीदार प्रकाश्य रूप से विद्रोह करने लगे। अफगाना ने उसमान के झडे के नीचे इकट्ठे होकर युद्ध की तयारी की। साम्राज्य की सना म उनका जो युद्ध हुआ, उसमें अफगाना ने बडी वीरता दिखलाई। दिन भर के युद्ध के बाद उसमान के सिर म साधातिक आघात लगा फिर भी वह और छ घटो तक अपने दल का सचालन करता रहा। अन्त में हारकर अफगान अपनी खाइया म लौट गये। वहाँ उसमान की मृत्यु हो गई जिस पर उसका दल तितर बितर हो गया।

जब (पहली अप्रल १६१२) इस विजय का समाचार दरबार में पहुँचा तो जहाँगीर बडा प्रसन्न हुआ और इसमें भाग लेनेवाले सेनानायका को उसने

ययोचित रूप मे पुरस्कृत किया और इसलाम खाँ का दर्जा बढा दिया। अफगाना की राजनैतिक शक्ति जाती रही, किन्तु बादशाह ने उनके साथ अच्छा बर्ताव किया। उनको साम्राज्य की सेना में भर्ती होने का अधिकार प्रसन्नतापूर्वक दे दिया। उसकी इस उदार नीति का बडा अच्छा फल हुआ। अफगाना के विद्रोहात्मक भाव जाते रहे और व सिंहासन के राजभक्त सेवक बन गये।

मेवाड़ की अधीनता—सिंहासनासीन होने के थोडे ही काल बाद जहांगीर ने मेवाड की ओर दृष्टि फेरी। शाहजादा परवेज की अधीनता में अनुभवी सेनापतियो के साथ एक बडी सेना मेवाड के विरुद्ध भेजी गई। किन्तु इस आक्रमण का कोई सन्तोषजनक फल नही हुआ। दो वर्ष बाद बादशाह ने एक बडी सेना के साथ महाबत खाँ को भेजा। उसने राजपूतो को पराजित किया किन्तु इससे उनका बल न क्षीण हुआ। इसके बाद विभिन्न सेनापतियो की अधीनता में कई आक्रमण हुए जिनका राजपूत वीरतापूर्वक सामना करते रहे। अत में एक बडी सेना तथा कई सुयोग्य सहकारी सेनापतियो के साथ राजकुमार खुर्रम भेजा गया। मुगलो के लगातार आक्रमणो का सामना करते करते राणा की शक्ति बहुत क्षीण हो गई थी तब भी राजपूतो ने हिम्मत न हारी और वीरतापूर्वक युद्ध किया। किन्तु अब राजपूतो में मुगलो की असंख्य सेना का सामना करने की शक्ति नही रह गई थी। राजपूत सरदार लगातार युद्ध से तंग आ गये थे। उन्होने सधि कर लेने के लिए राणा पर बहुत जोर डाला। अत में सब प्रकार से विवश होकर महाराणा अमरसिंह सधि करने तथा मुगल बादशाह की अधीनता स्वीकार करने को तैयार हो गये। सधि की शर्तों के अनुसार राणा ने अपने पुत्र को मुगल दरबार में भेजना स्वीकार किया, किन्तु दरबार मे स्वय उपस्थित होने से क्षमा चाही। जहांगीर ने सधि की शर्तों को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया। चित्तौर राणा को लौटा दिया गया, किन्तु उन्हे किले की मरम्मत करने का अधिकार नही रहा। राणा से किसी प्रकार के ववाहिक सबध के लिए भी नही कहा गया। उसे केवल मुगल साम्राज्य के लिए १००० सवारो की सेना रखने की शर्त माननी पडी, और उसका पुत्र पचहजारी बना दिया गया। राणा ने शाहजादा खुर्रम से भेंट की। दोनो ने एक दूसरे के प्रति सम्मान प्रकट किया और बहुमूल्य भेंटो का आदान प्रदान

किया। राणा का युवराज कर्णसिंह शाहजादे के पास आया और उसने उमे क्षत्रिय राजकुमार को एक बहुमूल्य खिल्अत बख्श दी और कई उपहार दिये। जहांगीर ने इस सफलता को एक गौरव की बात मानी। उसने हाथी पर सवार राणा और उनके पुत्र की पूरे कद की सगमर्मर की मूर्तियां बनवाकर आगरे में झरोखे के नीचे स्थापित कराई। औरंगजेब ने १६६८ ई० में इन मूर्तियों को हटवा दिया। अब इनका कुछ पता नहीं है।

महामारी का प्रकोप—जहांगीर के शासन-काल में उत्तर भारत में प्लेग का भयंकर प्रकोप हुआ। वह इस बीमारी के बारे में कहता है कि काख में या रान में या कनपटी के नीचे गिल्टी निकलती थी और लोग मर जाते थे। उसका समकालीन इतिहासकार मुतमादखां लिखता है कि यह बीमारी पंजाब में शुरू हुई, जहां से सरहिंद में फैली और फिर वहाँ से दिल्ली और उसके समीपवर्ती नगरों और गांवों में फैल गई। उसने बीमारी का जो वर्णन दिया है वह आजकल के प्लेग की बीमारी के बारे में भी पूरे तौर पर लागू होता है। वह लिखता है कि बीमारी फैलने के पहले चूहे मरते थे। बीमारी के आगमन की यह सूचना मिलते ही लोग प्राण बचाने के लिए घर छोड़कर बस्ती के बाहर चले जाते थे। ऐसा न करने पर समूचा गाँव का गांव मौत का शिकार बन जाता था। वह लिखता है कि यह एक भयंकर संक्रामक रोग था। इसके रोगी या उसके संसर्ग में आई हुई वस्तुओं के सेवन या संसर्ग से यह बीमारी हो जाती थी। वह लिखता है कि हिंदुस्तान की कोई जगह इस बीमारी से नहीं बची आठ वर्ष तक देश में यह बीमारी रही। यह काश्मीर में भी फैल गई थी।

१६१८-१९ ई० में यह बीमारी आगरे में और आस-पास के गांवों व शहरों में दुबारा फैली। आगरे में इससे प्रतिदिन १०० आदमी मरते थे। जहां तक जान पड़ता है, राज्य की ओर से इस बीमारी को दूर करने के लिए या इसकी रोक-थाम के लिए कुछ नहीं किया जा सका।

हाकिन्स और सर टामस रो—कैप्टन हाकिंस इँगलैंड के बादशाह जेम्स प्रथम का पत्र लेकर अँगरेजों के लिए व्यापार संबंधी सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए १६०८ ई० में जहांगीर के दरबार में आया। पुर्तगाली लोगों ने उसकी राह में बहुत रोड़े अटकाये लेकिन वह बादशाह के दरबार में पहुँचने में सफल हो

गया। बादशाह उससे अच्छी तरह मिला और उसके बहुमूल्य उपहार स्वीकार किये। जहाँगीर उससे बहुत प्रसन्न रहता था और उसे अपनी दावतों में निमन्त्रित करता था। उसने उसे ८०० का मनसबदार बना दिया। हाकिन्स अपने देशवासियों के लिए जो व्यापारिक सुविधाएँ चाहता था वे मंजूर कर ली गईं।

हाकिन्स ने बादशाह की रहन सहन दरबार की रस्मा, शासन प्रबन्ध तथा प्रजा के सामाजिक जीवन का विस्तृत वर्णन दिया है। वह लिखता है कि बादशाह बहुत शराब पीता था और दावतें बहुत दिया करता था। उसने यह भी लिखा है कि बादशाह के राजकोष में असीम धन था।

सर टामस रो इँगलैंड के बादशाह का राजदूत था जो अँगरेजों के लिए हिन्दुस्तान में व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए १६१५ ई० में जहाँगीर के दरबार में आया। वह एक बड़ा ही योग्य मनुष्य था। उसके यहाँ आने का प्रधान उद्देश्य मुगल-बादशाह के साथ एक व्यापारिक संधि स्थापित करना था। इस कार्य में सफलता प्राप्त करना बड़ा कठिन था। बार बार असफल होकर भी सर टामस रो बराबर प्रयत्न करता रहा। इस समय दरबार में नूरजहाँ के दल की तूती बोलती थी। उसने पहले आसफ खाँ और नूरजहाँ को भेंट देकर प्रसन्न किया और फिर आसफ खाँ की सहायता से राजकुमार खुर्रम की कृपा प्राप्त की जिसने उसे बहुत सहायता देने का वचन दिया। पुर्तगाली अँगरेजों के बड़े प्रतिद्वन्द्वी थे। उनके षड्यन्त्रों के कारण सर टामस रो को बादशाह को राजी करने में बड़ी कठिनाई पड़ी। बहुत दिनों बाद वह एक फरमान प्राप्त करने में सफल हुआ जिसके अनुसार पुर्तगालियों द्वारा आक्रमण किये जाने पर अँगरेजों को स्थानीय मुगल अधिकारी द्वारा सहायता दिये जाने का वचन दिया गया। बंदरगाहों में आनेवाले उनके माल पर का आयात कर मुआफ कर दिया गया और उन्हें अपने उपनिवेश के स्वतन्त्र शासन का अधिकार स्वीकार किया गया। अँगरेज व्यापारियों को फैक्टरी स्थापित करने के लिए कोई भवन किराये पर लेने का अधिकार मिल गया, किन्तु इस फरमान के अनुसार उन्हें कोई इमारत बनाने या हमेशा के लिए खरीद लेने का अधिकार नहीं मिला और

अँगरेजा की एक निश्चित सख्या ही एक नगर में शस्त्र धारण कर सकती थी। सर टामस रो के बहुत प्रयत्न करने पर ये प्रतिबध हटा लिये गये।

अँगरेजा से भारत के सबध के इतिहास में यह फरमान बडा महत्त्वपूण ह। इससे हिदुस्तान म अँगरेजा की प्रतिष्ठा बढ गई और उह यहाँ उन्नति करने के लिए एक सुदृढ भित्ति का सहारा मिल गया।

सर टामस रो ने मुगल दरबार की शान-शौकत तथा मुगल सम्राट् के वैभव तथा शक्ति का और मुगल सरदारो के आनन्दोत्सवा तथा विलासपूण जीवन का बडा अच्छा चित्र दिया ह। किन्तु इसके साथ ही वह कृषका की दीन-हीन दशा सडका की अरक्षित अवस्था आदि का वणन करना भी नही भूला ह। वह लिखता है कि राज्य भर में सवत्र घूसखोरी का बाजार गरम था। देश सूबो म विभाजित था किन्तु प्रातीय शासका पर केद्रीय सरकार का नियत्रण बहुत ढीला था। साम्राज्य के सरदारा की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी खुद बादशाह होता था। उनके मरने पर उनकी सपत्ति शाही खजाने म चली आती थी। वह लिखता ह कि बादशाह बडा प्रसन्नचित्त, मिलनसार और अहकार-शून्य था। वह रात को कभी-कभी इतनी शराब पीता था कि बेहोश हो जाता था।

दक्षिण--अहमदनगर --१६०५ ई० में गद्दी पर बठते ही जहागीर ने दक्षिण की ओर दृष्टि फेरी। उसने अहमदनगर के राज्य को पूण रूप से वश में करना चाहा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसे एक असाधारण राजनीतिज्ञ तथा युद्ध विशारद व्यक्ति अहमदनगर के निजामशाही बादशाहा के मन्त्री तथा सेनापति मलिक अबर का सामना करना पडा। उसमें असाधारण बुद्धि-बल तथा चरित्र-बल था। *अहमदनगर राज्य में उसे बडा महत्त्वपूण स्थान प्राप्त था।* उसने शासन प्रबध में कई महत्त्वपूण सुधार किये थे जिनमें सबसे अधिक उल्लेखनीय राजा टोडरमल की प्रणाली के अनुसार लगान का प्रबध था। उसने निजामशाही राज्य की सनिक शक्ति बढा ली और दक्षिण भारत में एक नई युद्ध पद्धति का आविष्कार किया। उसी ने पहले पहल मराठो को गारिल्ला युद्ध प्रणाली की शिक्षा दी। एक एसे शत्रु से लडना आसान बात नही थी। मलिक अबर ने करीब बीस वष तक मुगल सनिक शक्ति को परेशान रखा।

मलिक अंबर ने शीघ्रता से जीतना आरम्भ किया। यह देखकर जहाँगीर ने १२,००० सैनिकों के साथ खानखाना को दक्षिण की ओर भेजा। इस दल को सफलता मिलते न देखकर खानजहाँ लोदी की अध्यक्षता में बादशाह ने एक और फौज भेजी। दक्षिण पहुँचने पर इस दल के मलिक अंबर की सेना के द्वारा मुगलों के हराये जाने की खबर मिली। खानजहाँ ने बादशाह से खानखाना के बुला लिये जाने और खुद मुगल सेनाओं का प्रधान अध्यक्ष बनाये जाने की प्रार्थना की। इस प्रकार उसने सफलता का पूर्ण विश्वास दिलाया। उसकी प्रार्थना मान ली गई और १६११ ई० में मुगल सेनाओं ने खानजहाँ की अध्यक्षता में आक्रमण किया, किन्तु मलिक अंबर के मराठा सवारों ने उन्हें बुरी तरह पराजित करके गुजरात की ओर भगा दिया। यह खबर पाकर बादशाह ने खानखाना को फिर दक्षिण भेजा। उसने मलिक अंबर की सेना को एक घोर युद्ध में पराजित किया, लेकिन इससे शत्रु का बल नहीं टूटा। खानखाना की सफलता पर भी उसके विरोधियों ने उस पर शत्रु से घूस लेने का अभियोग लगाया और वह वापस बुला लिया गया।

अब दक्षिण की चढ़ाई का अध्यक्ष शाहजादा खुर्रम बनाया गया। साम्राज्य के परम प्रसिद्ध सेनापतियों और एक बड़ी सेना के साथ राजकुमार अजमेर होते हुए ८ मार्च १६१७ को बुरहानपुर पहुँचा। उसने शत्रु से सन्धि का प्रस्ताव किया जिस पर वे तत्काल सहमत हो गये। १५ लाख की भेंट के साथ आदिलशाह स्वयं राजकुमार के पास उपस्थित हुआ और उसने मलिक अंबर द्वारा जीते गये प्रदेशों को लौटा देने की प्रतिज्ञा की। बादशाह ने इस सन्धि को मान लिया और आदिल खाँ को फर्जन्द की उपाधि दी। वह इस सफलता से बहुत प्रसन्न हुआ और इसमें भाग लेनेवाले सब सरदारों का समुचित रूप से पुरस्कृत किया। राजकुमार खुर्रम को शाहजहाँ की उपाधि दी गई और उसका मनसब ३०,००० जात और २०,००० सवार का कर दिया गया और राजधानी में पहुँचने पर उसका अभूतपूर्व सम्मान हुआ। जहाँगीर लिखता है कि इस अवसर पर तीन लाख रुपये खर्च किये गये। यहाँ पर इस बात का उल्लेख कर देना अनुचित न होगा कि मलिक अंबर का उत्साह अब भी पूर्ववत् बना हुआ था।

काँगड़ा विजय—जहाँगीर के राज्य की सबसे बड़ी सफलता काँगड़ा विजय

ह। यह दुग एक ऊँची पहाडी पर बना हुआ था और प्रकृति न इसे दुर्भेद्य वना दिया था। फीराज तुगल्क न इस किले पर चढाई की लेकिन इसे ले न सका और उसे यहा के राजा से अपनी अधीनता स्वीकार कराके सन्तुष्ट हो जाना पडा। अकवर के समय में भी इस किले पर घेरा डाला गया, परन्तु यह लिया न जा सका। जहागीर न इस किले का जीतने के लिए पजाव के सूबेदार मुतजा खाँ को नियत किया। उसका देहान्त हो जान पर यह काय शाहजहाँ को सौपा गया। किले का घेरा १४ महीनो तक जारी रहा। किले की सब रसद चुक जाने पर भी सेना उवाले हुए घास पर निर्वाह करके उसकी रक्षा करती रही। किन्तु अत में १६ नवम्बर १६२० को उसने आत्म-समपण कर दिया।

खुसरो की मृत्यु—अभागे कदी राजकुमार खुसरो की दुदशा पर तरस खाकर हरम की महिलाओ ने सम्राट से उसे क्षमा कर देने की प्राथना की और उस दरवार म आन की आज्ञा मिल गई, किन्तु उसकी प्रसन्नता फिर नही लौट सकी। वह सदव दुखी तथा सतप्त बना रहता था। इससे चिढकर बादशाह ने उसका दरवार मे आना फिर बन्द कर दिया। अक्टूबर १६१६ में वह आसफ खाँ के सुपुद किया गया। उसने उसे शाहजहाँ के हवाले कर दिया। वह उसे मलिक अबर के विरुद्ध दक्षिण जाते समय साथ लेता गया। बुरहानपुर में १६२२ के आरम्भ मे ही खुसरो की मत्यु हो गई, और जहागीर को खबर दी गई कि उसकी कुलज (कालिक) की बीमारी से मत्यु हो गई। किन्तु सच्ची बात यह जान पडती ह कि उसकी लोकप्रियता से डरकर शाहजहा ने उसकी हत्या करवा डाली। बादशाह ने अपने मृत पुत्र पर दया करके उसके अवशेष का दुबारा इलाहाबाद के एक बाग में जिसे खुसरो बाग कहते ह दफनवाया, जहाँ उसकी कब्र अब भी मौजूद हैं।

शाहजहाँ का विद्रोह—जैसा पहले दिखलाया जा चुका ह, नूरजहाँ के षडयत्रो के कारण अपने अधिकारो की रक्षा के लिए शाहजहा विद्रोही हो जाने के लिए विवश हो गया। दोनो दलो ने युद्ध की तैयारी की और उनमें दिल्ली के दक्षिण बिलोचपुर के पास युद्ध हुआ जिसमें विद्रोही दल पराजित हुआ। इसमें शाहजहा का सहायक वीर सरदार रायरायान राजा विक्रमाजीत मारा गया। शाही फौज ने शाहजादे का पीछा किया वह दक्षिण की ओर लौट गया और बिना किसी

लड़ाई के असीरगढ ले लिया। उसके बहुत से अनुयायियों ने उसका साथ छोड़ दिया और उसने मलिक अबर से सहायता के लिए प्रार्थना की। उससे सहायता न मिलने पर शाहज़ादा सहायता के लिए गोल्कुण्डा गया। वहाँ भी शरण न मिलने पर वह तिलगाना पार करता हुआ उड़ीसा चला गया और बगाल और बिहार के समूचे सूबे पर अधिकार जमा लिया। उसने अब अवध और इलाहाबाद को लेने का प्रयत्न किया परन्तु सफल न हो सका। वह पराजित होकर रोहतासगढ लौट गया और फिर वहा से दक्षिण की ओर चला गया।

मलिक अबर ने जो इस समय बीजापुर से युद्ध कर रहा था और शोलापुर का किला ले चुका था, उसका स्वागत किया और बादशाह के विरुद्ध उससे एका कर लिया। शाहजहाँ ने बुरहानपुर पर घेरा डाला लेकिन परवेज और महाबत खा के पहुँचने पर रोहनगढ लौट गया।

शाहजहा ने देखा कि बादशाह की प्रबल शक्ति का बहुत दिनो तक सामना करना उसके लिए असभव था, इसलिए उसने जहागीर से क्षमा के लिए प्रार्थना की। नूरजहा ने जो इस समय महाबत ख़ाँ की बढ़ती हुई शक्ति से और परवेज को उसकी सहायता की आशका से डर रही थी, इस अवसर को हाथ से जाने देना उचित न समझा। उसकी सलाह से मार्च १६२६ में बादशाह ने विद्रोही राजकुमार को क्षमा कर दिया और उसे रोहतासगढ और असीरगढ समर्पित कर देने और अपनी सद्भावना को प्रकट करने के लिए अपने पुत्रों द्वारा और औरगजेब को दरबार में भेज देने की आज्ञा दी। शाहजहाँ ने शाही फरमान का यथोचित पालन किया और १० लाख रुपयो के मूल्य की नजर भेंट की।

महाबत खाँ—खुसरो की मृत्यु और शाहजहा की तौहीन होने पर नूरजहाँ के हृदय में अपने अयोग्य दामाद शहरयार के लिए युवराज-पद प्राप्त करने की आशा फिर बलवती हुई। उसका एक प्रतिद्वन्द्वी परवेज था जिसका पृष्ठपोषक साम्राज्य का सबसे वीर सेनापति महाबत खा था। खुर्रम का विद्रोह शान्त हो जाने पर जब महाबत खाँ की सेवाओ की आवश्यकता नही रह गई तो नूरजहाँ ने उसकी शक्ति तथा प्रभाव छीन लेने की इच्छा से उसे शाही फौज का सेनापतित्व छोडकर सूबेदार के रूप में बगाल जाने का हुक्म दिया, जिसका उसे पालन करना पडा।

नूरजहाँ इतन ही से सन्तुष्ट न हुई, उसन महावत खाँ पर बगाल में राज्य का रुपया हजम कर जाने का अपराध लगाया और उससे जवाब तलब किया। उस पर दूसरा एक वडा ही अन्यायपूर्ण दोष यह लगाया कि उसने बादशाह की स्वीकृति के बिना ही ख्वाजा उमर नक्शबदी के पुत्र के साथ अपनी पुत्री का विवाह पक्का कर लिया था। उसके भावी दामाद का बडा अपमान किया गया और उसे कदखाने म डाल दिया गया। इसके बाद महावत खाँ ने उसे जो सम्पत्ति दी थी, उसे जब्त कर लेन के लिए एक शाही अफसर फिदाई खाँ भेजा गया। अब महावत खाँ क्षुब्ध हो उठा और उसने समझ लिया कि बिना किसी घोर समयोचित प्रतिकार के नूरजहाँ के हाथो से उसकी रक्षा असभव ह। फिर वह करीब पाँच हजार राजपूतो के साथ दरबार की ओर चल पडा।

जहागीर काश्मीर से लौटने के बाद चद महीनो तक लाहौर ठहरकर माच १६२६ मे काबुल के लिए रवाना हो रहा था। झेलम के किनारे पडाव पडा हुआ था। प्राय सारी सेना नदी पार कर चुकी थी। बादशाह झेलम पार करन ही वाला था कि महावत खाँ ने अपने वीर राजपूता के साथ पहुँचकर शाही खेमे को घेर लिया और इस प्रकार बादशाह को बदी बना लिया। उसे बादशाह तक पहुँच सकने और उन्ह नूरजहाँ और आसफ खाँ के विषमय प्रभाव से अलग करने के लिए ऐसा करने को विवश होना पडा।

नूरजहाँ ने झलम के दूसरे किनारे पहुँचकर एक युद्ध-सभा की जिसमे निश्चय हुआ कि बादशाह को महाबत के पहरे से मुक्त करने के लिए नदी पार करके उसके दल से युद्ध किया जाय। जब जहागीर का उनके इस इरादे की खबर मिली तो उसने वीर सुसज्जित राजपूतो के विरुद्ध उनकी सफलता की आशा न देखकर उन्ह इस निश्चय से विरत करना चाहा, किन्तु वे अपने निश्चय से न हटे। दूसरे दिन प्रातकाल अपने प्राणो की परवा न करके नूरजहाँ हाथी पर बैठकर शहरयार की पुत्री को गोद मे लिये हुए सेना के साथ नदी पार करने के लिए आगे बढी। नदी जगह जगह पर बहुत गहरी थी और दूसरे किनारे से महाबत खाँ के सैनिक तीर बरसा रहे थे। बडी मुश्किल से शाही सेना विशृखल होकर नदी के दूसरे किनारे पहुँची। मुगल सेनापति भयभीत हो गये थे। जिसे जिधर जगह मिली वह उधर ही अपनी सेना के साथ भाग निकला। आसफ —

ने भागकर ३००० सैनिकों के साथ अटक के किले में शरण ली। नूरजहाँ ने इस संकटापन्न स्थिति में बड़ा साहस दिखलाया किन्तु उसके आदमी सुसंगठित तथा वीर राजपूतों का सामना न कर सके।

नूरजहाँ को महावत खाँ के हाथ आत्म-समर्पण करना पड़ा जिसने उसे उसके बन्दी पति के साथ रहने की आज्ञा दे दी। इस समय महावत खाँ का विरोध करनेवाला कोई नहीं रह गया था। उसने एक छोटी सेना भेजकर आसफ खाँ को आत्मसमर्पण करने के लिए बाध्य किया। नूरजहाँ महावत खाँ के हाथों से अपने तथा अपने पति के छुटकारे के लिए युक्ति लगा रही थी और उसे जल्द ही सफलता मिल गई। शाहजहाँ के विद्रोहात्मक प्रयत्नों को विफल करने के लिए उसे थटटा जाने को कहा गया। वह हिन्दुस्तान की ओर मुड़ा तो शाही दल ने उसे बेबस करके बंगाल से लाया हुआ उसका सब खजाना लूट लिया।

दक्षिण के युद्ध की समाप्ति—महावत खाँ के दक्षिण से बुला लिये जाने पर नूरजहाँ ने दक्षिण के युद्ध का भार खानजहाँ लोदी को सौंपा। १६२६ ई० में मलिक अंबर की मृत्यु हो जाने से अहमदनगर राज्य का बल घट गया। मलिक अंबर का स्थान एक दूसरे योग्य गुलाम हामिदखाँ ने ग्रहण किया। मुगल सेनापति खानजहाँ हामिद से घूस की एक बहुत बड़ी रकम लेकर और अहमदनगर तक का बालाघाट का सारा प्रदेश उसके लिए छोड़कर लौट आया। जहाँगीर की दक्षिण विजय की महत्त्वाकांक्षा का ऐसी बुरी तरह अन्त हुआ।

शाहजहाँ की गति-विधि—शाहजहाँ दक्षिण में महावत खाँ के विद्रोह का समाचार पाकर उत्तर की ओर बढ़ा और सिन्ध में थटटा पहुँच उसने किले को लेने का प्रयत्न किया, किन्तु सफल न हो सका। हतोत्साह और अस्वस्थ होकर वह एक बार फिर दक्षिण चला गया। इस बीच में महावत खाँ का खजाना शाही दल द्वारा लूटा जा चुका था। अपनी सम्पत्ति खोकर महावत खाँ मेवाड़ के पहाड़ों और जंगलों में चला गया। वहाँ से वह भी दक्षिण चला गया और वहाँ शाहजहाँ से मेल कर लिया।

जहाँगीर की मृत्यु—बादशाह का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया था। वह नूरजहाँ और आसफ खाँ के साथ मार्च १६२७ ई० में काश्मीर गया था। वहाँ से लौटते समय वह भीमबर में ठहरा। वहाँ उसकी बीमारी बढ़ गई।

योग्य से योग्य चिकित्सक भी उसे अच्छा न कर सके और २८ अक्टूबर १६२७ के प्रातःकाल यहीं उसका देहान्त हो गया।

उत्तराधिकार की समस्या—परवेज १६२६ ई० के अक्टूबर महीने में ही अत्यधिक मद्यपान से मर चुका था। सिंहासन के लिए शाहजहां का सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वी शहरयार था। बादशाह का देहान्त होने पर आसफ खां ने चटपट शाहजहां के पास एक पत्रवाहक यह समाचार देने के लिए भेज दिया और उसके आने तक खुसरो के पुत्र दावरबख्श को कारावास से बाहर निकालकर बादशाह घोषित कर दिया। नूरजहां ने अपने भाई से मिलने की बहुत कोशिश की, परन्तु वह किसी न किसी बहाने से टालता गया। जहांगीर का शव लाहौर के पास नूरजहां के दिलकुशा बाग में दफनाया गया। बाद में नूरजहां ने अपने प्रिय पति की कब्र पर मकबरा बनवाया परन्तु प्राकृतिक सौंदर्य के प्रेमी जहांगीर की कब्र के ऊपर उसकी इच्छा के अनुसार कोई मंडप नहीं बनवाया गया।

नूरजहां और उसकी पुत्री ने शहरयार को सिंहासन के लिए प्राण-पण से चेष्टा करने के लिए उत्तेजित किया, और राजकुमार दानियाल का एक पुत्र भी उसका सहायक बना। उधर आसफ खाँ ने शहरयार के प्रयत्नों को निष्फल करने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा दी। वह एक बड़ी सेना के साथ लाहौर की ओर बढ़ा और किले पर घेरा डाला, शहरयार ने चटपट आत्म-समर्पण कर दिया। वह कैद कर लिया गया और उसकी आंखें फाड़ दी गईं।

जहांगीर की मृत्यु की खबर पाकर शाहजहां शीघ्रता से उत्तर की ओर बढ़ा और आसफ खाँ के पास अपने सब प्रतिद्वन्द्वियों को यमधाम पठा देने के लिए एक फरमान भेज दिया जिसका उसने मुस्तैदी से पालन किया। इस प्रकार सबको कत्ल कर निष्कंटक होकर शाहजादा ने २४ जनवरी १६२८ को बड़ी धूम-धाम से राजधानी में प्रवेश किया। उसने आसफ खाँ को उसकी सेवाओं के बदले यामीनुद्दौला की उपाधि दी और उसका पद ८००० जात और ८००० सवार का कर दिया।

यद्यपि नूरजहाँ ने शाहजहां के विरुद्ध षड्यन्त्र किया था तथापि शाहजहाँ ने उसके लिए दो लाख वार्षिक की पेंशन नियुक्त कर दी। वह सब प्रकार की विलासिता छोड़कर शान्ति में अपनी पुत्री शहरयार की विधवा पत्नी के साथ

लाहौर मे अपने दिन विताने लगी। ८ दिसबर १६४५ को उसकी मत्यु हो गई और वह अपने पति की बगल म दफना दी गई।

जहाँगीर का व्यक्तित्व—जहांगीर की फारसी साहित्य की अच्छी गति थी। वह फारसी अच्छी लिखता भी था। वह तुर्की भाषा वोल सकता था परन्तु लिख नही सकता था। उसे काव्य से बडा प्रम था। और वह स्वय भी गजलें लिखता था। काव्य तथा साहित्य के अतिरिक्त उसने इतिहास भूगोल और जीवन चरित्रा का भी अच्छा अध्ययन किया था। अपने जहागीरनाम में उसने काश्मीर तथा भारत के अय भागा की वनस्पतिया तथा पशु-पक्षियो का बहुत अच्छा वणन किया ह जिससे उसकी परिष्कृत निरीक्षण शक्ति का परिचय मिलता है। वह हिन्दी कविता भी बहुत पसन्द करता था और हिन्दी कविया को उदारतापूवक पुरस्कृत करता था। वह भवन निमाण कला और चित्रकला से बडा प्रेम रखता था और इन कलाओ का बडा अच्छा पारखी था। उसके दरबार म चित्रकारा का बडा सम्मान होता था।

जहागीर को शिकार का बडा शौक था वह निशाना लगाने मे बडा सिद्ध हस्त था। वह एक अच्छा सैय सचालक भी था। वह राजकाज म अपनी इच्छा के विरुद्ध किसी मन्त्री की कोई बात सहन नहीं कर सकता था। किन्तु अवस्था वढने पर उसके स्वभाव की यह प्रखरता शान्ति पड गई। जहागीर न्याय के पालन मे बडा कठोर था। वह अत्याचार का दमन बडी कडाई से करता था। उसका क्रोध बडा भयकर होता था। क्रुद्ध होने पर वह कभी-कभी बडा निदयी तथा क्रूर हो जाता था। किन्तु स्वभाव मे वह रक्तपिपासु नहीं था। साधारणत वह बडा दयावान और उदार था। दीन-दुखिया पर उसकी बडी दया रहती थी। वह साधु-फकीरा का बडा सम्मान करता था। और हिन्दू योगियो से बहुत सम्पक रखता था।

जहागीर का स्वभाव वडा स्नेहमय था। वह अपने परिजना पर बडी कृपा रखता था, किन्तु उनके राजनैतिक विद्रोहाचरण का वह बडी कडाई स दमन करता था। किन्तु इसके साथ ही वह उन्हे अनुताप करने तथा अपना चरित्र सुधारने का अवसर देता था, जसा विद्रोही खुसरो और शाहजहा के साथ उसके व्यवहार से प्रकट होता ह। यद्यपि जहागीर न अकबर के प्रति विद्रोहाचरण

किया था उसकी पुस्तक से उसके प्रति उसकी बडी श्रद्धा प्रकट होती ह। वह कई बार उसके प्रति अपना सम्मान प्रकट करने के लिए पैदल नगे पैर सिकन्दरा में उसकी समाधि तक गया। वह नूरजहा को अपने प्राणा स अधिक प्यार करता था। अपने जीवन के अत तक वह उसे बराबर सबसे अधिक विश्वासपात्र और अपना सबसे बडा सलाहकार मानता रहा।

जहाँगीर मे जहाँ गुण थे वहाँ दोष भी थे। वह बडा मद्यपी था। उसने १५ वष की अवस्था मे मद्य पीना आरम्भ किया और ९ वर्षों में दिन रात में बीस बीस प्याले तज शराब पीन लगा। बाद म उसने शराब की मात्रा कम कर दी किन्तु फिर भी मद्यपान के कारण अन्त म उसकी तन्दुरुस्ती बिल्कुल चौपट हो गई। उसके अय तीना भाई मुराद, दानियाल और परवेज अत्यधिक मद्यपान से ही मर चुके थे। जहाँगीर का दूसरा बडा भारी अवगुण जिसके कारण राजशक्ति मे बडी शिथिलता आ गई तथा शासन प्रबध में बडी गडबडी पदा हो गई उसका दूसरो के हाथो म कठपुतली बन जाना था। विलास प्रिय बादशाह ने राज्य का सारा भार नूरजहा और उसके भाई आसफ खाँ के हाथा मे सौंप दिया था। उसके इन अवगुणो के फलस्वरूप ही जैसा ऊपर दिखलाया जा चुका ह कधार हाथ से निकल गया और महाबत खा और शाहजहाँ के विद्राह हुए।

जहाँगीर पक्का सुन्नी मुसल्मान था, परतु उसने कभी शियो अथवा हिन्दुओ को कष्ट नही दिया। अकबर के दरबार के धार्मिक उदारतापूण वातावरण का उस पर यह प्रभाव पडा कि वह वदान्त और सूफी मत की शिक्षाआ में बडी रुचि रखता था। हिदू साधु-सतो मे वह समागम करता था। तुजक जहागीरी मे जदरूप नामक सयासी का वणन है। उसमे बादशाह कभी-कभी मिलने जाता था। किन्तु फिर भी वह धार्मिक सकीणता से सवथा मुक्त नही था। एक बार जब उसे यह मालूम हुआ कि कुछ मुसलमान एक सयासी के उपदेशो से प्रभावित हो गये थे, उसने उनके साथ कठोरता का व्यवहार किया और इस प्रकार उसने इस्लाम धम की रक्षा की। किन्तु साधारणत उसने अपने पिता के सुलहकुल के नियम का जारी रक्खा।

अध्याय १८

साम्राज्य का चरमोत्कर्ष शाहजहाँ का शासन-काल

(१६२८-५८ ई०)

शाहजहाँ के प्राथमिक कार्य—शाहजहाँ ६ फरवरी सन १६२८ को विधिवत् सिंहासनारूढ हुआ। इस अवसर पर खब आनन्दोत्सव मनाया गया और सरदारों की पदोन्नति की गई तथा उन्हें पारितोषिक दिये गये। शाहजहाँ अकबर और जहाँगीर की अपेक्षा धार्मिक विचारों में अधिक कट्टर था। उसने पहला कार्य यह किया कि राजकार्य में सौर वर्ष का व्यवहार बन्द करके चन्द्र वर्ष तथा हिजरी सन के व्यवहार की आज्ञा दी। इससे कट्टर मुसलमान बहुत प्रसन्न हुए। सिजदा जो अकबर और जहाँगीर के दरबार में प्रचलित था, बन्द कर दिया गया क्योंकि धार्मिक दृष्टि से केवल ईश्वर को ही सिजदा करना उचित है। महाबत खाँ खानखाना ने निवेदन किया कि सिजदे की जगह पर जमींबोसी (जमीन चूमने) का नियम रहे तो अच्छा हो जिससे अभिवादन में स्वामी और सेवक, राजा और प्रजा का सम्बन्ध नियमबद्ध रहे। बादशाह ने यह बात मान ली और आज्ञा दी कि लोग दाहिना हाथ जमीन पर टेककर उसका पृष्ठभाग चूमा करें। शेख सैयद और उलमा इस प्रकार अभिवादन करने के नियम से मुक्त रखे गये। कुछ समय बाद ऐसा विचार आने लगा कि जमींबोस भी सिजदे का ही एक रूप है अतएव राज्यारोहण के दसवें वर्ष यह भी बन्द कर दिया गया, और इसके बदले चहार तसलीम की प्रथा प्रचलित की गई।

बादशाह ने अपने दादा की स्मृति में आगरे के शहर का नाम अकबराबाद रख दिया। साम्राज्य के प्रान्तों के शासन प्रबन्ध में भी कुछ परिवर्तन किये गये। साम्राज्य के सरदारों को मुक्तहस्त से पारितोषिक दिये गये, विरोधियों के प्रति भी उदारता दिखलाई गई। आसफ खाँ का मनसब ८००० जात और ८००० सवार का कर दिया गया।

शाहजहाँ के गद्दी पर बैठने के थोड़े ही काल बाद बुन्देला ने विद्रोह किया। अबुलफजल के वधिक वीरसिंह के समय में बुन्देला की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। जहाँगीर के शासन-काल के अन्त में केन्द्रीय शासन का नियन्त्रण ढीला पड़ जाने के कारण बुन्देले सरदार को अपने पड़ोसियों को दबाकर अपनी शक्ति तथा सम्पत्ति बढ़ाने का मौका मिल गया था। १६२७ ई० में वीरसिंह की मृत्यु हो जाने पर उसकी विशाल सम्पत्ति तथा राज्य का स्वामी उसका पुत्र जुझारसिंह हुआ जिसने बादशाह की आज्ञा के बिना ही राजधानी छोड़कर उसे युद्ध कर दिया। वह साम्राज्य की राजधानी आगरे से अपने किले ओर्छा में पहुँचा और अपनी सेना सुदृढ़ करने लगा तथा लड़ाई के सब सामान इकट्ठे करने लगा।

बादशाह ने बिना विलम्ब उसके दमन की तैयारी की। महाबत खाँ खानखाना अन्य बड़े-बड़े सहकारी सेनापतियों के साथ उत्तर की ओर बढ़ा। शाहजहाँ कई और सरदारों के साथ मालवा से चन्देरी होते हुए बढ़ा। उसकी सहायता के लिए कई हिन्दू सरदार नियुक्त किये गये थे। एक और बड़ी सेना कन्नौज के जागीरदार फिरोजजंग के अधीन पूरब से बुन्देलखंड में घुसी। सबकी शाही फौज में सब मिलाकर २७००० सवार, ६००० पैदल और १५०० बन्दूकची थे। जुझारसिंह में इतनी बड़ी सेना का सामना करने की शक्ति नहीं थी, फिर भी उसने प्राणपण से अपनी रक्षा की चेष्टा की। युद्ध में उसके दो तीन हजार आदमी मारे गये और उसके किले पर शाही सेना का अधिकार हो गया। अन्त में उसने आत्म-समर्पण किया और बादशाह के सामने हाजिर हुआ। उसे १०० मोहरें नजर देनी पड़ीं और १५ लाख रुपये जुर्माना में देने पड़े, और इसके अलावे ४० हाथी भी देने पड़े। उसके पास इतनी जागीर रहने दी गई जितनी ४००० जात और ४००० सवार के पद के लिए उपयुक्त थी और शेष खाँनजहाँ लोदी, अब्दुल्ला खाँ, सैयद मुजफ्फर खाँ और राजा पहाड़सिंह बुन्देला के बीच बाँट कर दी गई। जुझारसिंह को दक्षिण की चढ़ाई में बादशाह की सहायता के लिए २००० सवार और २००० पैदल सैनिक तैयार रखने की आज्ञा दी गई।

खाँनजहाँ लोदी का विद्रोह—यह विद्रोह शाहजहाँ के गद्दी पर बैठने के दूसरे वर्ष हुआ। उसने जहाँगीर की मृत्यु होने पर सिंहासन के उत्तराधिकार की अनिश्चित परिस्थिति से लाभ उठाना चाहा था, किन्तु शाहजहाँ की द्रुतगति तथा

सफलता देखकर जब उसे अपनी सफलता की आशा न रही तो उसने क्षमा की प्रार्थना की। उसके अपराध क्षमा कर दिये गये और उसे दक्षिण की सूबेदारी दी गई। कुछ काल बाद वह दक्षिण में दरबार में बुला लिया गया, जहाँ वह सात आठ महीने तक रहा। बादशाह ने उसके साथ अच्छा बर्ताव किया किन्तु वह सदैव उदास और दुःखी रहता था। एक मूर्ख दरबारी ने उसके पुत्रों से कह दिया कि वे और उसके पिता शीघ्र ही कैद कर लिये जायगे, यह बात सुनकर वह बड़ा भयभीत हो गया। आसफ खाँ की राय से उसे निर्भय करने के लिए बादशाह ने स्वयं अपने हस्ताक्षर की चिट्ठी उसके पास भेजी किन्तु उसका सदेह दूर न हुआ। भयभीत होकर वह अपनी रक्षा के लिए दरबार से भाग खड़ा हुआ।

बादशाह ने उसके विरुद्ध कई सेनापतियों को भेजा। वे धौलपुर के समीप उसके पास जा पहुँचे, किन्तु खानजहाँ शीघ्रता से चम्बल पार करके बुन्देलखण्ड और गोंडवाना होता हुआ दक्षिण पहुँच गया जहाँ वह अपने पुराने मित्र और सहायक निजामुल्मुल्क से जा मिला। शाही सेना उसका पीछा करती हुई वहाँ आ पहुँची और एक हलकी लड़ाई हुई जिसमें वह हार गया। वह वहाँ से भाग खड़ा हुआ और नर्मदा पार करके उज्जैन के आस-पास प्रजा को लूटने लगा। शाही सेनाओं ने फिर उसे बंदेलखंड से भगा दिया जहाँ एक गहरी लड़ाई हुई जिसमें दोनों दलों को भारी क्षति हुई। खानजहाँ भागकर कालिंजर गया लेकिन वहाँ भी वहाँ के किलेदार द्वारा हराया गया। अन्त में वह सेहान्दा पहुँचा, जहाँ अन्तिम मुठभेड़ हुई जिसमें उसकी पूर्ण पराजय हुई। उसका सिर काटकर दरबार में भेज दिया गया। उसके लगभग सौ साथियों की भी वही गति हुई। ये सिर लोगों को विद्रोह का भयकर फल दिखलाने के लिए किले के फाटक में लटका दिये गये। बादशाह ने विद्रोही के विरुद्ध बड़ी मुस्तैदी से लगे रहनेवाले सेनापतियों अब्दुल्ला और मुजफ्फर को अच्छी तरह पुरस्कृत किया। अब्दुल्ला का मनसब ६००० जात और ६००० सवार का कर दिया गया और उसे फिरोजजंग की उपाधि दी गई, और मुजफ्फर का दर्जा ५००० जात और ५००० सवार का कर दिया गया और उसे खानजहाँ की उपाधि दी गई।

नौरोज का उत्सव, १६२८ ई०—शाहजहाँ ने रज्जब के महीने में बड़ी धूम धाम से नौरोज का उत्सव मनाया। दौलतखाने के सहन में शानदार शाही दरबार

लगा। इस स्थान को भव्य तथा सुन्दर बनाने में कोई कसर न रखी गई। इस अवसर पर बादशाह ने राज-परिवार के व्यक्तियों को उपहार दिये। मुमताजमहल को पचास लाख, जहानारा बेगम को पच्चीस लाख, रौशनआरा बेगम को पाँच लाख और सब राजकुमारों को पाँच-पाँच लाख रुपये मिले। आसफ खाँ का मनसब बढ़ाकर ९००० जात और ९००० सवार का कर दिया गया। राज्यारोहण के दिन से लेकर नौरोज तक बादशाह ने पारितोषिक आदि के रूप में सरकारी खजाने से १ करोड़ ६० लाख रुपये व्यय किये।

दक्षिण और गुजरात में दुर्भिक्ष, १६३० ई०—१६३० ई० में दक्षिण गुजरात और खानदेश के प्रदेशों में एक बड़ा भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। हजारों आदमी भूखा मर गये, और मिर्जा अमीन कजवीनी, जिसने लोगों की हृदय विदारक दशा को अपनी आँखों से देखा था लिखता है कि भूख की यन्त्रणा न सह सकने के कारण माँ बेटे का मांस भक्षण कर जाती थी। योरोपियन यात्री पीटरमंडी, जो १६३० में दक्षिण में था और मिर्जा अमीन कजवीनी लिखते हैं कि मुर्दों के मारे सड़कें और गलियाँ बन्द हो गई थीं। अन्य योरोपियन लेखकों द्वारा भी इनके विवरणों का समर्थन होता है। अँगरेजों और डचों की बस्तियाँ भी इस दुर्भिक्ष के घातक प्रभाव से अछूती न बचीं। उनमें से भी कुछ काल के भेंट हो गये। इस दुर्भिक्ष के बाद भयंकर महामारी फैली जिसने गाँव के गाँव वीरान कर दिये।

बादशाह ने दुर्भिक्ष-पीड़ितों की दशा पर तरस खाकर बुरहानपुर, अहमदनगर और सूरत के प्रदेशों में लंगर खुलवाये, जहाँ गरीबों को मुफ्त भोजन दिया जाता था। बुरहानपुर में २० हफ्ते तक हर सोमवार को दुर्भिक्षग्रस्त प्रजा में ५०००) बाँटे जाते थे। इस प्रकार वहाँ एक लाख रुपये खर्च हुए। इसी प्रकार अहमदाबाद में भी ५००००) रुपये खर्च किये गये। इस खैरात के अलावा बादशाह ने खाल्सा जमीन की मालगुजारी में से ७० लाख रुपये माफ कर दिये जो समूचे साम्राज्य की मालगुजारी का करीब ग्यारहवाँ हिस्सा था। डाक्टर स्मिथ इलियट-कृत पादशाहनामे के अशुद्ध अनुवाद के अनुसार यह समझकर कि दुर्भिक्ष पीड़ित प्रजा से उनके लगान का $\frac{1}{11}$ भाग वसूल करने की कोशिश की गई, शाहजहाँ के हृदयहीनतापूर्ण भाव की तीव्र आलोचना करते हैं। वास्तव में किसानों से लगान का केवल $\frac{3}{4}$ माँगा गया था $\frac{1}{4}$ भाग माफ कर दिया गया था। इसमें सन्देह नहीं,

यह लगान म एक तिहाई छूट पर्याप्त नही थी, किन्तु फिर भी नगण्य नही थी। बादशाह के इस काय का जमीदारो ने भी अनुकरण किया और उन्होने लगान की रकम में इससे भी अधिक कमी कर दी।

मुमताजमहल—अर्जुमन्द बानू बेगम जो मुमताजमहल के नाम से प्रसिद्ध हुइ, नूरजहाँ के भाई आसफ खा की लडकी थी। उसका जन्म १५९४ ई० में हुआ, और १६०६ ७ में वह राजकुमार खुरम की वाग्दत्ता हो गई, जब राजकुमार अभी पूरे १५ वष का भी नही था। अर्जुमन्द बानू को उसके पिता न खूब अच्छी तरह शिक्षा दी थी, वह अपने भावी उच्चपद के सवथा योग्य थी। उसकी अद्वितीय सुन्दरता की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फल गई थी। उसका विवाह राजकुमार खुरम के साथ बडी धमधाम से अप्रल १६१२ ई० में हो गया। विवाह के आनन्दोत्सव में बादशाह और सम्राज्ञी ने बहुत बडा भाग लिया। यह विवाह नव-दम्पति के लिए बडा आनन्दमय सिद्ध हुआ। अर्जुमन्द बानू ने अपने अद्वितीय सौन्दय और हार्दिक प्रेम से अपने पति का हृदय अपने वश में कर लिया। अपने जीवन के अन्त तक वह उसे प्राणो से अधिक प्रिय रही। वह अपने पति के दुख सुख में बराबर उसके साथ रही। शाहजहा उसे अपना सबसे अच्छा सलाहकार मानता था और प्रत्यक महत्त्वपूण काय म पहले उसकी सलाह ले लेता था। जब शाहजहा गद्दी पर बैठा तो उसे राजमहिषी का पद प्राप्त हुआ। उसे मलिका ए जमा की उपाधि दी गई और बादशाह ने उसे अपना सबसे अधिक विश्वास पात्र समझकर शाही मुहर उसी के अधिकार में रखी जिसका अधिकारी उसने बाद म अपने पिता को बनवा दिया।

मुमताजमहल के हृदय में बडी दया थी। वह दीन-दुखियो पर बहुत दया करती थी। बेवाओ और अनाथो की सदा सहायता करती थी। वह बहुत अधिक धन दान करती थी एव निधन गरीब अनाथ लडकियो के विवाह के लिए देती थी। करुणा से वश उसने कितने ही अपराधियो को क्षमा करा दिया। उसे अपने धम का बडा ध्यान रहता था, वह नमाज म तथा व्रतो में कभी नागा नही करती थी। उसके धार्मिक विचारो म बडी कट्टरता थी। ईसाइयो और हिन्दुओ के प्रति शाहजहा का कठोर व्यवहार सभवत बहुत कुछ उसके प्रभाव के कारण ही था।

१६३० ई० में जब शाहजहा बुरहानपुर के पडाव से खानजहा लोदी के विरुद्ध युद्ध का सचालन कर रहा था, मुमताजमहल ने अपनी चौदहवी सन्तान, एक पुत्री को जन्म दिया। उसी समय से वह बीमार रहने लगी। जब उसे अपना अतकाल निकट आ गया जान पडा तो उसने अपनी पुत्री जहानारा से बादशाह को अपने पास बुलवा लिया और उससे आखो में आँसू भरकर अपनी सन्तानो और माता पिता का ध्यान रखने की प्राथना करके ७ जून १६३१ को इस लोक से चल बसी। उसकी मृत्यु पर बादशाह के शोक का पारावार न रहा। वह एक हफ्ते तक झरोखे में न उठा और न राजकाय में ही कुछ भाग लिया। उसने बहुमूल्य वस्त्रो तथा रत्नो का धारण करना और इत्र आदि का व्यवहार त्याग दिया और दो वष तक सब प्रकार की विलासिता से अलग रहा। मुमताज का अवशेष ६ महीने बाद अकबराबाद लाया गया और ताज के बगीचे में दफनाया गया। फिर बाद में वतमान रौजे में स्थानान्तरित कर दिया गया। ताजबीबी का रौजा जो ससार की सबसे सुदर इमारत है, मुमताज के प्रति शाहजहा के प्रेम के स्मारक के रूप में ससार की आखो को अब भी चकाचौंध कर रहा है।

पुर्तगालवालों के साथ युद्ध, १६३१-३२ ई०—पुतगालवाले बगाल के पूव-शासको की स्वीकृति से हुगली में बसे थे। समय पाकर धीरे धीरे अपनी शक्ति बढाकर उन्होने इस स्थान की तोपो से किलाबन्दी कर ली। इसके एक ओर नदी का प्रवाह था और बाकी तीन ओर उन्होने इसे पानी भरी गहरी खाई से सुरक्षित कर लिया था। उन लोगो ने बहुत थोड कर पर नदी के दोनो किनारा के गाँवो का पट्टा ले लिया था और वहा के निधन निवासियो पर बडा अत्याचार करते थे। इसके अतिरिक्त वे अपने ही आदमियो से इस बदरगाह में आयात निर्यात कर वसूल करते थे जिससे साम्राज्य की बहुत बडी आमदनी मारी जाती था, और वे गुलामो का व्यापार भी करते थे जिसमे बडी निदयता तथा अत्याचार करते थे। उनके अनुचित काय बगाल तक ही सीमित नही थे। गोआ, हुगली आदि स्थानो के धर्मान्ध पादरी वहा के निवासियो को बलात् ईसाई बनाने का प्रयत्न करते थे। उनकी ज्यादतिया दिन पर दिन बढती जाती थी। जब शाहजहा ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया था, एक समय कुछ पुतगालो ने धृष्टतापूवक मुमताजमहल की दो दासियो को

पकड लिया और उन्हे छोडने से इनकार कर दिया। इन ज्यादतियों के कारण पुर्तगीजों पर भारत-सम्राट् के क्रोध का वज्रपात होना अवश्यम्भावी हो गया था।

शाहजहाँ उनको अत्याचारो का दंड देने के लिए उपयुक्त अवसर की बाट देख रहा था। गद्दी पर बैठने के थोडे ही काल बाद १६३१ ई० में उसने कासिम खाँ को बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया और उसे पुर्तगीजो को समूल नष्ट कर देने की आज्ञा दी। शाही फौज स्थल मार्ग और जल मार्ग दोनो से हुगली की ओर बढी। जब सब सेनायें नदी के मुहाने पर पहुँच गई तो उन्होंने आक्रमण आरंभ किया। पहले नदी के दोनो किनारो के गावो में रहनेवाले पुर्तगाली मार डाले गये और सब बंगाली मल्लाह पकड लिये गये। हुगली का घेरा साढे तीन महीने तक जारी रहा। धूर्त पुर्तगालियो ने आत्म-समर्पण का भाव प्रकट किया और एक लाख रुपये और कर देने को तैयार हो गये लेकिन छिपे छिपे उन्होंने अपनी सेनाएँ ठीक कर ली और ७००० तोपचियो द्वारा मुगलो पर गोलाबारी करने के लिए तैयार हो गये। परन्तु उनकी चालबाजी से काम नही चला और एक परेशानी की लडाई के बाद वे पूर्ण रूप से पराजित हो गये। पुर्तगालियो की बडी भारी क्षति हुई, उनके करीब १०००० मर्द, औरत और बच्चे मारे गये और करीब ४४०० कैद कर लिये गये और मुगलो के पक्ष में करीब एक हजार आदमी मारे गये। पुर्तगालियो के अत्याचारों का अन्त हो गया और आसपास के गावो के करीब दस हजार आदमी जिन्हे कैदियो के समान रहना पडता था मुक्त हो गये।

शाहजहाँ पुर्तगालियो पर सबसे अधिक उनकी धर्मान्धता के कारण क्रुद्ध था। उसने उनसे इसका बडा भयंकर बदला लिया। कैदियो को इस्लाम और आजीवन कैद या गुलामी मे से एक चुन लेने को कहा गया। उनमें कुछ ने तो इस्लाम ग्रहण कर लिया। किन्तु कुछ ने अपने धर्म के लिए सब प्रकार के अत्याचार सहना स्वीकार किया। इसमे सन्देह नही कि खुद पुर्तगालियो ने ही यह आफत अपने ऊपर बुलाई थी फिर भी बादशाह का बेबस स्त्री-बच्चो पर यह लोमहर्षण अत्याचार निन्दनीय ही माना जायेगा। पुर्तगालियो में से जो बच रह थे उन्हे फिर हुगली का अधिकार दे दिया गया, किन्तु वह बादशाह अपनी पूर्व समृद्धि को फिर प्राप्त न कर सका।

शाहजहाँ की धार्मिक कट्टरता—शाहजहाँ ने अकबर और जहाँगीर की धार्मिक सहिष्णुता की नीति पूर्णरूप से कायम न रखी। १६३२ ई० में उसे खबर मिली कि बनारस के धनी काफिर एक मन्दिर को पूरा कर लेना चाहते हैं जिसका बनना उसके पिता के राज्य में आरम्भ हुआ था। उसने फरमान जारी किया कि बनारस में तथा साम्राज्य के दूसरे भागों में जिन मन्दिरों का बनना आरंभ हुआ हो, वे जमींदोज कर दिये जायें। स्थानीय हाकिमों ने शायद इसका अक्षरशः पालन किया और थोड़े ही समय बाद इलाहाबाद से खबर आई कि बनारस के इलाके में ७६ मन्दिर बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गये। यह औरंगजेब के शासनकाल में आनेवाली धर्मान्धता का पूर्वाभास था। शाहजहाँ की धार्मिक कट्टरता गोलकुंडा के शासक के साथ के उसके व्यवहार से भी प्रकट होती है। एक कट्टर सुन्नी के रूप में उसने कुतुबशाह के राज्य में तबर्रा अर्थात् प्रथम तीन खलीफाओं का 'बहिष्कार' बन्द करा दिया। उसने सन्धि में इस आशय की एक शर्त रखी, कि भविष्य में गोलकुंडे के शासक के खुतबे में प्रथम तीन खलीफाओं के भी नाम रहेंगे।

शाहजहाँ की दक्षिण नीति—अपने पूर्ववर्ती बादशाहों के समान शाहजहाँ भी दक्षिण के राज्यों को जीतने का अभिलाषी था। उसके दृष्टिकोण में यह एक विशेषता आ गई कि राज्य-सम्बन्धी महत्त्वाकांक्षा के अतिरिक्त कट्टर सुन्नी मत पोषक होने के विचार से भी वह दक्षिण के शिया शासकों के राज्यों का उन्मूलन अपना कर्त्तव्य मानता था। उसके पुत्र औरंगजेब के समय में धार्मिक विद्वेष का यह रंग और भी गहरा पड़ गया।

१६२९ ई० में खानजहाँ लोदी के विद्रोह के दमन हो चुकने के एक वर्ष बाद शाहजहाँ को अहमदनगर और बीजापुर के राज्यों में हस्तक्षेप करने का अवसर मिला। मलिक अम्बर के पुत्र फतहखाँ ने आसफखाँ को सूचना दी कि उसने अपनी प्राणरक्षा के भय से विवश होकर निजामशाही सुल्तान को कैद कर लिया है। उससे सुल्तान का खातमा कर देने को कहा गया जिसका चटपट पालन करके उसने निजामशाह के दस बरस के पुत्र हुसेन को गद्दी पर बैठा दिया। मुगल सरकार ने उसके इस कार्य का पूर्णरूप से समर्थन किया।

बीजापुर और गोलकुण्डा के शासकों ने अहमदनगर की इस कमजोर

परिस्थिति से लाभ उठाना चाहा। शाहजहा ने बीजापुर के सुल्तान का मुगल आधिपत्य स्वीकार करने का कहा और आसफखा का बीजापुर पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। उसने बीजापुर पर घेरा डाल दिया। दोना दलो ने एक दूसरे पर गोली-गोलियो और तीरो की खूब वर्षा की। आसफखा न बीस दिन के घेरे के बाद अपनी रसद चुक जाने पर घेरा उठा लिया और बीजापुर के राज्य में लूटमार मचाने लगा। फिर शाही फौज मुगल प्रदेश म लौट आई और बादशाह ने ४ अप्रल १६३२ को उत्तर के लिए कूच किया। आसफखा के असफल होने के कारण उसकी जगह महाबत खा दक्षिण मे नियुक्त किया गया।

निजामशाही राज्य का अन्त—मलिक अम्बर के पुत्र फतहखा ने मुगल बादशाह से अधीनता स्वीकार करने के बदले चन्द जिले पाये, जो पहले उसी के थे लेकिन बाद में शाहजी को दे दिये गये थे। शाहजी इस बात को सहन न कर सका, उसने निजामशाहियो से दौलताबाद का किला छीन लेने के लिए आदिलशाह की सहायता ली। फतह खा ने अपनी रक्षा के लिए चिन्तित होकर महाबत खा को लिखा कि मेरा इरादा बादशाह की सेना को किला सौंप देने का है। इस पर महाबत खा ने एक सेना के साथ अपने पुत्र को भेजा और पीछे से खुद भी आ पहुँचा। बीजापुर की सेना एक गहरी लडाई के बाद हरा दी गई और किले का एक बुर्ज सुरग लगाकर उडा दिया गया। किले की कुछ दीवार गिर गई लेकिन बीजापुर के वीर सनिको ने गोलियो और तीरो की ऐसी वर्षा की कि आक्रमणकारियो को खाइयो में शरण लेनी पडी। फिर खानखाना की आज्ञा पाकर मुगल सैनिक भग्न प्राचीर की ओर बढे और किले मे प्रविष्ट होकर बहुत से शत्रुओ को काट डाला।

शाही सेना ने किले की दीवार के नीचे तक एक और सुरग तैयार कर ली और उसे उडा देना चाहा। जब फतहखा को निश्चय हो गया कि शाही सेना किला ले लेगी तो उसने अपने परिवार और राजपरिवार को सुरक्षित स्थान मे ले जाने के लिए एक हफ्ते का समय चाहा और महाबत खा को शर्त के अनुसार अपने वचन को पूरा करने का विश्वास दिलाने के लिए अपने बडे लडके को उसके पास भेज दिया। उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली गई और उसने साढे दस लाख रुपये लेकर किले की कुंजियाँ खानखाना को सौंप दी और १८ जून

१६३३ को निलज्जतापूवक किले से वाहर हो गया। किले पर मुगल साम्राज्य का झडा फहराने लगा और वादशाह के नाम से खुतवा पढा गया। अभागा हुसेनशाह जिसे फतह खा ने गद्दी पर बठाया था कैद करके अपना शेष जीवन व्यतीत करने के लिए ग्वालियर के किले में भेज दिया गया। इस प्रकार अहमदनगर के राज्य का अन्त हो गया।

बीजापुरिया ने फिर दौलताबाद पर घेरा डाला लेकिन उह असफल होकर लौट जाना पडा। खानखाना ने परदा के किले पर घेरा डाला परन्तु उसे ले न सका। सात महीने के घेरे के बाद बरसात आने पर उसे बुरहानपुर लौट जाना पडा। महावत खाँ की २६ अक्टूबर १६३४ ई० को मृत्यु हो गई। उसके स्थान पर अस्थायी रूप से मालवा का सूबेदार खान ए-दौरान नियत किया गया।

जुझारसिंह का द्वितीय विद्रोह, १६३५-३६ ई०—जुझारसिंह बुन्देला ने चौरागढ के राजा को मार डाला और उसके विशाल कोष को हस्तगत कर लिया। राजा के पुत्र ने शाहजहा के पास फरियाद की। वादशाह ने जुझारसिंह से लूट के धन मे से हिस्सा मागा और उसके इनकार करने पर युद्ध अवश्यम्भावी हो गया। वादशाह न प्रकट रूप से बुन्देल सिंहासन के दावेदार देवीसिंह की सहायता के लिए, किन्तु वास्तव म जुझारसिंह का मान मदन करने के लिए बुदेलखड मे तीन सेनाएँ भेजी जिनमें २२००० मनुष्य थे। जुझारसिंह और उसका पुत्र विक्रमाजीत युद्ध भूमि से भाग गये और गोडो द्वारा मार डाले गये। उनके सिर नजराने के तौर पर सम्राट के पास भेज दिये गये।

जुझारसिंह की माता रानी पावती, वीरसिंह की विधवा, जो अपने पुत्र के पलायन के समय मुगलो द्वारा घायल कर दी गई थी, अपने घावो से मर गई, लेकिन दूसरी स्त्रिया पकडकर मुगल हरम में दाखिल कर ली गई। जुझारसिंह के दो लडके मुसलमान बना लिये गये, और एक तीसरा उदयभान अपना धम छोडने से इनकार करने पर निदयतापूवक वध कर डाला गया। ओछा का मदिर मस्जिद बना डाला गया, और जुझारसिंह के गुप्त खजाने पर विजेताओ का अधिकार हो गया। देवीसिंह को देशद्रोहिता के वदले ओर्छा की गद्दी मिली, किन्तु बुदेल सरदारो ने उसका स्वामित्व स्वीकार न किया। महोवा के चम्पतराय ने उसका विरोध किया, जिसके परम सुयोग्य पुत्र छत्रसाल

ने बुन्देलखंड में स्वतंत्रता का झंडा ऊँचा किया और अन्त में बड़ी कठिनाइयों के बाद सफलमनोरथ हुआ।

दक्षिण पुनर्वार, १६३५-३६—अभी तक दक्षिण की शिया रियासतें बीजापुर और गोलकुण्डा सर नहीं हुई थी। शाहजहाँ के कट्टर सुन्नी हृदय को शिया मत को दक्षिण में निर्बाध रूप से फलते फूलते देखकर चैन नहीं मिल सकता था। अहमदनगर में शाहजी ने अलग ही एक फसाद खड़ा कर रखा था। वह निजामशाही वंश के एक बालक को सुल्तान घोषित करके उसके लिए अहमदाबाद के प्रदेशों को जीतने का उद्योग कर रहा था। सम्राट ने उसको दण्ड देने के लिए अपने सेनापतियों को भेजा। जल्द थोड़े दिनों बाद खबर मिली कि बीजापुर के सुल्तान ने शाहजी को उसके विद्रोहात्मक कार्य में धन और जन से सहायता दी है। इस पर सम्राट् ने अविलम्ब दक्षिण पर भीषण आक्रमण करने का निश्चय कर लिया। उसने पहले बीजापुर और गोलकुण्डा के सुल्तानों के पास वश्यता स्वीकार करने, खिराज देने और अहमदनगर के मामलों में बिलकुल हस्तक्षेप न करने का आदेश भेजा। फिर वह स्वयं फरवरी १६३६ में दौलताबाद की ओर बढ़ा और विरोधी शक्तियों को दण्ड देने के लिए ५०,००० मनुष्यों की बहुत सेना सुसज्जित की। गोलकुण्डा के शासक ने डरकर अधीनता स्वीकार कर ली। उसने मुगल बादशाह का आधिपत्य स्वीकार किया और खुतबे और सिक्का में उसी का नाम रखना स्वीकार किया। उसे खुतबे में प्रथम तीन खलीफाओं के नाम सम्मिलित करने और उसमें से फारस के शाह का नाम हटा देने की शर्त भी माननी पड़ी।

शाहजहाँ ने बीजापुर के सुल्तान को वश्यता स्वीकार न करने के दुष्परिणाम का ध्यान दिलाया, लेकिन उसने कुछ उत्तर न दिया। तीन शाही सेनापतियों—खानजहाँ, खानजमाँ और खान-ए-दौरान ने तीन ओर से बीजापुर राज्य में प्रवेश किया। मुगल सेनाएँ राज्य में सब ओर लूटमार मचाने लगीं। हजारों मनुष्य पकड़-पकड़कर मार डाले गये और कई किलों पर मुगलों का अधिकार हो गया। दोनों पक्ष जल्द ही युद्ध से ऊब गये और संधि की चर्चा आरम्भ हुई। जो संधि हुई उसके अनुसार आदिलशाह ने दिल्ली का आधिपत्य स्वीकार किया और अहमदनगर के मामलों में तनिक भी हस्तक्षेप न करने की प्रतिज्ञा

की। अहमदनगर के प्रदेश को दोनों शक्तियों ने आपस में बाँट लिया, जिसमें बीजापुर को ८० लाख रुपये वार्षिक आय के ५० परगने मिले। बीजापुर के सुल्तान से बीस लाख रुपया सालाना खिराज माँगा गया और उसे गोलकुण्डा के राज्य से जिसने सम्राट् की वश्यता स्वीकार कर ली थी, छेड़-छाड़ न करने की चेतावनी दे दी गई। इस संधि में बीजापुर और शाहजी के संबंध को स्पष्ट करने के लिए एक शर्त जोड़ दी गई, जिसके अनुसार शाहजी द्वारा, उसने जिन निजामशाही किलों पर अधिकार कर लिया था, उन्हें सौंप देने से इनकार कर दिये जाने पर बीजापुर का राज्य न तो उसे नौकर रख सकता था और न उसके साथ किसी प्रकार की सहानुभूति ही दिखला सकता था। इस संधि ने बीजापुर के गर्वोन्मत्त मस्तक को अवनत कर दिया। बादशाह ने ११ जुलाई १६३६ को माडू से उत्तर की ओर कूच किया। उसने अपने तृतीय पुत्र औरंगजेब को जिसकी अवस्था केवल अठारह वर्ष की थी, दक्षिण भारत में अपना प्रतिनिधि बनाया।

औरंगजेब की दक्षिण की पहली सूबेदारी, जुलाई १६३६—मई १६४४—औरंगजेब निम्नलिखित चार सूबों का शासक नियुक्त किया गया—(१) दौलताबाद मय अहमदाबाद। इसका खास मुकाम पहले अहमदाबाद था, फिर दौलताबाद हो गया। यह दक्न का सूबा कहलाता था, (२) तिलगाना, (३) खानदेश, जिसका खास मुकाम बुरहानपुर और प्रधान दुर्ग असीरगढ़ था, (४) बरार जिसका खास मुकाम एलिचपुर और प्रधान दुर्ग ग्वालीगढ़ था। इन चारों सूबों में ६४ दुर्ग थे, और इनकी कुल मालगुजारी ५ करोड़ रुपये थी।

शाहजहाँ द्वारा भेजे गये सेनापतियों ने अहमदनगर के किलों पर अधिकार कर लिया और खानजमाँ ने शाहजी को वशीभूत कर लिया। वह जिस लड़के को निजामशाही गद्दी पर बैठाना चाहता था, वह मुगलों के हवाले कर दिया गया, जिन्होंने उसे कैदखाने में डाल दिया।

बगलाना का इलाका जिसमें ३४ परगने थे, औरंगजेब द्वारा जीत लिया गया। इसके शासक भारजी ने आत्मसमर्पण कर दिया, और इस शर्त पर मुगल सरकार की नौकरी ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की कि सुलतानपुर का

परगना उसके पास रहने दिया जाय। सम्राट् ने उसे ३००० जात और २५०० सवार का मनसबदार बना दिया और सुल्तानपुर की जागीर दे दी।

औरंगजेब का पदत्याग—राजधानी में एक असाधारण दुर्घटना हो गई जिसने औरंगजेब के पदत्याग का अवसर उपस्थित कर दिया। शाहजहां की योग्य, दयावती प्रिय पुत्री जहाँनारा जो बेगम साहिब के नाम से प्रसिद्ध थी और जिसने मुमताजमहल की मृत्यु के बाद अन्तःपुर में उसका अधिकार प्राप्त कर लिया था, २६ मार्च १६४४ की रात को चिराग की लौ से अपने बारीक मलमल के वस्त्र में आग लग जाने से बुरी तरह जल गई। मालूम होता था कि उसका बचना कठिन है। साम्राज्य भर से वैद्य और हकीम दवा करने के लिए इकट्ठे हुए, किन्तु उनके इलाज से लाभ होता न दिखाई पड़ा। बादशाह स्वयं शाहजादी की शय्या के पास उपस्थित रहता और अपने हाथों से दवा लगाता था। उसके अच्छी हो जाने की कामना से प्रतिदिन रुपयों का एक तोड़ा उस पर न्योछावर करके गरीबों को बांटा जाता था। सरकारी रकम हड़प कर जानेवाले अफसरों को क्षमा करके उन्हें बन्दीगृह से मुक्त कर दिया गया। चार महीने तक उसकी दशा चिन्ताजनक रही और नौ महीने में वह चंगी हुई। चिकित्सकों के यत्न से कुछ भी लाभ नहीं हुआ। अन्त में आरिफ नामक एक गुलाम के मरहम से लाभ पहुँचा और वह अच्छी हो गई। स्नेही पिता ने इस अवसर पर बड़ा उत्सव मनाया, गरीबों को बहुत सा धन बांटा और राज्य के अफसरों को उपहार दिये। आरिफ को उसके वजन भर सोने के मूल्य के बराबर रुपये, खिलअत, घोड़े और हाथी इनाम दिये गये।

औरंगजेब जहानारा को देखने के लिए मई में दक्षिण से आगरे आया। आगरा पहुँचने के तीन हफ्ते बाद शाहजहाँ ने उसे दक्षिण की सूबेदारी से अलग कर दिया और उसे उसके पद और जागीर से वंचित कर दिया। मुसलमान लेखक उसके इस दंड का कारण यह बतलाते हैं कि वह फकीराना जिन्दगी बिताने लगा था और बादशाह इसके नितान्त विरुद्ध था। कहा नहीं जा सकता कि वास्तविक कारण यही था या दूसरा।

अधिक युक्तिसंगत बात तो यह जान पड़ती है कि अपने विद्वेषी भाई सम्राट् के कृपापात्र दारा की विरोधी चालों से तंग आकर तथा अपमानित होकर

इस उच्चाकाक्षी तथा गर्वीले शाहजादे ने दक्षिण की सूबेदारी से इस्तीफा दे दिया, जिस पर क्रुद्ध होकर सम्राट ने उसे उसके पद और जागीर से वंचित कर दिया।

जहानारा की सिफारिश से उसे फिर सम्राट् की कृपा प्राप्त हुई और वह १६ फरवरी १६४५ को गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया गया, जहा उसने अपनी योग्यता का अच्छा परिचय दिया। दो वर्ष बाद वह सूबेदार बनाकर बलख और बदख्शा के सूबे में भेज दिया गया।

कन्धार पर अधिकार १६३७-३८—जहागीर के शासनकाल मे १६२२ ई० मे कधार को ईरानियो ने ले लिया था और तभी से यह उन्ही के हाथ म था। इस समय अलीमर्दानखा फारस की ओर से इसका हाकिम नियुक्त था। शाहजहाँ ने दक्षिण के झगडो से छुट्टी पाकर कन्धार की ओर ध्यान दिया। काबुल का सूबेदार सईदखा किले का और उसम स्थित सेना की शक्ति का हाल लाने के लिए भेजा गया। अलीमर्दान को किला मुगलो के हवाले कर देने के लिए प्रलोभन भी दिया गया। किन्तु वह अपनी राजभक्ति से विचलित न हुआ और किले को दृढ करने लगा और उसकी रक्षा के लिए तयारिया करने लगा। उसने फारस के शाह के पास सहायता के लिए सेना भेजने का लिखा, लेकिन शाह ने इसका दूसरा ही अर्थ लगाया। उसन समझा कि वह अपनी शक्ति बढाकर स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना चाहता ह । अलीमर्दान का जमानत के तौर पर अपने लडके को भेज देने का हुक्म दिया गया जिसका उसने अविलम्ब पालन किया। किन्तु शाह का सन्देह अब भी दूर नही हुआ और उसन सेना के साथ अपने एक सेनापति को प्रकट रूप से तो अलीमर्दान खाँ की सहायता करने के लिए, किन्तु वास्तव में उसे कद करके या उसका सिर काटकर लाने को भेजा। शाह को अपनी इस मूर्खता का फल भोगना पडा, अलीमर्दानखा ने सईदखा के पास बादशाह को यह खबर देने के लिए सन्देश भेज दिया कि वह किला सौप देने को राजी था। मुगलो की सेना ने कन्धार पर आक्रमण किया और आसानी से उस पर अधिकार कर लिया। ईरानी सनापति जो कन्धार से ६ कोह की दूरी पर पडाव डाले पडा था, मुगलो द्वारा हरा दिया गया, जिनके हाथ बहुत सा लूट का माल लगा। अलीमर्दान को सईदखाँ से एक लाख रुपये मिले और वह साम्राज्य का एक सरदार बना लिया गया। ईरानियो

तथा राजभक्ति के साथ सम्राट् की सेवा की। उसने शाहजहा को सिंहासन प्राप्त करने म बडी सहायता दी थी। अस्वस्थ होने से साम्राज्य की सेवा से अलग होकर वह १६४१ ई० मे लाहौर म परलोकवासी हुआ। जब वह मृत्युशय्या पर मरणासन्न पडा था, सम्राट् ने उसके घर पदार्पण किया। उस समय भी उसने अपनी राजनिष्ठा का परिचय दिया। उसने स्वेच्छा से अपने सारे जीवन की अर्जित विशाल संपत्ति सम्राट को भेंट कर दी। उसका लाहौर का भवन ही अकेले २० लाख की सम्पत्ति था। अन्य नगरो म भी उसकी शानदार इमारत थी। इनके अतिरिक्त उसके पास जवाहिरात और नकद मिला कर दो करोड पचास लाख का धन था, उसने सम्राट से इसे जब्त कर लेने की प्रार्थना की। इस विशाल सम्पत्ति में से सम्राट न उसकी सन्तानो को केवल २० लाख रुपये दिये और शेष सब सरकारी खजाने में ले लिया।

शाहजहाँ की मध्य एशिया की नीति—वर्तमान अफगानिस्तान के उत्तर आक्सस नदी और हिंदुकुश पर्वत श्रेणी के बीच बल्ख और बदख्शाँ के प्रान्त अवस्थित थे। मध्ययुग में ये प्रान्त न तो बहुत सभ्य ही थे, न समृद्ध ही। मगालो, उजबेगो और तुर्कमानो के दलो ने इन्हे उजाड दिया था। अपने पूर्ववर्ती मुगल ... मान शाहजहा की भी अपने पूर्वजो के इस प्रदेश को अपने अधिकार ... सदैव इच्छा थी। ये प्रान्त जिस बुखारा राज्य के अग थे, उसके ... फूट पड गई थी। ऐसी परिस्थिति में इन प्रान्तो का जीतना ... शाहजहा ने उन पर अधिकार करने का उद्योग किया। किन्तु ... अदूरदर्शितापूर्ण था। हिंदुकुश के पहाडी रास्ते से हिंदुस्तान ... बीहड प्रदेश को विजय करना और विजय करके अधिकार ... सान नही था। इस आयोजन की सफलता की आशा

...०००० सवार और १०००० पदल सेना और साम्राज्य के ... के साथ बल्ख के प्रान्त में दाखिल हुआ। मुगल ... के २ जुलाई १६४६ को बल्ख शहर म दाखिल हुई। ... नजर मुहम्मद फारस भाग गया था, लेकिन वहाँ सहा-... वह फिर लौट आया। वह अपनी सत्तर लाख की

और उनके सहायक अफगान फिरकों के साथ छोटी मोटी लड़ाइयों के बाद कंधार से शासित होनेवाला प्रदेश और ६० किले मुगलों के अधिकार में आ गये।

अलीमर्दान का दरबार में अच्छा स्वागत हुआ। बाद में वह काश्मीर का हाकिम नियुक्त हुआ और वह ६००० जात और ६००० सवार का मनसबदार बना दिया गया। सम्राट ने उसे बहुत धन दिया और स्वयं उसके घर पदार्पण करके उसे सम्मानित किया। काल की गति के साथ वह साम्राज्य की नौकरी में उन्नति करता गया। उसकी तरक्की ७००० जात और ७००० सवार के पद पर कर दी गई और वह काश्मीर के साथ ही पंजाब का भी सूबेदार बना दिया गया। रावी नदी से लाहौर तक ४९ कोस लम्बी नहर बनाने के लिए उसे अक्टूबर १६३९ ई० में सरकारी खजाने से एक लाख रुपये दिये गये।

सादुल्लाखाँ—सादुल्लाखाँ ने १६४० ई० में साम्राज्य की नौकरी ग्रहण की। पहले वह मासिक वेतन पाता था फिर एक मनसबदार हो गया। साल भर के अर्से में वह १००० जात और २००० सवार के पद पर पहुँच गया। बाद में वह गुसलखाने का दारोगा हो गया और फिर कुछ समय तक खानसामा रहा। उसकी योग्यता और ईमानदारी ने सम्राट का ध्यान आकर्षित किया और उसने प्रसन्न होकर उसे साम्राज्य का प्रधान वजीर बना दिया। सातवें बरस वह ७००० जात और ७००० सवार के दर्जे पर पहुँच गया और सम्राट ने उसे पाँच लाख रुपया नकद दिया। वह सम्राट् की दृष्टि में चढ़ता ही गया और इतना प्रभावशाली हो गया कि साम्राज्य का युवराज दारा भी उसके प्रभाव को ईर्ष्या की दृष्टि से देखता था। १६ वर्ष तक बड़ी निष्ठा से साम्राज्य की सेवा करने के बाद ७ अप्रल १६५६ को वह परलोकगामी हुआ।

आसफखाँ—आसफखाँ इतमादुद्दौला का पुत्र, नूरजहाँ का भाई और मुमताजमहल का पिता था। जहाँगीर के राज्य में उसका बड़ा प्रभाव तथा सम्मान था, किन्तु शाहजहाँ के गद्दी पर बैठने पर उसका सम्मान और भी बढ़ गया। उसे यमीनुद्दौला (राज्य का दाहिना हाथ) की उपाधि दी गई, और ५० लाख वार्षिक आय की जागीर दी गई। उन्नति करते-करते वह साम्राज्य का प्रधान वजीर हो गया और उसका मनसब, ९००० जात और ९००० सवार का कर दिया गया। वह असाधारण योग्यता का पुरुष था और उसने अपूर्व निष्ठा

तथा राजभक्ति के साथ सम्राट् की सेवा की। उसने शाहजहाँ को सिंहासन प्राप्त करने में बडी सहायता दी थी। अस्वस्थ होने से साम्राज्य की सेवा से अलग होकर वह १६४१ ई० मे लाहौर में परलोकवासी हुआ। जब वह मृत्युशय्या पर मरणासन्न पडा था, सम्राट ने उसके घर पदार्पण किया। उस समय भी उसने अपनी राजनिष्ठा का परिचय दिया। उसने स्वेच्छा से अपने सारे जीवन की अर्जित विशाल सपत्ति सम्राट् को भेंट कर दी। उसका लाहौर का भवन ही अकेले २० लाख की सम्पत्ति था। अन्य नगरो म भी उसकी शानदार इमारत थी। इनके अतिरिक्त उसके पास जवाहिरात और नकद मिला कर दो करोड पचास लाख का धन था, उसने सम्राट् से इसे जब्त कर लेने की प्रार्थना की। इस विशाल सम्पत्ति म से सम्राट् ने उसकी सन्तानो को केवल २० लाख रुपये दिये और शेष सब सरकारी खजाने में ले लिया।

शाहजहाँ की मध्य एशिया की नीति—वर्तमान अफगानिस्तान के उत्तर आक्सस नदी और हिन्दूकुश पर्वत श्रेणी के बीच बलख और बदख्शाँ के प्रान्त अवस्थित थे। मध्ययुग म ये प्रान्त न तो बहुत सभ्य ही थे, न समृद्ध ही। मगोलो, उजबगो और तुर्कमानो के दलो ने इन्हे उजाड दिया था। अपने पूर्ववर्ती मुगल सम्राटो के समान शाहजहा की भी अपने पूर्वजो के इस प्रदेश को अपने अधिकार में लाने की हार्दिक इच्छा थी। ये प्रान्त जिस बुखारा राज्य के अग थे, उसके राजपरिवार में फूट पड गई थी। ऐसी परिस्थिति मे इन प्रान्तो को जीतना आसान समझकर शाहजहा ने उन पर अधिकार करने का उद्योग किया। किन्तु सम्राट का यह कार्य अदूरदर्शितापूर्ण था। हिन्दूकुश के पहाडी रास्ते से हिन्दुस्तान से फौज ले जाकर इस बीहड प्रदेश को विजय करना और विजय करके अधिकार म रख सकना कुछ आसान नही था। इस आयोजन की सफलता की आशा करनी मूर्खता थी।

शाहजहा मुराद ५०००० सवार और १०००० पैदल सेना और साम्राज्य के कई परम प्रसिद्ध सेनापतियो के साथ बल्ख के प्रान्त में दाखिल हुआ। मुगल सेना बिना किसी बाधा के २ जुलाई १६४६ को बलख शहर मे दाखिल हुई। बुखारा राज्य का शासक नजर मुहम्मद फारस भाग गया था, लेकिन वहाँ सहायता पाना कठिन देखकर वह फिर लौट आया। वह अपनी सत्तर लाख की

और उनके महायक अफगान फिरका के साथ छोटी मोटी लडाइया के बाद ब खार से शासित हानेवाला प्रदेश और ६० किले मुगलो के अधिकार में आ गय।

अलीमर्दान का दरबार में अच्छा स्वागत हुआ। बाद में वह काश्मीर का हाकिम नियुक्त हुआ और वह ६००० जात और ६००० सवार का मनसबदार बना दिया गया। सम्राट ने उसे बहुत धन दिया और स्वय उसके घर पदार्पण करके उसे सम्मानित किया। काल की गति के साथ वह साम्राज्य की नौकरी में उन्नति करता गया। उसकी तरक्की ७००० जात और ७००० सवार के पद पर कर दी गई और वह काश्मीर के साथ ही पजाब का भी सूबेदार बना दिया गया। रावी नदी से लाहौर तक ४९ कोह लम्बी नहर बनाने के लिए उस अक्टूबर १६३९ ई० में सरकारी खजाने से एक लाख रुपये दिये गये।

सादुल्लाखाँ—सादुल्लाखा न १६४० ई० में साम्राज्य की नौकरी ग्रहण की। पहले वह मासिक वेतन पाता था, फिर एक मनसबदार हो गया। साल भर के अर्से में वह १००० जात और २००० सवार के पद पर पहुच गया। बाद म वह गुसलखाने का दारोगा हो गया और फिर कुछ समय तक खानसामा रहा। उसकी योग्यता और ईमानदारी न सम्राट का ध्यान आकर्षित किया और उसने प्रसन्न होकर उस साम्राज्य का प्रधान वजीर बना दिया। सातव वरस वह ७००० जात और ७००० सवार के दर्जे पर पहुँच गया और सम्राट ने उसे पाच लाख रुपया नकद दिया। वह सम्राट की दृष्टि म चढता ही गया आर इतना प्रभावशाली हो गया कि साम्राज्य का युवराज दारा भी उसके प्रभाव को ईर्ष्या की दृष्टि स देखता था। १६ वष तक बडी निष्ठा से साम्राज्य की सेवा करने के बाद ७ अप्रैल १६५६ को वह परलोकगामी हुआ।

आसफखाँ—आसफखाँ इतमादुद्दौला का पुत्र, नूरजहा का भाई और मुमताजमहल का पिता था। जहागीर के राज्य में उसका बडा प्रभाव तथा सम्मान था, किन्तु शाहजहा के गद्दी पर बठने पर उसका सम्मान और भी बढ गया। उसे यमीनुद्दौला (राज्य का दाहिना हाथ) की उपाधि दी गई, और ५० लाख वार्षिक आय की जागीर दी गई। उन्नति करते-करते वह साम्राज्य का प्रधान वजीर हो गया और उसका मनसब, ९००० जात और ९००० सवार का कर दिया गया। वह असाधारण योग्यता का पुरुष था और उसन अपूर्व निष्ठा

तथा राजभक्ति के साथ सम्राट् की सेवा की। उसने शाहजहा को सिंहासन प्राप्त करने में बडी सहायता दी थी। अस्वस्थ होने से साम्राज्य की सेवा से अलग होकर वह १६४१ ई० में लाहौर म परलोकवासी हुआ। जब वह मृत्युशय्या पर मरणासन्न पडा था, सम्राट ने उसके घर पदार्पण किया। उस समय भी उसने अपनी राजनिष्ठा का परिचय दिया। उसने स्वच्छा से अपने सारे जीवन की अर्जित विशाल सपत्ति सम्राट् को भेंट कर दी। उसका लाहौर का भवन ही अकेले २० लाख की सम्पत्ति था। अन्य नगरो म भी उसकी शानदार इमारत थी। इनके अतिरिक्त उसके पास जवाहिरात और नकद मिला कर दो करोड पचास लाख का धन था, उसने सम्राट से इसे जब्त कर लेने की प्रार्थना की। इस विशाल सम्पत्ति म से सम्राट् ने उसकी सन्तानो को केवल २० लाख रुपये दिये और शेष सब सरकारी खजाने में ले लिया।

शाहजहाँ की मध्य एशिया की नीति—वर्तमान अफगानिस्तान के उत्तर आक्सस नदी और हिन्दुकुश पर्वत श्रेणी के बीच बलख और बदखशाँ के प्रान्त अवस्थित थे। मध्ययुग म ये प्रान्त न तो बहुत सभ्य ही थे, न समृद्ध ही। मगोलो, उजबगो और तुर्कमानो के दलो ने इन्हे उजाड दिया था। अपने पूर्ववर्ती मुगल सम्राटो के समान शाहजहा की भी अपने पूर्वजो के इस प्रदेश को अपने अधिकार में लाने की हार्दिक इच्छा थी। ये प्रान्त जिस बुखारा राज्य के अग थे, उसके राजपरिवार में फूट पड गई थी। ऐसी परिस्थिति में इन प्रान्तो को जीतना आसान समझकर शाहजहा ने उन पर अधिकार करने का उद्योग किया। किन्तु सम्राट का यह कार्य अदूरदर्शितापूर्ण था। हिन्दुकुश के पहाडी रास्ते से हिन्दुस्तान से फौज कनार इस बीहड प्रदेश को विजय करना और विजय करके अधिकार मे रख सकना कुछ आसान नही था। इस आयोजन की सफलता की आशा करनी मूर्खता थी।

शाहजहाँ मुराद ५०००० सवार और १०००० पैदल सेना और साम्राज्य के कई परम प्रसिद्ध सेनापतियो के साथ बल्ख के प्रान्त में दाखिल हुआ। मुगल सेना बिना किसी बाधा के २ जुलाई १६४६ को बल्ख शहर म दाखिल हुई। बुखारा राज्य का शासक नजर मुहम्मद फारस भाग गया था, लेकिन वहाँ सहायता पाना कठिन देखकर वह फिर लौट आया। वह अपनी सत्तर लाख की

विशाल सम्पत्ति मुगल सेनाओ द्वारा लूटे जाने को छोड गया था। लेकिन उसके भागने के बाद जो गडबडी मची, उसमें मुगल केवल १२ लाख रुपये, २५०० घोडे और ३०० ऊँट ही हस्तगत कर सके। मुराद का मन जिसमें दृढ इच्छा शक्ति की कमी थी, वहाँ उदास हो गया। वह हिंदुस्तान के मैदानो के आनन्द के लिए तरसने लगा और वहा से लौट आने के लिए उसने बादशाह की आज्ञा माँगी। उसके अफसर भी पहाडी देश मे ठहरना नही चाहते थे। सम्राट् के बारबार रोकने पर भी शाहजादा हिंदुस्तान के लिए चल पडा। सादुल्लाखा को फौरन बल्ख जाने की आज्ञा मिली। उसने शाही अफसरो को महत्त्वपूर्ण केन्द्रो में अवस्थित किया और २२ दिनो मे समूचे प्रदेश का बन्दोबस्त करके काबुल लौट आया। मुराद का पद छीन लिया गया और उसका दरबार में आना रोक दिया गया।

इस बीच में सम्राट ने एक शक्तिशाली आक्रमण की तयारी की। शुजा और औरगजेब सैन्य-सचालन के लिए अपने प्रान्तो से बुलाये गये। इस मुहिम के लिए दिल खोलकर धन खर्च किया गया, और सम्राट स्वय युद्ध का सचालन करने के लिए काबुल आ पहुँचे।

मुगल सेनाओ का प्रधान अध्यक्ष औरगजेब नियुक्त हुआ। उसकी स्थिति वैसी दृढ नही थी जसी शत्रु की। उजबेग सैन्य की सख्या १००००० थी और मुगल सेना में सिर्फ २५००० सिपाही थे। उजबेगो की युद्ध-पद्धति से मुगलो की कठिनाइयाँ और भी बढ गई थी उजबेग लोग खुले युद्ध में सामना करने का साहस नही करते थे उनकी कज्जाकी युद्ध-पद्धति के आगे मुगलो का कोई बस नही चलता था। किन्तु औरगजेब हिम्मत हारनेवाला मनुष्य नहा था। पहले युद्ध में मुगलो और राजपूतो की गोलियो की वर्षा के आगे उजबेगो ने पीठ दिखा दी। उन्होने मुगलो पर फिर आक्रमण किया, लेकिन उन्हे बुरी तरह हार खानी पडी। औरगजेब ने शान के साथ बल्ख में प्रवेश किया और उस नगर को राजपूत सरदार मधुसिंह हाडा के अधिकार मे छोडकर वहा से उजबेगो का दमन करने के लिए अक्चा' की ओर बढा। मुगल सेना सब प्रकार की कठिनाइयो और उजबेगो के आक्रमणो का मुकाबला करती हुई आगे बढती जा रही थी। इतने मे खबर मिली कि उस नगर के उद्धार के

लिए एक बहुत बड़ी सेना बुखारा से आ रही थी, औरंगजेब चटपट सेना के साथ लौट पड़ा। बुखारा के योग्यतम सेनापतियों द्वारा सचालित उजबेग सेना से मुठभेड हुई जिसमे मुगलो के भीषण आक्रमण के आगे शत्रु सेना ठहर न सकी। शत्रु की शक्तिमत्ता से कायल होकर बुखारा के बादशाह ने सधि की चर्चा चलाई और औरंगजेब सकुशल बल्ख पहुँच गया। इस सफलता का श्रेय औरंगजेब की प्रशसनीय कष्टसहिष्णुता तथा वीरता को है। उसे घमासान युद्ध में खून से रंगान जमीन पर दरी बिछाकर रणकोलाहल में शान्तिपूर्वक नमाज पढ़ते देखकर बुखारा का शासक भी उसके अविचलित साहस पर दग रह गया था।

युद्ध समाप्त हो गया, किन्तु स्थायी सधि की शर्ते ठीक होती नजर नही आती थी। शाहजहा नजर मुहम्मद को उसका देश लौटा देने का तयार था लेकिन उसमे अधीनता स्वीकार करने की शर्त पर अडा हुआ था जिसके लिए वह तैयार नही था। अन्त मे तीन महीने बाद उसने अपने पोतो को शाहजादे का सेवा में उपस्थित होने के लिए भेजा और अपने लिए बीमारी के कारण क्षमा चाही। औरगजब लौट जाने की जल्दी में था, उसने नजर मुहम्मद के पोता को बल्ख का शहर और किला सौंप दिया और हिन्दुस्तान की यात्रा की तयारी कर दी। मुगल सेना काबुल की ओर चली। राह में हजारा नाम के पहाडी फिरके ने इस पर आक्रमण किया। शाहजादा और उसके साथी तो बर्फीले रास्ते को पार करके काबुल पहुँच गये, लेकिन राजपूतो को जो पीछे रह गये थे, अकथनीय कष्ट झेलने पड। उस वर्फीले रास्ते में हजारो आदमी और जानवर मर-खप गये।

मुगल-सम्राट् की महत्त्वाकाक्षा द्वारा प्रेरित इस विजय यात्रा का परिणाम घोर विफलता के अतिरिक्त और कुछ नही हुआ। जमा सर जदुनाथ सरकार लिखते ह, इसके लिए दो वर्षो में दो करोड रुपये व्यय हुए और अधिकृत प्रदेश से केवल २२½ लाख वसूल हुए। इससे साम्राज्य की सीमा में एक इच भी धरती नही बढ़ी और न बल्ख के राजवश मे ही कोई परिवर्तन हो सका। बल्ख के किले में सचित ५ लाख का अन्न तथा दूसरे किलो में की रसद एव बुखारावालो की भेंट हुई, इसके अतिरिक्त ५०००० रुपये नजर मुहम्मद को और २२५००० रुपये उसके पोतो को उपहार में दिये गये। पाँच सौ सनिक युद्ध

में मारे गये और दसगुने शीत और बर्फीले पहाडी रास्ते म भेंट चढे। यह सब अपरिणामदर्शी सम्राट की एक शौक की भेंट चढ गया।

फीरोजशाही नहर—सुलतान फीरोज तुगलक ने खिज्राबाद के नजदीक जमुना नदी से अपने शिकारगाह सफीदून तक एक नहर बनवाई थी। उसके मरने पर देख भाल न होने से यह बेकाम हो गइ थी। फिर अकबर के शासन काल म दिल्ली के हाकिम शहाबुद्दीन अलीपा न इसकी मरम्मत करवा दी और यह नहरे शहाब (शहाब की नहर) कहलाने लगी। यह फिर देख भाल न होने से बेकाम हो गई थी। शाहजहाँ के हुक्म से यह दुरुस्त कर दी गइ और सफीदून से शाही महल तक तीस कोस लम्बी एक नई नहर तयार की गई, जिसका नाम नहरे बहिश्त रखा गया।

कन्धार का हाथ से निकल जाना—जसा ऊपर लिखलाया जा चुका ह, १६३८ ई० म ईरानी हाकिम अली मर्दानखा न कन्धार को मुगला के हाथा में साप दिया था। लेकिन ईरानी इसे फिर प्राप्त करने की आशा त्यागने के लिए तैयार नही थे। शाह अब्बास ने जो फारस की गद्दी पर १६४२ में बठा, कधार को फिर प्राप्त करने का बृहत् आयोजन किया। जब जाडा आने लगा ता उसने स्वय कधार की ओर बढन का इरादा किया, क्याकि वह अच्छी तरह जानता था कि जाडा में बरफ के गिरने से कन्धार की सहायता के लिए हिदुस्तान से मदद नही मिल सकेगी। जब शाहजहा को फारस के शाह की तयारियों की खबर मिली तो उसने अपने सरदारा से इस विषय में राय ली। उन विलासिताप्रिय सरदारों ने जाडे भर के लिए सेना की यात्रा राक देन की राय दी। बादशाह ने भी उनकी सलाह मान ली, और इसका फल यह हुआ कि फारस की सेनाआ ने जाडे के कष्टो की परवाह न करके किले पर अधिकार जमा लिया। दुगम्थ मुगल सनिको ने ५७ दिन तक बडी वीरता से युद्ध किया, लेकिन जब उन्हाने हिन्दुस्तान से सहायता आते न देखा, तो ११ फरवरी १६४९ को आत्मसमपण कर दिया।

यदि दुगम्थ सेना का अध्यक्ष दौलत खाँ कुछ दिन और डट जाता ता ईरानियो को रसद की कमी से घेरा उठा लेना पडता। लेकिन उसमें सेनानायक के उच्च गुण नही थे। वह अपने आदमियो में अनुशासन स्थापित न कर सका। किन्तु

कन्धार के पतन का वास्तविक उत्तरदायित्व शाहजहा और उसके आराम-तलब दरबारियो को है जिन्हे साम्राज्य की सेवा की अपेक्षा अपने आराम की अधिक चिन्ता थी।

कन्धार का पहला घेरा, १६४६ ई०—शाहजहाँ ने कन्धार लेने के लिए औरगजेब के अधीन एक बहुत बडी सेना भेजी जिसमें ६०००० सवार और १०००० पदल सिपाही थे। सेना के साथ सादुल्ला खा भी था। सम्राट् ने सिपाहियो और सरदारो को उत्साहित करने के लिए उन्हे खत रुपये दिये। जिन मनसबदारो को जागीरें मिली थी, उन्हे फी सवार सौ रुपये दिये गये, और जिन्हे मासिक वेतन मिलता था, उन्हे तीन महीने की तनख्वाह पहले दे दी गई। औरगजेब मुल्तान से और सादुल्लाखा लाहौर से काबुल पहुँचा। वहा से गजनी होते हुए ये कन्धार की ओर बढे। सम्राट भी युद्ध का सचालन करने के लिए काबुल आ गय। फारसवालो ने किले की रक्षा करने की पूरी तैयारी कर ली थी। उनके पास तोपो की एक बहुत बडी सख्या थी और मुगलो के पास बहुत कम तोपें थी। ईरानियो ने मुगलो पर खूब गोलाबारी की जिसके सामने उनसे कुछ करते न बन पडा। फिर भी रुस्तम खाँ ने ईरानी सेना के मध्य भाग पर आक्रमण करके बहुत से सैनिको को मार डाला। तीन महीने बीस दिन के असफल घेरे के बाद सम्राट न औरगजेब को कन्धार से लौट आने की आज्ञा दी। जाडे के आ पहुँचने से और दुरस्थ सेना की सहायता के लिए ईरानियो की एक २०००० की सेना के आने की खबर सुनकर शाहजादे ने किले का घेरा उठा लेने में देर नही लगाई।

कन्धार का दूसरा घेरा, १६५२ ई०—पहले घेरे की असफलता से औरगजेब के दिल पर बडी चोट लगी थी। इससे साम्राज्य की प्रतिष्ठा को बहुत धक्का लगा था। शाहजादे ने दूसरी चढाई म अपनी असफलता के कलक को धोकर अपना सम्मान पूर्ववत् स्थापित करने का निश्चय किया। शाहजहा ने भी पहली असफलता से सबक सीखा था। उसने दूसरी चढाई के लिए नई तोपें ढलवाई। इस बार सेना के साथ ३० बडी और २० छोटी तोपें भेजी गई। फिर शाहजादा औरगजेब के सचालन में एक बडी सेना कन्धार पर आक्रमण करने के लिए भेजी गई, जिसमें ५० हजार सवार और १० हजार पैदल सिपाही

थे। शाहजादे के साथ सादुल्ला खाँ और रुस्तम खा जसे सेनापति भी भेजे गये थे। इस सेना के साथ तोपो के सिवाय जगी हाथी, ऊँट और दुग विजय म उपयोगी और सामान भी थे। इस मुहिम के खर्चे के लिए सम्राट ने दो करोड रुपये मजूर किये थे, और आक्रमणकारी सेना की सहायता के लिए ५० हजार आदमियो के साथ वह स्वय काबुल में जा डटा।

किले का घेरा दूसरी मई १६५२ ई० को आरम्भ हुआ। ईरानिया के पास एक बहुत अच्छा तोपखाना था और उनके तोपची भी होशियार थे। मुगल के तोपची कुशल नही थे, वे किले की दीवारो को तोडने में सफल न हो सके। राजा राजरूप ने अपने सनिका के साथ परकोटे पर चढने का उद्योग किया लेकिन शत्रु की गोलाबारी न उस बार के प्रयत्न निष्फल कर दिये। ईरानियो की लगातार गोलेबारी से मुगलो के बहुत से सिपाही मारे गय। पौरुष द्वारा अकृतकाय होने पर मुगलदल ने दुर्गाध्यक्ष को धन का प्रलोभन दिया। उसने उत्तर दिया—उनके द्वारा किसी प्रकार दुग की परिस्थिति कमजोर कर दिये जाने पर उसके लिए विश्वासघात का विचार करने का समय आवेगा। मुगलो न लाख कोशिश की लेकिन वे किले की दीवार कही पर तोड न सके। घेरा आरम्भ किये दो महीने आठ दिन बीत गये, लेकिन उन्हे सफलता की कोई सूरत नजर नही आई।

सफलता की आशा न रहने और सामान समाप्त हो चलन के कारण शाहजहाँ ने घेरा उठा लेने की आज्ञा दी। सादुल्ला खाँ ने घेरे के जारी रखने में मुगल सेना की सभावित भावी दुगति की ओर सम्राट का ध्यान दिलाया था। औरगजब ने किला लेने के लिए और उद्योग करने की आज्ञा मागी। वह अपना कलक धो देना और अपने पर फब्तिया छोडनेवाले दरबार के अपने विरोधी दल का मुह बद कर देना चाहता था। सम्राट् ने उसकी नियुक्ति दक्षिण की सूबेदारी के लिए कर दी, वह कधार लेने के प्रयत्न में अपन उस पद से हाथ धोने के लिए भी तयार था। [illegible] को कधार ले सकने की उसकी योग्यता में विश्वास नही [illegible] घेरा जारी रखने की आज्ञा नहीं मिली। उसे सन् १६५[illegible] म दक्षिण की सूबेदारी का काय सँभालने के लिए वहाँ से

कन्धार का तीसरा घेरा, १६५३ ई०—दारा अपने प्रतिद्वन्द्वी भाई की असफलता पर बडा प्रसन्न हुआ। उसने उसे और नीचा दिखलाने के लिए खुद कन्धार पर चढाई करने के लिए सम्राट् की आज्ञा मागी। उसकी प्रार्थना स्वीकृत हो गई और सामरिक ख्याति प्राप्त करने के लिए वह खूब मन लगा कर कन्धार की चढाई की तैयारी करने लगा। वह डीग मारने लगा कि वह एक हफ्ते मे कन्धार ले लेगा जिसमें औरगजेब दो दो वार असफल हो चुका था।

इस चढाई के लिए जो सेना तयार की गई उसम ७० हजार मनसबदारो के सवार, ५ हजार पैदल, ३ हजार अहदी, और १० हजार तोपची, ६ हजार सुरग खादनेवाले और ५०० सगतराश थे। हथियार और गोला वारूद खूब इकट्ठा किया गया। तोपखाने पर विशेष ध्यान दिया गया। बडी और छोटी सब मिलाकर ६० तोप तयार की गई। मीर आतिश ने ५० हजार तोप के गोले बनवाए और ५००० मन बारूद, २५०० मन सीसा और १४००० राकेट सग्रह कर लिये। इस बार लडाई का सामान जुटाने में कोई कसर न रखी गई। साठ जगी हाथी भी ले लिये गये। सम्राट् ने इस मुहिम के लिये एक करोड रुपये मजूर किये। सब प्रकार से सुसज्जित होकर दारा, जिसे शाह बुलन्द इकबाल की उपाधि मिली थी, २२ नवम्बर १६५२ को काबुल के लिये रवाना हुआ। रुस्तम खा, बहादुर नजाबत खा और कासिम खा ३००० सवारो की हरावल सेना के साथ पहुँचते ही घेरा शुरु कर देन की आज्ञा के साथ पहले ही रवाना हो चुके थे। मुगल सेना ने बडी वीरता तथा पराक्रम के साथ किले पर आक्रमण किया, किन्तु शत्रु ने हर बार मुहतोड जवाब देकर उन्हे पीछे हटा दिया। मुगलो ने एक बार फिर पाचवी दफे नये उत्साह के साथ जोर लगाया। दोनो ओर से खूब गोलाबारी हुई जिसमे मुगलो के बहुत से आदमी मारे गये।

दरबार में चापलूस मुसाहिबो से घिरा रहनेवाला दारा आसानी से किला फतह कर लेने का स्वप्न देखा करता था। अब मैदान में आ जाने पर उसका स्वप्न टूट गया और उसने देख लिया कि किला जीतना और औरगजेब को नीचा दिखाना सरल नही था। घेरा आरभ किये सात महीने बीत गये

थे, मुगल सफलता से सब प्रकार से निराश हो गये थे, उनका सामान भी अब समाप्त हो चला था। अन्त में हार मानकर इस बार भी उन्हें घेरा उठा लेना पड़ा।

कन्धार के इन तीन घेरों के लिए सरकारी खजाने से करीब १२ करोड़ रुपये खर्च हुए तथा मनुष्यों और पशुओं का भयंकर संहार हुआ। इनसे साम्राज्य की सीमा में एक इंच भी जमीन नहीं बढ़ी और मुगल साम्राज्य की प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा उसकी सामरिक शक्ति की धाक उठ गई। फारसवालों के हृदय में मुगल साम्राज्य के विरुद्ध सफलता की आशाएँ उठने लगी, और भारत पर उत्तर-पश्चिम मार्ग से फारस के आक्रमण का भय आरंभ हो गया।

औरंगजेब की दक्षिण की सूबेदारी—औरंगजेब ने सम्राट के आज्ञानुसार नवम्बर १६५३ ई० में दक्षिण की सूबेदारी का भार लिया। मई १६४४ में उसके पदत्याग के समय से नौ वर्षों में दक्षिण के सूबों की अवस्था बहुत बिगड़ गई थी। थोड़े-थोड़े समय के बाद ही जो सूबेदार नियुक्त हुए थे उन्होंने रिआया से निर्दयतापूर्वक धन चूस लिया था, लेकिन कृषि की उन्नति के लिए कुछ नहीं किया था। खेती चौपट हो गई थी जिससे राज्य की आय बहुत घट गई थी। दक्षिण के चारों प्रान्तों की आमदनी उनके खर्चे के लिए भी पूरी नहीं पड़ती थी। लेखे के अनुसार इन सूबों की आय तीन करोड़ ६२ लाख रुपये थी, लेकिन व्यवहार में एक करोड़ से शायद ही कभी अधिक होता था। सूबेदार और उनके लड़के जिन्हें जागीरें मिली हुई थीं, बहुत बड़ी रकमें हजम कर जाते थे जिसका फल यह होता था कि शासन-प्रबंध का खर्च दूसरे सूबों की आमदनी से पूरा करना पड़ता था।

जब औरंगजेब ने दक्षिण की सूबेदारी का भार ग्रहण किया तो उसने अपने को एक बड़े कठिन आर्थिक संकट में पाया। उसने देखा कि जागीरों की आमदनी जागीरदारों के रहने और उनके सिपाहियों के खर्चे के लिए काफी नहीं थी, इसलिए उनकी जागीरें बढ़ानी पड़ी। सरकारी लगान का सिर्फ दसवाँ हिस्सा वसूल हो पाता था। ऐसी परिस्थिति में औरंगजेब को शासन का प्रबंध चलाने के लिए दौलताबाद के किले में संचित खजाने में हाथ लगाना

पडा। दो वर्षों में उसने इसमें से ४० हजार रुपये खर्च किये। उसने सम्राट् से प्रार्थना की कि उपजाऊ जागीरें जो अयोग्य अफसरों के अधिकार में थी उसे दी जायें। सम्राट ने उसकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली, इस पर जागीरदारों ने शाहजादे पर स्वार्थपरता का दोष लगाया, लेकिन शाहजादे ने फिर सम्राट को यह विश्वास दिला दिया कि उसकी प्रार्थना का वास्तविक उद्देश्य उसके सूबे की सुव्यवस्था थी, न कि उसकी व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि। इसके बाद जिन जागीरदारों की जागीर ले ली गई थी उन्होंने सम्राट से यह शिकायत की कि शाहजादे ने उनके साथ ज्यादती की थी और अनुचित रूप से अपने प्राप्य से अधिक आय की जागीरें प्राप्त कर ली थी। इस दोषारोपण पर विश्वास करके शाहजहाँ ने औरंगजेब को डाँट बताई और उसे असीर के परगने में पचास हजार रुपये आमदनी की कम उपजाऊ जमीन लेने का और उतनी ही नकद आमदनी घटाने का हुक्म दिया। शाहजादा इस आज्ञापत्र से भयभीत नहीं हुआ और इसके विरोध में उसने एक आत्मसम्मानपूर्ण अर्जी लिखकर भेज दी।

आर्थिक स्थिति के सुधरते ही औरंगजेब ने कृषकों की दशा सुधारने और कृषि का विस्तार बढ़ाने की ओर ध्यान दिया। शाहजहाँ ने जो इस कार्य की कठिनाइयों को नहीं समझता था, उसे सुस्त ठहराया और उसकी आय कम करने की धमकी दी। किन्तु शाहजादा अपने प्रयत्न में लगा रहा। इस कार्य में उसे मुर्शिदकुली खाँ से, जो एक असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न मनुष्य था, बहुत सहायता मिली।

मुर्शिदकुली खाँ का बन्दोबस्त लगान—दक्षिण का सूबा मालगुजारी के इन्तजाम के लिए दो हिस्सों में बँटा हुआ था—एक पैनघाट और दूसरा बालाघाट। पहले में समूचा खानदेश और बरार का आधा हिस्सा शामिल था और दूसरे में शेष प्रदेश सम्मिलित थे। इन दोनों भागों में से हर एक का अलग दीवान था, जो उसका लगान वसूल करता था और उसके आय-व्यय की देखभाल करता था। मुर्शिदकुली खाँ जो बालाघाट का दीवान था, एक प्रतिभासम्पन्न परम सुयोग्य तथा उत्साही प्रबन्धकर्त्ता था। उसने टोडरमल के लगान के बन्दोबस्त के तरीके को दक्षिण में प्रचलित किया। जमीन की पैमाइश के

लिए और बोई जानेवाली जमीन का क्षेत्रफल निश्चित करने के लिए अमीरों और आमिलो को नियुक्त किया। गावो मे मुकद्दम नियुक्त किये गये जो लगान की वसूली में सहायता पहुँचाते थे और गाव के निवासियो के हितों की देख रेख करते थे। गरीब किसान को बीज और बैल खरीदने के लिए रुपये उधार दिये गये जिन्हे वे किस्तो में लौटा सकते थे। पहले प्रचलित बन्दोबस्त लगान के अव्यवस्थित तरीके से सरकार को बडा नुकसान होता था। मुर्शिदकुली खाँ ने लगान के बन्दोबस्त के लिए तीन विधियां प्रयुक्त की। पहला, फी हल राज्य का भाग निश्चित करने की पुरानी विधि कुछ पिछडे हुए प्रदेशों मे जारी रक्खी गई। अधिक उपजाऊ जमीन का फी हल अधिक लगान लिया जाता था और कम उपजाऊ जमीन का कम। यह विधि कामचलाऊ थी। इसमे लगान का ठीक-ठीक निश्चय नही हो सकता था। दूसरी विधि बटाई की थी जिसमे उपज का एक निश्चित भाग लगान में लिया जाता था। जहा उपज बिलकुल वर्षा पर निर्भर थी, वहाँ उसका आधा भाग लगान में लिया जाता था और जहा कुएँ से सिंचाई होती थी, खरीफ और रबी फसलो का एक तिहाई लगान लिया जाता था। लेकिन अगूर, ईख और दूसरी महँगी फसलो में सिचाई की सुविधाओ या कठिनाइयो और फसल तयार होने में लगनेवाले समय के विचार से उपज के दसवे से नवे हिस्से तक लगान लिया जाता था। और जो जमीन नहरो, तालाबो और नदियो से सीची जाती थी, उसका लगान कही कुओ से सीची जानेवाली जमीन से अधिक और कही कम लिया जाता था। तीसरी विधि जरीब की थी जो उत्तर भारत में प्रचलित थी। जमीन की पमाइश की गई और बोई हुई फसल की किस्म के अनुसार फी बीघा लगान नियुक्त किया गया। बन्दोबस्त लगान के इस सुव्यवस्थित तरीके का अभीष्ट फल हुआ। खेती की दशा बहुत सुधर गई। किसान सुखी तथा सन्तुष्ट हो गये। राज्य के कार्यकर्ताओ की ज्यादतियाँ दूर हो गइ और दक्षिण का सूबा बहुत समृद्ध हो गया।

गोलकुण्डा के साथ युद्ध—दक्षिण के गोलकुडा और बीजापुर के राज्यो पर मुगल सम्राट की नजर लगी हुई थी। उनकी अगाध सम्पत्ति देखकर सम्राट के मुह में पानी भर आया था, वह उनकी स्वतत्रता को देख नहीं सकता

था। इसके अतिरिक्त इन राज्यो के शासको का शिया मत का अनुयायी होना सुन्नी सम्राट् के रोष का एक विशेष कारण था। इन साधारण बातो के अतिरिक्त गोल्कुड पर मुगलो की क्रूर-दृष्टि के अन्य कारण भी थे। गोलकुडा के सुलतान ने अपना खिराज नही दिया था। इस पर औरगजब ने उसे यह जताया कि यदि वह बकाया खिराज देने में असमर्थ है तो उसके बदले में उसे अपने राज्य का एक भाग ही मुगल सरकार को समर्पित कर देना चाहिए। सुल्तान द्वारा कर्नाटक की विजय सम्राट ने स्वीकृत नही की और इस दोष में उससे एक भारी जुर्माना मागा गया। किन्तु युद्ध आरभ होने का कारण सिद्ध हुआ सुल्तान का अपने मत्री मीर जुमला के प्रति व्यवहार जिसने अपने स्वामी के क्रोधानल से बचने के लिए मुगलो की शरण मागी।

मीरजुमला का वृत्तान्त—मीर मुहम्मद सयद जो मीर जुमला के नाम से प्रसिद्ध है अर्दिस्तान का अधिवासी और इस्फहान के सैयद कुल का वशज था। वह एक जवाहिरात के व्यापारी के रूप मे हिन्दुस्तान आया और उसी के साथ गोल्कुड गया। अपने स्वामी की मत्यु के पश्चात जो उसे अपने पुत्र के समान मानता था मीर मुहम्मद उसकी विशाल सम्पत्ति का उत्तराधिकारी हुआ। अपने व्यापार की सफलता से थोडे ही काल में वह बडा समृद्ध हो गया, जिससे गोल्कुडा के शासक अब्दुल्ला कुतुबशाह का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ और उसकी योग्यता पर प्रसन्न होकर सुलतान ने उसे अपना प्रधान मत्री बना लिया। मीर जुमला एक साधारण योग्यता सम्पन्न पुरुष था, उसमे राज्यप्रबध तथा सैन्यसचालन की ईश्वरदत्त प्रतिभा थी जिसके बल से वह शीघ्र ही सुल्तान का बडा विश्वासपात्र हो गया जो उसे राज्य के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्यों का भार सौपने लगा।

उसने कर्नाटक जीत लिया और चन्द्रगिरि के राजा को बुरी तरह पराजित किया। दक्षिण के मन्दिरो को लूटकर और अपने स्वामी के राज्य की खानो को खुदवाकर उसने अपना धन बहुत बढा लिया। उसने शस्त्र-बल से एक १५० कोस लम्बा और २० या ३० कोस चौडा राज्य बना लिया, जिसकी वार्षिक आय ४० लाख रुपए थी। अपनी सपत्ति की रक्षा के लिए उसके पास उसके वशवर्ती गोल्कुडा की सेना के अतिरिक्त एक अपनी निज

की अच्छी सेना थी जिसमें ५,००० सुशिक्षित अश्वारोही और २०,००० पैदल सनिक थे। इसके अतिरिक्त उसके पास एक अच्छा तोपखाना और कुछ जगी हाथी भी थ। उसकी बढी हुई शक्ति देखकर सुल्तान उसके प्रति सशक हो गया। मीरजुमला के विरोधी दरबारियो ने उसके प्रति सुल्तान के चित्त को और भी शकाकुल कर दिया। उसके उद्दण्ड व्यवहारो से उसके प्रति सुलतान की आशका बद्धमूल हो गई, और उसने अपने कुछ दरबारियो की सहायता से मीरजुमला को कद करके अधा कर देने का षडयन्त्र रचा। मीरजुमला को सुल्तान के इस इरादे की खबर लग गई और उसने सुल्तान के पास उपस्थित होना अस्वीकार कर दिया। उसने इस सकट में बीजापुर के सुल्तान और फारस क शाह से सहायता की प्रार्थना की, किन्तु इसका कुछ फल नही हुआ। किन्तु औरगजेब ने देखा कि इस असन्तुष्ट सरदार को सहायता देने के बहाने गोलकुडा से युद्ध छेड देने का यह एक बहुत अच्छा अवसर हाथ लगा ह। गोलकुडे म मामला और बढ गया। मीरजुमला के पुत्र मुहम्मद अमान की अक्षम्य उद्दडता से क्रुद्ध होकर सुलतान ने २१ नवम्बर १६५५ ई० को उसे परिवारसहित कैद कर लिये जाने और उसकी सपत्ति जब्त कर लिये जाने की आज्ञा दे दी। इसस गोलकुडे मे किसी प्रकार का आश्चय व क्षोभ प्रकट नही हुआ, किन्तु औरगजेब ने इस सुयोग को हाथ से नही जाने दिया। उसने शाहजहा का इन बातो की खबर दी और गोलकुडे के मामले में हस्तक्षेप करने के लिए उसकी आज्ञा मागी। बादशाह ने कुतुबशाह के पास मीरजुमला के परिवार को मुक्त कर देने की आज्ञा भेजी और उसके द्वारा इसका पालन न होने पर औरगजेब को सुल्तान पर चढाई करने का अधिकार दे दिया। मनस्वी एव धर्मान्ध शाहजादे ने कुतुबशाह के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही युद्ध की घोषणा कर दी।

गोलकुण्डा पर चढाई--औरगजेब ने गोलकुण्डा पर चढाई करने के लिए एक बडी सेना के साथ १० जनवरी १६५६ ई० को अपने पुत्र को भेजा और पीछे से शीघ्र ही स्वय भी उसस जा मिला। अब अब्दुल्ला कुतुबशाह बडा भयभीत हुआ और उसन मीरजुमला क पुत्र को सपरिवार मुक्त कर दिया। अपनी अधीनता सूचित करने के लिए उसन सम्राट के पास एक पत्र

भी भेज दिया। शाहजादा फिर भी इस बहाने से कि सुल्तान ने मुहम्मद अमीन की सम्पत्ति नही लौटाई थी, राजधानी की ओर बढ़ता ही गया। उसकी सेना के पहुँचने पर सुल्तान अपने परिवार के साथ गोलकुडा चला गया, और अपने साथ अपने रत्न आदि बहुमूल्य पदार्थ लेता गया। राजधानी की रक्षा के लिए वह १७,००० सनिको की एक सेना छोड़ गया और अपन सेनापतियो को वीरता से शत्रु का सामना करने का आदेश द गया। मुगल-सेना के पहुँच जाने पर सुलतान ने अपन अफसरो को जवाहिरात के बहुमूल्य भेट के साथ शाहजाद के पास भेजा, किन्तु इसका कोई फल नही निकला। मुगलो न शहर को और कुतुबशाही सुल्तानो के पुश्त दर पुश्त से सचित किये हुए खजाने को लूट लिया। सिपाहियो को नगरनिवासियो को न छेड़ने और उनकी सम्पत्ति नष्ट न करने की चेतावनी द दी गई थी। सुल्तान न शाहजादे का क्रोध शात करने के लिए फिर जवाहिरात और रत्नजटित आभूषणो की २०० पेटियाँ और अच्छी तरह सजाये हुए घोड़े और हाथी भेजे। शाहजादे के पास बहुमूल्य भेट आती रही, किन्तु उस पर कुछ प्रभाव नही पड़ा। सुलतान इस प्रकार शाहजादे को प्रसन्न करने का प्रयत्न कर रहा था, लेकिन साथ ही वह गोल्कुडे की रक्षा की तयारी से भी उदासीन नही था और उसने मुगलो के विरुद्ध सहायता माँगने के लिए बीजापुर के सुल्तान के पास पत्र भी भेजा था।

मुगल सेना ने गोलकुडे पर घेरा डाला। औरगजेब तो सुल्तान के समृद्ध-शाली तथा उपजाऊ देश को जीतकर मुगल राज्य म मिला लेने पर तुला हुआ था। उसने सम्राट से ऐसा करने की आज्ञा माँगी और कुतुबशाह की क्षमा तथा सधि की प्रार्थनाओ एव उसके लिए दारा की सिफारिशो पर ध्यान न देने की प्रार्थना की। गोल्कुडे का घेरा पूरी मुस्तदी से चलता रहा और दोनो दलो म कई छोटी मोटी लडाइयाँ हुइ। मालवा से सेना लेकर औरग-जेब का मामा शायस्ताखाँ शाहजादा मुहम्मद की सहायता को आ पहुँचा और ये दोनो शत्रु का नष्ट करने की प्रबल चेष्टा करने लगे। कुतुबशाह ने अधिक मुकाबिला करना असभव देखकर हार मान ली और सधि के लिए प्रार्थना की। अपनी निष्कपटता का विश्वास दिलाने के लिए उसने बहुमूल्य

भेंटें भेजी और बकाया खिराज का एक हिस्सा अदा करने के लिए रुपये भी भेजे। शाहजहा ने जो दारा और जहानारा की सिफारिश से बहुत प्रभावित हुआ, युद्ध-व्यय के रूप में एक बहुत बडी रकम के अदा होने की शर्त पर युद्ध बन्द कर देने की आज्ञा दे दी।

अब्दुल्ला ने अपने अपराधो को क्षमा कराने और शाहजादा मुहम्मद के साथ अपनी पुत्री के विवाह के विषय मे औरगजेब की राय लेने के लिए अपनी माता को भेजने की इजाजत मांगी। वह सम्मानपूर्वक शायस्ता खा के शिविर में लाई गई और औरगजेब से उसकी मुलाकात का प्रबध कर दिया गया। औरगजेब इस शर्त पर अब्दुल्ला का राज्य लौटा देने को राजी हुआ कि वह हरजाने और खिराज के बकाये के रूप मे एक करोड रुपये दे और मुहम्मद के साथ अपनी पुत्री का विवाह मजूर करे। इस बीच में अब्दुल्ला के मुखतार को अपने स्वामी के प्रति दारा और जहाआरा की सहानुभूति प्राप्त करने में सफलता मिल गई। उन लोगो ने सम्राट से औरगजेब की धोखेबाजी और निर्दयता का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन किया जिसका उस पर बडा प्रभाव पडा। उसने चटपट औरंगजेब को अविलम्ब गोलकुडे का घेरा उठा लेने और सुल्तान के राज्य से हट जाने का हुक्म भेज दिया।

गोलकुण्डा के साथ सधि—औरगजेब ने सम्राट् की आज्ञा का पालन किया और गोलकुडा के सुल्तान के साथ सधि कर ली। और एक सप्ताह बाद कुतुबशाह की पुत्री से शाहजादा मुहम्मद शाह का विवाह हो गया जिसमें वह खुद शरीक नही हुआ, उसका दीवान और शाही वरशी उसकी वधू को उसके खेमे मे ले आये। वधू के पिता ने दहेज में १० लाख जवाहिरात तथा दूसरी वस्तुएँ दी। सुल्तान ने कुरान लेकर भविष्य मे कभी सम्राट की आज्ञा का उल्लघन न करने की प्रतिज्ञा की और कृतज्ञतापूर्वक क्षमा दान के शाही फरमान और सम्राट द्वारा भेजें हुए बेशकीमत खिल्अत को ग्रहण किया। औरगजेब ने प्रसन्न होकर सुल्तान ने जो हरजाने के २५ लाख रुपये देने की प्रतिज्ञा की थी, उसमे से १० लाख माफ कर दिया। थोडे दिनो के बाद इसमें से कुछ और छूट हो गई और कुछ जिले भी दिये गये। गोलकुडे

का पूर्ण रूप से मानमर्दन हो गया, अब वह मुगल साम्राज्य का करद राज्य मात्र रह गया।

मुगल दरबार में मीरजुमला का स्वागत—मीरजुमला सम्राट् की सेवा में उपस्थित हुआ, और उसका दरबार में अच्छा स्वागत हुआ। उसने सम्राट् को जो भेंट पेश की, उसका मूल्य १५ लाख था और उसमें एक बहुमूल्य हीरा भी था। उसे मुअज्जमखाँ का खिताब और ६००० जात और ६००० सवार का मनसब दिया गया और वह सदाउल्लाखाँ की जगह पर वजीर आजम नियुक्त किया गया। उसके ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद अमीन का भी सम्मान किया और उसे खाँ का खिताब दिया गया।

बीजापुर के विरुद्ध युद्ध—औरंगजेब ने अब बीजापुर की ओर अपनी क्रूर दृष्टि फेरी। १६३६ ई० की मुहिम बीच में ही एकाएक खतम हो गई थी और बीजापुर एक स्वतंत्र राज्य बना रह गया। मुहम्मद आदिलशाह जो अपने न्याय और दानवीरता के लिए सुविख्यात था, दिल्ली के सम्राट् से मित्रता का संबंध बनाये रहा। किन्तु उसके स्वतंत्र शासक का पद ग्रहण करने पर शाहजहाँ बड़ा अप्रसन्न हुआ और उसके इस दुस्साहस के लिए एक पत्र में उसे खूब फटकारा और मुगलों के सम्राट पद की नकल न करने की चेतावनी दी। जब बीजापुर के सैनिकों को इस पत्र की अपमानजनक बातों की खबर लगी तो उन्होंने सुल्तान से अपनी उपाधियाँ और अपने दरबार के रसूम को न त्यागने की प्रार्थना की और मुगल सम्राट द्वारा इस पर एतराज किये जाने पर उनसे लोहा लेने का अपना निश्चय प्रकट किया। किन्तु दूरदर्शी आदिलशाह ने, जो मुगल आक्रमण के दुष्परिणाम को भली भाँति समझता था, यह उत्तेजनापूर्ण निश्चय त्याग किया। उसने अपनी गलतियों के लिए सम्राट् से क्षमा माँगी और उसकी वश्यता स्वीकार की। मुहम्मद आदिलशाह योग्यतापूर्वक ३० वर्ष तक शासन करके ४ नवम्बर १६५६ ई० को मृत्यु को प्राप्त हुआ, और उसके बाद उसका पुत्र अली आदिलशाह द्वितीय १८ वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठा।

ज्यों ही औरंगजेब को यह खबर मिली कि बीजापुर के सिंहासन पर एक लड़का बैठा है, उसने सम्राट को यह बतलाकर कि नया सुल्तान मृत आदिलशाह का पुत्र नहीं है, बल्कि एक अज्ञात कुल-शील बालक है जिसे कुछ षड्यन्त्रकारों

वालो ने गद्दी पर बैठा दिया ह, बीजापुर पर चढाई करने की आज्ञा मागी। मृत सुलतान की मृत्यु के पीछे उत्पन्न हुई राज्य की दुर्व्यवस्था से औरगजेब युद्ध आरम्भ करने के लिए और भी प्रोत्साहित हुआ। शाहजहा ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसे बीजापुर के मामले का निश्चय अपने इच्छानुसार निपटारा कर लेने का अधिकार दे दिया। यह निश्चय हुआ कि दक्षिण की मुगल सेना की शक्ति बढाने के लिए एक सुदक्ष सेनापति के अधीन २०,००० सनिको की नई सेना भजी जाय और मीरजुमला का इस युद्ध में शाहजादे का सहायक बनाया गया। शाहजहाँ की इच्छा बीजापुर को केवल विजय करने की थी, अपने राज्य में मिला लेन की नही। यह प्रस्ताव कि यदि आदिलशाह हर्जाने के तौर पर डेढ करोड रुपये दे और नियमानुसार मुगल आधिपत्य स्वीकार करे तो बीजापुर के साथ नर्मी का व्यवहार किया जाय, शाहजादे को नही जँची और उसने युद्ध की तैयारी कर ली। उसने मीर जुमला को अविलम्ब पहुँच जाने के लिए कहला भेजा। यह युद्ध किसी प्रकार न्याय नही माना जा सकता। बीजापुर करद राज्य नही बल्कि एक स्वतन्त्र राज्य था और मुगल सम्राट् को बीजापुर के सिंहासन के उत्तराधिकार में हस्तक्षेप करने का न्यायोचित अधिकार नही था। युद्ध का वास्तविक कारण बीजापुर की दुरवस्था के कारण प्राप्त उसे हडप लेने का सुअवसर ही था।

मीरजुमला और औरगजेब अपनी सम्मिलित सनाओ के साथ बीजापुर की ओर बढे, और बीदर पहुँचकर उन्होने उस पर घेरा डाल दिया। बीदर का शहर एक सुदृढ दुर्ग से सुरक्षित था जिसकी परिधि ४५०० गज और ऊँचाई १२ गज थी। इसके चारो ओर चट्टान काटकर बनाई हुई चौडी और २५ गज गहरी खाइयाँ थी। इसमें कई सुलतानो के बनवाये हुए बहुत से महल, स्नानागार और रम्य उद्यान थे। इस किले में जो मध्ययुग में दुर्भेद्य समझा जाता था, लडाई का सामान अच्छी तरह सग्रहीत था। दुर्ग का किलेदार बीजापुर का एक वृद्ध सेनापति सीदी मजन था जिसके अधीन १००० सवार और ५००० पैदल थे जिनमें बन्दूकची और तोपची भी थे। दुर्गस्थ सेना ने शत्रु सेना पर गोलियाँ बरसाना आरम्भ किया, किन्तु मुगल सेना गोलियो की घनी बौछार की परवा न करते हुए आगे बढी और खाई के पास पहुँचकर उसे भरने लगी। दुर्गस्थ सेना ने कई बार दुर्ग से बाहर निकलकर शत्रुओ पर आक्रमण किया, जिसमें कभी बीजा-

पुरिया की अधिक क्षति होती थी और कभी मुगलों की। किन्तु अन्त में संख्या के बल से मुगलों ने विजय पाई। भाग्य ने भी उन लोगों का साथ दिया।

किले के बारूदखाने में आग लग गई जिसके विस्फोट से बहुत से बीजापुरी सनिक नष्ट हो गये। सीदी मजन और उसके दो पुत्र बुरी तरह घायल हो गये। इस सुअवसर से लाभ उठाकर मुगल किले में घुस पड़े और जिन लोगों ने उनका विरोध किया, उन्हें मार डाला या कैद कर लिया, और किले पर अपना झंडा फहरा दिया। वीर सीदी मजन के सामने, जो साघातिक रूप से आहत हो गया था, अब आत्मसमर्पण के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही नहीं था। उसने दुर्ग की कुंजियाँ के साथ अपने पुत्रों को औरंगजेब के पास भेज दिया जिसने उनका सम्मान पूर्वक स्वागत किया। इस प्रकार बीदर का किला २७ दिन के मुहासिरे के बाद औरंगजेब के अधिकार में चला आया। बहुत सा लूट का माल मुगलों के हाथ लगा जिसमें १२ लाख रुपये नकद थे, ८ लाख रुपया का गोला-बारूद था और २५० तोपें थीं। औरंगजेब बड़े समारोह के साथ नगर में दाखिल हुआ और उसने दिल्ली के सम्राट के नाम का खुतबा पढवाया। वीर सीदी मजन अपने घावों के कारण जल्द मर गया।

बीजापुरी जो इस पराजय के कलंक को धो डालने के लिए उत्सुक थे, गुलबर्गे में फौजें इकट्ठी करने लगे। औरंगजेब ने उनके विरुद्ध १५ हजार अश्वारोहियों के साथ महाबत खाँ को भेजा। २०००० बीजापुरियों का एक दल मुगल शिविर से छः मील से भी कम दूरी तक बढ आया और मुगल सेना के बनजारों के बैलों को छीन लिया। महाबत खाँ के सनिकों ने तेजी से उनका पीछा करके बैलों को छुड़ा लिया। खाँ मुहम्मद, अफजल खाँ और दूसरे प्रसिद्ध सेनापतियों के संचालन में २०००० बीजापुरियों ने मुगल सेना पर आक्रमण किया। किन्तु मुगलों ने उन्हें मारकर भगा दिया और पीछा करके उनके बहुत से सनिकों को काट डाला।

इस विजय के थोडे ही दिनों बाद औरंगजेब चालुक्यों की प्राचीन राजधानी कल्याणी पहुँचा, जो बीदर से ४० मील पश्चिम स्थित थी। उस नगर पर घेरा डाला गया, और दुर्गस्थ सेना दुर्ग के परकोटे से दिन-रात अग्नि-वर्षा करने लगी। महाबत खाँ ने अपने वीर सैनिकों की सहायता से शत्रु की शृंखला को तोड़ दिया और इखलासखाँ ने उसका भयंकर संहार करके उसे पीछे हटा दिया

अभी जारी रहा और दोनों सेनाएँ एक दूसरे से गुथ गई। युद्ध छ घंटे तक हुआ जिसमें दक्खिनियों ने मुगलों को बड़ा परेशान किया, किन्तु अन्त में हिन्दुस्तानी सवारों ने उन्हें पराभूत कर दिया। बीजापुर की सेना की बड़ी क्षति हुई और औरंगजेब ने अपने सेनापतियों की सफलता पर बड़ा आनन्द मनाया। घेरा बड़ी तत्परता से जारी रखा गया। दुर्ग का किलेदार बड़ी वीरता से किले की रक्षा कर रहा था। उसके आदमी शत्रु पर अहर्निशि अग्नि वर्षा कर रहे थे। अन्त में जब दिलावर खां ने देखा कि दुर्ग की रक्षा नहीं हो सकती तो वह इस शर्त पर किला सौंप देने को तैयार हो गया कि किलेदार और दुर्ग के सैनिक अपने परिवार के लोगों के साथ दुर्ग छोड़कर निर्भयतापूर्वक चले जाने दिये जायें। दुर्ग की कुंजियां २१ जुलाई १६५८ ई० को मुगलों को सौंप दी गई और फिर एक बार शाहजादे ने सम्राट् के नाम का खुतबा पढ़वाया।

मुगलों ने बीदर और कल्याणी को लिया था और वे बीजापुर पर आक्रमण करने को तयार थे, इतने ही में बादशाह की आज्ञा आ पहुँची कि आक्रमण रोक दिया जाय। मुगल दरबार में सुल्तान के आदमियों ने शाहजहां को राजी कर लिया था। अपने योग्य भाई के प्रति दाराशिकोह का द्वेष भी उनके इष्ट साधन में सहायक सिद्ध हुआ था। शाहजहां ने औरंगजेब की सफलताओं का महत्त्व नहीं समझा और उसने इस अन्यायपूर्ण युद्ध को बन्द कर देने की आज्ञा दे दी। सुल्तान के साथ संधि हो गई। उसने हरजाने के तौर पर डेढ़ करोड़ रुपये देना और बीदर, कल्याणी और परेंदा के किले समर्पित करना स्वीकार किया। शाहजहां ने उदारतापूर्वक हरजाने की रकम में से आधा करोड़ रुपये माफ कर दिया और संधि को मान लिया।

तख्त ताऊस--शाहजहां बड़ा शानदार बादशाह था। अपने शासन काल में उसने कई प्रसिद्ध इमारतें बनवाईं जो आज तक दर्शकों की दृष्टि में चकाचौंध पैदा कर देती हैं। किन्तु मयूर सिंहासन भी किसी प्रकार कम प्रसिद्ध नहीं था जिसके बनवाने में सम्राट् के दो उद्देश्य थे, एक तो पुश्त दर पुश्त से राजकोष में संग्रहीत बहुमूल्य रत्नों का प्रदर्शन और दूसरा मुगल दरबार की शान शौकत की अभिवृद्धि। राजकोष में संगृहीत २ करोड़ के रत्नों में से ८४ लाख रुपयों के उत्कृष्ट रत्न चुने गये और उन्हें एक लाख तोले सोने के साथ जिसका मूल्य १४
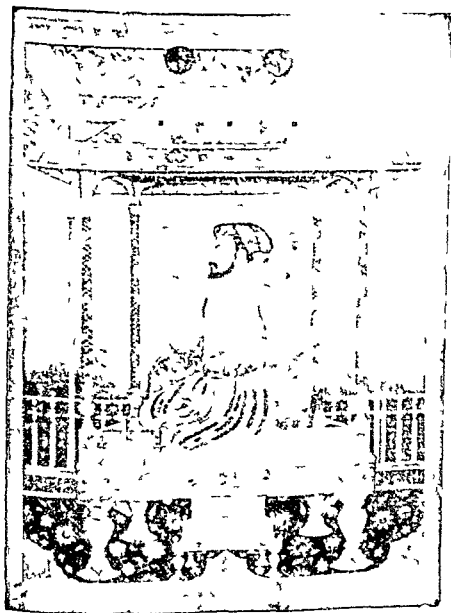
तत्त्व वाज्स

लाख रुपये था, मुनारा के दरोगा बेबदल खा के हवाले किया गया और उसे एक ३३½ गज लम्बा, २½ गज चौडा और ५ गज ऊँचा सिंहासन तैयार कराने की आज्ञा दी गई। इसके चँदावे के बाहरी हिस्से में माणिक लगे हुए थे और उसके भीतरी भाग में मीनाकारी की हुई थी जिसमे रत्न लगे थे। यह चँदोवा १२ खभा पर स्थित था जिनमे ऊपर से नीचे तक पन्ने जडे हुए थे। हर एक खम्भे पर दो रत्न-जटित मयूर बने हुए थ और हर दो मोर के बीच में लाल, हीरा पन्ना और मोती से जडा हआ एक वक्ष बना हुआ था। समूचा सिंहासन रत्नो स जगमगाता रहता था। इसमें जडे हुए रत्नो में एक लाख के मूल्य का लाल था जिसे शाह अब्बास ने जहागीर के पास भजा था और जो दक्षिण की सामरिक सफलताओ के उपलक्ष म जहागीर से शाहजहा को मिला था। यह सिंहासन सात वर्षो में बनकर तैयार हुआ और इसम एक करोड से अधिक रुपये व्यय हुए। यह १६३४ ई० में बनकर तयार हुआ।

जब नादिरशाह न हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया तो वह तख्त-ताऊस को अपने साथ फारस लेता गया। किन्तु अब यह सिंहासन फारस में नही ह। लार्ड कर्जन के पूछ ताछ से पता चला कि फारस का वत्तमान तख्त-ताऊस भारतीय सिंहासन बिल्कुल ही नही ह। यह बनवाया गया था इस्फहान के सरदार मुहम्मद हुसेन खाँ द्वारा फतह अलीशाह के लिए जब उसने एक इस्फहानी युवती से जो ताऊस खानम के नाम स मशहूर थी, विवाह किया था।

शाहजहाँ की दिनचर्या—शाहजहाँ प्रात काल सूर्योदय स दो घडी पहले उठता था, और नमाज अदा करके काम में लग जाता था। पहले वह झरोखे पर जाकर दशनार्थ इकट्ठी हुई प्रजा को दशन देता था। वहाँ से वह दरबार में जाता था, जहाँ प्रमुख राजपुरुष उसके सामने उपस्थित किये जात थे और खिलअत तथा उपहार पाते थे। बादशाह के सामने सूबा के मनसबदारा की अर्जियाँ पेश की जाती थीं जिन पर वह अक्सर अपने हाथ से हुक्म लिखता था। दरबार में काय समाप्त करके वह दौलतखाना-ए खास में जाता था, जो अकबर के समय गुसल-खाना कहलाता था। वहाँ वह अपने अफसरा के हुक्मा की जाच करता था और रत्ना और उसकी स्वीकृति के लिए उपस्थित किये गये इमारता के नक्शो की परीक्षा करता था। इसके बाद वह शाहबुर्ज में जाता था जहाँ गोपनीय

राजकाय किया जाता था और जहा चुने हुए विश्वसनीय राजपुरुष ही जा सकते थे।

दोपहर के करीब सम्राट् हरम में चल जाते थे, किन्तु वहा भी उन्हे काय से अवकाश नही मिलता था। मुमताजमहल अनाथा, विधवाओ तथा अन्य दुखियो की अर्जियां सम्राट् के सामने पेश करती थी जिन पर वे उदारतापूवक धन देते थे। मध्याह्नोत्तर काल में सम्राट फिर दरबार में और शाहबुर्ज में राजकाय देखते थे।

दिनभर परिश्रम करने के बाद सम्राट महलो में लौट जाते थे और वहाँ गायिकाओ के सगीत से दो घटे मन बहलाते थे। इसके बाद सोने का समय हो जाता था। इतिहास और यात्रा की पुस्तके और नबियो की जीवनिया एक पर्दे की आड से पढकर सुनाई जाती थीं जब तक बादशाह को नीद नही आ जाती थी। वह जफरनामा और वाकयात बाबरी को बहुत पसद करता था और उन्हे रोज पढवा-कर सुनता था।

शाहजहाँ की इमारतें—शाहजहा को इमारत बनवाने का बडा शौक था। इमारतो के बनवाने में उसने असीम धन व्यय किया। उसकी इमारतो का विस्तृत विवरण अतिम अध्याय में मुगल काल म कला के विकास के विषय म लिखते समय दिया जायगा। यहा उसके बनवाये हुए विभिन्न भवनो का उल्लेख मात्र पर्याप्त होगा। उसकी इमारतो में सबसे अधिक सुन्दर तथा सबसे अधिक प्रसिद्ध प्रिय , तमा मुमताजमहल की कब्र के ऊपर बनवाया हुआ ससार प्रसिद्ध रौजा है, जो ताज महल के नाम से विख्यात है। मुमताज बेगम की मृत्यु १६३० ई० में हुई और उसक दूसरे वष रौजे का निर्माण आरम्भ हुआ। इसके बनने का काम वर्षों तक चलता रहा और इसके सिंहद्वार के लेख से जो १६६७ ई० का है, ज्ञात होता है कि प्रधान गुबज उसी वष तैयार हुआ। समकालीन लेखक अब्दुल हमीद लाहौरी लिखता है कि यह १२ वर्षों में बनकर तैयार हुआ और इसमे ५० लाख रुपये व्यय हुए। उसका तात्पय निस्सन्देह भीतरी चबूतरे पर के सगमरमर की इमारतो से है, सम्पूर्ण भवन के बनने में निस्सन्देह अधिक समय लगा होगा। टवर्नियर जो १६५३ में भारतवष में उपस्थित था, लिखता है कि ताजमहल २२ वर्षों में बनकर तयार हुआ और इसमें ३ करोड रुपये व्यय हुए।

शाहजहा ने आगरे के किले में कई और इमारते बनवाईं जिनमें मुसम्मन बुर्ज और मोती मसजिद विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मुसम्मन बुर्ज सगमरमर की एक सुदर इमारत है जो बहुमूल्य पत्थरो से अलकृत है। वृद्ध सम्राट् ने अपने पुत्र द्वारा बदी होकर यही अपनी प्रियतमा के प्रेम के स्मारक ताजमहल की ओर देखते हुए अपनी जीवन लीला समाप्त की। मोती मसजिद दीवानेआम के उत्तर में स्थित है और १८७ फुट चौडी और २३४ फुट लम्बी है। इसका बनना १६४८ ई० मे आरम्भ हुआ और १६५२ में समाप्त हुआ। इसमे कुल ३००००० रुपये व्यय हुए। इन इमारतो के अतिरिक्त शाहजहा ने किले में झरोखा ए खास-ओ-आम और दौलतखाना ए खास बनवाये, जो पहले विपुल धन व्यय करके कपडे और लकडी के बनवाये गये थे। आगरे के किले के सामने कोई इमारत नही थी, इसलिए शाहजहा ने एक बडा चौक बनवाया जिसमें बेगम साहिब ने ५ लाख रुपये व्यय करके एक सुदर मसजिद बनवा दी, जो पाच वर्ष में १६४८ ई० में बनकर तयार हुई।

आगरा एक अनुपम नगर था लेकिन वह भी शाहजहा को अपनी राजधानी के लिए उपयुक्त नही जँचा। उसने दिल्ली की भूमि पर जो कई साम्राज्यो की राजधानी रह चुकी थी, अपनी राजधानी बनवाने का निश्चय किया। स्थापत्यकला विशारदो और ज्योतिषियो ने स्थान चुना और १२ मई १६३९ को आगरे की शान को मात कर देनेवाली नई राजधानी शाहजहानाबाद की नीव डाली गई। दस वर्षों में यह नगर बनकर तयार हुआ और १६४८ ई० म बडी धूमधाम से साम्राज्य की राजधानी बनवाया गया। इस नगर में शाहबुर्ज, रगमहल, मुमताजमहल, दीवाने आम और दीवाने खास और कुछ और इमारत अपार धन व्यय करके बनवाई गईं। दीवाने खास शाहजहा की इमारतो में सबसे अधिक अलकृत है। इसकी दीवारो पर ये शब्द अब भी अकित है—

अगर फिरदौस बररूए जमीनस्त, हमीनस्त हमीनस्त हमीनस्त। अर्थात यदि इस पृथ्वी पर स्वर्ग है, तो यही है, यही है। इस दीवान में सगमरमर की बनी हुई जल की नालियाँ है जिससे इमारतो की शोभा और भी बढ गई है, इन नालियो में जमुना का जल बहता था। जिस सगमरमर की पटिया पर दीवाने खास में तख्त ताऊस रखा जाता था, वह इसमें अब भी देखा जा सकता है। एक और इमारत

जिससे शाहजहाँ ने इस नए नगर को अलङ्कृत किया जामा मस्जिद है, जो भा
वर्ष की बड़ी से बड़ी मस्जिदों में से एक है। १६५० ई० के अक्टूबर मास
इसकी नीव डाली गई, और यह सादुल्ला खाँ के निरीक्षण में दस लाख रुप
व्यय करके ६ वर्षों में बनाई गई। यह मस्जिद लाल पत्थर की बनी है।

इन विशाल तथा सुन्दर इमारतों के अतिरिक्त अपने धर्म-प्रेम तथा उदार
से अनुप्रेरित होकर शाहजहाँ ने विभिन्न स्थानों में कई इमारतें बनवाईं। नि
मुद्दीन औलिया का सुन्दर मकबरा संसार की भीड़ भाड़ से दूर एक शांत स्थ
में विशुद्ध संगमरमर का बनवाया गया। अजमेर में शाहजहाँ ने कई इमारतें बनवा
वहाँ के हिन्दू राजा अनाजी द्वारा बनवाये गये अनासागर झील की पाल पर शाह
ने १६३७ ई० में १२४० फुट लंबा संगमरमर का घाट विशुद्ध संगमरमर की ५
बारहदरियाँ और एक हम्माम बनवाया। इनके अतिरिक्त १६३८ ई० में
सुन्दर मकबरा और उसके पश्चिम एक सुन्दर तथा अलङ्कृत जामा मस्जिद बन
कर सम्राट ने ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के प्रति श्रद्धा तथा भक्ति प्रकट

शाहजहाँ का शासन प्रबन्ध—अब्दुल हमीद लाहौरी के अनुसार शाह
का राज्य विस्तार पूर्व पश्चिम आसाम में सिलहट से सिन्ध में लाहरी बन्दर
तक २००० कोह था और उत्तर दक्षिण अफगानिस्तान में विस्त के किले से दं
में आसा तक १५०० कोह था। इसमें २२ सूबे थे जिनसे ८८० करोड़ दाम
२२ करोड़ रुपये की वार्षिक आमदनी थी। सूबों के नाम इस प्रकार हैं —
दिल्ली, (२) अकबराबाद, (३) लाहौर (४) अजमेर (५) दौलता
(६) इलाहाबाद, (७) बरार, (८) मालवा (९) खानदेश, (१०) अहमद
(११) अवध, (१२) बिहार, (१३) मुल्तान, (१४) तिलगाना, (१५) उ
(१६) बंगाल, (१७) ठट्टा (१८) काबुल, (१९) बल्ख (२०) ब
(२१) बदख्शाँ, (२२) काश्मीर। शासन प्रणाली वही थी जो अकबर के
में थी यद्यपि उसमें सुभीते के लिए कुछ परिवर्तन कर लिये गये थे। शाहजहाँ
प्रजा के साथ बड़ा अच्छा व्यवहार करता था। टवर्नियर प्रजा पर उसके
को ऐसा कोमल तथा सदय बतलाता है जैसा बहुत कम शासकों में पाया
है। वह अपने सरदारों को कर्तव्य का पालन न करने पर दंड देता था और प्र
सुख चैन के लिए सब बातों का प्रबन्ध करता था, जिसके कारण प्रजा के हृ

शाहजहा के दरबार में राजदूत का आना

जिससे शाहजहा ने इस नये नगर को अलंकृत किया जामा मस्जिद है, जो भारत वर्ष की बडी से बडी मस्जिदो में से एक है। १६५० ई० के अक्टूबर मास में इसकी नींव डाली गई, और यह सादुल्ला खा के निरीक्षण में दस लाख रुपये व्यय करके ६ वर्षों में बनाई गई। यह मस्जिद लाल पत्थर की बनी है।

इन विशाल तथा सुन्दर इमारतो के अतिरिक्त अपने धर्म-प्रेम तथा उदारता से अनुप्रेरित होकर शाहजहा ने विभिन्न स्थानो में कई इमारतें बनवाई। निजामुद्दीन औलिया का सुन्दर मकबरा संसार की भीड-भाड से दूर एक शान्त स्थान में विशुद्ध संगमरमर का बनवाया गया। अजमेर में शाहजहाँ ने कई इमारतें बनवाई। वहा के हिन्दू राजा अनाजी द्वारा बनवाये गये अनासागर झील की पाल पर शाहजहाँ ने १६३७ ई० में १२४० फुट लंबा संगमरमर का घाट, विशुद्ध संगमरमर की पाच बारहदरियाँ और एक हम्माम बनवाया। इनके अतिरिक्त १६३८ ई० में एक सुन्दर मकबरा और उसके पश्चिम एक सुन्दर तथा अलंकृत जामा मस्जिद बनवाकर सम्राट ने ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के प्रति श्रद्धा तथा भक्ति प्रकट की।

शाहजहाँ का शासन प्रबन्ध---अब्दुल हमीद लाहौरी के अनुसार शाहजहाँ का राज्य विस्तार पूर्व पश्चिम आसाम में सिलहट से सिंध में लाहरी बन्दरगाह तक २००० कोह था और उत्तर दक्षिण अफगानिस्तान में बिस्त के किले से दक्षिण में आसा तक १५०० कोह था। इसमें २२ सूबे थे जिनसे ८८० करोड दाम अर्थात २२ करोड रुपये की वार्षिक आमदनी थी। सूबो के नाम इस प्रकार है —(१) दिल्ली, (२) अकबराबाद, (३) लाहौर, (४) अजमेर, (५) दौलताबाद, (६) इलाहाबाद, (७) बरार, (८) मालवा, (९) खानदेश, (१०) अहमदाबाद, (११) अवध, (१२) बिहार, (१३) मुल्तान, (१४) तिलगाना, (१५) उडीसा, (१६) बंगाल, (१७) थट्टा (१८) काबुल (१९) कन्धव, (२०) कधार, (२१) बदख्शाँ, (२२) काश्मीर। शासन प्रणाली वही थी जो अकबर के समय में थी गोकि उसमें सुभीते के लिए कुछ परिवर्तन कर लिये गये थे। शाहजहाँ अपनी प्रजा के साथ बडा अच्छा व्यवहार करता था। टवर्नियर प्रजा पर उसके शासन को ऐसा कोमल तथा सदय बतलाता है जैसा बहुत कम शासकों में पाया जाता है। वह अपने सरदारो को कर्त्तव्य का पालन न करने पर दंड देता था और प्रजा के सुख चैन के लिए सब बातों का प्रबन्ध करता था, जिसके कारण प्रजा के हृदय में
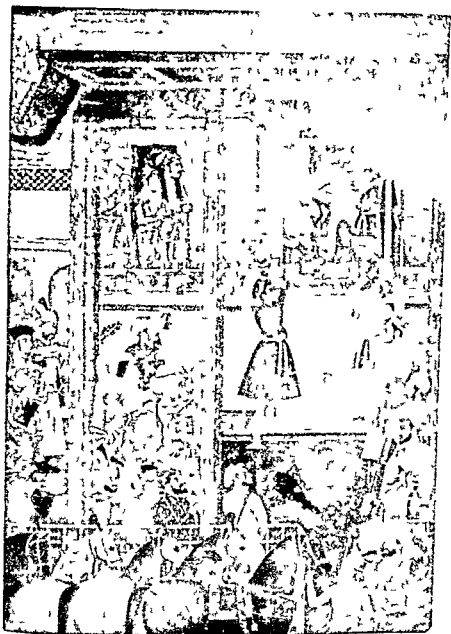
शाहजहाँ के दरबार में राजदूत का आना

उसके लिए बडा प्रेम तथा स्नेह था। साम्राज्य में जागीरदारी और मनसब की प्रथा प्रचलित थी। बादशाही नौकरी में सभी राष्ट्रों के मनुष्य थे जिन्हें मुगल सम्राट् प्रसन्न होने पर ऊँचे दर्जे पर चढा देता था और अप्रसन्न होने पर नीचे गिरा देता था या मटियामट कर देता था। इन अफसरों को वेतन और जागीर दोनों मिलती थी किन्तु फिर भी वे ऋण ग्रस्त रहते थे। इसका कारण यह था कि उन्हें सम्राट् को बडी-बडी नजरें देनी पडती थी और उनमें फजूलखर्ची बहुत थी। मनसबदारों की मृत्यु पर उनकी सपत्ति जब्त हो जाने का जो नियम था, उसके कारण वे लोग अपनी सन्तानों के भविष्य के लिए सदा चिंतित रहते थे और उनमे विलासिता और अपव्ययता बढ गई थी।

राज्य की आमदनी का सबसे बडा साधन जमीन की मालगुजारी थी। सम्राट की आज्ञा थी कि राजकर्मचारी सदा प्रजा के हितों की रक्षा करें, किन्तु इस आदेश का पूर्ण रूप से पालन नहीं होता था। यहा एक घटना बयान की जाती है जिससे यह बात भली भाँति प्रकट होती है कि शाहजहाँ प्रजा की भलाई तथा उसके प्रति न्याय और दया का कितना ध्यान रखता था। एक दिन महकमा लगान के कागजात की जाच करते हुए सम्राट ने देखा कि एक मौजे की मालगुजारी में कई हजार की बढती हो गई थी। उन्होने तत्काल अपने दीवान सादुल्ला खा को बुलाकर इस बढती का कारण पूछा। दीवान ने जवाब दिया कि नदी के पथ में परिवर्तन हो जाने से गाव में कुछ जमीन आ मिली थी जिससे गाव की उपज बढ गई थी। सम्राट ने पूछा कि यह जमीन खालसा थी या एमा (माफी)। दीवान ने बतलाया कि माफी थी। यह सुनकर सम्राट बहुत बिगडा और ज्यादती करनेवाले फौजदार को पदच्युत कर दिया और जो अधिक वसूली हुई थी उसे लौटा दिये जाने की आज्ञा दे दी। दीवान सादुल्ला खाँ भी बडा कर्तव्यपरायण व्यक्ति था। यह कहा करता था कि जो दीवान प्रजा के साथ अन्याय करता है, वह शैतान है। जमीन के लगान के अतिरिक्त राज्य और भी कई अवाब वसूल करता था जिन्हें आगे चल औरगजेब ने हटा दिया। हिन्दुओ पर तीर्थयात्रा आदि के धार्मिक कर भी लगते थे। जो तीर्थ-यात्री प्रयाग जाते थे, उनसे सरकार सवा छ रुपये वसूल करती थी। मृत हिन्दुओं की हड्डियों को गगा में डालने के लिए भी कर देना पडता था।

न्याय काजी और मीरअदल करते थे, किन्तु इस विषय में बादशाह अपने

कर्त्तव्य से उदासीन नही था। वह साम्राज्य का सबसे बडा न्यायाधिकारी था, उसके पास महत्वपूर्ण अभियोगो की अपील की जाती थी। प्रत्येक बुधवार को झरोखा-ए-आम-ओ खास पर नहीं जाता था। वह दिन न्याय के लिए अलग कर दिया गया था। उस दिन निश्चित समय पर बादशाह झरोखा ए-दर्शन से सीधे दरबार आम में आता था जो साधारणत गुसलखाने के नाम से प्रसिद्ध था, और दारोगा द्वारा पेश किये गये मुकदमो का फैसला करता था। वह उलमा की सलाह लेता था जो शरियत के अनुसार राय देते थे। जिन मुकदमो मे स्थानीय अनुसन्धान की आवश्यकता होती थी, उन्हे प्रान्तीय सूबेदार के पास सत्य बातो का पता लगाने के लिए भेज दिया जाता था और उन्हे सब बातो की रिपोर्ट देनी पडती थी। लुब्बुत्तवारीख का हिन्दू लेखक जो शाहजहाँ के शासन से भली भाति परचित था, न्यायप्रबन्ध की बडी प्रशसा करता है। वह कई ऐसे उदाहरण पेश करता है जिनमें न्याय की रक्षा के लिए उसने हस्तक्षेप किया। राज्य के उच्चतम अधिकारियो को भी उनकी ज्यादतियो का पता चलने पर दड दिया जाता था। कहा जाता है कि एक बार कुछ खेल करनेवालो ने आज्ञा लेकर सम्राट् के सामने एक नाटक का अभिनय किया जिसमें गुजरात के सूबेदार के अन्याय तथा दुष्टता पर प्रकाश डाला गया था। बादशाह अचम्भित होकर चिल्ला उठा—'क्या ससार में ऐसे अत्याचार करनेवाले मनुष्य भी हो सकते है ?' और मामले की जाच करने की आज्ञा दे दी और सूबेदार पर सब अपराध सिद्ध हो जाने पर उसे रोहतासगढ में आजन्म कद रखे जाने का दड दिया गया और उसकी सपत्ति जब्त कर ली गई। बर्नियर लिखता है कि स्थानीय अधिकारियो का रिआया पर ऐसा प्रबल एकाधिकार था कि उनके द्वारा सताई हुई प्रजा कही प्रार्थना नही कर सकती थी। साम्राज्य क राजधानी से दूरवर्ती भागो में ऐसा होना सभव है, किन्तु जहा कही सम्राट् की नजर पहुँच जाती थी, अत्याचारों का प्रतिकार किया जाता था और उत्पीडितो के प्रति न्याय किया जाता था। मुकदमों का फसला जल्द हो जाता था। उस समय मुकदमेबाजी का रोग नही फला था। अपराधियो को बडे कड दड दिए जाते थे। हल्के जुर्मो के लिए अगच्छेदन का दड दिया जाता था और गुरुतर अपराधों के लिए प्राणदड या आजीवन कारावास का दड दिया जाता था।

मुगल नगरों में ही रहना पसन्द करते थे। राज्य की आमदनी देहातों से ही द   नी थी, किन्तु मुगल अकबर देहातों से बहुत घबराते थे। प्रान्तीय शासन प्रधानत सूबों के सदर मुकामों का शासन था। सूबेदार गावों की दशा की जानकारी फौजदार और मुहकमा लगान के कर्मचारियों द्वारा तथा स्वयं देहातों का दौरा करके लेता था। जब तक ग्रामवासी लगान चुकाते जाते थे और राज्य की शान्ति भंग नहीं करते थे, सरकार उनसे कुछ सम्बन्ध नहीं रखती थी व उनसे इच्छानुसार जीवन-यापन करते थे। प्रान्तीय शासन का प्रबन्ध करनेवाले प्रधान कर्मचारी थे (१) सूबेदार, (२) प्रान्तीय दीवान, (३) फौजदार (४) कोतवाल और (५) वाक्यानवीस। इनके कार्यों का विवरण एक दूसरे अध्याय में पहले दिया जा चुका है।

योरोपियन यात्रियों के वर्णनों से शाहजहाँ के शासन काल के प्रान्तीय शासन पर बड़ा प्रकाश पड़ता है। पीटरमंडी सूबेदारों को निर्दयी तथा बड़ा अत्याचारी बतलाता है जो रिआया के साथ हृदयहीनतापूर्ण व्यवहार करते थे। पटने के शासक अब्दुल्ला खां ने पीटरमंडी के साथ दुर्व्यवहार किया था। वह तथा उसके अधीनस्थ कर्मचारी सरकारी माल हजम कर जाते थे। वह दूध बेचनेवालों पर भी चुंगी लगाता था। मंडी ने बनारस में एक आदमी को मंदिर गिरा देने की राजाज्ञा न मानने के कारण एक पेड़ से एड़ी बाँधकर लटकाया हुआ देखा। उसने १६३२-३३ में बियाना और फतहपुर सीकरी के बीच सूबेदार मिर्जा लश्कर द्वारा ढाई तीन सौ मनुष्यों को सूली पर लटकाये जाते देखा। चुंगी जगह-जगह ली जाती थी और देश में चोर बहुत थे। यात्रा में लूट लिये जाने का डर रहता था और देश में सरायों का अभाव था। माण्डेल्स्लो ने भी ऐसे ही कुप्रबन्ध का चित्र खींचा है। बर्नियर जो शाहजहाँ के शासनकाल के अन्तिम भाग में भारतवर्ष पहुँचा, सूबेदारों को प्रजा पर असीम शक्ति रखनेवाले अत्याचारी शासक बतलाता है, जिनके अत्याचारों के विरुद्ध प्रजा कहीं फरियाद नहीं कर सकती थी। यह सत्य है कि वाकयानवीस नियुक्त किये गये थे जिनका कर्तव्य सम्राट् को सूबेदार के कारनामों की खबर देना था किन्तु ये वाकयानवीस सूबेदार से मिल जाते थे और अत्याचारी शासक निर्द्वन्द्व रूप से प्रजा पर जुल्म करते रहते थे। मनूची जो शाहजहाँ के न्याय की बड़ी प्रशंसा करता है, एक विषय में पीटरमंडी से

विरुद्ध लिखता है। वह सराया की एक बडी नामावली देता है और उनके प्रबन्ध का भी विवरण देता ह । वह बतलाता ह कि साम्राज्य भर में सरायें थी जिनमें घोडो, ऊँटो और गाडियो समेत ८०० से १००० तक मनुष्य रह सकते थे। योरोपियन यात्रियो के विवरणा में पारस्परिक विरोध ह। उनके व्यक्तिगत विवरण को समूचे साम्राज्य के शासन के विषय में पूणरूप से लागू मानना ठीक नही होगा। शाहजहा प्रजा के दुखा को कम करने तथा न्याय-पूवक राज्य करने के लिए वडा प्रयत्न करता था। दुर्भिक्षो में गरीबो के कष्टा को दूर करने के लिए बडी चेष्टा करता था। राज्य के १९व वप में जब पजाब में एक दुर्भिक्ष पडा था, सम्राट न यह आज्ञा निकाल दी कि भूखा मरनेवाले माता पिता द्वारा वचे गये बच्चो को राज्य के धन से फिर खरीदकर उनके मा-बाप को लौटा दिया जाय। सम्राट की आज्ञा से लाहौर में दस लगर खोले गय थ, जहा क्षुधात्त प्रजा को भोजन बाटा जाता था।

मुल्की और फौजी विभाग एक दूसरे से बिलकुल अलग नही थे। अफसरा को मनसब और जागीर देन की प्रथा प्रचलित थी। मनसबदारी में जात और सवार के दर्जे अब भी कायम थे, किन्तु शाहजहा के समय में मनसब के दर्जे से मनसबदार द्वारा रखे जानेवाले सवारा का बोध नही होता था। मनसबदारा की धोखेबाजी बन्द करने के लिए शाहजहा ने दाग की प्रथा फिर चलाई। मनसबदार को जिस सूबे में उसकी नियुक्ति होती थी उसमें अपन दर्जे के एक तिहाई घोडा पर दाग का निशान लगवाना पडता था और हिन्दुस्तान में ही किसी दूसरे सूबे में साम्राज्य की सेवा के लिए भेजे जाने पर एक चौथाई घोडो को दगवाना पडता था, लेकिन युद्ध में बलख व बदख्शाँ भेजे जाने पर सिफ पाँचव भाग को दगवाना पडता था।

अब्दुलहमीद लाहौरी के अनुसार १६४८ ई० में शाही सना में २००००० सवार, ८००० मनसबदार, ७००० अहदी ४०००० पदल बन्दूकची और तोपची थ और राजाओ और सामन्तो के अधीनस्थ १८५००० सवार थे, इस प्रकार सब मिलाकर ४४०००० सनिक थे। इनके अतिरिक्त फौजदारा, काजिया और आमिलो के अधीन परगना की फौजें भी थीं। इसलिए सना की पूण शक्ति ऊपर दी हुई सख्या से बहुत अधिक थी। सेना की विभिन्न शाखाएँ पूववत्

थी। युद्ध विभाग में लडाई के सब सामानो का बडा अच्छा प्रबन्ध था, जसा कन्धार की चढाइया के सामान के विवरणा से अच्छी तरह प्रकट होता ह। यद्यपि शाह की सेना बहुत बडी थी, उसका प्रबन्ध अच्छा नही था, जसा कन्धार की चढाइया की असफलता जाहिर करती ह।

सब बाता का विचार रखत हुए यह कहा जा सकता ह कि शाहजहा अपने राज्याधिकार के उपयोग मे प्रजा की भलाई का बडा ध्यान रखता था। टवर्नियर लिखता ह कि शान्तिरक्षा का प्रबन्ध बडा कडा था जिसके कारण यात्रियो को लूटे जान या माल की चोरी जाने का भय बिलकुल नही था और किसी का चोरी के लिए दड देना ही नही पडता था[१]। मुसलमान और हिन्दू इतिहास लेखक दोना कहते ह कि देश समृद्ध था। सम्राट् के पास विपुल सपत्ति थी जिससे उसने अपनी राजधानी में बडे ही सुदर भवन बनवाये, जो आज भी कलाप्रमिया के विस्मय तथा प्रशसा के विषय ह। अब्दुल हमीद लाहौरी लिखता ह कि राज्यारोहण के समय शाहजहाँ के पास दस करोड के रत्न थे। सम्राट् की विशाल सपत्ति से साधारण जन-समाज को कम लाभ नही होता था। उसके ऐश्वय तथा शान-शौकत के प्रेम से कारीगरो को बहुत काम मिलता था। लाहौर, आगरा, फतहपुर, अहमदाबाद, बुरहानपुर और काश्मीर के राजकीय कारखानो मे राजपरिवार तथा राजपुरुषो के लिए बहुमूल्य सुदर वस्त्राभूषण, चित्र आदि तयार किये जाते थे। फिर भी बाजारा म कारीगरो और मजदूरा से बेगार ली जाती थी। बर्नियर कहता ह कि अमीर कारीगरा को पूरी मजदूरी नही देते थे और कभी-कभी तो उचित मजदूरी के बदले कोडे ही मिलते थे। साम्राज्य की आर्थिक स्थिति क्षीण हो रही थी। बादशाह की इमारतो और युद्धो में बहुत-सा रुपया व्यय हो गया। अमीर और जागीरदार अशक्त होने लगे। अपव्ययता ने उन्ह भी दुबल कर दिया था। अब मुगल मनसबदारो की प्रतिभा पहले की सी न थी। न उनके पास अधिक रुपया ही था। सरकारी कमचारी किसानो से कठोरता के साथ रुपया वसूल करते थे। केन्द्रीय शासन का निरीक्षण भी कम हो रहा था। इस आर्थिक स्थिति का साम्राज्य के भविष्य पर बुरा प्रभाव पडा।

---

१ टवर्नियर का यह साक्ष्य पीटरमडी के साक्ष्य के सवथा विरुद्ध है।

शाहजहाँ का रोग ग्रस्त होना—१६ सितम्बर सन १६५७ ई० को शाहजहा को मूत्रकृच्छ्र एव मलावरोध से पीडित होकर शय्या की शरण लेनी पडी। दरबार में उसकी अनुपस्थिति से चारो ओर उसके मरने की अफवाह फैल गई। इससे जनता मे जो अशान्ति फली, उसको दूर करने के लिए उसको एक सप्ताह पश्चात् जनता को झरोखे से दशन देने पडे। परन्तु कमजोरी बनी ही रहा और चिकित्सको का उसके आराम होने की आशा न रह गई। अतिम समय आया जानकर बादशाह ने उत्तराधिकार-पत्र तयार करवाया और उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र दारा को अपने अमीरो तथा सरदारो के सामने लाकर अपना स्वामी समझने के लिए कहा। युवराज को उसने ऐसा आचरण अपनाने का उपदेश दिया जिससे भगवान प्रसन्न हो, प्रजा की अभिवृद्धि हो और किसानो तथा सेना की भलाई हो। दारा बादशाह के नाम पर शासन करने लगा, परन्तु चारो ओर का वातावरण शकापूर्ण हो उठा और विद्युत्गति म यह प्रवाद दश के कोने-कोने में फल गया कि बादशाह ने सदा के लिए आखे मूँद ली ह और दारा अपने राज्यापहरण के तथ्य पर पदा डाले हुए ह। चिकित्सको के परामश से शाहजहा जलवायु परिवतन के लिए १८ अक्टूबर के दिन आगरा चला गया और वहा किले मे रहने लगा, जहा उसको शेष जीवन, अपने अधिकार-लिप्सु पुत्र का, बदी बनकर बिताना था।

शाहजहाँ का परिवार—राजकुमारों का चरित्र—शाहजहां के दारा, शुजा, औरगजेब और मुराद यह चार पुत्र तथा जहानारा एव रोशनआरा नामक दो कन्याएँ थी। जहानारा दारा की प्रबल समथक थी और रोशनआरा अपने तीसरे भाई का पक्ष लेती थी और उसको महल की गति विधियो से परिचित रखती थी।

दारा, जो अभी-अभी ४२ वष की वय पूरी कर चुका था, धार्मिक विषयो में समन्वयवादी था। वह मुसल्मान सूफिया तथा हिन्दू वेदातियो का स्वच्छन्दतापूवक साथ करता था और ताल्मुद तथा न्यू टेस्टामेंट के सिद्धान्तो को एक जसी रुचि से सुनता था। ब्राह्मणो की सहायता स उसने उपनिषदो का फारसी में अनुवाद किया और उसन मानव-समाज को प्रतिपक्षी

वर्गों में विभाजित करनेवाले विरोधी सिद्धान्तों के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया।[1] उसकी दृष्टि में इस्लाम एवं हिन्दू धर्म के मूल सिद्धान्तों में कोई विरोध न था। कट्टर विचारधारा के प्रति उसमें सहानुभूति का अभाव सुन्नी सम्प्रदाय के धर्मोन्मत्त समर्थकों को उसका विरोधी बनाने के लिए पर्याप्त कारण था और यदि औरंगजेब ने उसके विरुद्ध अपने सहधर्मियों की घृणा एवं गर्हा को उभाडने में सफलता प्राप्त कर ली तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

दारा अपने पिता का सबसे प्यारा पुत्र था। वह सदैव दरबार में रहता था, और यद्यपि वह बातचीत में नम्र एवं लोक-व्यवहार में स्नेहपूर्ण था, परन्तु राजनीतिज्ञ के लिए उचित गुणों का वह विकास न कर सका था। अधिकार एवं वैभव ने उसको दम्भी बना दिया था और उसमें अपने हित-चिन्तक मित्रों तक के परामर्श के प्रति उपेक्षा का भाव उत्पन्न कर दिया था। युद्ध-कला से वह अपरिचित था और उसने समर-भूमि में कभी यशोपार्जन न किया था। सभासदों की चाटुकारिता ने उसको अपने दोषों के प्रति

---

१ दारा ने इस्लाम का त्याग नहीं किया था। औरंगजेब के घोषणा-पत्र में निम्न बातें बताई गई थीं—

(अ) वह (दारा) ब्राह्मणों, योगियों और संन्यासियों से वार्तालाप करता था, और उनको आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक समझता था। वह 'वेद' को ईश्वरीय पुस्तक समझता था और उसका अध्ययन करता था।

(आ) वह ऐसी अँगूठियाँ और आभूषण धारण करता था, जिन पर हिन्दी अक्षरों में 'प्रभु' खुदा होता था।

(इ) वह रमजान तथा दीन के अन्य विधानों की उपेक्षा करता था।

दारा ने कुछ पुस्तकें लिखी थीं, जिनमें से निम्नलिखित प्रसिद्ध हैं—

(१) सिर-उल्-असरार—यह उपनिषदों का अनुवाद है।

(२) सफीनत-उल्-औलिया, इसमें मुसलमान संतों की जीवनियाँ हैं।

(३) मजमुआ-उल-बहरीन, इसमें हिन्दू बहुदेववाद के शास्त्रीय शब्द और उनके समानार्थक सूफी शब्द दिये गये हैं।

अधा बना दिया था और सही निणय करने की उसकी शक्ति को पगु बना दिया था। औरगजेब जसे अभ्यस्त योद्धा एव निपुण कूटनीतिज्ञ के साथ खुले युद्ध में उसकी विजय की कोई आशा न रखी जा सकती थी।

शुजा सुसस्कृत रुचिवाला समझदार आदमी था। उसमें साहस की कमी न थी, परन्तु वह भोग-विलासो का दास था और अपने समय के अधिकाश अभिजात युवको के समान 'हरम' में स्त्रियो के साथ समय बर्बाद करता था। राज्य का कैसा भी आवश्यक काय उसको पान-गोष्ठियो से विरत न कर सकता था और न कोई भी सभासद उसकी उन दुष्प्रवृत्तियो का विरोध ही कर सकता था जिनको वह निलज्ज भाव से तृप्त करता रहता था। बगाल की जलवायु ने उसके शारीरिक बल को क्षीण कर दिया था और उसको कठोर परिश्रम के अनुपयुक्त बना दिया था। परन्तु उसमें मानसिक शक्तियो का पूणत अभाव न था और कभी-कभी तो सकट के समय वह ऐसी दृढता एव प्रगल्भता प्रदर्शित करता था कि लोगो को दातों तले अगुली दबानी पडती थी।

औरगजेब शाहजहा का योग्यतम पुत्र था। उसमे दारा जैसे आकषक व्यवहार एव सहिष्णु-वृत्ति का अभाव था, परन्तु उसकी निणय की शक्ति विकसित थी और अपने सम्पक में आनेवाले लोगो के स्वभाव को पहचान लेने की उसमें अद्भुत निपुणता थी। अपने मन के भावो को छिपाने की कला में वह निपुण था और उसके घनिष्ट मित्र भी उसके हृदय की गहराई मे न उतर सकते थे। राजनीति में वह पटु था, और शासन-प्रबन्ध का उसने खूब अनुभव प्राप्त कर लिया था। स्वभाव से वह धार्मिक प्रवत्ति का था और वही एक ऐसा व्यक्ति था जो दारा की सच्ची धार्मिक उदारता के विरुद्ध सुन्नी सम्प्रदाय को सफलतापूवक खडा कर सकता था।

मुराद राजनीति से सवथा अनभिज्ञ था। सुख भोगो में लिप्त रहना ही उसकी एक मात्र अभिलाषा थी और अपनी वासनाओ की तप्ति के लिए उसने कोई बात न छोडी थी। वह बहुत कुछ स्पष्टवक्ता था और गुप्त-मन्त्रणाओ से घृणा करता था। उसको इस बात का अभिमान था कि वह कोई बात छिपाकर नही रखता। परन्तु उसके चरित्र में कुछ ऐसी बातें भी थी जिनकी

प्रशसा किये बिना नही रहा जाता। वह उदारचेता एव स्नेही स्वभाव का था और अपने सेवको का सदव सरक्षण करता था। परन्तु ऐसा करने में वह सावधानी से काम न लेता था। उसमें साहस की कमी न थी और शत्रु को सम्मुख व्यूहबद्ध देखकर उसकी विलासिता लुप्त हो जाती थी। प्राणो का मोह छोडकर वह घमासान युद्ध के बीच घुस पडता था और शत्रु-दल में भयकर मारकाट मचा देता था। परन्तु उसमें नायकत्व के गुणो का अभाव था और उसकी व्यक्तिगत निर्भीकता योग्य, दूरदर्शी एव सगठन-कुशल सेनापतियो से नियन्त्रित सुसगठित सेनाओ के विरुद्ध कुछ काम न दे सकती थी। बर्नियर का यह कथन ठीक नही ह कि यदि वह थोडा विचारपूण होता तो अपने साहस के बल पर वह हिन्दुस्तान का निर्विरोध स्वामी बन जाता।

उत्तराधिकार के लिए युद्ध का प्रारम्भ—शाहजहा की मृत्यु की अफवाह साम्राज्य के कोने-कोने में फल गई और मुगलो में उत्तराधिकार निणय के निश्चित नियम न होने के कारण प्रतिद्वद्वी उत्तराधिकारियो ने तलवार के बल पर उत्तराधिकार निणय करने की तैयारियाँ कर दी। बादशाह की बीमारी के समय दारा उसके पास रहा और उसके नाम पर राजकाज चलाता रहा। खफी खाँ लिखता है कि "निजी स्वार्थों की सुरक्षा के लिए उसने मन्त्रियो से वचन ले लिया कि वह मन्त्रि-परिषद् में होनेवाले निणयो को प्रकाशित न करें और सदशवाहको एव यात्रियो के लिए उसने बगाल, अहमदाबाद तथा दक्षिण के माग बद कर दिये। अमीरो, जमीदारो तथा रैयतो को दारा का यह नीति विरुद्ध कार्य बहुत खला और सघष की सभावना से देश के प्रत्यक भाग में उद्दण्ड लोग सिर उठाने लगे।"[१]

जब शाहजहा के मरने की अफवाह प्रान्तो में पहुँची तो मुराद और शुजा ने क्रमशः गुजरात एव बगाल म शाही उपाधियाँ धारण कर ली और अपने नाम का 'खुतबा' पढवा दिया तथा सिक्के ढलवा लिये। दारा को सबसे अधिक भय औरगजब से था और उसने बादशाह पर जोर डाला था कि वह बीजापुर

---

१ इलियट—७, पृ०, २१४।

के घेरे मे औरगजेब की सहायता के लिए भेजे गये अमीरो तथा सेना-नायको को वापस बुला ले। मुराद ने एक विशाल सेना एकत्र कर ली और सूरत के बदरगाह को, जो जहानारा बेगम की जागीर मे था, लूटन के लिए उसने ६००० अश्वारोहियो का दल भेजा तथा उसके दीवान मीर अली नकी को अपने हाथो से मार दिया।

औरगजेब ने प्रतीक्षा करने का बहाना किया। मुराद को उसने जल्दबाजी के लिए झिडका और उसको समझाया कि शाहजहा की मृत्यु के समाचार की पुष्टि हो जाने तक वह रुका रहे। परन्तु मुराद ने इस बात पर जोर दिया कि विलम्ब करना घातक होगा। इन दोनो ने साम्राज्य को आपस में बाटने की सुल्ह कर ली। निश्चय हुआ कि मुराद को उत्तरी प्रान्त, पजाब, अफगानिस्तान, कश्मीर तथा सिंध मिलेंगे और शेष औरगजेब के अधिकार मे रहेंगे। दारा को 'काफिर' ठहराया गया और औरगजेब ने इसके बुरे प्रभाव से देश को मुक्त करने का अपना दृढ निश्चय प्रकट किया। बँटवारे की शर्तें गभीरतापूर्वक स्वीकार की गई और खुदा तथा पैगम्बर को इस सधि का साक्षी बनाया गया। मुराद ने गुजरात मे प्रयाण किया और वह उज्जैन के समीप दीपालपुर में औरगजेब से जा मिला। तब दोनो की सम्मिलित सेनाएँ उज्जन की ओर बढी और शत्रु से युद्ध करने के लिए धरमत नामक गाव में व्यूह-बद्ध हो गइ।

शुजा की प्रगति—शुजा ने राजमहल म अपना राज्याभिषेक किया और तब वह एक विशाल सेना लेकर, जिसमें नावो का एक बेडा भी सम्मिलित था, दिल्ली की ओर बढा। बिहार को रौंदते हुए वह २४ जनवरी १६५८ ई० का बनारस पहुँचा। दारा ने शुजा से निपटने के लिए अपने पुत्र सुलेमान शिकोह तथा राजा जयसिंह कछवाहा को भेजा। शाही सेना ने बनारस से ५ मील उत्तर-पूर्व की ओर बहादुरपुर नामक स्थान पर शुजा का सामना किया। शुजा पराजित हुआ और युद्ध भूमि मे भाग गया। जहाज में चढकर वह बगाल चला गया।

धरमत का युद्ध—१५ अप्रैल १६५८—दारा ने मुराद एव औरगजेब की सम्मिलित सेनाओ का सामना करने के लिए महाराज जसवतसिंह तथा कासिम खाँ को भेज दिया था। युद्ध रोकने के लिए दोनो पक्षो से प्रयत्न

गया, परन्तु यह प्रयत्न व्यर्थ रहे। धरमत में दोनो सेनाएँ जीवन के संघर्ष में जुट गई, परन्तु राजपूत हार गये और जसवन्तसिंह मारवाड़ को पलायन कर गया। परन्तु उसकी अभिमानिनी रानी ने उसके लिए महल के द्वार बन्द करा दिये थे क्योंकि वह अपनी जान बचाने के लिए रण भूमि से भाग आया था, जो कि राजपूती शान के विरुद्ध था। दारा ने बिहार से सुलेमान शिकोह को बुलाया, परन्तु वह बहुत विलम्ब से पहुँचा।

इस पराजय का सारा दोष राजा जसवन्तसिंह पर नही डाला जा सकता। उसके नायकत्व में एक ऐसी सेना थी जिसमें एकसूत्रता एव एकनिष्ठा का सर्वथा अभाव था। राजपूत सैनिक विभिन्न कुलो के थे जो अपने लिए विशेषाधिकार एव प्रमुखता चाहते थे तथा अपने नायक की आज्ञाओ का हृदय से पालन न करते थे। हिन्दुओ और मुसलमानो में तो भेद था ही और इनकी एक दूसरे से अलग रहने की प्रवृत्ति के कारण उस सेना का एक-नायकत्व न हो सका, जो कि विजय प्राप्त करने के लिए अनिवार्य था। मुसलमान सैनिक हिंदू सेनापति के नायकत्व मे युद्ध करना अपमानजनक समझते थे। अत एक ही सेना मे दो समान-अधिकारी नायक बन गए, जिसमे एक दूसरे की योजनाओ को विनाशकारी बाधा पहुँची। इन कमियो के अतिरिक्त शाही सेना के अधिकारी औरंगजेब से गुप्त सलाह करते रहे, जिससे वह और भी शक्तिहीन हो गई। धरमत की विजय से औरंगजेब की प्रतिष्ठा बहुत बढ गई और उसको बहुमूल्य युद्ध-सामग्री भी मिल गई। विजयी राजपुत्र ने आगरे की ओर प्रयाण किया और चम्बल को पार कर सामूगढ के मैदान में डेरा डाला।

सामूगढ की लडाई—२९ मई, १६५८ ई०—जसवन्तसिंह की सेना की पूर्ण पराजय का समाचार पाकर दारा हताश हो गया। शाहजहाँ, जो आगरा की गर्मी से बचने के लिए ११ अप्रैल, १६५८ ई० को दिल्ली के लिए रवाना हो गया था, बिलोचपुर से आगरा लौट आया और यहा औरगजेब को पूर्णत कुचलने की तैयारिया जोर-शोर से होने लगी। शाहजहा युद्ध नही चाहता था, परन्तु उसने अपने अधिकार का उपयोग करने तथा इस भ्रातृ-युद्ध को प्रारम्भ में ही समाप्त कर देने का कोई प्रयत्न न किया। वह दारा का इतना वशीभूत था कि अपने बडे भाई की शरारतो से तग आये हुए शाहजादो की शकाओ को दूर करने के लिए उसने थोडी भी सक्रियता न दिखाई। आखिर दारा की सेना, जिसमे लगभग ५०,००० सैनिक थे मई के अन्त तक सामूगढ के मैदान में पहुँच गई और युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गई। सेना के अग्र भाग म राजपूत थे और वाम तथा दक्षिण पार्श्व का नायकत्व क्रमश दारा का छोटा पुत्र सिपिर शिकोह तथा खलीलुल्ला खाँ कर रहे थे और मध्य भाग में स्वय दारा एक फौलाद से ढँके हुए हाथी पर सवार होकर डटा हुआ था। दारा की सेना की विशालता उसकी शक्ति एव कुशलता की परिचायक नही ह क्योकि दारा स्वय कोई निपुण सेनानी नही था और उसका नायक खलीलुल्ला उन लोगो में से था जो धन से खरीदे जा सकते ह और षड्यन्त्रो में मिलाये जा सकते हैं। राजपूतो का लडने का अपना ही ढग था और वह मुसलमान सैनिको से मेल न खाते थ। औरगजेब की सेना का नायकत्व वह अनुभवी हिन्दू तथा मुसलमान योद्धा कर रह थे, जो अनेक युद्धो में अपना रण-कौशल दिखा चुके थ। उसका तोपखाना भी दारा से अधिक सुसगठित था। औरगजेब के पक्ष में यह सब विशेषताएँ होने के कारण युद्ध का परिणाम पहले से ही निश्चित था।

बन्दूको तथा गोलो की मार से युद्ध आरम्भ हुआ और दोनो पक्षो से खूब बाण-वर्षा हुई। सिपिर शिकोह तथा रुस्तम खा १० या १२ सहस्र

खुलासत' के लेखक ने, जो समसामयिक ह, लिखा है कि आगरा युद्ध भूमि से १० कोस (२० मील) की पूरी पर था। लोकवार्ताओ से इस बात की पुष्टि होती ह कि सामूगढ आगरा जिले में वर्तमान फतहाबाद नामक स्थान ही ह।

अश्वारोहिया सहित बडे वेग से शत्रु-पक्ष में घुस पडे। शत्रु सेना में गडबड मच गई। परन्तु रुस्तम के हाथी को एक गोली लगी, जिससे वह जमीन पर गिर पडा और पुन आक्रमण की शका से रुस्तम पीछे हट गया। परन्तु इसी समय दोनो पक्षो की सहायता के लिए और सेना आ गई, जिससे लडाई में फिर गर्मी आ गई। रुस्तम खाँ परास्त हुआ और सिपिर शिकोह को पीछे ढकेल दिया गया।

रुस्तम की पराजय से विचलित होकर दारा सेना के मध्य भाग को लेकर, जिसमें २०,००० अश्वारोही थे, शत्रु सेना के विजयी दल पर टूट पडा, परन्तु वह पीछे हटा दिया गया। इसके बाद राजपूतो ने मुराद पर प्रचण्ड आक्रमण किया। मुराद का हाथी रण भूमि से भागने ही वाला था कि उसके पैरो को जजीरो से जकड दिया गया। राजा रामसिंह राठौर मुराद के हाथी पर झपटा और चिल्लाकर बोला, "क्यो! क्या तुम दारा शिकोह से राजगद्दी के लिए लड रहे हो?" तब राजपूत हाथी पर झपट पडे, परन्तु उनको काट डाला गया और उनके वस्त्रा से "पृथ्वी ऐसी पीली हो गई मानो कोई केशर की क्यारी हो।'

औरगजेब और मुराद, दोना ने अद्वितीय शौय प्रदर्शित किया और दारा के दल का बहुत क्षति पहुँचाई। घार निराशा में दारा हाथी से उतरकर घोडे पर सवार हुआ, परन्तु उसका हौदा खाली देखकर सेना में भय की लहर दौड गई और वह रणभूमि से भाग चला। औरगजेब की स्पष्ट विजय हुई और उसको चारा ओर से बधाइयाँ मिलने लगी। इस अकस्मात् पराजय से अवाक् दारा और सिपिर शिकोह ने आगरा का रास्ता लिया, जहा वह बहुत रात में पहुँचे।

औरगजेब ने दारा की छावनी में प्रवेश किया और उसकी युद्ध-सामग्री तथा तोपखाने पर अधिकार कर लिया। उसने मुराद का शासन पर अधिकार प्राप्त करने के लिए बधाई दी और उसके घावा के उपचार के लिए योग्य चिकित्सक नियुक्त किये।

दारा का आगरा की ओर पलायन—इस समय दारा की जो दुर्गति हुई उसका वणन शब्दो में नही किया जा सकता। उसके अधिकाश अनुयायी भूख और प्यास से तडपते हुए इस ससार से कूच कर गये। इस पराजय से दारा

इतना लज्जित हुआ कि वह शाहजहा तक से मिलने न गया। शाहजहा को भी अपने प्रिय पुत्र के इस दुर्भाग्य पर बहुत दुख हुआ। उसने दिल्ली के प्रांताध्यक्ष को तत्काल आदेश भेजा कि वह दुर्ग की समस्त सम्पत्ति दारा के हवाले कर दे। परन्तु भाग्य के तथा औरंगजेब के अनवरत दबाव के सामने यह सब आयोजन कुछ भी काम न दे सके।

औरंगजेब का आगरा की ओर बढना—सामूगढ़ में विजय प्राप्त कर औरंगजेब आगरा की ओर बढा और यहा पहुँचकर उसने नगर के बाहर 'बाग एन्नूर' में डेरा डाल दिया तथा शाहजहाँ के पास एक प्रार्थना-पत्र (अजदास्त) भेजा जिसमें उसने बादशाह से इस युद्ध के लिए, जिसके लिए उसके शत्रुओं ने उसको बाध्य किया था, क्षमा याचना की। बिगडी बात को बनाने के उद्देश्य से शाहजहा ने औरंगजेब को 'आलमगीर' नाम की एक तलवार, जो शुभ चिह्न मानी जाती थी, भेंट की और उससे मिलने की इच्छा प्रकट की। परन्तु औरंगजेब के मित्रों ने उसको बताया कि बादशाह ने उसकी जान लेने का कुचक्र रच रखा है। उन्होंने उसको समझाया कि उसकी सुरक्षा के लिए शाहजहा को बंदी बनाना आवश्यक था। औरंगजेब ने इस प्रस्ताव का स्वागत किया और राजकुमार मुहम्मद को, शाही संतरियों को हटाकर, किले पर अधिकार करने के लिए भेज दिया। किला घेर लिया गया। शाही सैनिकों ने वीरतापूर्वक प्रतिरोध किया, परन्तु जमुना से पानी लाने का मार्ग अवरुद्ध किये जाने पर उन्होंने हथियार डाल दिये।[१] बूढ़े बादशाह को

---

१ शाहजहा को जून की भीषण गर्मी में अपनी प्यास कुएँ के खारी पानी से बुझानी पडी। उसने औरंगजेब को एक करुणापूर्ण पत्र लिखा जिसमें उसने एक पद्य लिखा था जिसका अर्थ यह है —

हिन्दू सब प्रकार से प्रशंसनीय है,
क्योंकि वह सदैव अपने पितरों को जल पिलाते है।
और तू, मेरा पुत्र, एक अद्भुत मुसल्मान है
क्योंकि तू मुझे जीवित अवस्था में ही पानी के लिए तरसा रहा है।
औरंगजेब ने इसका उत्तर दिया "यह तुम्हारी अपनी करतूत है।"

'हरम' में बंद रहने के लिए विवश किया गया, जहाँ वह केवल कुछ निजी सेवकों से ही बातचीत कर सकता था। उसकी प्रिय पुत्री जहानारा भी उसके साथ बंदिनी बनी और उसकी अनन्य भक्ति भाव से सेवा करने लगी। उसने पिता पुत्र में मेल कराने का प्रयत्न किया, परन्तु उसके प्रयास विफल हुए। बादशाह का दारा के लिए लिखा गया एक पत्र, जिसमें उसने दारा को दिल्ली में ठहरे रहने के लिए लिखा था, धोखे से औरंगजेब के हाथ में पहुँचा दिया गया जिससे उसकी शंकाओं की पुष्टि हो गई। उसको विश्वास हो गया कि बादशाह दुरंगी चालें चल रहा है और अब उसने शान्ति और सुलह के परामर्शों की ओर से कान बिलकुल बन्द कर लिये।

मुराद का बंदी बनाया जाना—औरंगजेब अब साम्राज्य का वास्तविक स्वामी बन गया था। उसने एक बड़ा दरबार किया और उसके पदाधिकारियों एवं अनुयायियों ने उसको अपना स्वामी मानकर अभिवादन किया। परन्तु अपने भाई के इस आचरण से मुराद असन्तुष्ट हो गया। उसने २०,००० सैनिक एकत्र कर लिये और अपनी ही आज्ञाएँ चलाने लगा। औरंगजेब के आगरा से दिल्ली की ओर प्रस्थान करने पर मुराद ने भी उसका जैसा दरबार किया और एक नई प्रतिद्वंद्विता खड़ी कर, उस समय की गड़बड़ी को और भी बढ़ा दिया। *परन्तु औरंगजेब इससे निपटने के लिए खूब तैयार था।* उसने मथुरा में मुराद को एक सहभोज में आमंत्रित किया, जिसमें मुराद ने हार्दिक तृप्ति का आनन्द लिया। यहाँ भी मुराद की सबसे बड़ी कमजोरी—मदिरा, उसके लिए घातक सिद्ध हुई। शराब के नशे में चूर होकर वह गहरी नींद में सो गया और जब जागा तो उसने स्वयं को अपने भाई का बंदी पाया। उसके पैरों में सोने की बेड़ियाँ पड़ी थीं। बंदी बाघ की सी निष्फल उग्रता से वह छटपटाया, चीखा चिल्लाया और कुरान की पवित्र शपथ को तोड़ने के लिए औरंगजेब पर शापों की वर्षा करने लगा। बंदी राजपुत्र को ग्वालियर के दुर्ग में भेजा गया, जहाँ निकल भागने के कुछ विफल प्रयासों के पश्चात् उस पर अपने दीवान अली नकी के वध का दोष लगाकर प्राण दण्ड दिया गया। काजी के निर्णय को तत्काल कार्यान्वित किया गया और

अभागे राजपुत्र को उसके बन्दीगृह में ही मारकर, (१ दिसम्बर, १६६१ ई०) दुर्ग में दफन कर दिया गया।

औरंगजेब दिल्ली की ओर बढ़ता गया, जहाँ २१ जून, १६५८ ई० को उसने बादशाह का पद ग्रहण किया और 'आलमगीर' की उपाधि धारण की। राज्याभिषेक की परम्परागत प्रथाएँ कुछ समय के लिए स्थगित की गईं।

दारा का अंतिम प्रयास—दारा दिल्ली में अधिक दिन न ठहरा। वह पंजाब भाग गया। उसका विचार था कि वहा वह अपने प्राण घातक शत्रु के चंगुल से बच सकेगा। परन्तु औरंगजेब उसका पीछा कर रहा था। अत उसको गुजरात में शरण लेने के लिए बाध्य होना पडा। अहमदाबाद के प्राताध्यक्ष ने उसका स्वागत किया और उसको वह १० लाख रुपये सौंप दिये, जो मुराद के थे। इस धन से दारा ने २०,००० सैनिक एकत्र कर लिये और पुन औरंगजेब से मुठभेड करने की ठान ली। राजा जसवन्तसिंह राठौर ने दारा को शीघ्र अजमेर की ओर बढने के लिए आमन्त्रित किया और सहायता का वचन दिया। दारा तत्काल रवाना हो गया, परन्तु यह सुनकर कि जसवन्तसिंह औरंगजेब से मिल गया है उसकी आशाएँ भग्न हो गईं। राजा जयसिंह के प्रयत्नो से औरंगजेब ने राजा जसवन्तसिंह को क्षमा कर दिया था और उसको पुन मनसब दे दिया था। दारा ने राजा से अपना वचन निभाने की प्रार्थना की, परन्तु उसकी प्रार्थनाओ का कुछ भी असर न हुआ। अतत दारा ने देवराय की घाटी पर डटने का निश्चय किया, परन्तु यहा भी वह औरंगजेब की सेना से परास्त हुआ।

दारा का दादर की ओर पलायन—दारा को पुन पलायन करना पडा। वह गुजरात की ओर भागा, परन्तु औरंगजेब के अनुयायियो ने उसको थोडा भी विश्राम न करने दिया। तब वह अहमदाबाद पहुँचा, परन्तु यहाँ के प्राताध्यक्ष ने उसको नगर में प्रवेश न करने दिया। दर-दर की ठोकरें खाते हुए दारा ने दादर के बलूची सरदार मलिक जीवन के यहाँ शरण लेने का विचार किया। इस सरदार की उसने एक बार बादशाह के क्रोध से रक्षा की थी। दारा की पत्नी, पुत्री तथा पुत्र सिपिर शिकोह ने घुटनो के बल झुककर दारा से प्रार्थना की कि वह दादर न जाय, परन्तु दारा को विश्वास न हो सका

कि उसके प्रति ऐसी कृतज्ञता के दृढ वधन से बँधा हुआ "बलूची सरदार भी उसके साथ विश्वासघात कर सकता है[1]।" दारा की यह यात्रा बहुत विनाश-कारिणी सिद्ध हुई। उसकी पत्नी नादिरा बेगम, जिसने दुख में अनन्य भक्तिभाव से अपने पति का साथ दिया था, मार्ग में रोगग्रस्त होकर चल बसी और उसका शव उसकी इच्छानुसार लाहौर में दफनाने के लिए भेज दिया गया। खाफी खाँ लिखता है, "इस प्रकार दारा के हृदय पर आपत्तियो के पहाड पर पहाड टूट पडने लगे। दुख पर दुख, रज पर रज बढते गये, जिससे उसका मस्तिष्क अधिक समय तक सतुलन बनाये न रख सका।" बलूची सरदार ने शरण देने के स्थान पर उसको धोखे से औरगजेब के सरदारो के हाथ सौंप दिया। इस घोर विश्वासघात से दारा सन्न रह गया परन्तु दुर्भाग्य के सामने जिसने उसकी योजनाओ पर पानी फेर दिया था और मित्रो को शत्रु बना दिया था, उसकी कोई पेश न चल पाई। पिता-पुत्र—दोनो को बदी बनाकर दिल्ली ले जाया गया, जहा वह २३ अगस्त, १६५९ ई० को पहुँचे।

दारा का अपमान—दारा के पकडे जाने के समाचार से औरगजेब का मन प्रफुल्लित हो गया, परतु उसने बडी सावधानी से अपनी भावनाओ को छिपा लिया। जब इस समाचार की पुष्टि हो गई, उसने दारा को बदीगृह से बाहर लाकर उसका वर्णनातीत अपमान करने की आज्ञा दी। राजपुत्र दारा को उसके पुत्र सिपिर शिकोह के साथ एक मल-कुचले हाथी पर बिठाकर दिल्ली की सडको पर घुमाया गया। जिस राजपुत्र ने शाही जलूस के साथ, मुगल सम्राटो की सज धज में अनेक बार इस नगर में प्रवेश किया था, उसका यह परिणाम कितना हृदय-विदारक था। इस दृश्य से पाषाण हृदय भी पसीज उठे। बर्नियर ने इस दृश्य का आँखो देखा वर्णन इन शब्दो में किया है—

" और मैने सर्वत्र लोगो को रोते हुए और अत्यन्त मर्मस्पर्शी शब्दो में दारा के भाग्य पर दुख प्रकट करते हुए देखा। मैने नगर के प्रमुख भाग में एक बडे बाजार के बीच स्थान ग्रहण किया था, मैं एक अच्छे घोडे पर

१ बर्नियर—'ट्रेवल्स', पृ०, ९५-९६।

सवार था और मेरे साथ दो सेवक तथा मेरे दो घनिष्ठ मित्र थे। प्रत्येक दिशा से मुझे चुभनेवाली और दुख भरी चीखें सुनाई पड रही थी, क्योंकि हिंदुस्तानियो का हृदय बहुत कोमल होता है, पुरुष, स्त्रिया तथा बच्चे इस प्रकार दुख प्रकट कर रहे थे जैसे उन्ही पर कोई महान् आपत्ति टूट पडी हो। जिओनक्न (मलिक जीवन) हतभाग्य दारा के समीप सवारी पर चल रहा था और जैसे-जैसे यह विश्वासघातक आगे बढ रहा था, उस पर गालियो एव घृणापूर्ण शब्दो की जो बौछार हो रही थी वह पूर्णत बधिर बनानेवाली थी। मैने कुछ फकीरो तथा अनेक गरीब लोगो को इस कुख्यात पठान पर पत्थर फेंकते देखा, परन्तु इस प्रिय एव दयालु राजपुत्र को मुक्त करने के लिए कोई भी हलचल न की गई, किसी ने भी तलवार न खीची। जब यह अपमानजनक जलूस दिल्ली के प्रत्येक भाग में घूम चुका, तब बेचारे बदी को उसके ही एक बाग 'हैदर-आबाद'[१] मे बन्द कर दिया गया।"

इस घोर दुरवस्था में भी दारा के उदात्त गुण लुप्त न हुए। मनूची लिखता है कि जब यह राजपुत्र दुर्ग के सामने आया, एक फकीर ने चिल्ला कर कहा, 'ओ दारा! जब तुम मालिक थे, तब मुझे रोज दान दिया करते थे, आज मैं खूब जानता हूँ कि मुझे देने के लिए तुम्हारे पास कुछ भी नही है।' राजपुत्र ने फकीर की इच्छा पूर्ण की, अपने बदन से मैला-कुचला शाल उतारकर उसकी ओर फेंक दिया। परन्तु औरगजेब के सेना-नायक बहादुर खा ने, जिसने दारा को बदी बनाया था, शाल छीन लेने का आदेश दिया, और कहा कि बदी को कोई वस्तु देने का अधिकार नही है[२]।

दारा का दुखपूर्ण अन्त—दरबार ए-खास में इस विषय पर गरमागरम बहस हुई कि दारा के साथ कैसा व्यवहार किया जाये। दानिशमद खां ने उसको जीवित रहने देने की सिफारिश की परन्तु शायस्ता खां तथा अन्य अमीरो ने इस बात पर जोर दिया कि दारा काफिर है और विधर्माचारी का एकमात्र दण्ड मौत ही हो सकती है। रोशनआरा ने, जिसके मन में अपने इस घोर

---

१ खाफी खां ने खराबाद लिखा है। बर्नियर 'ट्रेवल्स' पृ० ९८-१००।

२ स्तोरिया दो मोगोर, १, पृ० ३५५।

शाहजहा का ३

ा भाव अब भी प्रबल था, शाइस्ता
विपन्नावस्था म पडे भाई के प्रति घृणा व का पूरा-पूरा लाभ उठाया गया।
खा का समर्थन किया। 'कुफ्र' के आरोपसे विमुख था। अत वह प्राण दण्ड
'उल्मा' ने निर्णय दिया कि दारा इस्लाम हार्दिक इच्छा की प्रतिध्वनि मान
का पात्र है। यह निर्णय औरगजेब की इन दोना बातो का सहारा लेकर
था और अब उसने कुफ्र तथा राज हित था। दारा ने सहायता की आशा में
दारा को समाप्त करने का निश्चय कर लि हृदय में ही उसके लिए दया न थी
चारा ओर निगाह घुमाई, परन्तु जब भाई सकी दया की प्रार्थना का औरगजेब
ता और क्या आशा की जा सकती थी ? उक्त और उपद्रव उत्पन्न करनेवाला
ने उत्तर दिया कि 'सिंहासन का अपहार उसके प्रति सहानुभूति थी, परन्तु
क्षमा का पात्र नहीं हो सकता।' जनता की थी। दिल्ली की सडको में उपद्रव
वह उसको बचाने के लिए कुछ न कर सकत्ण सकट में पड गये, परन्तु इस
अवश्य हुआ, जिसम मलिक जीवन के प्रा से निरीह बदियो की यातनाएँ
नये अधिकारारूढ विश्वासघाती के अपमा
और भी बढ गई। काय नजर नामक एक ऐसे दास

दारा तथा उसके पुत्र के वध का निमम सवथा अभाव था। जब उसने
को सौपा गया जिसम मानवीय भावो को रखा गया था, अलग करने की
दारा को उसके पुत्र स जा उसी कमरे मेगये और करुण-क्रन्दन करने लगे।
चेष्टा की तो पिता पुत्र एक दूसरे से चिपट हुए एक चाकू से दास पर हमला
दारा ने अपने सिरहाने के नीचे छिपाकर रखया परन्तु वह अकेला इन निष्ठुर
किया और अपनी जान बचाने का प्रयत्न किा। कुछ ही क्षणा में हत्या का
हत्यारो के सामन कब तक ठहर सकता म पूर्ण निस्तब्धता छा गई।
नृशस काय सम्पन्न हो गया और उस कमरोया। उसने सिर की पहचान कर

दारा का सिर औरगजेब के पास भेजा घुमाया जाये, जिससे जनता को
आज्ञा दी कि दारा का शव समस्त नगर में हिसा प्रतिशोध था जो औरगजेब
उसकी मृत्यु की पूर्ण प्रतीति हो जाये। वह य दुर्व्यवहार का लिया। दारा
न अपने प्रति किये गये कल्पित अथवा यथवह आज भी शाही वश के कुछ
को हुमायूँ के मकबरे म दफनाया गया, जहा दारा का दूसरी बार दिल्ली में
राजपुत्रो के साथ चिर निद्रा में सोया हुआ है।

अपमानपूर्ण ढंग से घुमाया जाना उसकी लोकप्रियता को सिद्ध करता है जिससे औरंगजेब जैसा योग्य एवं कट्टर सुन्नी भी इतना भयभीत था।

सुलेमान शिकोह—दारा ने सुलेमान शिकोह को शुजा से निपटने के लिए पूर्व की ओर भेज दिया था। धरमत के युद्ध का समाचार पाकर उसने शुजा से संधि कर ली और दिल्ली की ओर प्रयाण किया। कड़ा पहुँचने पर उसको सामूगढ़ में दारा की पराजय का समाचार मिला और शाहजहां का एक पत्र मिला, जिसमें उसको अपनी समस्त सेना अपने पिता की सहायता के लिए वापिस लाने के लिए लिखा गया था। राजकुमार ने सेना-नायकों को अपने साथ चलने के लिए कहा, परन्तु राजा जयसिंह ने हारते हुए दल में रहने से स्पष्ट इनकार कर दिया। बारह के सयदों के परामर्श से वह इलाहाबाद आया और यहां से लखनऊ तथा मुरादाबाद होता हुआ हरद्वार की ओर बढ़ा जिससे वह पंजाब में अपने पिता से मिल सके। परन्तु शाइस्ता खां ने उसका पीछा किया और उसको गढ़वाल में खदेड़ दिया। अपने प्रतिद्वंद्वियों को समाप्त कर लेने पर औरंगजेब ने सुलेमान शिकोह की ओर ध्यान दिया और गढ़वाल के राजा से, जिसके यहां सुलेमान ने शरण ली थी, सुलेमान की मांग की। राजा ने औरंगजेब की इच्छा पूर्ण करना अस्वीकार कर दिया, परन्तु उसका पुत्र औरंगजेब की धमकियों में आ गया। सुलेमान ने लद्दाख भाग जाने का प्रयत्न किया परन्तु राजा जयसिंह का पुत्र रामसिंह उसको पकड़कर सलीमगढ़ ले आया। (२ जनवरी, १६६१ ई०)

सुलेमानशिकोह जंजीरों में जकड़कर भरे दरबार में औरंगजेब के सामने लाया गया। इस रूपवान युवक राजकुमार की ऐसी दुर्गति देखकर उसके चाचा को छोड़कर, जो किसी भी प्रतिद्वंद्वी को जीवित न देख सकता था, सबके हृदय द्रवित हो गये[1]। राजकुमार ने बादशाह को अभिवादन किया और

---

१ बर्नियर ने इस दृश्य का बड़ा करुणापूर्ण वर्णन किया है। (पृ० १०५५) उसने 'पोस्त' द्वारा धीरे धीरे विष प्रवेश कराकर मारने की प्रणाली का भी वर्णन किया है। मुगलकाल में यह प्रथा बहुत प्रचलित थी। उसने लिखा है कि "यह पेय अपने भाग्यहीन शिकार को निर्बल बना देता है, जो धीरे धीरे

प्रार्थना की कि 'पोस्त' द्वारा धीरे-धीरे मारे जाने की अपेक्षा वह तत्काल मृत्यु चाहता है। औरंगजेब ने बड़ी गंभीरता से वचन दिया कि उसको 'पोस्त' न दिया जायगा और आश्वासन दिया कि वह इसकी चिन्ता न करे। राजकुमार ने पुनः अभिवादन किया। दूसरे दिन उसको ग्वालियर के दुर्ग में भेज दिया गया। वहां एक अंधकारमय यातनागृह में उसको प्रतिदिन प्रातःकाल वह 'भयंकर पेय' ('पोस्त') मृत्यु-पर्यन्त दिया जाता रहा[1]। जान पड़ता है, स्वेच्छा से अत्यन्त गंभीरतापूर्वक दिये गये पवित्र वचन को तोड़ने में औरंगजेब की नैतिकता को कोई आघात न लगा।

शुजा—बहादुरपुर के युद्ध के पश्चात् शुजा पटना भाग गया और वहां से मुंगेर चला गया। परन्तु सुलेमान शिकोह ने उसका पीछा न छोड़ा, और अंततः संधि कर ली गई (मई, १६५८) जिसके अनुसार बंगाल, उड़ीसा और मुंगेर से पूर्ववर्ती बिहार को शुजा के पूर्ण प्रभुत्व में रखा गया। दिल्ली में सिंहासनारूढ़ हो जाने के बाद औरंगजेब ने शुजा को एक पत्र लिखा जिसमें उसने प्रगाढ़ भ्रातृ-प्रेम प्रकट किया और वचन दिया कि दारा शिकोह से निपट लेने के बाद शुजा जो कुछ भी चाहेगा, उसको दिया जायगा। शुजा औरंगजेब की चालों को खूब जानता था, अतः उसकी बातों में न आकर उसने युद्ध की तैयारी कर ली। खजवा[2] नामक स्थान पर घमासान युद्ध हुआ (जनवरी, १६५९) जिसमें शुजा पूर्णतः परास्त हुआ।

औरंगजेब की सेना से पीछा किये जाने पर शुजा बंगाल भाग गया और

शक्ति एवं बुद्धि खोने लगते हैं, निष्क्रिय एवं संज्ञाहीन बन जाते हैं और अंततः मर जाते हैं।"—ट्रैवल्स—पृ० १०७।

१ मई, १६६२ ई० में 'उसके पहरेदारों के उद्योग से वह दूसरे लोक को भेज दिया गया।'

२ खजवा उत्तर प्रदेश के फतहपुर जिले में उत्तरी रेलवे पर बिंदकी रोड स्टेशन से ५ मील दक्षिण-पश्चिम की ओर स्थित है।

वहाँ से भी अराकान चला गया, जहा स्थानीय शासक को पदच्युत करने का षड्यत्र रचने के कारण मग लोगो न उसका वध कर दिया[१]।

औरगजेब की सफलता के कारण—उत्तराधिकार-युद्ध में औरगजेब अपन प्रतिद्वद्विया से बाजी कसे मार ले गया? मुसलमान इतिहासकारा ने उसके 'इकबाल' पर बहुत जोर दिया है, परतु आधुनिक इतिहासकार को उसकी सफलता की व्याख्या भिन्न प्रकार से करनी पडेगी। औरगजेब के द्रुत उत्थान का श्रेय इतना अन्य किसी बात को नही प्राप्त होता जितना कि शाहजहा की निबलता एव अयोग्यता को। शाहजहा की बीमारी के कारण ही उसकी मृत्यु की अफवाह फली और दारा के राजनीति विरुद्ध कार्यो न इसकी पुष्टि की। दारा ने यातायात के सब माग बन्द कर दिय और अन्य राजपुत्रो के दिल्ली में स्थित अपने-अपने अमीरो एव समथको को भज गय पत्रा का बीच मे ही पकडने के लिए अपने आदमी नियुक्त कर दिये। हम शाहजहा को इस बात के लिए दोषी नही ठहरा सकते कि उसने एसी अवस्था में जब चिकित्सको को उसके स्वस्थ होन की कोई आशा न रह गई थी, दारा को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था, क्याकि मुगलो में भी पहले से ही उत्तराधिकारी नियुक्त कर देने का सिंहासन के उत्तराधिकार-निणय पर जाने अनजाने असर पडता ही था। उस समय साम्राज्य के विभाजन का कोई प्रश्न ही न था और शाहजहा केवल यही कर सकता था कि अपनी मृत्यु की सम्भावना के समय दारा के उत्तराधिकार का निश्चाक बना दे। परन्तु जब वह दस सप्ताह पश्चात स्वस्थ हो गया था, उसको चाहिए था कि वह शासन अपने हाथ मे ले लता और राजपुत्रो के अधिकार छीनने के प्रयत्ना का दमन कर देता[२]।

---

१ खाफी खा लिखता ह कि "अराकान म शुजा बिलकुल लापता हो गया।" उसके मगो द्वारा मारे जाने की सूचना सर यदुनाथ सरकार ने जान टाक नामक एक डच व्यापारी के वणन से प्राप्त की है।

हिस्ट्री ऑव औरगजेब, १, पृ० ६११-१२।

२ प्रो० यदुनाथ सरकार ने लिखा ह (हिस्ट्री आव औरगजेब, जि०

'खुलासत-उत-तवारीख'—के लेखक का कहना है कि बादशाह ने दारा को लडाई छेडने से मना किया और समझाया कि औरगजेब आदि के राजधानी मे आने से कोई भी क्षति न होगी, परन्तु इससे अधिक उसने कुछ भी न किया[१]। सम्भव है, दारा ने उसको उसकी मृत्यु के झूठे समाचार से उत्पन्न निराशा से अवगत नही कराया। धरमत के युद्ध के पश्चात् भी, जब कि उसको स्थिति की गभीरता का ज्ञान हो जाना चाहिए था, वह औरगजेब से मिलने के लिए, जो आगरा से थोडी ही दूर चम्बल के किनारे टिका हुआ था, हिला-डुला तक नही। यदि वह रुग्णता से उत्पन्न निबलता के कारण कही नही जा सकता था, तब भी उसको इस स्थिति का सामना करने के लिए युद्ध-समिति का आह्वान करना और उन सरदारो तथा अमीरो को, जिनकी निष्ठा अभी तक अविचलित थी, अपनी ओर खीच लेना उचित था। परन्तु दुर्भाग्यवश वह वस्तु स्थिति की वास्तविकता न समझ सका और दारा का समर्थन करता रहा जिससे दूसरे राजपुत्र उसके प्रति सशक हो गये और उसके न्याय में श्रद्धा खो बठे। अभी तक वह लोकप्रिय था और यदि वास्तव में सिंहासन को अपने ही अधिकार में रखना चाहता और राजपुत्रो की महत्वाकाक्षा को दबाने का निश्चय प्रकट करता, तो उसको सिंहासनच्युत करना राजपुत्रो के लिए अत्यन्त कठिन होता।

दारा स्वय योग्य सेनानी न था। पिता के लाड-प्यार में पलने के कारण तथा चाटुकारिता के प्रेम एव आत्म श्लाघा को बढानेवाली परिस्थितियो से

१, पृ० २८३) कि "नवम्बर के मध्य तक शाहजहा पूर्णत स्वस्थ हो गया था और जो महत्त्वपूर्ण बातें अब तक उससे दूर रखी गई थी, अब और अधिक समय तक छिपाई न जा सकती थी।"

१ 'खुलासत' म लिखा है कि जब औरगजेब चम्बल के निकट पहुँचा, शाहजहाँ ने दारा को धौलपुर में कहला भेजा कि वह औरगजेब से लडाई न छेडे, और यद्यपि बादशाह कमजोर था, वह युद्ध रोकने के लिए युद्ध-क्षेत्र में जाना चाहता था। शाही 'पेशखाना' आगे बढा, परन्तु दारा ने ब के कहने पर कुछ भी ध्यान न दिया और युद्ध की तयारी कर ली।

घिरे होने के कारण वह उन गुणो का विकास न कर पाया था जो प्रतिद्वन्द्वितामय युद्ध में विजय दिलाते हैं। सामूगढ की पराजय के पश्चात् उसकी असहायावस्था उसकी सामरिक तथा कूटनीतिक अयोग्यता की परिचायक है। राजा जसवत सिंह पहले तो औरगजेब के सधि के प्रस्तावो का तिरस्कार करता रहा और युद्ध करने पर तुला रहा। अपनी इस मूर्खता को वह समय रहते न समझ पाया और उसके इस तिरस्कार ने औरगजब को अपनी पूरी शक्ति लगा देने के लिए उत्तेजित कर दिया। दारा की सेना भी सुसगठित न थी। उसके सैनिक-दलो में पारस्परिक भेद-भाव और मनमुटाव था। यद्यपि राजपूतो में शौर्य की कमी न थी, परन्तु प्रमुखता एव प्रतिष्ठा की उनकी विचित्र भावनाओ ने उनके वीरतापूर्ण प्रयत्नो पर पानी फेर दिया था। दारा के पक्ष के मुसलमान विश्वासघाती एव भ्रष्टाचारी थे और धन एव सम्मान का प्रलोभन पाकर शत्रु-पक्ष में मिल जाते थे। औरगजब का कोई भी प्रतिद्वद्वी कूटनीति, शासन की योग्यता और सैन्य-सचालन में उसकी बराबरी न कर सकते थे। उत्तराधिकार युद्ध में उसकी विजय—विलासिता पर कर्मण्यता की, निष्क्रियता पर साहसिकता की तथा अव्यवस्था एव विश्रृखलता पर सघटन एव अनुशासन की विजय थी।

औरगजेब की सेना युद्ध-सामग्री से सुसज्जित थी और वह निरन्तर विपक्ष से लोगो को अपने पक्ष में खीचता रहा। उसका व्यक्तिगत शौर्य उसके खूब काम आया और उसकी कूटनीतिक चाल चलने की क्षमता तथा सेना की व्यूह रचना करने की दक्षता ने उसकी शक्ति को अत्यधिक बढा दिया। उसकी निर्भीकता एव साहस ने उसके सैनिको में भी वीरता जगा दी और उन्होने बहुत कष्ट सहिष्णुता एव दृढता प्रकट की। इसके अतिरिक्त कट्टर सुन्नी सम्प्रदाय का समर्थक होना भी उसका बल बढाने का कारण हुआ। दारा के धर्म विरुद्ध आचरणो एव हिंदुओ से घनिष्ठ सम्पर्क का ढिंढोरा पीटकर उसने कट्टरपथियो के हृदय जीत लिये थे। स्वय शाहजहा की नीति ने प्रतिक्रिया को बल दिया था और कोई आश्चर्य नही यदि दारा के शाही सम्मान ग्रहण करने के लाभ तथा हानियो पर विचार कर साम्राज्य के अमीर और सरदार मुसलमान हितो के प्रति चिन्तित हो उठे हो। वास्तव में, शाहजहाँ का

पतन उस धर्मोंमाद के कारण हुआ जिसको उसने अकबर तथा जहाँगीर की नीति का त्याग कर उभाड दिया था। उसको सदा दारा का समर्थन करते देखकर सुन्नी लोग चिन्तित हो उठे थ और उसका विरोध करना उचित समझने लगे थे।

शाहजहाँ की प्रजा मे दारा की लोकप्रियता किसी काम न आई। यह वह समय था जब नेता ही सब कुछ थे और जनता की कोई पूछ न थी। जनता ने दारा के लिए आँसू बहाये, मलिक जीवन के प्रति घृणा प्रकट करने के लिए एक छोटा-मोटा उपद्रव भी हुआ, परन्तु इस दुर्भाग्य-ग्रस्त राजपुत्र की रक्षा के लिए वह इससे अधिक कुछ न कर सकी। सरदारो तथा पदाधिकारियो की निष्ठा किसी सिद्धान्त पर अवस्थित न थी। वह विजयी तथा कमण्य व्यक्ति के प्रति भक्तिभाव प्रकट करने में देर न लगाते थे। इन लोगो का अपने पक्ष में बनाकर, औरगजेब को जनता की सम्मति की उपेक्षा करने और सगोत्रता के स्वाभाविक अधिकारो को ठुकराने में कोई कठिनाई न हुई।

शाहजहाँ के अन्तिम दिन—आगरा के किले में शाहजहा पर कडी निगरानी रखी जाती थी और यहा उसको अपनी पुत्री जहानारा के साथ आठ वष बन्दी बनकर काटने पडे। उसने मुक्त होने के व्यथ प्रयत्न किये, इनसे उसके शत्रु और भी सतक हो गये जिससे उसका दुख और यातनाएँ और अधिक बढ गईं। साधारण सुविधाएँ तक उसको अप्राप्य हो गईं। कोई भी आदमी औरगजेब के दूता की अनुपस्थिति में उससे न मिल पाता था और उसके सब पत्र उसके पास पहुँचने से पहले ही खोल लिये जाते थे। बाद में उसको अपने हाथ से चिट्ठिया लिखने की मनाही कर दी गई और अब एक बादी से उसको अपने पत्र लिखाने पडते। एक बार जब उसको एक जोडी जूते की आवश्यकता हुई तब उसको "ऐसे जूते दिये गये जो न आठ रुपये के थे, न चार के और न दो के, वरन् चमडे के साधारण जूते थ"[१]। आगरा किले मे रखे हुए जवाहरात के विषय में औरगजेब ने उसके साथ बहुत कटु पत्र व्यवहार किया। इन जवाहरात को औरगजेब

१ स्तोरिया दो मोगोर, २, पृ० ७७।

के आदमियो ने ताले में बन्द कर मोहरबन्द कर दिया था, यद्यपि बूढे बादशाह को अपने इस बहुमूल्य सग्रह पर कभी-कभी नजर डालने की आस दी जाती थी।[१] परन्तु 'हरम' म रखे हुए व्यक्तिगत कोष पर शाहजहा का पूर्ण अधिकार था। ट्रेवर्नियर लिखता ह कि जब अपने राज्याभिषेक के समय औरगजेब ने शाहजहा से उसके कुछ आभूषण इस उत्सव की शोभा बढाने के लिए माँगे, तो शाहजहा ने अपना घोर अपमान समझा और वह इतना क्रुद्ध हुआ कि बहुत दिना तक पागला जसा व्यवहार करता रहा और जान पडता था जैसे उसकी जान निकल गई हो। एक बार उसने अपने रत्नो को पीस डालने की धमकी दी, परन्तु जहानारा ने उसको एसा करने से रोक दिया।[२] औरगजेब न उस पर दारा का पक्ष लने और कुशासन का आरोप किया और भ्रातृ-युद्ध का सारा दोष उसी पर डाला। वह इस बात पर जोर देता रहा कि उसको अपनी तथा इस्लाम की रक्षा के लिए इस युद्ध में बाध्य होकर भाग लना पडा था और शाहजहा जैसे बादशाह को निर्विरोध ईश्वरेच्छा स्वीकार कर लेना ही शोभा देता था। अधिकार-च्युत बादशाह को इन दोषारोपो से समवेदना होती थी। वह अपने इस पुत्र को सिंहासन का अपहरण करनेवाला डाकू कहा करता था—जिस सिंहासन पर उसका वध अथवा नतिक कोई भी अधिकार न था—और उस पर कपटी होने का दोष लगाता था। परन्तु जसे उसकी प्रार्थनाएँ व्यर्थ थी वैसे ही यह निदाएँ भी औरगजेब पर कोई प्रभाव न डाल सकी और मुगल-वश के इस सर्वाधिक वभव सम्पन्न शासक ने 'रो धोकर सो जानवाले शिशु के समान शिकायते करना भी बन्द कर दिया।"

उत्तराधिकार-युद्ध में शाहजहा की प्रिय सतानें मारी गई थी, परन्तु

---

१ सरकार, ३ प० १३०। आगरा के किले के हाथ में आने पर औरगजेब ने समस्त जवाहरात एव सम्पत्ति पर कब्जा कर लिया था (८ जून, १६५८)। राजकुमार मुहम्मद को इन सब वस्तुओ की एसे ढग से *व्यवस्था* करने को कहा गया जिससे शाहजहाँ का मन न दुखने पाय।

२ ट्रेवल्स—१, पृ०, ३७१।

उसने दुर्दैव के इन आघातों को अति धैर्य एवं क्षमा से सहन किया यह प्रशंसनीय है। दुःख के इन दिनों में वह ईश्वर की कृपा में रहा और ईश्वर-चिन्तन एवं प्रार्थना में समय बिताता रहा। कन्नौज के सैयद मुहम्मद तथा जहानारा इन दो पवित्रात्माओं के निरन्तर सहवास ने उसके दुःखों को हल्का कर दिया और उसको जीवित रखा। जहानारा ने अपने भाग्य-हीन पिता के प्रति सच्चा स्नेह एवं भक्तिभाव प्रदर्शित किया। वह [illegible] के साथ उसकी देख रेख करती रही और भाग्य के निष्ठुर आघातों को भुलाने की चेष्टा करती रही। १६६६ ई० में वह फिर बीमार पड़ा और सबको निश्चय हो गया कि उसका अन्तिम समय आ पहुँचा है। उसकी चेतना अन्तिम क्षण तक बनी रही, और धीमी आवाज में उसने अपने अन्तिम संस्कार की विधि के विषय में जहानारा को समझा दिया। सब उत्तराधिकार-पत्र बनवाकर तथा जहानारा को अपनी स्त्रियों तथा सेवकों के प्रति दयापूर्ण व्यवहार बनाये रखने का भार सौंपकर, ७४ वर्ष की अवस्था में, ताजमहल पर आँख गड़ाये हुए, उसने २२ जनवरी १६६६ ई० को शरीर त्याग दिया। मरते समय उसने ताजमहल में दफनाये जाने की इच्छा प्रकट की थी। जहानारा उसके जनाजे को मकबरे तक राजकीय ठाठ से ले जाना चाहती थी, परन्तु औरंगजेब ने उसकी यह इच्छा पूरी न होने दी। औरंगजेब आखिरी साँसें गिनते हुए शाहजहाँ को देखने तक न आया और जो कभी महान् 'शाहंशाह' था वह शाहजहाँ अन्तिम विश्राम-स्थल पर बाँदियों तथा निम्न-वर्ग के लोगों द्वारा, मुसम्मन बुर्ज के नीचे किले की दीवाल को तोड़कर बनाये गये, एक अप्रधान द्वार से "ऐसे ढंग से ले जाया गया जो अन्य बादशाहों के समान न था और उसके वंश-गौरव के अनुरूप न था।"

अन्तिम संस्कार बहुत साधारण ढंग से किया गया। मनूची लिखता है कि जहानारा ने २,००० स्वर्ण-मुद्राएँ निर्धनों में बखेरने के लिए भेजीं परन्तु औरंगजेब ने यह कहकर कि बन्दियों को कुछ भी देने का अधिकार नहीं है वह धन छीन लिया[1]। इससे अधिक और क्या उद्दण्डता हो सकती है?

१ स्टोरिया दो मोगोर, २, पृ० १२६।

पिता को उसके मर जाने पर भी बादियों एव दासों की कृपा पर छोड देना कभी भी न्याय-संगत नहीं कहा जा सकता। औरंगजेब की चाहे जैसी भी भावनाएँ रही हो, परन्तु शाहजहाँ की मृत्यु से आगरा नगर शोकमग्न हो गया, और लोग दिवगत बादशाह के महान् कार्यों का स्मरण करने लगे। एसे दयालु एव न्यायी शासक के निधन का, जिसने कभी किसी को न सताया था, सर्वत्र शोक मनाया गया और मुसलमान इतिहासकार लिखता है कि "बाजारो तथा कूचो के प्रत्येक मकान से शोक की चीखें उठने लगी।" इस अवसर पर जहानारा की भावनाओं की कल्पना ही की जा सकती है, उनको शब्दों में व्यक्त करना सभव नहीं।

एक महीने बाद औरंगजेब ने किले में प्रवेश किया और यदि मनूची का वर्णन सत्य माना जाये, तो बेगम जहानारा ने उसको शाहजहाँ का वह क्षमा पत्र जो बेगम ने अपने भाई के लिए उससे प्राप्त किया था और उसके जवाहरात औरंगजेब को दे दिये। औरंगजेब ने इस पत्र की यथार्थता की जाँच करने का कष्ट न उठाया और 'जनता को अपने कार्यों का औचित्य जतलाने के लिए' इसको पर्याप्त समझा। बेगम साहिबा (जहानारा) से दिल्ली चले जाने की प्रार्थना की गई और उन सम्मानो तथा गौरवो पर उसका अधिकार रहने दिया गया, जिनका वह अपने पिता के समय उपभोग करती थी। दिल्ली मे यह गौरवशालिनी राजपुत्री ६ सितम्बर, १६८१ ई० में अपनी मृत्यु-पर्यंत "दरबार म सर्वप्रमुख महिला' के पद पर बनी रही। धर्म-परायणता एव दानशीलता के कारण उसने बहुत ख्याति प्राप्त की और मियाँ मीर की श्रद्धालु शिष्या के रूप में ईश्वर चिंतन एव प्रार्थना म समय बिताती रही। मरने पर उसको उसके पूज्य संत निजामुद्दीन औलिया के मकबरे में दफनाया गया और उसकी कब्र पर जो सीधा सादा अभिलेख खुदा है वह आज भी उसकी धर्म-परायणता एव हृदय की कोमलता का परिचय दे रहा है।[१]

---

१ जहानारा की कब्र पर यह अभिलेख है—

अनुवाद—"वह (ईश्वर) जीवित एव स्वयं प्रतिष्ठित है। मेरी कब्र को हरी घास को छोड और कोई चीज न ढकने पाये, क्योंकि निम्नवर्गीय लोगों

शाहजहाँ का चरित्र एव व्यक्तित्व—बदी बनने के अवसर पर शाहजहाँ की अवस्था ६६ वष की थी। इतिहास में बहुत थोडे लोगो को इतनी कठोर धय-परीक्षा देनी पडी है, जसी इस सर्वाधिक वैभव-सम्पन्न मुगल सम्राट् ने दी। उसके आनदोपभागो के समान उसकी यातनाएँ भी विलक्षण थी। वभव के उच्चतम शिखर से वह अकस्मात् निरीह बदी की स्थिति में जा पडा था। अमीन काजवीनी की कलम से हमें उसका जो चित्र प्राप्त हुआ है उससे जान पडता है कि वह आकपक व्यवहारवाला रूपवान पुरुप, सस्कृति एव सुरुचि में अपने समय के लोगो मे सवश्रेष्ठ तथा धार्मिक एव सामाजिक कत्तव्यो के प्रति निष्ठावान् था। वह साधारणतया लम्बे कद का तथा बहुत कुछ गारे रग का था। उसका ललाट प्रशस्त, आखें काली तथा कान और नाक न बहुत लम्बे न बहुत छोटे ही थे। उसकी दाईं आख में, चारो उँगलियो पर तथा बायें पैर के तल्वे में तिल थे और नाक के समीप आँख के नीचे एक बडा मसा था, जो शुभ चिह्न समझा जाता था।

शाहजहाँ के जीवन का नाटक जो अनुपमेय वभव एव आनन्दोल्लास के दश्यो के बीच प्रारम्भ हुआ था, यूनानी दु खान्त नाटको के समान समाप्त हुआ। उसको उच्चवर्गीय जीवन की मधुरता एव कटुता का समान रूप से आस्वाद लेना पडा और दुर्दैव द्वारा दिये गये दुखो को धयपूवक सहना पडा। बचपन मे वह अपने पितामह अकबर का स्नेह भाजन था, जो सलीम

की कब्र ढकने के लिए घास पयाप्त होती ह। चिश्त के ख्वाजाओ की शिष्या तथा शासक एव दीन के सरक्षक शाहजहा की पुत्री, विनीत एव मरणधर्मा जहानारा। खुदा अपन निर्देशो को प्रकाशित करे। साल १०९२ (१६८१ ई०)।"

जहानारा का जन्म २१ सफर, १०२३ हि० सन् (२ अप्रल, १६१४ ई०) में हुआ था। उसको पहले बेगम साहिबा की उपाधि दी गई और तब बादशाह बेगम की और बहुत समय तक वह शाही 'हरम' की प्रमुख रमणी रही। जब औरगजेब ने शाहजहाँ को वन्दी बनाया, जहानारा स्वेच्छा से बदीगृह में उसके साथ रहने लगी। ३ रमजान, १०९२ हि० (१६ सितम्बर, १६८१ ई०) को उसका देहान्त हुआ।

से बहुधा कहा करता था कि यह तुम्हारे पुत्रो में सबसे अच्छा है। बालक शाहजहाँ ने भी वृद्ध सम्राट् के प्यार का पूरा-पूरा बदला दिया था और मृत्यु-शय्या पर भी उसका साथ न छोडा था। ४ वष, ४ मास, ४ दिन की अवस्था मे उसका विद्यारम्भ किया गया और उसको पढाने के लिए मुल्ला कामिम बेग तबरेजी, हकीम दरवाई, शेख अब्दुल खर तथा शख मूफी जसे योग्यतम अध्यापक नियुक्त किय गये और बुद्धि तीव्र होने के कारण उसन अल्पकाल में ही बहुत उपयोगी ज्ञान सचित कर लिया। चौबीस वष के वय तक उसने मदिरा का स्पश तक न किया था और जहाँगीर ने अपने सस्मरण में लिखा ह कि उसको पहली बार मदिरापान करने के लिए बडी मुश्किल से मनाया गया। वह उन सब पुरुपोचित व्यायामो का अभ्यास करता था, जिनमें उस समय के राज-परिवार के युवक आनन्द लते थे। आखट, तलवार चलाना, गज युद्ध तथा घुडसवारी का उसको अत्यधिक चाव था और शासक के कत्तव्यो मे व्यस्त रहते हुए भी वह आखेट के लिए समय निकाल ही लेता था। राज-परिवार के अन्य युवको के समान उसमें भी सैनिकोचित गुण थे। मेवाड तथा दक्षिण के युद्धो मे उसने रण-कौशल दिखाया था परन्तु सिंहासनारूढ होने के बाद उसकी सामरिक सफलताएँ अधिक महत्त्वपूण अथवा द्रुत न रही। बल्ख, कन्दहार एव दक्षिण में उसके सामरिक प्रयत्न सनिक दृष्टि से असफल ही रहे। सनिक के गुणो के साथ-साथ उसमें साहित्यिक परिष्कृति भी थी। वह फारसी म धाराप्रवाह रूप से बातचीत कर सकता था और इस भाषा से अनभिज्ञ लोगो के साथ वह हिन्दी में बात करता था। बचपन में रुक्य्या बगम द्वारा लालन-पालन किये जाने के कारण, उसको तुर्की भाषा बोलन का भी अभ्यास हो गया था और वह तुर्की शब्दो का सरलता से समझ लता था। उसकी लिखावट बहुत सुन्दर थी। कविता तथा गीत सुनन में उसको रुचि थी और चित्र-कला की ओर उसका बहुत झुकाव था। वह सगीत विद्या का महान् सरक्षक था और स्वय भी अनक वाद्य-यत्र बजाना जानता था। अपने कारखाना में बननेवाली वस्तुओ म उसने अपनी निर्माण प्रतिभा का परिचय दिया। स्वभाव से ही वह कला, सौन्दय एव वभव का प्रेमी था। वह स्वच्छता बहुत

पसन्द करता था और इत्रो का अत्यधिक प्रयोग करता था। स्वच्छता का उसको इतना अधिक ध्यान रहता था कि हीरे मोतियो को छूने पर भी वह हाथ धाता था। वास्तुकला के प्रति उसका प्रगाढ प्रेम था, वास्तुकला सम्बन्धी उसकी सर्वागसुन्दर कृतियो का वणन यथास्थान किया जायेगा। यहा पर इतना कह देना ही पर्याप्त ह कि उसके पहले हिन्दुस्तान मे किसी भी सम्राट ने साम्राज्य के वडे-बडे नगरा को प्रासादो, मसजिदो, मकबरो, नहरा, उद्यानो, स्नानागारो तथा तालाबा से सजाने मे इतना अधिक व्यय न किया था। उसकी बनवाई हुई कुछ इमारतें आज भी अपने निर्माता के ऐश्वय, वैभव एव गौरव का स्मरण कराने के लिए विद्यमान ह। आज के आलोचक इन कृतिया पर उसके मुक्तहस्त व्यय को भले ही जनता के धन का अपराधपूण दुरुपयोग बतलावे, परन्तु शाहजहा के युग म ऐसे शब्दो का कुछ भी अथ न था और उस युग में यदि कोई व्यक्ति शासको एव सरकारो पर ऐसा दोषारोपण करने का साहस करता तो उसका सिर, थोडी भी जाच के बिना ही, धड से अलग कर दिया जाता।

शाहजहा का पारिवारिक जीवन बहुत स्नेहमय था। वह लाड-प्यार करनेवाला पिता और प्रेमी पति था, उसका हृदय इतना कोमल था कि निधनता एव दुखा को देखकर तत्काल पसीज जाता था। यद्यपि उस समय की प्रथा के अनुसार उसकी पत्नियो की सख्या कम न थी, परन्तु बेगम अर्जुमन्द बानू पर उसने अपना समस्त प्यार न्योछावर कर दिया था और वह इस बेगम का ऐसा स्मारक बना गया ह, जिसका दुनिया स्वेच्छा से मिटने न देगी। इस बेगम की मृत्यु के पश्चात् उसने अपना प्यार अपनी धम-परायण एव सुसस्कृत ज्येष्ठ पुत्री जहानारा पर उँडेल दिया, जो शाही 'हरम' म अपनी माता के स्थान की पूर्ति करने के लिए योग्यतम रमणी थी। एक बार जब जहानारा बीमार हुई, बादशाह ने उसकी सुश्रूषा में रात दिन एक कर दिया था और उसके स्वास्थ्य के लिए अनन्य हृदय से ईश्वर से प्राथना की। बर्नियर तथा ट्रेवर्नियर ने स्पष्ट शब्दो में लिखा है कि बादशाह का अपनी पुत्री के साथ अनुचित सम्बन्ध था, परन्तु उपलब्ध प्रमाणो से यही सिद्ध होता ह कि इस दोषारोपण का आधार केवल बाजारू गप्प ही ह।

से बहुधा कहा करता था कि यह तुम्हारे पुत्रो में सबसे अच्छा है। बालक शाहजहाँ ने भी वृद्ध सम्राट् के प्यार का पूरा-पूरा बदला दिया था और मृत्यु शय्या पर भी उसका साथ न छोडा था। ८ वर्ष, ४ मास, ४ दिन की अवस्था में उसका विद्यारम्भ किया गया और उसको पढाने के लिए मुल्ला कासिम बेग तबरेजी, हकीम दरबाई, शेख अब्दुल खैर तथा शेख सूफी जैसे योग्यतम अध्यापक नियुक्त किये गये और बुद्धि तीव्र होने के कारण उसने अल्पकाल में ही बहुत उपयोगी ज्ञान सचित कर लिया। चौबीस वर्ष के वय तक उसने मदिरा का स्पर्श तक न किया था और जहाँगीर ने अपने संस्मरण में लिखा है कि उसको पहली बार मदिरापान करने के लिए बडी मुश्किल से मनाया गया। वह उन सब पुरुषोचित व्यायामो का अभ्यास करता था, जिनमें उस समय के राज-परिवार के युवक आनन्द लेते थे। आखेट, तलवार चलाना, गज युद्ध तथा घुडसवारी का उसको अत्यधिक चाव था और शासक के कर्त्तव्यो म व्यस्त रहते हुए भी वह आखेट के लिए समय निकाल ही लेता था। राज-परिवार के अन्य युवको के समान उसमें भी सैनिकोचित गुण थे। मेवाड तथा दक्षिण के युद्धो में उसने रण-कौशल दिखाया था परन्तु सिंहासनारूढ होने के बाद उसकी सामरिक सफलताएँ अधिक महत्त्वपूर्ण अथवा द्रुत न रही। बल्ख, कन्दहार एव दक्षिण में उसके सामरिक प्रयत्न सैनिक दृष्टि से असफल ही रहे। सैनिक के गुणो के साथ-साथ उसमें साहित्यिक परिष्कृति भी थी। वह फारसी म धाराप्रवाह रूप से बातचीत कर सकता था और इस भाषा से अनभिज्ञ लोगो के साथ वह हिन्दी में बात करता था। बचपन में रुकय्या बेगम द्वारा लालन-पालन किये जाने के कारण, उसको तुर्की भाषा बोलने का भी अभ्यास हो गया था और वह तुर्की शब्दो को सरलता से समझ लेता था। उसकी लिखावट बहुत सुन्दर थी। कविता तथा गीत सुनने में उसको रुचि थी और चित्र-कला की ओर उसका बहुत झुकाव था। वह सगीत विद्या का महान् सरक्षक था और स्वय भी अनेक वाद्य-यन्त्र बजाना जानता था। अपने कारखानों में बननेवाली वस्तुओ मे उसने अपनी निर्माण प्रतिभा का परिचय दिया। स्वभाव से ही वह कला, सौन्दर्य एव वैभव का प्रेमी था। वह स्वच्छता बहुत

पसन्द करता था और इत्र का अत्यधिक प्रयोग करता था। स्वच्छता का उसको इतना अधिक ध्यान रहता था कि हीरे मोतिया का छूने पर भी वह हाथ धोता था। वास्तुकला के प्रति उसका प्रगाढ प्रेम था, वास्तुकला सम्बन्धी उसकी सर्वांगसुन्दर कृतियो का वणन यथास्थान किया जायेगा। यहाँ पर इतना कह देना ही पर्याप्त ह कि उसके पहले हिन्दुस्तान के किसी भी सम्राट ने साम्राज्य के बडे-बडे नगरा को प्रासादो, मसजिदो, मकबरो, नहरा, उद्यानो, स्नानागारो तथा तालाबो से सजाने मे इतना अधिक व्यय न किया था। उसकी बनवाई हुई कुछ इमारतें आज भी अपने निर्माता के ऐश्वय, वभव एव गौरव का स्मरण कराने के लिए विद्यमान ह। आज के आलोचक इन कृतिया पर उसके मुक्तहस्त व्यय को भले ही जनता के धन का अपराधपूण दुरुपयोग वतलावें, परन्तु शाहजहा के युग में ऐसे शब्दो का कुछ भी अथ न था और उस युग मे यदि कोई व्यक्ति शासको एव सरकारा पर ऐसा दोषारोपण करने का साहस करता तो उसका सिर, थोडी भी जाच के बिना ही, धड से अलग कर दिया जाता।

शाहजहा का पारिवारिक जीवन बहुत स्नेहमय था। वह लाड-प्यार करनेवाला पिता और प्रेमी पति था, उसका हृदय इतना कोमल था कि निधनता एव दुखो को देखकर तत्काल पसीज जाता था। यद्यपि उस समय की प्रथा के अनुसार उसकी पत्निया की सख्या कम न थी, परन्तु बेगम अर्जुमन्द बानू पर उसने अपना समस्त प्यार न्योछावर कर दिया था और वह इस बेगम का ऐसा स्मारक बना गया ह, जिसको दुनिया स्वेच्छा से मिटन न देगी। इस बेगम की मृत्यु के पश्चात् उसने अपना प्यार अपनी धम-परायण एव सुसस्कृत ज्येष्ठ पुत्री जहानारा पर उँडेल दिया, जो शाही 'हरम' म अपनी माता के स्थान की पूर्ति करन के लिए योग्यतम रमणी थी। एक बार जब जहानारा बीमार हुई, बादशाह ने उसकी शुश्रूषा में रात दिन एक कर दिया था और उसके स्वास्थ्य के लिए अनन्य हृदय से ईश्वर से प्राथना की। बर्नियर तथा ट्रैवर्नियर ने स्पष्ट शब्दो में लिखा ह कि बादशाह का अपनी पुत्री के साथ अनुचित सम्बन्ध था, परन्तु उपलब्ध प्रमाणा से यही सिद्ध होता ह कि इस दोषारोपण का आधार केवल बाजारू गप्प ही ह।

अपने पुत्रो में वह दारा को सबसे अधिक चाहता था और यद्यपि वह स्वय कट्टर सुन्नी था, फिर भी दारा के सूफियो जसे आचरणो को सहन करता रहता था, जिसमे उसके अय पुत्र उससे बहुत रुष्ट भी हो गये थे। उस पर अपने भाइयो के नशस वध का जो दोष लगाया जाता है, वह अस्वीकार नही किया जा सकता, परन्तु उसके पक्ष में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि एक तो उस समय की आवश्यकता और दूसरे उसके वश के परम्परागत व्यवहार ने उसको एसा नृशस व्यवहार करन की प्रेरणा दी। मनुष्यो के भाग्य की नियामक रहस्यमयी शक्तिया ने उसको इन अधम कृत्यो का पूरा-पूरा दण्ड दिया और यद्यपि उसके नृशस व्यवहार को देखकर हमारे हृदय क्षुब्ध हो उठते है, परन्तु जसा कि डॉ० महोदय ने लिखा ह, परिस्थितिया की बाध्यता का ध्यान कर उसके प्रति हमारा आधा क्रोध समाप्त हो जाता है। शाहजहाँ स्वभाव से क्रूर न था और अपने प्रारम्भिक जीवन के इन अपराधा का उसने कठोर न्याय, दयापूण शासन, तथा प्रजा हित के कार्यों द्वारा बहुत कुछ प्रायश्चित्त कर लिया था।

जहागीर के विपरीत शाहजहाँ कट्टर मुसलमान था। अमीन काजवीनी ने उसकी दिनचर्या का जसा विवरण दिया ह उससे उसकी धम निष्ठा का पता लगता है। वह दिन में चार बार नमाज पढता था और रमजान के दिना में उपवास करता था। यद्यपि व्यक्तिगत जीवन में वह हिन्दुओ के प्रति मत्रीपूण व्यवहार करता था, परतु उनके धम का वह विरोधी था, फिर भी उसने सुन्नी धर्मोन्माद को राजनीति पर प्रभाव न डालने दिया। अपने शासन के प्रारम्भिक दिना में उसने बनारस जिल में ही ७६ नये बने मदिरा को ध्वस्त करने का आदेश दिया था और उसी की आज्ञा से मुगल सनिको ने ओरछा का अद्भुत मदिर भूमिसात् कर दिया था तथा वीरसिंह बुदेला की स्त्रिया के साथ पाशविक व्यवहार किया था। वह ईसाइया से भी घृणा करता था और उनसे उसने लडाई छेड दी थी, परन्तु इसके लिए उसको अधिक दोष नही दिया जा सकता। अँग्रेजी कारखाना क विवरणा में लिखा ह कि वह ईसाइया से बहुत घृणा करता था और ईसाई लोग उसके कोप से अपने आप को कभी

सुरक्षित न समझते थे।[1] शिया सम्प्रदाय के प्रति भी वह ऐसा ही द्वेषपूर्ण था। शिया राज्यों के विरुद्ध उसके युद्ध केवल साम्राज्य-वृद्धि की भावना से प्रेरित होकर ही न किये गये थे अपितु शिया सम्प्रदाय का दमन और सच्चे दीन की विजय भी इन युद्धों का उद्देश्य था। उसके द्वारा चलाई गई सामाजिक विधियों से अपने से अन्य धार्मिक सम्प्रदायों के प्रति उसकी घृणा व्यक्त होती है। यह जानने पर कि बुरहानपुर जिले में हिन्दू-मुसलमानों में विवाह-सम्बन्ध होते हैं और पति के मरने पर स्त्रियाँ अपने पति के धर्म के अनुसार दफनाई अथवा जलाई जाती हैं, उसने यह आज्ञा प्रचारित की कि कोई भी मुसलमान लड़की किसी हिन्दू के घर में न रहे और यदि कोई हिन्दू अपनी मुसलमान पत्नी को छोड़ना न चाहे तो वह इस्लाम ग्रहण कर ले। स्थानीय जमींदार ने इस्लाम ग्रहण कर लिया और उसको 'राजा दौलतमद' की उपाधि प्रदान की गई। उसने इस प्रकार की सब सामाजिक प्रथाएँ बन्द करवा दी और धार्मिक विधियों से अनभिज्ञ लोगों को शिक्षा देने के लिए काजी तथा मौलवी खालसा भूमि से नियुक्त किये। पंजाब में हिन्दुओं को मुसलमान स्त्रियों से विवाह करने के लिए कठोर दण्ड दिया गया और मुसलमान स्त्रियों को उनसे छीनकर मुसलमानों के हवाले कर दिया गया। अपने घर में इस गड़बड़ को न सह सकने के कारण लगभग ४०० हिन्दुओं ने इस्लाम ग्रहण कर लिया। कुरान का अपमान करनेवाले एक हिन्दू को प्राण-दण्ड दिया गया। लगभग ७ मसजिदों का जीर्णोद्धार किया गया और तीन मंदिरों को मसजिद बनाया गया।[2]

शाहजहाँ ने मक्का और मदीना को भेंट भेजी। शासन के चौबीसवें वर्ष उसने गुजरात के सूबेदार को डेढ़ लाख का माल क्रय करने की आज्ञा दी, जिसमें से ५० हजार का माल मक्का में नगर रक्षक के लिए, ५० हजार का मदीना के सैयदों तथा उलमा के लिए भेजा जाता था और शेष निर्धनों एवं असहायों में बाँटने के लिए था। जब बुढ़ापे के कारण उसमें उत्साह न्यून हो गया

१ 'दि इँगलिश फैक्ट्रीज' १६३४-३६ पृ० २४१।

२ इनका पूरा विवरण काजवीनी के 'पादशाहनामा' तथा 'मुन्तखाब' में भी दिया हुआ है।

सामर्थ्य न रह गई, तब उसने निर्धनों में बाटने के लिए साठ हजार रुपये दिये।[१]

जैसे-जैसे शाहजहां वृद्धावस्था की ओर बढ़ता गया, उसकी पहले जैसी शक्ति एवं साहसिकता भी उसका साथ छोड़ती गई। मनूची ने उसकी विलासिता एवं कुत्सित भोग-परायणता का विस्तृत वर्णन किया है और उसके विषय में प्रचलित उन लोकापवादों को दुहराया है जो उसने दिल्ली और आगरा में सुने थे।[२] इसमें सन्देह नहीं कि शाहजहाँ मदिरापान करता था, अपनी वासनाओं को तृप्त करता था और युवावस्था में स्त्री प्रेम के आलोक से भ्रान्त पुरुषों के समान वह भी काम-क्रीडाओं में लिप्त रहता था। उसने शासकीय कर्त्तव्यों की उपेक्षा की थी, जिसके लिए बाद में औरंगजेब ने उसकी खूब भर्त्सना की। वह इतना आलसी एवं विलासी हो गया था कि अपने पुत्रों को भी वश में न रख सका और अपने अकर्मण्य हाथों से उसने अधिकार छिनने दिये। कठिन परिश्रम करने की क्षमता का ह्रास होने पर, उसकी पुरानी सतर्कता भी समाप्त हो गई। दरबार में भ्रष्टाचार एवं द्रोह पनपने लगे और उसके अपने मंत्री और अमीर भी उससे भय न खाने लगे। परन्तु अंतिम दिनों की यातनाओं ने उसके चरित्र की विशेषताओं को प्रकट कर दिया। उसने ईश्वरेच्छा के सामने ऐसे धैर्य से आत्म-समर्पण कर दिया, जैसा कि राजमुकुट धारण करनेवाले व्यक्तियों में दुर्लभ है। घोर दुर्दशा भी उसके अभिमान को चुका न सकी और वह औरंगजेब के साथ समानता का व्यवहार करने से सदैव घृणा करता रहा। एक बार उसने औरंगजेब को, उसके पिता के समान, उपदेश देने के ढंग के लिए बुरी तरह फटकारा था और पत्र-व्यवहार में वह सदैव अपनी श्रेष्ठता बनाये रहा।

औरंगजेब को स्वप्न में भी इस बात पर ध्यान न गया होगा कि उसकी अपनी वृद्धावस्था अपने पिता से भी अधिक दुखपूर्ण होगी, जिसको उसने

---

१ 'मुल्क्खस' प्रयाग विश्वविद्यालय की हस्तलिपि पृ० ५३४।

२ स्टोरिया २, पृ० १९२। 'पादशाहनामा' प्रयाग विश्वविद्यालय की हस्तलिपि पृ० ८५, 'मुल्क्खस' प्रयाग विश्वविद्यालय की हस्तलिपि पृ० १९७ ९८।

हिजडा और दासो की कोमल कृपा पर छोड दिया था और उसको वह शान्तिपूर्ण सात्वना तथा आल्हादमय विश्वास सवथा अप्राप्य होगा, जिसके साथ वृद्ध सम्राट आगरा के किले के पार सगमरमर के स्मारक पर बन्द होती हुई आखो से निहारता हुआ अखण्ड शान्ति के प्रदश म प्रयाण कर गया। उसके प्रति औरगजेब ने जो दुर्व्यवहार किया उसका फल उसका अपने पुत्रो के विद्रोही आचरण तथा अपनी ही अ खो के सामने अपने विशाल साम्राज्य के पतन के रूप मे मिलकर ही रहा।

ग्रथों की सूची

रोजस एण्ड वेबेरिज—मेम्वायस आव जहागीर, १ व २।
इलियट—हिस्ट्री ऑव इडिया—जि० ६ तथा ७।
साइक्स—हिस्ट्री ऑव पर्शिया।
स्काट—फरिश्ता का हिस्ट्री ऑव दि डेकन।
ग्रिबल—हिस्ट्री ऑव दि डेकन।
सरकार—हिस्ट्री ऑव औरगजेब, जि० १।
बेनीप्रसाद—हिस्ट्री ऑव जहागीर।
के० आर० कानूनगो—दाराशिकोह।
बर्नियर—ट्रेवल्स इन दि मुगल एम्पायर।
मनूची—स्तारिया दो मोगोर, ३ जिल्दा में।
पेन—जहांगीर।
सर टामस रो—एकाउण्ट ऑव हिज एम्बेसी।
दि लात—इडिया ऑव जहागीर।
अब्दुल हमीद लाहौरी, बादशाहनामा
अमीन कजवीनी—शाहजहांनामा
इनायतखां—शाहजहांनामा
टैवनियर—ट्रेवल्स इन दी मुगल एम्पायर

अध्याय १६

साम्राज्य की अवनति

औरंगजेब

(१६५८—१७०७)

औरंगजेब का राज्याभिषेक—अपने सब प्रतिद्वन्द्वियों को पथ से हटाकर २१ जुलाई सन् १६५८ को औरंगजेब ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ली, परन्तु सिंहासनासीन होने का उत्सव ५ जून सन् १६५९ को मनाया गया। एक शुभ मुहूर्त में बादशाह गद्दी पर बैठा। इस अवसर पर उसकी उदारता की सीमा न थी। धनी और दरिद्र सभी को मुहमांगा पारितोषिक मिला। तमाशे और खेल इत्यादि की धूम हो गई। इस प्रकार प्रजा को प्रसन्न कर इस कट्टर सुन्नी बादशाह ने राज्य-कार्य आरम्भ किया।

गृहयुद्ध के कारण शासन प्रबन्ध बिगड़ गया था और प्रजा बहुत कष्ट उठा रही थी। करों की अधिकता से व्यवसाय में बाधा पड़ती थी। बड़ी-बड़ी सेनाओं के आने-जाने से साम्राज्य के भिन्न भिन्न भागों में कृषि को बड़ी हानि पहुँची थी। अनावृष्टि के कारण कुछ प्रान्तों में खाद्य-पदार्थों की कीमत बढ़ गई थी। प्रजा के कष्टों के निवारण के लिए सम्राट् ने प्राय ८० कर उठा लिये थे। इनमें मुख्य राहदरी और पन्दरी थे। प्रथम कर सीमा की सड़कों और घाटों पर लिया जाता था, और दूसरा एक प्रकार का गृहकर था जो सौदागर, कुँजड़े, कुम्हार और लेनदेन करनेवाले देते थे। इनके सिवा वे कर थे जो पीरों की कब्रों पर होनेवाले मेलों में, मन्दिरों पर तथा जुआघर और वेश्याओं के घरों पर लगाये जाते थे। खाफी खाँ इन करों में से केवल १४ का नाम देता है और लिखता है कि सम्राट् के नियम के बावजूद भी दूर प्रान्तों में जमींदार लोग इन करों को वसूल करते थे।

गृहयुद्ध में औरंगजेब सुन्नी मुसलमानों की सहायता से ही सफल हुआ था। उनको प्रसन्न करने के लिए उसने कुछ ऐसे कानून बनाये जिनका उद्देश्य जनता के जीवन को इस्लामी ढाँचे में ढालना था। सिक्कों पर कलमा का खुदाया जाना बन्द कर दिया गया, क्योंकि काफिरों के सम्पर्क से वह अपवित्र हो जाता। नौरोज का उत्सव मानने की भी बादशाह ने मुमानियत कर दी।

इस्लामी राज्य धार्मिक राज्य होता है। बादशाह का यह कर्तव्य समझा जाता है कि वह प्रजा के चरित्र और व्यवहार की देखभाल रखे। इस उद्देश्य से औरंगजेब ने मुहतसिबों की नियुक्ति की। उनका काम कुरान में वर्जित कामों को रोकना था।

जर्जर मस्जिद और खानकाहों की मरम्मत हुई। इमाम और मुअज्जिनों को समय पर वेतन मिलने लगा। दारा के सूफी मित्रों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की गई। सरमद पर मुकदमा चला और अन्त में फाँसी दे दी गई।

मीरजुमला की आसाम पर चढ़ाई—मीरजुमला ने गृहयुद्ध में औरंगजेब की बड़ी सहायता की थी। पारितोषिकस्वरूप वह बंगाल का सूबेदार नियुक्त हुआ। इस नियुक्ति में भी बादशाह की एक चाल थी। वह इस साहसी और महत्त्वाकांक्षी सेनापति को राजधानी से दूर रखना चाहता था। बंगाल पहुँचते ही उसके पास कूचबिहार और आसाम के राजाओं का [illegible] इलाकों पर अधिकार जमा लिया था, [illegible] पहुँचा। सन् १६६१ के नवम्बर महीने में मीरजुमला के सेनापतित्व में एक बड़ी सेना और नौकाओं का एक बेड़ा आसाम को रवाना हुआ। [illegible] ने मुगलों के [illegible] का बड़ा मुकाबला [illegible] किया। परन्तु [illegible] और [illegible] आसाम [illegible] कर [illegible]। [illegible] के बाद मीरजुमला ने राजधानी पर [illegible] किया। दुर्भाग्यवश सेनापति स्वयं बीमार पड़ गया, [illegible] निश्चित [illegible]। आसामवासियों [illegible] [illegible] का आत्मसमर्पण कर दिया। [illegible]

सेना बगाल को लौटी। परन्तु आसाम के जलवायु ने मीरजुमला के स्वास्थ्य पर बडा बुरा प्रभाव डाला। मार्ग ही में ३१ मार्च सन् १६६३ को उसकी मृत्यु हो गई।

मीरजुमला की मृत्यु के बाद औरगजेब का मामा शाइस्ताखाँ बगाल का सेनापति नियुक्त हुआ। उसने चटगाव को जीता, पुर्तगाली डाकुओं को ब्रह्मपुत्र नदी के डेल्टा से मार भगाया और अराकान के राजा को बडी गहरी क्षति पहुँचाई।

मराठों का उत्कर्ष--मराठे औरगजेब के सबसे भयकर शत्रु थे। उनके विरुद्ध वह २५ वर्ष तक लडता रहा, परन्तु अन्त में उसे निराश होना पडा। मराठा के नेता शिवा जी ने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा से एक राज्य की स्थापना की। परन्तु शिवाजी की सफलता का कारण केवल उसका व्यक्तित्व ही नही था। दक्षिण की भौगोलिक स्थिति तथा पन्द्रहवी और सोलहवी शताब्दी का धार्मिक आन्दोलन, जिसने जनता मे नवीन आकाक्षाएँ और आशाएँ उत्पन्न कर दी थीं, इसके कारण थे। मराठा के उत्कर्ष के समझने के लिए इन शक्तियो की विवेचना आवश्यक है।

महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति—महाराष्ट्र के उत्तर और पूर्व में विन्ध्याचल और सतपुडा की श्रेणिया फैली हुई है। पश्चिम में पश्चिमी घाट की पहाडिया है। इन्होंने देश को केवल सुरक्षित ही नही बनाया, वरन् यहा के निवासियो को एक विशेष प्रकार का चरित्र भी दिया। पहाडो पर स्थित किलो की सहायता ही से मराठो ने उत्तर से आये हुए आक्रमणकारियो का सामना किया। यहा की ऊँची पथरीली भूमि पर मराठे गुरील्ला युद्ध कर सकते थे, परन्तु मुगल तो खुले मैदानो में लडने के अभ्यस्त थे, और यहा उन्हे बडी कठिनाइया झेलनी पडती थी। वर्षा की न्यूनता और उपज की कमी के कारण मराठे अधिकतर गरीब थे। उनका जीवन सरल और सादा होता था और उनमें कठिनाइयों के सहने की शक्ति थी। मुगलो ने जीवन भोग विलास में व्यतीत किया था। इसलिए मराठो का सामना करने मे वे अपने को असमर्थ पाते थे। छोटे छोटे टट्टुओ पर सवार, कच्चे अथवा भुने हुए बाजरे को खाकर मराठे लम्बी लम्बी यात्राएँ करते थे और अपने शौर्य से मुगलो का कलेजा दहला

देते थे। बहुत क्षति उठाकर मुगल इस परिणाम पर पहुँचे कि इन सिपाहियो पर विजय प्राप्त करना असभव है और इस युद्ध में परेशानी के अतिरिक्त और कुछ हाथ न आयेगा।

धार्मिक आन्दोलन--महाराष्ट्र में पद्रहवी और सोलहवी शताब्दी में एक नवीन धार्मिक आन्दोलन का जन्म हुआ। उत्तर की तरह दक्षिणी भारत में भी कुछ ऐसे धार्मिक नेता हुए जिन्होने सभी धर्मो के सारभूत सिद्धान्तो पर जोर दिया अन्धविश्वास और कर्मकाड के विरुद्ध आवाज उठाई और जाति पाति तोडने का उपदेश किया। तुकाराम, रामदास, वामन पडित और एकनाथ के नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन नेताओ ने धार्मिक कुरीतिया को दूर करने का आन्दोलन प्रारभ किया तथा भगवान् की भक्ति की शिक्षा दी। इनका कहना था कि ईश्वर की दृष्टि में सभी मनुष्य समान है और शूद्र भी ब्राह्मणो ही के समान भगवान् की एकनिष्ठ भक्ति से उनकी कृपा का पात्र हो सकता है। इन सिद्धान्तो में ऊँच नीच का भेद-भाव नही था और ईश्वर भक्ति ही अनुयायियो को एकता के सूत्र में बाधती थी। इन महापुरुषो में रामदास समर्थ ने जिनको शिवा जी अपना गुरु मानते थे, उस समय की विचारधारा पर बडा प्रभाव डाला। स्वामीजी केवल धार्मिक नेता ही नही वरन् राष्ट्रनिर्माता भी थे। मराठो में एकता स्थापित करने के लिए उन्होने एक योजना बनाई और अपने अनुयायियो को इसी के अनुसार काय करने की आज्ञा दी। इसी बीच में उनकी भेंट शिवाजी से हुई। शिवा जी ने उनके विचारो का प्रयोग राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में किया और उनके स्वप्न को यथार्थ कर दिया।

इसके अतिरिक्त उस काल के साहित्य ने भी राष्ट्रनिर्माण के कार्य को आगे बढाया। तुकाराम के भजन जिनमें परमात्मा की भक्ति का सन्देश भरा था, सभी वर्ग के लोग गाते थे और इससे उनमें एकता की भावना पैदा हुई। इस एकता और सास्कृतिक विकास के बिना शिवा जी के लिए एक राष्ट्र का निर्माण सभव नही था।

शिवाजी को अपने लक्ष्य की पूर्ति में उन मराठो से भी बडी सहायता मिली जिन्होने दक्षिण के मुसलमानी राज्यों में पद ग्रहण कर शासन प्रबन्ध और युद्ध-सम्बन्धी अनुभव प्राप्त किया था। गोल्कुडा और बीजापुर राज्यो म

मराठ अधिकतर मालगुजारी और सेना विभाग में नौकरी करत थे। इनमें से कुछ तो मन्त्री हो गये थे और इनका शासन पर बडा प्रभाव था। दक्षिणी ब्राह्मण बहुधा राजदूत होकर दूसरे देशा को भी भेजे जाते थे। अपने इन पदो पर काय करते हुए इन लोगा ने जो योग्यता प्राप्त की थी, मुसलमाना से युद्ध करने म वह उनके लिए बडी लाभदायक सिद्ध हुई।

शिवाजी का जन्म—शिवाजी का पिता शाहजी भासला बीजापुर राज्य का एक अफसर था। उसकी पत्नी जीजाबाई के गभ स १० अप्रल १६२७ को शिवाजी का जम शिवनेर के पहाडी किले में हुआ। पुत्र-जम के कुछ ही दिन बाद शाहजी ने जीजाबाई की अवहलना करके दूसरी स्त्री से विवाह कर लिया। पति की ओर से निराश हो जीजाबाई ने अपनी सारी शक्ति पुत्र को योग्य बनाने में लगा दी। वे घटा बठी पुत्र को पुराणा की वीरता पूण कहानिया सुनाया करती थी। बालक इन गाथाआ को सुन आवेश से भर जाता, और उसके शिशु हृदय में ऐसे ही शौयपूण काय करने की इच्छा बलवती होती जाती थी।

बडे होने पर शाहजी ने सुयोग्य दादाजी कोणदेव को पुत्र का शिक्षक नियुक्त किया। शिवाजी ने लिखना-पढना तो नही सीखा परन्तु रामायण, महाभारत तथा शासन-प्रबन्ध और युद्धकला का बहुत सा ज्ञान प्राप्त कर लिया। घुडसवारी, हथियार चलाना तथा और दूसरी कलाएँ जो सामन्त पुत्र के लिए आवश्यक समझी जाती थी, उसने सीख ली। बीजापुर दरबार के सपक में रहने से उसे उस राज्य की दुबलताआ का भी ज्ञान हो गया और भविष्य में यह उसके लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ। इसी समय उसकी भट रामदास से हुई। उस महापुरुष ने उसके हृदय में हिन्दू धम के प्रति श्रद्धा पदा कर दी और सुझा दिया कि उनका कत्तव्य ब्राह्मण और गौ की रक्षा करना ह। कुछ आधुनिक इतिहासकारो का मत है कि रामदास ही ने स्वतन्त्र हिन्दू राज्य स्थापन का आदश शिवाजी के सामने रक्खा, परन्तु इस विचार के पक्ष में पर्याप्त प्रमाण नही ह। सच्ची बात तो यह है कि हिन्दू धम की रक्षा और राज्यस्थापना दोनों एक दूसरे के बिना असम्भव थी। परम्परा, वातावरण, शिक्षा तथा स्वभाव, सभी ने उसके हृदय मे मुगल विरोधी भावना को जाग्रत किया।

शिवाजी के सैनिक जीवन का प्रारम्भ—सनिक जीवन प्रारम्भ करने के पहले शिवाजी ने मालवा मे रहनेवाला का अपना मित्र बना लिया। वे खेती-बारी छोड शिवाजी की सेना में भर्ती हो गये, और प्रारम्भिक हमला में पूरी मदद दी। दादाजी जो सीमित विचारा का आदमी था सवदा अपने शिष्य को यही शिक्षा दिया करता था कि उसे बीजापुर के अधीनस्थ उच्चपद पाकर ही सतुष्ट हो जाना चाहिए। परन्तु शिवाजी का जन्म ता एक महान काय करने के लिए हुआ था। बीजापुर एसे निबल राज्य मे ता पदग्रहण करना उसके लिए अपमान-सूचक था। भला, वह अपने गुरु की सीख का कमे उल्लघन कर सकता था?

सन १६४६ में बीजापुर का सुल्तान बीमार हुआ। शिवाजी ता ऐसे सुअवसर की ताक ही में था। तारन, रायगढ, सिहगढ पुरधर, कोकण आदि किलो पर उसने क्रमश अधिकार जमा लिया। १६८७ में दादाजी की मत्यु हो गई और शिवाजी अपने पिता की पश्चिमी जागीर का शासक हो गया।

जब शिवाजी ने कल्याण पर अधिकार जमा लिया तो बीजापुर के सुल्तान की नीद खुली। उसने स्थिति की गभीरता को समझा और विचार किया कि अब इस युवक की शक्ति का आग बढने देना उचित नही ह। इसी समय बीजा-पुर के सेनापति मुस्तफा ने जो जिंजी का घेरा डाले था शाहजी को अशिष्ट व्यवहार करने के कारण बन्दी बना लिया और उसकी जागीर छीन ली। पिता की गिरफ्तारी के समाचार मे शिवाजी घबडा उठा, और हमले बन्द कर दिय। इसके अतिरिक्त उसने दक्षिण के मुगल वाइसराय शाहजादा मुराद से पत्र-व्यवहार शुरू किया और मुगलो की नौकरी करने की इच्छा प्रकट की। शिवाजी की इस कूटनीति से सुलतान डर गये और उसने शाहजी के छोड देन का हुक्म दिया। बीजापुर के कुछ मुसलमान सामन्त भी शाहजी के छुडाने का प्रयत्न कर रहे थ। अन्त में पुत्र को बीजापुर के विरुद्ध युद्ध करने से रोकने का वचन देने पर शाहजी मुक्त किया गया। शिवाजी ने इस अवसर पर शान्त रहना ही उचित समझा, और भविष्य में शत्रुओ के विरुद्ध एक बृहत युद्ध के लिए अपनी शक्ति का सचय करना प्रारम्भ किया।

नवम्बर सन् १६५६ में आदिलशाह की मत्यु हो गई। औरगजेब ने इसे अच्छा अवसर समझ बीजापुर पर हमला कर दिया। शिवाजी ने अपने दोनो

शत्रुओं के संघर्ष से लाभ उठाने की ठानी। प्रथम तो उसने औरंगजेब से पत्र व्यवहार आरम्भ किया, परन्तु एक दूसरे पर अविश्वास के कारण प्रयत्न सफल न हुआ। इस ओर से निराश हो जाने पर मराठा नेता ने मुगल इलाके पर हमला किया। इसी समय बीजापुर और औरंगजेब से सुलह हो गई जिसके फलस्वरूप शिवाजी को भी युद्ध रोक देना पडा। उसने भी शाहजादे से सन्धि की बात चीत शुरू की, परन्तु शर्तों पर हस्ताक्षर होने के पूर्व ही, शाहजहा की बीमारी का समाचार पाकर औरंगजेब उत्तरी भारत को वापस लौट आया।

मुगलों से छुट्टी पाकर बीजापुर के नवीन सुल्तान ने शिवाजी का अन्त करने का निश्चय किया। शाहजी से कहा गया कि अपने पुत्र के कार्यों को रोके, परन्तु उसने अपनी असमर्थता प्रकट की। अब तो बीजापुर सरकार ने बलप्रयोग की ठानी। अफजल खाँ के सेनापतित्व में एक वृहत सेना भेजी गई और उसे आज्ञा मिली कि शिवाजी को जीवित अथवा मुर्दा पकडकर लाये।

अफजल खा बडा शेखीबाज आदमी था। उसने दरबार में अभिमान भरे शब्दों में कहा था कि मै इस मराठा डाकू को बिना एक गाली का वार किये ही बन्दी बना लूँगा। परन्तु शिवाजी के पहाडी निवासस्थान पर पहुँचने पर उसे अपनी मूर्खतापूर्ण जल्दबाजी का ज्ञान हुआ। उसने कृष्णजी भास्कर को एक पत्र लेकर शिवाजी के पास भेजा, जिसमें अफजल खाँ ने वचन दिया था कि यदि शिवाजी युद्ध का विचार छोड दें तो वह उसे जीते हुए किले और जिलों का ही न दिलवा देगा, बल्कि नवीन उपाधियो से भी अलकृत करायेगा। इस पत्र को पाकर शिवाजी ने अपने को बडे सकट में पाया। यदि वह अफजल खा की बातो को मान लेता तो उसकी स्वतन्त्र राज्यस्थापना की इच्छा स्वप्नमात्र ही रह जाती। यदि वह अस्वीकार करता तो उसे सुल्तान और दिल्ली के सम्राट दोनो का कोप भाजन बनना पडता। उसके मन्त्रियो ने सधि की सलाह दी, परन्तु उसने दूसरा पथ ही चुना और रणाय युद्ध की तयारी करने लगा।

कृष्णजी भास्कर से शिवाजी बडे प्रेम से मिले और उससे मीठी मीठी बात कर तथा धन का लालच दिखा सारे भेद को जान लिया। दूत ने उन्हे सूचित कर दिया कि अफजलखा का उद्देश्य उन्हें छल करके बन्दी बना लेना था। शिवाजी ने अफजल की चाल को असफल करने की पूर्ण तयारी की। तय हुआ कि दोनो

एक निश्चित स्थान पर बिना रक्षक के मिलेगें। अफजलखाँ लम्बे कद का शक्तिशाली पुरुष था। गले मिलते समय उसने शिवाजी को जोरा से दबाया और बायें हाथ से उनकी गदन को पकड़ दाहिने हाथ से उनकी हत्या करने के लिए छुरा निकालने लगा। परन्तु शिवाजी इस धोखे मे पडनेवाले नही थे। उन्होने बाघनख को अफजल की छाती मे भोक उसे धराशायी कर दिया। छिपे हुए मराठा सिपाहियों ने मुसलमानो पर, जो खाँ को पालकी म बिठाकर भगा ले जाना चाहते थे, हमला किया और खाँ का शिरोच्छेदन कर दिया। अफजल की मत्यु की खबर से उसकी सेना में खलबली मच गई। दोनो दलो में बडी भयकर लडाई हुई। परन्तु खाँ की सेना की पूणतया हार हुई। उसके सिपाही मौत के घाट उतार दिये गये और उनके सामान और तोपो पर मराठो ने अपना अधिकार जमा लिया।

क्या अफजल को शिवाजी ने धोखे से मारा? मराठा इतिहासकार शिवाजी के इस काय का समथन करते है। उनका कथन है कि शिवाजी ने इस प्रकार अपन धम के शत्रुओ से बदला लिया। परन्तु खाफीखाँ शिवाजी को छल करने का दोष देता है। ग्रान्ट डफ और अन्य यूरोपीय इतिहासकारो का भी यही मत है। परन्तु आधुनिक अन्वेषको ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि शिवाजी ने अपनी रक्षाथ खान को मारा था। अँगरेजी कोठी के लेखो से यह प्रमाणित होता है कि बीजापुर सरकार ने खाँ को आदेश दिया था कि शिवाजी को मित्रता का धोखा देकर बन्दी बना ले। दूत ने भी शिवाजी को चेतावनी दे दी थी। शिवाजी ने 'अपने रक्षा प्रथम' वाली नीति का पालन किया और शत्रु की सारी आयोजनाओ को उसकी हत्या करके विफल कर डाला। यह बात निस्सदेह है कि शिवाजी ने सारा प्रबन्ध अपनी रक्षा के लिए किया था। यदि वे सावधान न रहते तो अफजल अवश्य उनकी हत्या कर डालता। परन्तु एक बात म बीजापुरियों को सचमुच धोखा हुआ। उन्हे कभी आशा न थी कि मराठे इतना भयकर हमला करगे जो उनकी सम्पूण सेना को नष्ट कर देगा। अफजलखाँ ने इस सम्बन्ध म कोई तयारी नही की थी, क्योकि वह समझता था कि उसकी शिवाजी की हत्या की योजना किसी पर प्रकट न होगी। उसे विश्वास था कि शिवाजी की मृत्यु के उपरान्त उसकी सेना स्वय तितर-बितर हो जायगी।

शिवाजी और शाइस्ताखाँ—अफजलखाँ की हत्या और बीजापुरी सेना के विनाश से शिवाजी को बड़ा प्रोत्साहन मिला। अब वे दक्षिण के मुगल प्रान्तों में भी लूटमार करने लगे। औरंगजेब ने अपने मामा शाइस्ताखाँ को दक्षिण का वाइसराय नियुक्त कर शिवाजी को दंड देने को भेजा। मुगल सेनापति दो वर्ष तक लड़ते रहे और उन्होंने पूना, चकन यहाँ तक कि सम्पूर्ण उत्तरी कोंकण जीत लिया। वर्षा बिताने के लिए शाइस्ताखाँ पूना चला आया। अब शिवाजी को शत्रु को हराने की एक युक्ति सूझी। उन्होंने एक बालक को दूल्हा बना ४०० बारातियों का जो छद्मवेश में मराठे सिपाही थे, जुलूस बना पूना में प्रवेश किया। अर्धरात्रि में उन्होंने इन्हीं आदमियों को ले शाइस्ताखाँ के निवासस्थान पर हमला किया। उन दिनों मुसलमान रमजान का त्योहार मना रहे थे। वाइसराय और उनके शरीर रक्षक पेट भर भोजन कर सो गये। दीवाल को तोड़ २०० मराठों ने हरम में प्रवेश किया और सामूहिक हत्या शुरू कर दी। इसका समाचार नवाब को एक गुलाम लड़की ने दिया। उनके युद्ध के लिए प्रस्तुत होने के पूर्व ही शिवाजी वहाँ पहुँच गये और एक बार में ही उसके अँगूठे को काट डाला। उसी क्षण अपने स्वामी का जीवन खतरे में देख नौकरों ने प्रकाश गुल कर दिया, और दो सेविकाएँ नवाब शाइस्ताखाँ को ले भगीं। शाइस्ताखाँ के पुत्र अब्दुल फतह ने शत्रु का सामना किया और दो तीन मराठों को मृत्यु के घाट भी उतारा। परन्तु अकेले वे इतने सिपाहियों के विरुद्ध अधिक देर तक न ठहर सके और मृत्यु के शिकार हुए। अपने कार्य को पूरा कर मरहठे हरम से बाहर निकले, और एक अनजान दिशा में जाकर लुप्त हो गये।

रात्रि के इस हमले में शिवाजी को पूर्ण सफलता मिली। इससे उनकी ख्याति और बढ़ गई। राजा जसवन्तसिंह जिनको बादशाह ने शाइस्ताखाँ के सहायतार्थ भेजा था दूसरे प्रातःकाल उनसे समवेदना प्रकट करने गये। शाइस्ताखाँ और मुगल सिपाहियों को सन्देह था कि राजा साहब शत्रु से मिले थे और उन्होंने सारा भेद शिवाजी को बतला दिया। मुगल वाइसराय ने व्यंगोक्ति की, कि मैं तो समझता था कि महाराज कल रात्रि में मेरे लिए लड़ते हुए मर गये। मराठों ने इस विजय को एक अलौकिक घटना समझा और इसमें उन्हें ईश्वरीय हाथ दिखलाई दिया।

इस हार और अपमान से शाइस्ताखाँ को हार्दिक कष्ट पहुँचा और वह औरंगाबाद लौट गया। इसी समय दिल्ली से शाही परवाना पहुँचा और उसकी बदली बंगाल को कर दी गई। शाहज़ादा मोअज्जम उसके स्थान पर दक्षिण का वाइसराय नियुक्त हुआ।

सूरत की लूट—सूरत की लूट शिवाजी के जीवन की एक बहुत साहसपूर्ण घटना है। जनवरी, सन १६६४ में वे ४००० चुने हुए सिपाहियों को लेकर नगर के निकट पहुँचे तथा सूबेदार और धनी मुसलमान सौदागरों को सूचना भेजी कि यदि वे उन्हें संतुष्ट न कर सके तो उनकी संपत्ति को लूट नगर में आग लगा देंगे। जब कोई उत्तर न मिला तो शिवाजी ने सिपाहियों को लूट की आज्ञा दे दी। लूट के मध्य में मराठों ने अंगरेजी कोठी के निकट एक मुसलमान सौदागर के घर पर हमला किया। अँगरेजों ने उसकी सहायता करना प्रारम्भ किया। कुपित होकर शिवाजी ने आज्ञा निकाली कि या तो विदेशी इस लड़ाई से अलग रहें या तीन लाख रुपये हर्जाने के रूप में दें। यदि दोनों में से एक भी माँग वे पूरी नहीं करते तो उनके कारखाने को धराशायी कर उन्हें मृत्यु के घाट उतारा जायगा। परन्तु कोठी के प्रेसीडेण्ट आक्सेनडेन साहब ने शिवाजी की माँगों को अस्वीकार कर दिया और युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गये। इस समय तक शिवाजी को लूट में प्रचुर मात्रा में सामान मिल गया था और एक करोड़ रुपये का सोना, चाँदी, मोती, हीरा आदि लेकर सूरत से चले गये।

शिवाजी के विरुद्ध मोअज्जम और जयसिंह—सन १६६५ में बादशाह ने मिर्जा राजा जयसिंह और दिलेर खाँ के नेतृत्व में एक बड़ी सेना शिवाजी को परास्त करने को भेजी। मिर्जा जयसिंह जयपुर के कछवाहा राजा थे। वे असाधारण बुद्धिवाले तुर्की फारसी, संस्कृत और उर्दू के प्रकाण्ड विद्वान, वार्तालाप में पारंगत तथा ख्याति-प्राप्त राजनीतिज्ञ थे। दरबार में बहुत दिनों से रहने के कारण मुसलमानों के चरित्र का भी उन्हें बड़ा अच्छा ज्ञान था, और वे संयुक्त सेना का सुचारु रूप से संचालन कर सकते थे। मुगल सेना बड़ी सरलता से महाराष्ट्र देश में प्रवेश कर गई और पुरंदर के किले का घेरा डाला। सेनापति मुरार बाजी देशपांडे ने वीरता से मुकाबिला किया परन्तु पर्याप्त सेना न होने के कारण वह हार गया तथा युद्ध ही में मारा गया। शिवाजी की शक्ति का केन्द्र रायगढ भी खतरे

के क्षेत्र में आ गया। प्रतिवाद की निष्फलता को समझ शिवाजी ने मुगल सेनापति से सुलह की प्रार्थना की। जून, सन् १६६५ में पुरन्दर के सन्धिपत्र पर दोनों पक्षों ने हस्ताक्षर किये। शिवाजी ने अपने तेईस किले जिनकी वार्षिक आय ४ लाख हून थी, बादशाह को दे दिये। उन्होंने वचन दिया कि बीजापुर युद्ध में वे शाही सेना को सहायता देंगे। इसके बदले में शिवाजी के पुत्र शंभूजी को पचहजारी मनसबदार का पद और एक जागीर मिली। बादशाह ने उसका राजद्रोहात्मक कार्यों के लिए क्षमा प्रदान की। सुलह की एक शर्त यह भी थी कि यदि शाही फर्मान से शिवाजी को कोंकण और बालाघाट के कुछ स्थान मिल जाते हैं तो वे बादशाह को ४० लाख हून १३ साल में देंगे।

यह सन्धि जयसिंह की महान् राजनीतिक विजय थी। एक भयंकर शत्रु मित्र हो गया और उसने बीजापुर युद्ध में शाही सेना को सहायता देने का वचन दिया। शिवाजी ने अपने वचन को पूरा किया। उन्होंने शाही पारितोषिक और भेंट स्वीकार की और जयसिंह ने आदिलशाह के राज्य के विरुद्ध युद्ध प्रारंभ किया तो सेना से उनकी सहायता भी की। परन्तु सबसे बड़ी सफलता तो जयसिंह को तब मिली जब उन्होंने दिल्ली जाने के लिए शिवाजी को राजी कर लिया।

शिवाजी का शाही दरबार में आगमन—मई १२, १६६६—शिवाजी के दिल्ली जाने का क्या कारण था? श्री सरदेसाई का कथन है कि उनका उद्देश्य मुगल दरबार का परिवेक्षण करना था और यह पता लगाना था कि मुगल शक्ति के स्रोत का उदगम स्थान कहाँ है। शिवाजी सम्पूर्ण भारतवर्ष पर हिन्दू साम्राज्य की स्थापना की आयोजना बना रहे थे, और इस उद्देश्य के लिए यह निरीक्षण आवश्यक था। परन्तु इस मत पर विश्वास करना कठिन मालूम होता है। यदि शिवाजी का यही उद्देश्य था तो उन्होंने मिर्जा राजा के प्रस्ताव को इतनी अनिच्छा से क्या स्वीकार किया? जयसिंह को उनकी अनिच्छा को दूर करने के लिए सब प्रकार उपायों का प्रयोग करना पड़ा। उन्हें बड़े बड़े पारितोषिकों का लालच दिलाया गया और यह भी आशा दी गई कि दक्षिण की सूबेदारी भी उनको मिल जाना असंभव नहीं है। इसके सिवा शिवाजी जञ्जीरा टापू को जो मुगलों के अधिकार में था, अपनाना चाहते थे और इसके लिए दिल्ली जाना अत्यावश्यक था। राजा जयसिंह और उनके पुत्र रामसिंह ने जब शिवाजी की रक्षा का उत्तरदायित्व

अपने ऊपर ले लिया तब मराठों को उनको दिल्ली भेजने में कोई आपत्ति न रही।

९ मई को शिवाजी अपने पुत्र शंभूजी के साथ दिल्ली पहुँचे और तीन दिन पश्चात बादशाह से दीवानआम में मिले। कुँवर रामसिंह ने उनकी तरफ १५०० मोहर नजर और ६०० रु० निसार बादशाह को दिया। परन्तु बादशाह का व्यवहार शिवाजी के प्रति बड़ा अशिष्ट था। उसने 'आओ राजा शिवाजी' कहकर उनका स्वागत किया, और जब शिवाजी ने कोर्निश की तो उन्हें तृतीय श्रेणी के मनसबदारों में स्थान दिया गया।

जब शिवाजी ने देखा कि मुझे पचहजारियों में स्थान मिला है, तो उनके क्रोध का ठिकाना न रहा। उन्होंने कुँवर रामसिंह से इसके विरोध में प्रतिवाद किया और चिल्ला उठे कि इस अपमान से तो मृत्यु ही अच्छी है। इसके पश्चात् वे बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। औरंगजेब की आज्ञा से शिवाजी के मुख पर गुलाबजल छिड़का गया और रामसिंह उन्हें लिवाकर उनके डेरे पर चले गये। राजकुमार का अथक प्रयत्न शिवाजी के क्रोध को न शान्त कर सका और उन्होंने औरंगजेब पर अविश्वास का दोषारोपण किया। राजदरबार के जासूसों ने सारा समाचार बादशाह के कानों तक पहुँचाया। उसकी आज्ञा से शिवाजी के वास-स्थान पर पहरा बिठा दिया गया।

इस प्रकार कैद हो जाने पर शिवाजी भागने का उपाय सोचने लगे। उन्होंने बीमारी का बहाना किया और शय्या पर पड़ गये। कुछ दिनों के उपरान्त यह समाचार फैला कि वे अच्छे हो रहे हैं और इसी प्रसन्नता में वे आपस में ब्राह्मण तथा भिखमंगों में बाँटे जाने के लिए मिठाई भिजवाने लगे। कुछ दिनों तक तो पहरे-दार टोकरों की जाँच करते थे, परन्तु फिर वे ढीले पड़ गये। एक दिन शिवाजी तथा उनके पुत्र इन्हीं में से दो टोकरों में बैठकर निकल गये। दिल्ली से ६ मील की दूरी पर उनके लिए घोड़ों का प्रबन्ध था। उसी पर बैठ पिता पुत्र मथुरा पहुँचे। वहाँ शिवाजी ने पुत्र को तो एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण के हाथ सौंपा, और स्वयं अपने शरीर में राख मल साधु वेष में इलाहाबाद, बनारस, गया, गोंडवाना, गोलकुंडा, बीजापुर होते हुए अपने राज्य में पहुँच गये।

युद्ध—शिवाजी के पहुँचते ही युद्ध फिर आरम्भ हो गया। जयसिंह अभी

तक दक्षिण भारत ही में थे। यह सुनकर घबडा गये। उन्हें मुगलों की स्थिति के लिए बडी चिन्ता हो गई। उनके पुत्र रामसिंह पर शिवाजी के भागने में सहायता देने का सन्देह किया जाता था और राजा को यह भी डर था कि उनका मनसब छिन जायगा। मई १६६७ में राजा के लिए दिल्ली से बुलावा आ गया। उनके स्थान पर शाहजादा मोअज्जम तथा उसके अधीनस्थ राजा जसवन्तसिंह की नियुक्ति हुई। वृद्ध मिर्जा राजा उत्तरी भारत को रवाना हुए, परन्तु बुरहानपुर में २२ जुलाई को उनकी मृत्यु हो गई।

शिवाजी इस समय युद्ध के विरुद्ध थे। शासन को सुदृढ बनाने के लिए शान्ति की आवश्यकता थी। इसलिए उन्होंने मुगलों से सन्धि कर ली। शाहजादा मोअज्जम और राजा जसवन्तसिंह के कहने से औरंगजेब ने उन्हें राजा की उपाधि दी तथा शंभूजी को फिर पचहजारी मनसब और बरार की जागीर मिली।

परन्तु यह सुलह अधिक दिन तक न रही और १६७० में फिर युद्ध आरम्भ हो गया। शाही सेनापतियों के आपसी कलह के कारण मुगल अशक्त हो गये थे। इसका लाभ उठाकर शिवाजी ने कई किले जीत लिये और कोंकण से मुगल फौजदार को निकाल बाहर किया। अक्टूबर, सन् १६७० में मराठों ने फिर सूरत को लूटा और ६६ लाख का माल लिया। १६७४ में दिलेर खाँ को भी मराठों ने हराया। इसी वर्ष उत्तर में अफगानों ने विद्रोह का झंडा खडा किया तथा मुगल सेनापति को दिल्ली लौट जाने के लिए शाही परवाना मिला।

शिवाजी का राज्याभिषेक—जून, १६७४—शिवाजी का उद्देश्य सफल हुआ। मराठा राज्य की स्थापना हो गई। जून सन् १६७४ में शिवाजी का रायगढ में राज्याभिषेक हुआ। मा रुपया खर्च हो जाने के कारण फिर लूट मार आरम्भ हुई। इसके ति का मुग[illegible] गुल्तान तथा जंजीरा के निवासियों [illegible] पड़ा। [illegible] में कारटर की लूट हुई। जिन्जी, [illegible] [illegible] उ[illegible] [illegible]। अंतिम [illegible] [illegible] म क[illegible] [illegible] लूटा।

[illegible] काशा [illegible] दतिग [illegible] आगमन

[illegible] [illegible] सि [illegible] निर

[illegible] तक

२

नीतिज्ञ भी थे। समय की आवश्यकता को वे अच्छी तरह समझते थे। उनका शासन किसी किसी अंश में तो मुगल शासन से भी अच्छा था।

राजा स्वेच्छाचारी शासक था। परन्तु उसे परामर्श देने के लिए आठ मन्त्रियों की कौंसिल अथवा परिषद् थी जिसे अष्टप्रधान कहते थे। अष्टप्रधान के मन्त्रियों के नाम इस प्रकार हैं —

१—पेशवा (प्रधान मन्त्री) जिसका काम राज्य के सभी विभागों की देख-रेख करना था।

२—अमात्य जो राज्य की आय तथा व्यय का निरीक्षण करता था।

३—मन्त्री जो राजकार्यों और दरबार की घटनाओं को लिपिबद्ध करता था।

४—सुमन्त अथवा परराष्ट्रमन्त्री।

५—सचिव अथवा गृहमन्त्री जिसके अधीन राज्य सम्बन्धी पत्रव्यवहार था।

६—पंडितराव और दानाध्यक्ष अथवा धार्मिक विभाग का मन्त्री जिसका कर्तव्य विद्वानों को दान देना, धार्मिक झगड़ों का निपटारा करना और रीति-रिवाज का निर्णय करना था।

७—सेनापति।

८—न्यायाधीश।

शासन के १८ विभाग थे और प्रत्येक भाग किसी न किसी मन्त्री के अधीन था। स्वराज्य जिस पर शिवाजी का सीधा शासन था, तीन प्रान्तों में विभाजित था और प्रत्येक का आला अफसर प्रान्तपति कहलाता था। जागीर-प्रथा नहीं थी। कर्मचारियों को वेतन दिया जाता था। अष्टप्रधान के सभी सदस्य पंडितराव तथा न्यायाधीश को छोड़कर सेनापति भी थे। यह मराठा-शासन का दोष था, क्योंकि अवसर मिलने पर अपने अधीनस्थ सेना की सहायता से ये मन्त्री स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की चेष्टा करते थे। शिवाजी को इस त्रुटि का ज्ञान था। इसीलिए यह नियम बना दिया गया था कि मन्त्रिपद पैतृक सम्पत्ति न होगा।

किसानों से लगान सीधा लिया जाता था। देहातों के पटेल और कुलकर्णी और जिलों के देशपांडे और देशमुख के स्थान पर कलक्टर नियुक्त किये गये जिनका काम मालगुजारी वसूल करना था। जमीन की नाप की जाती

ता दक्षिण भारत ही में थे। यह मुगलों पर पड़ा गये। उन्ह मुगलों की स्थिति के लिए बड़ी चिन्ता हो गई। उनके पुत्र रामसिंह पर शिवाजी के भागने में सहायता देने का सन्देह किया जाता था और राजा को यह भी डर था कि उनका मनसब छिन जायगा। मई १६६७ में राजा के लिए दिल्ली से बुलावा आ गया। उनके स्थान पर शाहजादा मोअज्जम तथा उसके अधीनस्थ राजा जसवन्तसिंह की नियुक्ति हुई। वृद्ध मिर्जा राजा उत्तरी भारत को रवाना हुए, परन्तु बुरहानपुर में २२ जुलाई को उनकी मृत्यु हो गई।

शिवाजी इस समय युद्ध के विरुद्ध थे। शासन को सुदृढ़ बनाने के लिए शान्ति की आवश्यकता थी। इसलिए उन्होंने मुगलों से सन्धि कर ली। शाहजादा मोअज्जम और राजा जसवन्तसिंह के कहने से औरंगजेब ने उन्हें राजा की उपाधि दी तथा शम्भूजी को फिर पचहजारी मनसब और बरार की जागीर मिली।

परन्तु यह सुलह अधिक दिन तक न रही और १६७० में फिर युद्ध आरम्भ हो गया। शाही सेनापतियों के आपसी कलह के कारण मुगल असावधान हो गये थे। इसका लाभ उठाकर शिवाजी ने कई किले जीत लिये और कानण से मुगल फौजदार को निकाल बाहर किया। अक्टूबर, सन् १६७० में मराठों ने फिर सूरत को लूटा और ६६ लाख का माल लिया। १६७४ में दिलेर खाँ को भी मराठों ने हराया। इसी वर्ष उत्तर में अफगानों ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया तथा मुगल सेनापति को दिल्ली लौट जाने के लिए शाही पर्वाना मिला।

शिवाजी का राज्याभिषेक—जून, १६७४—शिवाजी का उद्देश्य सफल हुआ। मराठा राज्य की स्थापना हो गई। जून सन् १६७४ में शिवाजी का रायगढ में राज्याभिषेक हुआ। बहुत सा रुपया खर्च हो जाने के कारण फिर लूट-मार आरम्भ हुई। इसके बाद ही छत्रपति को मुगल बीजापुर के सुल्तान तथा जजीरा के निवासियों के साथ युद्ध करना पड़ा। सन १६७७ ७८ में कर्नाटक की लूट हुई। जिंजी, वेलोर तथा अन्य कई किले उनकी सेना ने जीते। अन्तिम हमला उन्होंने मुगलसराय पर किया और बहुत से कस्बों तथा ग्रामों को लूटा।

शिवाजी का शासन-प्रबन्ध—यूरोपीय इतिहासकारों ने शिवाजी के शासन की बड़ी तीव्र आलोचना की है। उनका कथन है कि मराठा राज्य लूट पर निर्भर था। परन्तु ऐसा कहना सत्य नहीं है। शिवाजी एक महान् सेनापति तथा राज-

नित्र भी थे। समय की आवश्यकता को वे अच्छी तरह समझते थे। उनका शासन किसी किसी अंश में तो मुगल शासन से भी अच्छा था।

राजा स्वेच्छाचारी शासक था। परन्तु उसे परामर्श देने के लिए आठ मन्त्रियों की कौंसिल अथवा परिषद् थी जिसे अष्टप्रधान कहते थे। अष्ट-प्रधान के मन्त्रियों के नाम इस प्रकार हैं :—

१—पेशवा (प्रधान मन्त्री) जिसका काम राज्य के सभी विभागों की देख रेख करना था।

२—अमात्य जो राज्य की आय तथा व्यय का निरीक्षण करता था।

३—मन्त्री जो राजकार्यों और दरबार की घटनाओं को लिपिबद्ध करता था।

४—सुमन्त अथवा परराष्ट्रमन्त्री।

५—सचिव अथवा गृहमन्त्री जिसके अधीन राज्य सम्बन्धी पत्रव्यवहार था।

६—पंडितराव और दानाध्यक्ष अथवा धार्मिक विभाग का मन्त्री जिसका कर्तव्य विद्वानों को दान देना, धार्मिक झगड़ों का निपटारा करना और रीति-रिवाज का निर्णय करना था।

७—सेनापति।

८—न्यायाधीश।

शासन के १८ विभाग थे और प्रत्येक भाग किसी न किसी मन्त्री के अधीन था। स्वराज्य जिस पर शिवाजी का सीधा शासन था, तीन प्रान्तों में विभाजित था और प्रत्येक का आला अफसर प्रान्तपति कहलाता था। जागीर-प्रथा नहीं थी। कर्मचारियों को वेतन दिया जाता था। अष्टप्रधान के सभी सदस्य पंडितराव तथा न्यायाधीश को छोड़कर सेनापति भी थे। यह मराठा-शासन का दोष था, क्योंकि अवसर मिलने पर अपने अधीनस्थ सेना की सहायता से ये मन्त्री स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की चेष्टा करते थे। शिवाजी को इस त्रुटि का ज्ञान था। इसीलिए यह नियम बना दिया गया था कि मन्त्रिपद पैतृक सम्पत्ति न होगा।

किसानों से लगान सीधा लिया जाता था। देहातों के पटेल और कुलकर्णी और जिले के देशपांडे और देशमुख के स्थान पर कलक्टर नियुक्त किये गये जिनका काम मालगुजारी वसूल करना था। जमीन की नाप की जाती

थी। पहले किसानो से कबूलियत लिखाई जाती थी। पहले किसाना से ३० फी सदी लगान के रूप में लिया जाता था। पीछे से यह ४० फी सदी कर दिया गया। हिसाब कायदे से रखा जाता था। कोई राजकर्मचारी किसी से अधिक नही ले सकता था। दुर्भिक्ष के समय कृषि को प्रोत्साहन मिलता था और किसानो को अनाज बाँटा जाता था। किसाना की भलाई का शिवाजी को सदैव ध्यान रहता था। महाराष्ट्र देश में आज भी ऐसी कहानियाँ प्रचलित है जिनसे प्रकट होता है कि शिवाजी के राज्य का लक्ष्य प्रजा का हित ही था।

चौथ और सरदेसमुखी भी आय के साधन थे। रानाडे का कथन है कि चौथ केवल सैनिक कर नही था। जिस देश में यह कर लिया जाता था, वहाँ मराठे बाहरी शत्रुओ से उसकी रक्षा भी करते थे। डाक्टर सेन का मत इससे भिन्न है। वे चौथ का सैनिक कर के अतिरिक्त कुछ नही समझते। सर यदुनाथ सरकार का कहना है कि चौथ केवल लोगो से लूटकर धन लेना था। यह ऐसा कर नही था जिसके बदले में उस देश की रक्षा करना कर्तव्य समझा जाता। चौथ का वास्तविक अर्थ कुछ भी हो, ऐसा प्रतीत होता है कि चौथ एक सैनिक कर ही था। इसको अदा करके विजित देश मराठा से फिर आक्रमण न करने का वादा करा लेता था।

न्यायालयो की व्यवस्था प्राचीन पद्धति के अनुसार थी। अग्नि परीक्षा प्रचलित थी। देहातो में वृद्धजन पंचायतो में झगडे का निपटारा करते थे। फौजदारी के मुकदमो का निर्णय पटेल करता था। दीवानी फौजदारी दोनो की अपील ब्राह्मण न्यायाधीश सुनता था और स्मृतियो के आधार पर निर्णय करता था। अपील की अन्तिम अदालत हाजिर मजालिस थी जिसका शिवाजी की मृत्यु के बाद लोप हो गया।

शिवाजी दक्ष सैनिक थे। रणभूमि में उनका जौहर देखने में आता था। जो उन्हे युद्ध करते देखते, वे उनकी भूरि भूरि प्रशंसा करते थे। किलो का प्रबन्ध अच्छा था, क्योकि यही आक्रमण के समय प्रजा की रक्षा कर सकते थे। प्रत्येक किला एक हवल्दार को दिया गया था। हवल्दार के नीचे एक ब्राह्मण सूबेदार और एक कायस्थ कर्मचारी दो होते थे। राजधानी में

स्थायी सेना रहती थी जिसमें शिवाजी की मृत्यु के समय (१६८० ई०) तीस अथवा चालीस हजार अश्वारोही एक लाख पदल सिपाही थे।

सेना म भी कर्मचारियों की श्रणियाँ थी। अश्वारोही दो प्रकार के थे। एक तो वे जिन्ह हथियार इत्यादि राज्य से मिलता था दूसरे वे जो अपना प्रबंध आप करते थे। २५ अश्वारोहियो की इकाई होती थी जिसका नायक हवल्दार होता था। उसे एक भिश्ती और एक नालबन्द भी राज्य की ओर से मिलता था। पाच हवलदार के ऊपर एक जुमला, दस जुमला के ऊपर एक हजारी और हजारी के ऊपर पचहजारी होता था। पचहजारी को २००० हून वेतन मिलता था।

पदल सेना का भी विभाजन इसी प्रकार था। ० सिपाहियो की एक इकाई बनती थी, इनका अध्यक्ष नायक होता था। पाच नायको के ऊपर एक हवल्दार होता था और दो या तीन हवलदार एक जुमलादार की अध्यक्षता में काम करते थे। दस जुमलादारो का नायक हजारी होता था और सात हजारियो के ऊपर एक सरनौबत होता था।

सेना म हिन्दू-मुसलमान दोनो थे। उनके साथ बर्ताव एक सा होता था। वेतन नकद मिलता था। युद्ध म जो सिपाही मारे जाते थे उनकी स्त्रियो और बच्चो का पालन-पोषण राज्य की ओर से होता था। सेना मे किसी को गुलाम, लौंडी अथवा वेश्या ले जाने की आज्ञा नही थी। शत्रु की स्त्रियो और बच्चो की रक्षा की जाती थी। जब किसी विजित देश से धन लिया जाता था तो ब्राह्मण मुक्त कर दिये जाते थे। लूट के माल मे मिली हुई बहुमूल्य वस्तुएँ तो राजकोष म जमा हो जाती थी, बाकी सामान सिपाहियो को दे दिया जाता था।

शिवाजी का चरित्र—४ अप्रल सन १६८० को शिवाजी का स्वर्गवास हुआ। शिवाजी बडे प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। अपनी प्रतिभा के कारण ही वे राजपद पर पहुँचे थे। उन्होंने मराठो को एक सूत्र में बाधकर स्वाधीन मराठा राष्ट्र का निर्माण किया। इससे मराठो की ख्याति बढी और दक्षिण म मुसलमानी राज्य सशंकित रहने लगे। शिवाजी का शासन कुछ बातो में मुगलो से अच्छा था। वे प्रजा की भलाई का सर्वदा ध्यान रखते थे। इसीलिए

थी। पहले किसानों से वसूलियत लिखाई जाती थी। पहले किसानों से ३० फी सदी लगान के रूप में लिया जाता था। पीछे से यह ४० फी सदी कर दिया गया। हिसाब रायद में रखा जाता था। कोई राजकर्मचारी किसी से अधिक नहीं ले सकता था। दुर्भिक्ष के समय कृषि को प्रोत्साहन मिलता था और किसानों को अनाज बाँटा जाता था। किसानों की भलाई का शिवाजी को सदैव ध्यान रहता था। महाराष्ट्र देश में आज भी ऐसी कहानियाँ प्रचलित हैं जिनसे प्रकट होता है कि शिवाजी के राज्य का लक्ष्य प्रजा का हित ही था।

चौथ और सरदेशमुखी भी आय के साधन थे। रानाडे का कथन है कि चौथ केवल सैनिक कर नहीं था। जिस देश में यह कर लिया जाता था, वहाँ मराठे बाहरी शत्रुओं से उसकी रक्षा भी करते थे। डाक्टर सेन का मत इससे भिन्न है। वे चौथ को सैनिक कर के अतिरिक्त कुछ नहीं समझते। सर यदुनाथ सरकार का कहना है कि चौथ केवल लोगों से लूटकर धन लेना था। यह ऐसा कर नहीं था जिसके बदले में उस देश की रक्षा करना कर्तव्य समझा जाता। चौथ का वास्तविक अर्थ कुछ भी हो, ऐसा प्रतीत होता है कि चौथ एक सैनिक कर ही था। इसको अदा करके विजित देश मराठों से फिर आक्रमण न करने का वादा करा लेता था।

न्यायालयों की व्यवस्था प्राचीन पद्धति के अनुसार थी। अग्नि-परीक्षा प्रचलित थी। देहातों में वृद्धजन पंचायतों में झगड़ों का निपटारा करते थे। फौजदारी के मुकदमों का निर्णय पटेल करता था। दीवानी फौजदारी दोनों की अपील ब्राह्मण न्यायाधीश सुनता था और स्मृतियों के आधार पर निर्णय करता था। अपील की अन्तिम अदालत हाजिर मजालिस थी जिसका शिवाजी की मृत्यु के बाद लोप हो गया।

शिवाजी दक्ष सैनिक थे। रणभूमि में उनका जौहर देखने में आता था। जो उन्हें युद्ध करते देखते, वे उनकी भूरि भूरि प्रशंसा करते थे। किलों का प्रबन्ध अच्छा था, क्योंकि यही आक्रमण के समय प्रजा की रक्षा कर सकते थे। प्रत्येक किला एक हवल्दार को दिया गया था। हवलदार के नीचे एक ब्राह्मण सूबेदार और एक कायस्थ कर्मचारी दो होते थे। राजधानी में

स्थायी मना ग्हनी थी जिसमें शिवाजी की मृत्यु के समय (१६८० ई०) तीस अथवा चालीस हजार अश्वाराही एक लाख पदल सिपाही थे।

सेना म भी वमचारिया की श्रणियाँ थी। अश्वारोही दो प्रकार के थे। एक ता व जिन्हे हथियार इत्यादि राज्य से मिलता था, दूसरे वे जो अपना प्रबन्ध आप करते थे। २५ अश्वारोहिया की इकाई हाती थी जिसका नायक हवल्दार होना था। उसे एक भिश्ती और एक नालबन्द भी राज्य की ओर स मिलता था। पाँच हवल्दार के ऊपर एक जुमला, दस जुमलो के ऊपर एक हजारी और हजारी के ऊपर पचहजारी होता था। पचहजारी को २००० हन वेतन मिलता था।

पदल सेना का भी विभाजन इसी प्रकार था। ९ सिपाहिया की एक इकाई बनती थी, इनका अध्यक्ष नायक होता था। पाँच नायका के ऊपर एक हवल्दार होता था और दो या तीन हवल्दार एक जुमलादार की अध्यक्षता में काम करते थ। दस जुमलादारो का नायक हजारी होता था और सात हजारिया के ऊपर एक सरनौबत होता था।

सेना में हिन्दू-मुसलमान दोनो थ। उनके साथ बर्ताव एक सा होता था। वेतन नकद मिलता था। युद्ध म जो सिपाही मारे जाते थे उनकी स्त्रियो और बच्चा का पालन-पोषण राज्य की ओर से होता था। सेना म किसी को गुलाम, लौंडी अथवा वेश्या ले जाने की आज्ञा नही थी। शत्रु की स्त्रियो और बच्चा की रक्षा की जाती थी। जब किसी विजित देश से धन लिया जाता था तो ब्राह्मण मुक्त कर दिये जाते थे। लूट के माल म मिली हुई बहुमूल्य वस्तुएँ तो राजकोष में जमा हो जाती थी, बाकी सामान सिपाहियो का दे दिया जाता था।

शिवाजी का चरित्र—४ अप्रल सन १६८० को शिवाजी का स्वगवास हुआ। शिवाजी बडे प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। अपनी प्रतिभा के कारण ही वे राजपद पर पहुँचे थे। उन्होंने मराठा को एक सूत्र में बाधकर स्वाधीन मराठा राष्ट्र का निर्माण किया। इससे मराठो की ख्याति बढी और दक्षिण में मुसलमानी राज्य सशकित रहने लगे। शिवाजी का शासन कुछ बातो म मुगलो से अच्छा था। वे प्रजा की भलाई का सवदा ध्यान रखत थ। इसीलिए

थी। पहले किसानो से कबूलियत लिखाई जाती थी। पहले किसाना से ३० फी सदी लगान के रूप में लिया जाता था। पीछे से यह ४० फी सदी कर दिया गया। हिसाब कायदे से रखा जाता था। कोई राजकर्मचारी किसा से अधिक नही ले सकता था। दुर्भिक्ष के समय कृषि का प्रोत्साहन मिलता था और किसानो को अनाज बाटा जाता था। किसानो की भलाई का शिवाजी को सदव ध्यान रहता था। महाराष्ट्र देश में आज भी ऐसी कहानियाँ प्रचलित ह जिनसे प्रकट होता ह कि शिवाजी के राज्य का लक्ष्य प्रजा का हित ही था।

चौथ और सरदेसमुखी भी आय के साधन थे। रानाडे का कथन ह कि चौथ केवल सनिक कर नही था। जिस देश में यह कर लिया जाता था, वहा मराठे बाहरी शत्रुओ से उसकी रक्षा भी करते थे। डाक्टर सेन का मत इससे भिन्न ह। वे चौथ का सैनिक कर के अतिरिक्त कुछ नही समझते। सर यदुनाथ सरकार का कहना ह कि चौथ केवल लोगो से लूटकर धन लेना था। यह ऐसा कर नही था जिसके बदले में उस देश की रक्षा करना कर्तव्य समझा जाता। चौथ का वास्तविक अर्थ कुछ भी हो, ऐसा प्रतीत होता ह कि चौथ एक सैनिक कर ही था। इसको अदा करके विजित देश मराठो से फिर आक्रमण न करने का वादा करा लेता था।

न्यायालयो की व्यवस्था प्राचीन पद्धति के अनुसार थी। अग्नि-परीक्षा प्रचलित थी। देहातो में वृद्धजन पचायतो म झगडे का निपटारा करते थ। फौजदारी के मुकदमों का निर्णय पटेल करता था। दीवानी फौजदारी दोनो की अपील ब्राह्मण न्यायाधीश सुनता था और स्मृतियो के आधार पर निर्णय करता था। अपील की अन्तिम अदालत हाजिर मजालिस थी जिसका शिवाजी की मृत्यु के बाद लोप हो गया।

शिवाजी दक्ष सनिक थे। रण भूमि मे उनका जौहर देखने में आता था। जो उन्ह युद्ध करते देखते, व उनकी भूरि भूरि प्रशसा करते थ। किलो का प्रबध अच्छा था, क्योकि यही आक्रमण के समय प्रजा की रक्षा कर सकते थे। प्रत्येक किला एक हवल्दार को दिया गया था। हवल्दार के नीचे एक ब्राह्मण सूबेदार और एक कायस्थ कर्मचारी दो होते थे। राजधानी में

स्थायी सेना रहती थी जिसमें शिवाजी की मृत्यु के समय (१६८० ई०) तीस अथवा चालीस हजार अश्वारोही, एक लाख पदल सिपाही थ।

सेना में भी कमचारियो की श्रेणिया थी। अश्वारोही दो प्रकार के थे। एक तो वे जिन्हे हथियार इत्यादि राज्य से मिलता था दूसरे व जो अपना प्रबन्ध आप करते थे। २५ अश्वारोहियो की इकाई होती थी जिसका नायक हवल्दार होता था। उसे एक भिश्ती और एक नालबन्द भी राज्य की ओर से मिलता था। पाच हवलदार के ऊपर एक जुमला, दस जुमलो के ऊपर एक हजारी और हजारी के ऊपर पचहजारी होता था। पचहजारी को २००० हून वेतन मिलता था।

पदल सेना का भी विभाजन इसी प्रकार था। ° सिपाहियो की एक इकाई बनती थी, इनका अध्यक्ष नायक होता था। पाच नायको के ऊपर एक हवल्दार होता था और दो या तीन हवलदार एक जुमलादार की अध्यक्षता म काम करते थ। दस जुमलादारो का नायक हजारी होता था और सात हजारियो के ऊपर एक सरनौबत होता था।

सेना म हिन्दू-मुसलमान दोनो थ। उनके साथ वर्त्ताव एक सा होता था। वेतन नकद मिलता था। युद्ध म जो सिपाही मारे जाते थे, उनकी स्त्रियो और बच्चो का पालन-पोषण राज्य की ओर से होता था। सेना मे किसी को गुलाम लौंडी अथवा वेश्या ले जाने की आज्ञा नही थी। शत्रु की स्त्रियो और बच्चो की रक्षा की जाती थी। जब किसी विजित देश से धन लिया जाता था तो ब्राह्मण मुक्त कर दिये जाते थ। लूट के माल म मिली हुई बहुमूल्य वस्तुएँ तो राजकोष म जमा हो जाती थी बाकी सामान सिपाहियो को दे दिया जाता था।

शिवाजी का चरित्र—४ अप्रल सन १६८० को शिवाजी का स्वर्गवास हुआ। शिवाजी बडे प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। अपनी प्रतिभा के कारण ही वे राजपद पर पहुचे थे। उन्होने मराठो को एक सूत्र म बाधकर स्वाधीन मराठा राष्ट्र का निर्माण किया। इससे मराठो की ख्याति बढी और दक्षिण म मुसलमानी राज्य सशंकित रहने लगे। शिवाजी का शासन कुछ बातो में मुगलो से अच्छा था। वे प्रजा की भलाई का सवदा ध्यान रखते थ। इसीलिए

महाराष्ट्र म वे इश्वर का अवतार समझे जात थे। जब उनके उत्तराधिकारिया न उनकी नीति का परित्याग कर दिया, तो मराठा राज्य का पतन अवश्यम्भावी हो गया।

शिवाजी का चरित्र उच्च कोटि का था। वे धोखे का व्यवहार नही करते थ। वे पढ लिखे तो न थे, परन्तु अपनी तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा कठिन् से कठिन समस्या को सुलझा लेते थे। हिन्दुओ के वे रक्षक थे। विद्या प्रेमी भी थे। राज्य की ओर से संस्कृत शिक्षा का प्रोत्साहन मिलता था और विद्वान ब्राह्मणा का पेंशन दी जाती थी। मुसल्मान पीरो का भी आदर होता था। मसजिदो को भी रुपया और जमीन दी जाती थी। मुसल्मान शत्रुओ की स्त्रियो और बच्चो के साथ उनका बर्ताव सदा अच्छा होता था। उनकी आज्ञा थी कि युद्ध के समय किसी मसजिद को हानि न पहुँचाई जाय और यदि कोई कुरान की प्रति सनिको के हाथ पडती ता वह मुसल्माना को लौटा दी जाती थी। इसी प्रकार मुसल्मान स्त्रिया भी अपने सरक्षको के पास भेज दी जाती थी।

शिवाजी ने जिस राज्य की स्थापना की थी, वह उनकी मत्यु के बाद अधिक समय तक न चला। इसके कई कारण थे। मराठा राज्य एक फौजी राज्य था। उसका स्थायी रहना सेना की शक्ति पर निभर था। शिवाजी के बाद सेना का रूप रग और उसकी युद्ध शली भी बदल गई जिससे बडी क्षति पहुँची। मराठा जागीरदार शक्तिशाली हो गये। राष्ट्र हित की अवहेलना करने लगे। मुगलो के विरुद्ध युद्ध करने से भी मराठो का हानि पहुँची, परन्तु कोई दूसरा उपाय न था। मुसल्मान कब चुप बठनवाले थे? मराठो के लिए उनके अत्याचारो को रोकना आवश्यक हो गया।

शिवाजी का नाम इतिहास मे अमर रहेगा। वे एक अदभुत व्यक्ति थ। अपने पौरुष स उन्होने मुगलो और दक्षिण-नरशो का विरोध होत हुए भी इतना बडा राज्य बनाया, यह उनकी वीरता एव राजनीतिक कौशल का द्योतक है। समर्थ रामदास का उनके जीवन पर प्रभाव पडा था। उनकी आज्ञा के बिना वे कुछ भी न करते थे। शिवाजी को हिन्दू जानि गा ब्राह्मण का सरक्षक समझती थी। इसी लिए हिन्दू जगत मे उनका नाम आज तक आदर से लिया जाता है।

औरंगजेब के इस्लामी कानून—सिंहासनारूढ़ होने पर औरंगजेब ने जो नियम जारी किये थे उनका उल्लेख किया जा चुका है। इसके बाद जो कानून बने उनमें धार्मिक कट्टरपन का पता चलता है। अपने शासन के ११वें वर्ष में उसने संगीत की मनाही कर दी और गाने-बजानेवालों को निकाल दिया। जन्म दिवस के दिन तुलादान की प्रथा बंद कर दी गई। बादशाह ने यह नियम निकाला कि दरबार के हिन्दू नमस्कार को छोड़कर आपस में सलामआलेकुम किया करें। ज्योतिषियों की अवहेलना की गई और शाही आज्ञा निकाली कि वे पत्रा न बनावें। परन्तु ज्योतिष शास्त्र में जनता का विश्वास इतना दृढ़ था कि यह आईन इस प्रथा को बन्द नहीं कर सका। दर्शन की प्रथा बन्द कर दी गई। शराबखोरी के विरुद्ध बड़े कड़े कानून पास हुए और कोतवाल को आज्ञा दी गई कि जो शराब बेचे उसका एक हाथ और एक पाँव काट लिया जाय। भंग पीना भी बन्द कर दिया गया। फीरोज तुगलक ही के समान औरंगजेब ने स्त्रियों का पीरों के मकबरे में दर्शन करने के उद्देश्य से जाना वर्जित कर दिया।

इन इस्लामी कानूनों के अतिरिक्त बादशाह ने अपनी प्रजा के चरित्र को सुधारने के लिए कुछ नियम बनाये। वेश्याओं को आज्ञा दी गई कि या तो वे विवाह कर लें नहीं देश छोड़कर चली जायें। फैशन का कोई प्रोत्साहन नहीं दिया गया और जो पुरुष स्त्रियों के समान वस्त्र पहनते, उनका उपहास किया जाता था। जुआघर नाजायज करार दिया गया। होली के अवसर पर गंदे गीत गाने पर रोक लगा दी गई और होलिका के लिए जो लकड़ियाँ चुराकर ले जाते थे उन्हें दंड मिलता था। मुहर्रम का जलूस भी रोक दिया गया। सती प्रथा वर्जित कर दी गई, परन्तु शाही नियमों का पालन नहीं होता था।

प्रतिक्रियावादी नियम—शाहजहाँ के शासनकाल में धार्मिक सहिष्णुता के विरुद्ध जो प्रतिक्रिया आरंभ हुई थी वह और बढ़ गई। जब औरंगजेब गुजरात का वाइसराय था तभी उसकी आज्ञा से चिन्तामणि के मन्दिर में गोहत्या करके उसे अपवित्र कर दिया गया था, और उसे मसजिद में परिवर्तित कर दिया गया था। बादशाह हो जाने पर अपने कट्टरपन का पूर्ण रूप से उपयोग करने का उसे अवसर प्राप्त हुआ। ९ अप्रैल, १६६९ में उसने एक

व्यापक आज्ञा निकाली कि विधर्मियो की पाठशालाएँ और मन्दिर तोड दिए जायें और उनकी धार्मिक शिक्षा और रीति रिवाज को बन्द कर दिया जाय। कई बडे प्रसिद्ध मन्दिर, जसे गुजरात में सोमनाथ का मन्दिर, बनारस में विश्वनाथ और मथुरा म केशवराय के मन्दिर धराशायी कर दिये गये।

विक्रय की चीजो पर मुसल्मानो म ढाइ फी सदी और हिन्दुओ से पाच फी सदी कर लिया जाने लगा। मइ १६६७ म मुसल्मानो पर से यह कर बिलकुल उठा दिया गया और इस प्रकार राज्य का बहुत बडी आमदनी से हाथ धाना पडा। धर्म-परिवर्त्तन को प्रोत्साहन देने के लिए बादशाह ने यह नियम बना दिया कि जो इस्लाम स्वीकार कर ले, उस पारितोषिक और नौकरी मिले। इस प्रकार राज्य एक धर्म प्रचारक सस्था हो गई।

जसे-जसे समय बीतता गया हिन्दुओ के विरुद्ध प्रतिबन्धो की सख्या बढती ही गई। १६६८ म उनके मेलो पर रोक लगा दी गई और नगरो में दिवाली का उत्सव मनाना भी वर्जित कर दिया गया। सन् १६७१ में हुक्म हुआ कि खाल्सा मे लगान वसूल करनेवाले सभी मुसलमान हो तथा वाइसराय और तालुकेदार अपने हिन्दू पेशकार और दीवानो को निकाल दे। परन्तु प्रान्तीय शासन बिना हिन्दू पेशकारो के चल नही सकता था। और फिर नवीन आज्ञा हुई कि केवल आधे स्थान ही हिन्दुओ को मिले। मार्च सन् १६९५ में एक नियम बना कि राजपूतो के अतिरिक्त और दूसरे हिन्दुओ का पालकी, हाथी अथवा घोडे पर सवारी करना और शस्त्र धारण करने की आज्ञा नही है।

हिन्दुओ ने इन प्रतिबन्धो का विरोध किया और कई भयानक विद्रोह भी हुए। पहला विद्रोह गोकुल जाट व मथुरा के फौजदार अब्दुननबी की नीति के विरुद्ध हुआ। अब्दुलनबी औरगजेब का बडा स्वामिभक्त नौकर था। पदग्रहण करने के पश्चात् उसने नगर म एक हिन्दू मन्दिर के भग्नावशेष से एक मसजिद बनवाई थी और सन १६६६ में खुद हुए पत्थर की उस छड को जिसको दाराशिकोह ने केशवराय के मन्दिर को प्रदान किया था निकलवा लिया था। इससे उस जिले के जाट किसान और उनके नेता गोकुल बडे क्रुद्ध हुए। फौजदार को मौत के घाट उतारा और सादाबाद के परगने को लूट लिया।

जब अराजकता आस-पास के जिलों में भी फैल गई तो बादशाह ने विद्रोह को दबाने के लिए सेना भेजी। तिलपत से बीस मील की दूरी पर एक भयंकर युद्ध हुआ जिसमें गोकुल और उसका कुटुम्ब बन्दी बना लिया गया। गोकुल को आगरे में कठोर यन्त्रणा देकर मारा गया, और उसके कुटुम्बवालों की मृत्यु से विद्रोह का अन्त नहीं हुआ। उसका स्थान दूसरे नेताओं ने ले लिया, और लड़ाई अनियमित रूप से चलती ही रही। सन् १६८६ में राजाराम के नेतृत्व में विद्रोह फिर जोरों से भड़क उठा। शाही सेना ने राजाराम पर विजय पाई और वह युद्ध में मारा गया। उसके बाद उसके भतीजे चूरामन ने सेनापतित्व ग्रहण किया। वह बादशाह के शासनकाल के अन्तिम दिनों तक लड़ता रहा।

सतनामी विद्रोह, १६७२ ई०—दूसरा प्रबल विद्रोह सतनामियों ने नारनौल और मेवात में किया। सतनामी शब्द का अर्थ है ईश्वर के सत् नाम में विश्वास करनेवाला। सतनामी एक प्रतिष्ठित और शक्तिशाली जाति थी। यदि कोई शक्ति का प्रयोग करके उसे हानि पहुँचाना या दबाना चाहता, तो वह इसे नहीं सहन कर सकती थी। सतनामी बादशाह की धार्मिक नीति से पहले ही से असन्तुष्ट थे। युद्ध विस्फोट एक मामूली झगड़े से हो गया। एक शाही सिपाही किसी खेत पर पहरा दे रहा था। वहीं उससे एक सतनामी किसान से झगड़ा हो गया। सिपाही ने सतनामी का सिर तोड़ दिया जिससे सारी सतनामी जाति बिगड़ गई। उन्होंने सिपाही को मृतप्राय करके छोड़ दिया। जब स्थानीय शिक्दार ने दोषी को कैद करना चाहा तो सतनामी इकट्ठा हुए और उन्होंने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। नारनौल का फौजदार अपनी सेना लेकर उनसे लड़ने चला, परन्तु उसकी हार हुई और युद्ध के मैदान से भागकर उसने अपनी रक्षा की। जब बादशाह को इस विद्रोह की सूचना मिली, उसने एक के बाद एक करके कई सेनाएँ इसे दबाने को भेजीं। परन्तु इन सेनाओं की बराबर पराजय ही होती रही। मुगलों के ऊपर सतनामियों का ऐसा रोब जम गया कि वे समझने लगे कि सतनामी जादू जानते हैं और उन्होंने शैतान को अपने वश में कर लिया है। बादशाह के पास जब यह समाचार पहुँचा तो उसने शत्रु को हराने के लिए एक उपाय सोच निकाला। उसने अपने हाथ से कुछ कुरान की आयतें लिखकर शाही झंडे में सिलवा दीं और यह घोषणा करवा दी कि अब शैतान मुल्लों का कुछ नहीं बिगाड़ सकता। अबकी

वार भयकर लडाई के पश्चात् शाही सेना विजयी हुई। प्राय २००० सतनामी मारे गये और बाकी भाग खडे हुए। विद्रोह बडी क्रूरता से दबा दिया गया।

सिक्खों का विद्रोह—सिक्खो ने भी औरगजेब के अत्याचार का विरोध किया। सिक्ख धर्म के प्रवर्त्तक गुरु नानक एक महान् पुरुष थे। उनका कथन था कि मुक्ति का मार्ग ईश्वर की पूजा और अच्छे कर्मो में निहित है। वे धर्म के बाह्य आडबरो में विश्वास नही करते थे।

नानक के बाद तीन गुरु उन्ही के पथ पर चले और उनका कार्य धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र तक ही सीमित रहा। चौथे गुरु रामदास अकबर से मिले थे। उनसे वार्तालाप कर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उन्हे पजाब में कुछ जमीन दान के रूप मे दे दी, जिस पर उन्होने अमृतसर अथवा अमृत के तालाब का निर्माण करवाया। पाचवे गुरु अर्जुन सन १५८१ मे गद्दी पर बैठे। उन्होने ग्रन्थ साहब का सम्पादन किया और सिक्खो को निश्चित आदर्शवाली एक जाति के रूप में परिणत कर दिया। खुसरो का पक्ष लेने के कारण जहागीर उनसे अप्रसन्न हो गया। वे बन्दीगृह मे डाल दिये गये, जहा घोर यत्रणा देकर सन १६०६ मे उनके जीवन का अन्त कर दिया गया।

इस हत्या से सिक्ख बडे कुपित हुए। अपने नवीन गुरु हरगोविन्द (१६०६-४५) नेतृत्व में उन्होने अपने को एक सैनिक सघ के रूप में परिवर्तित कर दिया। उनके बाद के दो गुरुओ ने कोई उल्लेखनीय कार्य नही किया। नवे गुरु तेगबहादुर की हत्या करके औरगजेब ने मानो युद्ध की घोषणा कर दी।

इस हत्या का कारण यह था कि तेगबहादुर ने औरगजेब की हिन्दू धर्म पर आघात और मन्दिरो के अपवित्र करनेवाली नीति का विरोध किया था। बादशाह ने राजद्रोह फैलाने के अपराध में गुरु को दिल्ली बुलवाया और कारागार में डाल दिया। उनसे इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए कहा गया, किन्तु जब वे इसके लिए तैयार नही हुए, तो उनका सिर काट दिया गया। सिक्खो मे अब तक कहावत है कि गुरु ने सिर दिया सार न दिया।

इस समाचार ने सम्पूर्ण पजाब में खलबली मचा दी, और सारा देश प्रतिरोध के लिए व्याकुल हो उठा। तेगबहादुर के पुत्र और उत्तराधिकारी गुरु गोविन्द सिंह ने बदला लेने की प्रतिज्ञा की। परन्तु एक शक्तिशाली साम्राज्य के

विरुद्ध वस गफन्ता प्राप्त हा सकतो थी ? गाविन्दसिह ने समच लिया नि सफलता के लिए सिक्खा का एक मनिक सघ मे बदलना आवश्यक ह। इसी उद्देश्य मे उन्होने एक नवीन भ्रातसघ खालसा की नीव डाली। इसके मदस्य कघी, कच, केश कृपाण तथा कडा धारण करते थे। उनम जाति भद नही था। उन्होंने अपना जीवन सिक्ख धम के लिए समर्पित कर दिया आर शत्रु स बदला लेने की प्रतिज्ञा की।

गुरु न भी अपने जीवन का रग बदल दिया। धार्मिक गुरु म व राजा बन बठे। उन्होने सनिक सचालन किया, पहाडियो पर किले बनवाये और पहाडी सरदारा का युद्ध म हरा अपनी शक्ति बढाई। अब औरगजब की आख खुली और उनको हराने के लिए मुगल सना भजी गई। युद्ध में गाविन्दसिह पराजित हुए। उनके दो पुत्र बन्दी बना लिये गय और बडी निदयता से उनकी हत्या की गई। गुरु स्वय बहुत दिनो तक इधर-उधर भटकते रहे। शाही सना न उनका पीछा किया परन्तु मुक्तस्वर म सिक्खा ने उसे पराजित किया। गुरु साहब ने इसी स्थान पर एक बावडी बनवाई जिसका महत्त्व आज भी सिक्खा की दष्टि म तीर्थ स्थान के समान ह।

औरगजब का अतिम समय निकट आ रहा था। वे समझ गय कि युद्ध से सिक्खो का दबाना असभव ह। उन्होने आनन्दपुर में जहा गुरु साहब रहा थे, दरबार म उन्हे आने का बुलवा भेजा। गाविन्दसिह न उत्तर भजा कि म बादशाह से मिलने के लिए तयार हूँ। पत्र म उन्होने अपनी क्षति का भी विवरण दिया जो उन्ह युद्ध म उठानी पडी था। बादशाह न वचन दिया कि उनका बडा सम्मान-पूवक स्वागत हागा तथा गुरु दक्षिण भारत को उनसे मिलने के लिए चल पडे। रास्ते ही म उन्ह सम्राट की मत्यु का समाचार मिला। नवीन सम्राट बहादुर-शाह उन्ह दक्षिण भारत को लिवा ले गया। परन्तु वहा एक अफगान ने उन्ह सन् १७०८ में मार डाला।

गाविन्दसिह बडे दूरदर्शी थे। वे जानते थे कि गद्दी के लिए सिक्खा मे अवश्य सघर्ष होगा। अपनी मृत्यु के पश्चात सेना के नेतत्व के लिए तो उन्होने बन्दा का चुना परन्तु गुरु की गद्दी तोड दी।

जजिया—२ अप्रल सन १६७९ मे हिदुओ पर फिर से जजिया लगाया

गया। हिन्दुओं ने इस कर के विरुद्ध बड़ा आंदोलन किया। जब बादशाह नमाज पढ़ने को मस्जिद में जा रहा था तब उन्होंने सड़क पर इकट्ठा होकर विरोध किया। शाही आज्ञा से उन पर हाथी चलवा दिया गया। कितने लोग हाथियों के पैरों से दबकर मर गये। अन्त में हारकर हिंदुओं को जजिया देना ही पड़ा।

राजपूतों से युद्ध, १६७६—राजा जसवन्तसिंह जो जमरूद के फौजदार नियुक्त हुए थे १० दिसम्बर सन् १६७८ को स्वर्गवासी हुए। इस घटना से औरंगजेब की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। मारवाड़ को मुगल साम्राज्य में मिलाने का यह बड़ा सुंदर अवसर था। राज्य कर्मचारियों को मारवाड़ भेज औरंगजेब ने शासन प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया। मन्दिरों का विध्वंस करने और जजिया वसूल करने की आज्ञा दी गई। जसवन्तसिंह के भतीजे के लड़के इन्द्रसिंह को ३६ लाख रुपया देने पर जोधपुर का शासक नियुक्त किया गया।

फरवरी सन १६७९ में जसवन्तसिंह की दो रानियां लाहौर आईं। वहीं उनके दो बालक उत्पन्न हुए जिनमें से एक अजीतसिंह जीवित रहा। औरंगजेब अजीतसिंह को हरम में रखकर मुगल शाहजादा के समान उसका पालन पोषण करना चाहता था। राठौर राजपूत बादशाह के इस प्रस्ताव से घबड़ा उठे। उन्होंने प्रार्थना की कि अजीतसिंह को उत्तराधिकारी मान लिया जाय परन्तु बादशाह ऐसा करने के लिए तयार नहीं था। अब राजपूतों ने अन्त तक अपने बालक राजा के लिए लड़ने की ठानी और दुर्गादास से सहायता मांगी। दुर्गादास का नाम राजपूत इतिहास में सदा अमर रहेगा। ये बड़े निर्मल चरित्र के पुरुष थे जिन्होंने अपने वचन को कभी नहीं तोड़ा और शत्रु तक को धोखा नहीं दिया। परन्तु इसी के साथ साथ इनकी राजनीतिज्ञता और शौर्य भी उच्चकोटि के थे। रानी की रक्षा के लिए उन्होंने एक उपाय सोच ही निकाला और उसे तथा अजीतसिंह को साथ ले, जुलाई १६७९ में जोधपुर पहुँच गये।

औरंगजेब ने एक ग्वाले के पुत्र को मँगा उसे अजीतसिंह का नाम दे हरम में रक्खा और एलान कर दिया कि दुर्गादास जिसके लिए लड़ रहे हैं वह जसवन्तसिंह का बेटा नहीं है। शाही सेना मारवाड़ को रवाना हुई और युद्ध संचालन के लिए सम्राट स्वयं जोधपुर पहुँचा। शाहजादा अकबर और तहव्वुर खां सेनापति

नियुक्त हुए। राजपूत युद्ध म हार गये। मारवाड मुगल साम्राज्य मे मिला लिया गया और उसे जिला में विभाजित करके प्रत्येक का एक फौजदार के अधीन रक्खा गया।

रानी ने जा मेवाड की राजकुमारी थी, वहा के राणा राजसिंह स सहायता की प्रार्थना की। राणा ने अनाथ राजकुमार का अपनी शरण में ले लिया। मारवाड क साम्राज्य म सम्मिलित हो जान स मेवाड भी खतरे म पड गया था। बादशाह ने राणा स भी जजिया की माग की थी। मेवाड तथा मारवाड दोनो की रक्षा के लिए बादशाह से युद्ध आवश्यक हो गया।

औरंगजेब स्वय उदयपुर का चला और मुगल सेना ने राणा के राज्य में प्रवेश किया। राणा पहाडा को भाग गये और औरंगजेब ने उनके राजकोष पर अधिकार कर लिया। बादशाह की आज्ञा से १२३ मंदिर उदयपुर के प्रदेश में और ६३ चित्तौड में धराशायी कर दिये गये। यद्यपि आमेर का राजा बादशाह का मित्र था, परन्तु वहा के भी ६६ मंदिर विध्वस कर दिये गये। चित्तौड शाहजादा अकबर के अधिकार मे छोड बादशाह अजमेर लौट आया।

राजपूतो ने युद्ध जारी रक्खा। अकबर को उनके विरुद्ध सफलता नही मिली। क्रुद्ध होकर बादशाह न आजम का मेवाड भेजा और अकबर को हटाकर मारवाड भेज दिया। मारवाड में आकर अकबर ने राजपूतो के सहयोग से षडयंत्र रचा और बादशाह को सिंहासनच्युत करने और स्वय गद्दी पर बठने के अपन निश्चय का एलान कर दिया। मारवाड ही में अकबर सिंहासनासीन हुआ और दुर्गादास को उसने अपना प्रधान मंत्री बनाया। राजपूतो ने उसकी आशाओ का और बढा दिया। अकबर के विद्रोह का समाचार सुनकर औरंगजेब सन्न रह गया। सचमुच शाहजादे के लिए यह बडा उपयुक्त अवसर था। यदि वे तुरन्त अजमेर पर धावा बोल देते तो पिता को हरा अपने का बडा शक्तिशाली बना लेते।

परन्तु अकबर तो आरामतलबी म अपना समय बिता रहा था। इस बीच औरंगजेब ने अजमेर की रक्षा की पूर्ण तयारी कर ली। शाहजादा मोअज्जम भी सेना लेकर उससे आ मिला। अकबर हमले के लिए रवाना हो होनेवाला था कि औरंगजेब की कूटनीति ने सपूर्ण षडयंत्र को छिन्न भिन्न कर डाला। उसने शाहजादे के नाम एक पत्र लिखा और ऐसा प्रबन्ध किया कि वह दुर्गादास के हाथ पड जाय। पत्र में बादशाह का आज्ञानुसार राजपूतो का बेवकूफ बनान म सफलता

प्राप्त करने के लिए बधाई दी गई थी और लिखा था कि राजपूती सेना को ऐसी स्थिति में रखना चाहिए जहाँ वह शाहजादा और बादशाह दोनों की सेनाओं की गालियों का शिकार बने। राजपूत बादशाह के धोखे में आ गये और उन्होंने अकबर का साथ छोड़ दिया। अकबर की सेना तितर बितर हो गई और वह स्वयं लड़ाई के मैदान से भाग गया परन्तु दुर्गादास और जयसिंह ने अपने वचन का पूरा किया और हारने पर भी उसे शरण दी। अकबर दक्षिण को गया और वहाँ से फारस को चला गया। वहाँ सन १७०४ में उसकी मृत्यु हो गई।

मेवाड़ के साथ युद्ध चलता रहा। दोनों पक्षवालों को बड़ी हानि उठानी पड़ी। अन्त में १६८१ में सुलह हो गई। जयसिंह ने जजिया के बदले में बादशाह को अपने कुछ जिले दे दिये। बादशाह ने उसे पचहजारी मनसबदार बनाया और राणा की उपाधि को स्वीकार कर लिया। मारवाड़ बराबर युद्ध करता रहा।

दुर्गादास के नेतृत्व में यह स्वतन्त्रता युद्ध ३० वर्ष तक जारी रहा। औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी बहादुरशाह ने अजीतसिंह को मारवाड़ की गद्दी का अधिकारी स्वीकार कर लिया।

राजपूत युद्ध में औरंगजेब को धन और जन दोनों की बड़ी क्षति उठानी पड़ी। उसकी प्रतिष्ठा को भी बड़ा धक्का पहुँचा। इस युद्ध के पूर्व राजा जयसिंह और जसवन्तसिंह के समान बहुत से राजपूतों ने साम्राज्य की सेवा में अपना रक्त बहाया था परन्तु भविष्य में राजपूतों ने सहायता से हाथ खींच लिया। बादशाह की अनुदारता के कारण मित्र शत्रु हो गये तथा अराजकता और षडयन्त्र के चिह्न चारों तरफ दृष्टिगोचर होने लगे।

औरंगजेब और दक्षिण के शिया राज्य—अपने शासन के पूर्वार्द्ध में औरंगजेब ने दक्षिण जीतने का कोई प्रयत्न नहीं किया था। जब १६८१ में राणा जयसिंह से सुलह हो गई तो बादशाह ने उधर अपना ध्यान दिया। इसका कारण शाहजादा अकबर का मराठों के पास जाना था।

दूसरा कारण यह था कि बादशाह शिया राज्यों को नष्ट करना चाहता था। उसकी दृष्टि में शिया वैसे ही विधर्मी थे जैसे हिन्दू। इसलिए अपने जीवन के अन्तिम २६ वर्ष शिया और मराठों की शक्ति को नष्ट करने के प्रयत्न में व्यतीत किये।

बीजापुर विजय, १६८६—प्रथम औरंगजेब ने अपना ध्यान बीजापुर की

ओर दिया। नवम्बर १६७२ म अली आदिलशाह द्वितीय की मृत्यु हो गई थी। सरदारो ने उसके चार वष के पुत्र सिकन्दर को गद्दी पर बिठाया तथा अपनी स्वाथ सिद्धि के लिए आपस में लडने लगे। शासन निरकुश था ही, इस पारस्परिक युद्ध न राज्य को और निर्बल बना दिया।

औरगजब न दिलेर खाँ को सेनापति बनाकर दक्षिण भजा। सन १६७९ में बीजापुर का घेरा प्रारभ हुआ, परन्तु सेनापति को अपन उद्देश्य में सफलता नही मिली। वह फरवरी सन १६८० म वापस बुला लिया गया। अगले तीन वष मुगल मराठो से युद्ध करते रह और बीजापुर की तरफ अधिक ध्यान नही दिया। १३ नवम्बर सन् १६८३ को बादशाह स्वय अहमदनगर पहुँचा। उसकी आज्ञा से शाहजादा आजम ने शोलापुर पर अधिकार कर लिया, परन्तु बीजापुर पर हमला करन का उसका प्रयत्न असफल रहा। अब बादशाह स्वय शोलापुर पहुँचा और उसकी सरक्षता म अप्रल १६८५ म बीजापुर का घेरा प्रारम्भ हुआ।

जसे जसे समय बीतता गया मुगलो की दशा खराब ही होती गई। कुतुबशाह और शम्भूजी न सिकन्दर को सहायता का वचन दिया। मुगल सेना में अकाल पड जाने के कारण औरगजब की निराशा और बढ गई। बादशाह न आजम को घेरा उठा लेन के लिए लिखा, परन्तु शाहजादा दढ रहा और अपन स्थान से न हटा। औरगजब न सहायताथ और सेना भेजी और घेरा जारी रहा। साल भर बाद घेरे का निरीक्षण करने बादशाह स्वय बीजापुर पहुँचा। शाही सेना की दढता और खाद्य पदार्थों की कमी के कारण बीजापुरी घबरा उठ और उन्होने १२ सितम्बर सन् १६८६ को आत्मसमपण कर दिया।

सिकन्दरशाह छावनी में लाया गया और दीवान आम मे बादशाह से मिला। बादशाह न शाही उमरावो मे उसका नाम लिखा दिया और उसकी एक लाख पशन निश्चित कर दी। बीजापुर मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया। शहर बरबाद हो गया। बादशाह ने आदिलशाही महल में दीवार के चित्रो को तोडने का हुक्म द दिया। स्वतन्त्रता के अपहरण के कारण बीजापुर की सस्कृति का भी विनाश हो गया। जिस सूबेदार को औरगजेब ने नियुक्त किया था उसका तो काम केवल प्रजा से धन वसूल करके शाही कोष मे जमा करना था।

सिकन्दर ने अपने जीवन के कई वष दौलताबाद के किले में नजरबन्द रहकर

काटे। बाद म वह शाही ावनी के साथ घूमता रहा। अप्रल १७०० में ३२ वष की अवस्था में उसकी मृत्यु हो गई।

गोलकुडा की विजय १६८७—सन् १६७२ में गोलकुडा के शासक अब्दुल्ला की मत्यु हो गई। उसके बाद, पुत्रहीन होने के कारण, उसका सम्बधी अबुल्हसन गद्दी पर बठा। अबुलहसन अपना समय भोगविलास में व्यतीत करता था और शासन का प्रबध उसन अपने ब्राह्मण मत्री मदन्ना और सेनापति अकन्ना के हाथो में छोड दिया था। जब औरगजब को यह समाचार मिला, उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। विधर्मियो को इतना उच्च पद देन के कारण अबुल्हसन बादशाह की आखो का काटा हो गया। इसके सिवा बीजापुर में प्राकृतिक सम्पत्ति का बाहुल्य था। हीरे और लोहे की खाने इत्यादि थी। कुतुबशाह ने सधि की शर्तो को भी पूरा नही किया था। युद्ध का व्यय अभी तक अदा नही हुआ था और दो लाख सालाना भट भी पूणत नही जमा की गई थी। सुल्तान ने मीरजुमला को कर्नाटकवाली जागीर को भी जिस पर मुगलो का अधिकार होना चाहिए था, हडप कर लिया था।

जब बीजापुर का घेरा जारी था, शाहजादा मुअज्जम के सेनापतित्व में एक सेना गोल्कुण्डा भेजी गई थी। परन्तु मुगल सेनापतियो के आपसी झगडे और शाहआलम के आलस्य के कारण शाही फौज अधिक प्रगति न कर सकी। इस शिथिलता क लिए शाहजादे को औरगजेब की फटकार सुननी पडी और युद्ध नवीन जोश से आरम्भ हुआ। मदन्ना चाहता था कि अबुल्हसन वारगल चला जाय, परन्तु वह गोलकुण्डा भाग गया था। शाहजादा बढता ही गया ौर ८ अक्टबर सन १६८५ मे उसने हैदराबाद पर अधिकार कर लिया। गोल्कुडा में जब यह समाचार पहुँचा तो वहाँ अराजकता फल गइ। अमीरो और कर्मचारियो न मदन्ना को इसके लिए उत्तरदायी ठहराया और उसके विरुद्ध षडयन्त्र रचे जान लग। माच सन् १६८६ म एक रात को एक षड्यन्त्रकारी न गोल्कुण्डा की एक सडक पर उसे मार डाला। उसके भाई की भी इसी प्रकार हत्या कर दी गई।

बीजापुर पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद औरगजेब न अपनी सम्पूण शक्ति को गोलकुण्डा के विरुद्ध केन्द्रित किया। जनवरी सन १६८७ में बादशाह

स्वय गाल्कुण्डा पहुँचा और नगर के घेरे के लिए आज्ञा दी। घरा कई महीने तक जारी रहा। अकाल के कारण सिपाहियो को बडा कष्ट उठाना पडा। इसी समय शाही सेना म बीमारी फल गई जिसके फलस्वरूप बहुत से सिपाहियो आर पशुआ का जान स हाथ धाना पडा। परन्तु औरगजेव का भाग्य अच्छा था। अबुलहसन नामक एक बीजापुरी कमचारी न धन के लालच म किले का फाटक खाल दिया। २१ सितम्बर का शाही सेना न किले में प्रवेश किया। गालकुण्डा मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया। अबुल्हसन कद कर लिया गया। उसके लिए ५०००० सालाना पेशन नियत कर दी गई और उसे दौलताबाद के किले में नजरबद रक्खा गया।

मराठों से फिर युद्ध—गोल्कुण्डा और बीजापुर पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद औरगजव न मराठा से युद्ध छडा। शम्भूजी विलासप्रिय मनुष्य था। उसका अधिक समय भागविलास ही मे बीतता था। उसमें वह चरित्र और वह शक्ति नहा थी जिसके आधार पर शिवाजी न स्वतत्र राज्य की स्थापना की थी। इसका परिणाम उसे जल्द ही भोगना पडा। एक दिन उसके निवासस्थान सगमेश्वर पर शाही सेनापति मुकरब खा टूट पडा और उस बदी बना लिया। शम्भूजी जजीरा में बाधकर शाही खेमे में लाया गया।

औरगजव ने एक कमचारी को शम्भजी से यह पूछने के लिए भजा कि मराठा राजकोष कहा ह और कौन-कौन से मुगल अफसर उनसे मिले हुए थे। शम्भूजी न औरगजव और पगम्बर को गालिया दी और कहा कि यदि बादशाह मरी मित्रता चाहता ह तो अपनी लडकी का विवाह मुझसे कर दे। इस समाचार का सुन औरगजव आगबबूला हो गया। शम्भूजी को कठोर यातना देकर मार डाला गया और उनके मास को कुत्तो को खिला दिया गया।

मराठो मे युद्ध चलता रहा, और मुगलो ने कई और गढ जीत लिय। शाही सेना न शम्भूजी की राजधानी रायगढ पर घेरा डाला। मराठा ने आत्मसमपण कर दिया। शम्भूजी के भाई राजाराम भिखमग के वेष में भाग निकले, परन्तु शम्भूजी का कुटुम्ब जिसम उसके पुत्र शाहू भी थ, बन्दी बना लिया गया। स्त्रियो के प्रति बादशाह का व्यवहार प्रतिष्ठापूण था। शाहू को बादशाह ने मनसबदार नियुक्त किया और उसकी शिक्षा के लिए याग्य शिक्षक रक्खे। सन्

१६८९ के अन्त तक बादशाह की शक्ति चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई थी। दक्षिणी अथवा उत्तरी भारत में कोई भी उसके विरुद्ध खड़ा होने का साहस नहीं कर सकता था। परन्तु तलवार के ज़ोर पर स्थापित साम्राज्य अधिक दिनों तक न ठहर सका और बहुत जल्दी ही विरोध आरम्भ हो गया।

मराठों से अन्तिम युद्ध (१६९१–१७०७)—शम्भूजी की हत्या और शाहू के बन्दी बनाये जाने पर भी मराठों ने हिम्मत नहीं हारी। शाहू की अनुपस्थिति में शासन का प्रबन्ध राजाराम के हाथों में रहा। रायगढ़ से भागने के बाद वह जिंजी चला गया था और वहीं उसने अपनी शक्ति को बढ़ाना प्रारम्भ किया था। देश के कोने कोने से मराठा सेनापति जिन्होंने महाराष्ट्र को मुगलों से स्वतन्त्र करने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली थी जिंजी में इकट्ठा होने लगे। पूर्ण रूप से तैयारी करके राजाराम ने युद्ध प्रारम्भ किया। मराठी सेना ने मुगल प्रान्तों पर हमला किया तथा चौथ की माँग की। यह समाचार सुन औरंगजेब का क्रोध भड़क उठा। उसने समझ लिया कि मराठा शक्ति को उखाड़ फेंकने के लिए फिर से युद्ध की आवश्यकता है। वजीर आसद खाँ का पुत्र जुल्फिकार खाँ जिंजी पर घेरा डालने के लिए भेजा गया। मराठों ने बड़ी वीरता से उसका सामना किया। पड़ोस के जमींदारों ने भी मराठों से सहयोग किया और शाही सेना को चारों दिशाओं से घेर रसद का आना-जाना बन्द कर दिया। परन्तु जुल्फिकार खाँ ने हिम्मत न हारी। अन्त में मराठों ने जनवरी सन १६९८ में आत्मसमर्पण कर दिया। राजाराम सतारा भाग गया, परन्तु उसके कुटुम्बी बन्दी बना लिये गये।

राजाराम ने सतारा से भी मुगलों से युद्ध करने के लिए सैन्य-संचालन करना प्रारम्भ किया। मराठी सेना ने खानदेश बरार और बगलाना पर हमला किया तथा चौथ वसूल की। अब बादशाह मराठों के विरुद्ध युद्ध का निरीक्षण करने स्वयं इस्लामपुर पहुँचा। उसने सेनापति का पद स्वयं ग्रहण किया और सतारा पर हमला शुरू हुआ। मराठों ने बड़ी वीरता से सामना किया और शाही सेना को बारम्बार मुँह की खानी पड़ी। परन्तु मार्च सन १७०० में राजाराम की मृत्यु हो जाने से मराठे हतोत्साह हो गये और उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया।

अब युद्ध का भार राजाराम की स्त्री ताराबाई पर पडा। इस वीर नारी ने मराठा मे एक नई स्फूर्ति का सचार कर दिया। राजाराम के द्वितीय पुत्र शिवाजी का सिंहासन पर बठा, उसने युद्ध का सचालन स्वय करना आरम्भ किया। मुगलो ने कई किलो को जीत लिया, परन्तु मराठो ने हिम्मत न हारी।

बादशाह की मृत्यु—बादशाह अब बहुत वृद्ध हो गया था। उसे ज्वर आ गया और बेहोशी होन लगी। दिन प्रतिदिन दशा खराब होती गई। कुछ स्वस्थ होने पर वह चल दिया और २० जून को अहमदनगर पहुँच गया। वहा फिर बामार पड गया। उसने अपन किसी कुटुम्बी को पास तक न आने दिया। अच्छे हाने की काई आशा न रही। २० फरवरी सन १७०७ ई० को उसका देहान्त हो गया।

पश्चिमोत्तर सीमा नीति—भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर रहनवाली जातिया सदा अशान्त और विद्रोही रही ह। मुगलो को भी इनके कारण बडा कष्ट उठाना पडा। पठान लाग बोलन आर खैबर के दर्रों में होकर निल्कनवाल व्यापारियो को लूट लेते और बहुधा मुगल प्रदेशो पर आक्रमण भी करते थे। सबसे पहले बादशाह अकबर ने सीमा पर शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न किया था। मुगलो को बडी क्षति उठानी पडी तथा सेना की ही सहायता से पठान काबू मे रक्खे जा सके। जहागीर और शाहजहा के राजत्व-काल में कधार बल्ख आर बदरशा पर मुगल हमलो ने पठानो पर शाही शक्ति का राब जमा दिया था और वे शान्त रहे। परतु औरगजेब के सिंहासनासीन होते ही फिर सघर्ष आरम्भ हुआ।

सन १६६७ में यूसुफजाइयो के एक नता भाग ने कई पठान जातिया को अपन नेतत्व में इकट्ठा किया और मुहम्मदशाह नामक एक बालक का राज्याभिषेक कर युद्ध प्रारम्भ कर दिया। विद्रोह कुछ ही दिनो म बहुत बढ गया। पठानो न सिन्धु नदी को पारकर हजारा किले में भी लूटमार शुरु कर दी। मुगल थानो पर भी हमले हुए और वहा के सेनापतिया न बादशाह के पास सहायता के लिए प्रार्थना भेजी। बादशाह ने तीन सेनाय भजी। भयकर सघर्ष के बाद यूसुफजाइयो में से बहुत मारे गये और बहुत नदी पार कर भागे। मुगल सेनापति कामिल खा, शमशेर खा, तथा मुहम्मद अमीन खा न पठाना के ग्रामो

को लटा। पठान शान्त हो गये तथा उनके चरित्र पर निगहबानी रखने के लिए राजा जसवन्तसिंह जमरूद थाने के थानेदार नियुक्त किये गये।

१६७२ में अफरीदियों ने अक्मल खा के नेतत्व मे विद्रोह का झडा खडा किया। उसने राजा की पदवी ग्रहण का और मुगलो के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। शाही सेनापति अमीन खा जसवन्तसिंह की सलाह की अवहेलना करके पठानो से लडने के लिए पेशावर से आगे बढा। अक्मल खा ने उस पर हमला किया। मुगलो की पूर्णत हार हुई। पठानो ने दस हजार सिपाहियो को बन्दी बना, मध्य एशिया में बेचे जाने के लिए भेज दिया। अमीन खा न बडी कठिनता से पेशावर भागकर अपनी जान बचाई। उसका कुटुम्ब पकडा गया। उन्हे छुडाने के लिए अमीन खा को पठानो को बहुत धन देना पडा। इस विजय से अक्मल खा की ख्याति चारो तरफ फैल गई और बहुत से अफगान नौजवान लूट के लालच से उसकी सेना में भर्ती हो गये।

खटको के नेता खुशहाल खाँ ने भी साम्राज्य के विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया। इसका कारण यह था कि पेशावर के एक दरबार म बादशाह की आज्ञा से वह धोखा देकर बन्दी बना लिया गया था। सन् १६६६ तक खुशहाल खाँ दिल्ली और रणथभोर मे बन्दी के रूप में रखा गया। उसी वर्ष बादशाह न उसे और उसके पुत्र को अक्मल खा के विरुद्ध लडने के लिए भेजा। परन्तु खुशहाल अक्मल खाँ से मिल गया और साम्राज्य के विरुद्ध उसने युद्ध की घोषणा कर दी।

बादशाह ने विद्रोह का दमन करने के लिए फिदाई खा को पेशावर और महाबत खा को काबुल भेजा। जब महाबत खा ने सम्राट की आज्ञा के विरुद्ध पठानो मे पत्र-व्यवहार करना शुरू कर दिया, तो वह पदच्युत कर दिया गया और उसके स्थान पर शुजाअत खा नियुक्त हुआ। जब सन् १६७४ म शुजाअत खा अपनी सेना के साथ वहा पहुँचा तो अफगानो ने उस पर हमला किया और शाही सेना का सम्पूर्णत नष्ट कर दिया।

औरगजेब अब स्वय युद्धभूमि की ओर गया। जून सन १६७४ में उसने हसन अब्दाल को अपनी छावनी बनाया। कई सेनापति उसके साथ थे। कूटनीति और बल दोनो का प्रयोग किया गया। कई पठान जातियों को बादशाह ने पेंशन और जागीर देकर अपने पक्ष में कर लिया। साथ ही साथ युद्ध भी चलता

रहा। दोनों पक्षवालों को बडी हानि उठानी पडी। परन्तु सन् १६७५ के अन्त तक शत्रु की शक्ति बहुत घट गई थी। बादशाह दिल्ली लौट आया और अमीर खाँ काबुल का गवनर नियुक्त हुआ।

बादशाह और अँगरेज—औरंगजेब के गद्दी पर बैठने के समय अँगरेजों ने अपना व्यवसाय भारत में अच्छी तरह जमा लिया था। उन्होंने मसुलीपट्टम, मद्रास, हुगली, सूरत आदि स्थानो में अपनी कोठियाँ स्थापित कर ली थी। सन् १६६७ में चार्ल्स द्वितीय ने बम्बई और सालसट के द्वीप भी, जो उसे कैथराइन से विवाह में दहेज के रूप मे मिले थे, कम्पनी को दे दिये। चार्ल्स ने एक नवीन सनद भी कम्पनी को दी जिससे उसके वैधानिक अधिकार और बढा दिये गये।

कम्पनी अब अपने अधिकृत स्थानो में अपनी शक्ति की वृद्धि करने लगी। सन १६८५ में शाइस्ता खाँ ने उन पर कुछ स्थानीय कर लगाये, परन्तु उन्होंने इनका यह कहकर विरोध किया कि यह शाहजहाँ के फरमान के विरुद्ध है। कम्पनी के गवनर सर जोशुआ चाइल्ड ने एक नवीन नीति ग्रहण की जिसका उद्देश्य भारत मे अँगरेजी राज्य स्थापित करना था। सूरत के प्रेसिडेण्ट सर जान चाइल्ड ने पश्चिमी किनारे पर मुगल जहाजो पर हमला किया। बादशाह ने आज्ञा निकाली कि मुगल साम्राज्य में स्थित अँगरेजी कोठियो का अधिकार मे कर लिया जाय और अँगरेज बन्दी कर लिये जायँ। हुगली और मसुलीपटटम की कोठियो पर मुगलो का कब्जा हो गया और अँगरेजो से व्यावसायिक सम्बन्ध टूट गया। परन्तु कुछ ही दिनो में दोनो दलो ने युद्ध की हानि को समझ लिया और सन्धि हो गई। औरंगजेब ने १,५०,००० रुपया मिलने पर अँगरेजो को उनके पुराने अधिकार लौटा दिये।

शासन-प्रबन्ध—अकबर की मृत्यु के बाद जिस प्रतिक्रियावादी नीति का सूत्रपात हुआ था, औरंगजेब के शासन-काल में वह पराकाष्ठा पर पहुँच गई। बादशाह ने राज्य-प्रबन्ध में शरियत के नियमो को लागू करने का प्रयत्न किया।

बादशाह का आदर्श बडा उत्कृष्ट था। उसी के अनुसार कार्य करने का वह प्रयत्न करता था। उसका सारा समय शासन के कामो में ही बीतता था। शासन की छोटी छोटी बातो पर भी उसका ध्यान रहता और विदेशी शासकों

तथा सेनापतियो को जो पत्र भेजे जाते, उन्हें वह स्वय लिखवाता था। परन्तु इससे साम्राज्य को हानि ही पहुँची। बादशाह का काम तो नीति को निर्दिष्ट करना और उसी के अनुसार काय करवाना है। यदि वह छोटी छोटी बातों में दखल देने लगे, तो राज्य-कमचारी सुचारु रूप से अपना काम नहीं कर सकते।

न्याय-विभाग प्रचलित तरीके से ही कार्य करता रहा। मालगुजारी के मुकदमे फौजदार करते थे। बाकी मुकदमों का निपटारा काजी के हाथ में था। अन्तिम अदालत में बादशाह स्वय न्यायाधीश के आसन पर बैठता था और काजी, मुफ्ती तथा धमशास्त्रज्ञों की सहायता से फैसले सुनाता था।

माल की सस्थायें भी पहले ही के समान थी। शासनारूढ़ होने पर औरगजेब ने बहुत से कर हटा लिये थे, परन्तु कुछ ही समय में उनके स्थान पर नवीन कर चालू कर दिये गये थे।

साम्राज्य २१ सूबों में विभाजित था। प्रान्तों के शासन-प्रबन्ध में कोई परिवत्तन नही हुआ। परन्तु जासूसों का काम पहले से बहुत अधिक बढ गया। सूबो में स्थित वाकअनवीस और खुफियानवीस प्रत्येक घटना का पूण ब्योरा राजधानी को भेजते थे।

दक्षिण जीतने की महत्त्वाकाक्षा को काय-रूप में परिणत करने के लिए औरगजेब ने बहुत बडी सेना का सचालन किया। सेना में अनुशासन स्थापित करने के लिए नवीन नियम बनाये, परन्तु सफलता न हुई। सेनापति और सिपाही भोग-विलास में लिप्त थे। समय की गति के साथ अव्यवस्था बढती ही गई और औरगजेब की मृत्यु के समय तक मुगल सेना बडी निर्बल हो गई।

जसे जैसे समय बीता, शासन-प्रबन्ध बिगडता ही गया। इसके अनेक कारण थे। नौकरियों में योग्यता का ध्यान नहीं रक्खा जाता था। मुसलमान अथवा उनके पक्ष के हिन्दुओं की नियुक्ति चाहे वे अयोग्य ही हों, कर दी जाती थी। धम बदलने पर तो कोई मनुष्य कितना ही मूर्ख हो, सरकारी पदाधिकारी हो जाता था। इसका शासन-प्रबन्ध पर बडा बुरा प्रभाव पड़ा। [illegible] चारियों के कारण सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था ही बिगड़ गई। घूस [illegible] थी। छोटे छोटे कर्मचारी हथघहरीर देते थे। [illegible] उपाधि बेचता था। [illegible] का [illegible] था। [illegible]

औरंगजेब का साम्राज्य
सन् १७०७
काबुल
पेशावर
कोहाट
गजनी
बन्नू
मुलतान
दिल्ली
आगरा
सामूगढ़
जोधपुर
अजमेर
उदयपुर
अहमदाबाद
धरमत
नर्मदा न
बुरहानपुर
दौलताबाद
बेसीन
सालसट
बम्बई
औरंगाबाद
अहमदनगर
पूना
बीदर
गोलकुण्डा
बीजापुर
गोआ
बेलारी
मद्रास
मछलीपट्टम
पांडीचेरी
नेगापट्टन
मदुरा
कोचीन
प्रयाग
बनारस
पटना
राजमहल
चन्द्रनगर
कलकत्ता

ः उनका अधिकाश धन राजकोष म चला जाता था। इसी कारण वे
: खच करते थ। इस से अधिकतर तो ऋण के बाझ से दव रहते थे।
थिक दशा खराव होने के कारण उन्होंने अपनी सेना घटा दी थी। परिणाम
हुआ कि चारा तरफ अराजकता फल गई और मालगजारी का वसूली
कम हा गई।

औरगजेब का चरित्र—औरगजव मुगल-वश का एक महान सम्राट था।
की शारीरिक शक्ति उच्च कोटि की थी। सेनापतित्व के गुणा म युवा-
था ही म उसने वडी ख्याति प्राप्त कर ली थी। उसके रण-कौशल का देख वडे
सेनापति दाता तरु अगुली दवाते थ और उसके युद्ध-आयाजन की शक्ति
देख प्रशसा किये विना न रहते। इसके सिवा वह बहुत वडा विद्वान भी था।
शाम का धार्मिक पुस्तकें नीतिशास्त्र, अरवी आईन और फारसी साहित्य का
अच्छा ज्ञान था। उसे कुरान जबानी याद था, और स्वय नकल करके उसकी
हस्तलिपि वह मक्का भेजा करता था। उसका जीवन सादा था। वह बहुत
भोजन करता, केवल तीन घटे सोता और मदिरा पान बिलकुल नही करता
। रगीन वस्त्र, हीरा-जवाहिरात वह बहुत कम प्रयोग करता था। उसका
चरित्र बडा निमल था। उसका बादशाही का आदश बडा उच्च था। उसका
कहना था, 'सम्राटो को आराम और सुस्ती वर्जित ह, क्योकि इसी कारण साम्राज्य
नष्ट हो जाते ह।"

औरगजेब में कौटुम्बिक प्रेम बहुत कम था। पिता का बन्दी बनाया जाना
भाई और भतीजो की हत्या सवदा उसके नाम को कलकित किये रहगी।
अपने पुत्रो को भी सन्देह की दृष्टि से देखता था, और जब तक व निकट
ते उन्हे शान्ति नही मिलती थी। उसका ज्येष्ठ पुत्र सुल्तान मृत्यु पर्यंत बन्दी-
म रहा, और मुअज्जम को भी आठ वर्ष कदखाने की हवा खानी पडी।
उसकी पुत्री जेबुन्निसा जो कवयित्री थी, अकबर स सहानुभूति रखने के कारण
न जीवन के अन्तिम दिना तक (१७०२) सलीमगढ के किले में नजरबन्द रही।

औरगजेब अपने धम का पावन्द था। वह नमाज, राजा हज्ज, जकात
दि के बारे में जो कुरानशरीफ म नियम ह, उनका अक्षरश पालन करता
। रमजान के महीने में वह रोजा रखता था और अन्तिम दस दिन ईश्वर

की अराधना में व्यतीत करता था। उसकी हज्ज करने की बडी प्रबल इच्छा थी, परन्तु राज-कार्यो के कारण पूरी न हो सकी।

औरगजेब मुगल वश का अन्तिम प्रतिभाशाली बादशाह था। उसमें अनेक गुण थे, परन्तु धार्मिक पक्षपात, कट्टरता एव हृदयहीनता के कारण वे सब निष्फल हुए। उदारता तथा क्षमता तो वह जानता ही न था। राज्य की सारी शक्ति को उसने अपने हाथ में ले लिया था। विश्वास उसे अपने बेटो तक का नही था। इस सबका परिणाम यह हुआ कि राज्य की शासन-व्यवस्था बिगड गई।

धार्मिक कट्टरता तथा अत्याचार ने हिन्दू और शिया मुसलमानो को राज्य का शत्रु बना दिया। नीति परिवर्तन के दुष्परिणाम प्रत्यक्ष दिखाई देने लगे। बुद्धिमान् पुरुषो को इस बात का आभास हो गया कि अब साम्राज्य के अन्तिम दिवस निकट आ रहे है।

अध्याय २०

साम्राज्य का पतन

सिहासन के लिए युद्ध—औरगजव के तीन पुन थे—मुअज्जम, आजम और कामवख्श। वद्ध बादशाह ने वसीयत की थी कि मरी मृत्यु के बाद साम्राज्य तीन भागा में विभाजित किया जाय। आगरे के अधिकारी को माल्वा, गुजरात अजमेर तथा दक्षिण के चार सूबे मिलें। दूसरे भाग में दिल्ली और पुराने ग्यारह सूब सम्मिलित किय जायें। कामवख्श को बीजापुर और हैदराबाद का शासक बनाया जाय। परन्तु मुगलो में तो सिंहासन के लिए युद्ध की परम्परा चली आती थी। तीनो शाहजादो ने अपने सम्राट होने की घोषणा कर दी। कामवख्श न जो बीजापुर म था, दीनपनाह की पदवी ग्रहण की। मोअज्जम सिंहासन पर अधिकार करने के लिए आगरे की तरफ बढा और आजम ने भी भाई से सघष की तयारी कर ली। २० जून सन् १७०७ म आगरे के पास जाजऊ नामक स्थान पर दोनो दलो मे युद्ध हुआ। आजम की हार हुई और वह युद्ध में मारा गया। इस पराजय के कई कारण थे। आजम ठीक समय पर आगरे पहुँचकर राजकोष पर अधिकार नही कर सका। इसके सिवा शाहजादे ने युद्ध का अधिक सामान दक्षिण ही में छोड दिया था तथा उसके सेनापति जुल्फकार खा और राजा जयसिंह ने उसे पूर्णरूप से सहायता नही दी। मोअज्जम सिंहासन पर बठा और बहादुरशाह की उपाधि ग्रहण की। इसके बाद कामवख्श से युद्ध करने वह दक्षिण को चल दिया। यहा भी उसकी विजय हुई। हदराबाद के निकट युद्ध में कामवख्श पराजित हुआ। उसके घाव इतने साघातिक थे कि उन्ही से उसकी मृत्यु हो गई।

बहादुरशाह और राजपूत—जब सिंहासन के लिए युद्ध चल रहा था तभी बहादुरशाह को राजपूताना जाना पडा। इस समय वहाँ तीन मुख्य राज्य थे,

मेवाड, मारवाड और अजमेर। औरगजेब ने मारवाड पर अधिकार कर लिया था, परन्तु उसकी मृत्यु के बाद अजीतसिंह ने मुगलो को मार भगाया। अजमेर में दो भाइयो के मध्य सिंहासन के लिए झगडा चल रहा था। जिसने बहादुरशाह को सम्राट मान लिया, वही राजा बनाया गया। मारवाड के राजपूतो ने भी युद्ध नही किया और अजीतसिंह बादशाह से मिलने गया।

तीनो राजाओ ने मुगलो से युद्ध करने के लिए एक सघ की स्थापना की। बहादुरशाह की विजय हुई और राजपूतो के साथ सधि हो गई।

सिक्ख—गुरु गोविन्दसिंह की मृत्यु के बाद सिक्खो ने बदा को अपना सेनापति बनाया था। उसके नतृत्व में ४० हजार सिक्ख जमा हुए और उन्होंने विद्रोह का झडा खडा कर दिया। उनका पहला हमला सरहिन्द के सूबेदार वजीरखाँ पर हुआ। वृद्ध सूबेदार मारा गया और सिक्खो ने सरहिन्द को खूब लूटा। बदा ने सभी दिशाओ म विजय के लिए सिपाहियो को भेजा। लाहौर पर भी अधिकार करने का प्रयत्न किया गया, परन्तु सफलता नही मिली। बादशाह स्वय विद्रोहियो को दड देने चला। सिक्खो ने लोहारगढ के किले में शरण ली और अपनी रक्षा के लिए तैयारी करना आरम्भ किया। सिक्ख युद्ध में पराजित हुए, परन्तु बदा भाग गया। मुगलो को लूट में बहुत सामान मिला। परन्तु सिक्ख हतोत्साहित नही हुए और युद्ध करते रहे। सन १७१२ में बहादुरशाह की मृत्यु हो गई।

मराठे—मुगल सेना के दक्षिण छोडते ही मराठो ने फिर युद्ध प्रारम्भ कर दिया। उन्होने कई किलो पर अधिकार कर लिया तथा मुगल सूबो पर भी हमले करने लगे। बादशाह ने शाहू को बन्दीगृह से छोड दक्षिण जाने दिया। राजाराम की विधवा ताराबाई ने शाहू के उत्तराधिकार को नही स्वीकार किया। मराठे आपस ही में लडने लगे और मुगलो को कुछ समय के लिए शान्ति मिली।

जहाँदारशाह—१७१२-१३—बहादुरशाह की मृत्यु के बाद जहांदारशाह गद्दी पर बैठा। आजम के पुत्र फरुखसियर ने उसके विरुद्ध विद्रोह का झडा खडा किया। उसने पटने में अपने बादशाह होने की घोषणा कर दी और अपने नाम का सिक्का चलाया। उसको सयद भाई अब्दुल्ला खा तथा सयद हुसेन अली खाँ की सहायता प्राप्त हुई। खजवा के युद्ध म जहादारशाह की सेना पराजित हुई।

इस समाचार न वादशाह को डरा दिया और आगरे की रक्षा करने के लिए वह स्वय दिल्ली मे चल पडा। फिर युद्ध हुआ, परन्तु इसम भी विजय फर्रुखसियर ही को प्राप्त हुई। निराश जहादारशाह दिल्ली की ओर भागा। वहा वह अब्दुल्ला के हाथो म पड गया। गला घोटकर उसके जीवन का अन्त कर दिया गया।

फर्रुखसियर १७१३ १९—फर्रुखसियर अब सिहासन पर बठा। उसने सयद भाइयो को इनाम इकराम से प्रसन्न कर दिया ओर चीनकिलीच खाँ निजामुल्मुल्क का दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया। इसी समय राजपूत, सिक्ख तथा जाटो के विद्रोह होन लग। वादशाह न हुसेनअली का अजीतसिंह के विरुद्ध भेजा। राजा को सधि करनी पडी। उसने अपनी पुत्री का विवाह बादशाह स कर दिया तथा बुलाये जाने पर राज-दरबार में जाने का वादा किया।

बन्दा के नेतत्व म सिक्खो ने लूटमार फिर प्रारभ की। जब शाही सना वहा पहुँची तो उन्होने गुरदासपुर के किले म शरण ली। १७ दिसम्बर सन १७१५ को किले पर मुगलो का अधिकार हो गया। बदा बदी बनाकर लोह के पिंजडे मे रक्खा गया और उसक अनुगामियो को कठिन सजा दी गई। सन १७१६ मे बन्दा तथा उसके सकडो साथी कत्ल कर दिये गये।

जाटो के नेता चूरामन ने भी विद्रोह कर दिया। उसका मुख्य गढ सनसनी म था। बादशाह ने राजा जयसिंह को किले पर घेरा डालन के लिए भेजा। सन १७१८ म चूरामन से सधि हो गई। उसन ५० लाख रुपया युद्ध व खर्चे का दिया।

दरबार मे दलबन्दी—राज-दरबार के उमरा दो दलो म विभाजित थे, विदेशी और हिदुस्तानी। विदेशियो मे पठान, मुगल, अफगान अरबी रूमी सभी थे परन्तु इनम बाहुल्य ईरानी तथा तूरानियो का ही था। हिदुस्तानी उमरा भारत के उत्पन्न मुसलमान, राजपूत, जाट तथा हिन्दू कमचारी थ।

सैयद भाइयों का उत्कर्ष—फर्रुखसियर सयद भाइयो की ही सहायता से गद्दी पर बठा था, इसलिए वे चाहते थे कि शासन प्रबन्ध पर पूर्णत उनका अधिकार रहे। जब बादशाह ने अब्दुल्ला को वजीर बनाने से इनकार कर दिया तो उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। आपसी युद्ध खूब जोरो स चल पडा। बादशाह ने सयद भाइयो के अन्त कर देने के लिए षडयन्त्र रचा। यह समाचार

सुन हुसेनअली दक्षिण भारत से उत्तर को रवाना हुआ। चौथ तथा सरदेशमुखी देने का वादा कर उसने मराठो की भी सहायता प्राप्त कर ली। हुसेनअली के दिल्ली पहुँचने का समाचार सुन फर्रुखसियर डर गया। उसने सयद भाइयो को प्रसन्न करने का भी प्रयत्न किया और छिप छिपे उनकी हत्या का भी प्रयत्न करने लगा। परन्तु सयद भाई उसकी चालो में नही आनेवाले थे। उन्होने किले पर अधिकार कर लिया और बादशाह का सिर कटवा दिया।

फर्रुखसियर की मृत्यु के बाद दो शाहजादो ने कुछ महीना के लिए राज्य किया। व सैयद भाइयो के हाथ के खिलौने थे। सितम्बर सन १७१९ में बहादुरशाह का एक पोता मुहम्मदशाह सिंहासनासीन हुआ, परन्तु सारी शक्ति सैयद भाइयो के ही हाथ में रही।

सैयद भाइयों का विनाश—सैयदो के व्यवहार से अमीर बिगड गये। फर्रुखसियर के मित्र तथा इलाहाबाद के सूबेदार छबीलेराम नागर तथा उसके भतीजे गिरधर बहादुर ने विद्रोह कर दिया। सयद भाइया ने गिरधर का अवध की सूबेदारी देकर प्रसन्न कर लिया। छबीलेराम को लकवा मार गया और वह काल का ग्रास हुआ। परन्तु इसी समय दक्षिण से विद्रोह का समाचार आया। निजामुलमुल्क ने असीरगढ का किला जीत लिया और बुरहानपुर पर अधिकार कर लिया। हुसेनअली का कुटुम्ब दक्षिण भारत में था। इस समाचार ने उसे बहुत चिन्तित कर दिया। बादशाह का साथ ले वह निजामुलमुल्क से युद्ध करने के लिए रवाना हुआ। परन्तु रास्ते ही में उसके शत्रुओ ने उसके विरुद्ध षडयत्र किया और उसे मार डाला (१७२०)।

भाई की मृत्य के समाचार से अब्दुल्ला बहुत दुखी हुआ। उसने षडयन्त्र कारियो का दड देने की बादशाह से प्रार्थना की तथा उनसे ऐसा करने का वचन भी ले लिया। परन्तु उसके शत्रु बडे शक्तिशाली थ, और उसे उसके सामने आत्मसमर्पण करना पडा। अब्दुल्ला खा बन्दी बना लिया गया और १७२२ में जहर देकर मार डाला गया।

सैयद भाइयो के चरित्र और नीति से साम्राज्य को बडी हानि पहुँची। ८ वर्ष तक शासन सत्ता उनके हाथ में रही तथा बादशाह उनके हाथ के खिलौने बने रहे। उन्होने अपनी शक्ति का दुरुपयोग किया और उमरा के साथ बुरा बर्ताव

के लिए भेजा कि कंधार के भागे हुए अफगानियों को साम्राज्य में न प्रवेश करने दें। जब मुहम्मदशाह ने कोई उचित उत्तर नहीं भेजा, तो नादिरशाह ने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया।

नादिर ने अफगानिस्तान पर अधिकार कर लिया। ईरानियों ने बड़ी सुगमता से पंजाब में प्रवेश किया और पेशावर और लाहौर पर अधिकार कर लिया। लाहौर से नादिरशाह करनाल पहुँचा जहाँ मुहम्मदशाह की सेना लड़ने के लिए प्रस्तुत थी। हिंदुस्तान का बादशाह पराजित हुआ। इसके कई कारण थे। शाही सेनापति एक दूसरे से विद्वेष रखते थे जिससे युद्ध का सुचारु रूप से संचालन असंभव था। हिंदुस्तानी सिपाही तलवार से लड़ते थे और ईरानी बन्दूकों का मुकाबिला वे नहीं कर सके। इसके सिवा उनका तोपखाना भारी और पुराना था। भारतीय हाथी ईरानी बन्दूकों के सामने बेकार साबित हुए।

विजयी नादिरशाह ने दिल्ली में प्रवेश किया और दीवानखास के निकट महल में ठहरा। ईरानी सिपाही बनियों से सस्ते दाम में अनाज खरीदना चाहते थे। इससे जनता बिगड़ गई और उन पर हमला किया। इसी समय नगर में यह किंवदन्ती फैल गई कि नादिरशाह मारा गया। नादिरशाह ने जब यह समाचार सुना तो उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने नागरिकों के कत्ल की आज्ञा निकाल दी। ९ बजे सवेरे ईरानी सिपाहियों ने अपना क्रूरतापूर्ण कार्य प्रारम्भ किया। मुहम्मदशाह के बहुत प्रार्थना करने पर दो बजे दिन को नादिरशाह की आज्ञा से यह कत्ल रुका। इसके पश्चात शहर की लूट शुरू हुई। मुहम्मदशाह से ७० करोड़ रुपया वसूल कर और उसे फिर से दिल्ली के सिंहासन पर बैठाकर, नादिरशाह फारस लौट गया।

साम्राज्य की दशा—नादिरशाह के हमले से शासन प्रबन्ध बिलकुल बिगड़ गया। दिल्ली सरकार की शक्ति का अन्त हो गया। जाटों और सिक्खों ने सरहिंद पर अधिकार कर लिया। मराठों का राज्य सम्पूर्ण दक्षिणी और पश्चिमी सूबों में फैला था। वे बंगाल, बिहार और उड़ीसा पर भी हमले करने लगे थे। गंगा के दोआब में अलीमुहम्मद खाँ रुहेला ने कुमायूँ की पहाड़ियों तक अपना अधिकार कर लिया था। अवध के सूबेदार सआदतअली खाँ बंगाल

के अलीवर्दी खाँ तथा दक्षिण के निजामुल्मुल्क ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी थी। इस स्थिति में सन् १७४८ में मुहम्मदशाह की मृत्यु हो गई।

पेशवाओं का अभ्युदय

बालाजी विश्वनाथ—१७१३-२०—शाहू सतारा में गद्दी पर बैठा। मुगल दरबार में रहने के कारण वह बड़ा विलासप्रिय हो गया था और उसने शासन प्रबंध पेशवा के हाथ में छोड़ दिया था। इस समय का पेशवा बालाजी भट्ट क्रमशः शक्तिशाली हो गया और राज्य की सारी शक्ति धीरे-धीरे उसी के हाथों में आ गई। उसने कृषि को बड़ा प्रोत्साहन दिया और ठेकेदारी की प्रथा बन्द कर दी। सन् १७१७ में उसने सैयद भाई हुसैनअली से सन्धि की जिसके अनुसार दक्षिण में चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार उसे मिल गया।

बालाजी ने सम्पूर्ण मराठा राज्य को छोटे-छोटे जिलों में विभाजित कर दिया और प्रत्येक की मालगुजारी वसूल करने का अधिकार एक-एक कर्मचारी को मिल गया। उसमें से वह एक निश्चित भाग अपने पास रखकर बाकी राज्य को दे देता था। चौथ और सरदेशमुखी की दर का आधार मालगुजारी पर कर दिया गया। शाहू की अयोग्यता के कारण पेशवा की शक्ति बढ़ती गई और धीरे-धीरे एक प्रकार से वही राजा हो गया।

बाजीराव प्रथम—१७२०-४०—बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु के बाद उसका पुत्र बाजीराव प्रथम पेशवा हुआ। वह बड़ा योग्य और प्रतिभाशाली पुरुष था। युवा अवस्था से ही उसने नवीन विजय की आयोजनाएँ बना ली थीं। सन् १७२८ में उसने मालवा पर हमला किया और उसे अपने अधिकार में कर लिया। चार वर्ष पश्चात् निजाम से चौथ वसूल की। इसके बाद गुजरात, मालवा, बुन्देलखंड तथा बरार की बारी आई। सन् १७३७ में बाजीराव अपनी सेना के साथ दिल्ली पहुँचा। बादशाह ने निजामुल्मुल्क को अपनी सहायता के लिए बुलाया परन्तु भोपाल के निकट युद्ध में वह पराजित हुआ। दोनों दलों में सन्धि हो गई जिसके अनुसार मालवा तथा नर्मदा और चम्बल के बीच की भूमि पर मराठों के अधिकार को बादशाह ने मान लिया। इसके अतिरिक्त

बादशाह ने पेशवा को ५० लाख रुपया युद्ध-व्यय के रूप में दिया। १७३९ में बाजीराव ने पुर्तगालियों को हराया तथा बेसिन के किले पर अधिकार कर लिया। अपने जीवन के अन्तिम दिनों म पेशवा ने मुगल सूबो को मराठा सरदारो के प्रभाव-क्षेत्र मे विभाजित कर दिया। भूमि का जो हिस्सा जिस सरदार के हाथ में था, वहा से वह चौथ और सर-देशमुखी, बिना पेशवा के हस्तक्षेप के वसूल कर सकता था। इस समय के मुख्य मराठा सरदार गायकवाड, सिंधिया, भोसले तथा होल्कर थे, जिन्होंने बाद मे स्वतत्र राज्यो की स्थापना की।

बाजीराव मुख्यत सिपाही था। शासन के कार्य मे उसे अधिक रुचि नही थी। परन्तु उसकी योग्यता म कोई सन्देह नही। उसमें धर्मान्धता नही थी। उसने निजाम की शक्ति को धक्का पहुँचाया और मराठा को आगे बढाया।

बालाजी बाजीराव--१७४०-६१--बाजीराव की मृत्यु के बाद बालाजी बाजीराव पेशवा हुआ। राघोजी भोसले तथा भास्कर पडित के सेनापतित्व में मराठो ने उडीसा को लूटा और बगाल क सूबेदार अलीवर्दी खा को पराजित किया। उन्होने हुगली और सम्पूर्ण पश्चिमी बगाल पर अधिकार कर लिया। अन्त में अलीवर्दी खा से सन्धि हो गई जिसके अनुसार उसने राघोजी का १२ लाख वार्षिक चौथ के रूप म दिये। इसके बदले मे राघोजी न वचन दिया कि वह बगाल पर फिर कभी चढाई न करेगा।

सन १७४८ में शाहू की मृत्यु हो गई। पेशवा ने उससे एक लिखित आज्ञा ले ली थी जिससे उनको राजा के नाम पर शासन प्रबन्ध कराने का अधिकार मिल गया। इसी साल मुहम्मदशाह की मृत्यु हो गई। सभी दलो के नेता दिल्ली मे अपनी शक्ति स्थापित करने का प्रयत्न करने लगे। सफदरजग ने सिंधिया और होल्कर से रुहेलो के विरुद्ध लडने के लिए सहायता मागी। जब सफदरजग वजीर के स्थान से हटा दिया गया, तो मराठा ने उसके प्रतिद्वन्द्वी को सहायता पहुँचाकर दिल्ली म अपना प्रभुत्व स्थापित किया।

सन १७४८ में निजाम की मृत्यु से कर्नाटक म अराजकता फैल गई। गद्दी के लिए दो उम्मेदवारो में से एक को अँगरेजो की और दूसरे का फ्रांसीसियो की सहायता मिली। इसमें फ्रासीसियो की विजय हुई। पेशवा न भी षडयन्त्र में भाग लिया तथा बुसी की शक्ति का घटाने का प्रयत्न किया। मराठा और

निजाम म लडाई छिड गइ। सन१७५९ में उदगिर में निजाम पराजित हुआ। दाना दला में सुल्ह हा गई जिसक अनुसार मराठा का असीरगढ, दौलताबाद, बीजापुर अहमदनगर तथा बुरहानपुर के किले और कुछ और जमीन मिली। सन १७६० तक मराठा की शक्ति अपनी पराकाष्ठा पर थी। उन्हाने प्राय सम्पूर्ण भारत से चाय वसूल की थी और उनका अधिकार चम्बल से गोदावरी नदी तक तथा समुद्र से बगाल की खाडी के मध्य की भूमि तक था।

पानीपत की तीसरी लड़ाई—१७६१—भारत से लौटने के बाद नादिरशाह का चरित्र बहुत विगड गया था। वह अपनी प्रजा पर बहुत अत्याचार करने लगा। सेना के सिपाही उससे बिगड गये। उन्हाने उसकी हत्या कर दी, और सेनापति अहमदशाह अब्दाली को अपना राजा चुना। अब्दाली ने अफगानिस्तान पर अधिकार कर हिंदुस्तान पर आक्रमण किया। पजाब का सूबेदार युद्ध म हार गया और दिल्ली के सम्राट ने वह सूबा अहमदशाह का सौप दिया। *उसका शासन प्रबध एक कमचारी को सौप अब्दाली अपने देश को लौट गया।* सन १७५८ में मराठो ने उसके कमचारी को निकाल लाहौर पर अधिकार कर लिया। इस समाचार को सुन अब्दाली क्रोध से आगबबूला हा गया, और एक बडी सेना को साथ ले मराठा को दड देने अपने राज्य से चल पडा। मराठो ने भी सदाशिवराव की अध्यक्षता मे एक शक्तिशाली सेना को उसका सामना करने के लिए भजा। तोपखाने का नेता इब्राहीम गर्दी था। होल्कर, सिंधिया और गायकवाड भी अपनी-अपनी सेना लेकर आ गये थे। राजपूता और जाटा ने भी सहायता भेजी।

पानीपत के मदान में दोनो फौजे जमा हुइ। वडी भयकर लडाई हुई। सदाशिव मारा गया तथा इब्राहीम घायल हुआ। होल्कर भरतपुर की ओर भाग गया। सिंधिया के पैर में चोट लगी और वह युद्ध के मदान से पलायन कर गया। इस समाचार से पेशवा के हृदय को ऐसा आघात पहुँचा कि वे जान से हाथ धो बठे।

बालाजी अपने पिता क समान युद्ध-कला में कुशल नही था, परन्तु राजनीति म वह उससे बढकर था। वह योग्य शासक था। राज्य-कमचारिया को योग्य बनाने के लिए उसन उनकी शिक्षा के लिए स्कूल खाला। उसने सेना

का भी सुधार किया और सिपाहियों को पहले से अच्छे हथियार दिये। परन्तु सिपाहियों को अपने साथ अपनी स्त्रियों को रखने का अधिकार देकर उसने बड़ी भूल की।

१७४८ के बाद साम्राज्य का पतन—मुहम्मदशाह की मृत्यु के बाद अहमद शाह सिंहासन पर बैठा। वह शासन के काम के लिए पूर्णत अयोग्य था, और अपना सारा समय भोग विलास में व्यतीत करता था। जमींदारों ने मालगुजारी देना बद कर दिया। राज्यकोष खाली हो गया। वेतन न मिलने के कारण सेना ने काम करने से इनकार कर दिया। ईरानी और तूरानी दलों के संघर्ष से दंगा और बिगड़ गई। ईरानियों का नेता सफदरजंग था और तूरानियों का इन्तिजामुद्दौला। सफदरजंग को बादशाह ने पदच्युत कर दिया और उसके स्थान पर इन्तिजामुद्दौला को वजीर बनाया। सफदरजंग ने एक हिजड़े को, कामबख्श का पोता कहकर, बादशाह घोषित कर दिया। परन्तु मराठों की मदद से बादशाह ने उस पर विजय पाई। सफदरजंग अवध को चला गया और वहा उसने स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। साम्राज्य अब दिल्ली के समीपवर्त्ती प्रदेश और उत्तर प्रदेश के कुछ जिलों तक ही सीमित था।

कुछ समय के बाद मीर बख्शी इमाद और बादशाह में झगड़ा हो गया। मराठों की सहायता से वह वजीर बन बैठा। १७५४ में उसने बादशाह को गद्दी से उतार उसकी आंख फुड़वा दी। जहांदारशाह का पुत्र मुहम्मद अजीमुद्दौला, आलमगीर द्वितीय के नाम से, सिंहासनारूढ हुआ।

इस बादशाह के शासन-काल में साम्राज्य की दशा और भी बिगड़ गई। अब्दाली ने कई बार भारत पर आक्रमण किये। मराठों की सहायता से वजीर ने बादशाह की हत्या करवा दी और दूसरे मुगल शाहजादे को गद्दी पर बिठाया। पानीपत के युद्ध के बाद अहमदशाह ने शाहआलम को गद्दी पर बिठाया और शुजाउद्दौला को उसका वजीर नियुक्त किया।

शाहआलम अधिकतर पूर्व ही में रहता था। अँगरेजों ने उसे और बंगाल के नवाब को बक्सर में हराया। १७७१ तक अँगरेजों के संरक्षण में रहकर वह मराठों के बुलाने से दिल्ली चला गया। परन्तु बादशाह की शक्ति नाममात्र की

थी। शुजाउद्दौला और नज्फखाँ की मृत्यु के बाद उसका कोई सहायक नहीं रह गया। उसने महादजी सिंधिया को अपनी सहायता के लिए बुलाया। यह समाचार सुन, पठानों का सरदार गुलाम कादिर बड़ा अप्रसन्न हुआ। उसने १७८८ में दिल्ली पर अधिकार कर शाहआलम की आखें निकलवा ली। महादजी सिंधिया की मदद से शाहआलम फिर सिंहासन पर बैठा। कुछ वर्षों के पश्चात वह अँगरेजों का पेंशनर हो गया। उसके उत्तराधिकारी अकबरशाह द्वितीय (१८०६-३७) और बहादुरशाह (१८३७-५८) भी सम्राट कहे जाते थे, परन्तु बिल्कुल शक्तिहीन थे। सन् १८५७ के युद्ध में बहादुरशाह ने विद्रोहियों का साथ दिया। इससे वह सिंहासन से उतार दिया गया और राजबन्दी बनाकर रंगून भेज दिया गया। इस प्रकार मुगल वंश का, जिसकी किसी समय संसार में धाक जमी हुई थी, नाश हुआ।

मुगल साम्राज्य के विनाश के कारण—मुगल साम्राज्य के विनाश के विविध कारण थे। शासन स्वेच्छाचारी था। शासक केवल शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न करता था। जनता की भलाई का उसे अधिक ख्याल नहीं था। प्रजा तो उसे विदेशी ही समझती थी। उसके हृदय में बादशाह के लिए राजभक्ति का भाव नहीं था। मुगल उमरा जिनके बाहुबल पर साम्राज्य निर्भर था दुर्बल पड़ गये थे। आसफ खां, महाबत खाँ, सादुल्ला खाँ के पुत्र-पौत्र भोग विलास में पले थे और कठिन परिस्थिति में उनके हाथ पाँव फूल जाते थे। बिना मुहूर्त देखे वे कोई काम नहीं करते थे। युद्धकला से वे सर्वथा अनभिज्ञ थे। दो मुख्य कारणों से सेना की शक्ति भी बहुत घट गई थी—औरंगजेब की लम्बी लड़ाइयाँ और बहादुर सिपाहियों की कमी। मुगल सेना के सबसे अच्छे सिपाही मध्य एशिया से आते थे, परन्तु औरंगजेब के शासन-काल के बाद इन देशों से सम्बन्ध पूर्णतः टूट गया था। औरंगजेब के धार्मिक अन्धविश्वास ने दशा और भी बिगाड़ दी। हिंदू साम्राज्य के शत्रु हो गये। नादिरशाह और अहमदशाह के हमले ने साम्राज्य को बहुत बड़ा धक्का पहुँचाया। इसके सिवा मुगलों की अधिक संस्थाएँ अच्छी न होने के कारण साम्राज्य का अन्त अवश्यम्भावी हो गया। अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक साम्राज्य का दिवाला निकल गया था और कोई भी कह सकता था कि अन्तकाल निकट है।

बर्नियर लिखता है कि राज्य की आर्थिक दशा खराब थी। सरकारी कोष खाली हो गया था। व्यापार तथा खेती अवनत दशा में थे। अशान्ति से व्यापार को बहुत बड़ा धक्का पहुँचा था। कारीगरों की दुर्दशा करुणाजनक थी। उनका रोजगार बिल्कुल चौपट हो गया था। मालगुजारी वसूल नहीं होती थी। राज्य का लाखों रुपया बकाया में पड़ा हुआ था। शाही कोष में द्रव्य की भी कमी थी। दरबार में दलबन्दी के कारण एकता का अभाव था। मुगल अमीर आपस में ही द्वन्द्व युद्ध करते थे। बादशाह ऐसे योग्य न थे कि साम्राज्य की बिखरी हुई शक्ति को समेटते। यह सब उनकी सामर्थ्य के बाहर था। हिन्दुओं का पुनरुत्थान हो रहा था। वे अपने राज्य स्थापित कर रहे थे। ऐसी स्थिति में मुगल राज्य का जीवित रहना असम्भव सा ही था।

वास्तव में मुगल-साम्राज्य सैनिक शक्ति पर आधारित था, इसी से ऐतिहासिक विद्वान् उसे केन्द्रीभूत निरंकुश शासन समझने की धारणा कर बैठते ह। अपनी मुसलमान जनता के लिए सम्राट् धम और राज्य दोनो विषयो में प्रधान था। उनके प्रति वह अन्य सामाजिक कर्तव्यो का पालन करने के लिए उत्तरदायी था, परन्तु अपनी हिन्दू प्रजा के प्रति सम्राट् के केवल दो प्रमुख काय थे, जिनमें से एक तो शान्ति और व्यवस्था की स्थापना और अन्य राज्य-कर की प्राप्ति था। इस भांति मुस्लिम—इतर जनता के सम्बन्ध में सम्राट् की नीति कम से कम हस्तक्षेप करने की थी। उस समय सावजनिक शिक्षा राजकीय कतव्य के अन्तगत सम्मिलित नही थी। हिंदू और मुसलमान दोनो राज्य सिद्धान्त शिक्षा को धम का अग समझते थे। यदि सम्राट् शिक्षा पर कुछ भी धन व्यय करते थे, तो यह काय उनकी व्यक्तिगत पारलौकिक साधना की सिद्धि के उद्देश्य से किया जाता था, जिसमें राज्य का कोई उत्तरदायित्व नही था। इसी भांति कला और साहित्य को प्रोत्साहन देने का काय सम्राट् की व्यक्तिगत रुचि पर निभर था। इसका उद्देश्य शासक की अपनी प्रसन्नता अथवा गौरव प्राप्ति ही था, जिसे हम किसी भी दशा में राष्ट्रीय संस्कृति के विकास का प्रतीक नही मान सकते। साराश मे मुगल-शासन के अन्तगत सामाजिक अभ्युदय का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व जनता, समाज अथवा जातीय सगठन पर था। इसी हेतु शासन का उद्देश्य नितान्त सीमित अथवा भौतिक प्रतीत होता ह।

मुगल शासन की सबसे पहली विशेषता इसके शासकों की धम पर अवलम्बित विशेष शासन-पद्धति की रचना ह। अपने पूववर्ती शासकों की भांति मुगल शासक भी विदेशी मुसलमान-जाति के थे, जिनसे कई शताब्दी पूव भारतवष में इस्लाम धम का प्रादुर्भाव हो चुका था। तुर्की विजेता अपने साथ वह शासन-व्यवस्था भी लेते आये, जो उस समय इस्लाम-धम के व्याप्त-साम्राज्य में प्रचलित थी। मुगल शासन के अन्तगत इन विदेशी तत्वो का समन्वय भारतीय शासन-सिद्धान्तो के साथ भली भांति हो चुका था। इसमें सन्देह नही कि शासन के सिद्धान्त धार्मिक नीति, राज्य करो की व्यवस्था, विभिन्न राजकीय विभागो का प्रबन्ध और यहा तक कि उनके कमचारियो की उपाधियाँ तक सभी

विदेशी प्रभाव के भीतर थे। परन्तु समस्त शासन प्रथा स्थानीय आवश्यकताओ को दृष्टि म रखकर ही सचालित की गई थी। भारतीय न्याय व्यवस्था तथा प्रचलित रीति रिवाजो को यथेष्ट मान्यता दी जाती थी, जहा तक वह इस्लाम के मौलिक तत्त्वो स विरोध न रखते थे। अधिकाश मे ग्राम शासन और अधीनस्थ कर्मचारियो का प्रबन्ध भारतीय रीति रिवाजो के आधार पर ही होता था, जब कि राज-दरबार, न्यायालय और उच्च-अधिकारियो की व्यवस्था इस्लामी नियमो के अनुसार परिचालित होती थी।

यह विदेशी प्रभाव प्रान्तीय शासन पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। सूबेदार अथवा प्रान्तीय शासक और दीवान अथवा माल विभाग का प्रधान, दोनो ही एक-दूसरे की गति विधि पर समान दृष्टि रखते थे। यह अधिकार-समानता निश्चय ही पहले के अरब शासन की देन थी, जिसके अनुसार प्रान्त का शासक अमीर केवल सेना और पुलिस का अधिकारी समझा जाता था तथा राजकीय कोष आमिल के नियन्त्रण में था। ये दोनो अधिकारी एक दूसरे पर समान दृष्टि रखते थे।

इस शासन की अन्य विशेषता इसकी सैनिक-महत्ता थी। मुगल-शासन का आधार प्रारम्भ से ही सैनिक शक्ति थी। सैनिक-शासन का प्राधान्य मुगल-साम्राज्य के अन्त तक बना रहा। मुगल शासन का हर एक कर्मचारी अपनी स्थिति के अनुरूप सैनिक-सूची में सम्मिलित रहता था। उसे एक मनसब प्रदान किया जाता था, जिसके अनुसार वह नियत संख्या में निश्चित अश्वारोहियो का अध्यक्ष समझा जाता था। उन सब के वेतन बख्शी अथवा शाही सैन्य-वेतनाधिकारी के द्वारा ही दिये जाते थे। उनकी पद-वृद्धि के रूप में उनके मनसब की उन्नति होती रहती थी।

मुगल शासन की तीसरी विशेषता यह थी कि मुगल-भारत की भूमिकर-व्यवस्था देश के प्राचीन रीति रिवाजो, व्यवहार अथवा परम्परा के अनुसार थी। पहले के मुसलमान विजेताओ ने बडी बुद्धिमत्तापूर्वक हिन्दू भूमिकर-व्यवस्था को जीवित रखा और उन्होने पुराने हिन्दू कर्मचारियो को नियुक्त कर उसको अधिकाधिक सुव्यवस्थित करने की चेष्टा की। वे इस विभाग

की वाय-पद्धति में तब तक हस्तक्षेप न करते थे, जब तक भूमिकर की नियमित प्राप्ति में कोई बाधा न उत्पन्न हो जाती थी।

मुगल शासन व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य सभी उद्योग धन्धों की प्रधान व्यवसायात्मिका सस्था के रूप में था। आज की भाति विभिन्न उत्पादन की वस्तुओ के विनिमय के हेतु खुले-बाजारो का प्रचलन उस काल में नही था। वास्तव मे उस युग में कुटीर-धन्धो का ही प्राधान्य था, अतएव राज्य के लिए यह नितान्त आवश्यक था कि वह अपने उपयोग के लिए अपेक्षित वस्तुओ के निर्माण की व्यवस्था अपने आप करे। इन उपयोगी वस्तुओ की आवश्यकता भी राज्य को बडी अधिक मात्रा में होती थी। प्रतिवर्ष वर्षा और जाडे की ऋतुओ में सम्राट् की ओर से कर्मचारियो को हर ऋतु के अनुरूप एक पोशाक अथवा खिल्अत भेंट की जाती थी। मनसबदारो की सख्या दस सहस्र से ऊपर ही थी। बडे बडे सामन्त-सरदारो को उनके वैभव के अनुरूप अन्य बहुमूल्य भेंटें प्रदान की जाती थी। इसके साथ ही, शाही घराने के राजकुमार और अधीनस्त राजा तथा बहुत से मनसबदार और दरबारी लोग सम्राट के जन्म दिवस तथा अन्य त्योहारो के अवसर पर भी सम्मानपूर्वक पुरस्कृत होते थे। स्पष्ट है कि इस भाति राज्य को इन सभी वस्तुओ का निर्माण प्रचुर मात्रा में करना पडता था, जो राज्य के शासकीय कारखाना द्वारा ही सभव था।

कुछ विद्वानो की राय में मुगल शासन अत्यधिक केन्द्रीभूत निरकुश शासन था। सम्राट सभी शासन सूत्र स्वय ही सचालित करता था। मुगल राज्य युद्ध-सचालन के अतिरिक्त एकमात्र कागजी राज्य ही था, जिसमें अधिकारियो को व्यर्थ ही में अनावश्यक लिखा पढी करनी पडती थी। आईन-अकबरी में वर्णित राज्य-पद्धति की आलोचना करते हुए डब्ल्यू० क्रुक (W Crooke) ने लिखा है कि अकबर सभी सूक्ष्म बातो का पता रखने में पूर्ण कुशल था, लेकिन आईन-अकबरी में यह प्रवृत्ति बहुत अधिक मात्रा में है। हर स्थान पर ऐसा विदित होता है कि सम्पूर्ण व्यवस्था का नियन्त्रण उपयुक्त रजिस्टरो की खानापूरी पर ही निर्भर था, जो आजकल हमारे स्थानीय कर्मचारियो की चाल है।

मुगल शासन की एक अन्य विशेषता यह थी कि कानून और न्याय-व्यवस्था

की ओर इसका दृष्टिकोण आधुनिक मान्यताओ म नितान्त भिन्न था। न्याय-व्यवस्था के सचालन और शान्ति-स्थापन म मुगल शासन अपन अविकसित रूप म ही था, जिसम सुधार और प्रसार की बहुत कम सभावना थी। निस्सदेह मुगल शासन म बाह्य आक्रमणा तथा भीतरी विद्रोहा से देश की रक्षा करने में अधिक तत्परता से काम लिया गया, फिर भी विशाल ग्रामीण जनता की रक्षा के लिए कोई अच्छी व्यवस्था नही की गई। गाँव के चौकीदार ही सरकारी नीति का प्रचार गावा में करत थे। गावा की शान्ति और सुरक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने के स्थान पर मुगल शासन ने ग्रामवासिया को ही अपनी सम्पत्ति तथा पार्श्ववर्ती मार्गो म यात्रा करनेवाले यात्रिया की रक्षा के प्रति उत्तरदायी बनाया था। यद्यपि इस काय में सहायता पहुँचाने के लिए एक सरकारी प्रतिनिधि नियुक्त था, जो फौजदार कहलाता था, परन्तु उसका सीमा क्षेत्र इतना विस्तृत था कि जिसके कारण वह गावा की व्यवस्था ठीक ढग म करने मे नितान्त असमर्थ था।

शासन का प्रबन्ध बादशाह पर निभर था। अबीर रबी (८३३ ४०) के मतानुसार बादशाह का अधिकार ईश्वरेच्छा से प्राप्त होता था। उसका मुख्य कत्तव्य दवी नियमा का पालन कराना था। अल फराबी (८७०-९५०) अपनी पुस्तक **'सियासत उल मदनिया'** म **'रईस अव्वल'** (प्रमुख अधिनायक) की व्याख्या करता हुआ लिखता ह कि बादशाह ईश्वर के तुल्य ह और उसके १२ विशष गुण ह जिनका वह वणन करता ह। मवर्दी ने अपने अहकाम में इमाम की स्थिति पर प्रकाश डाला ह और उसका कथन ह कि इस्लाम की रक्षा के लिए इमाम की आवश्यकता ह। निजाम उल-मुल्क तूसी अपनी पुस्तक **"सियासत नामा"** में लिखता ह कि मनुष्यो में स ईश्वर एक को ससार की रक्षा तथा शान्ति-स्थापना के लिए चुनता है। मुगल काल का प्रसिद्ध विद्वान् अबुल्फज्ल पतक राज्यपद की उत्पत्ति का वणन करता हुआ लिखता है कि मनुष्य न अशान्ति एव अव्यवस्था स अपनी रक्षा करने के लिए शक्तिशाली पुरुषा को अधिकार ईश्वर अपन ऊपर नियुक्त किया। यदि बादशाह न हो तो अशान्ति का कभी अन्त नही हो सकता उसका होना देश में शान्ति स्थापित करने के लिए नितान्त आवश्यक है। फिर उसका कथन है कि राज्यपद ईश्वर से

मनुष्य को उस समय मिलता है जब उसमें सहस्रों गुण एकत्रित हो जाते है। अबुलफज्ल एकात्मक राज्य का समर्थन करता है और उसका लेख है कि राजा को सन्मार्ग पर लानेवाली दैवी इच्छा ही है। उसका कर्त्तव्य देश में शान्ति रखना तथा भिन्न भिन्न धर्मों के बीच एकता, समानता तथा सहयोग की स्थापना है। बादशाह के कर्त्तव्य दो प्रकार के है—धार्मिक तथा राजनीतिक। धार्मिक कर्त्तव्य इस प्रकार है—धार्मिक नियमो का पालन कराना, इस्लाम का प्रचार करना, मसजिद बनाना एव उनके प्रबन्ध का उपाय करना, मकबरो, दरगाहो खानकाहो को **वक्फ, ऐमा, मदद-ए-माश** आदि प्रदान करना और दीन असहायो का सहायता देना। राजनीतिक कर्त्तव्यो में मुख्य ये है—इस्लाम के अधिकृत राज्य का विस्तार, इस्लामी देश की रक्षा, दार-उल इस्लाम का सुप्रबन्ध, जिम्मियो की रक्षा और जजिया कर वसूल करना।

मुगल-काल मे बादशाह ईश्वर का प्रतिनिधि समझा जाता था। वह झरोखे में से प्रतिदिन प्रजा को दर्शन देता था। अबुल्फज्ल ने इसका वर्णन **आईन ए-अकबरी** में किया है। अकबर के शासन-काल में कुछ ऐसे राजभक्त लोग थे जो **'दर्शनिया'** कहलाते थे। जहागीर, शाहजहा, औरगजेब तीनो ने अपनी सुविधा के लिए झरोखा दर्शन का प्रयोग किया। परन्तु बादशाह के लिए सर्वथा निरंकुश होना कठिन था। उसकी स्वेच्छाचारिता धर्म के नियमो तथा जनता के मत से सीमित थी।

बादशाह के अतिरिक्त राज्य के बडे बडे कर्मचारी थे जिनका पहले उल्लेख हो चुका है। मुगल साम्राज्य का राजनीतिक कानून अन्य इस्लामी देशो की तरह नही था। यहाँ अधिकाश प्रजा हिन्दू थी। इसलिए बादशाहो ने उनके रीति रवाजो में हस्तक्षेप नही किया था। हिन्दुओ के मामले बहुधा पचायत में ही तय हो जाते थे। जाति-व्यवस्था सुदृढ थी। ऐसा प्रतीत होता है कि दीवानी के मामले ही नही वरन् कुछ साधारण फौजदारी के मामले भी बिरादरी की पचायतो द्वारा तय किये जाते थे।

यह सब होते हुए भी मुगल सम्राट् न्यायव्यवस्था के बारे में अपने को न्याय स्रोत प्रदर्शित करने की चेष्टा करते थे और पूर्वीय दशा की परम्परानुसार स्वय न्याय करते थे। फिर भी बहुत से मामले ऐसे होते थे जो निर्णयार्थ उनके

सम्मुख उपस्थित नही हो सकते थे। इसके लिए राज्य मे न्यायालयो की व्यवस्था थी जिसका वर्णन पिछले पृष्ठो मे हो चुका है।

मुगल-साम्राज्य का तथ्यसगत मूल्याकन—जहाँ इतिहास के अनेक विद्वानो को मुगलो की शासन प्रणाली मे अनेक दोष दिखाई देते है, वहा साथ ही उसमे कुछ ऐसे विशद गुण भी विद्यमान थे, जिनके कारण मुगल शासन भारतवर्ष के समस्त मध्यकालीन इतिहास मे अपनी समता नही रखता। यहा प्रसगवश कुछ ही बातो का उल्लेख यथेष्ट होगा, जिनसे मुगल सम्राटो की विचक्षण राजनीतिज्ञता का परिचय सहज मे ही हो सकता है।

मुगल-शासक अपने पूर्ववर्ती मुसलमान सुल्तानो की भाति धर्मान्ध नही थे, अपितु वे उनकी अपेक्षा हिन्दुओ के प्रति अत्यधिक उदार एव सहिष्णु थे। अकबर के समय मे टोडरमल, मानसिह और बीरबल सबसे ऊँचे मनसबदारी पद को प्राप्त कर सके। जयसिह और जसवन्तसिह भी शाहजहा के प्रमुख सेनापतियो मे से थे, यहाँ तक कि औरगजेब भी उनको अलग करने मे असमर्थ रहा।

मुगल-सम्राट सभ्यता के पोषक थे और उन्होने कलाविदो एव साहित्यिको को समुचित सरक्षण तथा आश्रय प्रदान किया। साम्राज्य के भीतरी भागो मे इस समय पूर्ण शान्ति थी। देश बाह्य आक्रमणो से भली भाति सुरक्षित था। व्यापार और कृषि दोनो ही ऐसे सुदृढ एव उदार शासन के अन्तर्गत अत्यन्त समृद्ध अवस्था मे थे।

प्रान्तीय शासको एव अन्य अधीनस्थ कर्मचारियो की गति विधि पर ध्यान रखने के लिए वाकअनवीस (Waqianawis) और दूसरे सरकारी गुप्तचर नियुक्त थे। इन अधिकारियो के भय से वे लोग प्रजा पर अत्याचार न कर सकते थे। शाहजहाँ का शासन परिवार के ऊपर पिता के शासन की भाति था। अकबर एक राष्ट्रीय शासक माना जाता है, जिसने अपनी प्रजा की दशा समुन्नत करने के लिए सभी सभावित उपायो से काम लिया।

मुगल-राज्य को एकमात्र सैनिक राज्य कहना उचित नही है, यद्यपि सेना अब भी साम्राज्य के वैभव को स्थिर रखने का मुख्य कारण थी। मुगलो की शासन-व्यवस्था निश्चित और अपरिवर्तनशील नही थी, वरन् उसमे समय की आवश्यकताओ का ध्यान रखते हुए यथेष्ट सुधारो की पूर्ण सगति विद्यमान थी।

मुगलों ने स्थानीय संस्थाओं और आदर्शों से यथेष्ट लाभ उठाया और उन्होंने उनका भली भांति प्रयोग कर अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया।

इतना सब होते हुए भी मुगल शासन में कुछ न्यूनताएँ भी विद्यमान थीं। मुगल-सम्राट ग्रामों के लिए पुलिस और न्याय की संतोषजनक व्यवस्था नहीं कर सके। उनके दण्ड भी किसी किसी समय बड़े कठोर प्रतीत होते थे। उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा के प्रसार में कोई सहयोग नहीं दिया और न वे आर्थिक विकास को पूंजीवादी अथवा सामाजिक प्रथा के आधार पर अग्रसर करने में ही सफल हो सके। लगभग हर एक शासक की मृत्यु के उपरान्त उत्तराधिकार के लिए भीषण संग्राम उनके समय में भी होते रहे। फारस और मध्य एशिया के साथ उनकी नीति किन्हीं निश्चित सिद्धान्तों पर आधारित न थी और इसी कारण वे बल्ख तथा कन्धार को अधिक समय तक अपनी अधीनता में न रख सके। उनकी सीमा नीति सामान्यतः बड़ी अव्यवस्थित थी। फिर भी उनकी असफलताएँ उनके शासन की विशेषताओं की समता में नगण्य हैं। प्रोफेसर यदुनाथ सरकार तथा उन्हीं की भांति कुछ दूसरे विद्वानों ने मुगल शासन की न्यूनताओं पर प्रकाश डालते समय मुगल शासन की समता असभ्य तथा बर्बर राज्य से की है। इन इतिहासकारों की समीक्षाओं से सचमुच इन्कार नहीं किया जा सकता, फिर भी हम मुगल शासन को एकमात्र असभ्य और दुरवस्थित शासन प्रथा ही नहीं मान सकते। प्रजा की भलाई के लिए अकबर के अथक प्रयत्न जहांगीर की न्यायप्रियता, शाहजहाँ की समृद्धि एवं वैभव मिश्रित कलापूर्ण मनोवृत्ति और स्वयं औरंगजेब तक की विचक्षण कूटनीति अविकसित एवं असभ्य शासन के प्रतीक मात्र नहीं कहे जा सकते। इन सभी मुगल शासकों ने तत्कालीन शासन-व्यवस्था को जो सामूहिक रूप प्रदान किया, उसके फलस्वरूप मुगल-शासन एक आदर्श राज्य पद्धति को जन्म देने में समर्थ हो सका और इसी हेतु अकबर जैसे कुशल सम्राट न केवल भारतीय इतिहास में ही वरन किसी भी देश अथवा जाति के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान पाने के स्वयमेव अधिकारी हैं।

इस्लामी शासन पर हिन्दुओं का भी कम प्रभाव पड़ा। वास्तव में मुस्लिम मध्यकालीन शासन बगदाद, मक्का, फारस, मध्य-एशिया तथा भारतीय विधानों का सम्मिश्रण था। भूमिकर के प्रबन्ध में मुस्लिम शासकों ने हिन्दू नियमों को ही

यथोचित परिवनन कर स्वीकार कर लिया जैसा कि **आईन ए-अकबरी** मे प्रकट होता है। प्राचीन रीति रवाजा की अवहल्ना करना मुस्लिम राज्य के लिये कठिन था। इसी लिए अकबर के शासन काल में राजपूता के साथ सम्पक होन से राज-प्रबन्ध में अनेक हिन्दू आदर्शों का समावेश हुआ। हिन्दू राजाओ का अनुकरण कर मुगलमान शासक भी कवियो मठाधीशो, विद्वानो तथा अपन आश्रितो को भूमि-दान करन लगे। माल के विभाग में बहुत मे हिन्दू नौकर थ जो कायस्थ कहलाने लगे थ। इनकी विशेष जाति ही बन गई थी। वे फारसी के अच्छे ज्ञाता थे और भाषा एव वेश भूषा म मुसलमान विजेताओ का अनुकरण करते थे। शासन-काय में व दक्ष थे। भूमि-कर का प्रबध बहुधा उन्ही पर निभर था। इनके द्वारा भी शासन का प्राचीन हिन्दू विधियो से सम्पर्क हुआ। न्याय विभाग में भी ऐसा ही हुआ। मुसलमाना ने हिन्दुओ के रीति रवाजो की अवहेलना नही की। वे ज्यो के त्यो बने रहे और जनता का आचरण उन्ही के अनुसार होता रहा। *मुगल साम्राज्य के बनने में राजपूतो ने पूर्ण योग दिया।* वास्तव में वह उन्ही के शौय, पराक्रम तथा सहयोग पर निभर था। इस साम्राज्य निर्माण मे राजपूतो ने अद्भुत वीरता का प्रदशन किया था। यही कारण था कि यह राजपूत मुगल साम्राज्य इतने समय तक चल सका। राजपूतो के हाथ खीचने पर इसकी जड खोखली होने लगी।

हिन्दुओ के भारत में अनेक राज्य थे। मुसलमान विजता उन्हें नष्ट न कर सके। उनमें प्राचीन नियमो के अनुसार शासन काय होता रहा। राजस्थान दक्षिण तथा देश के अन्य भागो म भारतीय शासन बराबर जारी रहा। क्षत्रियो मे महाराना कुभा प्रताप जैसे प्रतिभाशाली शासक हुए। धम राजाओ का राजा ह धम ही सर्वोपरि है—यही हिन्दू राज्य का मूल मत्र था। इन आदर्शों से मुसलमान भी प्रभावित हुए। हिन्दू कम चारियो द्वारा हिन्दू मुसल्मान राज-नीतिक आदर्शों का सामजस्य अवश्यभावी हो गया।

कभी कभी प्रश्न उठता है कि क्या मुगल राज्य को धम प्रधान राज्य (Theo cracy) कह सकते ह ? इसमें सन्देह नही कि मुगल बादशाह अपने को ईश्वर का अश समझते थे। शेख मुबारक का कथन था कि बादशाह अकबर में ईश्वर का प्रकाश था। जहागीर की भी धारणा थी कि उसका अधिकार ईश्वर दत्त था। शाहजहा

अपने को 'ईश्वर का साया' कहता था। औरंगजेब भी अपने को पृथ्वी पर ईश्वर वकील कहता था। परन्तु यह सब होते हुए भी बादशाह धार्मिक नियमों में कोई प वर्तन नहीं कर सकता था। शेख मुबारक के **'मजहर'** में भी यह स्पष्ट रूप से लि दिया गया था कि इमाम आदिल कोई ऐसा निर्णय नहीं कर सकता जो कुरान शर अथवा हदीस के विरुद्ध हो। मुगल राज्य में धर्म का प्राधान्य था। धर्मकृत्य रा की सेवा के साथ मिलाये जा सकते थे। राज्य में कई पद ऐसे थे जिन पर केव उल्मा ही नियुक्त हो सकते थे। न्याय विभाग में कई स्थान ऐसे थे जो कुरान शरी हदीस तथा इस्लामी कानून के ज्ञाताओं के लिए सुरक्षित थे। शरियत का उल्लंघ करना वर्जित था। कोई बादशाह ऐसा न था जो खुल्लम-खुल्ला यह कहता मैं **'शरअ'** की पर्वाह नहीं करता। प्रत्येक अपने को इस्लाम का सेवक घोषि करता था। स्वयं अबुल्फजल ने लिखा है कि अकबर भी कहता था कि उसक विजयों का उद्देश्य दूर दूर तक इस्लाम के सिद्धान्तों का प्रचार करना है। परन्‍ कहने और करने में बहुत अन्तर था। राजनीतिक मामलों में बहुधा धर्म के नियम का पालन नहीं किया जाता था। औरंगजेब के समय में शासन का रूप बद गया। इसका परिणाम भयंकर हुआ। हिन्दू जनता क्षुब्ध हो गई। राज्य बहिष्कृत होकर वह बदला लेने का अवसर खोजने लगी। राजपूत, जाट मराठे, सिक्ख सभी मुगल साम्राज्य के विरोधी हो गये। औरंगजेब की धार्मिक नीति के कारण सर्वत्र विद्रोह फैल गया और राजलक्ष्मी शनैः शनैः विदा होने लगी।

सामाजिक इतिहास का अभाव—मुगलकालीन इतिहास वास्तव में बाद शाहों, उनके युद्धों और विजयों का ही इतिहास है। उसमें जन साधारण के जीवन का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। इसका एक विशेष कारण है। मुगल काल में व्यक्तित्व की भावना इतनी जाग्रत तथा प्रबल न थी जितनी कि आजकल है। उस समय व्यक्ति समाज की एक इकाई मात्र समझा जाता था। उससे पृथक उसका कोई अस्तित्व न था। समाज की गौरव-गरिमा का अंकन व्यक्ति के आधार पर नहीं, वरन उसके शासक के आधार पर किया जाता था। सामयिक मुस्लिम इतिहास कारों ने दरबारी जीवन तथा युद्धों का बहुत वर्णन किया है परन्तु व्यक्ति विशेष के विषय में उन्होंने अधिक नहीं लिखा है क्योंकि उस काल में वैयक्तिक जीवन

का विशेप महत्व न था। यही कारण है कि अबुलफजल के अतिरिक्त किसी भी मध्यकालीन इतिहासकार ने अराजनतिक विषयो पर विशय प्रकाश नही डाला है। परन्तु सोलहवी तथा सनहवी शताब्दी के योरोपीय यात्रिया के लेखो से उस समय की सामाजिक तथा आर्थिक अवस्था का पयाप्त ज्ञान होता है।

समाज का आधार सामन्तवाद—मुगलकालीन समाज का आधार सामन्तवाद था। बादशाह समस्त शासन-प्रणाली का सव-प्रधान होता था। उसके अन्तगत अनेक मनसवदार एव अमीर उच्च पदा पर आसीन होते थे। दश की की शासन प्रणाली का सचालन, यही सामन्त वग, बादशाह की इच्छानुसार करता था। सपूण देश में मसवदारो एव सामन्तो का जाल सा बिछा हुआ था। लगभग समस्त राजकीय पद इन सामन्ता में वितरित थे। प्रत्येक योग्य तथा परिश्रमी व्यक्ति राजकीय पद पाने की चेष्टा करता था। शाही नौकरी के अतिरिक्त और नौकरिया निम्न-स्तर की समझी जाती थी। अत शाही नौकरी में विशेषाधिकार के कारण लोगा मे भेद पैदा हो गया था। शाही दरबार सुख-समृद्धि एव शिष्टता और सभ्यता का केन्द्र था, परन्तु उसके बाहर देश के अय भागा मे जीवन, शिष्टता एव योग्यता के साथ साथ दुदशाग्रस्त, असन्तोपजनक तथा अति दयनीय एव घोर विपत्तिजनक था।

मुगल अमीर तथा पदाधिकारी—मुगल पदाधिकारी साधारणतया अपने अविभावको का अनुसरण करते थे तथा उन्ही के समान आमोद प्रमोद में अपना जीवन व्यतीत करते थे। परिणाम स्वरूप उनका सारा धन भोग विलास, सस्थापन तथा भत्य वग में ही खच हो जाता था। अपन इन खर्चो के अतिरिक्त उन्हें समय समय पर बादशाह को बहुमूल्य उपहार देने पडत थे जिसके फल-स्वरूप धनी से धनी पदाधिकारी को भी गरीबी का सामना करना पडता था। भोग विलास के लिए विदेशी सामग्री का भी प्रचुर प्रयोग होता था। इससे विदेशी व्यापार की वृद्धि हुई। मद्य-पान का आम प्रचलन था, यद्यपि यह उच्च-वग तक ही सीमित था। उच्च वग के, शराब के आदी होने के कारण अधिकतर उनकी मृत्यु पान-प्रसक्ति के कारण होती थी। औरगजेब को छोडकर लगभग सब मुगल बादशाह मद्यपी थे। बादशाहो के बडे बडे अन्त पुर होते थ जिनमें सहस्रा स्त्रियाँ होती थीं। स्वय अकबर के अन्त पुर में ५,००० स्त्रियाँ रहती थी जिनकी देख भाल

के लिए अलग महक्मा था।[१] बादशाह का अनुकरण करनेवाले राज्य के उच्च पदाधिकारी भी सहस्रों की संख्या में स्त्रियां एवं ननकियां रखते थे। इनके ऊपर उनके हजारों रुपये खर्च होते थे। आये दिन शानदार दावतें होती थीं जिनकी अपव्ययता का उल्लेख योरोपीय यात्रियों ने भी किया है। आसफ खाँ ने सर टामस रो को ऐसे ही एक वृहत भोज में निमन्त्रित किया था जिसके उल्लेख से पता चलता है कि भोजन कितना सुस्वादु एवं रुचिर होता था। अनेक प्रकार की भोजन की सामग्री विदेशों से लाई जाती थी। मसालों का खूब प्रयोग होता था। अकबर के रसोईघर में अनेक देशों के रसोई बनानेवाले थे। वे तरह तरह के भोजन तैयार करते थे। परोसनवालों की संख्या अधिक होती थी। आईन अकबरी में जो भोजनों का वर्णन है उससे प्रकट होता है कि दावतें ऊँचे पैमाने पर होती थीं। मांस भोजन का एक प्रमुख अंग था, परन्तु गौ श्रद्धा की दृष्टि से देखी जाती थी। आईन ६६ (ब्लौकमैन, पृ० १४८, १४९) में लिखा है कि गौ श्रद्धा की दृष्टि से देखी जाती थी तथा उसका आदर होता था 'क्योंकि बैलों के द्वारा खेतों की जुताई होती है तथा गाय से लोगों को दूध एवं घी उपलब्ध होते हैं।' खाद्य पदार्थों में फलों की भी प्रधानता थी। बहुधा यह समरकन्द और बुखारा से मँगाये जाते थे। अकबर के यहां तो फलों का एक महक्मा था। जहांगीर भी अपनी आत्मकहानी में फलों का वर्णन करता है। बदख्शां का एक खर्बूज २½ रुपये में बिकता था। बर्फ का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में होता था। आईन २२ (१, पृ० ५६) में लिखा है कि सब लोग गर्मियों में बर्फ का प्रयोग करते थे। बर्फ का मूल्य साधारणतः १० दाम प्रतिसेर और कभी कभी २० दाम प्रतिसेर हो जाता था। इसके क्रय मूल्य से विदित होता है कि यह विलास सामग्री थी। दरबार की शोभा एवं वैभव के कारण बादशाह तथा उसके दरबारी बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहनते थे। अबुलफजल ने लिखा है कि बादशाह के लिए प्रतिवर्ष १,००० कीमती पोशाकें बनती थीं। इनमें से अधिकतर दरबार में आनेवाले व्यक्तियों में वितरित कर दी जाती थीं। यही प्रथा उच्च सामन्तों में भी प्रचलित थी। आईन अकबरी में भिन्न भिन्न प्रकार

---

[१] ब्लौकमन, आइन-ए-अकबरी १, आइन १५, पृष्ठ ४४५

के कपडा के मूल्य दिये हुए है। सूती थान का दाम १५० रु० था, ऊनी का २५०) रु० रेशमी का ३००) रु०, कीमखाब और मखमल इत्यादि के थाना का मूल्य ७००) रु० से १४००) रु० तक था। आमोद प्रमाद तथा खेल कूद के विभिन्न साधन थे। जुआ खेलना बहिष्कृत नही था। इमारत शानदार एव सुसज्जित होती थी। उनमें मखमल, रेशम तथा अन्य बहुमूल्य कपडा द्वारा सजावट होती थी। पर्दे कीमती कपडा के बनाये जाते थ। सभी बडे शानदार होते थे। मेज, कुर्सी सोफा आजकल के से न थ। परन्तु कालीन पलँग, आईने और बरतन अनेक प्रकार के होते थे। इन्ही से घर सजाये जाते थे। जब्ती-कानून (Law of Escheat) के कारण कोई अमीर धन नही जोडता था। यदि कोई धन एकत्रित करता तो उसे भोग-विलास अथवा राजा भगवानदास की तरह दहेज में खर्च कर देता था। बदाऊनी लिखता है कि राजा ने बहुत से घोडे, १०० हाथी, एबीसीनिया, हिंदुस्तान, सरकेशिया के गुलाम-लौंडिया और अनेक प्रकार के सोने के जडाऊ बरतन इत्यादि दिये थे। कोई भी पदाधिकारी अपनी सम्पत्ति को अपने स्वदेश नही ले जा सकता था। इसी कारण उच्च वर्ग अधिक खर्चीला एव अपव्ययी था। आसफ खाँ की मृत्यु के बाद उसकी सपत्ति का अधिकाश भाग शाहजहाँ ने ले लिया था।

अमीरा के नौकर बहुत होते थे। फीलखाने में, अस्तबल म, रसोईघर म सैकडा नौकर काम करते थे। सवारियाँ बहुत सी रहती थी। मशाल्ची सैकडा होते थे। गुलामा की सख्या अधिक थी। अमीरा के साथ बहुत से आदमी चलते थे। कोई प्रतिष्ठित मनुष्य सडक पर बिना नौकरा, गुलामा के चलता ही न था। हाथी घोडे भी रहते थे। घोडा का अमीरा को बहुत शौक था। अमीरा का जीवन विलास प्रिय था। अधिकाश रुपया शान शौकत में ही खर्च होता था। रिश्वत चलती थी। उपहारा का भी रवाज था। कोई मनुष्य अपने से बडे के यहा बिना उपहार लिये नही जाता था। अनेक अवसरा पर उपहार दिये जाते थे। लेने देने म कोई सकोच नही होता था। बादशाह, मनसबदार छोटे राजकर्मचारी सब उपहार लेते थे। शाहजहा के समय में अमीरा की अवस्था शोचनीय हो गई थी। उनके यहाँ रुपये का अभाव था। किसाना तथा श्रमजीवियो की दशा भी जसा बर्नियर का लेख है, अच्छी न थी। अमीरा की भी आर्थिक दशा दयनीय थी। परन्तु जन साधारण की स्थिति पर इसका बडा प्रभाव पडा था।

राज-कोष क्षीण होने पर प्रान्तीय सूबेदार तथा अफसर किसानों और कारीगरों से रुपया वसूल करने लगे जिससे उन्हें घोर कष्ट हुआ।

परन्तु यह समझना भूल होगी कि सभी लोग गरीब थे और दर्बार में सर्वथा धन का अभाव था। ऐसा नहीं था। कुछ लोग ऐसे थे जो रुपया जमा करते थे। यह संचित निधि उनकी मृत्यु के बाद राज कोष में चली आती थी इसलिए बहुत से अपने जीवन काल में ही विवाह इत्यादि में उसे खर्च करने का प्रयत्न करते थे। बड़ी इमारतें बनाते थे जिनके खँडहर अभी बड़े नगरों में दिखाई देते हैं। कभी कभी अमीर अपनी सम्पत्ति को बाहर भी ले जाते थे, हज्ज की यात्रा में खर्च करते थे। इसके लिए बादशाह की आज्ञा लेनी पड़ती थी। इतना निर्विवाद है कि अधिकांश दरबारी रुपये का पानी की तरह बहाते थे और विलासिता में मग्न रहते थे।

मध्य-वर्ग—यह कथन निराधार है कि मध्य-काल में कोई मध्य-वर्ग न था। वरन् हर काल में, मध्यवर्ग, शासन प्रणाली तथा आर्थिक अवस्था का मुख्य आधार रहा है। तुर्कों के आगमन से पहले इस वर्ग में राजपूत सामंत इत्यादि थे। इनका कार्य युद्धों में सेना संचालन तथा लगान वसूल करवाना था। मध्य-काल में राजपूत सामंतों का स्थान तुर्की अमीरों ने ले लिया था। तत्पश्चात् ही इस वर्ग में हिन्दू, मुगल, अफगान आदि की भी गणना होने लगी। अकबर के शासन-काल में इस वर्ग की विशेष उन्नति हुई। राज्य-पदों पर हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही नियुक्त किये जा सकते थे और नियुक्ति योग्यता के आधार पर होती थी। मध्य वर्ग दो भागों में विभाजित था—उच्च-मध्यवर्ग तथा निम्न-मध्यवर्ग। इस वर्ग में अधिकतर राज्य कर्मचारी, सामन्त, मुंशी, हकीम, विद्वान, धार्मिक मनुष्य, व्यापारी और बड़े बड़े सैनिक सम्मिलित थे।

मध्य वर्ग की दशा—भिन्न भिन्न प्रकार के राजकर्मचारियों का सम्मिश्रण होने के कारण मध्यवर्ग की दशा का एकात्मक रूप से वर्णन सरल नहीं है। उनमें से हर एक की जीवनचर्या भिन्न थी। उदाहरणार्थ, उच्च-मध्यवर्ग का कोई अमीर निम्न-मध्यवर्ग के अमीर के समान धन का अपव्यय नहीं करता था। व्यापारी वर्ग का व्यय अमीर वर्ग से कम होता था। राजा तथा वंश के बदलने पर उनकी दशा पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता था। ऐसे समय में

जीवन सुरक्षित नही रहता था, नौकरियाके छिन जीने का डर रहता था। इस वग में अधिकतर हिंदू थे। उह सदैव डर रहता था कि उनका फौजदार अथवा गवनर उनके धन को जब्त न कर ले। अत व अपना धन छिपाकर रखत थे और निधन जीवन व्यतीत करत थे। टेरी तथा बर्नियर दोनो का कथन है कि व्यापारी वग निधना का सा जीवन व्यतीत करते थे। परन्तु कई योरोपीय यात्रिया का कहना ह कि पश्चिमी घाट पर बसे हुए व्यापारिया का व्यवसाय बडी उन्नत अवस्था म था और उह अय व्यापारिया की भाँति धनापहरण का भी भय न था। वे अपने धन का निभय होकर भाग विलास की सामग्रियो में प्रयोग करते थे।

भाराश यह है कि मध्यवग का जीवन आडम्बर-रहित था। छोटे राज्य पदाधिकारी अपनी स्थिति के अनुसार जीवन व्यतीत करते थे। उनके वेतन के बारे मे निश्चित रूप से नही कहा जा सकता परन्तु यह प्रत्यक्ष रूप से विदित है कि उनका जीवन समद्ध एव सम्पन्न न था। सामयिक इतिहासकारो ने, जो कि मध्यवग में से थे, जीवन की कठिनता तथा अनाज के मूल्या का वणन किया है। मोरलन्ड का कथन ह कि उनके लिखने के ढग से यह प्रतीत होता है कि यह विषय उनके लिये अति आवश्यक एव मार्मिक था। औरगजेब के शासन के अतिम दिनो में उनका जीवन सुचार था। अत यह प्रतीत होता ह कि उनका जीवन पर्याप्त रूप से सुखद था।

इनके अतिरिक्त कुछ लाग ऐसे भी थे जो कुछ अशा म उत्पादक तथा कुछ में उपभोक्ता थे। उपभोक्ता मे उन लोगा से तात्पय ह जो दूसरा के परिश्रम पर रहते ह और उत्पादक वे जो प्रत्यक्ष रूप से धन अर्जित करते ह—उदाहरणाथ, जुलाह तथा चित्रकार। अत चित्रकार, सगतराश तथा राज इत्यादि एसा वग है जो दोनो वर्गों मे भिन्न है। उनकी अवस्था उनकी माग के ऊपर निभर थी। बर्नियर का कथन ह कि सत्रहवी शताब्दी के अन्त में उनकी अवस्था शोचनीय थी। परन्तु जब हम उनके सुन्दर कृतियो को देखन ह तो इस कथन से सहमत हाना कठिन प्रतीत होता है। *कला के किसी सुदर नमूने से यह ज्ञात होता है कि उनका जीवन सुखी था।*

निम्न वर्ग—निम्न-वग के अन्तगत नगर के कारीगर मजदूर तथा किसान

आदि आते थे। इनकी दशा के बारे में अधिक पता नहीं है। उनके जीवन के बारे में हमें विदेशी यात्रियों के लेखों में ही पता चलता है। कारीगरों तथा मजदूरों को कम पारिश्रमिक दिया जाता था। कभी कभी उन्हें अमीरों की बेगार करनी पड़ती थी। परन्तु उन पर अत्याचार नहीं होता था। साधारणतया इनका जीवन संतोषजनक न था। इनका जीवन बड़े परिश्रम से बीतता था, परन्तु फिर भी इन्हें विशेष सुविधायें उपलब्ध न होती थीं। इनके पास वस्त्रों का अभाव रहता था। आर्थिक विपन्नता के कारण ऊनी कपड़ा और जूतों का प्रयोग बहुत कम लोग करते थे। परन्तु इनके पास अन्न की कभी भी अभाव न रहता था। विदेशी यात्रियों के लेखों से पता चलता है कि मलाबार में आम जनता की दशा संतोषजनक न थी। लोगों का जीवन बड़ी निर्धनता में बीतता था। वे लकड़ी और घास बेचकर अपना जीवन निर्वाह करते थे। परन्तु यह ज्ञात नहीं कि निर्धनता किस माप तक प्रचलित थी। कुछ का कहना है कि, वे केवल एक वस्त्र कमर पर पहिनते थे, और कोई कपड़ा उनके शरीर पर नहीं दिखाई देता था। दुर्भिक्ष के समय घोर कष्ट होता था। मनुष्य मनुष्य को खा जाता था। माता पिता बच्चों को बेच डालते थे। यूरोपीय यात्रियों के लेखों में इस बात के अनेक प्रमाण हैं कि वर्षा न होने पर आर्थिक व्यवस्था एकदम नष्ट-भ्रष्ट हो जाती थी। दक्षिण की भी यही दशा होती थी। विजयनगर राज्य में भी साधारण मनुष्यों की आर्थिक दशा अच्छी न थी। गोआवासी दरिद्रता के पाश में जकड़े हुए थे। सर टामस रो अपने विवरण में भारतवासियों की दीनता का वर्णन करता है। वह लिखता है कि बड़े छोटों को लूटते हैं और बादशाह सब को लूटता है। सन् १६२४ के वर्णन में डलाबली लिखता है कि नौकर चाकरों की संख्या हर जगह अधिक थी, मजदूरी बहुत कम थी और गुलामों के रखने का खर्च नहीं के बराबर था। अन्य यात्रियों का भी ऐसा ही लेख है। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जन साधारण की दुर्दशा थी। बादशाह के यहाँ नौकर चाकर गुलाम बहुत से थे। अस्तबलों में असंख्य आदमी और जानवर थे। खेल तमाशा के लिये बहुत से नौकर रक्खे जाते थे। एक हजार तलवार चलानेवाले और बहुत से पहलवान दरबार में रहते थे। इसी

से जीवन व्यतीत करते थे। अपने मंदिरों में इष्टदेव की आराधना करते थे। धर्म के सिद्धान्त में उनका पूर्ण विश्वास था। कवि ने प्रजापति ने उन्हें बता दिया था कि अमीर गरीब सब ईश्वर के बन्दे हैं।

मुगलों में धार्मिक कट्टरता राजा-रानी के नागरों की अपेक्षा कम थी। वे हिन्दू त्यौहारों का भी मानते थे। अकबर के समय में दीपावली, रक्षाबन्धन, बसन्तपंचमी, दशहरा आदि त्यौहार धूम से मनाये जाते थे। मुसलमान भाई हिन्दुओं के साथ बसन्त मनाते थे। राजपूतों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होने का भी बहुत प्रभाव पड़ा था। इनके कारण तुर्की, फारसी, हिन्दी भाषाओं का भी मेल-मेल हुआ जिससे एक नवीन संस्कृति का प्रादुर्भाव मिला। मुगल भारत में ही बस गये। उन्होंने भारत का रुपया भारत ही में व्यय किया। इससे राज्य में अर्थ की क्षति न हुई। पेल्सार्ट अपनी पुस्तक में धनाढ्य हिन्दू व्यापारियों तथा जौहरियों, दस्तकारों तथा शिल्पजीवियों का उल्लेख करता है।

भारतीय सामाजिक जीवन पर विदेशियों की राय—रिमान्स्ट्रेंटी (Remonstratntie) और डीलाट (De Laet) के भारतीय विवरण से जहाँगीर के शासन-काल की बहुत सी बातें मालूम होती हैं। दरबार की भाँति सामन्तों का जीवन भी विलासप्रिय एवं आमोद-प्रमाद से परिपूर्ण था। टेरी की भाँति डीलाट भी कहता है कि अमीरों का काम केवल आमोद प्रमोद में ही जीवन व्यतीत करना है। पेल्सारट (Pelsaert) के विवरण से प्रतीत होता है कि जनता तीन भागों में विभक्त थी। इनमें कारीगर, चपरासी या नौकर तथा दूकानदार सम्मिलित थे।

कारीगरों को यथेष्ट वेतन नहीं मिलता था। वे अपनी इच्छानुसार कार्य नहीं कर सकते थे। उन्हें सामन्तों के कार्य करने के लिए बलपूर्वक पकड़ लिया जाता था। सामन्त तथा पदाधिकारी उन्हें अपनी इच्छानुसार वेतन देते थे। वे दिन में केवल एक बार भोजन करते थे। साधारणतया वे खिचड़ी खाते थे। उनके मकान कच्चे और मिट्टी के बने होते थे। सेवकों की संख्या अधिक थी क्योंकि वेतन बहुत कम था। उच्च राज्य पदाधिकारी उनके साथ कठोर व्यवहार करते थे। उच्च पदाधिकारियों के नौकरों की भी आय अधिक न थी। परिणाम यह होता था कि वे अन्य अनुचित साधनों से

रुपया पैदा करने की चिन्ता करने लगते थे। दस्तूरी मांगना तो एक साधारण बात हो गई थी दूकानदारों की भी आर्थिक दशा असन्तोषजनक थी। वे अपने धन को सदैव छिपाते थे क्योंकि उन्हें प्रान्त के गवर्नर से सदैव भय लगा रहता था। उन्हें समय समय पर बादशाह तथा अन्य राज्याधिकारियों को बाजार से भी नीचे भाव पर सामान देना पडता था। इससे उन्हें काफी हानि हुआ करती थी। देश का अधिकतर व्यापार हिन्दुओं के ही हाथ में था। मुसल्मान विशेषतया रँगरेज और जुलाहे का ही व्यवसाय करते थे।

हिन्दू गंगा की पवित्रता में विश्वास करते थे और विशेष पर्वों पर सहस्रों की संख्या में उसमें दूर दूर से स्नान करने जाते थे। उनमें बाल विवाह का प्रचलन था। डलावैली ने दो लडकों के विवाह का वर्णन करते हुए कहा है कि उन्हें मनुष्य घोडों पर पकडे हुये थे। विधवाओं का जीवन कठिन था। सती प्रथा प्रचलित थी। आत्महत्या पानी या अग्नि के द्वारा अच्छी समझी जाती थी। मुगलों ने इस प्रथा को बन्द करने की चेष्टा की थी, परन्तु वे असफल रहे थे। ज्योतिष में हिन्दू और मुसल्मान दोनों का ही समान रूप से विश्वास था। ब्राह्मणों पर ज्योतिष का अधिक प्रभाव था। वे शुभ घडी पूछकर ही बाहर को प्रस्थान करते थे। मुसल्मान भी साइत देख कर चलते थे। मुसल्मान अनेक पीरों और पैगम्बरों की उपासना करते थे। गोमांस का प्रयोग बहुत कम होता था। कदाचित ईद के अवसर पर भी गौवध न होता था। ईद के दिन मुसल्मान बकरे की बलि करते थे और उस दिन खूब जशन मनाते थे। सदैव की भांति शियाओं और सुन्नियों में उस समय भी पारस्परिक द्वेष भाव रहता था और दोनों एक दूसरे को काफिर कहते थे।

शाहजहां का शासन काल शान्तिमय, उन्नतिशील एवं समृद्ध था। उसे भव्य भवनों का निर्माण कराने का अत्यन्त चाव था। उसके इस चाव के कारण बहुत से लोगों को रोजी मिलती थी। परन्तु उसके शासन के अन्तिम दिनों में दशा बिगडती गई। प्रान्तीय गवर्नर किसानों को तंग करते थे। कला और दस्तकारी का ह्रास होने लगा। देश के कुछ भागों में मार्ग सुरक्षित न थे। टवर्नियर ने लिखा है मार्ग में भ्रमण करते समय कम से कम २० या ३० हथियारबन्द आदमी साथ होने चाहिऐं। देश में भिखारी बहुत थे।

टैवर्नियर लिखता है कि भारतवर्ष में ८,००,००० मुसलमान फकीर तथा १२,००,००० हिंदू साधू थे। डैला वैली, टवर्नियर तथा अन्य यात्री हिंदुओं की प्रशंसा करते हुए कहते है कि वे गंभीर मितव्ययी तथा ईमानदार है। उनका नैतिक स्तर ऊँचा है। विवाहोपरान्त वे अपनी पत्नियों के प्रति वफादार रहते हैं। उनमें व्यभिचार अप्राप्य है और उनके अप्राकृतिक पाप सुनने में नहीं आते।

थैवैनो (Thevenot) और कैरेरी (Careri) नामक विदेशियों ने भी जो १७वीं शताब्दी में हमारे देश में आये भारतीय शासन तथा समाज के विषय में बहुत कुछ लिखा है। सड़कें अच्छी न थीं। समुद्र पर लुटेरों का भय रहता था। विदेशियों की बंदरगाह पर उतरते समय तलाशी ली जाती थी। सर टामस रो ने भी ऐसा ही उल्लेख किया है। पैट्रो डेलावेली लिखता है कि उसके साथ एक महिला थी उसकी तलाशी नहीं हुई थी बाकी सबकी ली गई थी। चुंगीघर को दागाना कहते है। यात्री के साथ एक लड़की थी परन्तु चुंगी के अफसर ने हुक्म दिया कि उसके साथ कोई अत्याचार न होने पाये। मंडलस्लो का लेख है कि २½ रुपया सैकड़ा कर सोना चांदी पर लिया जाता था और ३½ अन्य चीजों पर। थैवनो लिखता है कि साधारण यात्रियों के लिए सरायों की सुविधा न थी। १७वीं शताब्दी में बैल श्रेष्ठ जानवर समझा जाता था। वही यातायात का साधन था। जहांगीर एक बार खुली बैलगाड़ी में नूरजहाँ के साथ बैठा था और स्वयं बैलों को हाँक रहा था। यह टामस रो का कथन है। अमीर आदमी अच्छी सवारियों में जाते थे। पालकियों तथा चन्डोलों का प्रयोग होता था। जनसाधारण बैलगाड़ियों में चलते थे। आगरा से लाहौर तक लूटमार होने का भय रहता था। सूरत से खम्भात का मार्ग भी ऐसा ही अरक्षित था। पीटरमंडी के लेखानुसार आगरे से अहमदाबाद के मार्ग में चोरी बहुत होती थी। विद्रोही यात्रियों से जकात वसूल करते थे। आगरा आबाद नगर था परन्तु युद्ध के लिए २ लाख आदमी नहीं दे सकता था। मकान नीचे थे और गरीबों के झोपड़े फूस के बने हुए थे। दस्तकारी उन्नत दशा में थी। सोने का काम होता था। दिल्ली की भूमि उपजाऊ थी। गेहूँ, चावल बहुतायत से होता था। चांदी तथा

नील की भी पैदावार अच्छी थी। दिल्ली निवासियो के पास आभूषण बहुत थे। जब वे किसी को भेंट देते थे तो उन गहना को नही देते थे जो उन्होंने अपने पूवजा से पाये थे। थॅवनो बादशाह के तुलादान का वणन करता हैं। वह लिखता ह कि तराजू आर उसकी डडी सोने के थे। यदि बादशाह का वजन गतवष से अधिक होता ह ता बडी खुशी मनाई जाती ह। अमीर उपहार पेश करते ह। बादशाह की ओर से उह सोना, चादी, फल सुनहरे बतनो मे भरकर दिये जाते ह। तुला दान का उत्सव पाँच दिन तक रहता ह। इन दिना में लाग जुवा भी खेलते ह। बहुत से लाग रुपया हार जाते ह। एक बनिया अपना सवस्व जुवे में हार गया परन्तु जीतनेवाल ने उस पर दया की और सब माल लौटा दिया। कॅरेरी ने भी बादशाह के तुलादान का वणन किया ह।

हिन्दू सादगी से जीवन व्यतीत करते थे यद्यपि स्त्रिया आभूषण पहनती थी। अबुलफजल भी लिखता ह कि वे वीर, राजभक्त तथा सहिष्णु हैं। अतिथि-सत्कार उनके यहाँ उच्च कोटि का होता ह। बर्नियर का लेख है कि उनमें कोढ, गुर्दे का दद, पथरी इत्यादि रोग बहुत कम पाये जाते ह। ब्राह्मण विद्याप्रेमी ह और जन-साधारण को सन्माग पर लाने की सदव चेष्टा करत ह। राज्य पर भी उनकी विद्वत्ता, पवित्रता तथा नैतिक उत्कृष्टता का प्रभाव है। जनता उन्ह आदर की दृष्टि से देखती हैं। राजपूतो की वीरता की यूरोपीय यात्री प्रशसा करते ह। उनका कथन ह कि वे युद्ध में मृत्यु को भागने से अधिक पसन्द करते ह। वे अफीम खाते ह और शान-शौकत से रहत ह। परन्तु मुसलमान अमीरा की अपेक्षा उनका जीवन अधिक स्तुत्य हैं।

सामाजिक पतन—औरगजेब के शासन-काल में सामाजिक अवस्था बिगडने लगी। प्रजा की दशा में पतन के लक्षण दिखाई देने लगे। सन् १६९० में **खुलासत उल-तवारीख** नामक ग्रन्थ की रचना हुई जिसका लेखक उस समय के साम्राज्य की अत्यत प्रशसा करता हैं। परन्तु उसका अवलोकन यूरोपीय यात्रियो से सवथा भिन्न ह। कारण यह ह कि वह उस सरकार को किस प्रकार बुरा कह सकता था जिसके अन्तगत कि वह रहता था। परन्तु व्यापार-सम्बन्धी मामलो का उससे बहुत कुछ हाल मालूम पडता ह। उसने लिखा

है कि इस देश के व्यापारी ईमानदार है। कोई भी विदेशी उनके यहा लाखो रुपये जमा कर सकता था और मांगने पर वह रुपया फौरन वापस मिलता था। उनकी हुडी का सारे देश में आदर था। वे हुडियाँ थोडा सा बट्टा देने पर कही भी भुनाई जा सकती थी। व्यापारी अपना धन इन्ही के यहाँ जमा कर देते थे और जहाँ आवश्यकता होती थी, वहाँ सुरक्षित रूप में ले लेते थे और यह रिवाज बीमा कहलाता था।[१]

औरगजेब के शासन-काल में प्रजा का पतन होने लगा। मुगल पदाधिकारी एव उच्चवर्गीय सामन्त आचरण भ्रष्ट हो गये। उनके सुधरने की कोई आशा प्रतीत नही होती थी। सामन्तो के लडको का पालन-पोषण स्त्रियो और हिजडो के मध्य होता था अत वे चरित्रहीन हो गये थे। स्त्री और मदिरा के अनवरत साहचर्य ने उनकी नैतिकता का समूल लोप कर दिया था। औरगजेब के मुहतसिब इन बुराइयो को रोकने का कोई प्रबध न कर सके। हिंदू तथा मुसलमान दोनो ही ज्योतिष में पूर्ण विश्वास करते थे। अत समाज में साधुओ और फकीरो की पूजा की प्रथा बलवती होती गई और उसके साथ ही साथ लोगो में अधविश्वास भी बढने लगा। कभी कभी तो साधना सिद्ध के हेतु नर-बलि भी दी जाती थी। इसके अतिरिक्त तत्र मत्र, जादू-टोना आदि तो साधारणतया प्रयुक्त होते थे। शाही दरबार की दशा और भी खराब हो गई थी। वह विलास प्रिय, प्रपची एव चाटुकार व्यक्तियो का अड्डा बन गया था। दरबारियो में पहले जैसे वीरता, विद्वत्ता, सदाचारिता, एव सत्यवादिता के गुण न रह गये थे। बडे बडे अमीर अपने भोग विलास के हेतु पानी की भाति रुपया बहाते थे, परन्तु जनसाधारण की उन्नति की ओर लेशमात्र भी ध्यान न देते थे। नैतिक पतन के कारण राज्य कर्मचारी घूसखोर हो गये थे। वे प्रजा के हिताहित का तनिक भी ध्यान न रखते थे।

परन्तु मुगल-कालीन भारतीय समाज का यह चित्र अधूरा है। हमें यह मानना पडेगा कि नैतिकता की दृष्टि से जन साधारण का चरित्र इन विलासी

१ खुलासत, देहली सस्करण, पृ० २५।

से बचाती थी। सल्तनत काल की अपेक्षा मुगल काल में शान्ति थी। ऐसे भाग कम थे जहा की शान्ति अक्सर भग होती हो। इसके अतिरिक्त बदला-बदली के कारण भी किसानो को अधिक कठिनाई नही उठानी पडती थी। देश में खेती के लिए भूमि की भी कमी नही थी। सामयिक इतिहासकारो ने दिल्ली के आस-पास तथा अन्य जगलो का वर्णन किया है। इससे प्रतीत होता है कि खेती के लिए भूमि पर्याप्त थी। अत किसानो को लकडी तथा चरागाह बिना पैसे के मिल जाते थे। ऐसे मजदूर कम थे जिनके पास जमीन न हो। जब तक केन्द्रीय शासन किसानो का ध्यान रखता था वे समृद्ध रहते थे।

मुगलकालीन स्थापत्य—मुगलो के पूर्व तुर्की शासको ने स्थापत्य कला को समुचित प्रोत्साहन दिया था। उस समय की इमारते मकबरे और मस्जिदें तत्कालीन शिल्प शैली के सुन्दर उदाहरण है। यद्यपि कला पूर्णतया निखरकर अपने श्रेष्ठतम रूप में नही आ सकी थी फिर भी कुतुब मीनार, कुव्वतुल इस्लाम मस्जिद, अलाई दरवाजा और लाल गुम्बज जैसी प्रसिद्ध इमारतें इसी काल में बनी। इन इमारतो में विदेशीय कला का पुट अधिक न होकर हिन्दू बौद्धिक कला का ही पुट है। फारसी और अरबी प्रभाव तो स्पष्ट है परन्तु कारीगरी और पत्थर की पच्चीकारी का काम भारतीय शिल्पकारो के द्वारा ही हुआ है। स्थापत्य के विशेषज्ञ पर्सी ब्राउन का कथन है कि पूर्व मुगलकालीन इमारतो में भारतीय कारीगरी और विदेशीय कला के सिद्धान्तो का अपूर्व सम्मिश्रण मिलता है।

सोलहवी शताब्दी में भारत में मुगलो का आधिपत्य स्थापित हो गया। उन्हें शिल्पकला से बडा प्रेम था। उन्होने देश के भिन्न भिन्न भागो में जो इमारतें बनवाईं, उनसे उनकी रुचि का पता चलता है। फर्गुसन (Fergusson) का कथन है कि मुगलो की स्थापत्य कला पर विदेशीय प्रभाव अधिक था परन्तु दूसरे स्थापत्य विशेषज्ञ हैवल का मत ठीक इसके विपरीत है। उसके कथनानुसार मुगल स्थापत्य पूर्णरूपेण भारतीय है। उसका मत है कि भारत में मुगल शिल्पकार थे ही नही और यदि थे भी तो बहुत थोडे। इसी कारण मुगल शासको को भारतीय कारीगरो का आश्रय लेना पडा था।

उन्होने विदेशीय कला के सिद्धान्तो को इस प्रकार परिवर्तित और संशोधित

रूप में अपनाया कि भारतीय कला के साथ मिलकर वे देशीय प्रतीत होने लगे विदेशीय कला जिसका अकबर के पूर्व मुगल स्थापत्य कला पर विशेष प्रभाव फारसी, अरबी तथा मध्य एशियाई शैलियों का सम्मिश्रण है। इस विदेशीय कला को महत्वपूर्ण स्थान केवल उत्तरी भारत में मिल सका और इसका प्रभाव प्रचलित भारतीय स्थापत्य पर भी पड़ा परन्तु देश के दूरस्थ दूर पश्चिम और दूर दक्षिण में यह वहाँ की प्रचलित विशेष शिल्प शैलियों का अन्त सिद्धान्तों से प्रभावित नहीं कर सकी—जो इमारतें उन सुदूर प्रान्तों में मुगल पदाधिकारियों और शासकों ने बनवाई उनमें अपना निज का व्यक्तित्व है।

मुगल स्थापत्य का विकास बाबर के समय से प्रारम्भ होता है। इस कला पर फारसी और हिन्दू बौद्धिक शैलियों का विशेष प्रभाव है। फारसी शैली का प्रभाव मुगल इमारतों की सजावट, उच्च कोटि की नक्काशी और सुन्दर बेल-बूटों के काम में स्पष्टतया झलकता है मुगल इमारतों के पास बागीचों की स्थापना का दृश्य और सुन्दरतम बनाने की चेष्टा करना भी फारसी शैली से ली गई एक अनुपम निधि है। हिन्दू बौद्धिक शैली का प्रभाव मुगल इमारतों की दृढ़ता और भव्यता में स्पष्ट है।

मुगल स्थापत्य में प्रधान स्थान गुम्बज का है। मुगलों के पूर्व गुम्बज का प्रचार अधिक नहीं था पर मुगलों ने उसको सुन्दर और आकर्षक बनाने की चेष्टा की। उनके समय में गुम्बजों में उभार और साथ ही साथ बाह्य रेखाओं में सुन्दरता और सजीवता आई। नोकीली मेहराब को और कई विशेष रीतियों से अलंकृत किया गया। एक विशेषता नोकीली मेहराब में यह लाई गई कि उसमें छोटे छोटे नौ गोल मेहराब रूपी मांड दिये गये। रंगों के ऊपर विशेष ध्यान मुगल इमारतों में रक्खा जाने लगा। पूर्व मध्यकालीन इमारतें भूरे पत्थर से अधिकतर बनाई जाती थीं पर अब लाल पत्थर अधिक प्रयोग में लाया जाने लगा। कभी कभी लाल पत्थर की गम्भीरता को दूर करने के लिए उसमें सफेद संगमरमर का प्रयोग भी होने लगा। आगे चलकर जहाँगीर के समय से इमारतें संगमरमर की ही बनने लगीं। मीनारों और छोटी छोटी आकर्षक बुर्जियों का प्रचलन अधिक हो गया। पच्चीकारी और इमारतों पर अक्षरों की खुदाई अधिक मात्रा में होने लगी।

बाबर को भारतीय कारीगरों की कृतियाँ सन्तोषजनक प्रतीत न हुईं। उसकी

यह धारणा हो गई कि भारतीय कला निम्नकोटि की है इसी लिए उसने कुस्तुन्तुनिया के सिनान नामक एक प्रसिद्ध शिल्पकार के शिष्यो को बुलवाया, परन्तु हैवल के कथनानुसार यदि सिनान के शिष्य भारत में आये तब भी उनके निरीक्षण में जो इमारतें बनी वह बहुत उच्च कोटि की न होकर मामूली सी प्रतीत होती है। बाबर की बनवाई हुई इमारतो में से अब केवल दो तीन शेष रह गई है पानीपत के काबुलबाग की मस्जिद, अयोध्या की मस्जिद और सम्भल की जामा मस्जिद। दिल्ली के पुराने किले की मस्जिद को भी कदाचित् इसी ने बनवाया था।

हुमायूँ का अधिक समय भारत से बाहर और युद्ध में बीता। अत उसे इमारतें बनाने का अधिक अवकाश नही मिला। फिर भी उसके द्वारा बनवाई गई इमारतो में से दो मस्जिदें शेष है एक तो आगरे में टूटी फूटी दशा में है और दूसरी पजाब में हिसार जिले के फतहाबाद नामक स्थान पर विद्यमान है। इसका अलकरण फारसी शैली के आधार पर किया गया है।

हुमायूँ के उत्तराधिकारी सूर शासको ने इस कला की ओर विशेष ध्यान दिया। उनके समय में पजाब, रोहतास और मकोत के किले बने। इनके अतिरिक्त शेरशाह के समय की दो इमारतें है दिल्ली के समीप पूरन किला की मस्जिद और सहसराम का मकबरा। सहसराम का मकबरा प्रभावशाली तथा अति सुदर है। फर्गुसन के कथनानुसार इसमें फारसी शैली का प्रभाव अधिक है। यह एक कृत्रिम झील के बीच में बना हुआ है और जिस पक्के (Terrace) पर यह मकबरा बनाया गया है वह ३०० वर्गफीट है। फर्गुसन के अनुसार यह 'पठान" शैली के अतर्गत आता है। यह सूरवश के प्रसिद्ध शासक शेरशाह सूरी की समाधि है।

अकबर के समय में कला को बडा प्रोत्साहन मिला। उसकी धार्मिक सहिष्णुता से भारतीय और फारसी कलाएँ समान रूप से समुन्नत हुई। परन्तु उसके भवनो को देखने से यह ज्ञात होता है कि राज्य में भारतीय कला का अधिक बोलबाला था। कारण यह है कि अकबर स्वय अपने को एक भारतीय समझता था और और इसी कारण **भारतीय शैली** को अधिक प्रोत्साहन देने की चेष्टा करता था। उसने यह देख लिया था कि भारती कारीगर स्थापत्य में दक्ष है और यदि उनको समुचित प्रोत्साहन मिले तो वे सुन्दर से सुन्दर भवनो और इमारतो का निर्माण कर सकते है। अकबर के राज्य में हिन्दुओ को धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में

हुमायूँ का मकबरा
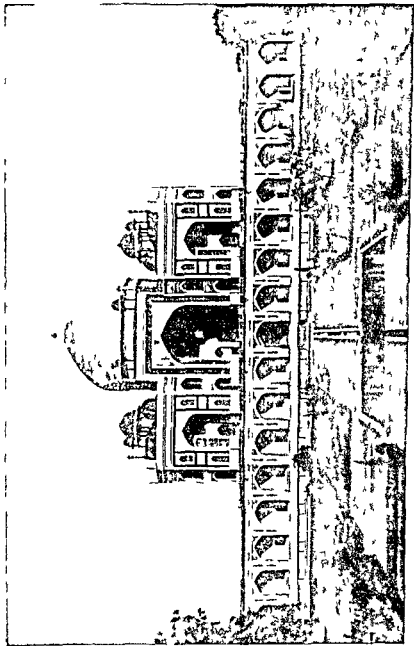
काफी स्वतन्त्रता थी और कला के क्षेत्र में भी उन्हे पूर्ण अवसर मिला। फर्गुसन ने भी इस बात का समर्थन किया है कि अकबर के राज्यकाल म जो इमारते बनी उनम हिन्दू शैली का पूर्ण प्रभाव है। अकबर स्वय विदेशीय कला का पक्षपाती न होने के कारण, उसको अपनी इमारतो में महत्त्वपूर्ण स्थान नही देना चाहता था। अकबर के समय की सर्वप्रथम इमारत हुमायू का मकबरा ह जिसे उसकी स्त्री हाजी बेगम न बनवाया था। यह १५६५ ई० म बनकर तयार हुआ। यह एक फारसी शिल्पकार मिराक मिरजा गयास के निरीक्षण में बना था। हैवल का कथन ह कि इसम फारसी शैली का अत्यधिक प्रभाव है। इसके समीप एक स्थान अरब सराय के नाम से प्रसिद्ध ह जो कि पर्सी ब्राउन (Percy Brown) के कथनानुसार अरब से आये हुए शिल्पकारो के रहने का स्थान होगा। पर्सी ब्राउन का कथन ह कि यह मकबरा किसी फारसी मकबरे के नमूने की भारतीय कारीगरो द्वारा नकल ह।

अकबर न १५६४ में आगरे के किले की नीव डाली। इस किले में रहने के लिए भव्य भवनो का निर्माण किया गया। इस प्रकार के किले जिनमे रहन के लिए भवन भी हो, अकबर न कई और स्थानो पर बनवाये। इनमें लाहौर और इलाहाबाद के किले प्रसिद्ध ह। आगरे का किला विशाल होने के साथ ही साथ प्रभावशाली भी है। इसमें दो दरवाजे ह जिसमे दक्षिण की ओरवाला खास कहलाता ह और दूसरा दिल्ली दरवाजा ह जो पश्चिम की ओर पडता है। यह १५६६ ई० मे बनकर पूर्ण हो गया था और यह मुगल स्थापत्य कला की एक अपूर्ण निधि है। इसम ५०० से ऊपर लाल पत्थर की बनी हुई इमारतें थी जिन्ह बगाल और गुजरात के कारीगरो न बनाया था। इन इमारतो को ६५ वर्ष के बाद गिरा दिया गया था पर उनमें से एक बच गई ह और वह ह जहागीरी महल। इसम भारतीय कला-कौशल की स्पष्ट झलक है। अकबर ने १५७० म एक दूसरा इसी तरह का किला अजमेर म बनवाया था।

अकबर के समय की सबसे महत्त्वपूर्ण इमारतें फतहपुर सीकरी के राजभवन हैं। १५६९ ई० मे बादशाह ने सीकरी के निकट एक पहाडी पर शेख सलीम चिश्ती की स्मृति में फतहपुर सीकरी नामक नगर की नीव डाली। हैवल क मतानुसार इस नगर की नीव डालन में उन सिद्धान्तो को अपनाया गया है जिनका

शिल्पशास्त्र में वर्णन है। १५६९ ई० से १५७१ तक इस नये नगर में अनेक भव्य इमारतें बनाई गई। जो इमारतें इस नगर में बनी उन्हें हम चार भागों में विभाजित कर सकते है —

(१) प्रासाद
(२) निवास-स्थान
(३) कार्यालय
(४) धार्मिक इमारतें।

प्रासादो में आमेर की राजकुमारी मरियम उज्जमानी का प्रासाद उल्लेखनीय हैं। इस भवन का अपना एक विशेष ही व्यक्तित्व हैं। इससे मुगलों और उनके परिवार के रहन-सहन के ढंग का पता चल सकता है और इसमें बहुत ही सुन्दर मीनाकारी की गई है। मरियम सुल्ताना और बीरबल के निवास-स्थान उस समय के आदर्श निवासस्थानों के प्रतिरूप है। दीवान खास में बैठकर अकबर राज्य का कार्य करता था। जिन इमारतों में कार्यालय थे उनमें से ये प्रमुख है पंच महल, ख्वाबगाह और ज्योतिष विभाग। जामा मस्जिद धार्मिक इमारत होते हुए भी फतेहपुर सीकरी की सबसे प्रधान इमारत है। इसको अकबर ने १५७१ में बनवाना आरम्भ किया था। आकार में यह देश की सबसे बडी मस्जिद है और स्थापत्य-कला की दृष्टि से भी यह अपूर्व हैं। इस मस्जिद के पूर्ण होने के २५ वर्ष बाद जब अकबर दक्षिण में विजयी होकर लौटा तो उसने जामा मस्जिद के दक्षिणी भाग को जो पहले बना हुआ था उसको तोडकर उसके स्थान पर बुलन्द दरवाजा बनवाया। यह उसकी दक्षिण की विजय का द्योतक है। यह बुलन्द दरवाजा प्रभावशाली और विशाल हैं। इसकी ऊँचाई १३४ फुट हैं। इसकी ४२ फुट ऊँची सीढियाँ है जिसके कारण इसकी पूरी ऊँचाई १७६ फुट हो जाती है। शेख सलीम चिश्ती का मकबरा भी इसी मस्जिद के अन्दर ही बना है। जिस प्रकार बुलन्द दरवाजा ऊँचा उठा हुआ विजयोल्लास में संसार को अकबर की विजय का संदेश देता है उसी प्रकार सलीम चिश्ती का शांतिपूर्ण और सादा मकबरा विश्व को शांति का उपदेश करता हैं। अकबर की सर्वश्रेष्ठ इमारत सिकन्दरा का मकबरा है जिसमें उसकी समाधि हैं।

स्मिथ और पर्सी ब्राउन ने इन इमारतों की बडी प्रशंसा की है। मुगल स्थापत्य
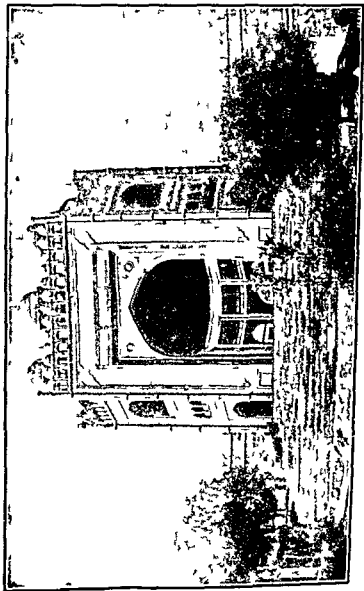
बुलन्द दरवाजा

कला के इतिहास में जामा मस्जिद और बुलन्द दरवाजा का स्थान सदैव उच्च रहेगा। हैवल का मत है कि ऐसी उच्च कोटि की इमारतें तो शाहजहाँ के समय में भी (ताज को छोडकर) नही बनी थी। वास्तव में दीवान खास और सुनहले महल की सुन्दरता का विदेशी यात्री गण चकित होकर देखते रह जाते है। अकबर के आगरे चले जाने के बाद आज तक वीरान और सुनसान फतहपुर सीकरी नगर मुगल साम्राज्य के ऐश्वर्य काल का स्मरण दिलाता है। फतहपुर सीकरी की एक विशेषता यह है कि वह घरेलू कला का उत्तम नमूना है। उसके महलो की दीवारो पर नक्काशी हो रही थी और सजावट का बहुत सा काम हुआ था। अकबर के यहा हिन्दू मुसलमान दोनो जातियो के शिल्पजीवी नौकर थे इसलिए फतहपुर के प्रासादो म हिन्दू आदर्शों की स्पष्ट झलक है। मरियम उज्जमानी के महल की खिडकियो, चपटी छतो और खम्भो को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस पर राजपूताना की कला का प्रभाव है।

फतहपुर की इमारतो में तुर्की सुल्ताना महल, दीवान खास और दीवान आम भी उल्लेखनीय है। वास्तव में फतहपुर सीकरी एक स्वप्न है। इसको देखकर मानवीय आकाक्षाओ की नश्वरता का पूर्ण आभास होता है।

जहाँगीर को स्थापत्य कला से उतना प्रेम न था जितना कि चित्रकला से। फिर भी उसकी बेगम नूरजहा ने कई सुन्दर इमारतें बनवाई है। इनमें इत्मादुद्दौला का मकबरा सर्वप्रथम है। यह मकबरा बेगम ने अपने पिता की स्मृति में १६२६ ई० में बनवाया था। सम्पूर्ण इमारत संगमरमर की बनी हुई है। इसमें सुन्दरता और कोमलता की भावना प्रधान है। पच्चीकारी और मीनाकारी बहुत ही उच्च कोटि की है। इस समय की दूसरी इमारत जहाँगीर का मकबरा है। इसे भी नूरजहा ने बनवाया था। यह लाहौर के उत्तर-पश्चिम में तीन मील की दूरी पर रावी नदी के किनारे बना है। फर्गुसन ने जहागीर के राज्य काल म बनी इमारतो को इण्डो पर्शियन शैली का बताया है पर हैवल का मत है कि यह सब पूर्णतया भारतीय कला के अनुसार बनाई गई भारतीय इमारत है। लाहौर के किले में जो जहागीर के रहने का भवन है उसमें भी जहाँगीर की रुचि का आभास नही मिलता है। जहाँगीर के समय की मुख्य इमारतें है—सरायनूर महल का दर्वाजा

(१६२०), शालीमार बाग और श्रीनगर के निकटवर्ती भवन (१६२४), अनारकली का मकबरा और लाहौर के किले की ख्वाबगाह और सगमरमर की मोती मसजिद।

मुगलकाल का सबसे महान निर्माता शाहजहाँ था। उसका राज्य काल भारतीय स्थापत्य कला के इतिहास में स्वर्णयुग के नाम से प्रसिद्ध है। भारतीय वैभव और कला का पूर्ण विकास इस सम्राट द्वारा बनवाये भव्य भवनों और मकबरों में छलकता है। इमारतों की विशालता और साथ ही साथ उनमें की सुकुमारता और सौन्दर्य भारतीय कला और कारीगरी की विशेषताएँ है जो दूसरे देशों की इमारतों में कदाचित् ही देखने को मिलेंगी। स्वच्छ और निर्मल सगमरमर की बनी हुई इमारतें अपनी भव्यता के लिए ससार में प्रसिद्ध है। शाहजहाँ ने १६३८ ई० में शाहजहाँनाबाद नगर की नींव डाली। जमुना नदी के दाये किनारे पर यह बसा हुआ विशाल किला-नगर अपने निर्माता के ऐश्वर्य और गौरव का प्रतीक है। किले के आसपास का सम्पूर्ण वातावरण आजपूर्ण है। इसके अन्दर दीवान खास और रगमहल नामक भवनों की स्थापत्य कला और पच्चीकारी का काम बहुत ही सजीव और सुन्दर है। बहुमूल्य पत्थरों के अलकरण से रगमहल की शोभा अवर्णनीय हो गई है। उसी समय के एक इतिहासकार का यह कथन है "कि यह स्वर्ग के भवनों से भी अधिक सुन्दर तथा भव्य है।" दीवान खास और दीवान आम के चमकीले सगमरमर के फर्श, उनकी दीवारों पर फूल पत्तियों की सुन्दर नक्काशी और मेहराबों का सुनहला रग अत्यन्त आकर्षक है। वे उस समय की कला के उत्कृष्ट नमूने है।

दिल्ली की जामा मसजिद देश की सबसे प्रसिद्ध मसजिद है। इसको शाहजहाँ ने १६४४ ई० में बनवाना शुरू किया था। यह सन् १६५८ में बनकर तैयार हुई थी। एक दूसरी जामा मसजिद शाहजहाँ ने १६४८ ई० मे आगरे में बनवाई थी। पर्सी ब्राउन के कथनानुसार आगरे की जामा मसजिद दिल्ली की जामा मसजिद से स्थापत्य कला की दृष्टि से कही भव्य और सुन्दर है क्यों कि दिल्ली की जामा मसजिद में सजीवता का पूर्णतया अभाव है। मोती मसजिद जिसे शाहजहाँ ने १६५४ ई० में आगरे के किले में बनवाया था अपनी पवित्रता और मरमता के लिए प्रसिद्ध है। कला की दृष्टि से यह भी एक उच्च कोटि की कृति है।

शाहजहा के समय की सवश्रेष्ठ इमारत ताजमहल ह। इसे उसने अपनी पत्नी अर्जुमन्दबानू बेगम की स्मति में बनवाया था। बेगम की मत्यु १६३० ई० में हुई और उसी के दूसरे वष इसका बनना प्रारभ हुआ। इसके निर्माण के लिए फारस, अरब, टर्की तथा अन्य विदेशो से कारीगर बुलाये गय। ताजमहल म मुगल स्थापत्य कला अपने चरम विकास को पहुँची। स्पेन के पादरी सिबैस्टियन मैनरीक का कथन ह कि इसका नक्शा वेनिस निवासी जेरोमियो वेरोनियो नामक व्यक्ति ने बनाया था। स्लीमैन का कथन ह कि इसका प्रधान शिल्पकार एक फ्रेंच इजीनियर औस्टिन द बोरदो था। परन्तु उस समय के इतिहासकारो के हस्तलिखित ग्रन्थो में ताज का पूण विवरण है। उनके अनुसार इसका प्रधान शिल्पकार उस्ताद ईसा खा था। इमारत की बनावट का ढग भी इस बात का समथन करता है कि यह कृति किसी पाश्चात्य शिल्पकारी की कला का नमूना नही है। आयर पोप, पर्सी ब्राउन इत्यादि स्थापत्य कला विशेषज्ञ भी इस बात का समथन करते ह। हवल का मत है कि ताज भारतीय कला का उदाहरण है और उसने यह सिद्ध कर दिया है कि इस प्रकार की इमारतो से बौद्ध तथा हिन्दू शिल्पकार सवथा अनभिज्ञ नही थे। कहा जाता है कि पहले ताज के ढाचे लकडी, पत्थर तथा धातु के बनाय गये थे। इन पर बडी छान-बीन के साथ विचार हुआ। देशीय तथा विदेशीय कला-ममज्ञो ने बादशाह के सम्मुख अपने सुझाव उपस्थित किये। शाहजहा इस विचार विनिमय के समय स्वय मौजूद रहता था। इजीनियर उसकी राय से भी लाभ उठाते थे। बादशाह सौन्दय उपासक था, उसे कला का ज्ञान था, विशेषज्ञो के सुझावो के तथ्य को समझने की उसमें क्षमता थी। यही कारण ह कि ताज मुगल काल की इमारतो में अदभुत एव सर्वोत्कृष्ट ह।

पृथ्वी स २२ फुट ऊँचे चौकोर चबूतरे पर यह प्रसिद्ध मकबरा बनाया गया है। इसकी लम्बाई, चौडाई १८६ फुट है। प्रधान गुम्बद जो कि पाच गुम्बदो में सबसे बडा है, १८७ फुट ऊँचा है। बाकी चार गुम्बदें जो प्रधान गुम्बदो के साथ ही मकबरे के ऊपर बने ह, प्रधान गुम्बद की शोभा को द्विगुणित करते ह। चौकोर चबूतरे के चारो कोना पर एक एक मीनार ह। उन मीनारो के ऊपर छोटी छोटी बुर्जिया बनी हुई ह। इन मीनारो की उँचाई १३७ फुट ह।

इस विश्वविख्यात मकबरे के बनवाने में २२ वर्ष लगे और करीब ९ करोड रुपया खर्च हुआ था। कहा जाता है २०,००० आदमी इसके बनाने में लगाये गये थे। फ्रांसीसी यात्री टैवरनियर का कथन है कि शाहजहा ने ठीक ताज के सामने अपने लिए काले सगमरमर का मकबरा बनवाना शुरू किया था जो कि औरगजेब की हठधर्मी के कारण पूर्ण न हो सका। पहले जब शाहजहा अपने लिए मकबरा बना रहा था, उसने कभी यह न सोचा था कि उसकी कब्र भी उसकी पत्नी के निकट होगी परन्तु उसकी मृत्यु होने पर खास ताजमहल में, मुमताज के मकबरे के पार्श्व में, ही उसकी भी समाधि बनाई गई। टवनियर के वृत्तान्त से उपर्युक्त विचारों की पुष्टि होती है।

भारतीय स्थापत्यकला के इतिहास में ताज का एक विशिष्ट स्थान है। मकबरे के स्वच्छ और निर्मल सगमरमर, एव स्थान की पवित्रता मानव को शांति का सदेश देती है। बागीचो की हरियाली से और नीले आकाश के प्रच्छदपट के रूप में स्थित रहने से इसकी शोभा अपनी सुदरतम स्थिति को प्राप्त कर लेती है। पूरे मकबरे में एक विशिष्ट प्रकार के कोमल सौन्दर्य का आभास मिलता है। हवेल के मतानुसार भारतीय शिल्पकारो ने अपने स्वामी के दाम्पत्य प्रेम को प्रकट करने के लिए अपनी सारी शक्ति एव कला कौशल का प्रयोग किया है। ऐसा कहने में अत्युक्ति नही होगी कि मकबरे की कारीगरी और सुदरता में स्थान स्थान पर काव्योचित मार्दव बिखरा पडता है। इसी कारण किसी ने ताज को "पत्थरो में एक सजीव कविता" कहकर पुकारा है। हैवल का कथन है कि भारतीय शिल्पकार अपने सम्राट की प्रिया मुमताजमहल के नैसर्गिक सौन्दर्य को पत्थरो में प्रकट करना चाहते थे और इसमें वे काफी अश तक सफल हुए है। गुम्बदो के उभार एव उनकी लचकती हुई बाह्य रेखाओ की तुलना स्थापत्य कला के विशेषज्ञो ने स्त्री सौदर्य से की है।

ताज प्रातःकाल के समय एक स्वप्न की आभा से परिपूरित जान पडता है। एक धूमिल सध्या में ताज दिनकर की स्वर्ण रश्मियो से अलकृत हो स्वर्णमयी आभा से व्याप्त हो उठता है और उस शाही दाम्पत्य की गौरव गाथा का गान करता प्रतीत होता है। यमुना नदी के तट पर बसा यह मकबरा
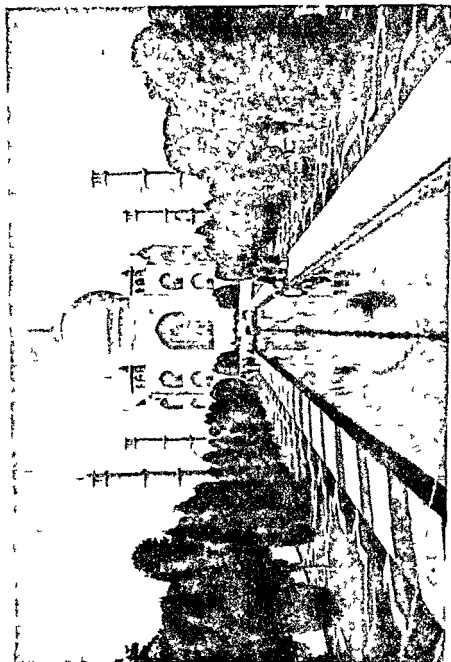
उसकी लहरा से खेलता हुआ वास्तव म दो प्रेमिया के सच्चे अनुराग का सवश्रेष्ठ प्रतीक है। इसलिए इसका स्थान ससार की सात अद्भुत चीजा में है।

शाहजहा की मत्यु के पश्चात् स्थापत्य कला की अवनति प्रारम्भ हो गई। कट्टर धर्मानुयायी औरगजेब ने उसे कोई प्रोत्साहन नही दिया। पर्सी ब्राउन का कथन ह कि मुगल स्थापत्य कला सम्राटो के प्रोत्साहन पर आश्रित थी। अत जब सम्राटा की रुचि इस ओर से हटी ता स्थापत्य कला का स्वाभाविक पतन आरम्भ हो गया। परन्तु हैवेल के मतानुसार औरगजेब ने हिन्दू शिल्पकारो का राज्य के आश्रय से वचित कर दिया, क्योकि वह हिन्दुआ से घृणा करता था। हिन्दू शिल्पकारा न राजपूताना और अन्य स्थान के हिन्दू राजाआ के यहा जाकर आश्रय लिया जहा पर बनी इमारतें अभी भी उच्च काटि की स्थापत्य कला के उदाहरण ह। इस कला के पतन का एक और कारण यह था कि उस समय के राज्य की आर्थिक अवस्था भी स्वस्थ नही थी। इसी कारण इमारता के बनवाने मे राज्य का रुपया व्यय नही किया जा सकता था। इस समय की इमारता म दिल्ली की सगमरमर की मसजिद, काशी में विश्वनाथ मदिर के ध्वस पर बनी हुई मसजिद और लाहौर की बादशाही मसजिद विशेष रूप से उल्लेखनीय ह। स्थापत्य-कला के ममज्ञा का यह कथन ह कि औरगजेब के समय से ही इमारतें निम्नकोटि की बनने लगी थी। औरगजेब ने अपने राज्यकाल के अन्तिम वर्षो में अपनी राजधानी औरगाबाद मे बनाई। उसकी बनवाई हुई इमारतो में से एक किले का भग्नावशेष और दूसरी इमारत उसकी पत्नी रबिया दुर्रानी का मकबरा है। यह मकबरा १६७८ ई० म बनकर पूर्ण हुआ। यह ताजमहल के नक्शे के अनुरूप बनाया गया ह। पर्सी ब्राउन का कथन है कि यदि ताज की तुलना उसी के समान बने हुए रबिया दुर्रानी के मकबरे सी की जाय तो मुगल स्थापत्य कला के पतन का पता चल जाता ह। न तो इसमें कला की भव्यता और उच्चता का ही पता चलता ह न यह मकबरा अधिक सुन्दर ही ह।

१७०७ ई० में औरगजेब की मत्यु के पश्चात् मुगल राज्य अध पतन की ओर शीघ्रता से अग्रसर होने लगा और जा थोडी बहुत इमारतें फिर बनी भी वे देश की गिरती दशा की द्योतक ह। उनमे उच्च कोटि की कारीगरी

का सर्वथा अभाव है। स्थापत्य कला की दृष्टि से भी इमारतें साधारण और सौंदर्यहीन है। १७५३ ई० में बना हुआ सफदर जंग का मकबरा फिर भी इन सब इमारतों में कुछ अच्छा है परन्तु कोई विशेषता न होने के कारण निर्जीव और भावरहित प्रतीत होता है।

मुगल सत्ता के नष्टप्राय होने पर आर्थिक ह्रास, शासकों की दुर्बलता तथा कलाविदों के अभाव के कारण मुगल स्थापत्य का अस्तित्व ही न रहा। साम्राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने पर प्रान्तों में स्वाधीन राज्य बन गये। वहां कला का नये रूप से विकास हुआ और अनेक भव्य इमारतें बनीं। हिन्दू कला जीवित रही। हिन्दू नरेशों ने राजप्रासादों तथा मन्दिरों का निर्माण किया जिनमें से बहुत से अब भी मौजूद हैं।

चित्र-कला—मुसलमानों के पूर्व हिन्दू-काल में चित्रकला बड़े ऊँचे स्तर पर पहुँच गई थी। परन्तु मुगलों के पूर्व के मुसलमान शासकों ने इसे कोई प्रोत्साहन नहीं दिया। १४वीं शताब्दी में सुलतान फीरोज तुगलक ने तो अपने राजमहल में चित्रकला पर प्रतिबंध लगा दिया था। उसके महल में किसी प्रकार का भी चित्र अंकित नहीं किया जा सकता था। कारण यह था कि मुसलमानों में किसी जीवित मनुष्य, पशु अथवा पक्षी का चित्र बनाना वर्जित है। उनकी धारणा है कि कयामत के दिन जो कठोर दंड के भागी होंगे उनमें चित्रकारों का स्थान प्रमुख रहेगा। उन्हें नरक भोगना पड़ेगा और अपने द्वारा बनाई गई चित्र मूर्ति में जान डालने को कहा जायगा जिसे कि वह नहीं कर सकेंगे क्योंकि जीवन केवल ईश्वराधीन है। कुछ मुस्लिम शासकों ने धर्म की परवाह न कर चित्रकला को प्रोत्साहन दिया और फिर इसी प्रकार दूसरे शासकों ने भी धीरे-धीरे इस कला को अपने राज्यों में आश्रय दिया।

बाबर कला-प्रेमी था। उसे प्राकृतिक दृश्यों को देखकर आन्तरिक आनन्द होता था। इसी कारण चित्रकार द्वारा चित्रित दृश्य भी उसको बहुत भाते थे। फारसी चित्रकला के सबसे महान् चित्रकार बिहजाद का उल्लेख उसने अपनी जीवनी में किया है जिससे पता चलता है कि चित्रकारों और उनकी कृतियों में उसकी रुचि थी और उनकी विशेषताओं को वह समझने की क्षमता रखता था।

हुमायूँ को भी इस कला में उसके पिता की भाँति रुचि थी और मुगल चित्रकला का विकास प्रधानतः हुमायूँ के राज्यकाल से प्रारम्भ होता है। मुगल चित्रों की मुख्य विशेषताएँ हैं—उनकी रेखाओं की भव्यता और लचीलापन, रंगों का बाहुल्य और अधिकाधिक प्रयोग, और उनमें यथार्थवादिता का स्पष्ट चित्रण। परन्तु मुगल चित्रकला की प्रधान विशेषता है व्यक्तित्व का प्रदर्शन। फारसी चित्रकला को भारतीय चित्रकारों ने अपनाने की चेष्टा की और वे सफल हुए। इसके पूर्व भारतीय चित्रकारों ने अजन्ता की गुफाओं को विभिन्न सुन्दर चित्रों द्वारा अलंकृत कर उस समय की कला को अमर किया था। हिन्दू और बौद्ध चित्रकला में धार्मिकता का समावेश अत्यधिक है। परन्तु ठीक इसके विपरीत मुगल चित्रकला जिसे बाबर हुमायूँ तथा अकबर इत्यादि शासकों ने प्रोत्साहन और आश्रय दिया अपनी कृतियों में सांसारिकता का प्रदर्शन करती है। इस कला की प्रत्येक कृति में व्यक्तिगत भावनायें प्रधान हैं। मुगल कला में जनसमूहों के चित्रण का सर्वथा अभाव है परन्तु व्यक्तिगत कार्यों और विशेष व्यक्तियों के चित्रों को विशेष स्थान प्राप्त है।

हुमायूँ अपने साथ फारस से मीर सयदअली तबरेजी तथा ख्वाजा अब्दुस्समद नामक दो चित्रकारों को भारत में लाया था। उसने मीर सयदअली को **दास्तान-ए-अमीर हमजा** के आधार पर चित्र बनाने को कहा। इन चित्रों में फारसी कला पूर्ण रूप से स्पष्ट है। हुमायूँ के पश्चात अकबर ने इस कला को अपने संरक्षण में लिया। उसे स्वयं चित्रकला से प्रेम था। उसे अपने पिता हुमायूँ के साथ चित्रकला की शिक्षा फारसी चित्रकार अब्दुस्समद से मिली थी। अकबर के राज्य का प्रसिद्ध इतिहासकार अबुलफजल लिखता है कि "शाहशाह की रुचि चित्रकला की ओर अधिक है और उसको वह अध्ययन और दिलचस्पी का एक उत्तम साधन समझता है।" स्वयं अकबर के शब्दों में चित्रकला से ज्ञान की वृद्धि होती है और वह ईश्वर को जानने का भी एक साधन है। अबुलफजल के कथनानुसार प्रति सप्ताह श्रेष्ठ चित्रकारों की कृतियाँ बादशाह के सम्मुख उपस्थित की जाती थीं और उन्हें देखकर वह उनकी योग्यतानुसार उन्हें पारिश्रमिक और पारितोषिक देता था। उसकी धार्मिक सहिष्णुता के परिणामस्वरूप भारतीय चित्रकारों को अपनी कला का व्यक्त

करने का पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ। हिन्दू चित्रकारों की कृतियों के विषय में अबुल्फजल लिखता है कि वे अतुलनीय हैं। कुछ समय के पश्चात हिन्दू और फारसी शैलियों के सम्मिश्रण से एक नवीन भारतीय कला का उद्भव हुआ। अकबर के समय में लगभग १०० चित्रकार अत्यंत उच्च कोटि के थे तथा अन्य छोटे चित्रकार तो असंख्य थे। फारसी चित्रकारों में मीर सैयदअली, अब्दुस्समद, फारुखबेग और अका रिजा प्रमुख थे। फारुखबेग ने अकबर का आश्रय १५८५ ई० में लिया था। मध्य एशिया का निवासी होने के कारण इसके बनाये चित्रों में मंगोल और चीनी चित्रकला का प्रभाव स्पष्ट है। अकबर के आश्रय में आने के पूर्व वह उसके भाई मिरजा हकीम के दरबार में था। अब्दुस्समद अकबर के चित्रकारों में बहुत ही योग्य था। उसके चित्रों की कोमलता और सुंदरता अवर्णनीय है। इसी कारण उसको **शीरीं कलम** की उपाधि दी गई थी। अकबर के हिन्दू चित्रकारों में बसावन, दसवन्त, सांवलदास, ताराचन्द, केशव लाल, मुकुन्द और जगन्नाथ के नाम उल्लेखनीय हैं। बसावन पृष्ठभूमि के चित्रण तथा भावव्यंजना में अत्यन्त कुशल था परन्तु दसवन्त चित्रकारों में सबसे अधिक प्रसिद्ध था। फारसी चित्रकला का ज्ञान दसवन्त को अब्दुस्समद के द्वारा प्राप्त हुआ था। दसवन्त जाति से कहार था और उसे बचपन से ही चित्रकला से अनुराग था। वह दीवारों पर भी चित्र बनाया करता था। उसकी प्रतिभा को देखकर अकबर ने उसे प्रसिद्ध चित्रकार अब्दुस्समद को सौंप दिया था। उसके द्वारा बनाये गये चित्र कलात्मक दृष्टि से बहुत उच्च कोटि के होते थे परन्तु जब उसकी कला पराकाष्ठा को पहुँची तो पागल हो जाने के कारण उसने १५८४ ई० में आत्महत्या कर ली। अकबर ने एक चित्रशाला मखतूब खाँ की अध्यक्षता में खुलवाई जिसमें विभिन्न देशों की शैलियों की कृतियों का उत्तम संग्रह था जिसे देखकर उसके चित्रकार श्रेष्ठ चित्रों के बनाने का प्रयत्न करते थे। इसमें बिहजाद, सुलतान मुहम्मद, आगा मिराक और मुजफ्फर अली जैसे प्रसिद्ध चित्रकारों की कृतियाँ संग्रहीत थीं। अकबर के इस समुचित प्रोत्साहन के कारण थोड़े ही समय में कुशल चित्रकारों की संख्या अधिक हो गई और कला का स्तर भी उच्च कोटि का हो गया। अबुलफजल लिखता है कि 'रेखाओं की भव्यता और

कला-कौशल के कारण चित्रो में सजीवता प्रतीत होने लगी" कई चित्रकार एक साथ मिलकर एक चित्र बनाते थे। सबसे प्रथम **दरवनामा** और **बाबर-नामा** के आख्यानो को चित्रो में अकित किया गया। इसके पश्चात रज्मनामा, तैमरनामा, बहारिस्तान, खमसा, अकबरनामा रामायण और कालियादमन नामक आख्याना की प्रतियो को सुन्दर लिपि मे लिखकर उसकी प्रधान घटनाओ को चित्रो से अलकृत किया है।

जहागीर सौन्दर्योपासक और चित्रकला का प्रेमी था। उसके इन वैयक्तिक गुणा तथा देश में व्याप्त सुख शाति ने चित्रकला को बडा प्रात्साहन दिया। बादशाह स्वय इस कला का इतना अनुभवी और ममज्ञ था कि चित्र को देखते ही चित्र के बनानेवाले चित्रकार का नाम बता सकता था और यदि किसी चित्र पर एक से अधिक चित्रकारा ने काम किया हुआ होता था तो वह यह बताने मे समथ था कि भौंह किसने बनाई ह और चित्र का नक्शा किसने बनाया ह। इस अनुभवी कलाप्रमी के सरक्षण में भारतीय चित्रकला अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गई और इस समय के चित्रकारो के द्वारा बनाये गये चित्र अपने कलात्मक सौदय के लिए प्रसिद्ध ह। जहागीर का कथन ह कि उसके कलाकारो की कृतिया बिहजाद के चित्रा के समान सवश्रेष्ठ ह। विदेशी राजदूत सर टाममरो ने जहागीर को एक प्रसिद्ध विदेशी चित्रकार की कृति भेंट की जिसकी नकल भारतीय चित्रकारा ने इस सफलता के साथ की कि टामसरो के लिए अपने ही चित्र को उनमें से पहचानना कठिन हो गया।

जहाँगीर के साथ सदव दो-तीन चित्रकार रहा करते थे जो उसकी दिन चर्या की प्रमुख घटनाओ का चित्रण करते थे। श्री एन० सी० मेहता का कथन ह कि य चित्रकार वास्तव में इतिहासकार थे जिनके चित्रो के द्वारा हमें उस समय के शाही दैनिक जीवन की सम्पूण झाकी मिलती है। उनके मतानुसार जहागीर के समय की चित्रकला पर फारसी शली का काई विशेष प्रभाव नही था जैसा कि अकबर और हुमायूँ के समय में था। इस समय भारतीय कला ने फारसी कला के मुख्य सिद्धान्ता को अपनाकर उस पर विजय पा ली थी। अत प्राय सभी चित्रकारा ने फारसी कला को छोडकर भारतीय शैली का ही अनुसरण किया।

इस समय के प्रसिद्ध चित्रकारों में अबुल हसन, मसूर, उस्ताद मुराद, मुहम्मद नादिर, विशनदास, मनोहर और गोवधन के नाम उल्लेखनीय ह। अबुल हसन और विशनदास इस समय के महान् चित्रकार थे और उनकी कृतियाँ सुन्दरता और कला की दृष्टि से बहुत उच्च कोटि की ह। जहाँगीर ने अपनी जीवनी में अबुल्हसन की अत्यधिक प्रशंसा की है। इस चित्रकार को नादिर-उज-जमा की उपाधि दी गई थी। उसी प्रकार उस्ताद मसूर नामक एक श्रेष्ठ चित्रकार को नादिर उल-असर की उपाधि से विभूषित किया गया था। मसूर, मुराद और मनोहर द्वारा बनाये गये पशुचित्र भारती चित्र कला के इतिहास में एक विशेष स्थान रखते ह। जहाँगीर ने मसूर की भी प्रशंसा अपनी जीवनी में की है और यह कहा ह कि यदि चित्रकारों में अबुल हसन प्रथम है तो मसूर को द्वितीय स्थान प्राप्त ह। मसूर नक्काश के द्वारा फूल-पत्तियों के चित्रों की प्रशंसा जहागीर ने तुजक जहागीरी में की ह यथार्थ में मुगल चित्रकला के वे बहुमूल्य उदाहरण ह। उसके द्वारा बनाये गये फूलो के चित्रों की सख्या सौ से भी अधिक ह। विशनदास व्यक्तिगत चित्रों के बनाने में दक्ष था। इस चित्रकार को जहांगीर ने १६१७ में राजदूत खान आलमबरखुरदार के साथ ईरान भेजा था। वहाँ उसने सम्राट् अब्बास सफवी तथा उसके प्रमुख पदाधिकारियों के चित्र सफलतापूर्वक बनाये। पशुओं पक्षियों और फूल-पौधों के चित्रण में मुगल चित्रकारों ने कला कौशल का प्रदर्शन किया ह। पशुओं में हाथियो, घोडों के चित्र बहुतायत में मिलेंगे। पक्षियों में मोर तथा बाज के चित्र अधिक बनाये जाते थे। मसूर चित्रकार पक्षियों तथा फूल पत्तियों के चित्रण में विशेष योग्यता रखता था। मुगल चित्रकारों द्वारा बनाये गये चित्रों में दरबार और शिकारविषयक दृश्य अधिक चित्रित हैं। व्यक्तियों के समूह चित्रण और स्त्री-सबधी चित्रों का सर्वथा अभाव नही है। मुगल चित्रकारों द्वारा बनाये गये धार्मिक चित्र असख्य ह। उच्च कोटि के चित्रकारों ने साधु तथा फकीरों के शान्त स्थानों की छवि का प्रदर्शन अपने चित्रों मे किया ह। कई चित्रों में स्वयं सम्राट् अथवा राजकुमार ऋषियों तथा मुनियों के स्थान पर जाकर उनसे धार्मिक तथा नैतिक शिक्षाएँ ग्रहण करते दिखाई पडते ह। परन्तु इस काल की चित्रकला

मुगल चित्र कला

का मुख्य विषय प्रकृति सौन्दय था। जहाँगीर के समय में चित्रकला अपनी चरम सीमा को पहुँच गई थी। इस काल क चित्रकार फारसी शली के बधन से उन्मुक्त हो चुके थ। परन्तु जहाँगीर के पश्चात मुगल चित्रकला की अवनति प्रारम्भ हो गई।

शाहजहाँ को जितनी रुचि स्थापत्य कला मे थी उतनी चित्रकला से नही। उसके समय में चित्रकारो को राजदरबार द्वारा अधिक प्रोत्साहन न मिल सका। अत उन्होने अब सामन्तो तथा उच्च पदाधिकारियो का आश्रय लिया। आसफ खाँ एसे ही सामन्तो मे से था। लाहौर में उसका एक भवन उत्कृष्ट चित्रो से अलकृत था। एसे सुदर ढग से चित्रित भवन देश में बहुत कम थे। इसी प्रकार दारा भी चित्रकला प्रमी था उसे उच्च कोटि के कलाकारो की कृतियो के सग्रह करने का बडा शौक था। चित्रकला के विशषज्ञ बिनयोन (Binyon) महोदय का कथन ह कि शाहजहाँ के राज्यकाल में भी मुगल चित्रकला ने अपनी श्रेष्ठता को बनाये रखने की चेष्टा की और इस समय के चित्रो में बहुमूल्य रगो का प्रयोग किया गया जिसके कारण वे कला की दृष्टि से श्रेष्ठ न,होने पर भी सुदर और हृदयग्राही प्रतीत होते ह। शाहजहा के समय के मुख्य चित्रकार मीर हाशिम अनूपचित्र और चित्रमणि थे। शाहजहा के बाद औरगजेब की कटटरता के कारण चित्रकला का राज्य की ओर से कुछ भी प्रोत्साहन न दिया गया और चित्रो का कला की दष्टि से स्तर बहुत गिर गया। औरगजेब ने चित्रणकला पर कोई प्रतिबध नही लगाया, परन्तु फिर भी वह चित्रकारो को घणित दृष्टि से देखता था और समुचित प्रोत्साहन के अभाव के कारण मुगल चित्रकला दिन पर दिन गिरती गई। दिल्ली साम्राज्य के पतन के बाद लखनऊ हैदराबाद तथा राजपूताना कला के केद्र बन गये और स्थानीय शासको ने इस कला को प्रोत्साहन दिया। इन शासको के आश्रय में नई नई शलियो की उत्पत्ति हुई। राजपूताने में एक नवीन कला का उदय हुआ जो राजपूत शली के नाम से विख्यात ह।

मुगलो की समकालीन राजपूत कला का वणन करना भी आवश्यक है। राजपूत कलाविद अपने देश की परम्परा से अनभिज्ञ नही थे। एलीफन्टा, एलौरा के भास्कर शिल्प और अजता तथा सीगिरी की चित्रकला का उन्ह ज्ञान था।

इन्हीं को देखकर उसके हृदय में स्फूर्ति का सचार होता था। जिस प्रकार हिन्दी साहित्य संस्कृत साहित्य से प्रभावित हुआ उसी तरह राजपूत कला पर प्राचीन भारतीय कला की छाप थी जिसका अजंता के चित्रों में प्रदर्शन है। राजपूत कला का पुस्तकों से अथवा लेखन शैली से कोई सम्बन्ध न था। संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थ चित्रों से अलंकृत नहीं किये जाते थे। यह मुगल तथा राजपूत कला की भिन्नता है। राजपूत कला वैष्णव धर्म से अधिक प्रभावित हुई। बंगाल की **'यात्रा'** और उत्तरी भारत के **'रास'** से उसका गहरा सम्बन्ध है। श्री आनन्दकुमार स्वामी का कथन है कि राजपूत कला मुगल कला से भिन्न थी। मुगल कला पर राजदरबार का प्रभाव है, राजपूत कला पर धर्म का। मुगल कलाकार शाही दरबार के गण्यमाण्य व्यक्तियों के चित्र खींचते थे, राजपूत पौराणिक दृश्यों को अंकित करते थे। इस प्रकार रामलीला तथा रासलीला के अनेक दृश्यों का चित्रों में अंकन है। मुगल कला की शान अधिक है। उसके विषय सांसारिक हैं। राजपूत कला इसके विपरीत है। मुगलों को ग्वालों और गोपियों के चित्र बनाने में कोई आनन्द नहीं आ सकता था। राजपूत चित्रकारों ने इसी को परमानन्द का उद्‌गम माना है। यही कारण है मुगल साम्राज्य के क्षीण होने पर मुगल चित्र-कला का भी ह्रास हो गया। शाही दर्बार और अमीरों के आश्रय बिना वह जीवित न रह सकी। राजपूत कला बराबर चलती रही और आज भी विद्यमान है। उसका भारतीय परम्परा से सम्बन्ध है। इसी लिए वह जीवित है। राजपूत कला एक ऐसे संसार का निर्माण करती है जिसमें सब मनुष्य वीर हैं, सब स्त्रियाँ सुन्दर तथा भीरु हैं, जानवर जंगली तथा पालतू मानव के प्रति प्रेम का व्यवहार करते हैं और वृक्ष और फूल दुलहा के आने की प्रतीक्षा करते हैं। यह जादू की दुनिया कृत्रिम अथवा केवल खयाली नहीं है परन्तु कल्पना तथा अनन्तता की दुनिया है। इसका दर्शन केवल प्रेम की दृष्टि से ही हो सकता है।

राजपूत चित्रकारों ने रामायण, महाभारत की घटनाओं को अंकित किया है जैसे भीष्म पितामह का तीरों की शय्या पर लेटना, दुःशासन का द्रौपदी का चीर खींचना, शकुनि का जुआ खेलना, द्रौपदी का स्वयम्बर में जीतना इत्यादि। इसी प्रकार कृष्ण लीला के भी दृश्यों का चित्रांकन है। रामायण

के दृश्यो का वर्णन करनेवाले भी अनेक चित्र पाये जाते हैं। इसी तरह दुर्गा, शिव, गनेश, लक्ष्मी आदि देवी-देवताओ की महत्ता को भी राजपूत चित्र-कारा ने अपनी कृतियो में प्रदर्शन किया है। मुगल कला नष्ट हो गई परन्तु धार्मिक परम्परा पर आधारित होने के कारण राजपूत कला अभी तक जीवित है। ये चित्र अभी तक साधारण दूकानो में भी पाये जाते है और प्रत्येक हिन्दू के घर में दिखाई देते है। सहस्रो स्त्री-पुरुष इन्हे आदर की दृष्टि से देखते है। राधाकृष्ण, रामसीता के चित्र सर्वप्रिय है। गोपालकृष्ण की बाललीला को देखकर करोडो स्त्री पुरुष आज भी आनन्द प्राप्त करते है। प्रेम, त्याग, तप, दान अहिंसा, सत्य, धर्म का इस कला से उतना ही सम्बन्ध है जितना सौन्दर्य, कल्पना, भावुकता, सहृदयता का।

शिक्षा और साहित्य—मुगलकालीन भारत में राज्य की ओर से शिक्षा की कोई व्यवस्थित प्रणाली न थी। शिक्षा का भार विशेषतया जनता के ऊपर ही था। हिन्दू अपनी पाठशालाओ तथा मुसलमान अपने मकतबो मे पढते थे। फिर भी मुगल सम्राट् शिक्षा प्रसार के कार्य को अपना प्रमुख कर्तव्य समझते थे। अकबर स्वय पढा-लिखा न होने पर भी व्यावहारिक शिक्षा में पारगत था। उसने शिक्षा की उन्नति के लिए विशेष सराहनीय प्रयत्न किये। यही कारण है कि इन विद्या-प्रेमी सम्राटो के प्रयत्नो के फलस्वरूप मुगल साम्राज्य का आधार ही सस्कृति पर निर्भर था। एकमात्र औरगजेब के शासन-काल में ही शिक्षा को धार्मिक आवरण में लपेटकर साम्प्रदायिक रूप देने की चेष्टा की गई।

मुगलकालीन शिक्षा-पद्धति पर विचार करते समय हम कुछ विशेष प्रवृत्तियो की विद्यमानता पाते है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि उस समय शिक्षा शासन का दायित्व न होकर जनता का कर्तव्य समझा जाता था। साथ ही यह शिक्षा धर्म से प्रभावित थी। उस समय भी यद्यपि राज्य की ओर से शिक्षा पर निश्चित धनराशि व्यय की जाती थी, परन्तु वह यथेष्ट न थी। हिन्दू और मुसलमान दानो वर्ग ही अपनी भिन्न भिन्न शिक्षा प्रणालियो से शिक्षा प्रदान करते थे। पाठशालाओ मे ब्राह्मण-पण्डित अपने शिष्यो को साहित्य, व्याकरण ज्योतिष शास्त्र, दर्शन शास्त्र और चिकित्साशास्त्र आदि की शिक्षा देते थे। मकतबो और मदरसो का प्रबन्ध धार्मिक मुल्लाओ के हाथ में था। वहा की शिक्षा विशेषतया

इस्लाम धर्म से संबंधित थी। शिक्षारम्भ का उत्सव 'बिसमिल्ला' कहलाता था। आरम्भ में तो उस्ताद और शागिर्द के आदर्श को प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की जाती थी, परन्तु बाद में लालच और धर्मांधता ने शिक्षा को संकुचित तथा साम्प्रदायिक व्यवसाय बना दिया। कुरान एवं अन्य धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा।

उस समय शिक्षा प्रसार के अन्य सहायक तत्त्व दण्ड, पुरस्कार, छात्रवृत्ति और धन थे। परीक्षाएँ शिक्षा का अन्तिम ध्येय न थी। वास्तव में शिक्षा प्रणाली नितान्त सरल एवं सफल थी। मौखिक पाठ और पुनरावर्तन शिक्षा के आवश्यक अंग थे। विद्यार्थियों को दण्ड भी उचित मात्रा में प्रदान किया जाता था। उस समय ऐसी धारणा हो गई थी कि दण्ड का प्रयोग न करने से छात्र की प्रगति में बाधा उत्पन्न होने की आशंका हो सकती है। अकबर का विद्या प्रेम मुगलकालीन शिक्षा के प्रसार में सबसे अधिक सहायक सिद्ध हुआ। उसका दरबार विद्वानों का आश्रय था। उसकी उदारता एवं धार्मिक सहिष्णुता के फलस्वरूप ज्ञान-वृद्धि का कार्य बड़े वेग से फला। अकबर के दरबार में रहनेवाले मुसल्मान और हिन्दू सभी विद्वानों ने उत्तम ग्रन्थों की रचना की। अकबर का शाही पुस्तकालय उस समय का दर्शनीय स्थान था, जिसमें अन्यान्य विषयों पर सहस्रों ग्रन्थ सुरक्षित थे। अकबर निर्धन विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता भी प्रदान किया करता था। यह प्रवृत्ति लगभग सभी सम्राटों में न्यूनाधिक रूप में विद्यमान थी। स्वयं औरंगजेब भी अपने सजातीय निर्धन छात्रों को दैनिक वृत्ति देता था। राज्य की ओर से भी विद्यालयों की व्यवस्था थी। शाहजहाँ ने दिल्ली में शाही विद्यालय की स्थापना की थी जो उस समय बहुत प्रसिद्ध था। इस भाँति मुगल सम्राटों के विद्या-प्रेम को हम किसी दशा में कम महत्त्वपूर्ण नहीं कह सकते।

फारसी साहित्य—साहित्य के क्षेत्र में मुगल-काल एक नवीनयुग का परिचायक है। मुगलों की उदार-नीति ने वे सभी साधन प्रस्तुत किये थे जिनमें कला और साहित्य की उन्नति होती है। बाबर स्वयं एक उच्च कोटि का विद्वान् था और फारसी तथा तुर्की भाषाओं का पूर्ण पण्डित था। वह कवि होने के साथ ही दूसरों की रचना का काव्य-समीक्षा के आधार पर यथेष्ट आदर करता था। उसकी सबसे अधिक ख्यातिपूर्ण कृति उसके

सस्मरण ह, जो उसने तुर्की भाषा में लिखे ह। अपने जीवन का पूर्ण तथा यथातथ्य वर्णन के साथ ही उसकी यह कृति आत्मश्लाघा अथवा दम्भ के दोष से पूणतया बची है। यही कारण ह कि समस्त एशिया के साहित्य मे बाबरनामा का विशेष महत्त्वपूण स्थान है तथा ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत उपयोगी है। विद्वानो की गोष्ठी में विवेचन करते समय उसे बडी मानसिक तुष्टि मिलती थी। उसका पुत्र हुमायूँ अपनी राजनतिक योजनाओ में विफल होने पर भी असाधारण विद्वान् था और उसके दरबार म कवि, दाशनिक और महात्मा पुरुष समुचित आदर पाते थे। भूगोल और खगोल शास्त्र मे उसकी विशेष रुचि थी। ज्योतिष का भी वह अच्छा ज्ञाता था। पुस्तकों का इतना प्रेमी था कि युद्ध-यात्रा के समय भी वह अपने साथ पुस्तकालय रखता था। **तजकिरात-उल वाकआत** का लेखक जौहर भी हुमायूँ का एक नौकर था।

अकबर का शासन-काल भारतीय मुसलमान कला और साहित्य का स्वण-युग माना जाता है। हिन्दू और मुसलमानो की विचक्षण बुद्धि ने साहित्य भण्डार को पूण समृद्ध कर दिया, जिस पर किसी भी देश को अभिमान हो सकता ह। फारसी और हिन्दी साहित्य को राज्य का समान सरक्षण प्राप्त था। अकबर के शासन-काल में फारसी साहित्य का अध्ययन दो अगो में विशेष रूप से हुआ—(१) इतिहास-ग्रन्थ तथा (२) अन्य साहित्यिक ग्रन्थ जिनके अन्तगत काव्य और गद्य-ग्रन्थ आते ह। उस समय के प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ, मुल्ला दाऊद रचित **तारीख ए-अल्फी,** अबुलफजल लिखित **आइन ए-अकबरी** तथा **अकबरनामा,** बदाऊनी की **मुन्तखब उत तवारीख,** निजामुद्दीन अहमद की **तबकात ए अकबरी**, फजी सरहिन्दी का **अकबरनामा** तथा अब्दुर्रहीम खान-खाना के सरक्षण में सकलित अब्दुलबकी रचित **मासिर-ए-रहीमी** आदि ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय ह। गुलबदन बेगम का **हुमायूँनामा** अब्बास खा सरवानी की **तारीख शेरशाही**, नियामतुल्ला की **मखजन अफगानी** इस काल के प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ ह। अबुल्फजल इस काल का सबसे प्रसिद्ध लेखक था। वह कवि, निबन्धकार, आलोचक, इतिहासकार और प्रसिद्ध साहित्यकार था। उसकी लेखन शक्ति बडी सजीव थी। विषय वस्तु की निर्दोषपूण योजना उसकी रचनाओ की एक अन्य विशेषता ह। सूफी विचारो का होने के साथ ही अबुल्फजल सत्य और ज्ञान की खाज

में सदव तत्पर रहता था। उसने अपनी रचनाओं में कहीं भी अश्लील भाव व्यक्त नहीं किये ह। श्री ब्लाकमैन (Blochmann) का स्पष्ट कथन ह कि अबुलफजल की रचनाओं में कहीं भी नारी भावना के उच्च आदश का थोडा सा भी गिराने की चेष्टा नही की गई और न कहीं अनैतिकता को ही प्रश्रय दिया गया है। अबुलफजल की विशेष ख्याति उसके दो ग्रन्था—आइन ए-अकबरी और अकबर नामा पर आधारित है, जो फारसी में लिखित होने के साथ ही अकबर के शासन काल का विश्वस्त विवरण प्रस्तुत करते ह। उसकी लेखनी बडी प्रभावोत्पादक थी। अब्दुल्ला खा उजबेग कहा करता था कि म अकबर की तलवार से उतना नहीं डरता जितना कि अबुल्फजल की कलम से।

सम्राट की आज्ञा से अनेक सस्कृत ग्रन्था का फारसी में अनुवाद किया गया। रामायण और महाभारत के अनुवाद का काय अब्दुल कादिर बदाऊनी (१५४०-९४) को सौंपा गया। इसी प्रकार अथववेद का अनुवाद हाजी इब्राहीम सरहिन्दी तथा गणित के ग्रन्थ लीलावती का अनुवाद फजी ने किया। फजी ने भागवत तथा कथा सरित्सागर का अनुवाद किया। ताजुद्दीन ने हितोपदेश का अनुवाद किया। शेख नूर मुहम्मद और मीर असकरी राजी ने मधुमाल्ती का काव्य में रुपान्तर किया।

विशुद्ध साहित्य के अन्तगत कई उच्च कोटि के कविया तथा गद्य-लेखका का उल्लेख किया जा सकता ह। कवियों में सवप्रथम गिजाली का नाम आता ह। वह फारस देश का रहनेवाला था। अपने सूफी विचारा के कारण उस अनेक यातनाएँ सहन करनी पडी और इसी से उसे अपना देश छाड भारतवष आना पडा। पहले वह दक्षिण की आर गया, लेकिन वहा उसे शाही-सरक्षण प्राप्त न हो सका। वहाँ से जौनपुर होकर वह शाही दरबार में उपस्थित हुआ। उसकी विद्वत्ता से प्रभावित होने के कारण उस राज-कवि का स्थान प्राप्त हुआ। उसके मुख्य ग्रन्थ मिरातुल केनात, नक्श-ए-बदीद तथा इसरार-ए मक्तूब ह।

गिजाली के बाद कविया म दूसरा स्थान फजी का था। वह अरबी साहित्य, काव्य-कला तथा चिकित्सा शास्त्र का पूण पण्डित था। वह निधना की मुफ्त चिकित्सा किया करता था। उसने कई ग्रन्था की रचना की, जिनमें मसनवी नल-ओ-दमन, मरकज ए-अदवर, मवारिदुल-कलाम और सवाती-उल-अल्हाम

विशेष उल्लेखनीय ह। फैजी की काव्य प्रतिभा असाधारण थी। उसकी शली स्वाभाविक, दोपरहित, सरल और सजीव ह। उसकी सभी रचनाओ म हम विशुद्ध भावनाओ की अभिव्यक्ति पाते ह।

इन असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न कवियो के अतिरिक्त गजलो का रचयिता मुहम्मद हुसन नाजिरी और कसीदो का लेखक सयद जमालुद्दीन उर्फी विशेष ख्यातिप्राप्त साहित्यकार थे।

अकबर विद्या प्रेमी था। उसने बहुत शिक्षा तो न पाई थी परन्तु उसे ज्ञान प्राप्त करने की उत्कट इच्छा थी। वह रात के समय किताबो को सुनता था और जहा पन्ना बन्द होता वही निशान लगा देता था। उसके महल म एक बडा पुस्तकालय था जिसम अनेक प्रकार की अमूल्य पुस्तकें एकत्रित की गई थी। हिन्दू विद्वानो का वह आदर करता था। वेदान्त मे उसकी रुचि थी। निजामुद्दीन हुसन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **रिसाला ए सत्तरिया** में हिन्दू रीति के अनुसार ध्यान की व्याख्या की ह। गणित तथा ज्योतिष के ग्रन्थो का भी अनुवाद किया गया। भास्कराचाय के ग्रन्थ सिद्धान्त शिरोमणि और लीलावती के गणित के ग्रन्थो का फारसी म अनुवाद हुआ। चिकित्सा शास्त्र का भी अध्ययन हुआ। बादशाह की इसमे बडी रुचि थी। अरबी, फारसी के ग्रन्थो का हिदुओ में प्रचार हुआ। आईन मे हिन्दू सजन और वद्यो का उल्लेख ह। बडल्यिन पुस्तकालय मे कई ग्रन्थ फारसी में एसे ह जिनका सस्कृत से अनुवाद किया गया ह।

जहागीर यद्यपि बुद्धि तथा चरित्र में अपने पिता के समकक्ष न था, तथापि वह पूण सुशिक्षित एव सुसस्कृत था। उसकी शिक्षा मौलाना मीर कलाँ मुहद्दिस तथा मिर्जा अब्दुर्रहीम जसे सुयोग्य विद्वानो के तत्त्वावधान म हुई थी। उसे फारसी का अच्छा ज्ञान था और वह तुर्की भी भली भाँति समझ लेता था। उसकी आत्मकथा स्पष्टवादिता, सरलता और शैली की सजीवता की दृष्टि स बाबरनामा के बाद ही स्थान पाती ह। वह विद्वानो का समुचित आदर करता था। उसके दरबार में मिर्जा गयासबग नकीब खाँ, मुतमाद खाँ नियामत उल्ला, अब्दुल्हक दहल्वी आदि विद्वान रहते थे। जहागीर के शासनकाल में बहुत स इतिहास-ग्रन्थो का भी निमाण हुआ जिनमें इकबालनामा-ए-जहागीरी, मासिर-ए-जहाँगीरी तथा जुब्द-उत्-तवारीख और तारीख फरिश्ता विशेष महत्त्वपूण ह।

शाहजहाँ के समय मे भी विद्या और विद्वाना को राज्य की ओर से प्रोत्साहन मिलता रहा। उसके शासन-काल में अब्दुल हमीद लाहौरी ने बादशाहनामा, अमीन कजवीनी ने एक अय बादशाहनामा, इनायतखा ने शाहजहाँनामा और मुहम्मद साल्ह ने अमल साल्ह नामक ग्रथा की रचना की, जो सभी शाहजहा के शासन-काल के इतिहास ग्रथ ह। अब्दुल हमीद तथा कजवीनी दोना ने ही अय कई प्रसिद्ध कवियो तथा धमशास्त्रियो का उल्लेख किया है। सम्राट् का पुत्र दारा स्वय एक उच्च कोटि का विद्वान एव सूफी दार्शनिक था। उसन उपनिपदो, श्रीमद्भगवद्गीता और योगवाशिष्ठ का फारसी में अनुवाद कराया। उसने कई महत्त्वपूण ग्रथा की रचना की, जिनमें मजमुआ-अल-बहरीन, सफीनत-उल-औलिया और सकीनत-अल औलिया प्रमुख ह।

औरगजेब धर्माध-सुन्नी होते हुए भी उच्च कोटि का विद्वान था। उसकी आज्ञा से ही फतवा ए-आलमगीरी की रचना हुई। वह कविता से घृणा करता था और साथ ही उसने अपने शासन काल का इतिहास लिखने का भी निषेध कर रखा था। खाफीखाँ ने मुन्तखब उल-लुबाब नाम से उसके शासन-काल का जो विस्तृत इतिहास प्रस्तुत किया ह वह वास्तव में गुप्त रीति से छिपकर लिखा गया था। इस समय के अय ऐतिहासिक ग्रथ आलमगीर नामा, मासिर ए-आलमगीरी सुजनराय खत्री का खुलासत उल-तवारीख और भीमसेन तथा ईश्वरदास की रचनाएँ ह। बादशाह के पत्रो का सग्रह रुक्कात ए-आलमगीरी ह, जो सरल और सुन्दर फारसी पर उसका आचायत्व प्रकट करता है।

मुगल वश की अनेक शाहजादियाँ भी उच्च कोटि की रचनाएँ करती थीं। बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम ने हुमायूँनामा की रचना की, जो आज भी हुमायू के शासन-काल का प्रामाणिक इतिहास है। सुल्ताना सलीमा, माहम अनगा, नूरजहा, मुमताजमहल तथा जहाँनारा बेगम साहित्य और कला में विशेष अभिरुचि प्रदर्शित करती थीं। औरगजेब की पुत्री जबुन्निसा एक प्रतिभाशालिनी कवयित्री थी। वह अरबी और फारसी में असाधारण गति रखती थी। इसन दीवान-ए मख्फी की रचना की जिससे उसकी विलक्षण प्रतिभा का सहज ही में परिचय मिलता है।

हिन्दी-साहित्य—मुगल शासका का साहित्य प्रेम एकमात्र फारसी साहित्य

का उन्नति तक ही परिमित नही था। उन्होने अपनी सास्कृतिक अभिरुचि का परिचय तत्कालीन देशी-साहित्य के सरक्षण की समुचित व्यवस्था के रूप म दिया। सस्कृत का अधिक उन्नति तो न हुई परन्तु विद्वानो न अपना काय जारी रक्खा। महेश ठाकुर न सस्कृत में अकबरनामा नामक ग्रथ लिखा जिसकी फोटो कापी दरभगानरेश के पुस्तकालय में ह। इसम अकबर बादशाह का इतिहास है। हिदी साहित्य का स्वण युग मुगल-काल के अतगत ही आता ह। हिदू और मुसलमान दोना ही वर्गों के विद्वानो न फारसी, सस्कृत तथा हिदी साहित्य का विशद अध्ययन करन के पश्चात् फारसी और हिदी भाषाओ के विपुल भण्डार को समान रूप से समृद्ध करने का प्रयत्न किया। इसके पूव कबीर जसे समाज-सुधारक कवि दोना ही वर्गों के पारस्परिक मनामालिन्य को दूर कर एकता के सूत्र म बाधने के सफल प्रयास कर चुके थे। इसके उपरान्त प्रेममार्गी सूफी कवियो न अपने विशुद्ध प्रम चित्रण के द्वारा हिदी साहित्य को अपनी विशिष्ट देन से उपकृत किया। प्राय सभी सूफी कवि मुसलमान थ इन्होने व्यावहारिक जीवन की एकता की ओर अधिक ध्यान दिया। सूफियो का प्रम लौकिक नही था, परोक्ष के प्रति था। व उस परमेश्वर की उपासना करते थे जो निर्गुण और निराकार तो ह, परन्तु साथ ही अनन्त प्रम का भण्डार भी ह। इन प्रमगाथाकारो में, जो इस काल से सबध रखते ह, सबसे प्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी हुए, जिनका पद्मावत काव्य हिदी का एक जगमगाता रत्न ह। इस काव्य में कवि ने ऐतिहासिक तथा काल्पनिक कथानको के सयोग से बडी ही रोचकता ला दी ह। पद्मावत की रचना निश्चय ही शेरशाह के शासन-काल मे हुई थी क्योकि जायसी ने उसका बडे आदर के साथ उल्लेख किया ह। मेवाड की महारानी पद्मिनी के ऐतिहासिक कथानक का आधार लेकर जायसी ने सूफियो के दाशनिक तत्त्वो का विवेचन बडी विशद भाषा में प्रस्तुत किया ह। इसम मानव हृदय के उन सामान्य भावो के चित्रण में बडी ही उदारता तथा सहानुभूति का परिचय दिया गया ह, जिनका देश और जाति की सकीणताओ से कुछ भी सबध नही। जायसी के उपरान्त उसमान, शेख नबी नूरमुहम्मद आदि अनेक प्रेमगाथाकार हुए, पर पद्मावत का सा विशद काव्य फिर नही लिखा गया।

अकबर का शासन-काल हिदी-साहित्य के लिए भी स्वण युग सिद्ध हुआ।

हिन्दी काव्य और सगीत से सम्राट् को प्रगाढ प्रेम था और उसकी उदारनीति के फलस्वरूप प्रतिभाशाली कवि और ख्यातिप्राप्त गायको का समुदाय राजदरबार को सुशोभित करने लगा। तत्कालीन सुसस्कृत हिन्दू विद्वानो के सम्पक में आने का प्रभाव यह हुआ कि उपेक्षित और हेय दृष्टि से देखे जानेवाले साहित्यिको को राजकीय सहायता प्राप्त होने लगी। अकबर की असाधारण विजयो तथा शासन सुधारो ने एक नवीन युग का आरम्भ किया और सोलहवी शताब्दी का अन्तिम भाग साहित्यिक गवषणा तथा काव्य कला के अधिक अनुकूल सिद्ध हुआ। ब्रज भाषा के अपूर्व माधुर्य तथा स्वर-योजना ने शाही-दरबार के सम्पन्न व्यक्तियो को अत्यधिक प्रभावित किया, जिसके फलस्वरूप ब्रजभाषा की बडी उन्नति हुई। शाही अमीरो ने ब्रजभाषा को अपनाया और अवधी की उपेक्षा की। यही कारण है कि मुगलकाल में अधिकाश कवि ब्रजभाषा ही में कविता करते थे। यही उनके सरक्षको को प्रिय थी। ब्रजभाषा मथुरा वृदावन के आस पास ८४ कोस तक के देश में बोली जाती थी। ब्रजभाषा अपने माधुर्य तथा सरसता के कारण कृष्ण के उपासको के लिए आराधना का एक उत्तम माध्यम बन गई। वह वृन्दावन के वैष्णवो की भाषा हो गई। हिन्दू कर्मचारियो ने फारसी का अध्ययन बडी तत्परता के साथ किया। अकबर के दरबारियो में टोडरमल, राजा भगवानदास और राजा मानसिंह हिन्दी में काव्य रचना करते थे और बीरबल की काव्य प्रतिभा से प्रभावित होकर सम्राट ने उसे कविराय की उपाधि से विभूषित किया। अकबर के दरबारी कवियो में अब्दुर्रहीम खानखाना का नाम विशेष उल्लेखनीय है। नीति के सुन्दर-सुन्दर दोहे इन्होने बडी मार्मिकता से कहे। जीवन के सुख वैभव का अच्छा अनुभव होने के कारण रहीम की तत्सबधी उक्तियो में तीव्र भाव व्यजना है। दोहो के अतिरिक्त इन्होने बरवै, सोरठा, सवैया, कवित्त आदि अनेक छदो तथा सस्कृत के वृत्तो में भी रचना की है। ये बडे ही उदारहृदय दानी थे और इनका अनुभव बडा ही विस्तृत, सूक्ष्म और व्यावहारिक था। इनके अतिरिक्त गग और नरहरि अकबर के दरबार के श्रेष्ठ हिन्दू कवि थ। गग की श्रृगार और वीर-रस की जो रचनाएँ सग्रहो में मिलती ह, उनसे इनके भाषा-अधिकार और वाग्वैदग्ध्य का पता चलता ह। "तुल्सी गग दोऊ भए सुकविन के सरदार" की पक्ति इन्ही को लक्ष्य करके

कही गई है। गग के विषय में कहा गया है--"और सब भडिया गग कवि जडिया" नरहरि बन्दीजन अक्बर के दरबार में सम्मानित हुए थे। ऐसा कहते ह कि बादशाह ने इनका एक छप्पय सुनकर अपने राज्य म गोवध बद कर दिया था। नीति पर इन्होने अधिक छन्द लिखे।

इस युग के काव्य का अधिकाश भाग धार्मिक कृतिया थी जिनके विषय कृष्ण और राम भक्ति स लिये गये थे। ये दोना मत लगभग एक ही समय उत्तरी भारत में प्रचलित थ। कृष्ण-भक्ति का प्रचार स्वामी वल्लभाचाय के प्रयत्नो के फलस्वरूप बडे वग से हुआ। उनके प्रमुख शिष्यो तथा उनके पुत्र श्री विट्ठलनाथ के भक्ता न हिन्दी-काव्य कानन को सुवासित पुष्पो से सुसज्जित किया, ये कवि अष्टछाप के नाम स सुविख्यात ह। अष्टछाप में सूरदास, कुभनदास, परमानन्द-दास कृष्णदास छीत स्वामी, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास सम्मिलित थ जिनमें पहले चार स्वय आचाय वल्लभ के शिष्य थे और पिछले चार उनके पुत्र के। वल्लभाचाय के शिष्यो म सवप्रधान, सूरसागर के रच यिता, हिन्दी के अमरकवि महात्मा सूरदास हुए, जिनकी सरस वाणी से देश के असख्य सूने हृदय हरे हो उठे और जनता में भक्ति प्रवाह फला। वे चक्षु-हीन भक्त थे। कहा जाता ह, कि सूरसागर में सवा लाख पदा का सग्रह है, पर अब तक जो प्रतिया मिली ह उनमें छ हजार से अधिक पद नही मिलते। यह सख्या भी थोडी नही ह। वे जब अपने विषय का वणन शुरू करते ह तो मानो अल्कारशास्त्र हाथ जोडकर उनके पीछे दौडता चलता है। उपमाओ की बाढ आ जाती ह, रूपका की वर्षा हाने लगती ह। सगीत के प्रवाह में कवि स्वय बह जाता है। काव्य म इस तन्मयता के साथ शास्त्रीय पद्धति का निर्वाह विरल ह। उनकी ख्याति के विषय में यह उक्ति प्रचलित ह –

> सूर सूर, तुल्सी शशी, उडुगन केशवदास।
> अब के कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकास॥

अष्टछाप के अन्य कवियो में रासपचाध्यायी, भ्रमरगीत आदि के रचयिता "सब कवि गढ़िया नददास जडिया" के ल्दय सुन्दर अनुप्रासमिश्रित मसृण भाषामय पदावली का प्रणयन करनेवाले सूरदास के ही समकालीन नन्ददास जी हुए जिन्हान भागवत की कथा लेकर काव्य रचना की। कुछ लोग इन्हें मानस-

कार गोस्वामी तुलसीदास का छोटा भाई मानते है, पर इसके लिए कोई दृढ प्रमाण नही है। चौरासी वैष्णवन की वार्ता के लेखक गोस्वामी विट्ठलनाथ, परमानंददास और कुंभनदास की कृतियां भी विशेष महत्त्व रखती है। जनश्रुति के अनुसार सम्राट अकबर ने कुम्भनदास को फतहपुर सीकरी आने के लिए आमंत्रित किया था, और वहां पहुँचकर इन महात्मा ने स्पष्ट शब्दों में अपनी उदासीनता व्यक्त की थी—

> संतन को कहा सीकरी में काम।
> आवत जात पनहियां टूटी, बिसरि गयो हरिनाम॥

विट्ठलनाथ जी के अन्य शिष्यों में हिंदी के प्रसिद्ध कवि रसखान का उल्लेख बहुत आवश्यक हो जाता है। उनके कवित्त और सवैया में प्रेम की पीर का अभिव्यंजन बडी सजीव तथा स्वाभाविक भाषा में किया गया है।

वैष्णव भक्ति की रामोपासिका शाखा का आविर्भाव महात्मा रामानंद ने १५वीं शताब्दी के लगभग उत्तर-भारत में किया था। उन्होंने भक्ति-आन्दोलन को एक नवीन स्वरूप देकर तथा उसे अत्यधिक लोकप्रिय और उदार बनाकर हिन्दू धर्म के उन्नायकों में सम्माननीय स्थान पर अधिकार पाया। कबीर, तुलसी पीपा आदि उनके शिष्य अथवा शिष्य परम्परा में थे। इनकी शिष्य परम्परा में गोस्वामी तुलसीदास जी सबसे अग्रगण्य हुए, जिनका जगत्प्रसिद्ध, रामचरितमानस हिंदी साहित्य का सर्वोत्कृष्ट रत्न तथा उत्तर भारत की धर्म प्राण जनता का सर्वस्व है। सर जार्ज ग्रियर्सन ने रामायण की लोक प्रियता का वर्णन करते हुए लिखा है—

'पण्डितजन वेदों और उपनिषदों की विवेचना कर सकते है और उनमें से कुछ उनका अध्ययन भी कर सकते है। कुछ अन्य लोग पुराणों में विश्वास करते है, लेकिन भारतवर्ष की अधिकांश जनता की जिनमें विद्वान और अपढ सभी है, एकमात्र आचारपुस्तक तुलसीकृत रामायण ही है।'

जहां तक गोस्वामी तुलसीदास की शिक्षाओं का विषय है, उन्होंने राम भक्ति पर अधिक बल दिया, परन्तु हिन्दू धर्म के सभी देवी-देवताओं पर उनकी समान श्रद्धा थी। उन्होंने स्वयं शिव और राम के मुख से अनेक स्थलों पर

ऐसे वचन कहलाये ह, जिनसे दोनो देवो का प्रिय सम्बध सूचित होता है। उनकी रामायण भारतीय दाशनिक प्रवत्तियो का सजीव चित्रण प्रस्तुत करती है। उहाने हिन्दूधम का सच्चा स्वरूप राम के चरित्र मे अन्तर्निहित कर दिया ह। वे सगुणरूप के भक्त होते हुए भी ज्ञान माग के अद्वतवाद पर आस्था रखते है। राम के आदशचरित्र की उदभावना करके उहाने नतिक-जीवन का महत्त्व स्पष्ट करन का सफल प्रयास किया। वे मानव जीवन मे सदाचार एव पवित्र भावनाओ का विकास परमावश्यक समझते थे। आचार और कत्तव्य के महान आदर्शो, जसे पितभक्ति, पति प्रम भ्रात भाव तथा मनुष्य मात्र के प्रति असीम दया आदि का समावेश इहोन बडी मार्मिकता स किया, जो ससार के साहित्य में बेजोड ह। तुलसीदास ने विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली, दोहावली, बरव रामायण आदि ग्रथो की रचना भी की, जिनसे उनके पाण्डित्य का परिचय सहज में ही मिल जाता है।

राम भक्त कवियो में महात्मा नाभादास का नाम भी उल्लेखनीय ह। वे तुलसीदास जी के ही समकालीन थे। उन्होने 'भक्तमाल' नामक ग्रथ की रचना की, जिसमे राम और कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख भक्तो और महात्माओ का उल्लेख मिलता ह। हम पहले ही स्पष्ट कर चुके ह कि राम और कृष्ण शाखा के कवियो की रचना का विषय धार्मिक था और वे राम अथवा कृष्ण की भक्ति से प्रेरित होकर काव्य रचना करते थे। उनके प्रभाव से बाहर भी ऐसे कवि थे, जिनकी रचनाएँ काव्य के शास्त्रीय पक्ष से अधिक सम्बध रखती ह। इस वग म केशवदास का नाम सवप्रथम उल्लेखनीय है। वे ओरछा के निवासी सनाढ्य ब्राह्मण थे और उनकी मत्यु लगभग १६१७ ई० मे हुई। उहाने काव्यशास्त्र पर अपनी रचनाएँ की। उनकी सबसे प्रिय कृति कविप्रिया है, जिसमें उहाने उत्तम काव्य के लक्षण और काव्यशास्त्र के अय आवश्यक तत्त्वो का विवेचन किया ह। उनका दूसरा महत्वपूण ग्रथ रामचद्रिका है जिसमें उहान रामचद्र जी का जीवनवत्त प्रस्तुत किया है। रसिकप्रिया और अलकार-मजरी उनके लक्षण-ग्रथ ह, जिनमें काव्य के अगो पर प्रकाश डाला गया है। अपनी इन रचनाओ के आधार पर केशव हिन्दी साहित्य के विशिष्ट कवियो में स्थान पाते ह। यद्यपि उनका काव्य सरलता मे हृदयगम नही किया जा

सक्ता, फिर भी इसमें कोई सन्देह नही रह जाता कि उन्होने विषय का निर्वाह बडी प्रतिभा और विद्वत्ता के साथ किया ह।

इस परिपाटी में केशव के अन्य अनुयायी सुदर, सेनापति और त्रिपाठी बन्धु हुए, जो शाहजहाँ और औरगजेब के शासन-काल में थे। सुन्दर ग्वालियर के एक ब्राह्मण कवि थे जिन्हे शाहजहा ने कविराय और महाकवि की पदवियो से विभूषित किया। सन् १६३१ ई० में उन्होने काव्य-शास्त्र पर अपनी कृति 'सुन्दर-श्रृगार' की रचना की और सिंहासन-बत्तीसी का ब्रजभाषा में सस्करण प्रस्तुत किया। सेनापति कृष्ण के भक्त थे। उनका प्रमुख ग्रन्थ कवित्त रत्नाकर है, जिसमें काव्य-कला के विविध अगो का विवेचन किया गया ह। देवकवि को छोडकर हिन्दी का अन्य कोई कवि उनके समान षट्-ऋतु वणन में सफलता प्राप्त नही कर सका। त्रिपाठी-बन्धुओ में महाकवि भूषण सबसे अधिक प्रतिभाशाली कवि थे, जो मराठा शासक शिवाजी तथा पन्ना के बुन्देला महाराज छत्रसाल के आश्रय में रहते थे। भूषण वीररस के अद्वितीय कवि थ। इनकी प्रसिद्ध रचना शिवा बावनी, छत्रशाल दशक और शिवराज भूषण ह। अन्तिम ग्रन्थ अलकार-ग्रन्थ है, जिसमें शिवाजी के शौय का वणन विविध अलकारो के उदाहरण देते समय किया गया है। इस युग के अन्य प्रसिद्ध कवियो में मतिराम त्रिपाठी, अपने काव्य सौष्ठव, रीति साहित्य के महान आचाय इटावा के देव कवि तथा मथुरा के बिहारीलाल चौबे अपनी बिहारी सतसई के कारण बहुत विख्यात ह। बिहारीलाल सन १६०३ से १६६३ ई० के बीच विद्यमान थे। जयपुर के मिर्जा राजा जयसिह उनके सरक्षक थे और यह कहा जाता ह कि उन्हे अपने प्रत्येक दोह पर एक अशर्फी प्राप्त होती थी। महाकवि बिहारी की ख्याति उनकी प्रसिद्ध सतसई के कारण अधिक हुई, जिसमें लगभग ७०० दोहो और सोरठो का सग्रह ह। काव्य-कला की दृष्टि से सतसई एक अनूठा ग्रन्थ है। इसमें अधिकाशत राधा और कृष्ण के प्रम का विषय ही प्रस्तुत किया गया ह फिर भी सतसई की भावव्यजना इतनी विशद है कि उसके मम को सरलता मे समझ सकना कठिन ह। एकमात्र गूढ भावो को स्पष्ट करने की दृष्टि से ही सतसई की कई टीकाएँ प्रस्तुत की गइ, इसी तथ्य से इस कृति की सवप्रियता का अनुमान किया जा सकता ह।

औरगजेब के शासन-काल में ही हिन्दी के प्रतिभासम्पन्न कवियो की परम्परा का अभाव विदित होने लगा था, यद्यपि राजकीय सरक्षण की अब भी कमी न थी। मुगल साम्राज्य के छिन्न भिन्न होते ही ललित-कलाओ और हिन्दी-साहित्य की उन्नति को भी क्षति पहुँची। उत्तरी भारत मे इस समय हम कही भी उदू-कविता का प्रणयन नही पाते ह। वास्तव में उदू की उन्नति दक्षिण में बीजापुर और गोलकुण्डा के शासको की सरक्षता में हुई जिनमें से कुछ स्वय ज्ञ सुसभ्य और सुसस्कृत शासक थे। इब्राहीम आदिलशाह (१५८०–१६२६) कविता का ममज्ञ था और उदू कवियो का आश्रयदाता था। बीजापुरी नुसरती अली आदिलशाह के दरबार में रहता था। औरगाबाद का वली, जो १६६८ ई० में उत्पन्न हुआ था, एक ख्यातिप्राप्त कवि था, जिसने सरल, स्वाभाविक और आकर्षक शली में अपनी गजलो, रुबाइयो और मसनवियो की रचना की। कहा जाता है कि उसने दो बार दिल्ली की यात्रा की थी। उसी के प्रयत्नो के फलस्वरूप मुगलो की राजधानी में उर्दू-कविता की नीव पडी। उसका अनुकरण कर अय बहुत से शायरो ने अपनी रचनाए की, जिनमें हातिम (१६७९–१७९२), खान आरजू (१६८९–१७५६) और आबरू तथा मजहर विशेष उल्लेखनीय ह, जो वास्तव में उत्तरी भारत में उर्दू-कविता के जनक कहे जा सकते ह। साराश में यह युग उदू-कविता का शशव-काल ही माना जा सकता ह। मुगल-राज्य में मुशी लोगो ने एक नवीन लेख शली को जम दिया। वे पत्र लिखने में प्रवीण थे। पत्र-लेखन को उन्होने कला का रूप दे दिया। माधौराम का नाम इस सम्बध में उल्लेखनीय ह।

इस प्रकार हिन्दू मुसलमान दोनो राज्य के प्रोत्साहन से साहित्य-सेवा में दत्तचित्त थे। फारसी तथा ब्रजभाषा दोनो साथ-साथ चलती थी। फारसी के सम्पक से ब्रजभाषा के माधुय में अधिक वद्धि हुई। परस्पर मेल-जोल बढा और सहयोग की प्रवृत्ति अधिकाधिक बलवती होती गई। भाषा तथा साहित्य का साम्राज्य की राजनीतिक स्थिति पर भी बहुत बडा प्रभाव पडा।

सगीत—मुगलो की सगीत मे भी बडी रुचि थी। बाबर को सगीत विद्या से प्रेम था। वह गजलो की रचना करता था और उन्हे दूसरो मे सुनता था। वह बाबरनामा में हिरात के प्रसिद्ध गायको का उल्लेख करता है।

हूमायूँ की भी संगीत म रुचि थी। वह स्वभाव से ही विचारशील था और उसकी प्रवत्ति सूफी सिद्धान्त की आर अधिक थी। अय सूफियो की तरह वह सगीत को पसन्द करता था। अकबर को भी सगीत से प्रेम था। ग्वालियर निवासी प्रसिद्ध गायक तानसेन उसके दरबार मे रहता था। वह दीपराग का विशेषज्ञ था और जनश्रुति के अनुसार उसकी स्त्री मल्हार गाने में निपुण थी। उसके उस्ताद थे बाजबहादुर (माल्वाधीश) और हरीदास। हरीदास कभी अकबर के दरबार में नही आया। रामदास भी दरबार का कवि था और कहा जाता है कि कुछ समय तक बैजू बावरा भी वहा था। रामदास तानसेन का प्रतिद्वंदी था। और कहते ह कि बजू बावरा के स्वर में तानसेन स अधिक मिठास था। जहागीर न भी गायको का आश्रय दिया। स्वर तथा वाद्य सगीत दोनो में उसकी अभिरुचि थी। शाहजहा गाना सुनता था। रात को वह हिंदी गीत सुनता था और सुनते-सुनते सो जाता था। कट्टर मुसल्मान गान विद्या का विरोध करते थे। उनका दष्टिकोण अब भी ऐसा ही ह। इसी लिए औरगजेब को सगीत से घृणा थी। अपने राज सिंहासनारोहण क बाद उसने गायको को दरबार से निकाल दिया था। जब वे सगीत का जनाजा ले जा रह थे बादशाह ने पूछा यह क्या ह। उत्तर मिला सगीत का जनाजा है। इस पर उसने कहा कि इसे ऐसा गहरा दफन करना कि फिर न सर उठाने पाये।

दरबार के अतिरिक्त धार्मिक पुरुषो में भी सगीत का आदर था। शिया और सूफी उसे अपनाते थे। सतपथ क अनुयायियो म भजन गाये जाते थ। बगाल के वष्णव अपने धम प्रचार के लिए कथा कहते और कीतन करत थे। कीतन के द्वारा सगीत ने बहुत बडी उन्नति की। वल्लभ सम्प्रदाय के वष्णव भी सगीत के प्रेमी थे। उनमें कई प्रसिद्ध गायक हुए। गोस्वामी विटठलनाथ को सगीत प्रिय था। उनके शिष्य गोविन्द स्वामी तानसेन से भी श्रष्ठतर गायक थे। सूरदास के भजन उच्च कोटि के थे। आज भी वे सवत्र गाये जात ह। दक्षिण में तुकाराम और रामदास ने भी सगीत को प्रोत्साहन दिया। उपदेश में वे गाने के महत्त्व को स्वीकार करते थे। कथाकार एक स्थान स दूसरे स्थान को जाते थे और तुकाराम के अभग जनता को सुनाते थे। इस प्रकार सगीत की इस काल में काफी उन्नति हुई। उसके आश्रयदाता राजा, रईस

जन साधारण तथा सन्त सभी थे। भक्ति का स्रोत प्रवाहित होने से संगीत को बहुत बड़ा लाभ हुआ।

धार्मिक चेतना—भारतवर्ष के मध्यकालीन इतिहास में होनेवाले भक्तिवाद के विशाल धार्मिक आन्दोलन से हम सभी भली भांति परिचित हैं। अनेक विद्वानों की राय में यह भक्ति आन्दोलन पिछले बौद्ध धर्म के आन्दोलन से भी अधिक विशाल है क्योंकि उसका प्रभाव आज भी विद्यमान है। इस युग में धर्म ज्ञान का नहीं बल्कि भावावेश का विषय हो गया था। जो लोग भारतीय दर्शन की परम्परा के स्वाभाविक विकास को नहीं सोचते, उन्हें अवश्य ही आश्चर्य होगा कि ऐसा अचानक कैसे हो गया। स्वयं डाक्टर ग्रियर्सन ने ही लिखा है कि बिजली की चमक के समान अचानक इस समस्त पुराने धार्मिक मतों के अंधकार के ऊपर एक नई बात दिखाई दी। कोई हिन्दू यह नहीं जानता कि यह बात कहाँ से आई और कोई भी इसके प्रादुर्भाव का काल निश्चित नहीं कर सकता। डाक्टर ग्रियर्सन का अनुमान है कि वह ईसाइयत की देन है जो नितान्त उपहासास्पद है। परन्तु यह कहना तो और भी भ्रामक है कि जब मुसलमान हिन्दू मंदिरों को नष्ट करने लगे, तो निराश होकर हिन्दू लोग भजन भाव में जुट गये। वास्तव में भारतीय आध्यात्मिक प्रवृत्ति स्वभावतः ही भक्ति के स्रोत को लेकर अग्रसर होती गई है जिसके मूल में दक्षिण के शास्त्रसिद्ध वैष्णव आचार्यों का बहुत बड़ा हाथ था।

हम पहले अध्यायों में स्पष्ट कर चुके हैं कि किस भाँति आचार्य शंकर के अद्वैतवाद ने भारतीय-दर्शन को एक नई चिन्तन परम्परा प्रदान की, फिर भी सामान्य जनता के हृदय में उनकी दुरूह दार्शनिक पद्धति घर न कर सकी। कारण स्पष्ट था कि सामान्य व्यक्ति अपने सामने फैले हुए समस्त जगत् को मिथ्या कैसे मान लेता। बारहवीं शताब्दी के आस पास ही दक्षिण में अद्वैत-वाद की प्रतिक्रिया आरम्भ हो गई थी और इसके फलस्वरूप चार प्रबल सम्प्रदाय अद्वैतवाद के विरोध में आविर्भूत हुए, जो आगे चलकर सम्पूर्ण भारतीय साधना के रूप को बदल देने में समर्थ हुए। ये चार सम्प्रदाय—रामानुजाचार्य का श्री सम्प्रदाय, माध्वाचार्य का ब्राह्मसम्प्रदाय, विष्णुस्वामी

का यह सम्प्रदाय और निम्बार्क का सनकादि सम्प्रदाय थे। ये सम्प्रदाय दार्शनिक बातों में थोड़ा-बहुत भिन्न होने पर भी शंकर के मायावाद का विरोध करने में समान थे।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि श्री सम्प्रदाय के प्रचारक श्री रामानुजाचार्य दक्षिण भारत में उत्पन्न हुए थे, वे सवर्ण के बड़े पक्षपाती थे। इनके सम्प्रदाय में खान-पान, आचार विचार आदि पर प्रश्न खड़ा किया जाता था। इन्हीं की चौथी या पाँचवीं शिष्य-परम्परा में चौदहवीं शताब्दी के लगभग सुप्रसिद्ध स्वामी रामानन्द का आविर्भाव हुआ। किसी आवागमन-सम्बन्धी बात पर अपने गुरु राघवानन्द से मतभेद हो जाने के कारण इन्होंने मठ त्याग दिया और उत्तर भारत की ओर चले आये। यह उक्ति प्रसिद्ध है कि भक्ति द्राविड़ देश में उत्पन्न हुई थी। उसे उत्तर में रामानन्द ले आये और कबीरदास ने उसे सप्तद्वीप और नवखण्ड में प्रकट कर दिया। यदि सच पूछा जाय तो मध्ययुग की समग्र स्वाधीन चिन्ता के गुरु रामानन्द जी ही थे। उन्होंने जाति-पाँति के भेदभाव को सर्वथा त्याज्य ठहराया। उन्होंने ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक सभी को राम नाम का उपदेश दिया। उनके शिष्यों में रैदास, कबीर और धन्ना आदि सब नीची गिनी जानेवाली जातियों के ही लोग थे।

रामानन्द के इन शिष्यों में से कई एक के अपने अपने सम्प्रदाय चल निकले, जिनमें कबीरपंथी, खाकी, मलूकदासी, रैदासी और सेनापंथी बहुत प्रसिद्ध हैं। रामानन्द ने स्वयं श्री रामचन्द्र के अवतार और चरित्र को ही लोक और काल के उपयोगी बतलाया था। उन्होंने स्पष्ट कहा कि मनुष्य की श्रेष्ठता भक्ति से होती है, जन्म से नहीं। रामानन्द के इस गुरु-मंत्र का प्रसार सबसे अधिक कबीर में हुआ। रैदास कबीर से अवस्था में बड़े थे और बहुत निरीह भक्त थे। प्रसिद्ध है कि अन्त में मीराबाई ने रैदास से दीक्षा ग्रहण की थी।

इसी शिष्य-परम्परा में आगे चलकर दादू आते हैं जिनका अपना पंथ किसी समय सामान्य जनता को आकर्षित करने में बहुत सफल हुआ। अन्य भक्तों की भाँति ये भी सम्प्रदायगत शास्त्रीय-संस्कारों से मुक्त थे इसीलिए सब जगह से अवांतर भाव से सत्य ग्रहण कर सकते थे। इनकी शिष्य परम्परा

मे जगजीवनदास हुए, जिन्होन सतनामी सम्प्रदाय चलाया। निगुण भक्तो मे और कई प्रसिद्ध सन्त हो गये ह। गुरु नानक की साधना कबीर से बहुत बातो में साम्य रखती थी। उन्होने वे ही उपदश दिये ह जो कबीर-दादू आदि निर्गुणोपासक भक्ता की अमर वाणिया म सम्बन्धित ह। गुरु नानक ने अपने ग्रन्थ म नामदेव जी की वाणी सग्रहीत की ह। नामदेव जी का जन्म (१३६३ ई०) महाराष्ट्र के दर्जी वश म हुआ था। रामानन्द की तरह य भी भक्ति को दक्षिण भारत से उत्तर की ओर लाये थे। कुछ लोगा की राय में रुद्र-सम्प्रदाय के प्रवतक विष्णुस्वामी नामदेव के शिष्य थे।

रामानन्दी भक्तो की एक दूसरी श्रणी सगुणोपासना को लेकर चली। इस परम्परा में सबसे अधिक प्रतिभाशाली भक्त गोस्वामी तुलसीदास जी हुए। इन्हाने राम को अवतार रूप म ग्रहण किया। इन्होन अपने सभी ग्रन्थो में राम की सगुण-भक्ति पर जोर दिया और बहुत दिना के लिए सारे भारतवप को रामभक्ति की पवित्र धारा में स्नान करा दिया। उनकी रामायण मे उस समय की सभी दार्शनिक प्रवृत्तिया का यथेष्ट समन्वय किया गया ह, इसी कारण वह उत्तर भारत की बाइबिल कही जाती ह। आज मनोविज्ञान के युग में तुलसीदास के समान मनोविकारो का चित्रण इतनी सजीवता से करने-वाला कोई अन्य कवि हिन्दी में नही मिलता। जसा कि स्पष्ट किया जा चुका है कि वे रामभक्ति के उपासक थे। लोक में वर्णाश्रम व्यवस्था के वे पक्के समथक थे पर उपासना के क्षेत्र म जात पात की मर्यादा को व्यथ समझते थे। उनका दार्शनिक मत शकराचाय से बहुत-कुछ मिलता जुलता था, यद्यपि वे मोक्ष की अपेक्षा भक्ति को ही अधिक काम्य समझत थे। मरने के बाद मोक्ष मिलने से युग-युगान्तर तक भक्ति पाना उनकी दृष्टि में अधिक अच्छा था। तुलसीदास में अपने को पतित समझकर भगवान् का सर्वात्मना समपण कर दने की भावना मध्ययुग के तमाम भक्ता की अपक्षा अधिक है, यह भाव भागवत धम में मूलरूप से वतमान था और इस ईसाई धम का अप्रत्यक्ष प्रभाव किसी भी दशा में सिद्ध नही किया जा सकता।

ऊपर हम जिन चार सम्प्रदायो का उल्लेख कर चुके ह, उनमें ब्राह्म सम्प्रदाय के प्रवत्तक, माध्वाचाय का नाम आता ह। वे पहले शैव थे, बाद

में वष्णव हो गये। चैतयदेव इसी सम्प्रदाय में सबसे पहले दीक्षित हुए थे। चैतयदेव की शिष्य परम्परा में अनेक वष्णव भक्त होते रहे, जिहोन वगाल में उस महापुरुष का काय बराबर जारी रखा। उनके शिष्य गोपालभट्ट और जीवगोस्वामी आदि भक्ता ने भक्ति का उपदेश किया। कहते ह कि मीराबाई ने पहले जीवगास्वामी से ही दीक्षा ग्रहण की थी, बाद मे वे रदास की शिष्या बनी थी।

हम पहले ही स्पष्ट कर चुके है कि वैष्णव धम का आदोलन सगुणोपासना को लेकर आगे बढा था। इस सगणोपासना में भी वष्णव भक्ता ने राम और कृष्ण की भक्ति की ही महत्ता प्रदर्शित की। उत्तर-भारत में राम भक्ति का प्रचार-काय महात्मा रामानद के प्रयत्ना से आरम्भ हुआ और उसका पूण विकास गोस्वामी तुलसीदास के द्वारा हुआ। कृष्णभक्ति का विकास मूलरूप में विष्णुस्वामी के रुद्रसम्प्रदाय से आरम्भ हुआ। उत्तर भारत में इसका प्रचार करने का श्रेय महाप्रभु वल्लभाचाय को है। व कृष्ण भक्ति शाखा के सबसे प्रथम आचाय माने जाते ह, उनके पुत्र गास्वामी विट्ठलनाथ बाद मे आचायपद के अधिकारी हुए थे। इन दोनो पिता-पुत्र के शिष्या ने कृष्ण भक्ति का प्रचार करन मे अथक सहायता की, जो अष्टछाप के रूप मे प्रतिष्ठित ह। अष्टछाप के भक्तो में सूरदास सबसे अग्रगण्य ह। सूरदास जी का स्थान कृष्ण भक्तो में सबस ऊँचा है। उनका सूरसागर भगवत्प्रेम का अद्वितीय काय ह। बाल्य कृष्ण के माधुयरूप की जो छटा हमें इस ग्रथ में प्राप्त होती ह वह अयत्र दुलभ ह। वात्सल्यभाव, मातप्रेम तथा सयोग और विप्रलम्भ शृगार के वणन का आधार लेकर उन्होने बडी सरसता और मार्मिकता के साथ वराग्यवाद, ज्ञान-गरिमा और योग तथा निगुणवाद का प्रत्याख्यान कराया ह। महाप्रभु वल्लभाचाय के सिद्धाता को शास्त्रीय ढग से प्रतिपादित करने का श्रेय नददास जी को ह। अष्टछाप के सभी भक्त लीला-गान का प्रधानता देत ह। जसा कि वल्लभाचाय ने बताया है कि 'लीला का और काई प्रयोजन नही ह, स्वय लीला ही प्रयाजन ह। इसी भाँति इन भक्त कविया के सरस पदा का प्रयाजन भी एकमात्र लीलागान ह।

गोसाइ विट्ठलनाथ के सुपुत्र गासाई गाकुलनाथ जी ने 'दो सौ बावन वष्ण-

वन की वाता और 'चारासी वष्णवा की वाता नामक गद्य-ग्रथ लिखे। इन दाना ग्रथा में मध्ययुग के अनक वष्णव भक्ना की कहानी लुप्त होन स वच गई ह। इमी परम्परा में आग चलकर पीयूषवर्षी भक्त-कवि रमखान हुए जो अपनी तन्मय उपामना के फलस्वरूप भक्ता की दुनिया मे अमर ह। कृष्ण भक्ना की इम परम्परा म अय भक्त भी ममयानुसार आविभूत होत रह। वास्तव म भक्ति का स्रात कभी सूखा ही नही, वह बराबर प्रवाहित हाना रहा। १५८५ ई० में हितहरिवश ने राधावल्लभी शाखा-सम्प्रदाय की नीव डाली। इस सम्प्रदाय म राधा की पूजा की जाती ह और उन्ही की महायता से य भक्त कृष्ण की कृपा प्राप्त करना चाहते ह। एक उप-सम्प्रदाय सखीभाववाला का भी है, जा इसी सम्प्रदाय का अग समझा जाता ह।

अब तक हम उत्तर भारत के वृहत धार्मिक आन्दालन की चर्चा करत रह ह। दक्षिण भारत में भी भक्ति-आदोलन का विकास उत्तर भारत की अपक्षा कम न था। कुछ विद्वाना की राय में भक्ति दक्षिण से ही उत्तर की ओर आई थी। एकनाथ इसके प्रवत्तका मे सबसे महत्वपूण ह। इन्हाने भक्ति पर जोर दिया, जिसके माध्यम म स्त्रिया और शूद्र तक मुक्ति प्राप्त कर सकत थ। इसी समय पढरपुर का सुविख्यात धम-आन्दालन आरम्भ हुआ। रामदास और तुकाराम इस भक्ति-प्रवाह मे सबसे अधिक ख्यातिप्राप्त महात्मा हुए। वे पढरपुर के सन्ता की शिष्य परम्परा में आविभूत हुए थे। महाराष्ट्र के सबस श्रेष्ठ भक्त तुकाराम का जन्म सन १६०० में हुआ था। ईश्वर के प्रति उनका प्रेम अपार था। वे अल्वार भक्ता की परम्परा में थे। उनके कथनानुसार भगवान विठोबा (पढरपुर के) का कीर्ति-गान ही मुक्तिप्राप्त करन का एकमात्र साधन ह। पवित्र हृदय से भगवान की पूजा करना और मनुष्य मात्र की सेवा करना ही सबसे बडी भक्ति है। तुकाराम के अभग, जिनमें निहित तीव्र भक्ति भावा को परिष्कृत करती ह और आत्मा को ऊँचा उठाती है, अब भी महाराष्ट्र में गाये जाते ह और लाखा दुखी आत्माओ को शान्ति प्रदान करते ह।

दक्षिणी भारत के अय प्रसिद्ध भक्त रामदास वेदान्ती और वष्णव थे। उनका कथन था कि मुक्ति राम की भक्ति से ही मिल सकती है। पवित्र जीवन, शुद्ध विचार तथा कर्म, सत्य, दया, क्षमा और दान करने से ही मनुष्य स्वर्गीय आनन्द

प्राप्त कर सकता ह। रामदास स्वामी शिवाजी के गुरु थे। उन्होने मराठा राज्य स्थापित करने में शिवाजी की वडी सहायता की थी। विद्वत्ता में वे सन्त तुकाराम की अपेक्षा अधिक समादत थे। उन्होने समस्त महाराष्ट्र में मठो और मदिरो की स्थापना कर अपनी शिक्षाओ का प्रचार करने का प्रयास किया। उन्ही के प्रयत्नो के फलस्वरूप महाराष्ट्र एक सुसगठित प्रदेश बन गया। महाराष्ट्र में वे समथ रामदास के नाम से प्रसिद्ध थे। सोल्हवी और सत्रहवी शताब्दी में भक्ति का स्रोत वरावर जारी रहा। जिन महान व्यक्तियो का उल्लेख ऊपर किया जा चुका ह, उनके उपदेशो का जनता पर वडा प्रभाव पडा। हिन्दुओ का आचार श्रेष्ठ था। उनके विचार पवित्र थे। जीवन शात एव सुखमय था। योरुपीय यात्रियो ने तत्कालीन आचार और धार्मिक विकास की वडी सराहना की ह। ब्राह्मण धम की उन्नति उत्तरोत्तर होती गई। मुसलमानो की राजकीय शक्ति उसका दमन न कर सकी। जाति पाति की व्यवस्था प्रचलित रही। हिन्दुओ में अनेक सन्त महात्मा होते रहे जिन्होने अपने धम की कीर्ति को प्रज्वलित किया। काशी, प्रयाग, जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम, बद्रिकाश्रम अब भी वडे पुण्य तीथ मान जाते थे। अनेक कष्ट सहकर मनुष्य यात्रा को जाते थे और धार्मिक उत्सवो में भाग लेते थे।

इस्लाम का प्रभाव—वास्तव में इस कथन में अब कोई सन्देह नही रह जाता कि मुसल्मानो की भारत विजय का उद्देश्य न केवल मुसलमानी राज्य की स्थापना वरन् इस्लाम धम का प्रचार भी था। मुसलमान आक्रमणकारियो ने कभी भी इस तथ्य को स्वीकार नही किया कि इस्लाम धम का प्रचार मुस्लिम राज्य की स्थापना के बिना भी हो सकता है। भारतवष के मुसल्मानी प्रभाव के अन्तगत आने की पूरी अवधि में मुसल्मानी शासको का दृष्टिकोण अपनी हिन्दू जनता की ओर सदव असहिष्णुता और विरोध का रहा है। सचमुच एकमात्र अकवर के शासन-काल में ही पारस्परिक सहानुभूति की भावना दृष्टिगोचर होती ह, लेकिन यह अवधि अपेक्षाकृत वहुत न्यून थी। साथ ही पक्के मुल्लमानो की दृष्टि में अकबर सच्चा मुसलमान शासक नही माना जाता था।

भारत में इस्लामी प्रभाव के इस लम्बे काल को हम दो भागो में विभाजित कर सकते ह। पहला भाग लगभग पन्द्रहवी शताब्दी के अन्त तक समाप्त होता

ह। आठ सौ वष की इस लम्बी अवधि म मुस्लिम आक्रमणकारियो और उनके अधीनस्थ सरदारो के मन मे यह धारणा घर कर गई थी कि वे उसी भाति समस्त भारतवष को इस्लामी क्षत्र के भीतर कर देंगे, जिस भाति खलीफाओ की फौजा न फारस और पश्चिमी प्रदेशा का मुसलमानी प्रभाव के अन्तगत कर दिया था।

दूसरे भाग में जो कि बाबर के द्वारा मुगल साम्राज्य की स्थापना स आरम्भ होता है समस्त जनता की भलाई का ध्यान रखने के उद्देश्य से यह धारणा असगत सी प्रतीत होने लग गई थी। पहले के तुक विजेताओ की असहिष्णु और अनुदार नीति के स्थान पर देश की हिंदू जनता के प्रति सहनशीलता और सहानुभूति का परिचय दिया जाने लगा था। यहा तक कि अफगान शासक शेरशाह (१५३० १५४५) न भी अपने अल्पकालीन शासन में यह सिद्ध कर दिया कि देश में एक नवीन भावना की जागति हो चुकी थी। बाद में अकबर ने हिन्दू मुस्लिम सौहाद्र को अन्तिम कक्षा तक पहुँचाने का अथक प्रयास किया। इस काल में एक-मात्र औरगजेब ही ऐसा शासक हुआ, जिसने भारत को इस्लाम के एकछत्र प्रभाव के अतगत लाने की पुन चेष्टा की, किन्तु उसे भी अपने प्रयास की असफलता स्वीकार करने के लिए विवश होना पडा।

बहुधा यह कहा जाता है कि भारतवष में इस्लाम धम का व्यापक प्रभाव पहले मुसलमान शासको की बलात धम परिवत्तन करने की नीति के कारण हुआ। फिर भी इस्लाम के प्रभाव में एक मात्र बल प्रयोग ही सहायक तत्त्व न था। भारतवष म इस्लाम के विकास के समूचे इतिहास में मुसलमान धम प्रचारको का भी एक महत्त्वपूण काय रहा ह। सामान्यत ऐसे धार्मिक व्यक्ति दया और धमप्रचार की भावना से प्रेरित हो एक स्थान से दूसरे स्थान पर शिष्यो को उपदेश दने का काय किया करते थे। ऐसे वयक्तिक प्रयास इस काल में हमें ग्यारहवी शताब्दी स ही दिखाई दने लग जात ह जो आधुनिक समय तक अपने आप प्रकाश में आते रह ह। तरहवी शताब्दी में अजमेर के ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती जसे धार्मिक महापुरुषो के नाम विशेष रूप से उल्लेख-नीय ह। चौदहवी शताब्दी मे भी इन धम-प्रचारको का काय विशेष तीव्र गति से होता रहा, किन्तु बाद में पद्रहवी और सोलहवी शताब्दी में एस कार्यों की

गति मन्द पड़ गई। सभव है इसका कारण मुगल सम्राटो की उदार-नीति का प्रभाव हो।

तेरहवी और चौदहवी शताब्दियों में पजाब, काश्मीर, दक्षिण, पश्चिमी प्रदेश और पूर्वीय क्षेत्रों में धमप्रचार का काय बडे उत्साह के साथ होता रहा। उस समय हम पजाब में शेख़ामुलहक, बाबा फरीदउद्दीन और अहमदकबीर (मखदूम जहानियान) जैसे व्यक्तियो को अपने प्रयत्नो में दत्तचित्त पाते है। चौदहवी शताब्दी के अन्त में काश्मीर प्रदेश में सयद अली हमदानी ने धम प्रचार का काम बडी लगन से किया। कहते है कि वह अपने साथ सात सौ सयदो को लेकर आया था और उन्होने समस्त देश में अपने स्थान बना लिये थे। सुदूर दक्षिणी भारत में भी सयद महम्मद गीसू दराज और पीर महावीर खमदायन के काय चौदहवी शताब्दी में ही प्रारम्भ हो गये थे। पन्द्रहवी और सोलहवी शताब्दी में समस्त देश में विशेषतया सिन्ध और पश्चिमी भारत में इन मुसलमान प्रचारको का काय बडे वेग से फला, जिनमें सयद यूसुफुद्दीन और पीरसदरुद्दीन के नाम विशेष उल्लेखनीय है। कहा जाता है कि सयद यूसुफुद्दीन प्रसिद्ध मुसलमान धम प्रचारक अब्दुल कादिर जीलानी का उत्तराधिकारी था। इन धार्मिक मिशनरियो में कुछ ने तो अपनी विद्वत्ता एवं दयाभाव के कारण अन्यो ने अपने चमत्कारिक प्रयोगो से और बहुतो ने हिन्दू समाज में व्याप्त कुरीतियो की निन्दा करने के माध्यम से इस्लाम का प्रभाव व्यापक बनाने की चेष्टा की।

भारत में इस्लामी सगठन—*भारतवर्ष में इस्लाम का काय सामूहिक* एकता के माध्यम से कभी सफल नही हो सका। कारण यह था कि इसका विकास एक सुव्यवस्थित सगठन के रूप में नही हुआ, जो समस्त मुसलमान जनता पर अपना नियन्त्रण रख सकता। मुसलमान शासन-काल में इस्लामी एकता का काय *किन्ही अशो तक शासको के द्वारा* सम्पादित होता रहा, जो इस्लामी कानून और धम के सरक्षक माने जाते थे। खलीफा न केवल इस्लाम के ससारव्यापी साम्राज्य का प्रधान था वरन् वह धम का रक्षक भी था, क्योकि अपनी आदश परिस्थितियो में इस्लाम एक राज्य धम न होकर धार्मिक राज्य के रूप में था। इसी कारण किसी भी स्वतन्त्र मुस्लिम देश में शासक खलीफा के प्रतिनिधि की हैसियत से धम का

प्रधान भी समझा जाता था। लगभग पन्द्रहवी शताब्दी तक दिल्ली के सुल्तान इसी परम्परा का पालन करते रहे।

मुगल शासन का प्रारम्भ होते ही मुगल-सम्राटो और खलीफाओ के पारस्परिक सम्बन्धो में भी बृहत परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। उनके वैभव, शक्ति और अपार सम्पत्ति ने उन्हें पूर्ण स्वेच्छाचारिता का प्रयोग करने का अवसर प्रदान किया और वे अपने शासन-काल मे निश्चिन्तता से कार्य करते रहे।

भारतीय इस्लाम की एक अन्य विशेषता उसमे विभिन्न सगठनो की विद्यमानता है। वस्तुतः तो मुस्लिम जनता का अधिकांश भाग सुन्नी सम्प्रदाय से सम्बन्धित है, फिर भी इनके अतिरिक्त इस देश में शिया सम्प्रदाय का बहुसंख्यक वर्ग भी है, जो पहले वर्ग से अपने सिद्धान्तो मे भिन्नता रखता है। भारतवर्ष के शिया मुसलमान दो उदार सम्प्रदायो से सम्बन्ध रखते है जिन्हें इस्लामी इतिहास मे बारह इमामो का इसना अशरिया और सात इमामो का सबीया वर्ग कहते है। इनमें से भारत के शिया मुसलमान पहले वर्ग ही के अन्तर्गत है। 'शिया' शब्द का अर्थ 'दल' है और यह उन मुसलमानो के लिए प्रयुक्त होता है जो चौथे खलीफा अली को पैगम्बर का न्यायोचित उत्तराधिकारी मानते है।

लगभग पन्द्रहवी शताब्दी के अन्तिम भाग मे महदी-आन्दोलन का सूत्रपात जौनपुर के मीर सयद मुहम्मद की शिक्षाओ के द्वारा हुआ। वह अपने आपको मुहम्मद साहब का उत्तराधिकारी कहता था। अपने अन्याय चमत्कारो के द्वारा उसने इस आन्दोलन को सफल बनाने की पूर्ण चेष्टा की, किन्तु उसकी योजना अन्त में सफलीभूत न हो सकी। इसी भाँति एक अन्य महदी इस्लामशाह सूर (१५४५ ५२) के शासन काल में हुआ, जो शेख अलाई के नाम से प्रसिद्ध था। जब उसने अपनी विचित्र शिक्षाओ का प्रचार बन्द नही किया, तो उसे उलमाओ ने अधर्मी घोषित कर दिया और उसे दण्डित किया गया।

प्रकट में तो इन महदी आन्दोलनो का प्रभाव भारतीय इस्लाम पर कुछ भी नही पडा, किन्तु इसका यह फल अवश्य निकला कि भारतीय इस्लाम में समयानुसार नये सुधारो की आवश्यकता विदित होने लग गई। इस समय भारतवर्ष में इस्लाम

को सवप्रियता प्राप्त करनी थी, जिसका सवमे अधिक श्रेय सूफी सिद्धातवाद को है। इस्लाम के रहस्यवादी विचारो की व्याख्या सूफीदशन का मूलभूत सिद्धान्त है। कविता के माध्यम से सूफी विचारो का प्रचार भारतवष में किया गया। वास्तव में सूफीमत कोई धम अथवा सम्प्रदाय नही था, वरन साम्प्रदायिक धम के विरुद्ध यह मानव हृदय की स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। सक्षेप म सूफी सिद्धान्तो का सार यही ह कि ईश्वर ने अपने सभी दासो अथवा भक्तो को उसको प्राप्त करने की शक्ति दी है, किन्तु यह बिना पथ प्रदशन के नही मिल सकती। इसी हेतु प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह ईश्वर प्राप्ति के लिए किसी धार्मिक गुरु का आश्रय प्राप्त करे, जिसे सूफी-दशन मे मुर्शिद अथवा पीर और जिज्ञासु भक्त को मुरीद कहते ह। इन सूफी सन्तो के चमत्कारिक वणन प्राय इतिहास में प्राप्त होते रहते हैं। इसी मत-परम्परा में अयाय धार्मिक महापुरुषों का जन्म होता रहा, जिनमें ख्वाजा मुईउद्दीन चिश्ती (११४२ ई०), निजाम-उद्दीन औलिया (१२३८ ई०), शेख सलीम चिश्ती आदि मुसलमान महात्माओ के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इसी भाति के अय धार्मिक सम्प्रदाय शत्तारी, कादिरी, नक्शबन्दी आदि इसी भाँति के धार्मिक आन्दोलनों से सबधित थे जिनका प्रभाव तत्कालीन समाज पर विशेष रूप मे पडा।

मुगल सम्राटों की धार्मिक नीति—भारतवष में इस्लाम के व्यापक आन्दोलन की विभिन्न गतिविधियो का उल्लेख हम कर चुके ह। साथ ही यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि मुगल शासन के आरम्भ होते ही भारतीय इस्लाम का दृष्टिकोण मुगल-सम्राटो की उदार नीति के फलस्वरूप एकदम बदल गया। बाबर स्वय एक सुन्नी मुसलमान था किन्तु वह धर्मान्ध नही था। वह सुसस्कृत और सुशिक्षित व्यक्ति था। वह मदिरा-सेवी था, स्त्रियो का प्रेमी था और साथ ही बहुधा इस्लाम में प्रचलित रीति रिवाजो के विरुद्ध काम भी कर बैठता था। लेकिन बाबरनामा के आधार पर उसका हिन्दुओ के प्रति व्यवहार उदार नही था। उसने भी मन्दिरा को तुडवाया और हिन्दुओ के सिरो से मीनार बनवाये। विधर्मियो के प्रति उसके विचार अधिक उदार न थे। उसका पुत्र हुमायूँ उदार विचारो का व्यक्ति था। जिस समय वह हिन्दुस्तानी साम्राज्य को खोकर फारस पहुँचा, तो वहाँ के बादशाह न उसे शिया धम अपनाने को विवश किया, जिसे उसने

अस्वीनार कर दिया। परन्तु जिस समय हुमायू भारतवष का पुन शासक हुआ, उस समय उसने बहुत से शिया मुसलमाना को शासन मे स्थान दिये, जिनमें बैरमखाँ का नाम विशेष उल्लेखनीय ह।

अकबर के सिंहासनारुढ होते ही एक नये युग का आविर्भाव हो जाता है। सोल्हवी शताब्दी के योरुप की भाँति नवीन वातावरण और नये परिवत्तन दृष्टि-गोचर होने ल्गते ह। इस युग में हम सूफी धम का व्यापक प्रभाव प्रत्यक्ष देखते ह। शेख मुबारक, अबुल्फजल, फजी आदि सूफी विद्वानो के उदार विचारा ने सम्राट को भी बहुत प्रभावति किया। राजपूतो के ववाहिक सबधो ने उसके विचारों को अधिकाधिक उदार बना दिया। सम्राट स्वय हिदू रीति रिवाजो में विश्वास करने ल्गा। बदाऊनी का कथन ह कि बादशाह प्रात काल फतहपुर में अनूप तालाब के किनारे एक पत्थर पर बठा विचार करता था और सूफियो की तरह 'या हूँ' और 'या हादी के भजन गाता था। उसने धम के आचार्यो के वाद विवाद सुनने के लिए इबादतखाना बनवाया था। हिन्दू कम के सिद्धान्तो को भी वह ध्यान से सुनता था। शेख मुबारक की प्रेरणा से उसने इमाम आदिल की उपाधि धारण की और फतहपुर की मसजिद में प्रसिद्ध खुतबा पढा। धार्मिक कट्टरता तथा पक्षपात उसे अप्रिय थे। उसन समझ लिया था कि भिन्न भिन्न कम ईश्वर के पास पहुँचने के लिए केवल माग ह। इसलिए पक्षपात करना व्यथ हैं। ईसाई धम के अनुयायी भी उसके दरबार में थे। वह उनका आदर करता था और शास्त्राथ मे भाग लेने की उन्हे पूण स्वतत्रता देता था। सिक्खो के ग्रन्थ साहब को वह एक आदरणीय ग्रन्थ समझता था। इस सहिष्णुता का राज्य की नीति पर भी प्रभाव पडा। हिन्दू जनता उससे प्रसन्न हुई और उसके साथ सहयोग करने ल्गी। परन्तु सुन्नी मुसलमानों को यह उदारता सहन न हो सकी। अतएव उन्होने घोर असन्तोष प्रकट किया। यह असन्तोष इस सीमा तक पहुँच गया कि जौनपुर के तत्कालीन काजी ने बादशाह को काफिर घोषित कर मुसलमाना को उसकी आज्ञा न मानने की राय दी। फिर भी कट्टरपन्थी मुल्लाओ की इस नीति का कोई प्रभाव नही पडा और अकबर तथा उसके अनुयायियो ने मिल्कर 'दीनइलाही की स्थापना की। यद्यपि बादशाह के इस साहसिक प्रयास का अन्ततोगत्वा कोई स्थायी फल न निकल सका, फिर भी इन उदाहरणो स यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता

है कि भारतवर्ष में इस्लाम के लिए अपनी कट्टरता छोडने का वातावरण उस समय पूर्णतया प्रस्तुत हो चुका था।

अकबर के पश्चात् उसके पुत्र जहांगीर ने अपने पिता की उदार नीति का पालन किया। वह स्वयं जदरूप जैसे हिन्दू साधु-सन्तो का सत्संग किया करता था। परन्तु मुसलमानी राज्य की नीति पर चलने के लिए उसे भी कभी बाध्य होना पडता था। काफिरो को दड देना राज्य का कर्त्तव्य था। शेख इब्राहीम लाहौरी पर अपने स्वतत्र विचारो के कारण मुकदमा चलाया गया था। पुष्कर का मन्दिर तोडा गया। नगरकोट पर बादशाह ने चढाई की और मन्दिरो को ध्वस किया। पुर्तगालियो का आगरे का गिर्जा बन्द कर दिया गया। हिन्दू धर्म के प्रचारको की ओर से अब राज्य सशंकित रहने लगा। दो मुस्लिम युवा पुरुष कुतुब और उमरखा बहुधा एक सन्यासी के घर जाने के कारण दण्डित किये गये।

अन्तिम मुगल सम्राटो को यह उदार नीति मान्य न रही। शाहजहा कट्टर मुसलमान था। वह ३० हजार रमजान में और १० हजार मुहरम में खैरात करता था। बहुत सा रुपया मक्का मदीना को भेजा जाता था। कहते है २५ वर्ष तक ५० हजार वार्षिक के लगभग भेजा जाता था। सन् १६३३ ई०म उसने बनारस के इलाके में ७३ मंदिर ध्वस कराये और इसके बाद राज्य की ओर से हुक्म जारी हुआ कि कोई नये मन्दिर का निर्माण न करे। शाहजहानामा का लेखक कजवीनी लिखता है कि हिन्दू मुसलमानी पोशाक नही पहन सकते थे। उन्हे न शराब पीने और न बेचने की आज्ञा थी। वे किसी कब्रस्तान के पास अपने मुर्दे को नही जला सकते थे। हिंदुओ को मुसलमान बनाने के लिए एक अलग शासन का विभाग था और **तबकात शाहजहॉनी** का लेखक लिखता है कि इस विभाग के अध्यक्ष थे मिर्जा लाहौरी और मुहिब्बअली सिंधी। इस्लाम स्वीकार करनेवालो को रुपया मिलता था। बादशाह के सामने उपस्थित होने पर उन्हें खिलअत, रुपया, उपाधि, मनसब आदि मिलने थे। यात्रियो पर कर फिर से लगाया गया था। बादशाह अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि समझता था। साधारण लोग कहते थे—दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा।

शाहजहा का पुत्र दाराशिकोह बडे उदार विचारो का राजकुमार था। उसका अधिकांश समय विद्या और कला को सीखने में ही व्यतीत होता था।

राजकुमार ने सूफी सिद्धान्ता के साथ ही हिन्दू-दशन का गम्भीर अध्ययन किया था और उसकी विद्वत्ता ने उसे सवप्रिय बना दिया था। यदि दुर्भाग्य के कारण उसकी असमय हत्या न की जाती तो भारतीय इतिहास म हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रयास को इससे अत्यधिक बल मिलता। औरगजेब के शासन-काल मे सुनी मुसलमाना का सारे साम्राज्य में बोलबाला था और सम्राट् स्वय उस वग का नेता था। इस समय मुगला की प्रारम्भिक धार्मिक नीति एकदम परिवर्त्तित हो गई थी। औरगजेब न अपनी विधर्मी जनता पर सभी सभाव्य अत्याचार किये परन्तु कहना न होगा कि इस धर्मान्ध शासका की इसी नीति के कारण हिन्दू जनता म इस्लाम के प्रति असन्तोष उत्पन्न हो गया जिसने बाद में चलकर हिन्दू मुस्लिम सम्बन्धा का अत्यधिक कटु बना दिया।

इस्लाम पर भारतीय वातावरण का प्रभाव–प्रारम्भिक काल में भारतीय इस्लाम का स्वरूप विदेशी ही बना रहा। शासका ने भयकर असहिष्णुता का प्रदशन किया। व मूर्तिपूजक और उनके समस्त विश्वासो का भय और शका की दृष्टि से देखत थ, किन्तु धीरे धीरे यह वमनस्य पारस्परिक सम्पक के कारण कम होने लगा। मुसलमानो ने हिन्दू स्त्रियो के साथ विवाह किया जिसके फलस्वरूप घणा का भाव कम हुआ और मेल जोल बढने लगा। यह वैवाहिक सम्बन्ध कट्टरता को कम करने में विशेष रूप स सहायक सिद्ध हुआ। इधर मुसलमान पीर तथा शेखा के शिष्य परम्परा मे बहुत से हिन्दू दीक्षित हुए। शेख मुईनुद्दीन चिश्ती, शेख फरीदुद्दीन शकरगज, शेख निजामउद्दीन औलिया, शेख सलीम चिश्ती आदि का उपदेश हिन्दू भी सुनत थे और उनक आशीर्वाद के इच्छुक होते थे। इन महात्माओ के शिष्य एक नये एकता के सूत्र में बँध गये। सम्पक के कारण हिन्दू धम एव इस लाम का वास्तविक रूप लोगा के सामने आया। अकबर और दारा शिकोह जसे उदार मुगल शासको की दूरदर्शिता के कारण हिन्दू धम की व्यापक शिक्षाओ का विचार तत्कालीन मुसलमान जनता में भी होने लगा। इस हेल मेल का परिणाम यह हुआ कि हिन्दू जनता ने मुगल साम्राज्य की उन्नति में अपनी महत्त्व-पूर्ण शक्ति भेट की। कधे से कधा भिडाकर राजपूत वीरो ने मुगल सत्ता को दढ बनाया और इस्लामी सस्कृति के प्रचार में योग दिया। कालान्तर में एक मिश्रित सस्कृति का जन्म हुआ जो आज भी हमारे देश के उत्तरी भाग में दिखाई

देती हैं। इन सब प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभावों का फल यह हुआ कि इस्लाम अपने विदेशी रूप को छोड़कर भारतीय वातावरण के अनुकूल हो गया।

१७वीं शताब्दी में कौन कह सकता था कि एक दिन धार्मिक कट्टरता उग्र-रूप धारण करेगी और साम्प्रदायिकता के आधार पर इस प्राचीन भारत भूमि के दो टुकड़े हो जायेंगे। भविष्यवाणी करना इतिहासकार के अधिकार क्षेत्र से बाहर है।

अध्याय १७

साम्राज्य का पतन

मुगल शासक वास्तव में विदेशी थ। उन्होंने जनता को विकास की ओर ले जानेवाली संस्थाएँ स्थापित नहीं कीं और वे प्रजा की दृष्टि में सदव विदेशी बने रहे जिससे कि देश की उनसे हार्दिक सहानुभति नहीं रही। उन्हें प्रजा से सम्पूर्ण सहयोग प्राप्त न हो सका। मुगल शासन का प्रधान लक्ष्य देश में आतरिक और वाह्य शान्ति स्थापित रखना तथा साम्राज्य की सीमा बढाना ही था। इसी कारण वह लोगों मे देशप्रेम तथा देशभक्ति की भावनाओं को जाग्रत करने में असमथ रहे। मुगल साम्राज्य केवल उसी समय तक अपनी सत्ता तथा अस्तित्व बनाये रख सका जब तक कि उसकी सनिक शक्ति का ह्रास न हुआ और केन्द्रीय सरकार में विद्रोहों को दबाने की शक्ति रही। साम्राज्य का स्थायी रखने के लिए युद्ध करना अनिवाय था परन्तु औरगजेब की लम्बी लड़ाइयाँ और सुयोग्य सैनिकों के अभाव के कारण मुगल सेना अशक्त हो गई थी। जब सेना तथा शासन का भय लोगों के हृदय से जाता रहा तो विद्रोह की अग्नि सारे साम्राज्य में धधक उठी और चारों ओर अशान्ति फल गई।

शाहजहाँ के शासनकाल में धार्मिक सहिष्णुता के विरुद्ध जो प्रतिक्रिया आरभ हुई थी वह औरगजेब के समय में और भी बढ गई और साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुई। शाहजहाँ के आदेशानुसार ७३ मन्दिर बनारस, इलाहाबाद के देश में बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गये थे। यह औरगजेब के शासन काल में आनेवाली धर्मान्धता का पूर्वाभास था। ९ अप्रल १६६९ ई० को औरगजेब ने एक फर्मान जारी किया कि विधर्मियों की पाठशालाएँ और मन्दिर तोड दिये जायँ। कई बडे बडे प्रसिद्ध मन्दिर तोड डाले गये जिनमें से गुजरात में सोमनाथ का, बनारस में विश्वनाथ और मथुरा में केशवराय के

अत्यन्त प्रसिद्ध मन्दिर भी थे। विक्रय की चीजो पर मुसल्माना से ढाई फीसदी और हिन्दुओ से पाच फीसदी कर लिया जाने लगा। धर्म परिवर्तन को प्रोत्साहन देने के लिए बादशाह ने यह नियम बना दिया कि जो इस्लाम स्वीकार कर ले, उसे पारितोषिक और नौकरी मिले। सन १६६९ ई० म हिन्दुओ के मलो पर रोक लगा दी गई और नगरो में दिवाली का उत्सव मनाना भी वर्जित कर दिया गया। मार्च सन १६९५ ई० में एक नियम बना कि राजपूतो के अतिरिक्त हिन्दुओ को पालकी अथवा घोडे पर सवारी करने और शस्त्र धारण करने की आज्ञा नही है। हिन्दुओ पर जजिया लगाया गया। हिन्दुओ के रहन सहन तथा धर्म पर आघात करने से सारी हिन्दू जनता के हृदय में विद्रोह की आग धधकने लगी और यहा तक कि मुगलो के सच्चे सहायक राजपूतो ने भी उन्ह विपत्ति में कोई सहायता नही दी। हिन्दुओ ने इन प्रतिबधो का घोर विरोध किया और कई भयानक विद्रोह भी हुए जिनमें से गोकुल जाट, सतनामियो और चूरामन जाट के विद्रोह उल्लेखनीय है। सिक्खो के गुरु तेगबहादुर का कत्ल करा कर औरगजेब ने सिक्खो से शत्रुता मोल ले ली। सिक्खो के अन्तिम गुरु गोविन्दसिंह ने इसका बदला लेने का निश्चय किया और उन्होने अपनी शक्ति बढाकर मुगलो से युद्ध प्रारभ कर दिया। यद्यपि वे युद्ध म हार गये लेकिन फिर भी साम्राज्य की शान्ति भग हो गई और शासन प्रबध खराब हो गया। औरगजेब का राजपूतो तथा मराठो के साथ युद्ध भी उसकी धार्मिक कट्टरता के ही कारण हुआ। उसके अत्याचार ने हिन्दू और शिया मुसल्मानो को राज्य का शत्रु बना दिया। नीति परिवर्तन के दुष्परिणाम प्रत्यक्ष दिखाई देने लगे। बुद्धिमान् पुरुषो को इस बात का आभास हो गया कि अब साम्राज्य के अन्तिम दिवस निकट आ रहे है। औरगजेब के राज्यकाल म शासन अव्यवस्थित हो गया था और अनवरत युद्धो के कारण मुगल राज्य की जड खोखली हो रहा था।

मुगल पदाधिकारी एव उच्चवर्गीय सामन्त आचरण भ्रष्ट हो गये। शाहजहाँ के राज्यकाल मे ही अमीर वर्ग के चारित्रिक पतन के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे थे। स्त्री और मदिरा के अनवरत साहचर्य ने उनकी नैतिकता को नष्ट कर दिया था तथा अपव्ययता ने उन्ह अयोग्य बना दिया था। वे

व्यय में मनोविनोद में अपना समय नष्ट करते और अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए शक्ति संचय कर मनमानी करना चाहते थे। उनमें वीरता विद्वत्ता एवं सदाचारिता के गुण न थे वरन् वे मक्कार और घूसखोर हो गये थे। सआयत खाँ आसफ खाँ, सादुल्ला खाँ और मीरजुमला जैसे उच्चकोटि के राजनीतिज्ञों तथा सामन्तों के पौत्र विलासिता में मग्न थे और कठिन परिस्थितियों में वे धैर्य और साहस खो बैठते थे। युद्धकला से वे सर्वथा अनभिज्ञ थे और न उन्हें उसमें कोई रुचि ही थी। उन्हें केवल भोग विलास की सामग्रियों तथा दरबार के षडयन्त्रों से ही सरोकार था।

शाही दरबार की दशा भी खराब हो गई थी। वह विलास प्रिय प्रपंची एवं चाटुकार व्यक्तियों का अड्डा बन गया था। बादशाह का दरबार सभ्यता का केन्द्र था इसीलिए अमीरों और सरदारों का वहां जमघट रहने से तरह तरह की दलबन्दियाँ तथा षडयन्त्र हुआ करते थे। बादशाहों में दरबारियों का दमन की शक्ति नहीं थी। इस कारण वे सारा अधिकार अपने हाथ में ले लेने की चेष्टा में थे। अधिकारों के लिए उनमें चील कौवों की तरह लड़ाई हुआ करती थी। इस प्रकार राज्य के सामन्तों में पारस्परिक कलह तथा विद्वेष बढ़ गया था और इस प्रकार राज्य की प्रतिष्ठा भी न्यून हो गई थी।

युद्धों की अधिकता के कारण सहस्रों सैनिक सामन्त तथा राजकुमार मारे जाते थे। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् राजसिंहासन प्राप्ति के लिए सात युद्ध हुए। इसके अतिरिक्त जाटों राजपूतों, सिक्खों और मराठों को दबाने के लिए सैकड़ों युद्ध हुए जिसमें योग्य सेनापतियों एवं सैनिकों का बलिदान हुआ और योग्य तथा अनुभवी सैनिकों तथा सेनापतियों के अभाव के कारण सेना अशक्त हो गई। मुगल सेना की दुर्बलता का परिचय सर्वप्रथम शाहजहां के राज्यकाल में मिलता है जब कि १६४९, १६५२ १६५३ ई० में बड़ी बड़ी सेनाओं के भेजे जाने पर भी कन्दहार के किले को न जीता जा सका। सैनिक भोग विलास में लिप्त हो गये थे। सेना की शक्ति भी बहुत घट गई थी। औरंगजेब की लम्बी लड़ाइयों और वीर तथा साहसी सैनिकों की कमी का प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा था। मुगल सेना के सबसे अच्छे सैनिक मध्य

एशिया से आते थे, परन्तु औरंगजेब के शासनकाल के बाद इन दशा से सबंध पूर्णतया टूट जाने के कारण उनकी भर्ती बंद हो गई। अकबर के बाद तोपखाने की ओर भी मुगल शासकों ने कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया और सेना को कभी आधुनिक शस्त्रों से सुसज्जित करने का प्रयत्न नहीं किया। उनकी युद्ध शैली वही रही जो बाबर के समय में थी और उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। मुगल शासकों ने सामुद्रिक शक्ति की ओर भी विशेष ध्यान नहीं दिया। यही कारण था कि योरोपीय जातियाँ अन्त में भारत में उपनिवेश तथा राज्य स्थापित कर सकीं।

बर्नियर लिखता है कि राज्य की आर्थिक दशा खराब थी। सरकारी कोष खाली हो गया था व्यापार और खेती अवनत दशा में थे। अशान्ति से व्यापार को बड़ा धक्का पहुँचा था। सड़कों के अभाव और देश में अशान्ति और अराजकता के कारण माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाने में लूट-मार का भय रहता था। शाहजहाँ के राज्यकाल के अंतिम भाग में देश की आर्थिक दशा खराब हो चली थी क्योंकि बादशाह की दूर देशों में लम्बी लड़ाइयों तथा भव्य इमारतों और मकबरे इत्यादि बनवाने में अत्यधिक धन व्यय हुआ था। राज्य कोष खाली हो चला था। इसी कारण औरंगजेब ने अपनी सेना घटा दी और राज्य के अन्य खर्चों को कम करना चाहा। परन्तु उसके राज्यकाल में भी लड़ाइयाँ हुई और शासन प्रबंध ठीक न होने के कारण आर्थिक दशा खराब ही होती गई। इसमें कोई संदेह नहीं कि शाहजहाँ के शासनकाल में भूमिकर (मालगुजारी) २० से २९ प्रतिशत तक बढ़ गई थी परन्तु बर्नियर के कथनानुसार यह वृद्धि राज्यकर्मचारियों का किसानों से अधिक वसूली के कारण हुई थी। इस आर्थिक स्थिति का उसके उत्तराधिकारियों के शासनकाल पर बुरा प्रभाव पड़ा। देश की प्रधान आय का साधन मालगुजारी थी जो खेती का अवनति के साथ कम हो गई। बर्नियर के कथनानुसार शाहजहाँ के समय से ही कृषि की दशा खराब हो रही थी। स्थानीय अधिकारियों का प्रजा पर ऐसा प्रबल अधिकार था कि उनके द्वारा त्रसित प्रजा कहीं प्रार्थना भी नहीं कर सकती थी। पीटरमंडी नामक यात्री सूबेदारों को निर्दयी तथा बड़ा अत्याचारी बतलाता है। कर्मचारी घूस भेंट

(नजराना) इत्यादि लेते थे और औरगजब के राज्यकाल में जब जागीरदारी तथा ठेकेदारी प्रथा चल पडी थी तो अधिक कर तथा लगान की वसूली होने लगी। बर्नियर का लेख है कि अमीर कारीगरो से बेगार लेते थे और उन्हे कभी कभी तो उचित पारिश्रमिक के बदले में कोडे ही मिलते थे। कारीगरो की दशा करुणाजनक थी। उनका रोजगार बिल्कुल चौपट हो गया था। लाखो रुपया बकाया में पडा हुआ था। मालगुजारी वसूल नही होती थी। शाही खजाने में द्रव्य की भी कमी थी। अकबर तथा शाहजहा के शासनकाल म राज्य किसानो से उनकी एक तिहाई उपज भूमिकर के रूप म लेता था परन्तु औरगजेब के समय में उपज का आधा भाग मालगुजारी के रूप मे लिया जाने लगा। लगान समय पर न देने पर कर्मचारी किसानो के प्रति क्रूरता का व्यवहार करते और प्राय उनसे नियत से अधिक वसूल करने की चेष्टा करते थे। इसी कारणवश किसान कृषि व्यवसाय को छोडकर शहरो में मजदूरी और नौकरी करने के लिए आने लगे। औरगजेब के उन्हे जमीन दे देकर फिर से बसाने के प्रयत्न विफल हुए और कृषि की दशा खराब ही होती गई। औरगजेब ने गद्दी पर बैठते ही बहुत से कर माफ कर दिये थे परन्तु सूबो में वे उसी तरह लिये जाते रहे और प्रजा के ऊपर अत्यधिक करो का बोझ बना ही रहा।

औरगजेब की मृत्यु के पश्चात शासन की अव्यवस्था बढने लगी। इसका कारण यह था कि उसके उत्तराधिकारी उतने योग्य और अनुभवी न थे। उसने अपने पुत्रो के प्रति अविश्वास से उन्हे राज्य के कामो की जानकारी से सर्वथा अनभिज्ञ रक्खा और वे विलासी तथा अकर्मण्य हो गये। न तो उन्होने युद्धो में भाग लिया और न शासन प्रबध में ही उनकी रुचि थी। आमोद प्रमोद में वे अपना जीवन व्यतीत करने लगे। अधिकतर मुगल राजकुमारो में सेनापतित्व के गुणो का लोप हो गया और वे बाबर, अकबर तथा औरगजेब के समान युद्ध आयोजन और रणकौशल की शैली मे भली भाति परिचित न थे। उनके आदर्श उत्कृष्ट न रहे और उन्हे प्रजा के हिताहित का तनिक भी ध्यान न रहा। मुगल शासन की बागडोर उनके हाथो से निकलकर वजीर (मत्री) के हाथ में चली गई और उस उच्च पद की प्राप्ति के लिए उच्च

मनसबदार तथा अमीर आपस में दलबन्दी कर झगड़ने लगे। देश में अनुशासन स्थापित करने के लिए वे नियम न बना सके और जो दोष शासन-प्रबंध में आ गये थे, उन्हें भी उन्होंने सुधारने की चेष्टा न की। जैसे जैसे समय बीता शासन प्रबंध बिगड़ता ही गया परन्तु बादशाहों ने उसकी ओर ध्यान न दिया। नौकरियों में योग्यता का ध्यान नहीं रखा जाने लगा। दरबार में दलबन्दियों के कारण दलों के व्यक्तियों की नियुक्ति होने लगी चाहे वे कितने ही अयोग्य क्यों न हों। इसका शासन प्रबंध पर बुरा प्रभाव पड़ा और अयोग्य कर्मचारियों के कारण सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था ही बिगड़ गई।

साम्राज्य की दशा खराब होते ही हिन्दुओं ने शक्ति संचय करना प्रारंभ कर दिया और मराठों, जाटों तथा सिक्खों ने स्वतंत्र राज्य स्थापित करने के लिए प्रयत्न आरम्भ कर दिये। राजपूतों ने अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त कर मुगल साम्राज्य को अपनी बहुमूल्य सहायता से वंचित कर दिया। मराठे मुगल राज्य पर छापे मारकर चौथ और सरदेशमुखी वसूल करते थे। मुगल सेना भारी भरकम होने के कारण पहाड़ियों और जंगलों की लड़ाई के लिए उपयुक्त न थी और इसी कारण वह मराठों तथा सिक्खों को सुगमता से पराजित न कर सकी। मराठे लुक-छिपकर मारकाट करते और सेना का सामान लूट लिया करते थे। यही कारण था कि मुगल-सेना को क्षति अधिक पहुँचती थी और विजय केवल नाममात्र को होती थी। बुन्देलखण्ड में छत्रसाल की अध्यक्षता में बुन्देलों ने मुगल साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा करके मुगलों को परेशान कर दिया और अन्त में वे एक स्वतंत्र राज्य स्थापित करने में सफल हुए। जाटों और सिक्खों ने सरहिन्द पर अधिकार कर लिया। मराठों ने अपना राज्य सम्पूर्ण दक्षिण में फैला लिया और वे बंगाल बिहार उड़ीसा पर भी हमले करने लगे थे। गंगा के दोआब में अली मुहम्मद खाँ रुहेला ने कुमायूँ की पहाड़ियों तक अपना अधिकार कर लिया था। अवध के सूबेदार सआदत खाँ, बंगाल के अलीवर्दी खाँ तथा दक्षिण में निजामुलमुल्क ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी थी।

दरबार में दलबन्दी ने फर्रुखसियर के राज्यकाल से जोर पकड़ा। दरबार में हिन्दुस्तानी और विदेशी अमीरों के दो दल थे। विदेशी अमीरों में पठान

मुगल अफगान, अरब और रूमी शामिल थ परन्तु इनमे सबसे प्रसिद्ध ईरानी और तूरानी थे। तूरानी दल के लोग सुन्नी थ। इनका और मुगलो का निवास-स्थान एक होने के कारण बादशाह की इन पर विशेष कृपा रहती थी। ईरानी दल के लोग शिया थ। वे सख्या म अधिक न थ, परन्तु अपनी योग्यता के बल से राज्य में बडे ओहदो पर थ और दरबार म उनका प्रभाव भी बहुत था। ईरानियो और तूरानियो म सदव अनबन रहती थी, परन्तु हिन्दुस्तानी अमीरो के विरुद्ध वे प्राय मिल जाया करते थ। हिन्दुस्तानी अमीरो मे सयद भाइयो की तरह के मुसलमान थे। उनके साथ राजपूत, जाट तथा हिन्दू जमीदार थ। इन दलबन्दियो के कारण दरबार म पदाधिकारियो में पारस्परिक कलह और विद्वेष बढ गया और देश की दशा खराब होती गई। बादशाहो के निकम्मे और अयोग्य होने के कारण राजमुकुट एक प्रकार का खिलौना हो गया जिसे दरबार के महत्त्वाकाक्षी सामन्त अपनी इच्छानुसार अपन सकेत पर नचानवाल शाहजादो को दे देते थे।

मुगल अमीर वग क पतन का मुख्य कारण बादशाहो की अयोग्यता थी। बादशाह का कतव्य ह कि वह योग्य व्यक्तियो को बड पदो पर नियुक्त करे और उनके काम का यथोचित निरीक्षण करे। यह सब करन में शासक असमथ थे। फलत अमीरो में भी बुद्धिमत्ता विवेक तथा अनुभव का अभाव हो गया था। अपने निजी पत्रो मे औरगजेब बहुधा इस बात की शिकायत करता है कि राज्य में योग्य कमचारियो की सख्या पिछले बादशाहो के शासनकाल की अपेक्षा न्यून हो रही ह।

मासिर-उल-उमरा में इस प्रकार का उल्लेख ह कि अमीरो के पुत्र सवथा निकम्मे तथा अयोग्य थ। उनमें न सनिक शौय था न शासन की योग्यता। साम्राज्य के वीर सनिक एव सेनाध्यक्ष बहुधा विदेशी लोग थे परन्तु उनकी भी सन्तान अशक्त हो चुकी थी। विदेशी अमीरो की राजभक्ति पर भी सन्देह होने लगा था। हिन्दू जिन्होंने साम्राज्य के निर्माण में सहायता की थी अपने धम के लिए केवल चिन्तित ही न थे वरन् उसके पुनरुत्थान के लिए पूणतया प्रयत्नशील हो रहे थ। मराठो ने हिन्दूधम का ही पक्ष लेकर राजनीतिक क्षेत्र में पदापण किया था। शिवाजी ने हिन्दुत्व की रक्षा के लिए ही मुगलो

से अनवरत युद्ध किया था। वही प्रयत्न अभी तक चल रहा था। सत्रहवी शताब्दी के कवि भूषण की रचनाओ में इस हिंदू विरोध का चित्रावन ह। जब बाजीराव प्रथम ने मालवा पर आक्रमण किया तो वहा के हिंदू सरदार एव जयपुर, मवाड के राजपूता से भी धम के नाम पर अपील की और कहा कि धम की रक्षा के लिए हिन्दुस्तान को युद्ध के लिए तैयार हो जाना चाहिए। सन् १७३१ म जयपुर नरेश सवाई जयसिंह न इन्दौर के चौधरी नन्दलाल मन्दालोई को एक पत्र लिखा जिससे स्पष्ट प्रकट होता है कि हिंदू मनोवृत्ति उस समय किस प्रकार की थी। इस पत्र मे लिखा ह—

"आपके लिए सहस्र धयवाद! क्योकि आपने मेरी बात का विश्वास कर अपन धम की रक्षा के लिए मालवा में मुसलमाना का नाश किया ह और अपनी प्रभुता स्थापित की है। आपन मेरे हृदय की अभिलाषाओ को पूण किया है।" भारत के हिन्दू असन्तुष्ट थे। सनिक जातियाँ अपने अस्तित्व के लिए अपने कृपाणा को तीक्ष्ण करने में लगी हुई थी। शिया भी साम्राज्य के विद्वेषी हो रह थे। मुगलराज्य म शियाओ के साथ अच्छा वत्ताव नही होता था। शाहजहाँ भी शियाओ से घणा करता था। शिया धम के अनुयायी होने के कारण ही वह गोलकुडा बीजापुर राज्या को नष्ट भ्रष्ट करना चाहता था। औरगजेब तो कट्टर मुसलमान था ही। सुन्नी जनता भी शियाओ से घणा करती थी। सन १७१२ में जब बहादुरशाह ने अपने खुत्बे में शियाओ के किसी शब्द का प्रयोग किया तो लाहौर में विद्रोह खडा हो गया। कुछ वर्षों के बाद हसनाबाद (काश्मीर) में २५०० शियाओ को तलवार के घाट उतार दिया गया। सम्राट् कुछ भी न कर सके। प्रान्तीय केन्द्रीय शासन दुबल हो गया था। राज्य के बडे बड पदाधिकारियो में साहस, शौय तथा योग्यता का अभाव था। दरबार में मसखरे और चापलूस बादशाहो का मनोविनोद कर उनका समय नष्ट करते थे। राजकाय में किसी की रुचि न थी। न व राजकीय विषयो को समझते ही थ। वजीर योग्यता के कारण नही नियुक्त किये जाते थे। जरा सी बात पर बडे से बडे अफसर पदच्युत कर दिये जाते थ। प्रान्तों में चाटुकार नियुक्त किये जाते थे। निजाम और वजीर कमरुद्दीन दाना विदेशी थे। उनकी

राजभक्ति सन्तोषप्रद नही थी। दरबार में दल म युद्ध हो रहा था और षड् यन्त्रा की भरमार थी। नादिरशाह क आक्रमण के समय जाट लूटमार कर रह थ अराजकता फलती जाती थी व्यापार व्यवसाय अवनत हो रहे थ, सडका पर डाकुआ का आधिपत्य था मराठे भी लूटते और चौथ वसूल करते थे। किसाना पर भी अशान्ति का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता था। लगान वसूल नही होता था। भारत के धन की एशिया के देशा में प्रसिद्धि थी। इसे लेने क लिए अनक महत्त्वाकाक्षी सनिक लालायित हो रहे थे। पश्चिमोत्तर सीमा के प्रान्ता म विद्रोह की आग सुलगन लगी थी। मराठे दिल्ली तक छापा मारते थ। शाह के विलासप्रिय होन क कारण पशवाओ का अभ्युदय हुआ था। क्रमश वे शक्तिशाली हो गये। उनकी अध्यक्षता म मराठा की शक्ति अपनी चरम-सीमा तक पहुँच गइ। सन १७३७ में बाजीराव न दिल्ली तक धावा किया और लूटमार की। जब बादशाह ने निजामुल्मुल्क को अपनी रक्षा के लिये बुलाया तो उसे भोपाल क निकट युद्ध में पराजित कर ५० लाख रुपया युद्ध-व्यय क रूप में लिया। इन आक्रमणा से साम्राज्य की प्रतिष्ठा को बडा धक्का पहुँचा। अफगानिस्तान तथा पजाब प्रान्त को अरक्षित देख नादिरशाह ने जो ईरान का बादशाह हो गया था भारत पर सन् १७३९ में आक्रमण किया। इन प्रान्ता की रक्षा के लिए राज्य न कुछ न किया। अमीर-उल्-उमरा खान दौरान ने इस ओर ध्यान ही न दिया। पजाब की भी यही दशा थी। सूबेदार जकारिया योग्य व्यक्ति था परन्तु हिंदुस्तानी अमीर उसका घोर विरोध करते थ। बादशाह इस दल के हाथ म था। नादिरशाह को रोकने के लिए कुछ भी न किया गया। फलत ईरानी विजेता अफगानिस्तान को जीतकर पजाब मे प्रविष्ट हुआ। जकारिया न सनिक विरोध किया परन्तु असफल रहा। अन्त में उसन किले की कुजी ईरानी विजेता को द दी।

पजाब में अराजकता के लक्षण दिखाई देने लगे। लूट-मार होन लगी। डाकुआ ने सिर उठाया। राज्य के दौर्बल्य के कारण प्रत्यक मनुष्य धन लिप्सा से प्रेरित होकर लूट-मार करन लगा। सडको पर यात्रियो का चलना कठिन हो गया। नादिरशाह इतने में करनाल पहुँच गया। १३ फरवरी सन १७३९ को करनाल में घमासान युद्ध हुआ जिसमें भारतीयो की पराजय हुई। इसके कई

कारण थे। ईरानी भारतीय मुसलमानों की अपेक्षा कुशल सैनिक थे। उनके पास तोपें थीं हिंदुस्तानी तलवारों से युद्ध करते थे। इनके पास हाथी थे। ईरानी अपने घोड़ों पर एक स्थान से दूसरे स्थान को शीघ्र चले जाते थे। इसी कारण इस युद्ध में उनकी विजय हुई। हाथी उपयोगी न हो सके, ईरानियों ने अपने अस्त्रों का अच्छा उपयोग किया। मुहम्मदशाह बादशाह का निकम्मापन प्रमाणित हो गया। दरबार के षड्यन्त्रों का अब भी अन्त न हुआ। निजाम और सआदतखाँ दलबन्दी में भाग ले रहे थे। साम्राज्य के हितों का किसी को ध्यान न था।

इस विजय के बाद नादिरशाह ने दिल्ली में प्रवेश किया। दिल्ली निवासी अपनी विलास-प्रियता के कारण बाहर के दशा से अनभिज्ञ थे। उन्हें यह भी पता न था कि अफगानिस्तान और और पंजाब में क्या हो रहा है। नादिरशाह ने शाहजहाँ के भव्य भवनों में बैठकर साम्राज्य की दौलत को लूटा। जब किसी प्रकार उसके मरने की किम्वदन्ती नगर में फैली तो विद्रोह हो गया। इस पर उसने कत्ल आम का हुक्म दे दिया। यह ९ बजे सवेरे से २ बजे शाम तक रहा। इस भीषण हत्याकाण्ड को देखकर मुहम्मदशाह ने नादिरशाह से प्रार्थना की कि इसे बन्द किया जाय और प्रजा को क्षमा प्रदान किया गया। इस पर नादिलरशाह का कठोर हृदय पसीजा। उसने कत्ल को बन्द करने की आज्ञा दे दी। सहस्रों मनुष्य मारे गये, लाखों का माल लूटा गया। बहुत से सम्मानित व्यक्तियों ने अपनी स्त्रियों को उनके सतीत्व की रक्षा के लिए मार डाला। फिर कजल्बाशों पर प्रहार कर वे वीरगति को प्राप्त हुए। अनेक स्त्रियों ने कुओं में कूदकर आत्महत्या की। इस पर भी बहुत सी घसीटकर घरों से निकाल ली गईं और बन्द कर ली गईं। आनन्दराम मुखलिस के मतानुसार निम्नलिखित माल ईरानियों के हाथ आया —

"६० लाख रुपया और कई सहस्र सोने के सिक्के, १ करोड़ का सोने का सामान, ५० करोड़ के जवाहिरात जो संसार में अद्वितीय थे और तख्त ताऊस।"

सरकारी तहखाने खाली गये। रईसों की तलाशी ली गई। उनका रुपया तथा गहने लूट लिये गये। नगर-निवासियों को भी बड़ी क्षति उठानी पड़ी। उनसे लगभग २ करोड़ रुपया बलात वसूल किया गया। आनन्दराम को भी ५ लाख देना पड़ा। उसने रुपया वसूल करने के तरीके का मार्मिक शब्दों में

वर्णन किया है। नामो की सूचिया तैयार की गई, मकानो के फर्श खोद डाले गये। जनता को घोर कष्ट हुआ जिसे शब्दो में व्यक्त करना कठिन है। अनेक परिवार नष्ट हो गये। अनेको मनुष्यो ने विष खा लिया और अनेको ने हथियारो से आत्म-हत्या कर ली।

जिस समय दिल्ली में यह हाहाकार मचा हुआ था। नादिरशाह वहीं था। परन्तु उसका पाषाण हृदय न पिघला। उसने अपने को शाहंशाह घोषित किया, खुतबे में नाम पढवाया और मुहम्मदशाह तथा उसके अमीरो को बन्दी बनाकर रक्खा। शासन अस्त-व्यस्त हो गया। देहातो में अराजकता का बोल-बाला हो गया।

हिन्दुस्तानकी दौलत को लूटकर नादिरशाह ने ईरान की यात्रा आरम्भ की। अतुल द्रव्य के अतिरिक्त वह अपने साथ १३० मुनीम हिसाब किताब में दक्ष, ३०० शिल्पकार, २०० लुहार, २०० बढई और १०० संगतराश अपने साथ ले गया था। दिल्ली को देखकर उसे ऐसा ही शहर बनाने की इच्छा हुई। इनके अतिरिक्त उसने कुछ नाविको और सुनारो को भी साथ ले गया। उन्हें अच्छा वेतन दिया गया और उनसे कहा गया कि ३ वर्ष बाद उन्हे भारत वापस लौटने की आज्ञा मिल जायगी। यह सब होने पर भी बहुत से भाग गये। कोई स्वदेश को छोडकर ऐसे हृदयहीन विजेता के साथ जाने को तयार न था। ५ मई सन् १७३९ को ५७ दिन दिल्ली में ठहरने के पश्चात नादिरशाह फारस को लौट गया।

नादिरशाह तो मालामाल होकर अपने देश को चला गया परन्तु साम्राज्य को बड़ी क्षति पहुँची। अफगानिस्तान और पंजाब कजलबाशो के हाथ में चले गये। शासन अस्तव्यस्त हो गया। सर्वत्र लूट मार होने लगी। नगर एवं गाँव उजड गये। त्रस्तजनता दुखी होकर शरण खोजने लगी। सिक्खो ने अपना शक्ति बढा ली। वे दिल्ली राज्य का मतप्राय समझते थे। जाटो और लूट-मार करते थे और डाकुओ की संख्या बढाने में संलग्न थे। कृषि का ह्रास हो रहा था। कोसो तक कहीं खेतो में फसल नहीं दिखाई देती था। अकाल का भीषण प्रकोप आरम्भ हो रहा था। मराठा ने भी इस स्थिति से लाभ उठाया। वे अब उत्तरी भारत की ओर बढे और बगाल, बिहार उडीसा पर छापा मारने लगे। मुहम्मद-शाह ने शासन सूत्रो को संगठित करने की चेष्टा की परन्तु वह असफल रहा।

राज-दरबार और उसके सहायकों के कुत्सित चरित्र के कारण सामाजिक व्यवस्था की उन्नति भी आशा नही दिखाई देती थी। केवल निजाम ही एक ईमानदार मनुष्य था परन्तु वृद्धावस्था के कारण वह राजकाय में अधिक भाग नही ले सकता था। उसकी आयु इस समय ८२ ८३ वष की थी। उसके बेटे राज्य को हडपने के लिए अधीर हो रहे थे और युद्ध की तैयारी कर रह थे। वह दक्षिण का चला गया। उसके लिए वही इतना काय था कि जरा भी अवकाश न मिला। सन् १७४८में उसकी मृत्यु हो गई।

दक्षिण तथा अवध वास्तव में स्वाधीन हो गये। उधर दिल्ली में वजीर के पद के लिये झगडा हो रहा था। अमीर दलबन्दी के शिकार हो रहे थे। न उनका कोई उच्च अभीष्ट था न व परिस्थिति पर ही अधिकार करने में समथ थे। सन् १७४८ मे मुहम्मदशाह भी परलोकवासी हुआ। राज्य-व्यवस्था की जो कुछ आशा थी वह भी विलीन हो गई। अमीरो के दुराचार, मूखता एव षडयन्त्रो के कारण परिस्थिति भयकर होती गई। नगर की गलियो म अमीरो के पारस्परिक युद्ध होने लगे। साम्राज्य की प्रतिष्ठा नष्ट हो गई।

नादिरशाह के आक्रमण मे राजपूताना को भी बडी क्षति पहुँची। राजपूत नरेश परस्पर युद्ध करने लगे। सवाई जयसिह, अभयसिह और ईश्वरी सिह एक एक कर दिल्ली मे चले गये। मराठो ने सन् १७५० में जयपुर पर छापा मारा। सिधिया तथा होलकर की सयुक्त सेनाओ ने कछवाहा राज्य को जिसमें पहले ही से अशान्ति थी, दुबल कर दिया। मराठा सेनाध्यक्ष गाडेराव के अशिष्ट व्यवहार से राजपूत क्रुद्ध थे। उन्हाने विद्रोह किया और लगभग १५०० मराठो का तलवार के घाट उतार दिया। नगर से विद्रोह देहातो में फल गया और चारो ओर मराठो पर हमला होने लगा। जोधपुर म गहयुद्ध हो रहा था। अन्त में सन् १७५१ में राज्य की शक्ति बख्तसिंह के हाथ आ गई थी। बूँदी की भी यही दशा थी, मराठा आक्रमणो के कारण उसे भी घोर कष्ट उठाना पडा और बडी कठिनाई के बाद उमेदसिह राजसिहासनारूढ हुआ।

दिल्ली मे मुहम्मदशाह का उत्तराधिकारी अहमदशाह सर्वथा अयोग्य तथा पुरुषार्थहीन था। उसे राजकाय का कुछ भी अनुभव न था। दुराचारी चापलूसो के साथ वह अपना समय नष्ट करता था। शासन-सूत्र ढील पड रहे थे। राज्य

अधिकार जाविद खाँ नामक ख्वाजासरा के हाथ म चला गया था। की माता ऊधमबाई भी प्रभावशाली हो गई थी और व्यवहार में नूरजहा का अनुकरण करती थो। मुसल्मान इतिहासकार इस बात पर खद प्रकट रते ह कि राज्य का सम्पूण काय एक स्त्री के हाथ मे था। राज माता जाविद खाँ स प्रेम करती थी। इसस अमीर ए। जनता दाना ही असन्तुष्ट थ। शाही रक्षको ने जिनका वतन एक वप स अधिक काल स नही मिला, था एक अदभुत तमाशा किया। उहान एक गध और कुतिया को महल के फाटक से बाँध दिया। जब अमीर तथा दरबारी आय तो उनसे कहा कि इनसे पहले सलाम करो। एक का नाम ह नवाब बहादुर और दूसरे का ह हजरत कुदसिया।

बादशाह निकम्मा था। विलासप्रियता मे मग्न रहता था। जाविद खाँ दीवान खास का अध्यक्ष बन गया। उसन नबाव की उपाधि ली। बादशाह और राजमाता दाना पर उसका पूण प्रभाव था। उसकी बात को दाना में से कोई भी नही टाल सकता था। ऐसी स्थिति म शासन बिगड गया। राज-कोष खाली हो गया। केन्द्रीय शक्ति क्षीण हो गई। भूमिकर वसूल नही हुआ। सेना अव्यवस्थित होने लगी। सनिका का वेतन कई महीना से नही मिला था। असंतोष बढा रहा था। शिया सुन्नियों में भी कलह की वृद्धि हो रही थी। वजीर सफदरजग शिया था परन्तु उसके अनुयायी अधिक न थ। षडयन्त्रों की धूम थी। अगस्त सन् १७५२ में सफदरजग ने जाविद खा का कत्ल करा दिया। परन्तु उस शान्ति न मिली। रुहेला अफगान बगाश नवाब, मराठ, जाट सभी उपद्रव कर रहे थे। इसी समय ईरान से खबर आई कि अहमदशाह अब्दाली राजसिंहासनासीन हो गया ह। इसको सुनकर सन् १७५२ के आरम्भ में बादशाह ने वजीर से रुहेला के साथ सधि करने को कहा।

अब्दाली क आक्रमणो स देश की दशा और भी खराब हो गई। उसने पजाब पर कई आक्रमण किये और मुगल सूबेदार मुईन खा को पराजित कर लाहौर पर अधिकार कर लिया। बादशाह को लाहौर तथा मुल्तान अब्दाली को देने पड। ऐसा न करने पर उसने प्रतिवर्ष ५० लाख रुपया कर के रूप मे देने का वादा किया।

मुईनुल्मुल्क नवम्बर सन् १७५३ में मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसकी बेगम मुगलानी ने सेना की मदद से राज्य की शक्ति को अपने हाथों में ले ली परन्तु स्त्री के लिए ऐसे कठिन समय में राज्य करना और अराजकता रोकना असम्भव ही था। पंजाब का शासन अस्त-व्यस्त हो गया। चारों शान्ति भंग होने लगी। राज्य का भय जाता रहा। डाकू लुटेरे सूबेदार के सब छापा मारने लगे।

दिल्ली में जाविद खाँ की मृत्यु के बाद सफदरजंग का प्रभाव बढ़ गया परन्तु न वह कुशल सेनानायक ही था और न मनुष्यों का नेतृत्व करने की उसमें क्षमता थी। वह उतावला, घमंडी तथा अदूरदर्शी था। अनुभवी पुरुष सम्मति का वह अनादर करता था। शिया उसकी मदद तो करते थे परन्तु उ संख्या अधिक न थी। सफदर के व्यवहार से बादशाह तथा अमीर अप्रसन्न गये। असंतोष सर्वव्यापी हो गया। फलतः उसके आदमी किले से निकाल गये। इस पर बादशाह और सफदर जंग में परस्पर संग्राम छिड़ गया। अन जयपुर-नरेश माधोसिंह तथा सूरजमल जाट ने सुलह करा दी। सफदर अवध को चला गया। उसके जाने से राज्य की बड़ी हानि हुई। केवल एक ऐसा मनुष्य था जो बादशाह के सहयोग से शासन को व्यवस्थित दे सकता था। अब वह स्वाधीन हो गया। एक प्रसिद्ध इतिहासकार लिख है कि इस समय साम्राज्य की दशा शोचनीय थी। प्रान्तीय सूबेदार बंग अवध तथा दक्षिण में स्वाधीनता के पथ पर अग्रसर हो रहे थे। गुजरात माल को मराठों ने हड़प लिया था। पंजाब पर अफगानों का आधिपत्य था। साम्रा में अब केवल दिल्ली का समीपवर्ती देश और कुछ वर्तमान उत्तर प्रदेश के जि रह गये थे। दरबारी अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए परस्पर संग्राम कर रहे थे।

मराठों ने ऐसी स्थिति में उत्तरी भारत की ओर बढ़ना आरम्भ किय होल्कर की सेना ने २६ मई सन् १७५४ को शाही डेरे पर हमला किया। ब बन्दी बनाई गई और बहुत सा माल-असबाब लूटा गया। शाहआलम बहादुरश प्रथम के बेटे मुईजुद्दीन का पुत्र अजीजुद्दौला बादशाह घोषित किया गया। उ बादशाह आलमगीर द्वितीय की उपाधि दी गई। अहमदशाह राजमाता के सा बन्दीगृह में डाल दिया गया। वहाँ वह प्यास के मारे तड़पता रहा।

ाह की अवस्था इस समय ५५ वर्ष की थी। उसके जीवन का प्रार
। दीनता मे व्यतीत हुआ था। उसे शासन का भी कुछ अनुभव न
ह कट्टर मुसल्मान था और औरंगजेब की नीति का अनुसरण करना चाहता
। मराठा ने फिर छापा मारना आरम्भ कर दिया। अराजकता ने सिर उठाया। बादशाह शान्ति स्थापित करने में असफल रहा।

पंजाब की दशा दयनीय थी। मुगलानी बेगम प्रान्त के शासन से अलग कर दी गई। मीर मुमीन सूबेदार नियुक्त हुआ। उसके साथ उसकी मदद के लिए एक नायब नियुक्त किया गया। अब्दाली ने फिर १७५६ में पंजाब पर आक्रमण किया। पंजाब पर अपना अधिकार स्थापित कर उसने उत्तरी भारत के नगरो को लूटा और अपने को मालामाल किया। मुगलानी बेगम अब अब्दाली के डेरे में कैद थी। उससे वह जासूस का काम लेता था। वह उसे अमीरो के धन-सम्पत्ति का पता बताती थी। मनुष्य भयभीत होकर अपने गहने बर्तन, कपड़े तक बेच देते थे। खरीदनेवाले कठिनाई से मिलते थे। सोना आठ या दस रुपया तोला बिकता था। चादी रुपये की दो तोला बिकती थी। बहुत से नगर निवासी विष खाकर आत्महत्या कर लेते थे।

१ मार्च सन् १७५७ को अफगानो ने मथुरा नगर मे प्रवेश किया। चार दिन तक जो उनके सम्मुख आया उसे कत्ल किया स्त्रियो का सतीत्व भ्रष्ट किया, मकानो को ढहा दिया और धन लिप्सा के कारण सहस्रो मनुष्य को मार डाला। अप्रैल सन १७५७ में अब्दाली वापस लौट गया। मराठो ने इस स्थिति से लाभ उठाया। उन्होंने फिर दोआब पर अधिकार कर लिया और वजीर से चौथ मागी। राजधानी की दशा बहुत खराब थी। षड्यन्त्रो की धूम थी। २९ नवम्बर सन १७५९ को आलमगीर द्वितीय मारा गया और अर्द्धरात्रि के समय हुमायूँ के मकबरे में गाड दिया गया। तैमूरवंश के सबसे छोटे बेटे का पोता मुहीउलमल्क गद्दी पर बिठाया गया। इस हत्याकाण्ड का समाचार सुनकर अब्दाली फिर आया। सन् १७६० में उसने जाटो तथा मराठो को दबाने का प्रयत्न किया परन्तु सफलता न मिली। पेशवा का भाई सदाशिवराव भाऊ उत्तर की ओर चला। अगस्त सन् १७६० में उसने दिल्ली पर अपना अधिकार कर लिया। मराठो के पास रुपये का अभाव था। भाऊ ने महल को लूटा और दीवान खास की छत में लगी हुई चाँदी

का निगाह लिया और उसके सिक्के बना दिए। इसके बाद २९ ... १७६० को वह पानीपत की ओर चला। दोआब से मराठों का नि... व्यवस्था अभाग भी पानीपत पहुँच गया। दोनों दलों की सैनिक शक्ति के बारे में कि... नदार की जानकारियाँ हैं परन्तु काशीराज पंडित का कथन सत्य प्रतीत होता है। दुर्रानी के साथ ६०,००० सिपाही और मराठों की ओर ४५,००० थे। पानीपत के मैदान में दोनों सेनाओं की १४ जनवरी सन् १७६१ को मुठभेड़ हुई। अब्दाली की सेना बलशाली थी। उसका अनुशासन उत्तम था। सेना का संचालन केवल एक ही मनुष्य के हाथ में था। तोपखाना भी बलशाली था। हथियार भी अफगानों के मराठों की अपेक्षा अच्छे थे। दुर्रानी अफगानों के पास सुन्दर खुरासानी घोड़े थे। वे शीघ्र एक स्थान से दूसरे स्थान को जा सकते थे। इब्राहीम गर्दी ने दुर्रानी की सेना पर हमला किया परन्तु उसे पीछे हटना पड़ा। रुहेले अफगानों ने भी अपनी वीरता का प्रदर्शन किया। सदाशिव भाऊ ने अफगान सेना के केन्द्र पर हमला किया और इस स्थान पर घमासान युद्ध हुआ। मराठा सेना की हार होने लगी। विश्वासराव भाऊ का भतीजा जो एक वीर युवक था गोली से मारा गया। सदाशिव भाऊ भी युद्ध करते मारा गया। होल्कर और सिंधिया के सैनिकों ने नजीब तथा शाहपसन्द के साथ घोर युद्ध किया परन्तु उन्हें पीछे हटना पड़ा।

पानीपत का युद्ध मराठों के लिए घातक सिद्ध हुआ। उनके अनेक सरदार गोलियों की बौछार से धराशायी हुए। बहुत से रणक्षेत्र से भाग गये। महादजी सिंधिया घायल हुआ और सदा के लिए लँगड़ा होकर रणभूमि से पलायमान हुआ। महाराष्ट्र देश में कोई ऐसा परिवार न था जिसका एक न एक मनुष्य इस युद्ध में मारा न गया हो। बहुत से परिवारों के प्रमुख पुरुष ही काल के ग्रास हुए। जो युद्ध क्षेत्र से भाग उन्हें बड़ी यातनाएँ सहनी पड़ी। परन्तु भरतपुर-नरेश सूरजमल जाट ने उनकी रक्षा की।

इस युद्ध के परिणाम क्या हुआ? इसका यहाँ संक्षेप से उल्लेख कर देना आवश्यक है। यदि १४ जनवरी की लड़ाई में मराठों की विजय होती तो दोआब फिर उनके अधिकार में आ जाता और अपने शत्रुओं को भी निस्सन्देह संहार कर सकते थे। भाऊ की सेना इलाहाबाद, विहार, बंगाल पर अपना प्रभुत्व

त्रिलोचन

जन्म 20 अगस्त 1917, चिरानीपट्टी, कटघरापट्टी, सुल्तानपुर,

शिक्षा बी० ए० तथा एम० ए० (पूर्वार्द्ध) अंग्रेजी साहित्य में।

आज, जनवार्ता, समाज, प्रदीप, चित्ररेखा, हंस और कई पत्रिकाओं और समाचार पत्रों का सह-सम्पादन कर चुके हैं।

1952-53 में गणेशराय नेशनल इण्टर कालेज जौनपुर में प्रवक्ता।

1970-72 के दौरान विदेशी छात्रों को हिन्दी, संस्कृत और शिक्षा।

कुछ वर्ष उर्दू विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय की द्वैभा (उर्दू हिन्दी) परियोजना में कार्य।

सम्प्रति अध्यक्ष, मुक्तिबोध पीठ, सागर विश्वविद्यालय, सागर (म

प्रकाशित कृतियां धरती (कविता संग्रह 1945, दूसरा संस्करण

गुलाब और बुलबुल (गजलें और रुबाइयां 19

दिगन्त (सॉनेट 1957)

ताप के ताए हुए दिन (कविता संग्रह 1980)

शब्द (कविता संग्रह 1980)

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह 1981)

अरघान (कविता संग्रह 1984)

पता सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003